आराधना ब्रदर्स
प्रकाशक एवं वितरक
124/152-सी ब्लाक, गोविन्द नगर, कानपुर-208 006 (उ.प्र.)
दूरभाष : 09935007102, 07985242564, 0512-2651490
Email : aradhanabooks@rediffmail.com

कृतिका वर्ष : 13 अंक : 24, 25, 26 (संयुक्तांक)

ISSN : 0974-0002 RNI : UPHIN/2008/30136
वर्ष : 13 अंक : 24, 25, 26

कृतिका

जुलाई 2019 से दिसम्बर 2020 (संयुक्तांक)

साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान
की अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय रेफ्रीड शोध पत्रिका

नालंदा विश्वविद्यालय

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वर्ष :13, अंक : 24–25–26 (संयुक्तांक), जुलाई–2019 से दिसम्बर–2020

देश–देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

प्रधान सम्पादक

डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

अध्यक्ष – हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग

डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास, विश्वविद्यालय, लखनऊ, 226 017 (उ.प्र.)

सम्पर्क – 09415924888, 08052755512

Email : dr.virendrayadav@gmail.com

Email : virendra_kritika@rediffmail.com

Email : kritika_orai@rediffmail.com

Webside : www.kritika.org.in

सम्पादक

प्रो. हितेन्द्र मिश्र

हिन्दी विभाग

पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय,

शिलांग, मेघालय–793 022

दूरभाष – 09436594338

Email : hiten.hindi@gmail.com

प्रबन्धन एवं पत्राचार

अरविन्द शुक्ल

आराधना ब्रदर्स

(प्रकाशक एवं वितरक)

124 / 152–सी ब्लाक, गोविन्दनगर, कानपुर–208 006, उ.प्र.

दूरभाष – 09935007102

Email : aradhanabooks@rediffmail.com

Webside :www.kritika.org.in

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वर्ष :13, अंक : 24–25–26 (संयुक्तांक), जुलाई–2019 से दिसम्बर–2020

देश–देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की
अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 13 अंक : 24–25–26 (संयुक्तांक) जुलाई–2019 से दिसम्बर 2020

सामान्य अंक	:	60.00 रुपये	
इस अंक की सहयोग राशि	:	400.00 रुपये	
यू. एस. 25 $		यूरो 40 $	
व्यक्तिगत सदस्यों के लिये			
वार्षिक सदस्यता	:	300 रुपये	(डाक व्यय सहित)
पाँच वर्ष के लिये	:	3000 रुपये	(डाक व्यय सहित)
आजीवन	:	6500 रुपये	(डाक व्यय सहित)
संस्थाओं के लिये			
प्रति अंक	:	500 रुपये	(डाक व्यय सहित)
वार्षिक सदस्यता	:	1000 रुपये	(डाक व्यय सहित)
पाँच वर्ष के लिये	:	5000 रुपये	(डाक व्यय सहित)
आजीवन	:	10000 रुपये	(डाक व्यय सहित)

विषेष : सभी भुगतान नकद/आर.टी.जी.एस./बैंक ड्राफ्ट/चेक 'सम्पादक कृतिका' के नाम Payable at Lucknow भेजें। नकद जमा (R.T.G.S.) हेतु भारतीय स्टेट बैंक – मुख्य शाखा लखनऊ के A/C 30358537228 IFSC No. - SBIN0000125 में जमा कर सकते हैं। (नकद जमा हेतु बैंक कमीशन 50 रु. अतिरिक्त जमा करें।)

- ☞ विधिक वादों के लिये क्षेत्र, उरई न्यायालय के अधीन होंगे।
- ☞ कृतिका में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से सम्पादक मण्डल (कृतिका परिवार) की सहमति अनिवार्य नहीं है।
- ☞ शोध पत्रिका में प्रकाशित सामग्री के पुनर्प्रकाशन के लिये सम्पादक मंडल की लिखित अनुमति अनिवार्य है। कृतिका के सम्पादन, प्रकाशन व प्रबंधन से जुड़े समस्त पद अवैतनिक हैं।

प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव द्वारा महक कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिण्टर्स, 15, आजाद नगर, उरई (जालौन) से मुद्रित करवाकर 1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) से प्रकाशित।

सम्पादक–डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वर्ष :13, अंक : 24–25–26 (संयुक्तांक), जुलाई–2019 से दिसम्बर–2020

देश–देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की
अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 13 अंक : 24–25–26 (संयुक्तांक) जुलाई–2019 से दिसम्बर 2020

सह–सम्पादक

डॉ. रूपेश कुमार सिंह

हिन्दी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग एवं
सहायक निदेशक, हिन्दी शिक्षण अधिगम केन्द्र
महात्मा गाँधी अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय,
वर्धा (महाराष्ट्र) – 442001
Email : dr.roopeshsingh@gmail.com
Mob. : 0940454085, 9335866691

डॉ. मलखान सिंह

असि. प्रो., भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन केन्द्र
जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली–67
Email : malkhan1979@gmail.com

प्रधान सम्पादकीय कार्यालय

डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

303 तीसरा तल, टाईप फाइव, विश्वविद्यालय आवासीय परिसर
डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास, विश्वविद्यालय, लखनऊ, उ.प्र.–226017
सम्पर्क – 08052755512, 09415924888
Email : dr.virendrayadav@gmail.com • Email : virendra_kritika@rediffmail.com
Email : kritika_orai@rediffmail.com • http://kritika-shodh.blogspot.com
www.kritika.org.in

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वर्ष :13, अंक : 24–25–26 (संयुक्तांक), जुलाई–2019 से दिसम्बर–2020

कृतिका : एक परिचय

शोध एवं अनुसंधान गतिविधियों के एकीकृत अध्ययन के लिये युवा शोधार्थियों, अध्येताओं को शोध के नवीन अवसरों को उपलब्ध कराने हेतु कृतिका शोध पत्रिका की परिकल्पना की गई। यह एक अन्तर्राष्ट्रीय अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका है। कृतिका का सम्पादक मण्डल देश एवं विदेश के विभिन्न राज्यों के विषय विशेषज्ञों की सहभागिता के आधार पर कार्य कर रहा है। मानविकी एवं समाज विज्ञान में शोध के नवीन अवसरों की भागीरथी प्रवाहित करने के उद्देश्य से सहकारिता के आधार पर इस शोध पत्रिका का प्रचार सम्पूर्ण भारत के साथ–साथ सात समुन्दर पार यू. एस. ए., लंदन, आस्ट्रेलिया, जापान, जर्मनी, मॉरीशस आदि के शोध निर्देशक एवं शोधार्थियों का कृतिका में रचनात्मक सहयोग प्राप्त है।

कृतिका शोध पत्रिका का एक दूसरा उद्देश्य मानविकी एवं समाज विज्ञान के अलावा विषयों की सीमाओं से हटकर स्वतंत्र रूप से गहन एवं मौलिक शोध की प्रवृत्ति को बढ़ावा देना है ताकि शोध पत्र न केवल गम्भीर अध्येताओं के लिये उपयोगी हो; बल्कि यह जनसामान्य में नवीन जानकारी, शोध के प्रति उत्सुकता एवं जागरूकता का परिचायक भी सिद्ध हो। साथ ही यह व्यावहारिक धरातल पर उपयोगी भी हो। कृतिका में इन्हीं विचारों को दृष्टिगत रखते हुये साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान के विषयों के अलावा हम विज्ञान एवं अन्य विषयों के शोध पत्र भी आमंत्रित करते हैं। उत्तर आधुनिकता एवं भूमण्डलीकरण के इस दौर में वर्तमान की ज्वलंत समस्याओं से सम्बन्धित विषयों पर समय–समय पर कृतिका परिवार विषय–विशेष पर विशेषांक केन्द्रित अंक भी निकालता है जिसकी सूचना कृतिका शोध पत्रिका में एवं अलग से पत्रों के माध्यम से शोध अध्येताओं एवं जिज्ञासु युवा रचनाकर्मियों को समय–समय पर दी जायेगी।

सामान्य निर्देश

रचनाकारों/शोध अध्येताओं से विनम्र अनुरोध :

- ☞ कृतिका साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान का एक अर्द्धवार्षिक शोधपरक अनुष्ठान है जो युवा अध्येताओं, शोधार्थियों एवं खोजकर्ताओं का अपना मंच है। अपने मौलिक एवं नवीन अन्वेषणात्मक रचनाओं के सहयोग से इसे सम्बल प्रदान करें।
- ☞ मानविकी एवं समाज विज्ञान से सम्बन्धित सभी विषयों की मौलिक रचनायें विषय विशेषज्ञों की सहमति से ही इसमें प्रकाशित की जाती हैं।
- ☞ कृतिका में प्रकाशित शोध पत्र देश एवं विदेश के विषय विशेषज्ञों के पास चयन के लिए प्रेषित किये जाते हैं। इसलिये शोध पत्र/आलेख लिखते समय संदर्भों का स्पष्ट उल्लेख करें, पुस्तक का संदर्भ, पत्र–पत्रिका का संदर्भ, प्रकाशन, वर्ष एवं संस्करण का उल्लेख आवश्यक है। शोध पत्र/आलेख की शब्द सीमा दो हजार शब्दों से अधिक नहीं होनी चाहिये। यदि शब्द सीमा अधिक है तो सम्पादक मण्डल को उसमें संशोधन, संक्षिप्तीकरण का अधिकार सुरक्षित रहेगा।
- ☞ कृपया अपनी शोध रचनाएं एवं आलेख प्रेषित करते समय अपना संक्षिप्त आत्मवृत्त, छायाचित्र प्रेषित करें। रचना के शोध संक्षेप सार का उद्देश्य, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता एवम् उपयोगिता को अवश्य दर्शायें।
- ☞ कृतिका में पुस्तक समीक्षा के लिये चर्चित एवं महत्वपूर्ण पुस्तकों/पत्रिकाओं पर समीक्षात्मक आलेख आमंत्रित हैं। समीक्षात्मक आलेख के साथ पुस्तक/पत्रिका की दो प्रतियां रजिस्टर्ड डाक से प्रेषित करें।
- ☞ स्तरीय पुस्तक की समीक्षा के लिये समीक्ष्य पुस्तक की दो प्रतियों के साथ लेखक अपना संक्षिप्त आत्मवृत्त एवं छायाचित्र तथा पुस्तक का संक्षेपण पंजीयन डाक से सम्पादक के पते से प्रेषित करें। समीक्षा की स्थिति में शोध पत्रिका का अंक सम्बन्धित लेखक के पते पर भेजा जायेगा।
- ☞ किसी भी दशा में शोध पत्र/आलेख की प्रति वापस (स्वीकृति/अस्वीकृति की स्थिति में) नहीं प्रेषित की जा सकती है। इसलिये कृपया एक प्रति अपने पास सुरक्षित अवश्य रखें।
- ☞ कृतिका एक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका है। कृपया रचना प्रेषित करते समय यह भली–भाँति तय कर लें कि यह शोध पत्र/आलेख/रचना आपकी अपनी मौलिक कृति है। और कृतिका के मापदण्डों के अनुकूल है कि नहीं। कृतिका परिवार आपके नये अकादमिक सुझावों एवं प्रतिक्रियाओं का सदैव स्वागत करेगा।
- ☞ रचनायें कम्प्यूटर से मुद्रित अथवा कृति देव 10 में 14 फान्ट साइज में MS-Word Software में टाइप करके ई–मेल करें या साथ में सीडी एवं रचना का प्रिन्ट अवश्य भेजें। – संपादक कृतिका

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वर्ष :13, अंक : 24–25–26 (संयुक्तांक), जुलाई–2019 से दिसम्बर–2020

देश–देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की
अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

अनुक्रमणिका

शीर्षक	लेखक	पृ.सं.
सम्पादकीय.....		i-iii
समकालीन ज्वलंत प्रश्न		
1. अवसाद तथा उससे सम्बन्धित नकारात्मक तनाव : कॉलेजिएट एथलीट बनाम गैर–एथलीट	डॉ. राकेश कुमार तिवारी	1
2. मानवाधिकारों की मानवीय सुरक्षा में सार्थकता	डॉ0 अलका सक्सेना	7
3. मानवाधिकार की अवधारणा एवं वर्तमान संदर्भों में प्रासंगिकता	डॉ0 आनन्द कुमार खरे	13
समकालीन परिदृश्य में शिक्षा के बदलते सरोकार		
4. शिक्षा पर कोरोना वायरस का प्रभाव	डॉ. शिखा सक्सेना	19
5. आधुनिक परिप्रेक्ष्य में नई तालीम के निहितार्थ	शालिनी सिंह	23
6. विशिष्ट विद्यार्थियों के परिप्रेक्ष्य में अधिगम शैलियों का अनुप्रयोग	डॉ० अर्जुन प्रसाद	27
7. संस्कृत शिक्षण की व्यावहारिक समस्याएँ और समाधान	डॉ0 सवितुर प्रकाश गंगवार	33
8. भारत में शिक्षा व्यवस्था की समस्याएँ एवं समाधान	डॉ0 शशि त्रिपाठी	37
9. विधिक शिक्षा के समक्ष चुनौतियाँ एवं भावी संभावनाएँ	डॉ0 मिथलेश गुप्ता	43
10. भारतीय शिक्षा का विकास एवं समस्याएँ : एक समेकित दृष्टि	डॉ0 सुषमा पुरवार	47
11. समावेशी शिक्षा का प्रगतिशील समाज के सन्दर्भ में एक अवलोकन	ज्योत्सना कटियार	52
12. कोविड–19 के दौर में भारतीय शिक्षा के समक्ष चुनौतियाँ और समाधान के उपाय	डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव	58
धर्म, संस्कृति एवं कला की दशा एवं दिशा		
13. बौद्ध धर्म की वर्तमान में प्रासंगिकता (कोविड–19 के परिप्रेक्ष्य में)	डॉ0 संजू	63
14. चित्तवृत्तानां निरोधोपायाः	डॉ. पुष्पा यादव विद्यालंकार	71
15. मानवीय मूल्यों का उत्स संस्कृत वाङ्मय–एकानुशीलन	डॉ. अनिल कुमार सिन्हा	80
16. अवधी भाषा में लोक संस्कृति के विविध सरोकार	डॉ. सुशीला सिंह	85

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

17.	भारतीय संस्कृति के विकास में हिन्दी साहित्य की भूमिका	डॉ0 सुमन सिंह	92
18.	भोजपुरी लोकगीतों में पर्यावरणीय चेतना एवं संरक्षण	डॉ0 ज्योति सिन्हा	96
19.	भारतीय संस्कृति में तपोवन का स्वरूप	डॉ. पूजा श्रीवास्तव	109
20.	लोक संस्कृति साहित्य का सिनेमाई विमर्श : कही ईसुरी फाग	डॉ0 सियाराम	116
21.	वैदिक वाङ्मय में ज्ञान–मीमांसा	डॉ0 रामेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी	132
22.	वेदों में वर्णित शासन व्यवस्था की वर्तमान में उपादेयता	डॉ0 आशारानी पाण्डेय	139
23.	वैदिक युग में पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा	डॉ0 सुरेन्द्र कुमार सिंह	146
24.	कर्म क्या है ? : कर्म का विज्ञान	डॉ. पूजा दीक्षित	151

राष्ट्र के विकास में अग्रज पीढ़ी का योगदान

25.	भारतीय समाजवाद में लोहिया का योगदान	अरविंद कुमार	154
26.	दीनदयाल उपाध्याय का राजनीतिक चिन्तन	मन्जू सोनी	157
27.	विवेकानन्दचरितामृतम् महाकाव्य में राष्ट्रीय भावना	श्रीमती मिथलेश गंगवार	161
28.	कालिदास कृत काव्यों में अद्भुत रस स्थिति	डॉ. निरूपमा दीक्षित	166
29.	श्रृंगार के अनूठे उपासक विद्यापति	डॉ. सुजाता चतुर्वेदी	174
30.	क्या कबीर समाज सुधारक थे ?	डॉ. आदित्य कुमार मिश्र	180
31.	वर्तमान परिप्रेक्ष्य में डॉ. अम्बेडकर के चिन्तन का महत्व	डॉ0 अभिलाष सिंह यादव	183
32.	कोरोनाकाल में तथागत बुद्ध का नीतिशास्त्र	डॉ0 बृजेन्द्र सिंह बौद्ध	186
33.	जाति भेद पर डॉ0 बी0 आर0 अम्बेडकर के विचार	बलवन्त कुमार प्रजापति	194
34.	टैगोर और गांधी के शिक्षा सम्बन्धी विचार	डॉ0 कमलेश सिंह	200
35.	महाकौशल की क्षेत्रीय ऐतिहासिक व्यक्तित्व शौर्य, त्याग और ममता का आह्वान – सुभद्रा कुमारी चौहान	सत्येन्द्र कुमार शेन्डे	206
36.	भौतिकवादी चकाचौंध है मनुष्य की अधोगति का कारण – क्रांतिकारी संत तरुण सागर	डॉ. कमलेश कुमार जैन	209
37.	राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी जी और स्वाधीनता आंदोलन : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	डॉ. श्रीमती राजेश जैन	212

आधी दुनिया : कुछ अक्स, कुछ अन्देशे

38.	महिला सशक्तीकरण अभियान कितना सफल है?	डॉ. अन्शु केडिया	217
39.	हिन्दी सिनेमा में बदलते स्त्री – अस्मिता के प्रश्न	सोनम तोमर	222
40.	पंचायती राज के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं के सशक्तीकरण के प्रयास–संवैधानिक प्रावधान एवं वास्तविक स्थिति	डॉ0 अर्चना वर्मा	228
41.	पंचायती राज : महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता का सशक्त माध्यम	डॉ. अम्बिका प्रसाद मिश्रा	235
42.	स्त्री विमर्श : नारी अबला से सबला	डॉ0 शोभा रानी श्रीवास्तव	240

43.	भारत में महिला सशक्तिकरण के विविध आयाम	डॉ0 वर्षा राहुल	244
44.	महिलाओं को प्रदत्त संवैधानिक अधिकार	डॉ0 ममता गंगवार	250

साहित्य के समकालीन सरोकार

45.	स्वयंप्रकाश की कहानियों का भाषा शिल्प	नीलम शुक्ला	258
46.	प्रेमचंद के उपन्यास निर्मला में वर्णित नारी जीवन	डा० संगीता परेशान्ति संगा	263
47.	समसामयिक हिंदी कविता एवं समकालीन हिंदी कविता – एक दृष्टिकोण	डॉ. सुरेश कानडे	266
48.	शास्त्रीय भाषा ओड़िआ तथा पश्चिम ओड़िशा की बोली कोशली	डॉ. राकेश शर्मा	269
49.	'छप्पर' उपन्यास में निहित सामाजिक चेतना और समस्याएँ	डॉ. हरिजन गोपाल यामनप्पा	273
50.	हिन्दी आत्मकथाओं में किन्नर जीवन का यथार्थ (विशेष – सन्दर्भ 'पुरुष तन में फंसा मेरा नारी मन')	लक्ष्मी गोंड	275
51.	प्रियप्रवास में चित्रित युगीन परिदृश्य	डॉ. ममता गंगवार	280
52.	भोजपुरी, भाषा वैभव एवं साहित्य का अनुशीलन	डॉ0 रवीन्द्रनाथ यादव	285
53.	कविता और भाषा–कुँवर नारायण	डॉ0 आराधना सारवान	290
54.	प्रेम और कर्त्तव्यबोध की समरगाथा : 'उसने कहा था'	प्रो. हितेंद्र मिश्र	293
55.	शिवप्रसाद सिंह कृत ''शैलूष'' में अभिव्यक्त सामाजिक यथार्थ	निशी राघव	300
56.	गोपाल सिंह 'नेपाली' एवं रामधारी सिंह 'दिनकर' के काव्य में राष्ट्रीय भावना का तुलनात्मक अध्ययन	विनय कुमार झा	304
57.	छायावादी कवियों का बालसाहित्य सृजन	डॉ० सुरेन्द्र विक्रम	307
58.	संस्मरण विधा की उत्कृष्ट कृति : 'स्मृति के वातायन'	डॉ0 आशा वर्मा	317
59.	नागार्जुन के काव्य में लोक चेतना	अनिरूद्ध गोयल	322
60.	मुक्तिबोध का दलित चिन्तन	डॉ. दिलीप कुमार अवस्थी	326
61.	लोक चेतना और हिन्दी साहित्य	अविनाश कुमार सिंह	331
62.	पंडित महेन्द्र मिश्रजी का भोजपुरी साहित्य में योगदान	डॉ. अमित शुक्ल	337
63.	रागदरबारी की प्रासंगिकता	अर्चना	342
64.	कॉरपोरेट जगत का सच : एक ब्रेक के बाद	डॉ0 बीना गुप्ता	349
65.	आत्मिक पीड़ा की छटपटाहट व प्रताड़ना की आवाज तापसी	डॉ. हेमा देवरानी	358
66.	भोजपुरी लोक साहित्य में श्रमगीतों का महत्व	डॉ० रामअवध सिंह यादव	363
67.	"पानी के प्राचीर" में अभिचित्रित आर्थिक मूल्य	डॉ. (श्रीमती) प्रतिमा यादव निशा सिंह रघुवंशी	366
68.	डॉ. उषा यादव के उपन्यास 'अमावस की रात' में अंधविश्वास की शिकार नारी	प्रो. दत्तात्रय महादेव सालवे	370

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

हाशिए का विमर्श

69.	जनजातीय महिलाओं की स्थिति वर्तमान परिवेश में	डॉ. सविता मसीह	374
70.	ग्रामीण हरिजन महिलाओं की राजनैतिक स्थिति (कौशाम्बी जनपद पर आधारित एक समाज वैज्ञानिक अध्ययन)	डॉ0 मृत्युंजय सिंह	378

समकालीन वैश्विक परिदृश्य : चिन्तन–चिन्ता के विविध आयाम

71.	कोविड–19 : वैश्विक चुनौतियों में भारतीय दर्शन	डॉ0 ज्योति वर्मा	383
72.	भारतीय जैव विविधता का भौगोलिक दृष्टिकोण	डॉ. आभा शुक्ला	388
73.	वर्तमान सदी में अंतर्राष्ट्रीय राजनीति और भारत–एक मूल्यांकन	डॉ0 भावना यादव	393
74.	चरणबद्ध आत्मनिर्भरता : चीन के संदर्भ में	डॉ. प्रतिमा गंगवार	397
75.	यह दौर तो परिवर्तन का है !	डॉ0 नगमा खानम	400
76.	भ्रष्टाचार का मनोविज्ञान एवं इसके बदलते प्रतिमान	डॉ0 गीता यादव	406
77.	पर्यावरण समस्या एवं अर्थशास्त्र	प्रभाकर सिंह	412
78.	भारतीय सिनेमा की विकास यात्रा के सौ वर्ष : एक मूल्यांकन	डॉ० सीता जड़िया	415

पुस्तक समीक्षा

आतंकवाद के विनाशकारी खतरे	डॉ0 भावना यादव	417
आतंकवाद : कारण और निवारण	डॉ0 उत्तरा यादव	418
आतंकवाद और भारत	डॉ. सुरेश कानडे	419
आतंकवाद और समाज	प्रो0 दत्तात्रय मुरूमकर	420
आतंकवाद और हिन्दी साहित्य	डॉ0 शिवशंकर यादव	421
अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद	डॉ0 अनीता यादव	422

¼Ñfrdk 'kks/k if=dk dk vkxkeh fo'ks"kkad gsrq fuEufyf[kr fo"k; ij 'kks/k y[k vkeaf=r½

rhljh lÙkk dk foe'k ¼fdUuj foe'k½

v/kjh ftUnfx;k&fllldrh nkLrku

i:e[k fcUnq&

- थर्ड जेंडर का इतिहास : व्यथा, यातना और संघर्ष का नग्न यथार्थ।
- थर्ड जेंडर : अतीत एवं वर्तमान।
- थर्ड जेंडर का समाजशास्त्रीय विमर्श।
- थर्ड जेंडर : साहित्यिक विमर्श।
- उपन्यासों में थर्ड जेंडर की जीवन गाथा
- साहित्य की अन्य विधाओं में थर्ड जेंडर के विभिन्न धरातल
- थर्ड जेंडर : अस्मिता और संघर्ष।
- थर्ड जेंडर : वैश्विक परिदृश्य में।
- थर्ड जेंडर : राजनीतिक विमर्श।
- आत्मकथाओं में थर्ड जेंडर का यथार्थ।
- कहानियों में थर्ड जेंडर का रहस्यलोक।
- थर्ड जेंडर का सिनेमाई विमर्श।
- थर्ड जेंडर के लिए सरकारी, गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा किए जा रहे प्रयासों का योगदान।
- वैश्विक धरातल पर थर्ड जेंडर : संघर्ष और मुक्ति के अभिनव क्षितिज।
- इक्कीसवीं सदी में थर्ड जेंडर : अपूर्णता से पूर्णता का सफलतम सफरनामा।

◆ Ñlk;k mijkDrk fo"k;k ij viuk lkekftd Kku] vuHko dh lhekvksa dk /;ku esa j[krs g, 'kks/kiw.kZ] rF;ijd ,oa oSKkfud rdksZa ls ;Dr 'kks/k vkys[k@ys[k Hkstdj jpukRed lg;ksx nus dk d"V djsaA

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

सम्पादकीय....

आमतौर पर जब भी कोई प्राकृतिक संकट आता है तो कुछ देशों,राज्यों अथवा क्षेत्र विशेष तक ही सीमित रहता है लेकिन इस बार का संकट ऐसा है, जिसने विश्वभर की पूरी मानव जाति को संकट में डाल दिया है। इसलिए देश के प्रत्येक नागरिक को अब अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए कि कोरोना के आसन्न खतरे को हल्के में लेना किसी भी देश के लिए बेहद खतरनाक हो सकता है। दरअसल अभी तक वैज्ञानिक एवं स्वास्थ्य संगठन कोरोना की इस महामारी से बचने के लिए कोई निश्चित उपाय नहीं सुझा सके हैं और न ही इसकी कोई वैक्सीन बना पाये हैं। ऐसी स्थिति में दुनिया में कोरोना के गहराते खतरे को देखते हुए हर किसी की चिंता बढ़ना स्वाभाविक है क्योंकि भारत जैसे सवा अरब से भी अधिक आबादी वाले विकास के लिए प्रयत्नशील देश पर कोरोना का संकट कोई सामान्य बात नहीं है। कोरोना के इसी आसन्न खतरे को देखते हुए प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने अभी पाँच बार राष्ट्र के नाम अपने संदेश में देशवासियों से बचाव के लिए संयम का संकल्प लेने का आव्हान किया है और घरों से बाहर न निकलने की आम–खास और प्रवासी मजदूरों से अपील की है।

कोरोना को लेकर बहुत सारे लोगों के मन में अभी भी यह भय व्याप्त है कि कोरोना का संक्रमण होने के पश्चात् मौत निश्चित है लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है। अभी तक के आंकड़े देखें तो कोरोना संक्रमण के बाद भी दुनियाभर में हजारों मरीज ठीक हो चुके हैं। हाल ही में एम्स द्वारा मरीजों के लिए जारी जागरूकता दिशा–निर्देश पुस्तिका में स्पष्ट किया गया है कि कोरोना संक्रमित केवल बीस फीसदी मरीजों को ही अस्पताल में भर्ती करने की आवश्यकता पड़ती है, जिनमें से कुछ को गहन चिकित्सा निगरानी कक्ष में रखना पड़ता है जबकि अस्सी फीसदी मरीज घर में आइसोलेशन में रहकर खुद ही ठीक हो जाते हैं। एम्स द्वारा जारी इस पुस्तिका में बताया गया है कि लोगों को कोरोना को लेकर घबराने की नहीं बल्कि सतर्क रहने और भीड़–भाड़ से बचने तथा सरकार द्वारा जारी दिशा–निर्देशों को अपनाने की जरूरत है। एम्स विशेषज्ञों के मुताबिक जिन मरीजों को उच्च रक्तचाप, डायबिटीज, कैंसर जैसे रोग हैं, उन्हें कोरोना का खतरा ज्यादा रहता है। ऐसे मरीज भीड़–भाड़ से बचें और बार–बार हाथ धोते रहें। एम्स की जागरूकता दिशा–निर्देश पुस्तिका के अनुसार कोरोना वायरस फर्श अथवा जमीन पर कितने समय तक रहता है, इसका कोई निश्चित आंकड़ा नहीं है लेकिन कुछ अध्ययनों के अनुसार फर्श पर यह वायरस कुछ घंटों से लेकर कई दिनों तक जीवित रह सकता है, जो तापमान तथा परिस्थितियों और फर्श की प्रकृति पर निर्भर करता है। कोरोना से बचाव का सबसे बेहतर उपाय यही है कि साफ–सफाई पर विशेष ध्यान दें और भीड़भाड़ वाली जगहों के साथ–साथ अफवाहों से भी व्यापक दूरी बनाएं। लम्बे समय तक चलने वाली इस लाइलाज बीमार से बचने के लिए यदि हम सामाजिक दूरी नहीं बनाएंगे तो सदैव के लिए अपनों से दूर हो जाएंगे।

कोरोना वायरस की वजह से दुनियाभर में हुई मौतों का आंकड़ा लगातार बढ़ रहा है। लाखों की संख्या में मरीज इस वायरस की वजह से संक्रमित हैं। पूरे विश्व में कोरोना की इस महामारी,लाइलाज बीमारी को लेकर इस समय अलर्ट जारी है। कोरोना वायरस इस वक्त लगभग पूरी दुनिया में फैल चुका है। चीन के वुहान शहर से शुरू हुआ ये कोरोना वायरस अब विश्वभर के लिए गंभीर खतरा बन चुका है। भारत में भी तीन चरणों के लॉकडाउन के बाद चौथे चरण में प्रवेश के साथ कुछ शर्तों की छूट मिलने का आदेश सरकार की तरफ से दिया गया है। दुनियाभर में अब तक इस बीमारी से बड़ी संख्या में लोगों की जाने गई हैं। वहीं, पूरी दुनिया के इस बीमारी के संक्रमण को झेल रहे लोगों की संख्या भी लगातार बढ़ रही है। इस खतरनाक वायरस के बारे में अभी तक दुनियाभर के स्वास्थ्य अधिकारियों के सतर्क होने के बावजूद इसके बारे में सटीक जानकारी अब तक नहीं मिल

पायी है। अभी तक हालांकि स्पष्ट नहीं है कि यह कोरोना वाइरस कैसे अस्तित्व में आया। किए गए दावे एवं शोध में सामने आया है कि यह कोरोना वायरस सांपों से इंसान तक पहुँचा है। यह वायरस ऐनिमल्स से संबंधित है और मीट के होल सेल मार्केट, पोल्ट्री फर्म, साँप, चमगादड़ या फर्म एनिमल्स के जरिए ह्यूमन में आया है।

इस जानलेवा कोरोना वायरस को फैलने से रोकने के लिए जरूरी कदम उठाने की जरूरत है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने कुछ गाइड लाइंस भी दी हैं ताकि इस जानलेवा बीमारी को फैलने से रोका जा सके, बीमार मरीजों की सही तरीके से मॉनिटरिंग की जाए, रेस्पिरेटरी यानी सांस से जुड़ी बीमारी के लक्षण किसी में दिखें तो उससे दूर ही रहें, जिन देशों या जगहों पर इस बीमारी का प्रकोप फैला है वहां यात्रा करने से बचें, हाथों को अच्छी तरह से धोएं और हाथों की सफाई का पूरा ध्यान रखें खांसी या छींकते वक्त अपने मुंह और नाक को अच्छी तरह से ढंककर रखें, अपने हाथ और उंगलियों से आंख, नाक और मुंह को बार–बार न छूएं, पब्लिक प्लेस, पब्लिक ट्रांसपोर्ट में कुछ भी छूने या किसी से हाथ मिलाने से बचें। सोशल डिस्टेंसिग का पालन किया जाए।

वैसे तो इस बीमारी से लड़ने के लिए अब तक कोई वैक्सीन तैयार नहीं हुई है लेकिन अमेरिका के नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ हेल्थ के अधिकारियों ने कहा है कि कोरोना वायरस की वजह से फैली वायरल निमोनिया की इस बीमारी से लड़ने के लिए वैक्सीन बनायी जा रही है और इसका ह्यूमन ट्रायल यानी इंसानों पर ट्रायल भी शुरू हो गया है। इसके अलावा इसका इलाज सामान्य कोल्ड की बीमारी की तरह ही होता है जिसमें खूब सारा आराम करने की सलाह दी जाती है, फ्लूइड्स का ज्यादा सेवन करने को कहा जाता है और बुखार और गला खराब की दवा दी जाती है।एक बात का हमेशा ध्यान देना होगा कि किसी के घर में कोई लंबे समय से बीमार है तो उसे तुरंत डॉक्टर के पास लेकर जाना होगा। इस बीमारी में जरा सी भी लापरवाही व्यक्ति को मौत के करीब ला सकती है। इसलिए साफ–सफाई का पूरा ध्यान रखें और बहुत जरूरी ना होने पर घर से बाहर ना निकलें।

भारत में इसके रोकथाम के लिये सभी गैर आवश्यक कार्य रोक दिये गये हैं, और लोगों को अपने घरों में रहने के निर्देश दिये गये हैं। वर्तमान में बचाव ही इसका इलाज है। इसी को देखते हुए भारत सरकार ने पूरे देश में 25 मार्च 2020 से 31 जुलाई 2020 तक कई बार लॉकडाउन की घोषणा की है। भारत में चौदह लाख से अधिक लोग संक्रमित हैं। अभी 15 जुलाई 2020 तक भारत में चौबीस हजार से अधिक लोगों की कोरोना के कारण मौत हुई है। कोरोना महामारी से बचाव के लिए इसके पहले चीन ने इस महामारी बीमारी को रोकने के लिये हुबेई प्रांत के वुहान में 76 दिनों की बंदी रखी गई थी। कोरोना के कारण अमेरिका को सबसे अधिक नुकसान का सामना करना पड़ा। अभी तक 15 जुलाई 2020 तक अमेरिका में 85 हजार लोगों की कोरोना के कारण मौत हुई है। और चौदह लाख से अधिक लोग संक्रमित हैं। इस कोरोना वायरस के कारण दुनिया की महाशक्ति अमेरिका को पूरी तरह से लॉक डॉउन करना पड़ा है। अमेरिका के राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने यहाँ तक कहा है कि कोरोना अमेरिका पर पर्ल हार्बर और 9/11 के आतंकी हमले से बड़ा संकट का समय है।

भारत में कोरोना वायरस के बारे में मौजूदा स्थिति की बात की जाए तो राज्य सरकारें अपनी तरफ से हर कोशिश कर रही हैं। पूरे देश में निषेधाज्ञा जारी की गयी है। सार्वजनिक स्थलों पर पांच से अधिक लोगों के इकट्ठा होने पर प्रतिबंध लगाया गया है। राज्य सरकारों ने भी जुआ घरों, स्विमिंग पूल और पबों और सिनेमाघरों को बंद करने की घोषणा की है।

देश की सभी शिक्षण संस्थाएँ एवं विश्वविद्यालय एहतियात के तौर पर 31 जुलाई 2020 तक बंद कर दी गयी हैं। उप्र सरकार ने सभी सम्मेलन, कार्यशालाएँ, शैक्षणिक टूर और खेल कार्यक्रम को 31 जुलाई 2020 तक स्थगित कर दिए हैं। हालाँकि, विश्वविद्यालय और स्कूलों में परीक्षाएँ विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के तय कार्यक्रम के मुताबिक होंगी।

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने दावा किया है कि कोरोना वायरस की महामारी वाली इस बीमारी से संक्रमित व्यक्ति के खांसने या छींकने से निकले थूक के बेहद बारीक कण हवा में फैल जाते हैं। इन कणों में कोरोना वायरस के विषाणु होते हैं। संक्रमित व्यक्ति के नजदीक जाने पर ये विषाणु युक्त कण सांस के रास्ते उसके शरीर में प्रवेश कर सकते हैं। मनुष्य के फेफड़े शरीर में वो जगह हैं जहाँ से ऑक्सीजन शरीर में पहुँचना शुरू होता है जबकि कार्बन डाई ऑक्साइड शरीर के बाहर निकलता है। लेकिन कोरोना के बनाए छोटे–छोटे एयरसैक में पानी जमने लगता है और इस कारण मरीज को सांस लेने में तकलीफ होती है और वह लंबी सांस नहीं ले पाता है। ऐसे में मरीज को वेन्टिलेटर की जरूरत पड़ती है। कई बार इस बात को लेकर गंभीरता से न लेने पर मौत भी हो सकती है।

अभी तक कोरोना वायरस से बचाव का वैक्सीन नहीं बना है लेकिन लगभग पूरे विश्व के डॉक्टर्स अनवरत शोध कर रहे हैं। और उम्मीद की जा रही है कि जल्द ही इसका वैक्सीन बनकर तैयार हो जाएगा।

स्वास्थ्य विशेषज्ञों का मानना है कि कोरोना वायरस बीमारी से खुद को बचाने के लिए हाइजीन का पूरा ख्याल रखें। इसके साथ ही विश्व स्वास्थ्य संगंठन ने कुछ बचाव के उपाय बताए हैं। जिन्हें अपनाकर कोई भी देश, समाज, संस्था और व्यक्ति कोरोना वायरस का रोकथाम कर सकता है।

1. कोरोना वायरस संक्रमण से बचने के लिए अपने हाथों को सैनिटाइजर या फिर हैंडवॉश और पानी से कम से कम 20 सेकंड तक धोएं।
2. कोरोना वायरस के रोकथाम के लिए जब आप बाहर से घर वापस आए तो सबसे पहले अपने हाथ धोएं।
3. अगर आप बाहर है तो सैनिटाइजर का यूज करें।
4. खांसी या जुकाम है तो मास्क पहनें। इसके साथ ही छींक आते समय टिशू से मुंह को ढक लें। जिससे कोई दूसरा व्यक्ति इससे संक्रमित न हो।
5. उपयोग की गई टिशू को तुंरत डस्टबीन में डाल दें और अपने हाथ को धो लें।
6. खांसी या जुकाम वाले व्यक्ति से बातें करते या मिलते समय उससे करीब 1 मीटर यानी 3 फिट की दूसरी बनाकर रखें।
7. डब्लू0एच0ओ0 के अनुसार आप किसी जगह को छूते है तो हो सकता है कि उसमें वह वायरस हो। इसलिए नाक, आंख और मुँह को न छुएं।
8. अस्पताल में भी ऐसे वार्ड्स की तरफ न जाएं जहां कोरोना वायरस के मरीज हों, अगर अस्पताल या क्लीनिक में काम करते हैं तो मास्क जरूर लगाएं।
9. ज्यादा प्रॉब्लम हो रही है तो घर पर रहें। इसके अलावा अगर आपको बुखार, खांसी , जुकाम हो या फिर सांस लेने में समस्या हो रही है तो तुरंत डॉक्टर से सपंर्क करें।
10. कोरोना वायरस से बचान करना चाहते हैं तो अच्छी तरह से पका हुआ खाना ही खाएँ।

इसके अलावा अन्य विशेषज्ञों ने कोरोना वायरस के खतरे के मद्देनजर इससे बचने के लिए अपने शरीर की इम्यूनिटी को कैसे बढ़ाया जाए जिससे इस वायरस से बचा जा सके। इसके बारे में जानकारियां दी हैं। योग गुरू बाबा रामदेव ने कहा कि इम्युनिटी को बढ़ाने के लिए प्राणायाम सबसे उपयुक्त विधा है। इसके साथ ही विटामिन सी का सेवन नींबू के रस,ताजा पुदीन हरा और ऑवले का सेवन भी इसमें सहायक हो सकता है।

कोरोना वायरस बीमारी के बारे में कई भ्रम फैले हुए है। कई लोगों का मानना था कि अल्कोहाल पीने से वायरस दूर रहते हैं। इतना ही नहीं कई लोगों से लहसुन को वायरस खत्म करने की दवा तो कई लोगों का मानना है कि पालतू जानवरों से भी कोरोना वायरस हो जाता है। इसी चलते विश्व स्वास्थ्य संगठन से इन भ्रमों को दूर करने के लिए एक रिपोर्ट जारी की। डॉ0 हितेश वर्मा के अनुसार जिन लोगों को फ्लू वाला इंफेक्शन है, उन्हें ये

मास्क लेना जरूरी है। जिससे दूसरे को यह संक्रमन है। इसके साथ ही हाथ धोना जरूरी है। इसके लिए सैनिटाइजर का इस्तेमाल करना जरूरी नहीं है। वहीं डॉ0 विकास का कहना है कि हर आम आदमी को मास्क लगाना जरूरी नहीं है। डॉक्टर एम वली और डॉक्टर हर्ष महाजन के अनुसार कोरोना वायरस गर्मी में खत्म होगा ऐसा जरूरी नहीं है। भारत सहित कई देशों में गर्मी होने के बावजूद वहाँ पर संक्रमण फैला हुआ है। ऐसे में ये कहना उचित नहीं होगा कि गर्मी से ये वायरस खत्म हो जाता है।

नोवेल कोरोना श्वसन संबंधी रोग है और कोरोना वायरस को 75 प्रतिशत अल्कोहल छिड़कने तथा उससे साफ करने से ही मारा जा सकता है। शराब पीकर नहीं। आज के समय में सोशल मीडिया पर फैलती अफवाहों पर तत्काल प्रभाव से अंकुश लगाए जाने की सख्त जरूरत है। कई बार गलत सूचनाओं के कारण समाज में दहशत का माहौल भी बन जाता है। प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि देश को कोरोना के बड़े खतरे से बचाने के लिए ऐसी अफवाहों से बचते हुए केवल सरकार तथा विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा जारी दिशा–निर्देशों का ही पालन किया जाए। अच्छा होगा, अगर कोरोना को लेकर बिना तथ्यों का विश्लेषण करने से बेहतर है कि वह इस सोशल मीडिया प्लेटफार्म का लोगों को जागरूक करने के लिए उपयोग में लाएँ। इसके साथ ही इस वैश्विक महामारी कोरोना के रोकथाम में सरकार के साथ ही आम आदमी की भी महत्वपूर्ण भूमिका है।

– सम्पादक मण्डल

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

अवसाद तथा उससे सम्बन्धित नकारात्मक तनाव : कॉलेजिएट एथलीट बनाम गैर–एथलीट

डॉ. राकेश कुमार तिवारी
राजकीय महाविद्यालय, उन्नाव (उ0प्र0)

सार – महाविद्यालय के छात्रों के बीच अवसाद एक प्रमुख चिकित्सीय चिंता है, और हाल ही में एथलेटिक से संबंधित चोटों का आकलन करने और उनका इलाज करने में एक महत्वपूर्ण घटक बन गया है। इस साहित्य समीक्षा का उद्देश्य वर्तमान साहित्य का मूल्यांकन करना है कि क्या एथलीटों या गैर–एथलीटों ने अधिक अवसाद के लक्षणों का अनुभव किया, और नकारात्मक तनाव वाले व्यक्ति अवसाद का कारण बनते हैं। वर्तमान शोध यह दर्शाता है कि छात्र–एथलीट संयोजन के कारण अपने गैर–एथलीट साथियों की तुलना में अधिक मनोवैज्ञानिक समस्याओं (चिंता, प्रतियोगिता में असफलता, नींद की कमी, शराब का उपयोग और दुरुपयोग, अव्यवस्थित भोजन, ओवरट्रेनिंग, और थकावट की भावनाओं) से ग्रस्त हैं। एक गंभीर चोट के बाद महिला एथलीटों और एथलीटों में अवसाद का स्तर काफी अधिक था, फिर भी गैर एथलीटों की तुलना में कुल मिलाकर एथलीटों में अवसाद की घटना कम थी।

परिचय – कॉलेज बाकी के वयस्क जीवन को रणनीतिक बनाने के लिए चार साल का समय है। ये चार साल सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रभावों से भरे हुए हैं, जिन्हें छात्रों को एक वांछित पेशे की तैयारी के लिए डिग्री प्राप्त करते समय सामना करना चाहिए। दुर्भाग्य से, मानसिक विकार अक्सर छात्र पर रखे जाने वाले तनाव की मात्रा के जवाब में विकसित होते हैं, और उस तनाव को ठीक से सामना करने में असमर्थता उत्पन्न करते हैं। अवसादग्रस्तता विकार सबसे अधिक प्रचलित मनोवैज्ञानिक विकार है। लगभग 17.7% आबादी अपने जीवन में एक अवधि में इस स्थिति का अधिग्रहण करती है, और अवसाद एथलेटिक्स (हैमोंड, गॉलोरेटो, कुबास, और डेविस, 2013य यांग एट अल, 2007) में भागीदारी के बाद एक विकलांग जीवन का प्रमुख कारण है। ।

एथलेटिक्स में भागीदारी से काफी हद तक तनाव बढ़ सकता है। कॉलेजिएट एथलीट के जीवन में कुछ तनाव प्रकृति में शारीरिक और मनोवैज्ञानिक है और इसमें शामिल हैं – शिक्षाविदों का प्रबंधन करना, स्वास्थ्य को बनाए रखना, चोट से उबरना, सफलता का मुकाबला करना, प्रदर्शन की उम्मीदों, चिंता, प्रतिस्पर्धा में विफलता, शराब का उपयोग और दुरुपयोग, अव्यवस्थित भोजन, ओवरट्रेनिंग, नींद की कमी, और थकावट की भावना (आर्मस्ट्रांग एंड ओमेन–अर्ली, 2009य हैमंड एट अल, 2013)। यदि यह तनाव नकारात्मक है, तो यह अवसाद के लक्षणों के विकास को जन्म दे सकता है, जिसमें शामिल हैं – प्रेरणा में कमी, एक बार सुखद गतिविधियों में रुचि कम होना (एनहेडोनिया), कम ऊर्जा, आनंद की हानि, बिगड़ती एकाग्रता, नींद में बदलाव / भूख, और मूल्यहीनता और निराशा की भावना (APA, 2000)।

डिप्रेशन कॉलेज परिसरों (आर्मस्ट्रांग और ओमेन–अर्ली, 2009) में एक प्रमुख चिकित्सीय चिंता है। एथलेटिक्स के साथ भागीदारी, एथलेटिक चोटों के साथ, छात्र–एथलीटों के जीवन में नकारात्मक तनाव को तेज करता है। इन अतिरिक्त नकारात्मक तनावों से कॉलेजिएट एथलीट में अवसाद के लक्षणों के विकास का खतरा बढ़ जाता है, जो कॉलेजिएट गैर–एथलीटों की तुलना में होता है। कॉलेजिएट एथलीटों की इस मनोदशा विकार को विकसित करने की एक उच्च प्रवृत्ति है, जो कि शिक्षाविदों और एथलेटिक्स (प्रॉक्टर एंड बान–लेनोजो, 2010) के संयोजन के कारण उन्हें दैनिक रूप से प्रभावित करने वाले नकारात्मक तनावों के कारण है।

मनोवैज्ञानिक सामर्थ्य और मानसिक विकार दोनों ही सार्वजनिक और वैज्ञानिक रुचि बढ़ाने के विषय बन गए हैं, लेकिन पहले से एकत्र किए गए आंकड़े इस संदर्भ में त्रुटिपूर्ण है। (निक्सडॉर्फ, हौत्जिंगर, और बेकमैन, 2013य वीगैंड, कोहेन, मेरेंस्टीन, 2013)। इसलिए, दोनों आबादी की मनोवैज्ञानिक भलाई की देखभाल में बेहतर सहायता के लिए गैर–एथलीटों के लिए कॉलेजिएट छात्र–एथलीटों की तुलना में अधिक शोध किए जाने की आवश्यकता है। इस शोध पत्र का उद्देश्य कॉलेज के छात्रों और कॉलेज के छात्र–एथलीटों के बीच अवसाद पर वर्तमान साहित्य की समीक्षा करना है।

समस्या का आधार – डिप्रेशन एक मानसिक विकार है जो कोलेजिएट एथलीटों और गैर–एथलीटों दोनों को प्रभावित करने की क्षमता रखता है। हालाँकि, यह मानसिक तनाव के कारण होने वाली बीमारियों के साथ–साथ, इस मानसिक बीमारी को समझने और उपचार करने के लिए प्रशिक्षण की कमी के साथ खेल में आमतौर पर बचा हुआ विषय है (वीगंड एट अल, 2013)। इस शोध का उद्देश्य यह निर्धारित करना है कि क्या एथलीट या गैर–एथलीट अधिक अवसाद के लक्षणों का अनुभव करते हैं, और अवसाद को जन्म देने वाले नकारात्मक तनावों की पहचान करते हैं।

एटिऑलॉजिकल जानकारी – अवसाद एक गंभीर रूप से अक्षम मानसिक बीमारी हो सकती है जो खतरनाक लक्षणों के साथ प्रस्तुत होती है जो दैनिक जीवन की गतिविधियों में हस्तक्षेप करती है। इन लक्षणों में शामिल हैं, लेकिन यहाँ तक सीमित नहीं है– उदासी, क्रोध, और एनाडोनिया (एपीए, 2000य वीग, एट अल, 2013)। अवसाद के सामान्य कारणों में शामिल हैं– मस्तिष्क रसायन विज्ञान, व्यक्तित्व चर, सामाजिक संबंध, संज्ञानात्मक प्रक्रिया और व्यवहार पैटर्न (Nieuwsma & Pepper, 2010)। मानसिक बीमारियों के विकास के लिए एटियलॉजिकल स्पष्टीकरण की दो श्रेणियां जैविक और मनोसामाजिक हैं। जैविक स्पष्टीकरण में आनुवांशिकी और न्यूरोट्रांसमीटर सांद्रता शामिल हैं, और मनोसामाजिक श्रेणी व्यक्ति के पिछले अनुभव, संबंधों, वर्तमान स्थिति, विचारों, भावनाओं और व्यवहार (Nieuwsma & Pepper, 2010) को संदर्भित करती है।

इलाज – संज्ञानात्मक व्यवहार तनाव प्रबंधन (CBSM) भारी व्यायाम प्रशिक्षण (Perna] Antoni] Baum] Gordon] & Schneiderman, 2003) के कारण थकान, अवसाद और कोर्टिसोल के स्तर को कम करने में एक प्रसिद्ध उपचार है। उपचार के समान, सीबीएसएम का उपयोग अवसाद के साथ–साथ आर्थोपेडिक सर्जरी स्वास्थ्य लाभ के लिए किया जाता है। दोनों उदाहरणों में, प्रतिभागियों को बीमारी और चोट दरों में महत्वपूर्ण गिरावट आती है। संज्ञानात्मक व्यवहार, तनाव प्रबंधन व्यवहार और मनोवैज्ञानिक दोनों प्रभावों को बदल देता है, जिससे कंकाल की मांसपेशियों के स्वास्थ्य लाभ में तेजी आती है और एथलीट के खेल में भाग लेने में असमर्थ होने की अवधि कम हो जाती है। पर्ना एट अल। (2003) में पाया गया कि कोर्टिसोल का स्तर हस्तक्षेप–प्रेरित प्रभावों से प्रभावित नहीं होता है, बल्कि नकारात्मक प्रभावों से प्रभावित होता है, जिससे बीमारी और चोट की दर कम हो जाती है।

Perna et al 2003 द्वारा एथलीटों के अवसाद के इलाज के रूप में संज्ञानात्मक व्यवहार तनाव प्रबंधन की योग्यता को जोड़ा गया। मैडिसन एंड प्रपावसिस (2005) ने पाया कि सीबीएसएम तरीका जोखिम वाले मनोवैज्ञानिक प्रोफाइल के साथ एथलेटिक चोटों की संख्या को कम करने में सफल है। इन प्रोफाइल में अवसाद, चिंता और अन्य मनोवैज्ञानिक विकार शामिल हैं जो अक्सर कॉलेज परिसर में पाए जाते हैं।

अवसाद के इलाज के लिए अन्य सामान्य तरीकों में संज्ञानात्मक–व्यवहार थेरेपी (सीबीटी) और इंटर पर्सनल थेरेपी (आईपीटी) शामिल हैं। ये दोनों साक्ष्य–आधारित उपचार (ईबीटी) माने जाते हैं। संज्ञानात्मक– आधारित चिकित्सा उन परिस्थितियों में उपयोगी अनुप्रयोग कौशल सीखने के लिए व्यक्तिगत रूप से सहायता करके काम करती है, जहां वे अपने दम पर होंगे (लस्क एंड मेलनीक, 2013)। कुल मिलाकर, संज्ञानात्मक व्यवहार थेरेपी रोगियों को एक सुरक्षित वातावरण में पहचानने, मूल्यांकन करने और उनके मनोवैज्ञानिक रूप से शिथिल विचारों

पर प्रतिक्रिया करने के लिए निर्देश देती है, जिनका बाद में उपयोग किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, डीप ब्रीदिंग सीबीटी में सिखाए गए एक कोपिंग स्किल एक तरीके के रूप में सिखाया जाता है, जब डिप्रेशन के लक्षणों को दूर किया जाता है। लुस्क एट अल। (2013) में पाया गया कि सीबीटी किशोरावस्था में अवसाद और चिंता के इलाज में एक बहुत ही सरल और सफल दृष्टिकोण है।

इंटरपर्सनल थेरेपी (IPT) मरीज को दिखाने वाले एक चिकित्सक को केंद्रित करता है, जो वास्तव में आत्म–दोष, निराशा और निर्भरता की अपनी अवसाद भावनाओं को वास्तविकता के आधार पर रोग के कारण उत्पन्न करता है (बर्नएकर, कॉन्स्टेंटिनो, पाजाग्लिया, रेविट्ज और मकै ब्राइड) , 2014)। रोगी कार्यशीलता में सुधार के रूप में दिखाया गया था एक बार आईपीटी से पारस्परिक और संज्ञानात्मक रूप से दोनों को उजागर किया गया था, और रोगियों को भी एक कम रंजक समायोजन का अनुभव हुआ। अल्पसंख्यकों, विशेष रूप से अफ्रीकी अमेरिकियों को अवसाद के लिए आईपीटी उपचार के लिए प्रभावी ढंग से प्रतिक्रिया करने के लिए दिखाया गया है (कालीबात्सेवा और लेओंग, 2014)।

एथलीटों के लिए विशिष्ट, जिस तरह से उपचार के तरीकों को पेशेवरों द्वारा नियंत्रित किया जाता है, वह रोगी की एथलेटिक मानसिकता (मैनियर, करी, सोमरस–फ्लैगन, और वॉल्श, 2001) के कारण काफी भिन्न हो सकता है। एक एथलीट की जीवन शैली एक गैर–एथलीट से भिन्न होती है। उदाहरण के लिए, एक एथलीट को अवसाद के उपचार के लिए अधिक अनुकूल दिखाया गया है यदि उन्हें 'प्रदर्शन बढ़ाने वाले विशेषज्ञ' जैसे – शीर्षक के साथ एक खेल मनोवैज्ञानिक के पास भेजा जाता है। इसके अलावा, उपचार जो समझने में आसान हैं और बेहतर ढंग से समझाया गया है, और एक मनोवैज्ञानिक जो एथलेटिक जीवनशैली के प्रति संवेदनशील है, सकारात्मक परिणाम प्रदान करेगा।

निवारण – अवसाद को रोकने में सहायता के लिए दो दृष्टिकोण दिखाए गए है – जनसंख्या दृष्टिकोण और उच्च जोखिम वाला दृष्टिकोण (हार्डी, 2013)। जनसंख्या दृष्टिकोण पूरी आबादी को प्रभावित करने वाले जोखिम कारकों पर ध्यान केंद्रित करता है, जबकि उच्च जोखिम वाला दृष्टिकोण विकासशील अवसाद के उच्च जोखिम वाले व्यक्तियों की पहचान करता है और उनका इलाज करता है। यह दिखाया गया है कि मधुमेह वाले और कोरोनरी हृदय रोग वाले लोग अवसाद के शिकार होने के लिए उच्च जोखिम में हैं। रोगी की कार्यक्षमता और जीवन की समग्र गुणवत्ता पर स्थिति के प्रभाव को कम करने के लिए और रोकथाम के लिए उपाय बनाया जाएगा। अत्यधिक प्रभावित होने के कारण ये रोग, प्रभावित रोगियों के जीवन पर होते हैं। अवसाद के इलाज के लिए दिन–ब–दिन विकार के साथ रहने और शारीरिक रोग का मुकाबला करने पर ध्यान केंद्रित किया जाता है।

व्यायाम भी अवसाद के लक्षणों के गठन को रोकने या कम करने की एक स्थापित विधि है। अवधि और तीव्रता के बजाय व्यायाम की आवृत्ति, सकारात्मक मनोदशा परिणामों को बढ़ाने में ध्यान केंद्रित होना चाहिए (क्राफ्ट और पर्ना, 2004)। व्यायाम एक प्रभावी एंटीडिप्रेसेंट है, भले ही क्लिनिक–आधारित या घर–आधारित व्यायाम विधि योजना कार्यान्वयन (क्राफ्ट, फ्रायंड, कुल्पेपर, और पर्ना, 2007)।

लिंग भेद – कुल मिलाकर, महिला एथलीटों में उच्च अवसाद स्कोर होता है, जब पुरुष एथलीटों और गैर–एथलीटों दोनों के साथ तुलना की जाती है (Appaneal, Levine, Perna, & Roh, 2009; NiÛdorf et alA, 2013; Storch, Storch, Killyy, & Roberti, 2005)। यह भी चोट की स्थिति की परवाह किए बिना महिलाओं और अवसाद स्कोर का सच है। महिला एथलीटों ने सामाजिक चिंता और अवसाद के लक्षणों के उपायों पर अधिक औसत स्कोर की सूचना दी, लेकिन पुरुष एथलीटों और पुरुष और महिला गैर–एथलीटों (स्टोर्च एट अल।, 2005) के विपरीत सामाजिक समर्थन के स्तर पर कम औसत स्कोर। डिशमैन के अनुसार, एट अल। (2006), शारीरिक गतिविधि और खेल में भागीदारी से किशोर लड़कियों में अवसाद का खतरा कम हो सकता है। इस प्रकार, उपरोक्त परिणामों की व्याख्या करना। शारीरिक गतिविधि शारीरिक आत्म–अवधारणा पर

सकारात्मक प्रभाव पैदा करती है, फिटनेस से अलग, बॉडी मास इंडेक्स और खेल क्षमता, शरीर में वसा और उपस्थिति की धारणा (डिसमैन एट अल।, 2006)।

कॉलेजिएट छात्र–एथलीट – कॉलेज में दाखिला लेते समय प्रतिस्पर्धी एथलेटिक्स में शामिल होने के प्रचुर लाभ हैं। इन सकारात्मक लाभों में बेहतर आत्मसम्मान और समग्र सामान्य मानसिक स्वास्थ्य की भावनाएं शामिल हैं (प्रॉक्टर एंड बोआन–लेनोजो, 2010)। इसके अलावा, एथलीटों को सामाजिक चिंता, विक्षिप्तता और तनाव के स्तर में कमी दिखाई गई है। अतिरिक्त लाभों में शैक्षणिक सहायता सेवाओं की पहुंच और चिकित्सा देखभाल के कुछ रूप शामिल हैं। विशेष रूप से, क्रॉस–अनुभागीय अध्ययन से पता चलता है कि जो लोग शारीरिक रूप से सक्रिय है, वे अवसाद से पीड़ित होने की तुलना में 3 गुना कम है, निष्क्रिय व्यक्ति से इस निष्कर्ष पर पहुंचा जाता है कि अवसादग्रस्तता लक्षण शारीरिक गतिविधि (आर्मस्ट्रांग और ओमेन–अर्ली, 2009) के बढ़ते स्तर के साथ घटते है।

मनोवैज्ञानिक रूप से कहें तो व्यायाम में वृद्धि से मस्तिष्क में सेरोटोनिन का स्तर बढ़ता है, इसलिए व्यक्ति के समग्र मूड में वृद्धि होती है। एथलेटिक भागीदारी भी रिलीज के लिए एक तत्काल आउटलेट प्रदान करती है, जो एक तनावपूर्ण दिन / सप्ताह के बाद उपयोगी होती है (प्रॉक्टर एंड बोआन–लेनोजो, 2010)। इसके अतिरिक्त, गैर–एथलीटों की तुलना में एक संरचित टीम के एथलीटों के पास बहुत अधिक आसानी से उपलब्ध सामाजिक समर्थन नेटवर्क है। इसके अलावा, एक इंटरकॉलेजिएट खेल टीम में एथलेटिक भागीदारी सीधे अवसाद के निचले स्तर से संबंधित है (प्रॉक्टर एंड बोआन–लेनोजो, 2010)।

हालांकि, एथलेटिक्स के साथ संयुक्त शिक्षाविदों की मांग हो सकती है, और अक्सर भावनात्मक तनाव के साथ होते हैं। कोलेजिएट एथलीट के जीवन के कुछ तनावों में शामिल हैं– शिक्षाविदों का प्रबंधन करना, स्वास्थ्य बनाए रखना, चोट से उबरना, सफलता से मुकाबला करना, प्रदर्शन की उम्मीदों, चिंता, प्रतिस्पर्धा में विफलता, शराब का उपयोग और दुरुपयोग, अव्यवस्थित भोजन, ओवर ट्रेनिंग, नींद की कमी और भावनाओं की देखभाल। थकावट (आर्मस्ट्रांग और ओमेन–अर्ली, 2009य हैमंड एट अल।, 2013)। ये सभी परिस्थितियां हैं जो कॉलेजिएट स्तर पर प्रतिस्पर्धा करने वाले एथलीटों का सामना करेंगी, और उम्मीद है कि इससे उबरने में सक्षम होंगी। यदि यह तनाव नकारात्मक है, तो यह अवसाद के लक्षणों के विकास को जन्म दे सकता है। कोलेजिएट एथलीट में अवसाद के लक्षणों के विकास में एक बड़ी भूमिका निभाने के लिए चोट लगने को दिखाया गया है। लगभग 40%–50% कॉलेजिएट एथलीट कम से कम एक एथलेटिक चोट को बनाए रखते हैं जिसके परिणामस्वरूप उनकी पात्रता के वर्षों के दौरान एक या अधिक सत्र हानि होती है। एथलेटिक चोट के बाद किसी की टीम से अलगाव अतिरिक्त नकारात्मक तनावों को जोड़ता है, जैसे कि मनोवैज्ञानिक अशांति जो क्रोध, अवसाद, चिंता या आत्म–सम्मान में कमी (यांग एट अल।, 2007) को बढ़ा सकती है।

हालांकि शोध से पता चलता है कि मानसिक स्वास्थ्य के लिए खेल और व्यायाम में भागीदारी सकारात्मक हो सकती है (क्राफ्ट एट अल।, 2008य क्राफ्ट एंड पर्ना, 2004य डिशमैन एट अल।, 2006), लगभग 50% संभावना है कि कोई घायल हो सकता है, और। एक बार चोट लगने के बाद अवसाद के लक्षणों के बढ़ने की अधिक संभावना होती है (Appaneal et alA, 2009य Newcomer & Penna, 2003य Roh & Perna, 2000य ; kax et alA, 2009)। इसके अलावा, चोट जितनी अधिक गंभीर होती है अवसाद के स्तर उतने अधिक होते है लंबे समय तक अवसादग्रस्तता (रोह और पर्ना, 2000)।

प्रॉक्टर और बोअन–लेनोजो (2010) ने एथलीटों की तुलना में गैर–एथलीटों में इंटरकॉलेजिएट में अवसाद के लक्षणों की व्यापकता की सूचना दी। एकत्र किए गए आंकड़ों से एथलीटों के प्रमुख अवसादग्रस्तता विकार विकसित करने का 15.6% और गैर–एथलीटों के लिए 29.4% जोखिम का पता चला। इसके विपरीत, आर्मस्ट्रांग और ओमेन–अर्ली (2009) ने निष्कर्ष निकाला कि एथलीटों में आत्म–सम्मान और

सामाजिक जुड़ाव का स्तर काफी अधिक था, साथ ही निचले स्तर गैर–एथलीटों की तुलना में अवसाद। सांख्यिकीय रूप से, अवसाद के सबसे मजबूत भविष्य वक्ता लिंग, आत्म–सम्मान, सामाजिक जुड़ाव और नींद थे। रोह और पर्ना के (2000) साक्ष्यों से पता चलता है कि अवसादग्रस्तता संकट का एथलेटिक्स के बाद की चोट के साथ जुड़ाव है, और यह भी कि शारीरिक तकलीफ के खत्म होने के बाद यह संकट बढ़ सकता है। इसकी तुलना में, अनुसंधान बताता है कि चोट लगने के बाद हीलिंग में 40% की कमी होती है, जब तनाव के स्तर में वृद्धि होती है (कीकोल्ट–ग्लेसर, पेज, मारुचा, मैकक्लम, ग्लेसरय मारुचा, किक्रेट–ग्लेसर, और फेवेजी, 1998)। हालांकि ये निष्कर्ष चोटों के साथ कॉलेज एथलीटों के लिए विशिष्ट नहीं थे, लेकिन उन्हें परीक्षा देने से पहले तनाव के संपर्क में आने वाले छात्रों की तुलना में किया जा सकता है। (Kiecolt & Glaser, Page, Marucha, Mac Callum, Glaser, 1998, Marucha, Kiecolt & Glaser, Favagehi, 1998)। हाई स्कूल और कॉलेज एथलीटों के लिए विशिष्ट, न्यूकमर और पेन्ना (2003) ने घायल कॉलेज एथलीटों के बीच अवसादग्रस्त लक्षणों के रूप में घुसपैठ विचारों और परिहार व्यवहार की पहचान की।

यह Appaneal एट अल द्वारा नोट किया गया था (2009) कि छात्र–एथलीटों में स्व–अवसाद के लक्षण 14–24 वर्ष की आयु में पुरुषों और महिलाओं दोनों में चिकित्सक–आधारित रेटिंग की तुलना में भिन्न थे। उदाहरण के लिए, Appaneal et al A (2009) में पाया गया कि चिकित्सक के साक्षात्कार में एक गंभीर खेल की चोट के बाद अवसाद के लक्षणों में प्रत्यक्ष वृद्धि का पता चला है, जो एक महीने तक चलता है, जो कि पेपर और पेंसिल स्व–रेटेड अवसाद चेकलिस्ट द्वारा नहीं पाया गया था। तनाव के संबंध में, जीर्ण तनाव की तीव्रता में वृद्धि हुई तीव्र तनाव (हैमेन, किम, एबरहार्ट, और ब्रेनन, 2009) के एक उच्च स्तर को दूर करता है। ये परिणाम तनाव–अवसाद संबंधों में पुराने तनाव के प्रभावों में एक प्रवृत्ति दिखाते हैं, और एक अवसाद निदान के लिए सर्वेक्षण करते समय इसे ध्यान में रखा जाना चाहिए।

ओश्हारा, अर्मेली, बॉयनटन, टेनेन और फार्मिंग्टन (2014) ने कॉलेज के गैर–एथलीट छात्रों में अवसाद और मजबूत तनाव–प्रतिक्रिया के इतिहास के बीच संबंध का उपयोग करते हुए डेटा का मूल्यांकन किया। 1,549 प्रतिभागियों में से, शोधकर्ताओं ने 18% को अवसादग्रस्तता के साथ और 13% को हाल के अवसाद के साथ पाया। अवसाद के इतिहास वाले छात्रों ने अवसाद के इतिहास के बिना उन लोगों की तुलना में तनाव–प्रतिक्रिया के स्तर में वृद्धि की। हालांकि, यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि हाल ही में और आवर्ती अवसाद और तनाव–प्रतिक्रिया के स्तर के बीच कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं था।

भविष्य की खोज – अवसाद के लक्षणों के बारे में कॉलेजिएट एथलीटों पर पहले भी अध्ययन किए जा चुके हैं, लेकिन इस डेटा के विपरीत परिणाम सामने आए हैं, जैसा कि उपरोक्त खंडों में देखा गया है। 'अवसाद' शब्द के आसपास के नकारात्मक कलंक के आधार पर, बीमारी अक्सर कॉलेज के एथलीटों में कम हो जाती है जो समस्या को अनदेखा करने या यहां तक कि कवर करने का प्रयास करते है (वीगंड एट अल।, 2013)। लक्षणों के अंडरपोर्टिंग में इंटरकॉलेजिएट वातावरण भी एक प्रभाव हो सकता है। एथलीटों के पास इंटरकॉलेजिएट स्तर तक पहुंचने और सफलता प्राप्त करने का एक अवसर है (प्रॉक्टर एंड बान–लेनोजो, 2010)। हालांकि, एथलीटों को दी गई उपयुक्त शब्दावली और सहानुभूति इस बीमारी का इलाज करने की अधिक संभावना है जब एक मानसिक स्वास्थ्य पेशेवर (मनिअर एट अल।, 2001) को प्रस्तुत और रिपोर्ट किया जाता है।

निष्कर्ष – जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, अवसाद एक मानसिक विकार (APA, 2000; Weigand et alA, 2013) है। इस मानसिक विकार में कॉलेजिएट एथलीटों और गैर–एथलीटों (आर्मस्ट्रांग और ओमेन–अर्ली, 2009, प्रोक्टर एंड बोआन–लेनोजो, 2010य स्टोर्च एट अल।, 2005य वीगडै एट अल।, 2013) दोनों को प्रभावित करने की क्षमता है। शारीरिक स्वास्थ्य लाभ और मानसिक विकार सार्वजनिक और वैज्ञानिक रुचि बढ़ाने के विषय बन गए है (Appaneal et al A, 2009; Newcomer & Penna, 2003; Roh & Perna, 2000; NiÛdorf

et alA, 2013)। कुल मिलाकर, कॉलेज के लिए समायोजन पर किए गए शोध ने निष्कर्ष निकाला कि कॉलेज के छात्रों के भौतिक और मनोवैज्ञानिक स्तर में, राज्यों में विश्वविद्यालय (प्रॉक्टर एंड बान–लेनोजो, 2010) में प्रवेश के बाद एक वर्ष के भीतर, गिरावट आई। यह एथलेटिक भागीदारी की परवाह किए बिना है।

इस शोध का उद्देश्य यह निर्धारित करना था कि क्या छात्र–एथलीट या गैर–एथलीट अधिक अवसाद के लक्षणों का अनुभव करते है, और नकारात्मक तनाव के निष्कर्ष के लिए क्या होता है। तनाव–ग्रस्त एथलेटिक और शैक्षणिक शेड्यूल के संयोजन के कारण छात्र–एथलीट अपने गैर–एथलीट साथियों की तुलना में अधिक मनोवैज्ञानिक समस्याओं का अनुभव करते पाए गए हैं, फिर भी अवसाद का कम प्रतिशत है (आर्मस्ट्रांग और इसके साथ समस्याग्रस्त क्षेत्र यह है कि एथलीटस् ओमेन–अर्ली, 2009य स्टैच एट अल।) 2005)। स्कूल परामर्श और मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं (स्टोर्च एट अल।, 2005) को बहुत कम आंकते हैं। इसलिए, छात्र–एथलीट के मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य लाभ की देखभाल करने में बेहतर सहायता के लिए कॉलेजिएट एथलीटों और गैर–एथलीटों दोनों की तुलना में अधिक शोध किए जाने की आवश्यकता है।

कॉलेजिएट छात्र–एथलीटों की मानसिक स्वास्थ्य स्थिति पर महामारी विज्ञान के आंकड़ों की कमी के कारण, मानसिक स्वास्थ्य विधि (यांग एट अल, 2007) स्थापित करना मुश्किल है। कॉलेजिएट एथलेटिक्स में अवसाद पर वर्तमान और गैर–विपरीत अनुसंधान परिणामों के बिना, इस तरह के एक नकारात्मक कलंक के साथ स्थितियों को संभालने के लिए एक प्रोटोकॉल को जगह में नहीं रखा जा सकता है (मनिअर एट अल, 2001)। कॉलेजिएट एथलीटों में अवसाद पर लगातार शोध में वृद्धि से काउंसलिंग सेवाओं को रखा जा सकेगा, और सभी छात्र–एथलीटों को आसानी से सुलभ हो सकेगा।

संदर्भ संकेत

- अमेरिकन साइकियाट्रिक एसोसिएशन (एपीए)। (2000)। मानसिक विकारों का निदान और सांख्यिकीय मैनुअल : डीएसएम–आईवी–टीआर (4 एड।)। वाशिंगटन, डी. सी. : अमेरिकन साइकियाट्रिक एसोसिएशन।
- एपेनाइल, आर.एन., लेविन, बी.आर., पर्ना, एफ.एम., और रोह, जे.एल. (2009)। पुरुष और महिला प्रतिस्पर्धी एथलीटों के बीच प्रसवोत्तर अवसाद को मापना। खेल और व्यायाम मनोविज्ञान जर्नल, 31 (1), 60–77।
- आर्मस्ट्रांग, एस एंड ओमेन–अर्ली, जे। (2009)। कोलैजिएट एथलीटों बनाम नथलेट्स के बीच सामाजिक जुड़ाव, आत्म–सम्मान, और अवसाद रोगसूचकता। जर्नल ऑफ अमेरिकन कॉलेज हेल्थ, 57 (5), 521–526।
- बर्नकेर, एस.एल., कांस्टेंटिनो, एम.जे., पज्जाग्लिया, ए.एम., रवित्ज, पी।, और मैकब्राइड, सी। (2014)। रोगी पारस्परिक और संज्ञानात्मक परिवर्तन और अवसाद के लिए पारस्परिक मनोचिकित्सा में परिणाम के लिए उनके संबंध। जर्नल ऑफ क्लिनिकल साइकोलॉजी, 70 (6), 518–527।
- शिल्प, एल.एल., फ्रायंड, के.एम., कुल्पेपर, एल., और पर्ना एफ.एम. (2007)। महिलाओं में अवसाद ग्रस्तता लक्षणों के लिए व्यायाम का हस्तक्षेप अध्ययन। महिला स्वास्थ्य पत्रिका, 16 (10), 1499–1509।

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

मानवाधिकारों की मानवीय सुरक्षा में सार्थकता

डॉ0 अलका सक्सेना
प्राध्यापक–बी0एड0 विभाग
डी0बी0एस0 कालेज, कानपुर

यह दुनिया दृश्यगत वास्तविकता है। इसका एक प्रयोजन है। वह सारहीन नहीं है। इस दुनियाँ को सुन्दर, अच्छा सुखद बनाने की प्रेरणा से मनीषी चिन्तक, विचारक, सुधारक एवं राजनेता सदैव सतत् प्रयत्नशील रहे हैं। यह बात दूसरी है कि प्रत्येक के सुन्दर व सुखद बनाने की संकल्पना अपने–अपने अभिगम से संचालित रही। इस व्यवस्था के केन्द्र में मानव है। मानव को प्रतिष्ठित करने का तात्पर्य ही है कि हम उसकी दुनियाँ को सुन्दर एवं सुखद बना रहे हैं।

व्यक्ति और राज्य के आपसी सम्बन्धों की समस्या सदैव से ही बहुत जटिल रही है और वर्तमान समय की प्रजातन्त्रीय व्यवस्था में इस समस्या ने विशेष महत्व प्राप्त कर लिया। अन्तर्राष्ट्रीय जगत में नैतिकता की भूमिका के सन्दर्भ में मानवाधिकारों का विषय सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। मानवाधिकार राष्ट्रों की सम्प्रभुता द्वारा प्राकृतिक अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणायें हैं। यह विश्व के सभी राष्ट्रों के नागरिकों को अपना आन्तरिक व बाह्य विकास करने का अवसर प्रदान करते हैं, शाश्वत सत्ता द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को कुछ नैसर्गिक शक्तियाँ प्रदान की गयी है।

आज का विश्व समुदाय पूर्ण रूप से जाग्रत है, और एक देश की आंतरिक परिस्थितियों से दूसरा देश पूर्ण रूप से परिचित हो जाता है। अब यदि कोई देश अथवा वहां की शासन व्यवस्था यह चाहे कि गुप्त रूप से अपने नागरिकों को शोषण कर ले और उस पर किसी प्रकार की अंतराष्ट्रीय प्रतिक्रिया नहीं होगी, तो यह उसकी भूल है। न केवल पड़ोसी देशों द्वारा अपितु सम्पूर्ण विश्व समुदाय द्वारा गलत प्रयासों की आलोचना तत्काल होने लगती है। हाल के वर्षों में सम्पूर्ण विश्व द्वारा जिस मुद्दे पर विचार विमर्श चल रहा है, वह है मानवाधिकार। विश्व में प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र और अपनी विशिष्ट पहचान के साथ जन्म लेता है, परन्तु उसके अधिकारों की व्याख्या उन परिस्थितियों के आधार पर की जाती है। जिन परिस्थितियों वाली शासन व्यवस्था में उसका जन्म होता है। मनुष्य का जन्म तो स्वतंत्रतापूर्वक ही होता है, परन्तु उसकी स्वतंत्रता पूर्ण रूप से स्थापित रह पाती, क्योंकि चेतनता प्राप्त करने की स्थिति में वह सामाजिक प्राणी हो चुका होता है, सामाजिक प्राणी होने के कारण उसके अधिकार समाज के अनुरूप हो जाते हैं। यदि विश्व स्तर पर देखा जाय तो ऐसा प्रतीत होता है कि मानवाधिकारों का स्वरूप पृथक–पृथक है।

मानवाधिकार एक महत्वपूर्ण अवधारणा है जो युग–युगान्तरों से मानव के उत्कर्ष से ही प्रस्फुटित हुई थी। मानव ने सभ्यता के हर पहलू को जब से आत्मसात् किया तभी से उसे मानव अधिकारों का बोध होने लगा था। मानवाधिकार को कभी–कभी मूल अधिकार, अन्तर्निहित या जन्मजात अधिकार या नैसर्गिक अधिकार भी कहा जाता है। मानवाधिकार इस सार्वभौम तथ्य की नायाब कृति है जिसमें समाज के हर वर्ग, हर जाति के लोगों को सम्मानजनक जीवन जीने का अधिकार है। विश्व की सभी सभ्यताओं, संस्कृतियों और जीवन आदर्शों का आधार ही मानवाधिकार है।

प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति में मानव कल्याण का दृष्टिकोण सर्वाधिक रहा है। 'बसुधैव–कुटुम्बकम्, 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' जैसी विश्व मानवतावादी विचार धाराओं का प्रादुर्भाव सर्वप्रथम भारत में ही हुआ जो आज

अन्तर्राष्ट्रीय शांति का केन्द्रीय आधार है। मानवाधिकार सभ्यता विकास के साथ एक नवचेतना के रूप में देदीप्यमान हुआ और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में एक प्रमुख क्षेत्र बना।

वस्तुतः मानवाधिकार वे अधिकार हैं जो प्रत्येक मानव को मानव होने के नाते सामाजिक वातावरण में रहते हुए जीवन में विकास एवं उत्कर्ष के लिए प्राप्त होते हैं। मानवाधिकारों का उपयोग कर मानव अपनी शारीरिक, आत्मिक, सामाजिक तथा अन्य उपयोगी आवश्यकताओं की निर्बाध रूप से पूर्ति कर व्यक्तित्व का समग्र विकास करने में समर्थ हो पाता है। संक्षेप में मानवोन्नयन एवं उत्कर्ष के लिए जो सुविधाएं और नियम, ईश्वर, समाज व राज्य की ओर से प्राप्त है, उन्हें अधिकार कहते हैं।

सृष्टि प्रक्रिया के साथ–साथ विभिन्न विचारकों ने मानव के कर्म स्वभाव और अधिकार की विवेचना की है, वेद अपौरूषेय होने के कारण, सम्प्रदाय, पन्थ और मतमतान्तरों से रहित है। उसमें मानवता के विधायक तत्वों के विश्लेषण का वैज्ञानिक विवेचन है। मानव–मन संकल्प वाला है, संकल्प कार्य करने की सामर्थ्य का आधार है। कार्य आरम्भ करने की सामर्थ्य का नाम अधिकार है, ये अधिकार ईश्वर प्रदान हैं तथा सृष्टि के आदिकाल से ही प्रत्येक मानव को प्राप्त हैं। यदि सृष्टि का कोई प्रयोजन नहीं होता तो सृष्टि–सृजन निरर्थक होता। सृष्टि विवेचन से विदित होता है कि इसका सृजन प्राणिमात्र के सुखार्थ है। वेद सृष्टि का संविधान है, तो यह कैसे हो सकता है कि सृष्टि के सर्वोत्तम प्राणी मानव के अधिकारों का उसमें वर्णन न किया गया हो।

मानव ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति होने के कारण विचारकों, दार्शनिकों का केन्द्र बिन्दु रहा है। समय–समय पर उत्पन्न हुए विभिन्न मनीषियों ने वैदिक शिक्षा से जीवन दृष्टि प्राप्त की और संसार को जीवन–दर्शन की सर्वोत्तम शिक्षा का संदेश दिया। वेद, मानवीय मूल्यों का आदि प्रेरक है, विश्व के मानवमात्र की संस्कृति है, उसमें मानवाधि ाकार की संकल्पना है।

मानव अस्तित्व और जीवनोपयोगी उपागमों की सुरक्षा पर संकट उपस्थित होने लगा, तब विश्व के मनीषियों ने चिन्तन किया, जिससे चेतना जाग्रत हुई। परिणामस्वरूप संसार में फिर से शान्ति और सुरक्षा स्थापित करने के लिए दूसरे विश्व–युद्ध के पश्चात् सार्वभौम संगठन 'संयुक्त राष्ट्र संघ' का जन्म हुआ।

इस सार्वभौम संगठन के मानवाधिकारों को प्राथमिकता प्रदान की। सन् 1945 ई0 में इस संगठन ने सैनफ्रांसिस्को (अमेरिका) ने मानवाधिकार आयोग की स्थापना की, जिसमें विभिन्न देशों के प्रतिनिधियों ने चिन्तन करके मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा का एक मसौदा तैयार किया। यह मसौदा 10 दिसम्बर 1948 ई0 को संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा में प्रस्तुत किया गया। विश्व के सभी राष्ट्रों ने इसे सम्मान देते हुए इसे अपने देश के कानून में भी समायोजित किया जो स्वतंत्रता, समानता एवं भ्रातृत्व की भावनाओं से प्रेरित था। इसी समय 10 दिसम्बर को मानवाधिकार दिवस घोषित किया गया और इसे अन्तर्राष्ट्रीय मानकों के निर्माण की पहली और महत्वपूर्ण मिसाइल माना गया। इसके पश्चात् मानवाधिकार अन्तर्राष्ट्रीय कानून की मिसाइल बन गया। मानव अधिकारों को विश्व स्तर पर नियंत्रित करने तथा शांति स्थापना के विकास का यह महत्वपूर्ण कार्य संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा किया गया। मानवाधिकार के इस सार्वभौमिक घोषणा पत्र के अनुच्छेदों को 'मानवता का मैग्नाकार्टा' कहा जाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने मानवाधिकार के विभिन्न स्वरूपों का विस्तृत विवेचन किया है। मानवाधिकार का सम्बन्ध मात्र मानवीय पक्ष की संवेदना, सहयोग तथा वैचारिक आदान–प्रदान तक ही सीमित नहीं है बल्कि यह किसी सभ्य एवं सुसंस्कृत समाज का व्याकरण है जिसके मूल में मानव गरिमा, निष्पक्षता एवं शांति प्रियता निहित है। इसके अन्तर्गत वे सभी अधिकार सम्मिलित हैं जो व्यक्ति को उसमें निहित मूल प्रवृत्ति के पूण्र विकास के लिये आवश्यक है। मानव को सुखी और शान्ति पूर्वक जीवन जीने के अधिकारों को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से ही मानवाधिकार की संकल्पना की गयी। मानवाधिकार सम्बन्धी विधेयक में सुरक्षा, समानता, शिक्षा, धर्म, मानव व्यवहार, न्याय, आत्म निर्णय, धर्मांतरण संरक्षण आर्थिक एवं सांस्कृतिक उन्नति के अधिकार सम्मिलित हैं।

संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकारों की रक्षा के लिए सतत् प्रयत्नशील है। जहाँ–जहाँ अन्याय होता है वहाँ–वहाँ संयुक्त राष्ट्र संघ उसके खिलाफ आवाज उठाता है : जरूरत पड़ने पर यह संघ अन्तर्राष्ट्रीय तौर पर सामाजिक और आर्थिक प्रतिबन्ध भी लगाता है ताकि जो देश गलती करता है उसे सबक मिल सके और वह अपनी गलती सुधारे। उदाहरण के तौर पर कई साल तक संयुकत राष्ट्र संघ ने दक्षिण अफ्रीका पर ऐसे प्रतिबन्ध लगाए क्योंकि वहाँ की अल्पसंख्यक गोरी सरकार काले लोगों से भेदभाव करती थी। अभी हाल में ये प्रतिबन्ध हटाये गये हैं क्योंकि वहाँ की सरकार ने इस भेदभाव को खत्म कर दिया है। ऐसे ही प्रतिबन्ध संयुक्त राष्ट्र संघ ने ईराक पर भी लगाए क्योंकि उसने अपने पड़ोसी देश कुवैत पर बिना वजह हमला किया। संयुक्त राष्ट्र संघ को मानवाधिकारों की रक्षा के लिए ताकत का सहारा भी लेना पड़ता है। जब–जब जरूरत होती है यह संघ दुनिया के देशों से फौजों की माँग करता है ताकि ये फौजें संघ की शान्ति सेना के रूप में दुनिया के अलग–अलग भागों में जहाँ जरूरत है, वहाँ जाकर शान्ति बहाल करें। दुनिया के कुछ हिस्सों में संघ की शान्ति सेना की टुकड़ियाँ काम कर रही हैं। अभी हाल में यह शान्ति सोमालिया, मुजाम्बिक, कम्बोडिया जैसे देशों में भेजी गई। इसके अलावा, संघ की फौजों में ईराक से लड़ाई लड़ी और बोसनिया में भी संघ ने ताकत का इस्तेमाल किया। इस शान्ति सेना में भारत ने भी अपनी फौजें और पुलिस बल भेजकर काफी योगदान दिया है क्योंकि भारत दुनिया में शान्ति चाहता है और इसके लिए योगदान देने के लिए प्रतिबद्ध है।

सभ्यता की प्रगति के लम्बे इतिहास में अनेक संगठन बने जिन्होंने मानवाधिकारों की देखभाल की इस श्रृंखला में मानवाधिकारों से सम्बद्ध विश्वव्यापी महत्वपूर्ण संगठन 'एमनेस्टी इण्टरनेशनल' का नाम सबसे पहले आता है। इसका मुख्यालय लन्दन में है। इसकी शुरूआत एक ब्रिटिश वकील पीटर बेनसन ने 28 मई 1961 ई0 को अखबारों में एक अपील देकर की थी। आज लगभग 150 देशों में इसके 6 लाख से ज्यादा सदस्य हैं। इसके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ह्यूमन राइट्स ब्रांच भी दूसरा महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार संगठन है। इसकी स्थापना न्यूयार्क में 1978 में हुई थी। यह संगठन महिलाओं बच्चों तथा व्यक्ति की स्वतंत्रता आदि के अधिकारों के लिए सहायता प्रदान करता है। इन दो महत्वपूर्ण संगठनों के अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कुछ अन्य संगठन भी है जिसमें प्रमुख डिफेंस फार चिल्ड्रेन इण्टरनेशनल (स्थापना 1979 जेनेवा में) इण्टरनेशनल डेमोक्रेटिक लायर्स (स्थापना 1946 ब्रुसेल्स में) और डाक्टर्स विदाऊट बार्ड्स (स्थापना 1971 पेरिस में) आदि है। ये संगठन विभिन्न देशों के पीड़ित और जरूरतमंद लोगों के लिए सेवा कार्य करते हैं। इन्हें भी कई बार नोबल शांति पुरस्कार प्रदान किये गये है। मानवाधिकारों की रक्षा का सबसे ताजा अध्याय अभी काहिरा में सितम्बर 1994 में आयोजित विश्व जनसंख्या सम्मेलन में जुड़ा जिसमें यह कहा गया है कि दुनिया में महिलाओं को जनसंख्या के मामले में अपने परिवार में फैसला करने का बराबर का अधिकार हैं यह कहा गया है कि दुनिया में महिलाओं को जनसंख्या के मामले में अपने परिवार में फैसला करने का बराबर का अधिकार है। यह बड़े सन्तोष की बात है कि संयुक्त राष्ट्र संघ मानवाधिकारों के मामले में अपना कर्त्तव्य अच्छी तरह निभा रहा है। मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा सभी देशों और सभी लोगों की समान सफलता है। इसका उद्देश्य यह है कि प्रत्येक व्यक्ति और समाज का प्रत्येक भाग इस घोषणा को लगातार दृष्टि में रखते हुये अध्यापन और शिक्षा द्वारा यह प्रयत्न करेगा कि इन अधिकारों और आजादियों की प्रति सम्मान की भावना जाग्रत हो और उत्तरोत्तर ऐसे राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय उपाय किये जायें जिनसे सदस्य देशों की जनता तथा उनके द्वारा अधिकृत प्रदेशों की जनता इन अधिकारों को सार्वभौम और प्रभावोत्पादक स्वीकृति दे और उसका पालन करावे।

मानवीय सुरक्षा की सार्थकता – राष्ट्रीय सुरक्षा किसी राष्ट्र को जीवित रखने की अनिवार्य शर्त है। वर्तमान समय में मानवीय सुरक्षा राष्ट्र–राज्य के हितों एवं उनके विकास के लक्ष्य की ओर केन्द्रित है। इसी कारण सुरक्षा और विकास एक दूसरे के पूरक हो गये हैं। मानवाधिकार और मानवीय सुरक्षा अविच्छिन्न है। एक के बिना दूसरे

की कल्पना अधूरी है क्योंकि दोनों का केन्द्र बिन्दु मानव तथा उसके समाज का हित है। दोनों के मध्य यदि कहीं विवाद है तो वह दोनों पक्षों की व्यावहारिक दृष्टिकोण है। विकासशील और अविकसित देशों में यदि कहीं मानवाधिकार का हनन हो रहा है तो उसका कारण राजनैतिक, आर्थिक, सैनिक एवं तकनीकी विकास के क्षेत्र में उसका पिछड़ापन है जिसे दूर करके राष्ट्रीय विकास, राष्ट्रीय सुरक्षा तथा मानवाधिकार को गति प्रदान की जा सकती है। प्रत्येक सम्प्रभु राष्ट्र का प्रथम कर्तव्य है कि वह अपनी भौगोलिक सीमा तथा सीमा क्षेत्र में बसे हुए नागरिकों एवं अन्य लोगों जैसे– विदेशी पर्यटक, अतिथि, राजनयिक मान्यता प्राप्त शरणार्थी इत्यादित की रक्षा करे। वर्तमान समय में अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद, धार्मिक कट्टरता, अन्धाराष्ट्रवाद जनित हिंसा आदि खतरे विश्वव्यापी हो चुके हैं जिससे मानवता का जोखिम बढ़ गया है और राष्ट्रीय सुरक्षा गम्भीर रूप से प्रभावित हो रही है। ऐसी दशा में राष्ट्रों की जिम्मेदारी है कि वे अपने नागरिकों और आगुन्तुकों खासतौर पर विदेशी मूल के लोगों की सुरक्षा के लिए समुचित मानक निर्धारित करे। ऐसे में मानव सुरक्षा तथा मानवाधिकार संरक्षण एक दूसरे के पूरक होंगे।

वर्तमान समय में इसके सम्बन्ध में दो अवधारणायें प्रचलित हैं– प्रथम उदारवादी अवधारणा जिसमें राष्ट्रों का मानना है कि मनुष्य के मूलभूत अधिकारों की पूर्ण सुरक्षा होनी चाहिए जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने पूर्ण विकास की दिशा में आगे बढ़ सके। इस अवधारणा को मानने वाले इंग्लैण्ड, अमेरिका, स्विटजरलैण्ड भारत इत्यादि देश हैं।

द्वितीय अवधारणा के रूप में मार्क्सवादी अवधारणा प्रचलित हैं जिसमें केवल नागरिकों के अधिकारों की व्याख्या कर देने मात्र से ही विश्वास नहीं करते बल्कि अधिकार का प्रयोग किस प्रकार किया जाय इस पर विचार करते हैं। इसक प्रमुख समर्थक देश पूर्व सोवियत संघ रहा है।

प्रजातंत्र राष्ट्रीयता चाहता है राष्ट्रवाद से संकुचित अखण्डता व एकता के नाम से अलगाववाद व बहुसंख्यक 'दबाववाद' या 'घृणावाद', तुष्टीकरणवाद नहीं चाहता है। प्रजातन्त्र की वह विवशता है, वह किसको मनाये, किसको प्रेम करे, किसको चाहे किसको प्रसन्न करें, किसको नाराज करें। इस दुविधा में प्रजातन्त्र में 'नाटकवाद' चलता है, कथनी व करनी में अन्तरवाद चलता है, जिस नाटकीकरण में फिर अहित होता है, मानवता का। 'मानव अधिकारवाद' को यहाँ क्या चाहिए? कोई कॉटे नहीं चाहता, कोई अधिकार स्वरूप दुःख नहीं चाहता?कोई आँसू नहीं चाहता?न कोई तपती रेत पैरो तले चाहता है और नहीं कोई चाहता आकाश से दोपहरी में आग बरसाता सूरज, यहाँ तो हर स्थिति में शांति, संतोष, सुख चाहिए, सुविधाएं चाहिए, न्याय चाहिए, शोषण से त्राण व पाशविक दासता से मुक्ति, यहाँ तो मानवीयता की शीतल छाया चाहिए, ध्वल ज्योत्सना चाहिए, आंगन में आनन्दमय स्नेह की धूप चाहिए कोयल की मधुरता चाहिए, कौऐ की काँव–काँव नहीं, मानस के राजहंस का नीर–क्षीर विवेक चाहिए।

यद्यपि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक सम्मेलन एवं आयोगों द्वारा मानवाधिकार संरक्षण का प्रयास किया जा रहा है परन्तु यह एक तथ्य है कि समूचे विश्व में मानवाधिकारों का व्यापक स्तर पर हनन हो रहा है और मानवाधिकार आयोग का कार्यक्षेत्र उसकी आयु बढ़ने के साथ ही संकुचित होता जा रहा है और वह अपने उस उद्देश्य को प्राप्त करने में विफल रहा है, जिसके लिए उसका गठन किया गया था। इस आयोग की विफलता सम्भवतः उतनी नहीं अखरती, जितना अखरने वाला तथ्य है, कि वह आज तक सही बात को कहने का साहस भी नहीं जुटा पाया।

विश्व के अनेक भागों में आज धर्म की आड़ में आतंकवाद, निजी स्वार्थ, आमनवीय सजा मृत्युदण्ड, शोषण, हाथ–पैर काटने जैसी सजायें देकर विश्व के अनेक भागों में आज मानवाधिकारों को होली जलाई जा रही है। वास्तविकता यह है कि सम्पूर्ण विश्व में सम्पन्न कहे जाने वाले वर्ग, प्रायः असहाय एवं कमजोर वर्गों को दासता एवं भुखमरी का जीवन जीने पर विवश करता आ रहा है। उपर्युक्त अमानवीय कृत्यों को देखकर भी विश्व की मीडिया आज अपने स्वार्थलोलुपता एवं अक्षमता के कारण इन अपराधों की मूक साक्षी बनी हुई है। विश्व जन समुदाय अपने इन दुखों एवं कष्टों के निवारण हेतु मीडिया एवं इन आयोगों की तरफ देख रहा है, अतः वर्तमान परिदृश्य में सभी गैर सरकारी संगठन एवं आयोगों को मानवाधिकार के प्रति जागरूकता बढ़ाने के प्रयास में सहयोग

देना चाहिए एवं मीडिया एवं संचार तंत्रों का सहयोग भी इसमें अपेक्षित है।

संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार आयोग का कार्यक्षेत्र उसकी आयु बढ़ने के साथ ही संकुचित होता जा रहा है। वह अपने इस उद्देश्य को प्राप्त करने में प्रायः विफल रहा है जिसके लिए संयुक्त राष्ट्र महासभा ने उसका गठन किया था। यह एक तथ्य है कि आज समूचे विश्व में मानव अधिकारों का व्यापक स्तर पर हनन हो रहा है, किन्तु मानवाधिकार आयोग कुछ पक्षपातपूर्ण रपटें प्रकाशित करने के अलावा कुछ नहीं कर पाया है। एमनेस्टी इण्टरनेशनल, की मानवाधिकार के सम्बन्ध में प्रकाशित रपटें कई महत्वपूर्ण तथ्य सामने लाती हैं। जुलाई को लन्दन में जारी अपनी 1995 की वार्षिक रिपोर्ट में विश्व के 150 देशों में मानवाधिकार की स्थिति की समीक्षा की गई है। इसमें उग्रवादी संगठनों के साथ–साथ राज्य के सरकारी दमन तन्त्र को भी निशाना बनाया गया है। इसमें सभी दक्षिण एशियाई देशों सहित विश्व के कुल 141 देशों पर मानवाधिकारों के उल्लंघन का आरोप लगाया गया है। इमनेस्टी की रिपोर्ट में भारत के राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की प्रशंसा की गई है। एमनेस्टी की वर्ष 1994–95 की रिपोर्ट में अमरीका में मानव अधिकारों के हनन की जो तस्वीर पेश की गई है वह बहुत चिन्ताजनक है।

भारत के लोगों ने स्वतन्त्रता के बाद मानव अधिकारों पर हुए जो प्रहार सहन किए उनमें से कोई भी इतना घृणास्पद नहीं था जितने घृणास्पद आतंकवादियों द्वारा योजनाबद्ध तरीके से किए जा रहे हिंसात्मक अपराध हैं। जम्मू–कश्मीर राज्य में आतंक के वातावरण के कारण लगभग 30,000 कश्मीरी पण्डित घाटी छोड़ने को मजबूर हुए हैं। जेलों में भीड़, ज्यादातर विचाराधीन कैदियों की भारी संख्या की वजह से होती है जो मानव गरिमा को अत्यधिक विसंगतिपूर्ण बनाती रही है। विभिन्न बन्दीगृहों में बन्द कैदियों में 1,80,000 विचाराधीन कैदी हैं। इनका प्रतिशत कुल कैदियों का 70 प्रतिशत से अधिक बैठता है। विचाराधीन कैदियों में अधिक संख्या समाज के गरीब वर्ग के लोग की है जो गांवों से सम्बन्धित हैं। भारत के राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के अधिकारियों द्वारा मेरठ जेल का दौरा किए जाने पर वहां करीब 3,000 लोग जेल में बन्द पाए गए जबकि उस जेल की घोषित क्षमता 650 व्यक्तियों के रखे जाने की है।

आज पूरा विश्व मानवाधिकारों को लेकर सचेष्ट है और पूरे विश्व में आतंकवादी गतिविधियां बढ़ी है। समग्र मानवता इससे जूझ रही है। मुट्ठीभर आतंकवादियों ने मानवता को रौंद डाला है। मानवाधिकारों का हनन हो रहा है। मानव का जीने का नैसर्गिक अधिकार भी छीन लिया गया है। हम जानते हैं, पर कुछ नहीं कर पा रहे हैं। कारण क्या है? पूरे विश्व का मानव यथार्थवादी न होकर भौतिकवादी व भोगवादी बना है। ज्ञान–विज्ञान का प्रयोग अभीष्ट की पूर्ति के लिए दूसरे का सर्वनाश करने का आतुर है। अपने प्रसार के लिए वह सामाजिक, राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय मापदण्डों की धज्जी उड़ाने से नहीं चूक रहा है प्रकृति का अंधाधुध शोषण कर प्रकृति विदूषी बनता जा रहा है। 'ऋतु या धर्म की अवधारणा का कोई मतलब उसके लिए नहीं रह गया है। सर्वोच्च सत्ता यथार्थकता को भी नकराना प्रारम्भ कर दिया है। संस्सार के सृजन व विनाश का श्रेय स्वयं लेने को आतुर है। ऐसे में वह मानवीय आदर्शों से काफी दूर चला गया है। यह स्थिति मानव अस्तित्व के लिए ही खतरनाक प्रमाणित हो रही है। ऐसे में भला मानवाधिकार कैसे स्थापित व संरक्षित रह सकते हैं। जब मानव में मानवीय गुणों का संचार नहीं होगा, तब तक उसमें 'सर्वे भवन्तु सुंखीनः' की सोच नहीं पैदा होगी और मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता भी नही बढ़ेगी अतः आवश्यकता आज मानव की सोच को बदलने की आ पड़ती है। उसे भौतिकवाद व भोगवाद के छलावा से बचाने के जरूरत है। नैतिकता, कर्त्तव्यपरायणता, आध्यात्मिकता व इसके स्वाभिमान को जमाने की जरूरत आ पड़ी है और यह सव धर्म के द्वारा ही पूरा किया जा सकता है और तभी मानवाधिकार स्थापित, संरक्षित एवं सवर्धित हो सकता है।

आज विश्व में मानवाधिकारों की स्थिति को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि मानवाधिकार प्रश्न, वास्तव में वैकल्पिक जीवन दृष्टि एवं समाज व्यवस्था का भी प्रश्न है। आधुनिक सभ्यता जिस उपभोगपरक जीवन दृष्टि

व मानव विरोधी आर्थिक प्रक्रिया का परिणाम है उसमें किन्हीं मानवाधिकारों की कोई वास्तविक प्रतिष्ठा संभव नहीं है। इस संदर्भ में पामर तथा पर्किंस ने लिखा है कि 'विश्व के कुछ ही भागों में मानवाधिकार तथा आधारभूत स्वतंत्रताएं वास्तव में सुरक्षित हैं। अधिकांश क्षेत्रों में तो अभी इनका कोई अर्थ नहीं है।'' अभी भी विकसित ओर विकासशील देशों के बीच मानवाधिकार को लेकर इन विसंगतियों के चलते ही सार्वभौमिकता का अंतर बना हुआ है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि ये वही देश हैं जो मानवाधिकारों की राजनीति करते हैं तथा शेष दुनिया को साझेदार बनाने को स्वयं उत्तरदायी मानते हुए उसे अपने नियंत्रण के अन्तर्गत लाना चाहते हैं। यदि कोई देश वास्तविक अर्थों में मानवाधिकारों का क्रियान्वयन करना चाहता है तो उसे अपनी राजनीतिक प्रक्रिया पर ही नहीं अपितु अपनी सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था पर भी पुनर्विचार करना होगा, तभी विश्व में मानवाधिकार समस्या का समाधान हो सकता है।

संन्दर्भ संकेत

1. पाण्डेय रामसकल, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा, मानवाधिकार, 2007, पृष्ठ 743–745
2. सिंह कपिलदेव ''इण्डियन जनरल ऑफ ह्यूमन रिलेशन'' में प्रकाशित शोधपत्र ''मानवाधिकार एवं राष्ट्रीय सुरक्षा, 2009, पृ0– 86–88
3. 18वें उत्तर प्रदेश, राजनीति विज्ञान कन्वेंशन में प्रकाशित लेख, 2010, पृ0– 2–10
4. चाणक्य ''समाज विज्ञान शोध पत्रिका'' में प्रकाशित शोधपत्र मानवाधिकार'' 2010, पृ0– 139
5. फाड़िया बी0एल0– अन्तर्राष्ट्रीय संगठन
6. प्रसाद, राजेन्द्र– मानवाधिकार 'वैश्विक चुनौती'
7. राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की वार्षिक रिर्पोट (1993–94) पृ0 11–24, नई दिल्ली।
8. मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 संसदीय दस्तावेज, नई दिल्ली।
9. ह्यूमन राइट्स वाच रिपोर्ट, 01 जुलाई, 2003

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

मानवाधिकार की अवधारणा एवं वर्तमान संदर्भों में प्रासंगिकता

डॉ0 आनन्द कुमार खरे
अध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग
डी0वी0 (पी0जी0) कालेज, उरई

वस्तुतः आधुनिक विश्व राजनीति के संदर्भ में मानवाधिकार का प्रश्न एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। सम्पूर्ण विश्व में किसी न किसी रूप में मानव अधिकारों का उल्लंघन हो रहा है। आतंकवाद और अलगाववाद के कारण विश्व में हिंसात्मक गतिविधियों में तेजी आयी है। भारत में आतंकवाद का विकसित रूप, कश्मीर में मानवाधिकार का उल्लंघन आदि प्रश्न उभरकर सामने आये हैं। मानवाधिकार की अवधारणा मानवता के दर्शन पर आधारित है। वास्तव में मानवाधिकार का मूल स्रोत मानव प्रकृति है। मानवाधिकार दर्शन में व्यक्ति ही केन्द्र में है। सैद्धान्तिक रूप में मानवाधिकार की अवधारणा का विकास परम्परागत उदारवाद से बंधा हुआ है। उदारवादी क्रान्ति ने विश्व के सभी देशों को प्रभावित किया। इनमें पश्चिम के उदारवादी, पूँजीवादी, पूर्व के साम्यवादी तथा तृतीय विश्व के विकासशील देश शामिल है। मानवाधिकार को यहाँ बहुत अधिक महत्व मिला। यूनानी दर्शन में स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि प्राकृतिक विधि से ही मानवाधिकार की उत्पत्ति है। यूनानी परम्परा में व्यक्ति, समाज तथा उसकी संस्थाओं का मार्गदर्शन प्राकृतिक विधि करती है।

थामस एक्विनास के चिन्तन में प्राकृतिक विधि नैतिक मापदण्ड है। इसके आधार पर सामाजिक व राजनैतिक क्रियाकलापों का आंकलन किया जा सकता है। एक्विनास का मत है कि जो कानून न्याय का उल्लंघन करता है। सिद्धान्त रूप में वह अवैधानिक है, कानून यदि विवेक के मार्ग से विचलित होता है, तो वह कानून नहीं हिंसा है। कानून की वैधता प्रकृति के शाश्वत सिद्धान्त से बँधी होती है। पारम्परिक रूप से मानवाधिकार का उद्भव उस समय होता है, जब मनुष्य ''आदिम युग'' से ''सामाजिक युग'' में प्रवेश करता है। 15वीं तथा 16वीं शताब्दी का सामाजिक संविदा का सिद्धान्त प्राकृतिक विधि की देन है। 16वीं शताब्दी में जॉन लॉक ने मनुष्य की प्राकृतिक दशा का वर्णन किया। उसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को जीवन संरक्षण व सम्पत्ति का अधिकार प्राप्त है। इन्हीं अधिकारों को संविदा द्वारा स्थापित समाज में शामिल किया गया। मानवाधिकार मानव की मूल प्रकृति से जुड़ा है, जो सार्वभौमिक तथा शाश्वत है।

रूसो के ''सामाजिक समझौते के सिद्धान्त'' में मनुष्य आपस में संविदा करके मानव स्वतंत्रता के वास्तविक स्वरूप को सामाजिक जीवन में स्थापित करने का प्रयास करते हैं। इसीलिए रूसो का कथन है कि सामाजिक व्यवस्था वह पवित्र अधिकार है, जिनसे सभी अन्य अधिकारों का उद्भव होता है। 17वीं शताब्दी में अमेरिका ने मानवाधिकार के समर्थन में व्यक्तिगत स्वतंत्रता का नारा दिया। स्वतंत्रता, समानता तथा विश्व बंधुत्व का भाव जगाया। लॉक के सामाजिक संविदा के सिद्धान्त में अमेरिका की 1761 की क्रान्ति एवं फ्रांस की 1786 की क्रान्ति को संबल प्रदान किया। मानवाधिकार मानव विवेक की उपज है। मानवाधिकार का स्वरूप व्यापक तथा सार्वभौम है। इसकी परिधि में नैतिक, वैधानिक, मौलिक, नकारात्मक व सकारात्मक सभी अधिकार आते हैं। इसके अन्तर्गत कुछ अधिकार सर्वमान्य तथा सर्वव्यापी है। कुछ ऐसे अधिकार प्रचलित है, जो व्यक्ति विशेष को विशेष परिस्थिति के कारण प्राप्त होते हैं।

स्पष्ट है कि मानव अधिकारों का सिद्धान्त विशेष रूप से उदारवादी चिन्तन धारा से जुड़ा है। 20वीं शताब्दी के मध्य तक व्यक्ति के अधिकारों के उदारवादी परम्परा के दो स्वरूप मिलते हैं। प्रथम वर्ग के सिद्धान्तकार

अधिकारों की श्रेणी में केवल जीवन, सम्पत्ति तथा स्वतंत्रता के अधिकारों को रखते हैं और द्वितीय वर्ग के सिद्धान्तकार राज्य के कल्याणकारी स्वरूप पर बल देते हुए नागरिक के कुछ आर्थिक और सामाजिक अधिकारों को भी स्वीकार करते हैं। जैसे– कार्य करने का अधिकार, आराम का, न्यूनतम मजदूरी पाने का अधिकार आदि। सामाजिक, राजनैतिक और वैचारिक विकास के साथ–साथ व्यक्ति और नागरिक अधिकार के मध्य स्थापित भेद धुंधला होता चला जाता है। संविधान द्वारा स्वीकृत अधिकार को ''नागरिक अधिकार'' तथा अंतर्राष्ट्रीय विधि द्वारा मान्य अधिकार को मानवाधिकार की संज्ञा दी जाती है।

निर्णायक रूप से मानवाधिकार के संरक्षण हेतु उठाया गया अधिकारिक कदम द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान फासिस्ट शक्तियों द्वारा मानवता के विरूद्ध क्रूरतम आचरण का परिणाम है। इस क्रूरतम व अमानवीय कृत्य ने सम्पूर्ण विश्व में सामाजिक सुधार हेतु असंतोष पैदा किया। विश्व जनमत ने मानवाधिकार के संरक्षण हेतु अन्तर्राष्ट्रीय संरक्षण की माँग शुरू की। फलस्वरूप अभी तक के सभी प्रस्तावों को मानवाधिकार की सार्वभौम घोषणा में शामिल कर लिया गया। अक्टूबर 1944 में डिम्बर्टन ओक के सम्मेलन में मानवाधिकार स्पष्ट रूप से परिभाषित किया गया और यह निश्चित किया गया कि अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के अधीन यह आयोग कार्य करेगा। अप्रैल 1945 में सैन फ्रैन्सिस्को सम्मेलन में यह प्रस्ताव हुआ कि संयुक्त राष्ट्र चार्टर में मानवाधिकार एक अलग विषय के रूप में शामिल हो। आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों को चार्जर के रूप में शामिल किया जाए। मानवाधिकार पर एक आयोग का गठन हो। 10 दिसम्बर, 1948 को संयुक्त राष्ट्र की साधारण सभा द्वारा 'मानवाधिकार' की सार्वभौमिक घोषणा की गई। बाद में घोषणा को संधि का रूप देकर वैध स्वरूप प्रदान किया। घोषणा पत्र में समानता के सिद्धान्त पर बल दिया गया। मानवाधिकार तथा नागरिक अधिकार में अंतर नहीं किया गया है। सभी अधिकारों को मानवाधिकार की श्रेणी में रखा गया है। वस्तुतः मानवाधिकार सकारात्मक विधि की उपज है। विश्व में जैसे– जैसे जातीय संघर्ष, आतंकवाद, रंगभेद, शोषण, महिला उत्पीड़न, लिंग भेद का प्रश्न उपस्थित हुआ। मानवाधिकार अपनी जड़ें जमाता चला गया। मानवाधिकार को यदि आदर्श रूप में लागू किया जाए, तो कोई समस्या नहीं है। जब मानवाधिकार को आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक हथियार के रूप में प्रयोग किया जाता है, तो वह मानव की संवेदना के साथ न जुड़कर क्रूरता व राजनैतिक पाखण्ड का रूप बन जाता है। इससे सतर्क रहने की आवश्यकता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ की आर्थिक एवं सामाजिक परिषद मानवाधिकारों और सभी के लिए मूल स्वतंत्रताओं के प्रति सम्मान बढ़ाये तथा उनके अनुपालन के लिए सिफारिशें कर सकती हैं। इस सम्बन्ध में परिषद का विशेष दायित्व है। मानवाधिकारों के संगठनों की विवेचना हम तीन स्तरों से कर सकते हैं– 1. अन्तर्राष्ट्रीय 2. राष्ट्रीय स्तर 3. क्षेत्रीय स्तर पर भारतीय संदर्भ में यह अवलोकन करना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है कि देश में मानवाधिकार के संरक्षण की जो प्रणाली है, वह किस प्रकार से कार्य कर रही है और उसकी क्या प्रासंगिकता है। मानवाधिकार के संरक्षण और संवर्द्धन का जो आन्दोलन विश्व स्तर पर चल रहा है, उसकी एक मजबूत कड़ी के रूप में राज्य स्तर पर भारत के संविधान में मूल अधिकारों और आर्थिक, सामाजिक अधिकारों (भाग 3, 4 में) का समावेश किया गया था, किन्तु मानवाधिकारों के हनन की घटनाएं घटित होती रहीं, जो चिंता का सबब बनी। अतः मानवाधिकारों के बेहतर संरक्षण के लिए राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, राज्यों के राज्य मानवाधिकार आयोग और मानवाधिकार न्यायालयों के गठन के लिए भारत की संसद ने 1993 में मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम पारित किया। मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम के उद्देश्यों और प्रावधानों के अनुरूप राष्ट्रीय मानवाधिकार का गठन मानवाधिकार के बेहतर संरक्षण या उससे सम्बन्धित मामलों के लिए किया। प्रथम मानवाधिकार आयोग 13 अक्टूबर, 1993 को अस्तित्व में आया। इसके प्रमुख कार्य निम्न हैं–

1. स्वप्रेरण या पीड़ित व्यक्ति द्वारा की गयी शिकायतों पर दी गयी याचिका की जांच करना।
2. किसी न्यायालय के समक्ष विचाराधीन मानवाधिकारों के उल्लंघन सम्बन्धी किसी आरोप वाली कार्यवाही में ऐसे न्यायालय में अनुमोदन में हस्तक्षेप करना।
3. मानवाधिकारों के क्षेत्र में अनुसंधान करना और उसे बढ़ावा देना।
4. मानवाधिकारों के क्षेत्र में काम कर रहे गैर सरकारी संगठनों और संस्थाओं के प्रयत्नों को प्रोत्साहित करना।

मानवाधिकार के संवर्द्धन और संरक्षण के लिए गैर सरकारी संगठन भारत में काफी सराहनीय काम कर रहे हैं और इनके द्वारा निभाई जाने वाली भूमिका को मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 में भी स्वीकार किया गया है, तभी अधिनियम की धारा 12(1) में मानवाधिकार के क्षेत्र में कार्यरत गैर सरकारी संगठनों और संस्थाओं के प्रयासों को प्रोत्साहित करने का कार्य मानवाधिकार आयोग को सौंपा गया है। इस क्षेत्र में काम कर रहे संगठनों की सूची बहुत व्यापक है। मानवाधिकार आयोग की वार्षिक रिपोर्ट में 200 ऐसी संस्थाओं का उल्लेख है, जो मानवाधिकारों में अपनी विशेषता रखती हैं। ऐसे संगठनों में प्रमुख हैं– पीपुल्स यूनियन फार सिविल लिबर्टीज, बंधुआ मुक्ति मोर्चा, पीपुल्स फार डेमोक्रेटिक राइट्स कामन काज, तमिलनाडु विधि सहायता एवं परामर्श बोर्ड, असम स्टूडेन्ट यूनियन, सहेली, बेल्लोर सिटिजन्स वेलफेयर फोरम, दिल्ली डोमेस्टिक वर्किंग विमेन्स फोरम, महिला अत्याचार विरोधी जन आन्दोलन, उच्च न्यायालय ने मानवाधिकार के संरक्षण के विकास में लोकहित वादों के माध्यम से एक नया अध याय जोड़ा। सामाजिक कार्यकर्ताओं और लोकहित वादकारियों की सक्रिय सहायता से भारत में न्यायपालिका नव प्रवर्तक उपचारिक उपयोग का प्रयोग कर लोगों के मानवाधिकार का संरक्षण और संवर्द्धन कर सके, संविधान द्वारा प्रदत्त मूल अधिकार मानवाधिकारों के ही पर्याय हैं, दोनों एक–दूसरे के पूरक हैं।

उच्चतम न्यायालय ने मानवाधिकारों के आयाम को वर्तमान संदर्भों में काफी व्यापक स्वरूप प्रदान किया है। जैसे– मानव गरिमा के साथ जीने का अधिकार, अमानवीय व्यवहार के विरूद्ध अधिकार, जीविकोपार्जन का अधिकार, आश्रय प्राप्त करने का अधिकार, एकान्त कारावास के विरूद्ध अधिकार, निःशुल्क विधिक सहायता प्राप्त करने का अधिकार आदि उच्चतम न्यायालय ने उपर्युक्त अधिकारों के लिए कई महत्वपूर्ण निर्णय दिये हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या वे सभी मानवाधिकार, जो व्यक्ति को मानव के रूप में जन्म लेने के कारण प्रकृति प्रदत्त है। वास्तव में वे उपयोग में आते भी हैं या नहीं, ये मानवाधिकार कई कारणों से बाधित होते हैं। निर्धन एवं अशिक्षित समाज में मानवाधिकारों का हनन सर्वाधिक होता है। पुलिस की अमानवीय ज्यादतियाँ भी इसके लिए बहुत हद तक जिम्मेदार हैं। बाल श्रमिकों का शोषण, बंधुआ मजदूरों का शोषण, आदिवासियों का शोषण एवं विकास के नाम पर विस्थापन और जल जंगल, जमीन पर उनके अधिकारों की चुनौती आदि मानवाधिकारों के हनन के उदाहरण है।

वस्तुतः किसी राज्य के लोगों के सर्वांगीण विकास के लिए मानवाधिकारों की स्थापना एवं उनके संरक्षण की व्यवस्था ही पर्याप्त नहीं होती है, बल्कि वहाँ के लोगों को इन अधिकारों के प्रति जागरूक होना भी बहुत आवश्यक होता है। मानवाधिकार को शैक्षणिक पाठ्यक्रम का अंग बनाकर औपचारिक रूप से छात्रों में बेहतर समझ विकसित करके उनके माध्यम से लोगों में इनके प्रति सजगता का प्रचार–प्रसार किया जा सकता है। जनसंचार के आधुनिक व परम्परागत साधनों का उपयोग जागरूकता व प्रसार में बेहतर ढंग से किया जा सकता है। वर्तमान समय में दृश्य श्रव्य माध्यम भी अत्यन्त प्रभावशाली रूप में उभरकर आया है। इसके माध्यम से मानवाधिकार के क्षेत्र में प्रभावी ढंग से जागरूकता फैल सकती है। सरकारी व गैर सरकारी विभागों/संगठनों को इस क्षेत्र में प्रभावी भूमिका का निर्वहन करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए।

हमारे देश में प्रत्येक युग में मानवाधिकार के महत्व को स्वीकार किया गया है। महात्मा बुद्ध ने ''बहुजन हिताय बहुजन सुखाय'' का सन्देश दिया था। सूर, कबीर, तुलसी, रैदास आदि ने भी अपनी रचनाओं से मानव

अधिकारों के महत्व को समाज के सामने रखा। डॉ0 भीमराव अम्बेडकर ने 20वीं सदी में मानवाधिकारों के लिए अपने संघर्ष में अपना जीवन अर्पित कर दिया। उन्होंने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, अस्मिता, समानता और मानवीय मूल्यों के लिए संघर्ष किया। डॉ0 अम्बेडकर ने समाज के निम्न वर्ग के सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक अधिकारों को मानव अधिकारों से जोड़ा। यह आश्चर्य का विषय है कि आजादी के इतने वर्षों के बाद भी शोषण, अन्याय, छुआछूत, स्त्री–पुरुष असमानता का अस्तित्व बना हुआ है, जिसके कारण मानव अधिकारों का हनन आज भी किया जा रहा है।

वर्तमान समय में एक ओर जहाँ सारी दुनिया में अनेक विचारक यह महसूस कर रहे हैं कि फाँसी की सजा मानवाधिकारों का घोर उल्लंघन हैं। अतः फाँसी की सजा को प्रतिबंधित कर देना चाहिए। वहीं अमेरिका उन सबसे बड़े देशों में से एक है, जहाँ हर वर्ष सर्वाधिक संख्या में मृत्युदंड दिये जाते हैं। एमनेस्टी इंटरनेशनल की रिपोर्ट क॓अनुसार यद्यपि अमेरिका दुनिया का सबसे पुराना लोकतंत्र होने के साथ–साथ मानवाधिकार के मुद्दों पर अत्यन्त सजग है, परन्तु फाँसी की सजा का कार्यान्वयन करने वाले देशों में सबसे आगे है। दूसरे अन्य देशों में चीन, सऊदी अरब और ईरान मृत्युदंड देने में सबसे आगे हैं। एमनेस्टी की रिपोर्ट में राष्ट्रसंघ के मानवाधिकार आयोग से अनुरोध किया गया कि जेनेवा में वार्षिक अधिवेशन में वह विश्व के अधिकतर देशों से मृत्युदंड पर प्रतिबंध लगाने का प्रयास करें। साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर यह भी प्रयास हो रहा है कि बाल अपराधियों को मृत्युदंड किसी भी हालत में न दिया जाए। कुछ देश आज भी मृत्युदंड के आँकड़ें गुप्त रखते हैं, जिसके लिए एमनेस्टी ने गम्भीर चिन्ता व्यक्त की है।

इक्कीसवीं सदी की व्यापक तकनीकी, आर्थिक तरक्की की चकाचौंध के बीच कई अंधेरे आज भी आदिम युग के अवशेषों के रूप में यत्र–तत्र बिखरे हुए हैं। प्रतिदिन करोड़ों–अरबों का व्यापार करने वाले महानगर में आपको भूख भी आसपास ही कहीं दुबकी नजर आ जायेगी। पाँच सितारा स्कूलों के साये में ही निरक्षरता हाथ–पाँव मारती दिख जायेगी, मानव नस्ल के अधिक परिष्कृत, अधिक सुसंस्कृत होने के खुसफहमी भरे दावों के बीच मानव द्वारा मानव पर वीभत्सतम यातनाओं और अत्याचारों के रोंगटे खड़े कर देने वाले मामले सामने आते रहते हैं। विकास और परिष्कार की सैकड़ों साल की यात्रा के बाद भी आज हम प्रत्येक मानव को वे बुनियादी अधिकार दिलाने के लिए जूझ रहे हैं, जो सभ्यता की पहली चेतना के साथ ही सबको सहज उपलब्ध हो जाने चाहिए थे।

इसमें कोई शक नहीं कि इस दौरान मानवाधिकारों के क्षेत्र में एक तरफ निश्चित ही काफी तरक्की हुई है। इसके प्रति जागरूकता बढ़ी है, लेकिन आज भी मानवाधिकारों का हनन बदस्तूर जारी है। मानव–मानव के रूप में जीने के लिए संघर्षरत है। कहीं धनबल, बाहुबल, सामंतवाद अथवा राजनीतिक सत्ता का मद उसे उसके अधिकारों से वंचित कर रहा है, तो कहीं सत्ता की अकर्मण्यता एवं अनिच्छा इसे इन अधिकारों से दूर रखे हुए है। प्रारम्भ में मानव अधिकारों का हनन घर से शुरु हुआ। घरेलू हिंसा और मानसिक प्रताड़ना लगभग हर देश, हर समय, झोपड़पट्टी से लेकर आलीशान महलों तक यह रोग उपस्थित देखा गया है। समाज में धर्म, सम्प्रदाय, जाति, लिंग रंग आदि के नाम पर भेदभाव एवं प्रताड़ना किसी न किसी रूप में देखने को मिलती है, जो सम्मानजनक जीवन जीने के अधिकार को चुनौती देती रहती है। भारत में जहाँ साम्प्रदायिक एवं जातीय हिंसा आम बात है, वहीं सम्पूर्ण विश्व में भी नस्लीय हिंसा देखने को मिलती है। कहने को गुलामी प्रथा का उन्मूलन हो चुका है, लेकिन कर्ज, भूख और गरीबी के चक्रव्यूह में फंसे कई गुलाम आज भी मुक्ति की बाट जोह रहे हैं। अब भी यह संघर्ष जारी है। शिक्षा से वंचित रोजी–रोटी की जुगाड़ में जीवन बीत रहा है। बाल श्रम कानूनों को अगूँठा दिखाता हुआ समाज बचपन को असमय समाप्त करता जा रहा है।

चिकित्सा विज्ञान ने जहाँ एक ओर उल्लेखनीय उपलब्धियाँ दर्ज की हैं, वहीं आज भी मलेरिया, डेंगू ज्वर जैसे मामूली रोगों से लाखों जाने जा रही हैं। विडम्बना यह भी है कि खुद डाक्टर भी मानव अंगों की चोरी करके

अरबों रूपये कमा रहे हैं। कन्या भ्रूण हत्यायें होना मानव अधिकार के हनन का ज्वलंत प्रश्न है। दुख की बात यह है कि इतनी तेज प्रगति के बाद भी हम मानवाधिकार हनन के इस रूप को मिटा नहीं पाये हैं। हिरासत में यातना, प्रताड़ना यहाँ तक कि मृत्यु भी आम बात हो गयी है। कानून के रक्षक कानून की धज्जियाँ उड़ा देते हैं। एनकाउंटर के नाम पर सुनियोजित हत्यायें की जाती हैं। विकास के नाम पर सड़क, पुल, बाँध हो या फिर शापिंग माल, इनके निर्माण के पीछे अपना घर, अपनी जमीन और कई बार अपनी आजीविका भी विकास के नाम पर गरीब ही चुकाता है। अपना हक माँगने पर वह विकास विरोधी माना जाता है। समाज में हाशिए पर पड़ा व्यक्ति विकास के नाम पर धोखा पाता है या और अधिक हाशिए पर धकेल दिया जाता है, क्या यह समाज में गरीब तबके के अधिकारों का हनन नहीं है।

मानव अधिकारों का सम्बन्ध व्यक्ति की गरिमा से है एवं आत्मसम्मान का भाव, जो व्यक्तिगत पहचान को रेखांकित करता है तथा मानव समाज को आगे बढ़ता है। संक्षेप में कह सकते हैं कि मानवाधिकार मनुष्य के जीवन, उसके अस्तित्व और व्यक्तित्व के विकास के लिए अत्यन्त अनिवार्य है। दुनिया में सबसे अधिक अपराध महिलाओं के खिलाफ ही होते हैं। इसी कारण महिलाओं के मानवाधिकार अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाते हैं। विश्व के अधिकतर देशों में महिलाओं को विशेष अधिकार दिये गये हैं, ताकि वे सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकें। महिला आन्दोलन के दौर में एक ओर जहाँ महिलाओं को अधिक से अधिक अधिकार दिये जाने की कोशिश की जा रही है, वहीं दूसरी ओर महिलाओं के बीच भी अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता बढ़ी है। आधुनिक सभ्य समाज में भी महिलाओं के विरूद्ध हर तरफ अपराध बढ़ रहे हैं। घर हो या बाहर, स्कूल हो या सार्वजनिक स्थल, आफिस हर जगह महिलाओं को अनेक प्रकार के अपराधों का सामना करना पड़ता है। महिलाओं को संरक्षण प्रदान करने के लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ ने भी समय–समय पर काफी प्रयास किये हैं। भारतीय संस्कृति में महिलाओं को सदैव उच्च व सम्माननीय स्थिति प्राप्त रही है, परन्तु आज के वर्तमान युग में महिलाओं को अत्यन्त दयनीय हालत से गुजरना पड़ता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक आज भी महिलायें उपेक्षायें और तरह–तरह की वर्जनाओं की शिकार हैं। सर्वाधिक चिन्ताजनक पहलू यह है कि महिलाओं के कार्यों को न तो महत्व दिया जाता है और न ही उनका आर्थिक मूल्यांकन किया जाता है। जबकि आम महिला पुरुष से अधिक कार्य करती है। यूनेस्को के महिलाओं की दशा से सम्बन्धित अध्ययन से ज्ञात होता है कि विश्व में भारतीय महिलायें 99वें स्थान पर हैं। भारत में प्रतिवर्ष 150 लाख बच्चियां जन्म लेती हैं, जिनमें से 25 प्रतिशत की मृत्यु 15 वर्ष की उम्र से पहले ही हो जाती है। स्पष्ट है कि महिलायें अपने अधिकारों के साथ–साथ अस्तित्व के लिए भी जूझ रहीं हैं। महिलाओं का अपहरण एक गम्भीर सामाजिक अपराध होने के साथ–साथ मानवाधिकारों का हनन भी है। महिलाओं का अपहरण कामेच्छा की पूर्ति, बेचने हेतु, जबरन विवाह, वैश्यावृत्ति, आधिपत्य स्थापित करने की दृष्टि से, पुरुष द्वारा अपने अहं की तुष्टि हेतु किसी व्यक्ति विशेष से बदला लेने के लिए आदि अनेक कारणों से होता है। सामाजिक निन्दा, लोक–लाज एवं पुलिस के नकारात्मक दृष्टिकोण तथा असहयोगी व्यवहार के कारण ऐसी घटनाओं की रिपोर्ट भी दर्ज नहीं करायी जाती है। दहेज जैसी सामाजिक बुराई के कारण महिलाओं को ही तिरस्कार, अनादर एवं मानसिक शारीरिक यंत्रणाओं के दौर से गुजरना पड़ता है। अधिकतर समाजशास्त्रियों का मत है कि महिला हिंसा एवं अपराध के लिए समाज ही दोषी है। भारतीय समाज में संतान के रूप मे ंपुत्र को महत्व देना ही महिलाओं के विरूद्ध भेदभाव का प्रमुख आधार है। वर्तमान समय में अनेक महिला मानवाधिकार कार्यकर्ताओं ने यह मत व्यक्त किया गया है कि महिलाओं के व्यवसायीकरण पर तुरन्त रोक लगनी चाहिए। प्रचार के लिए महिलाओं के सौन्दर्य एवं शरीर का उपयोग बन्द होना चाहिए।

मानवाधिकारों के हनन के संदर्भ में यह बात भी उभर कर सामने आयी है कि नैतिक शिक्षा का अभाव महिलाओं के प्रति बढ़ रहे अत्याचार एवं उन्हें अधिकारों से वंचित रखने में काफी हद तक जिम्मेदार हैं। कानूनविद

न्यायालय की प्रक्रिया एवं विलम्ब को भी महिला उत्पीड़न के लिए दोषी मानते हैं। ऐसी भी धारणा है कि बलात्कार जैसे प्रकरणों की सुनवाई करने वाले न्यायाधीश भी कभी–कभी संवेदना शून्य हो जाते हैं। वे अभियोजिका का प्रतिपरीक्षण करते समय अभियोजिका की परेशानी एवं मर्यादा हनन पर ध्यान ही नहीं देते हैं। अनेक तथ्य इस बात को प्रमाणित करते हैं कि महिलाओं के प्रति होने वाले अपराध व शारीरिक हिंसा केवल भारत की ही नहीं, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय समस्या है। यद्यपि महिलाओं को भी उनके मानवाधिकारों से अवगत कराकर उन्हें सजग एवं जागरूक बनाने के प्रयास किये जा रहे हैं। फिर भी जब तक महिलायें अपने अधिकारों के प्रति सचेत नहीं होतीं, तब तक ये प्रयास सफल नहीं हो सकते हैं। महिलाओं को अपने अधिकारों हेतु स्वयं प्रयास करना होगा तथा अपने को बाजार की वस्तु या व्यापार की वस्तु के रूप में प्रस्तुत करने से अलग करना होगा। आधुनिकता सभ्यता के नाम पर परोसी जा रही नग्नता या अश्लीलता से महिलाओं को स्वयं ही मुक्त होना होगा। यही वे कारण या अवरोध हैं जिनके कारण महिलायें अपने मानवाधिकारों से वंचित रहती हैं।

भारत जैसे बहुभाषायी और बहुधार्मिक देश में मानवाधिकारों के प्रवर्तन में अनेक व्यवहारिक उलझने सामने आती रहती हैं। गरीबी, निरक्षरता, भुखमरी, पलायन, जातिवाद, विषमता, आतंकवाद, कुपोषण कुछ ऐसी ही उलझने हैं। जातिवादी हिंसा का वीभत्स रूप अचानक मानवाधिकारों के सामने अवरोध बनकर खड़ा हो जाता है। आज ऐसी सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों का निर्माण करने की आवश्यकता है, जिनमें मानव अधिकारों के उपभोग और उनकी वैधानिक मान्यता स्वीकृत हो और उनकी सुरक्षा हो। इसके बिना मानवाधिकारों की सभी घोषणायें मात्र कागजी खानापूर्ति बनी रहेंगी, वे कभी साकार रूप नहीं ले सकेंगी।

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

4

शिक्षा पर कोरोना वायरस का प्रभाव

डॉ. शिखा सक्सेना
सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग
डी.बी.एस. कालेज, कानपुर

आज दुनिया सबसे बड़े सार्वजनिक स्वास्थ्य जोखिम का सामना कर रही है जो विश्व व्यवस्था के सबसे बड़े और त्वरित पुनर्गठन में से एक है। मार्च 2020 के अंत तक, कोरोना महामारी 185 से अधिक देशों में फैल गई थी और परिणामस्वरूप सभी स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों को 90 प्रतिशत से अधिक को बंद कर दिया गया, जिसकी छात्र संख्या 1.38 बिलियन छात्रों के करीब थी।

इस महामारी ने शिक्षा व्यवस्था के लिए एक प्रश्नचिन्ह उत्पन्न कर दिया। कोरोना वायरस से शिक्षा व्यवस्था चरमरा गयी है। इस बीच लॉकडाउन के गंभीर आर्थिक प्रभावों को भी महसूस किया जाने लगा है और इसके परिणामस्वरूप सामाजिक परिवर्तन भी हुए हैं। वर्तमान में कोई नहीं जानता है कि इस आर्थिक कठोरता का अंतिम प्रभाव क्या है। यह खतरा खासतौर पर कम आय वाले परिवारों पर भारी पड़ता है। कम आय वाले परिवारों के कई छात्र आय की कमी के कारण अपनी शिक्षा जारी रखने की स्थिति में नहीं हैं, विशेषकर अनौपचारिक और असंगठित क्षेत्रों के लोग। यह विशेष रूप से विज्ञान और अन्य तकनीकी शिक्षा के लिए सही नहीं हो सकता है। इसी समय, निजी शिक्षण संस्थानों में अतिथि शिक्षक और एडहॉक शिक्षक अपनी नौकरी भी खो सकते हैं।

महामारी के परिणामस्वरूप अभी तक बहुत अधिक राजनीतिक परिवर्तन नहीं देखा गया है। सामाजिक परिवर्तन दिन–प्रतिदिन घरों में रहने के कारण उभर सकते हैं, छोटे परिवारों के भीतर और सीमित स्थान में समय बिताने के लिए मजबूर होते हैं। लॉकडाउन से प्रेरित तनाव का दीर्घकालिक प्रभाव हो सकता है, लेकिन यह उच्च शिक्षा प्रणाली को कैसे प्रभावित करेगा अभी भविष्यवाणी करना मुश्किल है। कुछ सबूत हैं कि घरेलू हिंसा बढ़ गई है, और छात्रों की शिक्षा पर कुछ प्रभाव पड़ सकते हैं, खासकर अगर परिवार लॉकडाउन के परिणामस्वरूप टूट जाते हैं। किसी भी मामले में, परिणामी आर्थिक परिवर्तन उच्च शिक्षा प्रणाली को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करना सुनिश्चित करते हैं।

मार्च, 2020 के तीसरे सप्ताह में लॉकडाउन लागू होने से पहले ही, राज्य सरकारों ने अपनी व्यक्तिगत क्षमताओं में स्कूलों और कॉलेजों और अन्य शैक्षणिक संस्थानों को मार्च के मध्य से एक निश्चित अवधि के लिए बंद करने की घोषणा की। बंद को कुछ और समय के लिए बढ़ाया गया और अंत में लॉकडाउन घोषित किया गया।

पूर्ण लॉकडाउन से ठीक पहले, अंतर्राष्ट्रीय उड़ानों को देश में छोड़ने और प्रवेश करने पर प्रतिबंध लगा दिया गया था, जिससे लोगों को अनुसूचित अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार, कार्यशालाओं में भाग लेने के लिए विदेश जाने से रोक दिया गया था और कक्षाओं और व्याख्यानों आदि को लेने और देने के लिए विदेशी विश्वविद्यालयों का दौरा करने के बाद भी इसे रद्द कर दिया गया था। राष्ट्रीय और घरेलू उड़ानों में भी इस प्रकार लोगों को देश के अंदर भी शैक्षिक उद्देश्य के लिए स्थानों का दौरा करने में सक्षम नहीं किया गया। अंत में लॉकडाउन के साथ, ट्रेनों ने भी चलना बंद कर दिया और इस तरह अनुसूचित संगोष्ठियों आदि को सभी चरणों, जैसे, राष्ट्रीय, राज्य और क्षेत्रीय और यहां तक कि स्थानीय में रद्द करना पड़ा। न केवल सेमिनारों को रद्द कर दिया गया है, यहां तक कि अन्य उद्देश्यों के लिए शैक्षिक संस्थानों का दौरा भी स्थगित करना पड़ा, उदाहरण के लिए, थीसिस, परियोजनाओं आदि के लिए चिरायु लेना और अन्य प्रशासनिक उद्देश्यों के लिए।

देश में पूर्ण तालाबंदी के साथ, शिक्षा क्षेत्र शुरू में एक ठहराव पर आ गया। यह एक अभूतपूर्व और अपरिचित

स्थिति है, और किसी को अभी भी नहीं पता है कि स्थिति कब सामान्य होगी। और ऐसे में शिक्षा की गुणवत्ता को किस तरह बनाये रखा जा सकेगा। यह भी सच है कि जब तक सामाजिक दूरी करने के उपायों को नहीं हटाया जाएगा, तब तक सामान्य स्थिति वापस लाना मुश्किल होगा। यह एक ज्ञात तथ्य है कि कक्षाओं में सामूहिक भीड़ के कारण बीमारी के प्रसार के लिए शैक्षणिक संस्थान सबसे अधिक असुरक्षित हैं। इसलिए, जब तक कि संक्रमण राज्यों से पूरी तरह से समाप्त नहीं हो जाता है, तब तक छात्रों को स्कूलों, कॉलेजों, विश्वविद्यालयों और अन्य शैक्षणिक संस्थानों में वापस लाना मुश्किल है। कक्षाओं में सामान्य कक्षाएं फिर से शुरू करना इस समय एक दूर का सपना लगता है।

वर्तमान परिस्थितियाँ किस सीमा तक शिक्षा के गुणवत्ता के स्तर को बनाये रखने में सफल हो सकती हैं यह एक प्रश्नचिन्ह है। शिक्षा, शिक्षण संस्थायें क्या वास्तव में तकनीकी रूप से सक्षम हैं? क्या छात्र की आर्थिक व मानसिक स्थिति इसके लिये तैयार है यह सब प्रश्न एक असंदेह की स्थिति उत्पन्न करते हैं।

स्थिति बहुत अलग है जब कोई ग्रामीण कॉलेजों और विश्वविद्यालयों को देखता है। ग्रामीण क्षेत्रों में कई छात्रों के पास स्मार्टफोन या कंप्यूटर तक पहुँच नहीं हो सकती है। यदि वे करते हैं, तो भी नेट कनेक्टिविटी शहरी क्षेत्रों के समान उतनी नहीं हो सकती है। किसी भी स्थिति में, अधिकांश अभिजात वर्ग संस्थानों के कई छात्र, IIT, इन कारणों से अपने घरों से ऑनलाइन कक्षाओं तक पहुँच प्राप्त करने में सक्षम नहीं हैं। इसलिए कुछ नहीं यदि सभी विश्वविद्यालयों, और कुछ कॉलेजों ने ऑनलाइन कक्षाएं शुरू की हैं। अन्य उच्च शिक्षण संस्थानों के बारे में भी यही कहा जा सकता है, वे सरकारी, सरकारी सहायता प्राप्त या स्वायत्त हैं। निजी संस्थान आम तौर पर संपन्न शहरी वर्गों के छात्रों को आकर्षित करते हैं, और इसलिए इस अभूतपूर्व स्थिति से निपटने में समस्याओं का सामना नहीं करते हैं।

स्कूल शिक्षा प्रणाली एक निराशाजनक तस्वीर को चित्रित करती है। देश में कई तरह के स्कूल हैं। सरकारी, सरकारी सहायता प्राप्त, निजी स्कूल मिशनरियों द्वारा और साथ ही सार्वजनिक और निजी ट्रस्टों द्वारा संचालित हैं। सर्व शिक्षा अभियान योजना के तहत कुलीन ''पब्लिक स्कूल'' और असंख्य ग्राम स्तरीय प्राथमिक स्कूल भी हैं, जो समाज के निम्न–गरीबी–स्तर के वर्गों के लिए उत्तरार्द्ध है। अधिकांश बच्चे (संख्या के अनुसार) गांव के प्राथमिक और उच्च प्राथमिक स्कूलों में जाते हैं। शहरी क्षेत्रों में भी, ऐसे कई प्राथमिक स्कूल गरीब वर्गों को कक्षाएं देते हैं। अधिकांश झुग्गी के बच्चे इन स्कूलों में जाते हैं। आर्थिक विभाजन और ग्रामीण–शहरी विभाजन के अलावा एक भाषा विभाजन भी है। वर्नाक्यूलर मीडियम स्कूल बड़े पैमाने पर (अपवादों के साथ) गरीबों को पूरा करते हैं जबकि अंग्रेजी माध्यम स्कूल समाज के अन्य वर्गों को पूरा करते हैं। यहां फिर से डिजिटल डिवाइड का पहलू आता है। अधिकांश गरीब छात्रों के पास स्मार्टफोन तक पहुंच नहीं है, और अगर वे करते हैं, तो भी नेट कनेक्टिविटी खराब है और सामग्री अक्सर क्षेत्रीय भाषा में उपलब्ध नहीं है। यह शिक्षा की पहुंच में भेदभाव को जन्म देता है।

आज शहरी क्षेत्रों के कई स्कूलों में ऑनलाइन कक्षाएं चल रही हैं, जबकि अधिकांश ग्रामीण स्कूल नहीं हैं। बहुत छोटे बच्चे ऑनलाइन प्रक्रियाओं के माध्यम से सीखने में सक्षम नहीं हैं क्योंकि वे न तो कंप्यूटर और न ही मोबाइल फोन संभाल सकते हैं। कई घरों में, कंप्यूटर नहीं है, और कई में, बच्चों को स्मार्टफोन की अनुमति नहीं है। वर्ग की परवाह किए बिना ये दोनों समस्याएं मौजूद हैं। इसलिए, स्कूल स्तर पर डिजिटल विभाजन फूट पड़ने और हैव–नॉट्स के बीच अंतर पैदा करता है।

परीक्षाओं को या तो स्थगित कर दिया गया है या रद्द कर दिया गया है। इंटरमीडिएट कक्षा वार्षिक परीक्षा या बोर्ड परीक्षा रद्द करने से केवल छात्रों की नींव कमजोर होगी। हालांकि यह सच है कि देश में मौजूदा बुनियादी ढांचे को देखते हुए इस समय ऑनलाइन परीक्षाएं संभव नहीं हैं, पहले से ही परीक्षाओं को रद्द करना सीखने की गति को कम कर देता है। इस तरह के कठोर निर्णय की घोषणा करने से पहले अधिकारी तालाबंदी का इंतजार कर सकते थे।

ऑस्ट्रेलिया, यूके, न्यूजीलैंड और कनाडा जैसे कई देशों में विश्वविद्यालय चीन और भारत के छात्रों पर अत्यधिक

निर्भर हैं। कई माता–पिता महामारी से उच्च जोखिम के कारण उच्च शिक्षा के लिए छात्रों को विदेश भेजने से बचेंगे।

एक और नकारात्मक प्रभाव छात्रों द्वारा निष्क्रिय सीखना है। बिना किसी योजना के ऑनलाइन सीखने का अचानक बदलाव – विशेष रूप से भारत जैसे देशों में जहां ऑनलाइन सीखने के लिए रीढ़ तैयार नहीं थी और पाठ्यक्रम को इस तरह के प्रारूप के लिए तैयार नहीं किया गया था – हमारे अधिकांश छात्रों के निष्क्रिय शिक्षार्थी बनने का जोखिम पैदा कर दिया है और वे ध्यान की अवधि के निम्न स्तर के कारण शिक्षा खो रहे हैं।

इसके साथ यह भी है कि हम भारत सहित कई विकासशील राष्ट्रों का हिस्सा डिजिटल डिवाइड के कारण अछूते छात्र आबादी का एक बड़ा हिस्सा छोड़ सकते हैं।

अब हम महसूस करने लगे हैं कि ऑनलाइन शिक्षण सुस्त हो सकता है क्योंकि यह निष्क्रिय शिक्षार्थियों का एक नया समूह बना रहा है जो नई चुनौतियों का सामना कर सकता है।

ऑनलाइन शिक्षा के लिए इस अनपेक्षित शिक्षकों को छोड़कर शिक्षा सीखना एक विशेष प्रकार की कार्यप्रणाली है और सभी शिक्षक इस पर अच्छे नहीं होते हैं या कम से कम यह सभी आमने–सामने सीखने से लेकर ऑनलाइन सीखने तक के लिए तैयार नहीं थे।

इस प्रकार, अधिकांश शिक्षक केवल जूम के रूप में वीडियो प्लेटफार्मों पर व्याख्यान आयोजित कर रहे हैं, जो विशेष रूप से उद्देश्य के लिए डिजाइन किए गए समर्पित ऑनलाइन प्लेटफॉर्म की अनुपस्थिति में वास्तविक ऑनलाइन सीखना नहीं हो सकता है।

एक जोखिम है कि ऐसी स्थिति में, सीखने के परिणाम प्राप्त नहीं हो सकते हैं और यह केवल छात्रों को उलझाने के परिणामस्वरूप हो सकता है। अनुसंधान एक नकारात्मक तरीके से प्रभावित हुआ है। हालांकि यह सच है कि गैर–लैब आधारित शोध छात्रों की दृढ़ता और संरक्षक के साथ टेलीफोन कॉल या ईमेल के माध्यम से संपर्क किया जा सकता है, लेकिन आमने–सामने के पत्राचार के साथ, आमने–सामने चर्चा का कोई विकल्प नहीं है। कई मामलों में, जहां माध्यमिक डेटा की आवश्यकता होती है, छात्र संस्थान जैसे स्रोतों, कार्यालयों और पुस्तकालयों का दौरा नहीं कर सकते हैं, क्योंकि सभी डेटा ऑनलाइन उपलब्ध नहीं हैं। इसी तरह, प्राथमिक डेटा संग्रह भी बंद हो गया है क्योंकि स्रोतों का दौरा करना मना है, और इसलिए अनुसंधान में गंभीर बाधा है। आमने–सामने के पत्राचार होने पर ही उपासना में सुधार होता है। प्रयोगशाला आधारित विषयों में, अनुसंधान पूरी तरह से ठप है। डॉक्टरल अनुसंधान को प्राथमिक और उन्नत दोनों चरणों में बाधित किया गया है।

लेकिन हम कोविड –19 के कारण शिक्षा में सकारात्मक बदलाव देख सकते हैं। कोई भी परिवर्तन जो इतना विघटनकारी है, वह अपने साथ कुछ नए अवसरों को लाने की संभावना रखता है जो दुनिया भर में उच्च शिक्षा प्रणाली को बदल देगा और विशेष रूप से भारत जैसे देश में जो इस क्षेत्र में एक नियोजित सुधार लाने की योजना बना रहा है।

पहला – एक ब्लाइंड लर्निंग में वृद्धि हुई है। विश्वविद्यालयों और कॉलेजों को मिश्रित शिक्षा के एक मॉडल में स्थानांतरित कर दिया जाएगा जहां ऑनलाइन मॉडल के साथ–साथ वितरण का सामना करना पड़ता है। इसके लिए सभी शिक्षकों को अधिक प्रौद्योगिकी प्रेमी बनना होगा और कुछ प्रशिक्षण से गुजरकर खुद को उस स्तर तक लाना होगा जिसकी आवश्यकता होगी। वितरण के नए तरीकों और सीखने के परिणामों के आकलन को अपनाना होगा जो पाठ्यक्रम विकास और शिक्षाशास्त्र के क्षेत्र में एक बड़े परिवर्तन के लिए अपार अवसर खोलता है।

दूसरा – प्रबंधन प्रणाली को नया मानदंड सीखना है। एक महान अवसर उन कंपनियों के लिए खुल जाएगा जो विश्वविद्यालयों और कॉलेजों द्वारा उपयोग के लिए शिक्षण प्रबंधन प्रणालियों को विकसित और मजबूत कर रहे हैं। यह बहुत तेज गति से बढ़ने की क्षमता रखता है, लेकिन सभी संस्थानों द्वारा उपयोग के लिए उचित मूल्य का होना चाहिए।

तीसरा – सामग्री सीखने में सुधार है। विश्वविद्यालयों और कॉलेजों के लिए सीखने और सीखने की प्रक्रिया

में उपयोग की जाने वाली शिक्षण सामग्री की गुणवत्ता में सुधार शुरू करने का एक बड़ा अवसर है।

चूंकि मिश्रित शिक्षण सीखने का नया प्रारूप होगा, इसलिए विशेष रूप से गुणवत्ता सामग्री को डिजाइन करने और वितरित करने के नए तरीके खोजने के लिए एक धक्का होगा, इस तथ्य के कारण कि शिक्षा प्रबंधन प्रणालियों का उपयोग शिक्षाविदों में अधिक खुलापन और पारदर्शिता लाएगा।

चौथा – एक सहयोगी काम में वृद्धि है। भारत जैसे देश में बहुत हद तक शिक्षण समुदाय बहुत अछूता रहा है। एक नया अवसर है जहां सहयोगी शिक्षण और सीखने के नए रूप ले सकते हैं और यहां तक कि उनका मुद्रीकरण भी किया जा सकता है। संकाय सदस्य शिक्षक प्रतिस्पर्धी संस्थानों के छात्रों तक भी ऑनलाइन पाठ्यक्रम पहुंचा सकते हैं। राष्ट्र भर के संकाय / शिक्षकों के बीच एक दूसरे से लाभ उठाने के लिए सहयोग भी हो सकता है।

अंत में, यह उम्मीद की जाती है कि टेलीकांफ्रेंसिंग के अवसरों में बड़े पैमाने पर वृद्धि होगी जो यात्रा पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकती है। बड़ी संख्या में अकादमिक बैठकें, सेमिनार और सम्मेलन ऑनलाइन चलेंगे और इस बात की संभावना है कि ऑनलाइन कॉन्फ्रेंसिंग प्लेटफॉर्म का कुछ नया रूप एक बिजनेस मॉडल के रूप में सामने आएगा।

ऑनलाइन कक्षाएं – कक्षा के व्याख्यान को प्रतिस्थापित करने में सक्षम नहीं हैं। एक कक्षा में आवश्यक सहभागिता उत्पन्न करने के पूर्व शायद ही कभी सक्षम होता है। इसके अलावा, शिक्षकों की बॉडी लैंग्वेज, जो कक्षा के व्याख्यान का एक हिस्सा और पार्सल है और उनकी सफलता के लिए जरूरी है, ऑनलाइन कक्षाओं में भी गायब है। प्रौद्योगिकी के उपयोग से न केवल अधिक भेदभाव होगा, बल्कि कुछ व्यावहारिक समस्याएं भी पैदा होंगी। इससे कक्षा में वांछित बातचीत का भी अभाव होगा।

यह कहना सुरक्षित है कि वर्तमान महामारी न केवल अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव डालेगी, बल्कि यह भारत में शिक्षा क्षेत्र पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालेगी। वर्तमान में देश में व्याप्त असामान्य स्थिति से बाहर आने में शिक्षा क्षेत्र को कितना समय लगेगा, यह अनिश्चितता अभी व्याप्त है।

संदर्भ संकेत

1. https://plus-google-com/+UNESCO (2020–03–04)। 'शिक्षा : व्यवधान से वसूली तक'। यूनेस्को। 2020–06–10
2. https://plus-google-com/+UNESCO (2020–03–04)। "COVID–19 शैक्षिक व्यवधान और प्रतिक्रिया''। यूनेस्को। 2020–05–24
3. ''मई / जून 2020 की परीक्षा में कैम्ब्रिज इंटरनेशनल से अपडेट''। कैम्ब्रिज इंटरनेशनल परीक्षा। 23 मार्च 2020
4. ''मई 2020 की परीक्षाएं अब आयोजित नहीं की जाएंगी।'' अंतरराष्ट्रीय स्तर। 23 मार्च 2020. 28 मार्च 2020
5. ''दूरस्थ शिक्षा समाधान।'' यूनेस्को। 2020/03/05। 2020–03–23 को प्राप्त किया गया।

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में नई तालीम के निहितार्थ

शालिनी सिंह
असि0 प्रो0 (बी0एड0)
शहीद मंगल पाण्डे राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मेरठ, उ0प्र0

शिक्षा एक प्रकाश–पुंज है जो व्यक्ति के भीतर निर्मित अज्ञान के अन्धकार को दूर करके ज्योतिपुंज का प्रकाश भरती है। शिक्षा मनुष्य को उसके सर्वश्रेष्ठ के दर्शन कराती है, क्योकि यदि शिक्षा नही होती तो मनुष्य की अन्तर्निहित शक्तियों का विकास कदापि नही हो पाता। प्राचीन काल से ही शिक्षा को कल्पतरू मानकर इसे सभी अभीप्सितों की पूर्ति का साधन बताया गया है। शिक्षा के द्वारा ही सभी क्षेत्रों में मनोवांछित की प्राप्ति की जा सकती है।

महात्मा गांधी के शब्दों में, ''शिक्षा बालक तथा व्यक्ति के शरीर, मन तथा आत्मा की सर्वोत्तम का सामान्य प्रकटीकरण है।'' शिक्षा व्यक्ति के शारीरिक बौद्धिक, नैतिक और आर्थिक विकास से संबंधित है। शिक्षा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास को लक्षित करती है। शिक्षा राष्ट्र के विकास का आधार स्तंभ है। ''नयी तालीम'' सामाजिक परिवर्तन के लिए शिक्षा है। नई तालीम' शिक्षा का उद्देश्य सभी का शैक्षणिक, आर्थिक और सामाजिक विकास करना है विशेषतः समाज के पिछड़े वर्गों का शोषणमुक्त तथा समानता आधारित नव समाज का निर्माण करना है।

गाँधी जी की नई तालीम भारत के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं बहुमूल्य देन है। गाँधी जी के अनुसार नयी तालीम भारत के लिए उनका सर्वश्रेष्ठ योगदान है। गाँधी जी की नई तालीम का दर्शन एवं प्रक्रिया का प्रादुर्भाव भारत ही नही अपितु सम्पूर्ण मानव समाज को नयी दिशा प्रदान करने में सक्षम है। गाँधी जी की नई तालीम को बुनियादी शिक्षा, वर्धा योजना, बुनियादी तालीम तथा बेसिक शिक्षा के नाम से भी जाना जाता है।

सन् 1935 ई० में गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ऐक्ट में राष्ट्रीय पुनर्निर्माण कार्यक्रम की चौदह आधार शिलाओं में बुनियादी शिक्षा को भी सम्मिलित किया गया है। गाँधी जी बुनियादी शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का एक आधार मानते थे। उनका मानना था कि शिक्षा व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक पक्षों के पुनर्निर्माण द्वारा सामाजिक क्रान्ति का आधार है जो आत्मनिर्भरता एवं विकास का आधार है। शिक्षा सम्बन्धी विचारों से देशवासियों को परिचित कराने हेतु महात्मा गाँधी ने 1937 में हरिजन नामक समाचार पत्र मे लेखों की एक श्रृंखला प्रस्तुत की। महात्मा गाँधी के शिक्षा सम्बन्धी विचारों ने समस्त जनमानस की शैक्षिक सोंच को उद्वेलित कर दिया।

1937 में वर्धा के मारवाड़ी हाईस्कूल में 23 अक्टूबर को महात्मा गाँधी जी की अध्यक्षता में अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन में नयी तालीम की संकल्पना रखी गयी। इस सम्मेलन को वर्धा शिक्षा सम्मेलन के नाम से भी जाना जाता है इससे पूर्व नयी तालीम को हिन्दुस्तानी तालीमी संघ के नाम से भी जाना जाता था। इस अधिवेशन में महात्मा गाँधी, सरदार बल्लभ भाई पटेल, डॉ राजेन्द्र प्रसाद, आचार्य विनोबा भावे, आशा देवी, आर्यनायकम, काका साहेब कालेलकर, आचार्य जे0 बी0 कृपलानी, डॉ जाकिर हुसैन, डॉ श्रीकृष्ण सिंह, डॉ अनुग्रह नारायण सिंह, जयरामदास, दौलतराम आदि अनेक शिक्षामित्रों, राष्ट्रीय नेताओं और समाज सुधारकों ने भाग लिया। इस सम्मेलन में महात्मा गाँधी ने नयी तालीम शिक्षा सम्बन्धी अपनी धारणा तथा इसकी योजना प्रस्तुत की। गाँधी जी ने कहा– 'देश की वर्तमान शिक्षा पद्धति किसी भी तरह की आवश्यकताओं को पूरा नही कर सकती है। इस शिक्षा के द्वारा जो भी लाभ होता है, उससे देश का कर देने वाला प्रमुख वर्ग वंचित रह जाता है...।''

वर्धा शिक्षा सम्मेलन में गाँधी जी द्वारा प्रस्तुत नई तालीम हेतु बेसिक शिक्षा योजना को कार्यरूप प्रदान करने के लिए जामिया मिलिया के तत्कालीन प्रधानाचार्य डॉ जाकिर हुसैन की अध्यक्षता में 1937 में एक समिति का गठन

किया गया। 1938 में जाकिर हुसैन समिति ने नयी तालीम हेतु प्रतिवेदन हरिपुरा कांग्रेस अधिवेशन में प्रस्तुत किया। जाकिर हुसैन समिति के द्वारा प्रस्तुत शिक्षा योजना ही वर्धा शिक्षा योजना के नाम से प्रचलित है। बेसिक राष्ट्रीय शिक्षा के कार्यक्रम को समुचित ढंग से तैयार करने के लिए एक अखिल भारतीय परिषद का भी गठन किया गया जिसे 'हिन्दुस्तानी तालीमी संघ का नाम दिया गया।

नई तालीम /बेसिक शिक्षा का अर्थ

गाँधी जी के अनुसार नई तालीम शिक्षा बालक के शरीर, मन तथा आत्मा की क्षमताओं का बाह्य प्रकटीकरण है। शिक्षा केवल अक्षर–ज्ञान प्रदान करना नहीं है। शिक्षा का प्रारम्भ शिल्प सिखाकर किया जाये। शिल्प की शिक्षा इस प्रकार दी जाये कि बालक उसके सामाजिक एवं वैज्ञानिक महत्व को समझे एवं स्वावलम्बी बन सके। शिल्प की शिक्षा प्राथमिक स्तर अर्थात् कक्षा 1 से ही सूत कातना, रूई से पोनी बनाना, सूत की गुड़िया, बैठने के आसन, रूमाल, चादर, काष्ठ, बागवानी, चर्मशिल्प आदि के द्वारा दी जाये। गाँधी जी कहते थे कि शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक और मनुष्य में शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक शाक्तियों के सर्वोत्तम विकास से है। अतः मैं बालक की शिक्षा का प्रारम्भ उसे एक उपयोगी हस्तशिल्प सिखाकर और जिस समय से वह अपनी शिक्षा आरम्भ करता है, उसी समय से उसे उत्पादन करने के योग्य बनाकर आरम्भ करना चाहता हूँ।

नई तालीम शिक्षा के विषय में गाँधी जी का दृष्टिकोण वस्तुतः व्यवसायपरक था। बालक को शिक्षा के साथ–साथ कुछ धनोपार्जन भी करना चाहिए, ताकि वह आत्मनिर्भर बन सके। विद्यार्थी की शिक्षा रोजगारपरक होनी चाहिए ताकि शिक्षा उसके जीविकोपार्जन में सहायता कर सके, जिससे विद्यार्थी समाज में उत्पादक कार्य कर सके। आधारभूत शिल्प द्वारा व्यक्ति अपने जीवन का निर्वाह सफलतापूर्वक कर सकता है अतः शिक्षा जीवन की बुनियाद से जुड़ी होनी चाहिए।

बेसिक शिक्षा के उद्देश्य

महात्मा गाँधी ने बेसिक शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्यों को पूर्णता प्रदान किया –

1. बालकों का शारीरिक एवं मानसिक विकास करना।
2. बालकों का हस्तशिल्प के माध्यम से व्यवसायिक विकास करना।
3. बालकों में अपनी संस्कृति के प्रति अनुराग उत्पन्न करना।
4. बालकों का नैतिक एवं चारित्रिक उन्नयन करना।
5. बालकों को आर्थिक दृष्टि से सबल बनाना।
6. श्रम के प्रति जागरूकता पैदा करना।
7. उत्तम नागरिकता के गुणों का विकास करना।
8. हाथ, हृदय और आत्मा का संतुलित विकास करना।
9. स्वावलम्बन एवं आत्मनिर्भरता के गुणों का विकास करना।
10. सब के उदय (सर्वोदय) हेतु सामाजिक संरचना विनिर्मित करना।

नई तालीम शिक्षा की रूपरेखा

महात्मा गाँधी द्वारा वर्धा शिक्षा सम्मेलन में अग्रांकित सुझाव दिये गये –

1. राष्ट्र के समस्त बच्चों को सात वर्ष की निःशुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की जाये।
2. शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होनी चाहिए।
3. प्राथमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम कम से कम सात वर्ष का होना चाहिए। जिसके द्वारा मैट्रिक तक का उच्च ज्ञान प्रदान किया जा सकें।
4. अंग्रेजी के स्थान पर कोई शिल्प कार्य पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाये।

5. छात्रों के सर्वांगीण विकास को ध्यान में रखते हुए शिक्षा किसी उद्योग के माध्यम से प्रदान की जाये ताकि शिक्षा पर होने वाला खर्च भी पूरा हो सके।
6. सरकार छात्रों द्वारा बनाई हुई चीजों को राज्य द्वारा निश्चित की गई कीमत पर खरीद लें।
7. शिक्षा की प्रक्रिया सात वर्ष की अवधि में किसी उत्पादक शारीरिक कार्य पर केन्द्रित होनी चाहिए।
8. बच्चों में विकसित की जाने वाली सभी योग्यताओं एवं प्रशिक्षण यथासम्भव बालक के वातावरण को ध्यान में रखकर हस्तशिल्प से सम्बधित होना चाहिए।
9. हस्तशिल्प आधारित शिक्षा की यह प्रणाली अध्यापकों के वेतन का व्यय वहन करने योग्य हो सकेगी।
10. पाठ्यक्रम बालकों की आवश्यकताओं के आधार पर बनाया जाये।
11. छात्रों में विकसित की जाने वाली योग्यतायें तथा दिया जाने वाला प्रशिक्षण किसी केन्द्रीय हस्तशिल्प, जो कि बालक के वातावरण से लिया जाये, से सम्बन्धित होना चाहिए।
12. पाठ्यक्रम में अंग्रेजी व धर्म को स्थान नही दिया जाना चाहिए।
13. कक्षा पांच तक सह–शिक्षा एवं कक्षा पांच के उपरान्त बालक एवं बालिकाओं हेतु पृथक विद्यालयों की व्यवस्था की जाये।
14. कक्षा 6 और 7 में बालिकाये आधारभूत शिल्प की जगह गृह विज्ञान का अध्ययन कर सकती है।
15. कक्षा 7 और 8 में संस्कृत, वाणिज्य, आधुनिक भारतीय भाषा की व्यवस्था की जाये।

नई तालीम शिक्षा की समय सारिणी

बेसिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में आधारभूत शिल्प (कताई, बुनाई, काष्ठ शिल्प, बागवानी, चर्मशिल्प या कोई अन्य) मातृभाषा, गणित, सामाजिक अध्ययन, सामान्य विज्ञान, कला व संगीत को सम्मिलित किया जाये। शिक्षा की अवधि साढ़े पांच घंटे रखी जाये। साढ़े पांच घंटे की स्कूल अवधि को निम्नानुसार विभक्त किया जायेः–

विषय	समय अवधि
शिल्प	3 घंटा 20 मिनट
संगीत, कला व गणित	40 मिनट
मातृभाषा	40 मिनट
सामाजिक अध्ययन / विज्ञान	30 मिनट
शारीरिक शिक्षा	10 मिनट
अल्पावकाश	10 मिनट

बेसिक शिक्षा योजना के गुण

महात्मा गाँधी द्वारा प्रणीत बेसिक शिक्षा योजना में निम्नलिखित गुण समाहित हैं–

1. जन शिक्षा की सर्वसुलभता हेतु अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था।
2. बालक की रूचि, आवश्यकता व योग्यता पर आधरित शिक्षा व्यवस्था।
3. शिक्षा के द्वारा आत्मनिर्भरता एवं स्वावलम्बन की भावना का विकास।
4. रूचिकर, नमनीय एवं गतिशील शिक्षा व्यवस्था।
5. हाथ, हृदय और आत्मा में अद्भुत समन्वय युक्त शिक्षा व्यवस्था।
6. शिल्प के माध्यम से विद्यार्थियों में श्रम के प्रति निष्ठा का विकास।
7. सभी लोगों के लिये समान रूप से उपयोगी शिक्षा व्यवस्था।
8. मातृभाषा के माध्यम से ज्ञान की बारीकियों का बोध कराने वाली शिक्षा व्यवस्था।

9. भारतीय संस्कृति पर आधारित तथा जीवन में तालमेल बनाने वाली गतिशील शिक्षा–व्यवस्था।
10. विविध विषयों से सहसम्बन्धित समवाय पद्वति पर आधारित शिक्षा व्यवस्था।
11. परीक्षा के भय से मुक्ति देने वाली शिक्षा व्यवस्था।
12. पाठ्यसहगामी क्रियाओं से सम्पृक्त शिक्षा व्यवस्था।
13. बेसिक शिक्षा योजना विद्यालय, घर और समाज में सामंजस्य का विकास करती है।
14. बेसिक शिक्षा केवल प्रशिक्षित शिक्षक ही दे सकते हैं।

निष्कर्ष –

अपनी समकालीन परिस्थितियों में नई तालीम की सैद्धान्तिक संकल्पना का राष्ट्रीय स्तर पर जोरदार स्वागत किया गया। परन्तु व्यावहारिक धरातल पर इसे सफल बनाने हेतु सार्थक प्रयास नहीं किये गये। आज वर्तमान में जनसंख्या के बढ़ते दबाव के कारण राष्ट्रीय जरूरतों को पूरा करने वाली शिक्षा की मांग दिनों–दिन प्रबल होती जा रही है। शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 भी अपेक्षित परिणाम नहीं प्राप्त कर सका। 14 वर्ष तक के बच्चों की बुनियादी शिक्षा का स्वप्न अभी तक साकार नहीं हो सका। शैक्षिक बेरोजगारी लगातार विकराल रूप धारण करती जा रही है। ऐसी परिस्थितियों में राष्ट्र के लिये सर्वाधिक आवश्यक है कि गांधी जी की नई तालीम को पुनः संजीवनी प्रदान की जाये। गांधी जी ने कहा भी था कि नई तालीम का विचार भारत के लिये उनका सर्वश्रेष्ठ योगदान है। इस विचार को साकार करने का यह सटीक समय है। अतः आवश्यक है कि गांधी जी की शिल्प आधारित आजीविकोन्मुखी नई तालीम के स्वप्न को पूर्ण करने के सार्थक प्रयत्न किये जाने चाहिये। अस्तु नई तालीम हेतु एक दूरदर्शी राष्ट्रीय योजना तैयार की जाये जिसमें सार्वभौमिक, निःशुल्क, स्वावलम्बी, शिल्प आधारित शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया जाये। नई तालीम के मूलभूत सिद्धान्त, उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियाँ जैसे बालकों की रूचि व अनिवार्य शिक्षा, उपयोग आधारित शिक्षा, भौगोलिक जरूरतों पर आधारित शिक्षा, मातृभाषा का अध्ययन, अनुभव केन्द्रित शिक्षा आदि आज न सिर्फ छात्रों, विद्यालय व समाज के लिये सर्वाधिक प्रासंगिक हैं, अपितु शिक्षा की सबसे बड़ी जरूरत भी है। इस प्रकार की शिक्षा से जहां छात्रों को स्वावलम्बी बनाने में सहायता मिलेगी, वहीं छात्रों के सर्वोत्तम शारीरिक, मानसिक, नैतिक, सामाजिक, आध्यात्मिक विकास में भी मदद मिलेगी और अन्ततः गांधी जी के सर्वोदय समाज के स्वप्न को साकार कर हम उन्हें राष्ट्र की ओर से कृतज्ञ श्रद्धांजलि दे सकेंगे।

सन्दर्भ संकेत

1. कुमार कृष्ण, शिक्षा के विषय पर महात्मा गांधी के विचार।
2. डॉ0 ओड, लक्ष्मीकांत 2014, शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि जयपुर, राजस्थान, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
3. नई तालीम की कहानी https://pdfbooks.ourhindi.com
4. नई तालीम नया परिप्रेक्ष्य https://www.pustak.org
5. प्रो0 कैलाश चन्द, लेख– नई तालीम को..... https://www.jagran.com
6. प्रो0 रमन बिहारी लाल, डॉ0 कृष्णकान्त, समकालीन भारत और शिक्षा, www.bookmandelhi.com
7. योजना, फरवरी, नई दिल्ली, अंक–2
8. राजीव मालवीय, उदीयमान भारत समाज में शिक्षक, आर. लाल. पब्लिकेशन, मेरठ।
9. विकिपीडिया, वर्धा शिक्षा योजना https://hi.mwikipedia.org
10. वंशीधर श्रीवास्तव, नई तालीम, https://epustakalay.com

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

विशिष्ट विद्यार्थियों के परिप्रेक्ष्य में अधिगम शैलियों का अनुप्रयोग

डॉ० अर्जुन प्रसाद
विशेष शिक्षक, श्रवण बाधितार्थ विभाग, विशेष शिक्षा संकाय
डॉ० शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

प्रस्तावना – अधिगम अर्थात् सीखना एक व्यापक, सतत् एवं जीवन पर्यन्त चलनेवाली महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। मनुष्य जन्म के उपरान्त सीखना प्रारम्भ कर देता है और जीवन पर्यन्त कुछ न कुछ सीखता रहता है। जिस व्यक्ति में सीखने की जितनी अधिक शक्ति होती है, उतना ही उसके जीवन का विकास होता है। सीखने की प्रक्रिया में व्यक्ति अनेक क्रियायें एवं उपक्रियायें करता है। अतः सीखना किसी स्थिति के प्रति सक्रिय प्रतिक्रिया है। हम अपने परिवेश में जो भी देखते हैं, सुनते हैं, करते हैं उनमें से अपनी आवश्यकता एवं उपयोग के अनुरूप कुछ न कुछ सीख लेते हैं। सीखने के कारण व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन आता है, व्यवहार में यह परिवर्तन बाह्य एवं आन्तरिक दोनों ही प्रकार का हो सकता है। अतः सीखना एक प्रक्रिया है जिसमें अनुभव एवं प्रशिक्षण द्वारा व्यवहार में स्थायी या अस्थायी परिवर्तन दिखायी देता है। सीखने हेतु हमारे शरीर के संवेदी अंग उत्तरदायी हैं। संवेदी अंग हमारे शरीर में पाए जाने वाले वे अंग हैं जिनके द्वारा हमारा शरीर बाह्य पर्यावरण में होने वाले परिवर्तनों के बारे में जानकारी प्राप्त करता है। इन संवेदी अंगों को ज्ञानेन्द्रियों के नाम से जाना जाता है। ज्ञानेन्द्रियाँ हमारी अधिगम शैली की निर्धारक हैं।

अधिगम में संवेदी अंगों की भूमिका – मानव शरीर में त्वचा, आँख, कान, नाक और जिव्हा पाँच प्रमुख ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। सीखने की प्रक्रिया में हमारी सभी ज्ञानेन्द्रियाँ मुख्य भूमिका निभाती हैं। ज्ञानेन्द्रियों से हम देखने, सुनने, महसूस करने, स्वाद–ताप–रंग आदि का पता लगाते हैं। त्वचा महसूस करने का, आँखे देखने का, कान सुनने का, नाक गन्ध का पता लगाने का और जिव्हा स्वाद को परखने का काम करती है। हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ किसी भी सूचना को वातावरण से ग्रहण करके उसे मस्तिष्क तक पहुँचाने का कार्य करती हैं। बाद में उस सूचना के आधार पर मस्तिष्क द्वारा एक निष्कर्ष निकाला जाता है। हम देखने, सुनने या त्वचा द्वारा शीत या गर्मी की अनुभूति का उदाहरण ले सकते हैं। कोई भी वातावरणीय उद्दीपन जैसे प्रकाश या ध्वनि सबसे पहले अपने सम्बन्धित ज्ञानेन्द्रिय में बहुत ही कम समय के लिए कूटबद्ध रूप में संग्रहित होता है। यह संग्रहण अत्यल्प समय के लिए होता है। दृष्टि के लिए इसकी सीमा 0.5 सेकेण्ड और श्रवण के लिए इसकी समय सीमा 2 सेकेण्ड के आसपास होती है। इस समय सीमा के पश्चात इस संग्रहित स्मृति का क्षय हो जाता है। ऐंद्रिक स्तर पर सूचनायें अभी प्रारम्भिक होती हैं और इनसे कोई निष्कर्ष नहीं निकाल सकते। इनका मस्तिष्क द्वारा संयोजन तथा परिमार्जन अभी बाकी होता है। संयोजन तथा परिमार्जन के पश्चात् मस्तिष्क द्वारा सूचना को ग्रहण कर लिया जाता है। ग्रहण की हुई सूचना को मस्तिष्क आवश्यकता, प्रभावशीलता, परिस्थिति, महत्त्व आदि के अनुरूप अल्प या दीर्घ अवधि, अस्थायी अथवा स्थायी रूप में संग्रहित करके रख लेता है तथा उस संग्रहित सूचना को उपयोग की परिस्थिति में प्रकट करता है।

एल० डी० रोसेनब्लम एवं उनके साथियों ने अपने शोध में पाया कि "हम देखकर 83.0%, सुनकर 11.0%, सूँघकर 03.5%, छूकर 01.05% तथा स्वाद के द्वारा 01.0% ज्ञान अर्जित करते हैं।" इसी प्रकार सामान्यतया लोग पढ़कर 10%, सुनकर 20%, देखकर 30%, सुनकर व देखकर 50%, बातचीत कर 70% और सुनकर व करके 80 से 90% याद रखते हैं। यदि इसे कुल योग के आधार पर देखें तो सुनकर, देखकर व करके 80 से 90% सीखते

हैं सुन व देखकर 50% सीखते हैं तथा सुनकर 20% सीखते हैं। हम केवल कही हुई बात को 3 घंटे बाद 70% तक याद रखते हैं तथा 3 दिन बाद केवल 10% तक याद रख पाते हैं किसी देखी हुई घटना को 3 घंटे बाद 72% तक याद रखते हैं तथा 3 दिन बाद केवल 20% तक याद रख पाते हैं एवं जब हम किसी बात या घटना को एक साथ सुनते एवं देखते हैं तो उसे 3 घंटे बाद 85% तक याद रखते हैं तथा 3 दिन बाद केवल 65% तक याद रख पाते हैं। ये सारी क्रियायें हमारे संवेदी अंगों के द्वारा ही सम्पादित की जाती हैं। शरीर के यही संवेदी अंग हमारे मस्तिष्क के लिये ज्ञान के स्रोत हैं और यही ज्ञानेन्द्रियाँ हमारी अधिगम शैली की निर्धारक भी हैं।

ज्ञानेंद्रियाँ एवं विशिष्ट विद्यार्थी – ज्ञानेन्द्रियाँ अधिगम प्रक्रिया में प्रभावी भूमिका निभाती हैं। उस एक विद्यार्थी को अधिक लाभ होता है, जो अधिक से अधिक ज्ञानेन्द्रियों का उपयोग करता है, दूसरे के मुकाबले जो ऐसा नहीं करता है। किन्तु कुछ विद्यार्थी ऐसे होते हैं जिनकी एक या एक से अधिक ज्ञानेन्द्रियों की क्षति होती है या उनमें कोई विकार होता है, ऐसे विद्यार्थी विकलांगता की श्रेणी वाले विद्यार्थी भी हो सकते हैं विकलांगता की स्थिति में उन विद्यार्थियों की अधिगम क्षमता भी प्रभावित होती है। यह इस तथ्य पर भी निर्भर करता है कि किस विद्यार्थी का कौन सा संवेदी अंग किस स्तर तक क्षतिग्रस्त या विकारयुक्त है। क्योंकि अधिगम में प्रत्येक संवेदी अंग की कम या अधिक रूप में पृथक भूमिका है। अच्छे अधिगम हेतु स्वस्थ संवेदी अंगों का होना अत्यन्त आवश्यक है। यह विदित है कि किसी भी कक्षा में विभिन्न प्रकार की क्षमता वाले विद्यार्थी होते हैं जिनकी अपनी भिन्न अधिगम योग्यताएँ हो सकती हैं। इनमें से कुछ विद्यार्थी विशिष्ट होते हैं।

विशिष्ट विद्यार्थियों से तात्पर्य ऐसे विद्यार्थियों से है, जो शारीरिक या मानसिक शीलगुणों में सामान्य बालकों से भिन्न होते हैं। यहाँ पर विशिष्ट विद्यार्थियों से तात्पर्य उन विद्यार्थियों से है जोकि किसी न किसी प्रकार की विकलांगता से ग्रसित हैं। विकलांगजन अधिनियम, 1995 के अनुसार "विकलांग व्यक्ति से तात्पर्य उस व्यक्ति से है, जिसमें दीर्घ अवधि से शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, अथवा संवेदी क्षति है और यह क्षति उसे समाज में दूसरों की भाँति प्रभावी भागीदारी से रोकती है।" इन विद्यार्थियों की विकलांगता विशेषतया संवेदी अंगों की क्षति के फलस्वरूप आयी विकलांगता उन्हें अधिगम प्रक्रिया में सामान्य शारीरिक (संवेदी अंग), एवं मानसिक क्षमता वाले विद्यार्थियों से भिन्न बनाती है।

अधिगम की शैलियाँ – व्यक्तियों की विभिन्न अधिगम परिस्थितियों के लिए अपनी–अपनी प्राथमिकताएँ होती हैं। इन्हें अधिगम शैलियाँ कहते हैं। अधिगम शैलियों से सम्बन्धित सिद्धान्त इस बात को मानते हैं कि व्यक्ति विभिन्न तरीके से सीखते हैं तथा प्रत्येक व्यक्ति की एक अनोखी शैली होती है। उदाहरण के लिए यदि हमें किन्हीं दस व्यक्तियों के नाम याद करने हों तो कुछ लोग उन नामों को सुनकर याद कर लेंगें, कुछ लोग पढ़कर याद कर लेंगे तो कुछ लोग उन्हें याद रखने के लिए कागज पर लिख लेंगे। हम यह भी देखते हैं कि कुछ व्यक्ति सुबह–सुबह अच्छा सीखते हैं तथा कुछ रात्रि में, कुछ शोररहित शान्त स्थानों पर बैठना पसन्द करते हैं तथा कुछ को अपने अधिगम के लिए संगीत की आवश्यकता होती है। कुछ विद्यार्थी खाने की मेज पर बैठकर अपने पढ़ने के साथ कुछ अल्पाहार या नाश्ता करते हुए अधिगम को अनुकूल परिस्थिति में पाते हैं। यह सब विद्यार्थियों की अपनी अधिगम शैलियों के कारण ही होता है।

अधिगम की अनेक शैलियाँ हैं। इन शैलियों में दृष्यीय शैली, श्रवणीय शैली, स्पर्शीय शैली मुख्य शैलियाँ हैं तथा कुछ अन्य महत्वपूर्ण शैलियाँ हैं जैसे– क्रियात्मक शैली, वैयक्तिक/एकान्त शैली, समूहध्सामाजिक शैली, तार्किक – गणितीय शैली, पठन एवं लेखन शैली आदि। यह समझना अत्यन्त आवश्यक है कि अधिगम की कोई भी शैली सर्वोत्तम नहीं है परन्तु व्यक्ति की प्रबल संवेदी अंग अर्थात ज्ञानेन्द्रिय के अनुरूप कोई भी शैली महत्वपूर्ण हो सकती है। कार्टर एवं उनके साथियों ने पाया कि "अधिगम हेतु विभिन्न लोगों अथवा परिस्थिति के अनुरूप पृथक अधिगम शैली उपयोगी होती है।" जिस व्यक्ति की जो ज्ञानेन्द्रिय जितनी अधिक प्रबल होगी, वह व्यक्ति उस

ज्ञानेन्द्रिय के माध्यम से उतना ही अधिक सीखेगा किन्तु इसमें व्यक्ति का वैयक्तिक एवं सामाजिक समायोजन भी अहम् भूमिका निभाता है। एक व्यक्ति में एक से अधिक अधिगम शैलियों की प्रबलता हो सकती है किन्तु उनमें से किसी एक अधिगम शैली की प्रधानता होती है। कार्टर एवं उनके साथियों का मानना है कि "अधिगम की शैलियाँ वह विशिष्ट पथ हैं, जिनके द्वारा हमारा मस्तिष्क सूचनाओं को प्राप्त एवं प्रक्रिया करता है।"

अधिगम शैलियों की जाँच की उपयोगिता – किसी भी व्यक्ति के लिए अपनी अधिगम शैली को जानना उसके लिए महत्वपूर्ण एवं उपयोगी हो सकता है। अनेक मनोवैज्ञानिकों द्वारा अधिगम शैलियों से सम्बन्धित कई परीक्षण विकसित किये गये हैं जिनको कोई भी व्यक्ति स्वयं तथा दूसरों पर लागू कर अपनी एवं अन्य की अधिगम शैली को जान सकता है। एक विद्यार्थी को अपनी अधिगम शैली को अवश्य जानना चाहिए जिससे वह अपना अधिगम स्तर सुधार सके। एक शिक्षक को इसलिए अधिगम शैली को जानना चाहिए जिससे कि वह स्वयं के साथ ही अपने सामान्य एवं विशिष्ट विद्यार्थियों की अधिगम क्षमता एवं कौशल में भी आशातीत अभिवृद्धि कर सके।

अधिगम शैलियों का अनुप्रयोग – विशिष्ट विद्यार्थियों के परिप्रेक्ष्य में अधिगम की अनेक शैलियों में से कुछ प्रमुख शैलियों का उनके तात्पर्य सहित अनुप्रयोग निम्नलिखित है –

(1) दृश्यीय शैली का अनुप्रयोग – फ्लेमिंग का कहना है कि "दृष्यीय शैली के अधिगमार्थी वे होते हैं जो देखकर अधिक सीखते हैं।" सिल्वरमैन एवं फ्रीड का मानना है कि "ये शब्दों की अपेक्षा चित्रों के माध्यम से अधिक सीखते हैं।" इस शैली के अन्तर्गत श्रवण बाधित विद्यार्थियों की बहुलता होती है। किन्तु यदि किसी विद्यार्थी में कम श्रवण बाधा है तो इस स्थिति में अन्य अधिगम शैली भी प्रभावी हो सकती है। गम्भीर श्रवण बाधा वाले विद्यार्थियों में दृष्यीय शैली की प्रधानता पायी जाती है। चूँकि इन विद्यार्थियों में गम्भीर श्रवण बाधा होती है इसलिए ये पढ़ाई गई विषयवस्तु को सुन नहीं पाते हैं। सुन नहीं पाने की स्थिति में ये विद्यार्थी पढ़ाई गई विषयवस्तु को सूक्ष्म रूप में सीखने की अपेक्षा स्थूल रूप में अधिक सीखते हैं। ये सीखने के प्राथमिक रूप में अपनी आँखों अर्थात् दृष्य इन्द्रिय का प्रयोग करते हैं। इन्हें लिखित भाषा, चित्रित सामग्री, वास्तविक वस्तुओं आदि से सिखाया जाना अधिक उद्देश्यपूर्ण होता है। इनके शिक्षण के लिए विभिन्न प्रकार की शिक्षण अधिगम सामग्री जैसे– चित्र, चार्ट, मॉडल, वस्तु, मानचित्र, ग्लोब, पॉवर पॉइण्ट आदि का अधिक से अधिक प्रयोग किया जायेय साथ ही इनको पढ़ाई गई विषयवस्तु की लिखित सामग्री उपलब्ध कराई जाये, स्वयं नोट्स तैयार करने के लिए प्रेरित किया जाये, समूह शिक्षण की बजाय वैयक्तिक शिक्षण किया जाये, शिक्षण के दौरान अधिक से अधिक उपयुक्त शिक्षण– अधि ागम सामग्री तथा तकनीक का उपयोग किया जाये साथ ही साथ इन्टरप्रेटर के द्वारा संकेत भाषा में विषय को प्रदर्शित किया जाये तो शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया अधिक प्रभावी व उद्देश्यपूर्ण हो सकती है।

(2) श्रवणीय शैली का अनुप्रयोग – श्रवणीय शैली के अधिगमार्थी सुनना और बोलना अधिक पसन्द करते हैं। स्प्रेन्गलर का कहना है कि "वे देखने एवं अनुभव करने की तुलना में क्या सुना है, उसे अधिक अच्छे ढंग से याद रखते हैं।" इस शैली के अन्तर्गत दृष्टि बाधित विद्यार्थियों की बहुलता होती है। चूँकि इन विद्यार्थियों में दृष्टि बाधा होती है इसलिए ये पढ़ाई गई विषयवस्तु को नहीं देख पाते हैं। देख नहीं पाने की स्थिति में ये विद्यार्थी पढ़ाई गई विषयवस्तु को स्थूल रूप में सीखने की अपेक्षा सूक्ष्म रूप में अधिक सीखते हैं। किन्तु अल्पदृष्टि वाले विद्यार्थियों में अधिगम की अन्य शैलियों की प्रधानता हो सकती है। पूर्ण रूप से दृष्टिबाधित विद्यार्थी सीखने के प्राथमिक रूप में अपने कानों अर्थात् श्रवण इन्द्रिय का प्रयोग करते हैं यदि इन्हें मौखिक भाषा में अधिक से अधिक शिक्षण किया जाये तो लाभ दायक होता है। इन विद्यार्थियों को पढ़ाई गई विषयवस्तु की रिकॉर्डेड सामग्री उपलब्ध कराई जाये, मौखिक नोट्स देने की बजाय इन्हें अपने साथ में टेपरिकॉर्डर रखने के लिए कहा जाये जिससे वे दिए गये व्याख्यान को रिकॉर्ड कर सुरक्षित रख सकें, इनको वैयक्तिक शिक्षण की बजाय समूह शिक्षण में सम्मिलित किया जाये तथा अपने शिक्षकों, सहपाठियों, मित्रों, अभिभावकों आदि के साथ रहकर सीखी गई अवधारणा

को समझने के लिए प्रेरित किया जाये एवं साथ ही साथ ब्रेल लिपि में नोट्स भी उपलब्ध कराये जायें तो ये विद्यार्थी अधिक अच्छे ढंग से सीख सकते हैं।

(3) स्पर्शीय शैली का अनुप्रयोग – स्पर्शीय शैली के अधिगमार्थी सीखने के प्राथमिक रूप में अपनी त्वचा अर्थात् स्पर्श इन्द्रिय का प्रयोग कर सर्वोत्तम ढंग से सीखते हैं। ये अधिगामार्थी नई संरचना को सीखने के लिए शारीरिक रूप में प्रतिभाग करना अधिक पसन्द करते हैं। ये हाथों के उपयोग से अधिक सीखते हैं। इन विद्यार्थियों में दृष्टिबाधित विद्यार्थियों की बहुलता होती है साथ ही इस माध्यम से मानसिक मन्दित बच्चे भी अधिक सीखते हैं। इस शैली के विद्यार्थी अपने सूक्ष्म गामक कौशलों का प्रयोग कर सीखते हैं। ये सीखने हेतु स्थूल सामग्री प्रयोग करते हैं। इन्हें सिखाने हेतु पाठ का नाटकीयकरण कर, अधिगम प्रक्रिया में शारीरिक रूप से प्रतिभाग कराकर सिखाया जाना चाहिएय साथ ही वैयक्तिक निर्देशन, अनेक संसाधनों जैसे– विभिन्न प्रकार की शिक्षण–अधिगम सामग्री आदि का उपयोग किया जाना चाहिए। इनके शिक्षण हेतु स्पर्शीय शिक्षण–अधिगम सामग्री का प्रयोग अधिक उपयोगी होती है। इनके व्यक्तिगत हस्तकौशलों का विकास किया जाये। नई और जटिल विषय सामग्री को सिखाने के लिए इन्हें अधिक से अधिक प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

(4) क्रियात्मक शैली का अनुप्रयोग – क्रियात्मक शैली के अधिगमार्थी सीखने के समय अपने पूरे शरीर का उपयोग करते हैं और इन अधिगामार्थियों का स्थूल गामक क्रियाओं पर उच्च स्तरीय नियन्त्रण होता है। इन विद्यार्थियों को भी केवल देखकर तथा सुनकर सीखने में समस्या होती है। इनको किसी क्रिया–कलाप में संलग्नता के दौरान ही परिस्थिति का उपयोग कर सिखाया जाना लाभकर होता है। इन विद्यार्थियों में मानसिक मन्दित विद्यार्थियों की बहुलता होती है एवं स्वलीनता वाले विद्यार्थी भी इसमें आते हैं। इनको महत्वपूर्ण जानकारी सिखाने के लिए मुख्य बिन्दुओं की कार्ड सूची बनाकर सिखानी चाहिए और जब ये विद्यार्थी आस–पास टहल रहें हों तो सूचनाओं को उच्च ध्वनि में इन तक प्रेषित करना चाहिए। जब ये विद्यार्थी बिस्तर पर हों, छत पर हों अथवा संगीत सुन रहे हों तब उन्हें पढ़ाने का प्रयास करें। अधिगम हेतु इनका ध्यान आकर्षित करने के लिए चमकदार एवं रंगीन वर्कशीट पर विषय सामग्री उपलब्ध करानी चाहिए तथा उस पर ध्यान केन्द्रित करने में सहायता करनी चाहिए। शिक्षण अधिगम सामग्री को सुन्दर एवं आकर्षक बनाकर सिखाना लाभकर होता हैय क्योंकि इससे उनमें रूचि जागृत होती है और वे सीखने के लिए उत्सुक होते हैं।

(5) वैयक्तिक–कान्त शैली का अनुप्रयोग – वैयक्तिक–एकान्त शैली के अधिगमार्थी अकेले कार्य करने एवं स्वअध्ययन से सीखना अधिक पसन्द करते हैं। ये अधिगमार्थी अधिक व्यक्तिगत, आत्मविश्लेषी और स्वतन्त्र होते हैं। इस शैली के अन्तर्गत स्वलीनता वाले विद्यार्थियों को रखा जा सकता है किन्तु इसमें अन्य प्रकार की विकलांगताओं वाले विद्यार्थी जैसे– श्रवण बाधित व कुछ सीमा तक दृष्टि बाधित भी हो सकते हैं। इन विद्यार्थियों को सिखाने के लिए घर एवं विद्यालय में अधिगम योग्य परिवेश उपलब्ध कराना चाहिए। इनको विद्यालयी परिवेश से सामन्जस्य स्थापित करने में सहायता करने की विशेष आवश्यकता होती है। इन्हें अधिक से अधिक अधिगम सामग्री लिखित रूप में उपलब्ध करानी चाहिए जिससे वे अपने एकान्त समय में अध्ययन कर उस विषय सामग्री को सीख सकें। साथ ही इन्हें स्वयं से भी नोट्स तैयार करने के लिए प्रोत्साहित करने की आवश्यकता होती है। इनके द्वारा तैयार नोट्स को जाँचकर सुधार दिया जाये तो वे और अधिक अच्छे ढंग से सीख सकते हैं।

(6) समूह–सामाजिक शैली का अनुप्रयोग – समूह–सामाजिक शैली के अधिगामार्थी समूह में अथवा अन्य लोगों के साथ रहकर अधिक अच्छे ढंग से सीखते हैं। ये समूह में अथवा कक्षा में एक दूसरे के साथ अधिक समय बिताकर अथवा शिक्षक के साथ मिलकर सीखना पसन्द करते है। इस शैली के अन्तर्गत बहुल रूप में दृष्टि बाधित एवं श्रवण बाधित विद्यार्थियों को रखा जा सकता है। ऐसे विद्यार्थियों को सिखाने के लिए अधिक से अधिक सामूहिक परिचर्चा, वाद–विवाद, सहभागी क्रियाओं आदि में प्रतिभाग कराया जा सकता है। इनको

छोटे–छोटे समूह बनाकर सिखाना अधिक लाभप्रद रहता है। शिक्षण उद्देश्यों को ध्यान में रखकर खेल–कूद, नाटकीय कारण तथा अन्य क्रियाकलापों को कराया जाना एवं इनमें विद्यार्थियों की प्रतिभागिता के दौरान उन्हें अधिक से अधिक सिखाया जा सकता है।

(7) तार्किक – गणितीय शैली का अनुप्रयोग – तार्किक–गणितीय शैली के अधिगामार्थी किसी भी विषय को सीखने के लिए अंकों का सहारा लेते हैं। इन्हें विषय को क्रमानुसार व्यवस्थित करके सीखने में सरलता होती है। इस प्रकार के अधिगामार्थियों में श्रवण बाधित विद्यार्थियों का बाहुल्य होता है किन्तु यह शैली मानसिक मन्दित विद्यार्थियों के लिए भी लाभप्रद है। इन विद्यार्थियों को टुकड़ों में विषयवस्तु सिखायी जानी चाहिए तथा उक्त विषयवस्तु के मुख्य बिन्दुओं को क्रमानुसार लिखकर व बोलकर सिखाया जाये एवं इसी क्रम में इन्हें विषयवस्तु को पढ़ने, लिखने तथा समझने के लिए प्रोत्साहित किया जाये।

(8) पठन एवं लेखन शैली का अनुप्रयोग – पठन एवं शैली एक प्रकार की अभ्यास शैली है। जब हम किसी प्रक्रिया कार्य का बार–बार अभ्यास करते हैं तो वह प्रक्रिया या कार्य को हम प्रभावी रूप में सीख लेते हैं। इस शैली के अन्तर्गत अधिकांशतः श्रवण बाधित विद्यार्थी आते हैं। मानसिक मन्दित विद्यार्थी भी इस श्रेणी में आते हैं। इस शैली के विद्यार्थी लिखित सामग्री को प्राथमिकता देते हैं। इसमें विद्यार्थी बोलकर लिखना और लिखकर पढ़ना पसन्द करते हैं। इन विद्यार्थियों को पॉवर पॉइंट प्रजन्टेशन के द्वारा पढ़ाया जाये, पढ़ते समय लेक्चर को नोट करने के लिए प्रोत्साहित किया जाये और इन्हें पढ़ने–लिखने के लिए शान्त वातावरण उपलब्ध कराया जाये तो ये बेहतर तरीके से विषय को सीख सकते हैं।

निष्कर्ष – संवेदी अंगों अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा हमारा शरीर बाह्य पर्यावरण में होने वाले परिवर्तनों के बारे में जानकारी प्राप्त करता है। ज्ञानेन्द्रियाँ हमारी अधिगम शैली की निर्धारक हैं। हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ किसी भी सूचना को वातावरण से ग्रहण करके उसे मस्तिष्क तक पहुँचाने का कार्य करती हैं। एक विद्यार्थी को अधिक लाभ होता है, जो अधिक से अधिक ज्ञानेन्द्रियों का उपयोग करता है, दूसरे के मुकाबले जो ऐसा नहीं करता है। संवेदी एवं मानसिक विकलांगता की स्थिति में विद्यार्थियों की अधिगम क्षमता प्रभावित होती है। अधिगम की अनेक शैलियाँ हैं। अधिगम की कोई भी एक शैली सर्वोत्तम नहीं हैय परन्तु व्यक्ति की प्रबल संवेदी अंग अर्थात् ज्ञानेन्द्रिय के अनुरूप कोई भी शैली महत्वपूर्ण हो सकती है। अधिगम हेतु विभिन्न लोगों और अथवा परिस्थिति के अनुरूप पृथक अधिगम शैली उपयोगी होती है। किसी भी विद्यार्थी एवं शिक्षक के लिए अधिगम शैलियों को जानना अत्यन्त आवश्यक है, जिससे वे अपनी तथा दूसरों की अधिगम क्षमता को सुधार सकें।

सन्दर्भ संकेत

- C-R- Carter, R- Auskalnis, C- Ketchum (1999)- Purchasing from minority business Enterprises:a cross&industry comparison of best practices- Journal of Supply Chain-
- Fleming, N- VARK, (2011)- A Guide to Learning Styles (online)- http://www-vark & learn-com/english/page-asp\p_questionnaire-[10 March 2011]-
- Harold D- Stolovitch] (2002)- Telling Ain't Training, Published May 1st 2002 by ASTD, Paperback, 193 pages, ISBN 1562863282
- Husmann, P- R-, & O*Loughlin, V- D- (2019)- Another Nail in the Coffin for Learning Styles\Disparities among Undergraduate Anatomy Students* Study Strategies, Class Performance, and Reported VARK Learning Styles- Anatomical Sciences Education, 12(1)] 6–19
- Lawrence D- Rosenblum, Harold D- Stolovitch, Erica D- Keeps, (2011)- The astonishing abilities of the five senses—skills- Telling Ain*t Chapter Three, The Human Learner, Pages 19&22-
- Person with Disability Act (PWD Act), 1995-

- Silverman & Freed, (1996)- Identification- There is to date no formal assessment instrument for identifying gifted visual spatial learners- Identification is best done by taking a comprehensive ---- breakthroughs and discoveries (Freed, 1996, p16)-
- Sprenger M-(2005)- How to Teach So Students; Publisher: Assn for Supervision & Curriculum; (4/15/05 edition (May 1, 2005) ISBN -10 : 141660152X ISBN & 13-978-1416601524
- Santally, M- (2003)- Students Learning Styles & Computer Conferencing as a pedagogical tool to enhance and support the teaching and learning process- World Conference on E&Learning in Corp-, Govt-, Health-, & Higher Ed- 2003(1)] 1165&1168-

Websites:

- https://hi-wikipedia-org/wiki/
- https://www-time4learning-com/learning&styles/
- https://www-learning&styles&online-com/overview/
- https://www-streetdirectory-com/etoday/using&the&five&senses&ecoflf-html
- https://www-educationdegree-com/articles/different&types&of&learning&styles/

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

संस्कृत शिक्षण की व्यावहारिक समस्याएँ और समाधान

डॉ0 सवितुर प्रकाश गंगवार
असि. प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
डी.ए.वी. कालेज, कानपुर

प्राचीन काल से ही चाहें वैदिक शिक्षण हो या संस्कृत शिक्षण। शिक्षण की व्यावहारिक समस्याओं को देखते हुए हमारे ऋषियों मनीषियों ने अनवरत् अपेक्षित परिवर्तन और सुधार किए। अपनी अति विशिष्ट विधियों के माध्यम से संस्कारित और प्रभावी शिक्षा प्रदान करते हेतु अनेक शास्त्रों की रचना की। वेदों के विधिविधान समझने हेतु ब्राह्मण ग्रन्थ लिखे गये। ब्राह्मण ग्रन्थों को भी व्यावहारिक बनाने हेतु आरण्यक ग्रन्थ और उपनिषद् ग्रन्थों की रचना हुई। शास्त्रों में अनेक आख्यानों उपाख्यानों के माध्यम से सरलविधि से गूढ़ से गूढ़ रहस्य को पाठकों एवं जिज्ञासुओं को बताया गया। यास्क मुनि विरचित निरुक्त, पाणिनी का अष्टाध्यायी, विभिन्न भाष्य ग्रन्थ, पाणिनीय शिक्षा, नारदीय शिक्षा आदि ग्रन्थ तात्कालिक अनेक कठिनाइयों का समाधान ही प्रस्तुत करते हैं।

आधुनिक युग में भी विद्वानों, मनीषियों ने संस्कृत शिक्षण की व्यावहारिक समस्याओं को दूर करने के लिए निरन्तर प्रयास किए हैं, जिसके परिणाम सकारात्मक हैं लेकिन पर्याप्त नहीं हैं। सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, परिस्थितियों में परिवर्तन के कारण अभी भी विभिन्न व्यावहारिक समस्याएँ हैं, जिनका समाधान आवश्यक है।

संस्कृत के साथ भेदभाव केवल राजनीतिज्ञों एवं शिक्षाविदों के द्वारा ही नहीं किया गया अपितु आजादी के बाद गठित किए गये विभिन्न आयोगों, शिक्षानीतियों में भी संस्कृत को उपेक्षित रखा गया और संस्कृत को केवल औपचारिकतावश स्वीकार किया गया। 1956–57 में डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी की अध्यक्षता में गठित संस्कृत आयोग ने संस्कृत को पाठ्यक्रम में उचित स्थान बनाये रखने के लिए कई विकल्प दिए। 1964–66 में प्रो. डी. एस. कोठारी की अध्यक्षता में शिक्षा आयोग का गठन किया गया, जिसने त्रिभाषा सूत्र में मातृभाषा अथवा प्रादेशिक भाषा, आँग्लभाषा तथा हिन्दी भाषा को महत्त्व दिया और संस्कृत भाषा को त्रिभाषा सूत्र में अलग से कोई स्थान देने की अपेक्षा शास्त्रीय भाषा के रूप में इसके महत्त्व को स्वीकार किया गया तथा संस्कृत को वैकल्पिक भाषा में रखा गया।[1] कोठारी आयोग ने संस्कृत या अन्य किसी शास्त्रीय भाषा को त्रिभाषा सूत्र में स्थान नहीं दिया अपितु आधुनिक भारतीय भाषाओं को स्थान दिया। आयोग के विचारों की निन्दा करते हुए दिल्ली विश्वविद्यालय के संस्कृत रीडर डॉ. चनाना ने लिखा–'भारतीय संस्कृति में संस्कृत ने महान योगदान दिया है, भारतीय जीवन का ऐसा कोई भी अंग नहीं है जिस पर संस्कृत का गहरा प्रभाव न पड़ा हो। भारत का अधिकांश प्राचीन साहित्य संस्कृत में ही सुरक्षित है। आयोग ने इन महत्त्वपूर्ण बातों का ध्यान नहीं दिया।'[2]

श्री मुहम्मद अली करीम भाई छागला (केन्द्रिय शिक्षामंत्री,'आज' 21.11.65) ने कहा था कि 'त्रिभाषा सूत्र के अन्तर्गत संस्कृत को अवश्य स्थान मिलना चाहिए।'

डॉ. फादर कामिल बुल्के ने त्रिभाषा सूत्र में संस्कृत को स्थान देने की वकालत की थी[3] परन्तु संस्कृत को त्रिभाषा सूत्र में स्थान नहीं दिया गया, 1968 की शिक्षा नीति ने तो संस्कृत को नजर अंदाज करने पर बल दिया।

संस्कृत शिक्षण की व्यावहारिक समस्याएँ – आज संस्कृत को कहीं कक्षा–3 से या कहीं कक्षा–6 से पढ़ाया जा रहा है। हालाँकि अधिकांश राज्य बोर्डो में त्रि–भाषा फार्मूले को 10वीं कक्षा तथा द्विभाषा फार्मूले को 11वीं और 12वीं कक्षा तक क्रियान्वित कर दिया तथापि तीन राष्ट्रीय बोर्डो, सी.बी.एस.सी., आई.सी.एस.सी., एन.आई.ओ.एस. और उनके ही कारण के.वी.एस. तथा नवोदय विद्यालय ने त्रिभाषा फार्मूले को 8वीं स्तर, द्विभाषा फार्मूले को 9 वीं

स्तर और एक भाषा फार्मूले को 11 वीं और 12 वीं के स्तर पर क्रियान्वित किया है। यह नियति है कि सरकार के स्वामित्वाधीन संस्थान उसकी ही नीति का अनुपालन नहीं कर रहे हैं। इसी देखा–देखी में राज्य सरकारें भी केवल अँग्रेजी और क्षेत्रीय भाषाओं में अध्ययन सुविधा प्रदान करने लगी हैं, जिसका खामियाजा संस्कृत व हिन्दी को भुगतना पड़ रहा है, कुछ राज्यों में तो मातृभाषाएँ भी इसका शिकार हो रही हैं।[4]

आधुनिक वातावरण संस्कृत को व्यवहारिक रूप से सीखने में उपयुक्त नहीं है, आज बालकों को संस्कृत बोझ लगती है और रटनी पड़ती है। जबकि अँग्रेजी के साथ ऐसा नहीं हैं क्योंकि बच्चा को प्रारम्भिक कक्षा से ही ABCD सिखाया जाने लगता है। संस्कृत को प्रारम्भिक कक्षा से पढ़ाया नहीं जा रहा है और जिस कक्षा से पढ़ाया जा रहा है, उस कक्षा का पाठ्यक्रम ऐसा बना दिया जाता है जिसे बालक सहन नहीं कर पाता और संस्कृत उसके लिए नीरस हो जाती है। कक्षा – 3, 6, 8 या 10 में जब पुस्तक बालक के हाथ में आती है, तब तक बहुत विलम्ब हो चुका होता है। यह संस्कृत शिक्षण की सबसे बड़ी समस्या है। बालकों में रुचि के अभाव में शिक्षण व्यवहारिक कैसे हो सकता है? संस्कृत का कोई निर्धारित पाठ्यक्रम नहीं है, वर्तमान पाठ्यक्रम को देखकर ऐसा लगता है कि कक्षा 10 तक ही बालक को संस्कृत की सभी विधाओं, साहित्यिक पुस्तकों, व्याकरण, वेद, रामायण, महाभारत, स्मृतिग्रन्थों में पारंगत करने की योजना है। पता नहीं कक्षा 10 के बाद बालक ने संस्कृत पढ़ी या नहीं पढ़ी इसलिए उसे कक्षा 10 तक ही सब कुछ पढ़ा दो। हम मानते हैं कि शिक्षानीति या विभिन्न आयोगों ने संस्कृत के साथ भेदभाव किया। लेकिन मुझे यह कहने में भी कोई हिचक नहीं है कि हमारे संस्कृत का पाठ्यक्रम बनाने में बालक की बौद्धिक क्षमता और रुचि का ध्यान नहीं रखा गया। पाठ्यक्रम में पाण्डित्य प्रदर्शन की बहुलता है। संस्कृत की प्रत्येक विधा की जानकारी देने के कारण पाठ्यवस्तु इतनी बोझिल बना दी गयी है कि बालक एक भी विधा नहीं सीख पाता। कक्षा–6 में सात धातुओं के पाँच लकार हैं, लगभग 10 शब्दरूप हैं। कक्षा 7 में 22 शब्दरूप तथा 4 धातुओं के पाँच लकार है। कक्षा–8 में 31 शब्दरूप तथा चार धातुओं के पाँच लकार हैं।[5] लगभग सभी सन्धियाँ, सभी कारक, सभी समास, सभी प्रकार के शब्दरूप,धातुरूप कक्षा–8 तक के पाठ्यक्रम में हैं तो कक्षा– 10, 11, 12 का पाठ्यक्रम क्या होगा? मैने कक्षा 9 व 10 का पाठ्यक्रम देखा तो पाया कि पुनः वही सन्धियाँ,वही समास वही कारक वही धातुरूप वही शब्द रूप पाठ्यक्रम में सम्मिलित किये गये।[6] कक्षा 11 व 12 में पुनः व्याकरण का वही पाठ्यक्रम कुछ साहित्यिक पुस्तकों के साथ सम्मिलित किया गया है।

अब प्रश्न यह है कि कक्षा 6–7–8, कक्षा 9–10 और कक्षा 11–12 के बालक क्या बौद्धिक दृष्टि से समान हैं? क्या इन बालकों की वास्तविक और मानसिक आयु समान है? पाठ्यक्रम सरल से कठिन की ओर होना चाहिए या कठिन से सरल की ओर? ज्ञात से अज्ञात की और होना चाहिए या अज्ञात से ज्ञात की ओर? यह कैसा पाठ्यक्रम है, जिसे बच्चों पर थोप दिया गया, जिसका परिणाम यह हुआ कि बालक कक्षा 12 पास हो गया, यहाँ तक कि स्नातकोत्तर भी हो गया और उसे कक्षा–8 तक का पाठ्यक्रम तैयार नहीं हो पाया। यह कैसी शिक्षा? कैसा पाठ्यक्रम? कैसा भेदभाव? कक्षा दश के पाठ्यक्रम में शिवराजविजय, महाभारत, वाल्मीकि रामायण, कुमारसम्भव, मनुस्मृति, बुद्धचरितम्, गीता, उपनिषद्, नागानन्दम् नाटक, जातकमाला, भोजप्रबन्ध, कथासरित्सागर आदि साहित्यिक ग्रन्थों के मूल अंश बच्चों को पढ़ाये जा रहे हैं।[7] क्या यह आवश्यक है कि स्नातक और स्नातकोत्तर का पाठ्यक्रम कक्षा 10 में ही पढ़ा दिया जाये? मेरा व्यक्तिगत अनुभव है कि कक्षा 11 व 12 की अपेक्षा कक्षा 9 व 10 का पाठ्यक्रम कठिन है। यह कैसी व्यवस्था है जिसमें शिक्षणसूत्रों का भी ध्यान नहीं रखा गया। बालकों के लिए व्यवहारिक रुप से संस्कृत पढ़ना और पढ़ाना सम्भव ही नहीं है। संस्कृत को बालक बोझ के समान पढ़ता है या ढ़ोता है और यह कुप्रचार होता है कि संस्कृत कठिन भाषा है। संस्कृत बालकों में रुचि एवं अवधान का केन्द्र नहीं बन पा रही जो कि संस्कृत और संस्कृति दोनों के लिए घातक हैं। हम सबको अपनी संस्कृत भाषा और भारतीय संस्कृति दोनों के संरक्षण और संवर्धन का प्रयास करना चाहिए।

''उभयमपि परिरक्ष्यं संस्कृतं संस्कृतिश्च।''

समाधान – सर्वप्रथम तो यह प्रयास किया जाना चाहिए कि संस्कृत कक्षा 1 से बालकों को पढ़ाई जाये। जब बालक अँग्रेजी पढ़ सकता है, तो संस्कृत क्यों नहीं ? संस्कृत को त्रिभाषा सूत्र में स्थान दिया जाये। प्राथमिक स्तर, उच्च प्राथमिक स्तर और माध्यमिक स्तर के पाठ्यक्रम का निर्धारण किया जाये, जिसमें सरल से कठिन की ओर शिक्षण सूत्र का पालन हो। कक्षा 10 तक कठिन–जटिल भाषा वाली पुस्तकों के अंश न दिए जायें बल्कि सरल भाषा में उन अंशों का रूपान्तर कर बच्चों को पढ़ाया जाये।

एक देश, एक कक्षा, एक विषय, एक पाठ्यक्रम, एक पुस्तक को शिक्षा प्रणाली में अपनाया जाना चाहिए। शिक्षा व्यवस्था में अनेक खामियॉ हैं। अमीरों की पढ़ाई और गरीबों की पढ़ाई में बहुत अन्तर हैं। देश की शिक्षा सम्बन्धी समस्त समस्याओं का एक ही समाधान है वह है 'एक कक्षा, एक विषय, एक पाठ्यक्रम, एक पुस्तक पूरे देश में लागू की जाये। जिससे सभी बालकों का स्तर समान रहे, भेदभाव न हों, समान बौद्धिक क्षमता का विकास हो। यह देश की अनेक विसंगतियों को समाप्त करेगा।

विद्वानों को एकमत होकर व्याकरण में अपेक्षित सुधार करने चाहिए। हाईस्कूल स्तर तक पाठ्यक्रम से शब्दरूप, धातुरूप में द्विवचन का प्रयोग समाप्त हो, मध्यम पुरुष को हटाकर विकल्प प्रस्तुत करने की आवश्यकता है, कक्षा आठ तक तीन लकार और दश तक 5 लकारों के साथ पाठ्यक्रम में विभाजन हो व्याकरण में अनेक सूत्र ऐसे हैं जो तत्कालीन परिस्थितियों में रचे गये। आज परिस्थिति भिन्न है। संस्कृत व्याकरण भाषा को संस्कारित करने के उद्देश्य से रचा गया परन्तु आज भाषा के साथ साथ समाज को भी संस्कारित करने की आवश्यकता है। संस्कृत देश की अनेक समस्याओं का समाधान कर सकती है। इसे व्यावहारिक और सरल बनाकर समाज के सामने लाने की जरूरत है। भले ही हमें इसके लिए कुछ परिवर्तन या कुछ त्याग क्यों न करना पड़ें। आज पहला लक्ष्य होना चाहिए 'संस्कृत का सरल, व्यवहारिक एवं जीवनोपयोगी पक्ष सामने आये।' संस्कृत को पठति, पठतः पठन्ति, रामः रामौ रामाः से निकाल कर आगे लाना। संस्कृत के दार्शनिक, आध्यात्मिक पक्ष जन साधारण तक पहुँचाना। 'संस्कृत कर्मकाण्ड की भाषा है, धार्मिक भाषा है, सूक्तियों की भाषा है इस प्रकार के विचारों से आगे लाकर जनसाधारण की भाषा बनाने हेतु प्रयास करना चाहिए। यह तभी सम्भव है जब हम संस्कृत का सरल पक्ष, व्यवहारिक पक्ष, जीवनोपयोगी पक्ष, नीतिगत पक्ष, चिकित्सा पक्ष, रोजगार परक पक्ष, मनोरञ्जक पक्ष, वैज्ञानिक पक्ष को सामने लायें। चाहे इसके लिए हमें अपनी परम्परागत पद्धति को तोड़ना पड़े। चाहे विद्वान् एवं विदुषियों को अपनी लेखनी कुछ समय के लिए सरल काव्य ग्रन्थों, सरल व्याकरण ग्रन्थों, रोचक सरस कथाओं आदि की ओर चलानी पड़े। जिससे न केवल संस्कृत का विकास होगा अपितु राष्ट्रीय उन्नति का मार्ग भी प्रशस्त होगा–

वयं राष्ट्र जागृयाम पुरोहिताः।

जो प्राचीन है, परम्परा है, संस्कृति है, क्या यह सत्य है कि वह सार्वकालिक और सार्वभौमिक रूप से सही है, हो सकता है कि समय की माँग अलग हो।

महाकवि कालिदास ने लिखा है कि –

'पुराणामित्येव न साधु सर्व न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूढः परप्रत्ययेने बुद्धिः।।'[8]

शिक्षण का समान स्तर और संस्कृत की महती भूमिका निश्चित रूप से लोकतन्त्र के इस सार को पुष्ट करने में समर्थ है –

'हम सब साथ–साथ चलें, प्रेमपूर्वक बातचीत करें, हमारे मन शान्तभाव से विचारों में लीन हों।'

'संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।'[9]

संदर्भ संकेत

1. संस्कृतशिक्षण पेज – 30 डॉ. (श्रीमती) सन्तोष मित्तल
2. The Patriot – अंक 4 जुलाई 1966 डॉ. चनाना (दिल्ली विश्वविद्यालय)
3. संस्कृत शिक्षण पेज–45 डॉ. (श्रीमती) सन्तोष मित्तल
4. विजन एवं रोडमैप (संस्कृत के विकास के लिए दस वर्षीय भावी योजना) पृष्ठ – 20
5. कक्षा–6, 7, 8 संस्कृत पाठ्य पुस्तक, उत्तर–प्रदेश बेसिक शिक्षा परिषद्
6. पाठ्य पुस्तक, कक्षा – 9–10, माध्यमिक शिक्षा परिषद् उत्तर प्रदेश
7. कक्षा–10, पाठ्यपुस्तक माध्यमिक शिक्षा परिषद् उत्तर प्रदेश
8. मालविकाग्निमित्रम्1–2
9. ऋग्वेद – 10.191

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

भारत में शिक्षा व्यवस्था की समस्याएँ एवं समाधान

डॉ0 शशि त्रिपाठी
प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग
शास0 टी0आर0एस0 महाविद्यालय एवं उत्कृष्टता केन्द्र, रीवा (म0प्र0)

शिक्षा व्यक्ति के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास का आधार हैं। देश की उन्नति और विकास की संवाहक और प्रत्येक महत्वाकांक्षी समाज की सर्वोच्च प्राथमिकता है। मानवता के सर्वोत्तम आदर्शो का स्तभं है। प्रसिद्ध उपन्यासकार सी0पी0 स्त्रो के अनुसार–''शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मनुष्य की उस क्षमता को बढ़ाना है। जिससे उसमें हर समस्या के हल करने की और हर चुनौती के साथ चलने की योग्यता पैदा हो सके।'' प्रसिद्ध दार्शनिक और चिन्तक महर्षि अरविद के अनुसार –सच्ची और वास्तविक शिक्षा केवल वही है जो मानव की अन्तर्निहित समस्त शक्तियों को इस प्रकार विकसित करती है कि वह उनसे पूर्णरूपेण लाभान्वित होता है।''

शिक्षा किसी भी देश के विकास की वुनियाद होती है। किसी भी राष्ट्र की आधार शिला होती है। यह केवल अतीत युगों की उपलब्धियो तथा वर्तमान परिस्थितियो का संधि स्थल ही नहीं, ऐसा आलोक भी है जिसमे भविष्य की रूप रेखा निखरती है। शिक्षा सस्थानों से राष्ट्र के भावी कर्णधार तैयार होते है। वास्तव में शिक्षा अपने भौगोलिक परिवेश से रागात्मक लगाव भी पैदा करती है, और राष्ट्र के प्रति प्रबुद्ध चेतना का निर्माण करती है। जिस प्रकार शरीर में हृदय सब अंगों को स्वस्थ रक्त पहुँचाने का कार्य करता है, उसी प्रकार शिक्षा–समाज, शासन, विज्ञान, कला, साहित्य, प्रशासन, देश रक्षा सभी क्षेत्रों में नवीन प्रतिभायें भेजती है। यदि शिक्षा क्षेत्र द्वारा पहुँचाया गया नवीन रक्त स्वस्थ है, तो सभी क्षेत्र स्वस्थ और क्रियाशील रहते है। यदि नवीन रक्त में व्याधियों के कीटाणु प्रवेश कर जाते हैं, तो राष्ट्र जीवन के सभी क्षेत्र संघातिक रूप से पीड़ित हो उठते है। शिक्षा के इसी महत्व के कारण महान यूनानी दार्शनिक और राजनीतिक विचारक प्लेटों ने अपने ग्रन्थ ''रिपब्लिक'' में आदर्श राज्य की स्थापना के चार महत्वपूर्ण स्तम्भों में शिक्षा व्यवस्था को प्रमुख स्थान प्रदान किया है। शिक्षा के इसी महत्व के कारण दुनियाँ के सभी देश अपने सर्वांगीण विकास के लक्ष्य में शिक्षा और उसके संरचनात्मक ढाँचे को विशिष्ट दर्जा देते हैं।

जहाँ तक भारत का प्रश्न है, यहाँ प्राचीन काल से ही शिक्षा का विशेष महत्व रहा है। वैदिक काल में गुरुकुलों में उच्च शिक्षा प्रदान की जाती थी। इसके पश्चात बौद्ध काल आया और बौद्ध कालीन शिक्षा ने विश्वविद्यालयीन शिक्षा का भी श्री गणेश किया। इस काल मे नालंदा, तक्षशिला तथा विक्रमशिला विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। इन विश्वविद्यालयों का पाठ्यक्रम वैदिककालीन उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम से कहीं अधिक व्यापक था। विश्वविद्यालयों में वैदिक संस्कृति और श्रमण संस्कृति का जन्म हुआ। इन सभी नें त्याग के महत्व को स्थापित किया। मनुष्य कितना ही विज्ञ क्यों न हो किन्तु उसकी पहली कसौटी उसकी मनुष्यता है, हमारी शिक्षा इस मनुष्यता से भरपूर हो। सत्य के लिए आवाज उठाना और प्रिय से प्रिय वस्तु का त्याग करना भारतीय शिक्षा हमें सिखाती है। इसी रूप मे ''पुरुषार्थ'' भारतीय शिक्षा का महत्वपूर्ण पोषक तत्व रहा है। शिक्षा की इसी पर्यावरणीय भूमि में विवेकानंद, जगदीशचन्द्र बोस, आचार्य प्रफुल्लचंद्र, शांतिस्वरूप भटनागर, सरोजनी नासडू, डॉ. होमी जहाँगीर भाभा, राजा रमन्ना, धनवंतरी, चरक, विक्रम साराभाई, ए0 एन0 खोसला, और डॉ0 ए0 पी0 जे0 अब्दुल कलाम जैसी प्रतिभाएँ

उत्पन्न हुई है। हमारे उच्च शिक्षा के परिसर इन प्रतिभाओं की ऊर्जा से गतिमान हों, यही शिक्षा की सार्थकता है। शिक्षा अनिवार्यतया सृजनात्मक होती है। शिक्षा के माध्यम से उद्‌भूत विचार, प्रतीत अथवा बिम्ब संस्कृति को विवर्त करते हैं। वह समाज की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति होती है। शिक्षा हमारी मनुष्य गत आवश्यकता की पूर्ति करती है जो सार्वजनिक और सर्वकालिक है। मानवता के विकास का इतिहास शिक्षा के विकास का ही इतिहास है। शिक्षा के द्वारा ही विकास की अभिव्यक्ति विविध साधनों के रूप में प्रतिफलित होकर मानवीय धरातल पर नवीन शैलियों तथा नवीन सत्यों की सृष्टि कर सकी है। शिक्षा का लक्ष्य व्यष्टि और समष्टि दोनों को सामंजस्य सूत्रों में बाँधकर सम्पूर्णता देना है तथा शिक्षा हृदय और बुद्धि के परिष्कार और समन्वय द्वारा मानव को लक्ष्य तक पहुँचाने की क्षमता प्रदान करती है। प्रसिद्ध दार्शनिक शिक्षा शास्त्री डॉ0 राधाकृष्णन के अनुसार–''यदि कोई शिक्षा शाश्वत मूल्यों को, शिष्टाचार को समझने में असफल रही है तो वह सही शिक्षा नहीं है।''

लेकिन आज के भूमड़ली करण और वैश्वीकरण के इस दौर में शिक्षा के क्षेत्र में चौतरफा चुनौतियाँ पैदा हो रही हैं, एक तरफ बेरोजगारी बढ़ रही है तो दूसरी तरफ नैतिक मूल्यों का निरंतर ह्रास हो रहा है। वास्तव में आज शिक्षा का क्षेत्र ज्ञान की दोहरी और रहस्यमयी प्रयोग शाला बन गया है। उसे व्यक्ति के अन्तर्जगत को सम्पूर्ण तथा मुक्त विकास भी देना पड़ता है और उसे समष्टि के सामंजस्यपूर्ण बंधन में बाँधना भी पड़ता है। शिक्षा को मनुष्य की मूलभूत प्रवृत्तियो का परिष्कार और दिशा दर्शन करना पड़ता है। मनुष्य के बहिर्जगत की समस्याएँ भी सुलझानी पड़ती है। परमार्थकारी शिक्षा से मानव की मानसिक प्रवृत्तियों के उदात्तीकरण का बोध होता है और अर्थकारी शिक्षा उसे लैकिक दृष्टि से जीवन यापन के लिए उपयुक्त और संतुलित विकास देती है। लेकिन वर्तमान समय में दोनों ही क्षेत्रों में चुनौतियां व्याप्त हैं।

उपरोक्त परिप्रेक्ष्य में भारत का शैक्षणिक परिदृश्य और उसके समक्ष उपस्थिति प्रमुख चुनौतियों का विश्लेषण करना तथा उनके समाधान के उपाय खोजना प्रस्तुत आलेख का उद्देश्य है।

आजादी के पहले भारतीय समाज में शिक्षा का परम्परावादी रूप ही ज्यादा रहा है। राजाओं और जमीदारों के समय में शिक्षा का स्वरूप नियंत्रित था कुछ खास वर्ग के लोगों को ही शिक्षा दी जाती थी। अंग्रेजों के शासन काल और फिर आजादी के बाद भारत मे आधुनिक शिक्षा का तेजी के साथ विस्तार हुआ।

भारत मे उच्च शिक्षा के क्षेत्र में 1857 तक हिन्दू कॉलेज कलकत्ता, बनारस संस्कृत कॉलेज, पचयप्पा क्रिश्चियन कॉलेज मद्रास, और आगरा कॉलेज स्थापित हुए, इस काल में व्यावसायिक कॉलेज, रूड़की इंजीनियरिग कॉलेज, कलकत्ता मेडिकल कॉलेज, बंबई इंजीनियरिग कॉलेज स्थापित हुए। स्वतंत्र भारत में राधाकृष्णन आयोग, कोठरी आयोग आदि ने उच्च शिक्षा में गुणवत्ता संवर्धन का प्रयास किया। सार्जेण्ट रिपोर्ट के आधार पर विश्व विद्यालय अनुदान समिति तथा राधाकृष्णनन आयोग के सुझाव पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की स्थापना की गई।

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में स्वतंत्रता प्राप्ति से लेकर अब तक संख्यात्मक दृष्टि से अशातीत वृद्धि हुई है विश्वविद्यालय की संख्या 20 बढ़कर 430, महाविद्यालयों की संख्या 500 से बढ़कर 20,677 और शिक्षकों की संख्या 15000 से 5.05 लाख तक पहुँच गई है। साथ ही छात्रों की संख्या 1950 में जहाँ केवल 1 लाख थी, अब बढ़कर 118.12 लाख तक पहुँच चुकी है। जिसमे लड़कियों की संख्या 47.09 लाख है। इस प्रकार उच्च शिक्षा मे कुल नांमाकन जो वर्ष 1950 मे 01 प्रतिशत था। वर्ष 2010–11 तक लगभग 13.5 प्रतिशत तक पहुँच चुका है। उपरोक्त आकड़े बताते हैं कि देश में विज्ञान, तकनीकी, चिकित्सा, प्रबधंन, कला, संगीत, दर्शन, इंजीनिरिंग के क्षेत्र में शिक्षा

का तेजी के साथ विकास हुआ है। ज्ञान आधारित समाज की स्थापना में देश ने बिगत दो दशकों में अच्छी उपलब्धियाँ हासिल की है। इंजीनियरों, चिकित्सकों, प्रबंधकों, ने अपने ज्ञान और कौशल का अभिनव एवं उच्च स्तरीय प्रदर्शन किया है। तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में भारत की प्रगति संतोष जनक है अभी हाल ही में (13 अक्टूबर 2011) इसरो द्वारा श्री हरिकोटा के पी.एस. एल. वी. सी. 18 से तीन नैनो सेटेलाइट सफलता पूर्वक अंतरिक्ष मे भेजे गए हैं। इनमें से सबसे छोटा जुगनू विश्व का सबसे कम बजन वाला उपग्रह है। इस उपग्रह को आई0 आई0 टी0 कानपुर के छात्रों न बनाया था। साथ ही देश के कई शिक्षण संस्थानों से निकल ने वाले छात्र दुनियाँ मे भारत का नाम रोशन कर रहे है, सरकार भी शिक्षा के समग्र विकास के लिए प्रतिबद्ध है। इतना ही नही भारत के वर्तमान प्रधानमंत्री ने 11वीं पंचवर्षीय योजना को भारत की राष्ट्रीय शिक्षण योजना के तौर पर निरूपित करते हुए, चार लक्ष्यो–समावेषण के साथ विस्तार, गुणवत्ता और प्रासांगिक शिक्षा, शैक्षणिक व प्रशासनिक सुधार और समावेशी शिक्षा पर ध्यान केन्द्रित कर विकास की बात कही है, साथ ही लगभग 84943 करोड़ रुपए का बजट भी इस योजना में शिक्षा के लिये तय किया गया है। इसमें संदेह नहीं कि इन प्रयासों द्वारा शिक्षा के विस्तार से आर्थिक विकास होगा, और समवेशीकरण के जरिए उच्च शिक्षा तक अधिक से अधिक लोगों की पहुँच बढ़ेगी।

लेकिन तस्वीर का दूसरा पहलू भी सामने हैः–आजादी के बाद शिक्षण संस्थाओं की संख्या तो बढ़ी है लेकिन इन संस्थानों में गुणवत्ता का विकास नही हो पाया है। 07 आई0 आई0 टी0 और 05 आई0 आई0 एम0 संस्थानों और उगलियो मे गिने जाने वाले कुछ विश्वविद्यालयों को छोड़ दें तो हर जगह उच्च शिक्षा का गुणात्मक विकास महज खानापूर्ति में चल रहा है। पूरी दुनियाँ के 500 विश्वविद्यालयों में भारत के 03 विश्वविद्यालय ही गुणवत्ता पर खरे उतरते हैं। वैश्विकस्तर पर अमेरिका के 168, ब्रिटेन के 40, जर्मनी के 40, जापान के 34 विश्वविद्यालय दुनिया के 500 विश्वविद्यालयों में स्थान बनाते हैं। दुनियाँ के प्रथम 100 विश्वविद्यालयों में भारत की रैकिंग शून्य है। जबकि अमेरिका के 53, ब्रिटेन के 11, जर्मनी और जापान के 5–5 विश्वविद्यालय टाप 100 की रैकिंग मे अपना स्थान बनाते हैं। स्पष्ट है कि वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पध र्ात्मक दृष्टि से भारत का शैक्षणिक परिदृश्य संतोष जनक नहीं है। विकसित देशो में उच्च शिक्षा के विकास, संवर्धन और गतिशीलता के लिए निरन्तर अनुसंधान होते हैं। आवश्यकता के अनुरूप नीतियाँ बनती हैं, और उनका अक्षरशः पालन होता है। लेकिन हमारे देश में नीतियाँ वे बनाते हैं, जिन्हें न तो उच्च शिक्षा से कोई वास्ता है और न ही समस्याओं और चुनौतियो को सुलझाने में ही कोई रुचि है।

उच्च शिक्षा के विकास मे शासकीय संस्थानों की स्थिति तो और भी अधिक दयनीय है, क्योंकि सरकारी तन्त्र में शिथिलता, नक्कारापन और गैर जिम्मेदारी का वर्चस्व है। शिक्षण संस्थाओ पर राजनीति, गुटबाजी, भाई भतीजा वाद और नौकरशाही हावी हो रही है। नीतियों के निर्माण से लेकर व्यवहारिक क्रियान्वय तक के बीच मे दूरदर्शितपूर्ण निर्णय व क्रियान्वयन में ईमानदारी व समन्वयपूर्ण कार्यशैली का अभाव सबसे बड़ा कारण है। दूसरी तरफ शिक्षण सस्थानों मे बढ़ रही अराजकता, अनुशासन हीनता व पठन पाठन के प्रति उदासीनता तथा भ्रष्टाचार के नए नए रूप एक बड़ी चुनौती है। हमारे देश मे शिक्षा के समझ प्रमुख चुनौतियाँ इस प्रकार हैः–

1. भारत मे दी जा रही शिक्षा इस स्तर की नहीं है कि वह वैश्वी कृत दुनियाँ के माँगो के अनुरूप छात्रो को तैयार कर सके।
2. देश में उच्च शिक्षा सहित समूची शिक्षा, शैक्षिक स्तर, फैकल्टी और मूलभूत सुविधाओ को लेकर सवालों के घेरे में है।

3. गुणवत्ता को बढाने, पाठयक्रम को योजनाबद्ध और तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप करने के गंभीर प्रयास की कमी है।
4. शिक्षा के विस्तार के अनुपात में मूल सुविधाओं की व्यवस्था नहीं हो सकी है।
5. प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा प्रदान करने वाला शिक्षण सस्थाओं में आधार भूत सुविधाओं का अभाव है। (सर्वोच्च न्यायालय को मई 2011 को उपलब्ध कराई गई जानकारी के अनुसार–म0प्र0, महाराष्ट्र, उ0प्र0 सहित लगभग 15 राज्यो में 5 लाख 66 हजार 221 स्कूलों मे अध्ययन करने वाले छात्र–छात्राओं को आधारभूत सुविधाएँ तक उपलब्ध नहीं हैं। जहाँ तक बच्चों की योग्यता के स्तर की बात है वह सर्वाधिक चितंनीय है। ''अभी हाल ही में एस0 ई0 आर0 के 30 हजार ग्रामीण बच्चों पर किए गए अध्ययन रिपोर्ट में कहा गया है–कि बच्चों द्वारा अपने स्तर पर सही तरीके से वाक्य रचना करने की क्षमता जहाँ तेजी से कम हो रही है वहीं कक्षा चार मे पढ़ने वाले बच्चों का बड़ा हिस्सा बुनियादी गुणा–भाग मे भी समस्या का सामना कर रहा है।'' निश्चय ही यह स्थिति चिन्ताजनक है।)
6. शिक्षण संस्थानों में प्रशिक्षित और समर्पित शिक्षकों की कमी है।
7. शिक्षा से सामाजिक तनाव, पारिवारिक विघटन और बच्चों में डिप्रेशन बढ़ा है। चारों तरफ अनुशासनहीनता और अपराधीकरण का वर्चस्व बढ़ रहा है।
8. नौकर शाही और राजनीति का वर्चस्व निरन्तर बढ़ रहा है।
9. संवर्ग लोगों के मध्य प्रतियोगिता में समग्र समानता के लिए अयोग्यों को आगे बढ़ाना भी भविष्य के लिए घातक है।
10. अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा अधिनियम 2009 के प्रावधान (कोई परीक्षा नहीं, कोई अनुत्तीर्ण नहीं) स्तरीय ज्ञान, तार्किकता, विश्लेषणात्मक बुद्धि के विकास में सहायक न होकर और अधिक बाधक होगें।
11. ट्यूशन समानान्तर शिक्षा व्यवस्था का रूप ले चुका है।
12. शिक्षण संस्थानो में परीक्षाओं में व्यापक नकल भी एक गंभीर चुनौती है जो शिक्षा के स्तर को खोखला कर रही है। (यह गंभीर बीमारी है और हमारे राजनेता जो देश के कर्णधार है वे भी इसमे निर्णायक भूमिका निभाते है। कई नेताओं के स्वयं के बच्चो, नजदीकी रिश्तेदारों को फर्जी तरीके से लाभ पहुँचाना भारत में आम चलन है लेकिन अभी हाल ही में पाण्डूचेरी के शिक्षामंत्री ने दंसवी कक्षा की पूरक परीक्षा मे स्वंय के स्थान पर दूसरे व्यक्ति को परीक्षा देने के लिए बैठाया था।)

निश्चय ही ये परिस्थितियाँ और परिदृश्य शुभ संकेत नहीं कहे जा सकते हैं। देश मे शैक्षणिक परिदृश्य के दोनों पहलुओ का विश्लेषण करने पर स्पष्ट है कि शैक्षणिक क्षेत्र मे गंभीर चुनौतियाँ है, समस्याएँ है लेकिन ये लाइलाज नही है–वास्तव में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में जो भी समस्याएँ हैं, उनके निदान के लिए गंभीर प्रयास की जरूरत है। शिक्षक, शिक्षार्थी, शैक्षणिक संरचना और शैक्षणिक परिवेश ये चार प्रमुख घटकों को लेकर सकारात्मक प्रयास करने की आवश्यकता है। इसके लिए सबसे प्रथम तो शिक्षा सुधार के लिये गठित कोठारी कमीशन के अध यक्ष श्री दौलत सिंह कोठरी के कथन पर गौर कर अमल करना होगा उन्होंनें कहा था कि –'' देश के बुद्धिजीवियों के सम्मुख एक विकट समस्या है कि उनकी सोच का केन्द्र यूरोप है, इस केन्द्र को भारत में स्थिति करना होगा तभी अच्छी शिक्षा और देश का समग्र विकास संभव है। क्योंकि अंग्रेजों के शासन काल में तो जैसा कि जान ग्रान्ट और लार्ड मैकाले के कथन से ही स्पष्ट होता है कि उनका उद्देश्य केवल स्वंय की स्वार्थ सिद्धी था। (1853 मे ब्रिटिश पार्लियामेट को संबोधित करते हुए जॉन ग्रॉट ने कहा था – कि भारत मे 5 लाख स्कूल थे जिन्हे हम नें

समाप्त कर दिया। लॉर्ड मैकाले ने अपने एक वक्तव्य मे कहा था कि– मै जो शिक्षा दूगां उसमे विद्यार्थियो की चमडी और खून तो भारतीय होगा, लेकिन उनकी बुद्धि, आत्मा, उनका विचार, और उनकी नैतिकता हमारी होगी।) ऐसे में भारतीय शिक्षा व्यवस्था में सुधार के लिए वैश्विक परिस्थितियो और वर्तमान परिदृश्य के अनुरूप शिक्षाविदों और मनीषियों को चिन्तन, मनन कर शैक्षणिक योजना तैयार करनी होगी। इसके साथ ही कुछ और उपाय अपनाये जा सकते हैं।

1. बुनियादी स्तर पर सुधार के द्वारा ही सम्पूर्ण शैक्षणिक परिदृश्य को सुधारा जा सकता है। इसके लिए प्राथमिक शिक्षा की जरूतों को समझना होगा तथा प्राथमिक शिक्षा को स्तरीय और विश्वसनीय बनाना होगा।
2. छात्रों को प्रति माता पिता व शिक्षकों को अपनी जिम्मेदारी निभाने में ईमानदारी बरतनी होगी।
3. शिक्षा के पाठ्यक्रम को वर्तमान समय की आवश्यकता के साथ–साथ सामाजिकता के भी अनुरूप करना होगा।
4. अकादमिक और प्रशासनिक सुधारों को संपूर्ण शिक्षा व्यवस्था में अपनाना होगा, इसके लिये निम्न उपाय किये जा सकते हैं।
   (1) इसके लिए प्रवेश परीक्षा व सभी परीक्षाओं की प्राविधियों में परिवर्तन।
   (2) अकादमिक सुधारों मे आन्तरिक मूल्याँकन पर विशेष ध्यान ।
   (3) सेमेस्टर सिस्टम एवं ग्रेड सिस्टम को पूर्णतः मान्यता ।
   (4) सेमिनार परियोजना कार्य व इकाई परीक्षाओं के द्वारा छात्रों का सतत् निष्पक्ष मूल्याँकन।
   (5) शिक्षकों की प्रशिक्षण एवं परीक्षा के बाद नियुक्ति।
   (6) समय– समय पर शिक्षकों के पुनः प्रशिक्षण की व्यवस्था।
5. मूल्य आधारित शैक्षणिक पाठ्यक्रम की भी महती आविश्यकता है इसके लिए सत्य धर्म, प्रेम सहयोग और अहिंसा जैसे बुनियादी मूल्यों को अध्ययन अध्यापन में स्थान मिले इसकी व्यवस्था होनी चाहिए। (सर्वोच्च न्यायालय ने भी 2002 में अरूणा राम एवं अन्य बनाम भारत सरकार मामले में निर्णय देते हुए स्वीकर किया था कि विगत पाँच दशको में हर स्तर पर सामाजिक नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का निरन्तर ह्रास हुआ है और स्वार्थपरता मे वृद्धि हुई है। सर्वोच्य न्यायालय ने इसके पुर्नस्थापना के लिए मूल्य आधारित शिक्षा पर बल दिया है।) स्वामी विवेकानंद ने भी कहा था कि– हमें वह शिक्षा चाहिए जिससे चरित्र बनता है, मन की शक्ति बढ़ती है, प्रतिभा का विस्तार होता है और आदमी अपने पैरो पर खड़ा हो सकता है।
6. शिक्षा और समाज मे तादात्मय स्थापित हो सके इसके लिए शिक्षको को अपने गुरुतर दायित्वों के निर्वहन के लिए आत्मप्रेरित होकर तत्पर होना होगा।

आज विश्वविद्यालयों की कक्षाएँ पाठ सुनने के कमरे नहीं बने, छात्र जिज्ञासा, अन्वेषण अध्ययन से दूर रहकर तथ्यों और आकड़ों के उपभोक्ता न बने, प्राध्यापक आकड़ों के थोक विक्रेता के स्थान पर चिन्तक बने, सर्जक बने, तभी उच्च शिक्षा की सार्थकता है। और तभी वह समाज के निर्माण और सर्वागडीण विकास मे सहायक बन सकती है।

निष्कर्षत कहा जा सकता है कि वैश्विक श्रेष्ठता के मानको के अनुरूप गुणात्मक परिवर्तन और सामाजिक तथा नैतिक मूल्यों से अनुप्राणित शैक्षणिक व्यवस्था तभी बन सकती है जब राजनैतिक, सामाजिक दृढ़ इच्छा शक्ति हो तथा नीति निर्माता और राजनेता देश के भविष्य के लिये यथार्थ के धरातल को ध्यान में रखकर नीति का निर्माण

और उनका क्रियान्वयन करें। निश्चय ही शिक्षक शिक्षार्थी के साथ साथ शिक्षक विद्यालय छात्र व शिक्षा के प्रति सम्पूर्ण समाज द्वारा किया गया ईमानदार प्रयास ही शिक्षा के स्तर को व्यापक, स्तरीय, समयानुकूल व देशानुकूल बना सकता है। केवल उत्कृष्ता के बद टापू खड़े करने या योजनाओं के कागजी घोड़े दौड़ाने से शैक्षणिक परिदृश्य मे बदलाव व उसकी चुनौतिया व समस्याओं का समाधान संभव नही है।

सदर्भ संकेत

1. Chahan, S.S. : innovations in Teaching, Learning process. Vikash Publishing House Pvt. Ltd., New Delhi 1998
2. शर्मा, सुभाष भारत में शिक्षा व्यवस्था : अवधारणाएँ, समस्याएँ एवं संभावनाएँ
3. अग्रवाल जे0एस0–आधुनिक शिक्षा के स्रोत, वाणी प्रकाशन दरियागंज, नई दिल्ली–2007
4. आचार्य नरेन्द्र देव–लेख–''शिक्षा में गुणात्मक सुधार'' ''विचार'' म0प्र0 शासन उच्च शिक्षा विभाग, 2008
5. गुप्ता, पवन कुमार (सम्पादक) शिक्षा, सभ्यता और आधुनिकता, वाणी प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली, 2008
6. महर्षि अरविंद : आई डियल आफॅ ह्रयूमिनिटी–ह्रयूमनसाइकिल, हिन्दी प्रकाशन, अरविंद आश्रम पांडचेरी, 1937
7. शर्मा, एस0 के0 शिक्षा दर्शन, डिस्कवरी पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली, 2006
8. रचना पत्रिका, म0प्र0 हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल, सित0 अक्टू0 2011
9. दैनिक भास्कर, सतना, 19 जून 2012

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

विधिक शिक्षा के समक्ष चुनौतियाँ एवं भावी संभावनाएँ

डॉ0 मिथलेश गुप्ता
सहायक आचार्य–समाजशास्त्र विभाग
बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर (राजस्थान)

वर्तमान परिपेक्ष्य में विधि के समक्ष जो चुनौतियां दृष्टव्य हो रही है उन्हे हम अमूर्तता के धरातल में समझने की अपेक्षा समाचार पत्रों मे प्रकाशित की कुछ नजीरे पेश कर भली भांति समझ सकते है जो इस विषय और शीर्षक को भी सार्थकता प्रदान करती है।

26 जनवरी 2010 के भास्कर में प्रकाशित खबर पढने पर प्रसन्नता कलेजें में हिलोरे लेने लगी तथा महसूस हुआ कि गणतन्त्र दिवस की 62 वीं वर्षगांठ पर भी भारत के कई राज्य और गाँव आज भी ऐसे है, जहाँ कानून व कानूनविज्ञ भले ही कुछ नही कर पाये हो लेकिन वहाँ की जागरूक जनता ने बहुत कुछ कर दिखाया। बाडमेर से 25 कि. मी. दूर डूगरों का तले एक गांव है जो के बुर्जुगों ने गांव की बेटियों को शिक्षित करने हेतु एक जाजम पर बैठकर अनिवार्य नियम ही बना दिया जिस नियम की अनुपालना नहीं करने पर जुर्माना वसूलने का भी निर्णय लिया गया जबकि 1995 से पूर्व इस गांव में एक भी स्त्री अथवा लडकी पढी लिखी (साक्षर) नहीं थी। अतः कानून तो मूकदृष्टा ही रहा और ग्रामीणों के बनाये नियम ने बेटियों की तकदीर ही बदल दी। 200 परिवार वाले इस गांव में छात्र सिर्फ 180 जबकि 225 छात्रायें है।

प्राथमिकता निरन्तर बदल रही है। दस वर्ष पूर्व जो प्राथमिकतायें थी संभवतः वे आज भी है उनका स्थान अन्य ने ले लिया है। प्रत्येक व्यक्ति का न केवल नजरिया बदला है अपितु अलग–अलग व्यक्ति का नजरिया भी अलग अलग होता है। ऐसी स्थिति में समान अपराध के लिये अलग अलग न्यायाधीशों द्वारा पृथक पृथक निर्णय दिया जाता रहा है। अथवा अलग अलग राज्य में समान अपराध के लिये पृथक पृथक निर्णय इस बात का द्योतक है कि वैधानिक व न्यायिक व्यवस्था कितनी असमान है। इसके विपरीत आदिम सरल व अविकसित समाजों मे जहॉ कानून प्रथागत व दमनात्मक होते थे वे सभी के लिए समान होते थे वहॉ यदि किसी ने चोरी की है तो चाहे वह किसी भी घराने या परिवार का व्यक्ति क्यों न हो उसके हाथ काट दिये जाते थे। यदि किसी ने किसी स्त्री या लडकी को गलत नजर से देखा है तो उसकी आंखे निकाल नी जाती थी अर्थात् 'न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी' यहां मेरा मकसद दमन का पराकाष्ठा का समर्थन करना नहीं अपितु कानून में निर्णय को समरूपता से है। यदि विकास की चर्म पर 21 वी सदी में पहुँचने के बाद भी हम समान अपराध में समान दण्ड का निर्णय नही देख और सुन पा रहे है तो उस विकास के मायने क्या है?विचारणीय है।

दमनात्मक कानून में कठोरता होने से व्यक्ति दण्ड की भयावयता को ध्यान में रखकर अपराध करने से डरता है। वर्तमान कानून व विधि ने व्यक्ति को इतना निर्भीक बना दिया है कि निडर होकर कानून की अवहेलना करता देखा जाता है। जब मै अध्ययन करती थी उस समय और आज भी ट्रेन और बसों के स्लोगन लिखा होता कि बिना टिकट यात्रा करने पर 250 रूपये का जुर्माना अथवा 15 दिन का कैद इसमें दिमाग सोचने को मजबूर हो जाता कि क्या विधि की दृष्टि में भी यही तर्क संगत है कि अपराध करों और जुर्माना भरो। अथवा जेब में पैसे हो तो आप बेटिकट यात्रा कर सकते है। वर्तमान समय में क्षतिपूर्ति कानूनों ने दमनात्मक कानूनों का स्थान ले लिया फलतः व्यक्ति अधिक निरंकुश एवं अनुशासनहीन हो गया है।

विधि एवं विधि की शिक्षा मे समयानुसार अपेक्षित परिवर्तन नही हो पा रहा है। वर्तमान के हालात और

आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर विधि का पाठ्यक्रम निर्धारित किया जाना अधिक समीचीन होगा। जिसमें जन (जनता) गण (शासन) को ध्यान में रखकर पूरे मनोयोग (आत्मा) से कार्य करने कि विचारधारा निहित हो।

पाठ्यक्रम निर्माण के समय इसे भी ध्यान मे रखा जाये कि कई वर्षों से जाति में बंटे लोग एक राष्ट्र के रूप में कैसे संगठित हो सकते है? संयुक्त राज्य अमेरिका में जाति की कोई समस्या नहीं है। भारत मे कई जातियां है जो राष्ट्र विरोधी हो भी सकती है। और नही भी। बंधुत्व अर्थात् सभी भारतीयों में भाईचारा किस तरह कायम हो सकता है। क्या इस दिशा मे कोई प्रभावी भूमिका विधि शिक्षण व कानून द्वारा अदा की जा सकती है जिससे मण्डल आयोग के बाद और गूर्जर आन्दोलन के बाद उत्पन्न होने वाली स्थितियों की पुनरावृत्ति न हो।

भारतीय समाज में, सामाजिक स्तरीकरण के कारण असमानता व असन्तुलन व्याप्त है। आर्थिक असमानता की बात वर्गों की अवधारणा के रूप में मॉर्क्स ने भी की है। कुछ लोगों को तो आगे बढने के, ऊंचा उठने के पूरे अवसर उपलब्ध करवाये जाते है जबकि ऐसे कई लोग है जिनके हिस्से मे अपमान व पदावनति ही आती है। क्या इस आर्थिक असमानता की खाई को कम करने या पाटने की दिशा में विधिक शिक्षण कोई अहम भूमिका निर्वहन कर सकता है। क्या इस दृष्टिकोण को ध्यान मे रखकर राजस्थान मे विधिक पाठ्यक्रम निर्मित किया जा सकता है।

चहुँमुखी विकास की गंगा बहने के बावजूद हमारे आधुनिक गणराज्य, कानूनों संस्थाओं व प्रतीकों से देश के आम लोगों का वैसा जुडाव क्यो नही है? जैसा कुंभ जैसे प्राचीन आयोजनों के साथ आज भी दिखाई देता है। संसद में होने वाले हंगामों, आन्दोलनों मे होने वाली राष्ट्रीय सम्पत्ति की क्षति को रोकने उसके प्रति लगाव पैदा करने हेतु क्या कोई उपाय हो सकता है?

धारा 498 ए और दण्ड प्रक्रिया संहिता में धारा 706, ये दोनों ऐसे कानून है, जिन्होने महिला के विरूद्ध होने वाले अपराधों को रोकने मे अहम भूमिका अदा की। बीते 62 सालों मे यह महिलाओं के हित मे लिया गया यह महत्वपूर्ण कदम है। इसी प्रकार 73 वे संवैधानिक संशोधन महिलाओं के लिये एक बडी उपलब्धि कही जा सकती है जिसके द्वारा महिलाओं की ग्राम, विकास खण्ड और जिला पंचायत स्तर पर 33 प्रतिशत आरक्षण मिल गया जो कि ग्रामीण महिला के सशक्तिकरण के लिये एक उम्दा कदम है। इस व्यवस्था ने महिलाओं को जमीनी स्तर से जोडने का काम किया है और कर रही है। साथ ही इससे महिलाये आर्थिक रूप स्वतन्त्र भी हो रही है लेकिन हमें यहाँ यह भी ध्यान देना आवश्यक है कि बीते वर्षों मे कैसे समाज और सामाजिक मूल्य है?हमे विचार करना होगा शिक्षाविद्, न्यायविद्, विधिवेत्ता व विधि के विद्यार्थी की हैसियत से। जीवनशैली मे आये बदलाव सामाजिक मूल्यों मे परिवर्तन का कारण है जिसने व्यक्ति को अवसरवादी, स्वार्थी, प्रतिभाविहिन तथा विपरित परिस्थिति में लालची बना दिया है आज एक रूपये के लोभवश वह कुछ भी करने को तैयार हो जाता है। घर परिवार से जुडाव न होने के कारण अलगाव महसूस कर विसंगत व्यवहार की तरफ उन्मुख हो हत्या, अपहरण तथा निकट सम्बन्धी का खून तक करने को तैयार हो रहा है। तुलसीदासजी ने रामचरितमानस मे कहा भी है–'कोडी लागी लोभवश करहि विप्र गुर घात'। न्यायप्रक्रिया की ये पेचीदगी उसका कुछ बिगाड नही सकती। मॉर्क्स का आर्थिकवाद हावी होने के कारण समाज में सम्मान भी बरकरार रखा जाना आवश्यक है। अतः क्या ये आंकडे यूं ही बढने दे?मेरे ख्याल से हमें विधि के 3 व 5 वर्ष के पाठ्यक्रम में नैमिक मूल्यों के साथ–साथ समाजशास्त्र, अपराध शास्त्र का एक–एक पेपर अवश्य पढाया जाना वर्तमान परिस्थिति की मांग है जिससे विद्यार्थी को सामाजिक मूल्य, प्रतिमान, प्रस्थिति एवं भूमिका के साथ–साथ समाजीकरण, उसके विभिन्न चरण, पदसोपान तथा समाजीकरण की संस्थाओं का ज्ञान होगा। उसे यह भी विषय वस्तु कितनी अहम भूमिका अदा करती है। केवल कानूनों का अम्बार लगा देना ही महत्वपूर्ण नही है उनकी अनुपालना दण्ड के अलावा और किस कारगर प्रयास से संभव है?तो हमारा संकेत और इशारा समाजशास्त्र की तरफ ही होगा। हमारी दृष्टि वहाँ जाकर ही ठहरेगी।

भूमण्डलीकरण के कारण विश्व में विभिन्न देशों के बीच दूरी कम होने के करण एक ओर निकटता बढी है

तो दूसरी ओर अपराध भी बढे है बढती हुई जनसंख्या के फलस्वरूप वर्तमान युवा पीढि में जोश तो है परन्तु होश नही है। फलतः झगडे टन्टे तो बढेगे और विधि के व्यवसाय का भविष्य तो सुखद है और आगे भी रहेगा लेकिन व्यक्ति न्याय की तलाश मे भटकता रहेगा क्योकि न्यायालयों में प्रकरणों का अम्बार लगा पडा है और इसमें मुवक्किल का शीघ्र मोह हो जाता है। इस मोह भंग को रोकने की दिशा मे प्रयास होना जरूरी है।

ट्रान्सपेरेन्सी इंटरनेशनल की वर्ष 2009 की सूची में भारत 100 मे से 34 अंकों के साथ कही पीछे 84 वे स्थान पर पहुंच गया है। हमारे देश मे यह भावना पैठ चुकी है कि भ्रष्ट्राचार के छोटे मामलों मे जहाँ तीव्रता से कार्यवाही हो जाती है, वही बडी मछलियॉ सजा से हमेशा बच जाती है। विधिवेत्ता विधि शिक्षकों व न्यायविदों के लिये यह जांच पडताल एवं चिन्ता का विषय है कि भ्रष्ट्राचार कम होने की बजाय लगातार बढता ही क्यो जा रहा है?जितने भी लूट खसोट, बैक डकैती, अपहरण, चोरी और फिरौती जैसे काण्ड होते है उनमे युवा और उच्च शिक्षा या व्यावसायिक शिक्षारत विद्यार्थियों का हाथ अधिक होता है इनमें मेडिकल व इन्जीनियरिंग के छात्र ही अधिक संलिप्त पाये जाते है जिनका किसी कारण भटकाव हो जाने से बहक जाते है। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या हमारे कानून और न्याय प्रणाली अपने आप मे इतनी समर्थ है कि वह दोषियों को दण्डित कर सके। इसमें कोई सन्देह नही कि कागजों पर हमारे यहाँ बहुत अच्छे कानून है लेकिन दुर्भाग्य से सभी कानून पीडितों की बजाय आरोपियों के अधिकारों की चिन्ता अधिक करते है। केवल अच्छे कानून ही पर्याप्त नही है, उनके पीछे की मंशा भी अच्छी होनी चाहिए। यदि उन्हे लागू करने और कराने के लिये मजबूत इच्छाशक्ति नही है तो वे केवल कागजी शेर बनकर रह जायेगे। भ्रष्ट्राचार के खिलाफ लडाई मे विजय मे तो दूर की कौडी है अभी तो भ्रष्ट्राचार के खिलाफ संघर्ष की शुरूआत भी नही हो पाई है। सर्वोच्च न्यायालय अनेक अवसरों पर अपराधिक न्याय प्रणाली के डहने और पर्याप्त संख्या मे प्रभावी कानून न होने के बारे मे संकेत कर चुका है। अब भी हमारे पास ऐसा कानून नही है, जो हमारी आपराधिक जांच एंजेसियों को भ्रष्ट तरीके से अर्जित की गई सम्पत्ति को जब्त करने की अनुमति देता हो। भ्रष्ट्राचार के खिलाफ संघर्ष के पटरी से उतरने की सबसे बडी वजह यह है कि एक तरफ तो लोग बडी वजह यह है कि एक तरफ तो लोग बडी मछलियों जिनमे राजनेता, वरिष्ठ नौकरशाही, आई. ए. एस. और आई. पी. एस. शामिल है, जो साफ छूटते हुये देखते है जबकि रंगे हाथों पकडे गये लोग इसी दलील का सहारा लेते है कि कानून अपना काम करेगा। सच तो यह है कि हमारे यहाँ कानून इस तरह से बनाये और लागू किये जाते है कि वे अपराधियों के अधिकारों के प्रति अधिक चिंतित होते है न कि शोषित या प्रभावित निर्दोष नागरिको के अधिकारों के प्रति।

भावी संभावनाएँ –

1. अदालतों में लम्बित मुकदमें निपटाने हेतु ग्रामीण स्तर पर प्रत्येक गांव मे चौपाल पर जमीन जायदाद, मारपीट, फसल सम्बन्धी छोटे मोटे प्रकरण निपटाये जाये जिससे प्रकरणों की बढती संख्या को रोका जाये।
2. युवा पीढ़ी को विधिक शिक्षा से होने वाले फायदों को कॉसिलिंग करके उनके मस्तिष्क में भविष्य निर्माण के प्रति जागरूकता पैदा की जाये।
3. विधिक व्यवसाय में दलालों की भूमिका को समाप्त किया जाये जो इस व्यवसाय को पनपने देने हेतु बडा खतरा साबित हो सकता है।
4. विधि महाविद्यालयों को मुनाफे की दुकान न समझ अच्छे अधिवक्ता तैयार करने के उद्देश्य को ध्यान में रखा जाये। साथ ही उन्हे बताया जाये कि औद्योगिक समाजों में प्रत्येक कम्पनी में वैधानिक सलाहकार का पर होता है जो एक से अधिक भी हो सकते है साथ ही उन्हे इस क्षेत्र में रोजगार के अच्छे अवसर उपलब्ध हो सकते है बशर्ते उनकी विधिक ज्ञान हो।
5. किसी परिस्थिति या अपराध के निर्णय हेतु यदि कानून का अभाव प्रतीत होता है तो ऐसी स्थिति में न्यायविद्

कानून निर्माता भी है उसे अपनी बौद्धिक क्षमता, अनुभूति व ज्ञान के आधार पर निर्णय देना होगा।

6. वर्तमान में स्थापित अवधारणा 'अच्छा वकील वह है जो अपने मुवक्किल को गुमराह कर केस की यथार्थता न बताये अन्यथा उसके आय के स्त्रोत सूख जायेगे।' का खण्डन और निमूर्लन कर नयी अवधारणा स्थापित करे। जिसके अनुसार अच्छा अधिवक्ता वह है जो कानून का ज्ञाता, ज्ञान का भण्डार और मुव्वक्किल को अंधेरे में न रखने वाला हो।

7. विधि के मर्मज्ञों को पाठ्यक्रम निर्माताओं को यह बताना होगा कि विधि का ज्ञान प्रत्येक क्षेत्र में आवश्यक है फिर क्यो न इसे केवल छात्र ही पढ़े अपितु एक अनिवार्य पेपर या विषय के रूप में प्रत्येक स्नातक करने वाला विद्यार्थी भी पढे। विधि के शिक्षार्थियों को सामाजिक विज्ञान विशेषकर समाजशास्त्र, अपराधशास्त्र तथा नीतिशास्त्र जैसे विषयों का अध्ययन किया जाना समीचीन होगा।

8. प्रत्येक चरण पर व्यक्ति की जागरूकता बनी रहे चाहे विद्यार्थी स्तर पर या विधि के व्यवसाय में संलग्न होने की स्थिति में। सतत् अध्ययन की आदत उसके उज्जवल भविष्य के लिये आवश्यक है। व्यक्ति की वर्तमान में स्वनियन्त्रण की जरूरत ज्यादा है न कि भय पैदा करके उससे काम लिया जाये।

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

भारतीय शिक्षा का विकास एवं समस्याएँ : एक समेकित दृष्टि

डॉ0 सुषमा पुरवार
एसोसिएट प्रोफेसर–हिन्दी विभाग
डी.एस.एन. कॉलेज, उन्नाव (उ0प्र0)

सा विद्या या मुक्तये – अर्थात – जो मुक्ति दिलाती है वह विद्या है। मुक्ति किससे ? अज्ञान से, अहंकार से, काम–क्रोध, लोभ, मोह के जाल से।

सीखने का हर प्राणी के जीवन में बहुत महत्व है। दरअसल हर प्राणी में जन्मकाल से ही कुछ कार्य क्षमताएँ होती हैं इसी से वह प्रारम्भ से ही कुछ शारीरिक प्रतिक्रियाएँ करता है। आगे चलकर अपने परिवेश के साथ अभियोजन स्थापित करने के लिए कुछ न कुछ सीखना पड़ता है। इस तरह वह अपनी प्रारम्भिक शारीरिक कार्य–क्षमताओं को न केवल बढ़ाता है, बल्कि उनमें अपेक्षित सुधार भी लाता है इस परिवेश के प्रभाव से प्रतिक्रियाएँ करना तथा उनमें सुधार एवं परिवर्तन करना या सीखना ही शिक्षा है।

शिक्षा का अर्थ अंतर्निहित शक्तियों का बाह्य परिवेश एवं संदर्भ में विकास होता है। बाह्य जगत् एवं अंतर्मन के बीच एक अंतः क्रिया निरन्तर चलती रहती है। शिक्षा हमेशा कई स्तरों पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से ग्रहण की जाती है। यह स्वतः ही माना जाता है कि विद्यार्थी खाली पात्र की तरह है। जिसमें शिक्षक के द्वारा ज्ञान रूपी जल भरा जाता है। जबकि वास्तविकता यह है कि कोई बच्चा जब विद्यालय जाता है, तो अपने पारिवारिक परिवेश से प्राप्त विशिष्टताओं, संस्कारों, सूचनाओं को अपने साथ लेकर जाता है। अपने साथ अपने बचपन के खेले गए खेल, कहानियों, किस्सों आदि से सीखे गए संस्कारों को लेकर वह अपने साथ जाता है।

शिक्षा जीवन की एक बहुमूल्य निधि है, जिसका उद्देश्य उच्चतर जीवन में प्रवेश करना। शिक्षा मनुष्य को मनुष्यता से अंलकृत करती है उसे अच्छे नागरिक व राष्ट्रीय विचारधारा से जोड़ती है तथा समाजसेवी बनाती है। मनुष्य को मनुष्य बनाने वाले प्रमुख तत्वों में से शिक्षा एक प्रमुख तत्व है। शिक्षा को प्राप्त करना ज्ञान है अथवा ज्ञान को प्राप्त करना ही शिक्षा है। जिस प्रकार ज्ञान का क्षेत्र अति व्यापक है उसी प्रकार शिक्षा का क्षेत्र भी अति व्यापक है। शिक्षा या ज्ञान प्राप्त करके ही मनुष्य सद्गुणी बनता है। शिक्षा से व्यक्ति के आदर्श चरित्र का निर्माण होता है, इतना ही नहीं शिक्षा व्यक्ति के गुणों को परिष्कृत कर मनुष्य को संस्कारवान् बनाती है। जब शिक्षा की धारा अनवरत रूप से गतिमान होकर मनुष्य को ज्ञान के उस कगार पर अवस्थित कर देती है जहाँ युगानुरूप परिवर्तन के साथ उसका विकास कर देती है। परम्परा प्रदत्त ज्ञान को लेकर इसी तरह अपने अनुभव ज्ञान को संप्रक्त कर सतत् परिवर्तित व परिष्कृत करें यही ज्ञान की सार्थकता है यही शिक्षा का उद्देश्य भी है।

शिक्षा सामाजिक जीवन की ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति एवं समूह अपने व्यक्तित्व, परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व के समग्र हितों का विकास करते है, किन्तु दुर्भाग्यवश शिक्षा यानी सीखने को अध्यापन एवं परीक्षण तक ही सीमित कर दिया गया है। यह उचित नहीं है। जैसा कि प्रसिद्ध समाजशास्त्री इपानइलिच ने अपनी पुस्तक डिस्कूलिंग सोसायटी में कहा – ''विद्यार्थी को विद्यालय में इसलिए भर्ती किया जाता है जिससे वह अध्यापन सीखना मानने, ग्रेड प्रोन्नति को शिक्षा मानने, डिप्लोमा को दक्षता मानने, एवं भाषा प्रवाह को कुछ नया कहने की क्षमता मानने का भ्रम पाले। मूल्य के स्थान पर सेवा को स्वीकार करने हेतु उसकी कल्पना शक्ति को विद्यालयीन बनाया जाता है। चिकित्सा को स्वास्थ्य की देखभाल सामाजिक कार्य को सामुदायिक जीवन की उन्नति, पुलिस

संरक्षण को सुरक्षा, फौज के जमावड़े को राष्ट्रीय सुरक्षा एवं अंधदौड़ को उत्पादक कार्य गलती से मान लिया जाता है।''[1]

शिक्षा का दायित्व यह होता है कि वह शिक्षित व्यक्ति को भय, आतंक, शोषण, आदि से मुक्त करे तथा निर्णय लेने की क्षमता विकसित करके सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक रूप से उसे सशक्त बनाए।

''आज इस नीरव निशा के महातम के घोर स्वप्न में जीवन कलित कुसुमाकर की कमनीयता की सरस सौरभ–सिक्त सुषमा को मानस पटल में मनोगत कर जब प्रकाशिनी भारती के भव्य ज्ञान भण्डार के आदान–प्रदान का वीभत्स रूप देखते है, तब उसके पुरातन पावन स्वरूप का प्रतिबिम्ब चमक–दमक पूर्ण उस आधुनिक शिक्षा पद्धति के रूप में नीरस–मानस पटल पर पड़ता है तब न जाने क्यों वेदना की वीणा कम्पनमयी झनकारों से झंकृत हो उठती है। एक समय वह था जबकि भारत–भारती की मीठी मीड़ विश्व को आनन्द की गोद में उपराम प्रदान करती थी। विभिन्न देशों के जिज्ञासु भारत प्रांगण में ही ज्ञानार्जन करते थे। परन्तु आज यह वैज्ञानिक कहा जाने वाला रूप न जाने क्यों सरस्वती का विकृत रूप हो अभिशाप का द्योतक प्रतीत होता है।''[2]

आधुनिक शिक्षा का यह रूप सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो हास्यास्पद न कहे तो आश्चर्यजनक अवश्य प्रतीत होता है। आज वास्तव में शिक्षा ने एक ऐसे भयंकर झंझावात का रूप धारण कर लिया है जिसने समाज एवं देश की नौका को नेत्रविहीन, गतिहीन बना दिया है और आज देश अज्ञात दिशा की ओर भ्रमित हो चला रहा है। प्रत्येक मनुष्य की मानसिक और शारीरिक शक्ति आज एक आडम्बर बनकर रह गयी है, विडम्बना यह है कि इस शक्ति को सही मार्गदर्शन कराने वाला न आज गुरू है न शिष्य।

आज शिक्षा में व्याप्त भ्रष्टाचार, नैतिक अवमूल्यन, गुणवत्ता ह्रास, आदि पर किसी की दृष्टि नहीं जा रही है। आज सिर्फ जातिवादी व्यवस्था की जड़े गहरी हो गयी है, वर्तमान भौतिक युग में धन की प्रधानता ने वैदिक काल से चली आ रही गुरू–शिष्य परम्परा की मधुरता और गुणवत्ता को सर्वाधिक प्रभावित किया है, जिसके लिए शिक्षक प्रणाली, प्रशासनिक तंत्र, समाज और सरकार सभी जिम्मेदार है। असबद्ध विचार श्रृंखला, अधीर, वार्तालाप, पीढ़ी के मध्य अन्तर, अल्प ज्ञानार्जन और धर्म–प्रधानता, अनुशासनहीनता आदि के कारण छात्रों की उत्कृष्ट मेधा सामने नहीं आ पा रही है।

जन्म से लेकर शिक्षा की समाप्ति तक व्यक्ति के निर्माण के लिए जो जटिल परन्तु गम्भीर संवेदनमयी व्यवस्था की श्रृंखला मिलती है, उसकी प्रत्येक कड़ी दीर्घ चिंतन और परीक्षण का परिणाम है।

तत्कालीन दीक्षांत अनुष्ठान ऐसी संधि है जिसमें गुरू शिष्य परम्परा जो वर्षों से चली आ रही थी वह समाप्त हो चुकी है, जिसमें शिष्य की परीक्षा समाप्त हो चुकी है और गुरू की परीक्षा का आरम्भ हो चुका है। अध्यापक कठपुतली के समान आधुनिक शिक्षा प्रणाली रूपी नटी के हाथों इधर–उधर नाचता फिर रहा है, न उसका कोई रूप है और न कोई अस्तित्व। आज का विद्यार्थी धर्म के स्थान पर धूम्रपान को महत्व देता है उसके काले 'उपनयन' उसे दूरदर्शी बनाते है। मेधा और ओजस्विता का परिचय वह गुरू के सामने दंबगई से नेता या मंत्री या फिर अधिकारी के रिश्तेदार के रूप में देता है। उसकी नम्रता और शान्ति के दर्शन तो दुर्लभ हो चुके है। 'गुरूजी' शब्द तो अब उन्हें बेमौसम की वर्षा या फिर भौड़ा संगीत प्रतीत होता है।

प्राचीन समय में ''गुरुः ब्रह्मा, गुरु विष्णु, गुरुः देवो महेश्वरा।'' की पंक्तियों से स्कूल, कालेज के परिसर गुंजायमान होते रहते थे आज यह सब विलुप्त प्रायः सा हो गया है। यह सभी लज्जाजनक बाते हैं। हाँ आज हमारी शुष्क धमनियों में उस प्राचीन संस्कृति के एकलव्य के रक्त का संचार क्यों नहीं होता? जहाँ राम और कृष्ण के अनुपम अनुकरणीय आदर्श थे वहाँ आज है इस आधुनिक शिक्षा का यह स्वरूप। जिसका परिणाम इतना भयंकर दिखाई दे रहा है। छात्र अपनी अशिष्टता और उदण्डता आदि कुत्सित कार्यकलापों से शिक्षक की नज़रों से गिर चुके हैं।

जहाँ तक भारत के छात्र वर्ग का प्रश्न है वह सामाजिक ही नहीं मनोवैज्ञानिक संक्रांति के मध्य जी रहा है। उसके व्यक्तित्व की बाह्य और अंतस्थिति इतनी विघटित है कि उसमें निर्माण की प्रेरणा जगाना दुष्कर नहीं तो कठिन अवश्य है।

भारत रत्न से सम्मानित श्री जयप्रकाश नारायण ने बहुत पहले सन् 1978 ई0 में ही औपचारिक शिक्षा की उपलब्धियों से निराश होकर कहा था–''दुर्भाग्य से अपने लिए हमने शिक्षा की जो औपचारिक पद्धति चुनी है वह व्यक्तित्व विकास और सामाजिक परिवर्तन दोनों ही कार्यों को पूरा करने में विफल रही है। हमारे देश की शिक्षा व्यवस्था में खोट ही खोट है और वह भी हर स्तर पर है, प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक।''[3]

गांधी जी ने स्पष्ट रूप से कहा था– ''मैं शिक्षा या उच्च शिक्षा का विरोधी नहीं हूँ लेकिन ऐसी शिक्षा का विरोधी हूँ जो कि आज इस देश में दी जा रही है। मेरी योजना में आज से अधिक संख्या में, और अधिक अच्छी अनुसंधान शाखाएँ होगी। आज मुझे भी लगता है विद्यालयों के बाद भी बच्चों का एक ऐसा विद्यालय हो जहाँ बच्चे स्वेच्छा से स्वतन्त्र होकर अपने विचारों का आदान–प्रदान करें, खेल कूद सकें। आज यदि श्यामपट पर कलम से एक गोला बना दिया जाए तो शिक्षित कहे जाने वाले उसे ''शून्य'' कहेंगे या अंग्रेजी का ''0'' कहेंगे। सिर्फ छोटी जमात में पढ़ने वाले बच्चे उसे चन्द्रमा, पृथ्वी या अण्डा की कल्पना कर सकते हैं। विद्यार्थियों को हमें सिर्फ किताबी कीड़ा नहीं बनाना चाहिए बल्कि उन्हें वास्तविक जीवन से जुड़ने दें, क्योंकि वे सही ज्ञान अपने अनुभव तथा आस पास के लोगों से ही या अपने गुरू से प्राप्त कर सकता है।

वर्तमान परिवेश में जबकि जनसंख्या दिनों दिन बढ़ती जा रही है, उत्तर आधुनिकता और नयी अर्थ प्रणाली समाज और देश पर हावी है वे ही चकाचौंध उत्पन्न कर रही है जिसके कारण नैतिकता प्रभावित हो रही है। ऐसे समय में आज की शिक्षा प्रणाली भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती। एक शिक्षिका होने के नाते इन समस्याओं से प्रतिदिन रूबरू होना पड़ता है।

आज वास्तविकता यह है कि जो शिक्षा प्रणाली है वर्तमान से आँख मूँद कल्पना में खोये रहने की प्रणाली है जो कि अतर्कसंगत है। हमें शिक्षा को रोजगारपरक बनाते हुए छात्रों का विशेश ध्यान रखना होगा। डा0 आत्माराम ने ''इक्कीसवीं सदी में शिक्षा'' पुस्तक में लिखा है – ''शिक्षक को राष्ट्र निर्माता इसी कारण कहते हैं क्योंकि वह राष्ट्र को बना सकता है। सभी महान व्यक्तियों के पीछे किसी न किसी रूप में अध्यापक ही रहे हैं। परन्तु ऐसे अध्यापक अपनी पहचान विद्यार्थियों में बनाते और ढूँढते थे, अपने वेतनमानों या ग्रेडों में नहीं। वे यह सोचते थे कि हमने बच्चों या समाज को क्या दिया? न कि समाज, या सरकार ने हमें क्या दिया? यही भेद था उनकी शक्ति का, रूतबे का, प्रभाव का। क्योंकि अपनी हस्ती को मिटाकर वे प्रेम से सेवा में जुड़े थे।''[4] आज संख्या और गुणवत्ता का प्रश्न राष्ट्र के लिए महत्वपूर्ण है।

आज विद्यार्थियों को किताबों की दुनिया और वास्तविक दुनिया की दूरी समझने के लिए रचनात्मक शिक्षण एवं सहायता सामग्री का होना आवश्यक है।

गांधी जी के शब्दों में – ''सच्ची शिक्षा इस बात में है कि आपके उत्तम गुण बाहर आएँ। मानवता की पुस्तक से अच्छी कौन–सी पुस्तक हो सकती है।'' वे कहते थे – ''मेरा धर्म संकीर्ण नहीं है बल्कि वह मनुष्य के बुनियादी भाईचारे को उपलब्ध करने का मार्ग है। बुनियादी भाईचारे को उपलब्ध करने का मार्ग है। वह पुस्तकीय शिक्षा के बाहर जाने की बात करते थे क्योंकि पुस्तकों में बच्चों का दम घुटने लगता है।''[5]

पाठ्य पुस्तकों छोटी कक्षा के विद्यार्थियों के लिए नहीं बल्कि शिक्षकों के लिए होने की बात करते थे। ताजा मन वाले बच्चों के लिए वह जबाबी शिक्षा के पक्षधर थे। उनकी दृष्टि में – ''शिक्षकों को उपलब्ध सामग्री से अपना पाठ खुद तैयार करना होगा। इसे भी उसे अपनी कक्षा की विशेष आवश्यकतानुसार अनुकूल बनाना होगा।''[6]

रवीन्द्रनाथ ठाकुर एक ऐसे भारतीय साहित्यकार थे जिन्होंने शिक्षा के बारे में काफी गहराई और व्यापकता

से न सिर्फ सोचा बल्कि उसे शान्ति निकेतन में जमीन पर भी उतारा। उनका मानना था – ''विश्व विद्यालय की डिग्री लेने के लिए कई विषयों को पढ़ना चाहिए। मगर बहुतायत विषयों को नहीं थोपा जाना चाहिए। जिस एक विषय में विद्यार्थी की रूची हो उसमें अपनी कुशलता दिखाकर वह विशेष स्थान पा सकता है।''[7]

शिक्षा के क्षेत्र में स्वराज हासिल करने पर वह बार–बार जोर देते थे किन्तु दुर्भाग्यवश उसका अभाव वह अधिकांश लोगों में पाते थे। उनका मानना है अंग्रेजी शिक्षा का माध्यम होने के कारण अधिकांश शिक्षा का अधिकतर हिस्सा हमारी समझ से परे रह जाता है। काँटों और छुरी से भोजन करना भारतीय लोगों के लिए कठिन नहीं है किन्तु उनका पेट नहीं भरता यह यथार्थ है। उसी प्रकार शिक्षा की मेज़ पर भी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है। व्यापक जनशिक्षा की बात करते हुए उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा – ''सवाल शहरों में पाईप के जरिए शिक्षा जल के वितरण का नहीं है, बल्कि जहाँ यह पाईप नहीं पहुँचते, सवाल उन स्थानों पर इसके वितरण के प्रबन्ध का है।''[8]

शिक्षा ही जीवन का अंग है, इसलिए शिक्षा को जीवन से हटकर नहीं होना चाहिए। जो शिक्षा जीवन की समस्याओं से मुकाबला करने के लिए तैयार नहीं करती वह शिक्षा व्यर्थ है। दुर्भाग्यपूर्ण है कि आज हम लोगों ने शिक्षा को जीवन से अलग कर दिया है। शिक्षा को एक खास उम्र से जोड़ दिया है। इस कारण शिक्षा की खिड़कियाँ जीवन की ओर खुली नहीं, ना हि जीवन की खिड़कियाँ शिक्षा की ओर।

दुर्भाग्यवश आज के मौजूदा समय में शिक्षा की जो व्यवस्था है वह औपचारिक है। हमारी परीक्षा हमें औपचारिक सफलता दिलवाती है, नौकरी दिलवाती है, हम उसी को शिक्षा मान रहे हैं।

सच्चे मायने में परीक्षा अच्छी गुणवत्ता वाली शिक्षा के लिए होनी चाहिए। यानी परीक्षा एक साधन हो और शिक्षा साध्य, किन्तु दूसरी ओर आजकल की परीक्षा अपने आपमें साध्य बन गई है और शिक्षा मात्र साधन।

अंततः आज की शिक्षा नीरस तथा प्राणहीन बन गई है उसकी खोज का तत्व समाप्त हो चुका है। आज शिक्षा की दुकानें कुकुरमुत्ते की तरह खुल गई है। जिनका मुख्य उद्देश्य ऊँची फीस लेकर पैसा कमाना है। दरअसल सच्ची शिक्षा की आवश्यकता हम सभी को है, जिसके द्वारा सर्वांगीण विकास हो, स्वावलम्बन की भावना उत्पन्न हो, अच्छा चरित्र निर्माण हो, जीवन के लिए शिक्षा हो, तथा शिक्षा मुक्ति के लिए हो। शिक्षा ही एक ऐसी वस्तु है जिससे हमारी विद्वता का परचम लहरा सकता है धन तो चोर चुरा सकते है, किन्तु ''शिक्षा'' न चोर चुरा सकते हैं, न उसे अग्नि जला सकती है, न बाढ़ डुबो सकती है। हमारी शिक्षा ही हमारा साथ जीवन पर्यन्त देती है।

आज की शिक्षा व्यवस्था के लिए सिर्फ विद्यार्थी ही जिम्मेदार नहीं है शिक्षक भी उतना ही जिम्मेदार है। शिक्षक की नैतिक जिम्मेदारी होती है कि वह छात्रों के व्यक्तित्व व चरित्र निर्माण की जिम्मेदारी को निभाये अब अक्सर कहा जाता है कि शिक्षकों की अध्यापन क्षमता के मानदण्ड कम होते जा रहे हैं। इस प्रक्रिया में ज्ञान तथा विद्वता के प्रति अवसर गँवाते रहते हैं।

वास्तव में आज का शिक्षक अपनी अपेक्षित भूमिका से दूर हट चुका है वह ज्ञान का प्रदाता होने की बजाय ज्ञान का व्यवसायी बन गया है। उसकी भूमिका सिमट कर रह गयी है।

विद्यार्थियों का मार्गदर्शन करने के स्थान पर वह बचना चाहता है। शिक्षा जगत में उसकी उदासीनता व निष्क्रियता के कारण ज्ञान पिपासा प्राय लुप्त हो रही है। उसका ज्ञान निरन्तर प्रवाहित होने वाली सरिता की तरह न रहकर गिरावट के लिए शिक्षक स्वयं उत्तरदायी है। यदि वह चाहे तो स्वयं ही इस स्थिति में सुधार कर सकता है क्योंकि जब आदर्श महान होगा तभी अनुसरण के कल्याणकारी होने की कामना की जा सकती है।

शिक्षक समाज की उस युवा शक्ति के भविष्य का निर्माण करता है जो सम्पूर्ण समाज का आधार है। अतः शिक्षक को छात्र के समक्ष उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए, उनमें तभी जीवन मूल्यों, आधार, व्यावहारिकता और क्रियात्मक शक्ति का विकास करना चाहिए, जो सारे समाज में उत्थान के लिए अपेक्षित है। कम से कम भारत में शिक्षक से तो आदर्श भूमिका की अपेक्षा की जा सकती है क्योंकि हमारे यहाँ आदर्श गुरू व शिष्य की एक सुदीर्घ

परम्परा रही है। जब शिक्षक का स्वः जागेगा तभी वह राष्ट्रकवि दिनकर की निम्न पंक्तियाँ छात्रों से गर्व के साथ कह सकेंगे।

''दूध और पानी से सीखो मिलना।
और मिलाना और धुएँ से।
सीखो बच्चों ऊँचे पर ही चढ़ना।।''

अतः आज आवश्यकता है योग्य शिक्षक व योग्य पाठ्यक्रम की। जो पाठ्यक्रम शिक्षा के लक्ष्यों, उसकी प्रक्रियाओं और उसके आधारभूत मूल्यों के आधार पर हो वही सच्ची शिक्षा है। शिक्षा का आधारभूत सिद्धान्त यह है कि इसमें शिक्षा को वर्तमान और भविष्य का बेजोड़ निवेश माना जाता है।

शिक्षा नीति के अनुसार शिक्षा की भूमिका संस्कृति संक्रमण को दूर करने में होती है, शिक्षा उन संवेदनाओं और अवधारणाओं को परिष्कृत बनाती है जो राष्ट्रीय शक्ति, वैज्ञानिक मानसिकता, मस्तिष्क और आत्मा की मुक्ता में योगदान करती है। अंततः हमारे संविधान में वर्जित समाजवाद और लोकतंत्र के लक्ष्यों को हासिल करने में सहायता करती है।

आज हमें समाज में सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन के कारण शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन करना अति आवश्यक हो गया है। इसलिए हमें शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन के अनुरूप लाने हेतु नये विचारों, नयी तकनीकों, नयी विधियों एवं नूतन आयामों की नितांत आवश्यकता है।

अंततः हमें पहल करनी होगी और ऐसी शिक्षा का निर्माण करना होगा जो राष्ट्रीय प्राथमिकताओं, राष्ट्रीय परिवेश एवं अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से सार्थक शिक्षा का विकास करना होगा, तभी हम शिक्षा के वास्तविक लक्ष्य को प्राप्त कर सकेंगे।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि हमारी शिक्षा व्यवस्था में क्रान्तिकारी सुधार की दरकार है। आज शिक्षा के व्यावसायीकरण एवं बाजारीकरण को न सिर्फ रोकने की आवश्यकता है बल्कि शिक्षा में व्याप्त खामियों को दूर करने के लिए तत्काल कड़े कदम उठाये जाने चाहिए।

इतना ही नहीं हमें अपने छात्रों को यह सन्देश भी देना होगा की उनकी शिक्षा का उद्देश्य सिर्फ धन कमाना नहीं है बल्कि देश और समाज में सुधार उनकी पहली प्राथमिकता है। अंततः हमें विचार करना होगा कि – ''क्या वर्तमान उच्च शिक्षा पद्धति संक्रमण दूर करने के कार्य को पूरा कर सकती है? इस प्रश्न पर हमें गहराई से चिन्तन और विमर्श की आवश्यकता है।''

संदर्भ संकेत

1. भारत में शिक्षा व्यवस्था–सुभाष शर्मा, पृ0 42
2. भारतीय शिक्षा का विकास एवं समस्याएँ–लाल रमन बिहारी
3. उच्च शिक्षा, दशा और दिशा–एल.पी. वैश्य, पृ0 76
4. इक्कीसवीं सदी में शिक्षा–डा. आत्माराम, पृ0 37
5. नई तालीम की ओर–म0 गाँधी जी. पृ0 55
6. 'सर्वोदय' पत्रिका–म0 गाँधी
7. 'वातायन' संस्मरण–शिवानी, पृ065
8. 'वातायन' संस्मरण–शिवानी, पृ0 96
9. 'हमारे कवि'–राजेन्द्र सिंह गौड़

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

समावेशी शिक्षा का प्रगतिशील समाज के सन्दर्भ में एक अवलोकन

ज्योत्सना कटियार
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, बी.एड. विभाग
पं. सहदेव प्रसाद त्रिवेदी महाविद्यालय, रमईपुर, कानपुर नगर

समावेशी विकास और समावेशी समाज के लिए सबसे आवश्यक तत्व है समावेशी शिक्षा। शैक्षिक परिदृश्य में समावेशी शिक्षा के सत्य से साक्षात्कार के लिए सर्व शिक्षा अभियान, राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान, राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा अभियान की समीक्षा भी जरूरी है। समावेशी विकास से आशय जब विकास की प्रक्रिया में अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्र (प्राथमिक द्वितीयक, तृतीयक) देश के सभी अंचल (भौगोलिक क्षेत्र) एवं समाज के सभी वर्ग शामिल हो तो ऐसा विकास समावेशी विकास कहलाता है। भारतीय संविधान में समता, स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय एवं व्यक्ति की गरिमा को प्राप्त मूल्यों के रूप में निरूपित किया गया है। हमारा संविधान जाति, वर्ग, धर्म, आर्थिक एवं लैंगिक आधार पर किसी भी प्रकार के विभेद को निषेध करता है। लोकतांत्रिक समाज की स्थापना के लिए हमारे संवैधानिक मूल्य स्पष्ट दिशा निर्देशन प्रदान करते है और इस प्रकार एक समावेशी समाज की स्थापना का आदर्श प्रस्तुत करते है। इस परिप्रेक्ष्य में बच्चे को सामाजिक, जातिगत, आर्थिक, वर्गीय, लैंगिक शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से भिन्न देखें जाने के बजाय एक स्वतंत्र अधिगमकर्ता के रूप में देखे जाने की आवश्यकता है। जिससे लोकतांत्रिक समाज में बच्चों के समुचित समावेशन हेतु वातावरण का सृजन किया जा सके। समावेशन की ठोस प्रक्रिया प्रतीकात्मक लोकतंत्र से भागीदारी आधारित लोकतंत्र का मार्ग प्रशस्त करती है। समावेशी समाज का विकास उसमें निहित सम्पूर्ण मानवीय क्षमता के कुशलतापूर्वक उपयोग पर निर्भर करता है। समाज के सभी वर्गो की सहभागिता के बिना समावेशी समाज का विकास सम्भव नहीं हो सकता है। शिक्षा समावेशन की प्रक्रिया का सबसे महत्वपूर्ण औजार है। शिक्षा ही वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से एक बच्चा लोकतांत्रिक प्रक्रिया में अपनी भूमिका के लिए तैयारी करता है। दूसरी ओर समावेशन में बाधक तत्वों से निकलने का सामर्थ्य प्राप्त कर सकता है। शिक्षा हर बच्चे का अधिकार है और इसी के आधार पर वह जीवन की चुनौतियों से जूझने में समर्थ होता है। ''भारत में विश्व की सबसे बड़ी शिक्षा प्रणाली काम करती है और इसमें लगभग 20 करोड़ से ज्यादा स्कूली बच्चे जुड़े हुए है। इस 20 करोड़ स्कूली बच्चों की उम्र 6 से 14 साल के बीच है और इन बच्चों की संख्या के 10 फीसदी को नियमित शिक्षा हासिल नहीं हो पाती। (NSS0-2002–2001, की जनणना आंकड़ों के अनुसार)। भारत का संविधान यह सुनिश्चित करता है कि प्राथमिक शिक्षा हर बच्चे का मौलिक अधिकार है। 83वें संविधान संशोधन के अनुसार यही भावना विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय अधिनियमों जैसे मानवाधिकार की वैश्विक उद्घोषणा 1884 और अंतर्भूत, बाधामुक्त और अधिकार आधारित समाज के लिए स्थापित बिवाको मिलेनियम फ्रेमवर्क फार एक्शन में भी दुहराई गई है। गांधी जी ने इस बात पर बल दिया कि समाज की वास्तविक खुशी तभी हासिल की जा सकती है जब कतार में खड़े आखिरी व्यक्ति का भी कल्याण हो। समावेशी का यह विचार ही गांधीवादी स्वराज की अवधारणा का नैतिक आधार एवं केन्द्र बिन्दु है। समावेशी शिक्षा की जड़े कनाडा और अमेरिका से जुड़ी है। समावेशी शिक्षा विशेष विद्यालय या कक्षा को स्वीकार नहीं करता। अशक्त बच्चों को सामान्य बच्चों से अलग करना अब मान्य नहीं है। पहले समावेशी शिक्षा की परिकल्पना सिर्फ विशेष छात्रों के लिए की गई थी। लेकिन वर्तमान समय में हर अध्यापक को समावेशी शिक्षा की विस्तृत दृष्टिकोण में अपनी कक्षा में व्यवहार में लाना चाहिए। राष्ट्रीय

पाठ्यचर्या की रूपरेखा (NCF 2005) में सभी बच्चों की गुणवत्तापूर्ण समावेशी शिक्षा प्रदान करने पर व्यापक दृष्टिकोण प्रदान किया है जिसमें शिक्षक को हर छात्रों की अनोखी जरूरतों के प्रति संवेदनशील होना, बच्चों पर केन्द्रित सामाजिक रूप से प्रासंगिक और न्यायोचित पढ़ाने सीखने की प्रक्रिया प्रदान करना। उनके सामाजिक सांस्कृतिक सन्दर्भो में विविधता को समझाना आदि। अतः शिक्षक को बच्चों के वर्ग, जाति, धर्म, लिंग और निःशक्तता पर ध्यान दिए बिना सभी बच्चों को संलग्न करने और सीखने के सार्थक अवसर प्रदान करने मे ंसक्षम होना चाहिए। शिक्षा का अधिकार कानून 2009 (RTE) लिंग और सामाजिक श्रेणी पर ध्यान दिए बिना सभी छात्रों के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा उपलब्ध कराने के इस निर्णय को अधिक मजबूत और सुदृढ़ करता है। समावेशी कक्षा में शिक्षकों द्वारा न्यायोचित शिक्षा प्रदान करने में विद्यालय शिक्षक की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। ''समावेशन शब्द का अपने आप में कुछ खास अर्थ नहीं होता है। समावेशन के चारों तरफ जो वैचारिक दार्शनिक शैक्षिक ढांचा होता है। वही समावेशन को परिभाषित करता है। समावेशन की प्रक्रिया में बच्चे को न केवल लोकतंत्र की भागीदारी के लिए सक्षम बनाया जा सकता है बल्कि यह सीखने एवं विश्वास करने के लिए भी सक्षम बनाया जा सकता है कि लोकतंत्र को बनाए रखने के लिए दूसरों के साथ रिश्ते बनाना, अन्तःक्रिया करना भी समान रूप से महत्वपूर्ण है।'' (NCF 2005 पृष्ठ 96)। समावेशन की प्रक्रिया के पारिवारिक, शैक्षिक सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक आयाम हो सकते है लेकिन सबसे महत्वपूर्ण भूमिका परिवार एवं विद्यालय की होती है क्योंकि बच्चे के सामाजीकरण की प्रथम पाठशाला उसका परिवार होता है और इसके बाद विद्यालय होता है। समावेशी शिक्षा के वैचारिक एवं दार्शनिक आधार यह है कि प्रत्येक बालक स्वाभाविक रूप से सीखने के लिए अभिप्रेरित होता है। बालकों के सीखने के तौर तरीकों में विविधता होती है। अनुभवों के द्वारा अनुकरण के माध्यम से चर्चा प्रश्न पूछना, चिन्तन करने छोटे व बड़े समूह में गतिविधियों करने आदि तरीकों से बच्चा सीखता है। बच्चों को सीखने सिखाने के क्रम में समुचित अवसर देने की आवश्यकता होती है। सीखने सिखाने के लिए समुचित वातावरण तैयार करने की आवश्यकता है। सीखने की प्रक्रिया विद्यालय के साथ–साथ विद्यालय के बाहर भी निरन्तर चलती रहती है। अतरू सीखने–सिखाने की प्रक्रिया को इस प्रकार व्यवस्थित किये जाने की आवश्यकता है जिससे बालक पूर्ण रूप से उसमें सम्मिलित हो जाये और उसके बारे में अपने आधार पर अपनी समझ विकसित करें। सीखने–सिखाने की प्रक्रिया आरम्भ करने से पूर्व बालक के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, भौगोलिक व राजनीतिक परिप्रेक्ष्य को जानना आवश्यक है। प्रत्येक बालक की विविधता के प्रति आदर करना।

समावेशी शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्व : समावेशी शिक्षा प्रत्येक बालक के लिए उच्च और उचित उम्मीदों के साथ उसकी व्यक्तिगत शक्तियों का विकास करती है। प्रत्येक बालक सीखने के लिए अभिप्रेरित होता है। समावेशी शिक्षा अन्य बालकों को अपने स्वयं के व्यक्तिगत आवश्यकताओं और क्षमताओं में सामजस्य स्थापित करने में सहयोग करती है। समावेशी शिक्षा सम्मान और अपनेपन की विद्यालय संस्कृति के साथ–साथ व्यक्तिगत मतभेदों को स्वीकार करने के लिए अवसर प्रदान करती है। समावेशी शिक्षा बालक को अन्य बालको के समान कक्षा गतिविधि ायों में भाग लेने और व्यक्तिगत लक्ष्यों पर कार्य करने के लिए अभिप्रेरित करती है। समावेशी शिक्षा बालको की शिक्षा गतिविधियों में उनके माता पिता को भी सम्मिलित करने की वकालत करती है। समावेशी शिक्षा सही मायने में शिक्षा का अधिकार जैसे शब्दों का रूपान्तरित रूप है, जिसमें कई उद्देश्यों में से एक उद्देश्य है, विशिष्ट शैक्षिक आवश्यकताओं वाले बालकों को एक समतामूलक शिक्षा व्यवस्था के अन्तर्गत शिक्षा प्राप्त करने के अवसर प्रदान करना। समावेशी शिक्षा समाज के सभी बालको को शिक्षा की मुख्यधारा से जोड़ने का समर्थन करती है।

समावेशी समाज : किसी व्यक्ति अथवा समूह को किसी समाज से उसके धर्म जाति, रंग भाषा आदि के आध ाार पर उसके अधिकारों से पृथक करना और केवल शारीरिक या मानसिक रूप से कमी होने पर उससे मुँह मोड़ लेना भेदभाव माना जायेगा जो मनुष्य होने की गुणवत्ता पर प्रश्न चिन्ह लगाता है। समाज में व्याप्त इन संकीर्ण

दायरों से ऊपर उठकर प्रत्येक व्यक्ति जब समाज में दिव्यांगजनों की शिक्षा, सुरक्षा, संरक्षण, सम्मान तथा उसके प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति के लिए ठोस कदम उठायेगा तभी समावेशी समाज की कल्पना धरातल पर उतरेगी। समावेशी समाज के निर्माण में जो कार्य नीति महत्वपूर्ण एवं सशक्त भूमिका निभा रही है। वह है समावेशन। समावेशन का दर्शन समुदाय की सदस्यता और समुदाय का अंग होने पर आधारित है यह सभी तक पहुंचने का एक तरीका है। समावेशन हेतु कोई भी प्रमाणित प्रक्रिया नहीं है। परन्तु सफल समावेशन का तात्पर्य दिव्यांजनों को नियमित कक्षा में उत्तम शिक्षण शिक्षक–शिक्षार्थी के स्वस्थ्य सम्बन्ध और सभी बालकों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करना है। जिससे नियमित कक्षा में दिव्यांगजन समायोजित हो सके, उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति हो तथा सामाजिक अधिगम सम्बन्धी वातावरण में कार्यात्मक तरीकों से आगे बढ़ने का अवसर प्राप्त हो।

समावेशी समाज को बढ़ावा देने हेतु नीतियाँ एवं कार्यक्रम :

- भारतीय संविधान की प्रस्तावना में कहा गया है कि– Every one has the right to equality of status and opportunity".
- अनुच्छेद 45 में कहा गया है कि – Free & compulsory Education for children up to age of 14 year:.
- एकीकृत शिक्षा–1950 के मध्य विकसित हुआ तथा यह बालकों को मुख्य धारा में सम्मिलित करने की अनोखी पहल है।
- NPE-1986 – POA-1982. विशिष्ट आवश्यकता वाले बालकों को सामान्य बालको के साथ एकीकरण पर बल देता है।
- समान विद्यालय व्यवस्था– उद्देश्य विशिष्ट बालकों को सामान्य बालकों के साथ सामान्य विद्यालयों में शिक्षा के अवसर प्रदान करना।
- समावेशित प्रणाली–इसमें जनसंख्या का एक क्षेत्र प्रोजेक्ट के रूप में लिया जाता है। इस क्षेत्र में आने वाले क्षेत्र निर्योग्य बालकों को प्रवेश दिलाने के उत्तरदायी होते है।
- सेलमैन का स्टेटमेण्ट व कार्य योजना–समावेशी शिक्षा को बढ़ावा देना तथा विद्यालयों में सभी प्रकार के बालकों को प्रवेश देना।
- MHRD कार्य योजना – निर्योग्य बालकों को मुख्य धारा शिक्षा में नामांकित करना व रोके रखना।
- सर्व शिक्षा अभियान – प्रत्येक बालक को उसी रूप में स्वीकार किया जाए जिस रूप में वह है। उसे गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा दी जाये।
- Bridge course for CWSN (Child with special Need) – विशिष्ट वातावरण तैयार करके समावेशीकरण की सम्भावनाओं को और अधिक बढ़ा देते हैं। ऐसे कौशल विकसित करना जिससे वे अपना जीवनयापन कर सकें।
- राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 – सभी बच्चों को समय–समय पर उनके कार्य विशेष के लिए तथा उनके प्रदर्शन, योग्यता व श्रेष्ठता की प्रशंसा भी की जानी चाहिए व शिक्षक को विशिष्ट आवश्यकता वाले बालकों को साथ लेकर चलना होगा।
- कुछ अन्य पहल जिनकी समावेशी समाज के निर्माण में अहम भूमिका रही है। इस प्रकार है –
- विशेष विद्यालयों की स्थापना – 1980
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति – 1986
- केन्द्रीय एकीकृत योजना – 1987
- भारतीय पुनर्वास परिषद – 1992

- विकलांगता अधिनियम – 1995
- D.P.E.P. में शैक्षिक कार्यक्रम प्प्म्प्क्प् का समावेश–1997
- दिव्यांग बालकों के कल्याणार्थ राष्ट्रीय ट्रस्ट – 1999
- S.S.A. में समावेशन – 2000
- दिव्यांग बालकों के समावेशन हेतु व्यापक कार्य योजना – 2005
- दिव्यांग बालकों के लिए राष्ट्रीय नीति – 2006
- दिव्यांग बालकों का सशक्तीकरण – 2009

इन कार्यक्रमों और नीतियों को कार्यरूप में परिणित करने के लिए आवश्यक है कि इन नीतियों व कार्यक्रमों के प्रति लोगों को जागरूक किया जाय तथा समावेशन का माहौल तैयार किया जाए। सरकारें सिर्फ योजनाएं तैयार कर सकती है परन्तु इनकी सफलता उस योजना में लगे हुए व्यक्तियों पर निर्भर करती है। जब तक व्यक्ति स्वयं इस कार्य के प्रति ईमानदार नहीं होगा तब तक किसी भी योजना को सफल नहीं बनाया जा सकता।

समावेशी समाज एवं शिक्षकों की भूमिका – विकास या निर्माण के लिए कोई भी क्षेत्र चुना गया हो जरूरत है आगे बढ़ने की तथा नये नये रास्तों की तलाश करने की। दिव्यांगजनों के सन्दर्भ में समावेशी समाज के निर्माण का प्रत्यय अभी प्रक्रिया में है इसे वास्तविक रूप प्रदान करने हेतु अधिकतम प्रयास की आवश्यकता है। समावेशी समाज का निर्माण एक चुनौती पूर्ण कार्य है। यह कोई एक दिन या कुछ घण्टों का काम नहीं है इसको तमाम व्यावहारिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। जिसमें समावेशीकरण काफी हद तक मद्दगार साबित हो सकती है। परन्तु समावेशीकरण एक सतही नहीं बल्कि आंतरिक प्रक्रिया है। जो कि बड़ी तपस्या के बाद लोगों के व्यवहारों में परिवर्तन ला पायेगी और इसमें कोई दो राय नहीं है कि ऐसा करने के लिए समावेशी शिक्षा अपना योगदान देगी। समावेशी शिक्षा का आशय दिव्यांग बच्चों को सामान्य बच्चों के साथ बैठाकर सामान्य रूप से पढ़ाना ताकि सामान्य बच्चों और दिव्यांग बच्चों में कोई भेदभाव न रहें और आपसी सहयोग से पठन–पाठन के कार्य को कर सकें। समावेशी शिक्षा के लिए अनेक प्रयास किये गये व किये जा रहे हैं, लेकिन यह तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक शिक्षण प्रक्रिया का मुख्य केन्द्र बिन्दु शिक्षक जिस पर सारी शिक्षा व्यवस्था घूमती है। वह जिम्मेदार जागरूक व अपनी भूमिका का ईमानदारी से निर्वहन करने वाला हो। समावेशी शिक्षा के माध्यम से दिव्यांगजनों के विकास हेतु समावेशी समाज के निर्माण में शिक्षकों से निम्नलिखित भूमिकाएं अपेक्षित हैं –

- शिक्षकों को इस बात से भली भांति अवगत होना चाहिए कि समावेशी समाज का प्रत्यय दिव्यांग बालकों के लिए शैक्षिक अवसरों की समानता, पूर्णसहभागिता, उपयुक्त पाठ्यक्रम, शिक्षण व्यूहरचना, सहायक सेवाएँ तथा समुदायिक सहभागिता पर आधारित है।
- शिक्षकों को विभिन्न आयोगों, नीतियों, योजनाओं तथा सरकारी–गैरसरकारी संगठनों में दिव्यांग बालकों की शिक्षा एवं सुविधा हेतु दी गयी संस्तुतियों के विषय में जानकारी होनी चाहिए।
- सर्वप्रथम शिक्षकों को दिव्यांग बालकों के अनुकूल वातावरण तैयार करना चाहिए जिसमें उनके साथ सामान्य समकक्षों, सामान्य अध्यापकों, सामान्य बच्चों के माता–पिता जैसा व्यवहार हो।
- शिक्षकों द्वारा दिव्यांग बालकों को यह स्वीकार करने में मदद करना चाहिए कि काम के क्षेत्र में वह दूसरे बच्चों से भिन्न है। परन्तु दूसरे क्षेत्रों में वह बिल्कुल भी भिन्न नहीं है। अपने बारे में इस प्रकार की समझ विकसित होने से उसे कई मनोवैज्ञानिक समस्याओं को कम करने में सहयता मिलेगी।
- समय–समय पर शिक्षकों द्वारा ऐसे व्यक्तिगत कार्यक्रम को विकसित करके लागू करना जा कक्षा के प्रत्येक बच्चे की आवश्यकताओं की पूर्ति करें व जिसमें किसी समस्या वाले बच्चे की विशेष

आवश्यकताएं भी शामिल हो।

- दिव्यांग बालकों के अभिभावकों के साथ शिक्षकों को हमेशा सम्पर्क व तालमेल बनाकर रखना चाहिए जिससे कि सीखने की अवस्थाओं का घर पर अभिभावकों द्वारा प्रबलीकरण किया जा सके।
- शिक्षकों द्वारा यह सुनिश्चित करना कि दिव्यांग समन्वयकर्ता या सामाजिक कार्यकर्ता द्वारा किसी दिव्यांग बच्चे को क्या विशेष सेवाएं दी जा रही है और आप अपने कक्षा–शिक्षण में दिव्यांगों की सहायता हेतु किसी विशेषज्ञ की सेवाएं किस प्रकार ले सकते है।
- नियमित कक्षा में दिव्यांग बालकों के लिए पाठ्यक्रम अनुशीलन, अनुदेशात्मक व्यूहरचनाएं, नवाचार तथा कक्षा प्रबन्धन हेतु कक्षा नियमित शिक्षक और संसाधित शिक्षक का सहयोग प्राप्त करना।
- शिक्षकों द्वारा दिव्यांग बालकों का प्रमाणिक पहचान सूची द्वारा अवलोकन/निरीक्षण भी होना चाहिए कि दिव्यांगता कैसी कितना और किस प्रकार की है तथा उसके अनुरूप दिव्यांगों को सुविधाएं प्रदान कि जाय।
- जीवन कौशलों जैसे– सत्य, ईमानादरी, बड़ों का सम्मान, संवेदनशीलता, अवकाश का सद्पयोग विभिन्नता में एकता, व्यक्तिगत स्वच्छता, पर्यावरण संरक्षण, सर्वधर्म समभाव की भावना, स्वास्थ्य एवं योग, भाषा एवं विज्ञान श्रम की महत्ता आदि की शिक्षा, समावेशी परिवेश की स्थापना में सहयोग प्रदान करती है। जिसमें शिक्षकों की भूमिका सराहनीय है।
- समाज के दृष्टिकोण को समावेशी बनाने के लिए शिक्षक सम्मेलनों भाषणों, वीडियो, फिल्मों, स्लाइडों, सेमिनार, वर्कशाप आदि का आयोजन कर सकता है तथा दिव्यांगों के गुणों को और बेहतर राष्ट्रीय जीवन के विकास लिए जागरूकता पैदा करने के लिए संचार साधनों की मदद लेनी चाहिए।
- शिक्षकों द्वारा दिव्यांगजनों को रोजगार काम–धन्धों में प्रशिक्षित करने की व्यवस्था होनी चाहिए इन्हें संगीत टाइप–राइटिंग, कताई–बुनाई, सिलाई, कड़ाई, पाक विद्या आदि कार्यो में प्रशिक्षित किया जाना चाहिए ताकि उनमें आत्मविश्वास एवं आत्म सुरक्षा की भावना जागृत हो।
- शिक्षकों द्वारा कक्षागत समस्याओं का सावधानीपूर्वक चयन कर क्रियात्मक अनुसंधान किया जाये जिससे दिव्यांग बालकों की विषयी समायोजन, गृह कार्य, उच्चारण, वर्तनी, सम्प्रेषण कौशल, अनुशासन, उपलब्धि आदि समस्याओं का समाधान शोध द्वारा करके समावेशी समाज के निर्माण के अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति की जा सकें।

निष्कर्ष : उपरोक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि समावेशी समाज का निर्माण एक व्यापक व जटिल प्रक्रिया है। इसे कार्य के रूप में परिणत करने हेतु हमें स्वयं इसकी आवश्यकता को महसूस करना होगा व इस कार्य के लिए प्रतिबद्ध होने की आवश्यकता है। एक बेहतर समावेशी समाज के लिए सामान्य क्रियाओं के स्थान पर अतिरिक्त उपायों की जरूरत है। एक स्वतंत्र एवं अच्छे समावेशी समाज के विकास के लिए हमें सभी वर्गो के बच्चों के लिए एक समान अवसर उपलब्ध करवाने होगें तभी समावेशी शिक्षा का स्वरूप मजबूत हो सकता है और समावेशी विकास का सपना पूरा हो सकता है। हम लम्बी दूरी तय कर चुके है। हमें अभी और लम्बे जाना है। समावेशन ही भविष्य है। लोगों का सशक्तीकरण ही भविष्य है। सम्भवतः नियति को दिए वचन को वास्तव में और पर्याप्त रूप से फलीभूत करने का समय आ गया है। टैगोर ने लिखा है कि ''समस्या यह नहीं दिमतभेद दूर किए जाए बल्कि यह है कि मतभेद बनाए रखते हुए एकता की स्थापना कैसे की जाए।''

सन्दर्भ संकेत

1. तुली, उमा (2013), समावेशी शिक्षा एक वास्तविकता, योजना, नई दिल्ली : सूचना एवं प्रसारण (भारत सरकार), अप्रैल 2013. अंक 4

2. झा, राकेश कुमार (2013), समावेशी लोकतंत्र, योजना. नई दिल्ली : सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय (भारत सरकार), अप्रैल 2013. अंक 4.
3. सारस्वत, मालती एवं आशा शर्मा (नवीन संस्करण), शिक्षा के मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य. इलाहाबाद : आलोक प्रकाशन.
4. पाठक, पी0डी0 एवं गुरूशरण दास त्यागी, (2016–17), समसामयिक भारतीय शिक्षा : चिन्ता एवं मुद्दे. आगरा : अग्रवाल पब्लिकेशन.
5. नामदेव, हरीओम एवं अनुराधा शर्मा (2016), समावेशी शिक्षा. आगरा : अग्रवाल पब्लिकेशन.
6. मंगल, एस0के0 (2015), एजूकेटिंग एक्सेप्सनल चिल्ड्रेन दिल्ली : पी0एच0आई0 लर्निंग प्रा0लि0.
7. वर्मा, विमलेश (2016), समोवेशित विशिष्ट शिक्षा. इलाहाबाद : शारदा पुस्तक भवन.
8. शरतेन्दु, सत्यनारायण दुवे (2014), विशिष्ट शिक्षा, इलाहाबाद : शारदा पुस्तक भवन.
9. सिंह, रेणु (2015), विकलांगों का स्वरूप तथा आवश्यकताएं. मेरठ : आर लाल बुक डिपो.
10. सिंह, सुदर्शन एवं अर्शी अयूब अंसारी (2017), समावेशी समाज के निर्माण में शिक्षकों की भूमिका, इनक्लूशन : डाईमेन्शन एण्ड डाइनेमिक्स. लखनऊ : रैपिड बुक सर्विस.
11. पाल, योगेश कुमार (2017), समावेशी शिक्षा जीवन बदलने की शिक्षा. इनक्लूशन : डाईमेन्शन एण्ड डाइनेमिक्स. लखनऊ : रैपिड बुक सर्विस.
12. काण्डपाल, केवलानन्द, शिक्षा में समावेशन चुनौती एवं समाधान, Retrieved from https://www. teachers of india.org/hi/article
13. Education. समावेशी शिक्षा एवं समावेशी विकास, Retrieved from https://www.education and net. blogspot.in/2017/02/blog-post.html.

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कोविड–19 के दौर में भारतीय शिक्षा के समक्ष चुनौतियाँ और समाधान के उपाय

डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव
एसोसिएट प्रोफेसर–हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि उसकी दृष्टि में सोने का नाम कलयुग है, जागने का नाम द्वापर युग, खडे होने का नाम त्रेतायुग, और चलने का नाम कृत अर्थात् सतयुग है। अतः भारतीय संस्कृति एवं भारतीय चिंतन–पद्धति में जिस ज्ञान भक्ति एवं कर्म का समन्वय है। उसे ही वैश्विक स्तर पर बिखेरना होगा। इस पुनीत कार्य में श्रद्धा एवं विश्वास के साथ सभी आम एवं खास को लगना होगा। किसी भी समस्या के निराकरण के लिए दो साधनों की आवश्यकता होती है। एक वित्तीय संसाधन और दूसरा कार्यरत व्यक्तियों की ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठा। यदि सरकार शिक्षा की उचित व्यवस्था के लिए पर्याप्त धनराशि जुटा दे और उच्च शिक्षा से जुड़े सभी व्यक्ति ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठा के साथ कार्य करें तो पूरी जंग जीती जा सकती है।[1] भारत का पूरा शैक्षिक परिदृश्य आज प्रतिस्पर्धा से जूझ रहा है। प्राथमिक शिक्षा से लेकर माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा तक में जो निरन्तरता एवं गुणवत्ता होनी चाहिये उसका नितान्त अभाव है। पाठ्यक्रम और परीक्षा प्रणाली का लक्ष्य जब अंक प्राप्ति तक सीमित रहेगा, तब तक छात्रों में गलाकाट प्रतियोगिता जन्म लेती रहेगी और अन्त में वह तनाव और अवसाद का कारण बनती है। वर्तमान में छात्रों द्वारा की जा रही आत्महत्यायें इसी की परिणति हैं। वस्तुतः शिक्षा का उद्देश्य शिक्षाथियों के व्यक्तित्व के अनुसार उनको ढ़ालने की प्रक्रिया होनी चाहिये, छात्रों को वर्तमान संसार को समझने और भविष्य में आने वाली चुनौतियों से निपटने में सक्षम बनाना होना चाहिये। परन्तु वर्तमान में शिक्षक भविष्य निर्माता न रहकर मात्र वेतनभोगी कर्मचारी की भूमिका में चले गए हैं, छात्रों और शिक्षकों के मध्य संवादहीनता की स्थिति है या व्यवसाय की वार्ता और इन दोनों की स्थितियों में रिश्ते की पवित्रता एवं रचनात्मकता कहीं खो सी गयी है। वर्तमान समय में इसमें व्यापक परिवर्तन की आवश्यकता है। आज भारत को जरूरत है कि वह मैकाले की डाउनवर्ड फिल्टरेशन थ्योरी को त्यागकर 1964–1966 के डी0एस0 कोठारी कमीशन की सस्तुतियों को पूरी गंभीरता से लागू करे। और 12 सितम्बर 2002 ई0 को सर्वोच्च न्यायालय के दिये हुये मार्गदर्शन को अपनाकर शिक्षा नीति में भारतीय मूल्यों का समावेश करे तभी वह श्रेष्ठ नागरिकों का निर्माण कर सकेंगा, अन्यथा भारत पहले शिक्षित नौकरशाह और बाबू तैयार कर रहे था और वर्तमान में उच्च तकनीकि युक्त कुशल किन्तु उद्देश्यहीन आधुनिक विशेषज्ञ बना रहा है। अब वक्त का तकाजा है कि भारतीयता से ओतप्रोत नागरिकों के निर्माण के तिए हम सब भारतीयों को प्रयास करने होंगे।

वायरस की महामारी ने यह सिद्ध कर दिया है कि आपदाओं से निपटने में वह कितना सक्षम है। स्पष्ट हो गया है कि चिकित्सा के क्षेत्र की शिक्षा में हम अभी आत्मनिर्भर नहीं हो पाये हैं। भारत में चिकित्सक और जनसंख्या का अनुपात विश्व में सबसे कम है। यद्यपि भले ही भारत तकनीकी रूप से काफी आगे निकल गया है परन्तु सबको चिकित्सा देने का लक्ष्य अभी अधूरा है। ग्रामीण क्षेत्रों में तो चिकित्सा सुविधाओं का नितान्त अभाव है और नगरों में जहाँ उपलब्ध भी हैं तो बहुत मंहगी होने के कारण आम आदमी की पहुँच से काफी दूर है। निश्चित रूप से भारत की सरकार को इस क्षेत्र के बजट में अधिक अनुदान देने की महती आवश्यकता है।

स्वतंत्रता के पश्चात् आज तक भारत एक ऐसे राष्ट्रीय शिक्षा तंत्र को विकसित करने के लिये निरन्तर संघर्षरत

रहा है जो मात्रा और गुणवत्ता के प्रश्न तथा शिक्षा के अतिरेक बनाम सफलता के मुद्दों को राष्ट्रीय संस्कृति तथा राष्ट्रीय मूल्यों के आधार पर सुलझा सके। यदि भारत के उच्च शिक्षा तंत्र को एक उचित स्वरूप प्रदान किया जाए तो यह विकास की अपार सम्भावनाओं के द्वार खोलकर मानवीय उद्यमशीलता को केन्द्र में स्थापित कर सकता है तथा ज्ञान आधारित समाज के अकादमिक एवं व्यावहारिक नेतृत्व का सृजन कर सकता है।

वर्तताान समय में स्वयं ज्ञानी और शिक्षित बनने की होड़ में ग्राहक रूपी छात्रों की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है। क्या ये सभी छात्र ज्ञान–शिक्षा संस्कारों को ही ग्रहण करने के लिए लालायित हैं?यह सवाल बढ़ती बेरोजगारी में विशेश ध्यान देने योग्य हैं। अधिकांश छात्र सिर्फ सरकारी नौकरी प्राप्त करने मात्र को ही शिक्षा प्रमाण पत्र को सुलभ साधन समझते हैं। साधन सुलभ अभिभावक भी अपने बच्चों को सिर्फ किसी प्रकार प्रमाण पत्रो के दम पर सिर्फ सरकारी नौकरी दिलवाने को हर प्रकार का रास्ता अपनाने से भी नहीं हिचकते चाहे वह कैसा भी भ्रष्ट रास्ता क्यों न हों।

कुछेक संस्थानों को छोड़ दे ंतो गुणवत्ता और संख्या दोनों ही दृष्टियों से भारतीय उच्च शिक्षा संस्थान बहुत पीछे हैं। भारत का गौरवशाली अतीत हमें याद दिलाता है कि यह वही देश है जहाँ से कभी ज्ञान की रश्मियाँ पूरी दुनिया में फैली थीं। यहाँ नालंदा, उदंतपुरी, विक्रमशिला तथा तक्षशिला जैसे विश्वविद्यालय हुआ करते थे। आचार्य चाणक्य, दीपांकर, नार्गाजुन, राहुल भट्ट और शील भद्र जैसे विद्वान गुरू यहाँ हुए हैं। विश्व गुरू कहलाने वाला देश आज उच्च शिक्षा के क्षेत्र में इतना पीछे क्यों है?[2] भ्रष्ट तरीकों से प्राप्त की गई नौकरी पर नियुक्त होने पर व्यक्ति सिर्फ धन बटोरने की मशीन बनकर ही कार्य करने में जुट जाता है जिसका प्रमाण आज का भ्रष्टाचारी वातावरण जो इस राष्ट्र को दीमक की तरह चाट चुका है। सिर्फ लालच और स्वार्थ को ही शिक्षा ज्ञान का माध यम बना लिया गया है। मानव समाजहित में शिक्षा ज्ञान का कितना उपयोग हुआ है यह हमारे चारों ओर फेंके अशिष्ट वैभव और विलासी वातावरण से ही अहसास होता है कि हम मँहगी शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त भी संस्कारों से कंगाल ही बने हुये हैं।

हमें आने वाली चुनौतियों का सामना सभी भारतीयों को अपने ही संसाधनों से तथा स्वदेशी तकनीकी साध ानों द्वारा करना पड़ेगा। इस पृष्ठभूमि में भारतीय शिक्षा की सारी पृष्ठभूमि बदलनी होगी। विद्यालय के वाहय एवं आंतरिक वातावरण एवं परिस्थितियों को भी इस प्रकार बनाना होगा कि वह एक बालक की आवश्यकता पूर्ति के साथ–2 उसके लिए जीवनोपयोगी बन सके। इस महत्वपूर्ण प्रयास में कक्षा शिक्षण, प्रशिक्षण का स्वरूप विद्यार्थी अध्यापक सम्बन्ध शिक्षा में सहयोग आदि चुनौतियों का निराकरण सुनियोजित तरीके से करना होगा।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारतीय उच्चतर शिक्षा ही नहीं बल्कि प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के समक्ष अनेक खामियां हैं। मोटे तौर पर भारतीय शिक्षा में निम्न समस्याएँ और चुनौतियाँ इस प्रकार हैं :–1. शिक्षा का वस्तुकरण 2. भूमण्डलीकरण प्रतियोगिता 3. अपर्याप्त वित्तीय, प्रबन्धन 4. असमानता का विकास तथा अनसुलझी सामाजिक समस्याएँ 5. पाठ्यक्रम एवं प्रशिक्षण का पुराना ढ़ंग–वैश्विक स्तर की विषय वस्तु का अभाव 6. मंहगी प्राथमिक, माध्यमिक शिक्षा एवं उच्चतर शिक्षा 7. ग्रामीण क्षेत्रों में उच्च शिक्षा संस्थानों की कमी 8. गुणवत्ता में गिरावट एवं अपर्याप्त संसाधन 9. परीक्षा प्रणाली में पारदर्शिता का अभाव 10. विकास की प्रक्रिया कें साथ शिक्षा का क्षीर्ण सह–सम्बन्ध 11. शिक्षकों को स्वतन्त्र शिक्षण में बाधायें 12. निम्न स्तर के संस्थानों की समस्याएँ।

इन सभी चुनौतियों के अतिरिक्त भारतीय उच्च शिक्षा के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती है कि किस प्रकार इसकी गुणवत्ता को बढ़ाये जाने के साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इसे प्रतिस्पर्धात्मक बनाया जाए और साथ ही साथ इसको विकासमान भारतीय समाज में बाजारीकृत होने से बचाया जाए। इन सब चुनौतियों के पश्चात् यह अत्यन्त सुःखद स्थिति है कि भारत में उच्च शिक्षा के विकास का कार्य निरन्तर प्रगति के पथ पर अग्रसर भले ही है लेकिन वैश्विक परिदृश्य में वह काफी पीछे है।

(1) वर्तमान भारत की शिक्षा का महत्व :–

1. शिक्षा एक देश के विकास की रीढ़ की हड्डी है। जिसके बिना देश का विकास असम्भव है।
2. शिक्षा चाहे प्राइमरी स्तर या उच्चस्तर की हो शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति व छात्र के अन्दर उसके स्वभाव, सामाजिक परिवेश व उसके जीवन को बदल सकती है।
3. किसी भी समस्या, जलवायु व व्यक्तिगत परिवेश आदि की जानकारी एवं उसकी अच्छाइयाँ एवं बुराइयाँ शिक्षा के बिना समझना बहुत ही मुश्किल है।
4. किसी देश में क्या हो रहा है? या होने वाला है। इस के बारे में जानकारी रखना एवं उसके विषय में समझना शिक्षा ही है। जिनके पास जितनी अच्छी शिक्षा है। वहीं उसके बारे में उतना ही बेहतर समझ सकता है।
5. शिक्षा है तो अपने परिवार को सीमित (परिवार नियोजन) कर अपने परिवार में ही खुशियाँ नही बल्कि देश के विकास एवं खुशियों का आधार बन सकते हैं। देखा गया है कि जो व्यक्ति अच्छे से शिक्षित है। उनका परिवार छोटा होता है व उतनी अच्छी प्रकार से देखरेख कर सकते हैं।
6. देश का नेतृत्व कर देश का विकास भी एक अच्छे शिक्षित व्यक्ति के हाथों में होना चाहिये। जो कि बिना स्वार्थ भावना एवं गलत निर्णय न ले सके और साथ ही सभी देश वासियो को अपना सदस्य समझें।

(2) वर्तमान शिक्षा में कमियाँ–

1. प्रशिक्षत शिक्षकों के अभाव में शिक्षा दी जा रही है। कोरोना काल में स्पष्ट हो गया है कि ऑनलाइन शिक्षा देने के लिए हमारे अधिकतर शिक्षक अभी शिशु ही हैं।
2. शिक्षण विधियों में प्रश्नोत्तर व व्याख्यान विधियों के अलावा कोई आधुनिक विधि का प्रयोग नहीं हो रहा है।
3. पाठ्यक्रम की स्पष्टता नही है। समानता का अभाव है।
4. आधुनिक पाठ्यक्रम में सामाजिक मूल्यों एवं व्यवहारिक जीवन में इसका लगभग अभाव ही पाया जाता है।
5. लिंग भेद होने के कारण शिक्षा के शिक्षण पर प्रभाव पड़ रहा है।
6. आज भी निम्न वर्ग को जैसी शिक्षा मिलनी चाहिए उस शिक्षा के अधिकार से वह वंचित रहा है।
7. आधुनिक शिक्षा में अपनी संस्कृति के प्रति कम लगाव बल्कि पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव अधिक देखने को मिलता है।
8. आधुनिक शिक्षा केवल आत्मज्ञान तक सीमित है न कि दार्शनिक रूप में।
9. देश की बढती जनसंख्या की दृष्टि से संसाधनो का अभाव शिक्षा पर साफ तौर पर देखा जा सकता है।
10. छात्रों के मनोविज्ञान की दृष्टि से शिक्षा नही दी जा रही है। संरक्षकों को हस्तक्षेप अधिक है।

(3) वर्तमान शिक्षा की चुनौतियाँ–

1. बढ़ती जनसंख्या के कारण देश के आर्थिक, सामाजिक एवं शैक्षिक स्तर पर प्रभाव पड़ रहा है।
2. शिक्षा का बाजारीकरण होने से गरीब छात्रों की पकड़ से शिक्षा दूर होती जा रही है।
3. जहाँ अशिक्षित समाज है।वहाँ बाल अपराध, हत्या, डकैती, आंतकवाद जैसी गम्भीर समस्याएँ उत्पन्न होने की सम्भवनाएँ अधिक रहती हैं।
4. अशिक्षित व्यक्तियों व महिलाओं के कारण संक्रमित अनेक भंयकर बीमारियाँ पैदा हो रही हैं।
5. आज भी अधिकतर आदिवासी समाज में स्त्री शिक्षा को अभिशाप मान जाता है। यह अशिक्षित समाज इसलिए माँ के गर्भ में नवजात बच्चियों की हत्याएँ कर रहा है।

6. शिक्षा की दुकानों पर अर्थात् व्यावसायिकता पर रोक लगनी चाहिये नही तो भावी पीढ़ी को अव्यवहारिक एवं भारी भरकम पाठ्यक्रम होने के कारण संकट से गुजरना पड़ सकता है।
7. आज ई–लर्निंग का जमाना है–कम्प्यूटर, प्रोजेक्टर, ई मेल, वाटसअप, जूम ऐप, गूगल मीट आदि के माध्यम से शिक्षा दी जानी चाहिए। जो शिक्षा के लिए अभी भी एक चुनौती बनी हुई है।
8. ऐसी शिक्षा दी जाये जिससे युवा अपना व्यापार कर सके और बाल–अपराध, बालात्कार जैसी भयानक समास्याओं से अपने परिवार को बचाया जा सके।
9. बालक–बालिकाओं को उच्च स्तर से लिग शिक्षा भी दी जाये जिसके अज्ञानता के कारण एड्स, बालात्कार आदि शर्मशार समस्याओं से बचा जा सके।
10. चीन व आस्ट्रेलिया से सीख लें और देश में खेल को बढ़ावा दें जिससे देश के आर्थिक सहयोग में युवा अधिक से अधिक सहभागिता करें, जिसका अभी भी अभाव है।

(4) वर्तमान शिक्षा के लिये सुझाव –

आधुनिक भारत की शिक्षा के लिये कुछ सुझाव निम्नलिखित हैं।

1. संसाधनों को दृष्टिगत रखते हुए शिक्षा ग्रहण करने के लिय छोटा परिवार होना चाहिए। छात्रों व छात्राओं में यह विचार समाहित करना चाहिए जिससे वें अपने आप परिवार नियोजन करेंगें।
2. युवकों व युवतियों को विवाह से पूर्व जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न होने वाली समस्याओं से परिचित कराया जाना आवश्यक है।
3. शिक्षा के माध्यम से छात्र–छात्राओं को इन कारणों से रूबरू किया जाये जिससे जनसंख्या वृद्धि के कारण देश की आर्थिक, सामाजिक एवं व्यक्तिगत के स्वभाव आदि पर इसके प्रभाव से बचा जायें।
4. प्राथमिक स्तर के विद्यालयों में अध्यापकों की नियुक्ति ग्रह नगर (जिला) से न की जायें बल्कि दूसरे जिला के अध्यापकों को नियुक्त किया जाए। साथ ही साथ सरकार रहने के लिये आवास प्रदान करें। जिससे अध्यापक समय से ही शिक्षण कार्य करेंगे।
5. मिड–डे–मील योजना से शिक्षण पर प्रभाव पड़ रहा क्योंकि अध्यापक बच्चों के लिये भोजन तैयार करवाते हैं अगर ऐसा न हुआ तो उनकी नौकरी जा सकती है, इसमें सुधार की आवश्यकता हैं।
6. लिंग भेद, खेल, भेद भाव रहित शिक्षा दी जाए जिससे छात्रों व छात्राओं में मनोविकृतियाँ उत्पन्न न हों।
7. समान पाठ्यक्रम वाली शिक्षा होनी चाहिए। इसके साथ ही शिक्षा का पाठयक्रम ऐसा तैयार किया जायें कि छात्र व छात्राओं में अपनी संस्कृति एवं संस्कारों के प्रति निश्ठा रहे।
8. शिक्षा के माध्यम से ऐसे युवा तैयार किये जाये जो देश की आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक विषमताओं को खत्म कर सार्वभौमिक विकास में सहायक बने।
9. भारत प्राचीन काल से विश्वशान्ति का समर्थक रहने के साथ ही वसुधैवकुटुम्बकम की भावना का हिमायती रहा हैं। इसको दृष्टिगत रखते हुए ऐसे शिक्षित युवाओं को तैयार किया जाये जो देश की शान्ति के साथ ही साथ विश्व में फैली बुराइयों को समाप्त करने में सहायक बन सकें।
10. उच्च शिक्षा को भविष्य की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाने के लिए आवश्यक है कि उसमें अर्न्तराष्ट्रीय सद्भाव और मेल–मिलाप के सबल कारण सम्मिलित करने के साथ ही तकनीकी टूल्सों का भी ध्यान देना होगा।[3]

कारोना काल को दृष्टिगत में रखते हुए अब वह समय आ गया है जब मानव को अपनी अन्तरात्मा का परीक्षण कर चाहे वह डाक्टर हो, इन्जीनियर हो, राजनीतिज्ञ हो, वकील हो, शिक्षक हो, विद्यार्थी हो, पूीजीपति हो, व्यापारी

हो, नौकर हो, किसान हो अथवा मजदूर हो उसे इस टूटती हुई शिक्षा को पुनः सुस्थिर करना ही होगा। देश का भविष्य इन्हीं सभी के कन्धों से कन्धा मिलाने एवं एक जुट होने पर ही उज्जवल हो पायेगा। शिक्षा जगत में व्याप्त अव्यवस्था, भ्रष्टाचार एवं भेद–भाव को मिटाना होगा। छात्र–छात्राओं को नैतिक मूल्यों एवं तकनीकी ज्ञान से अवगत होना होगा। यद्यपि इस कार्य में सर्वाधिक भूमिका शिक्षाविदों, कुलपतियों, प्राचार्य एवं शिक्षक की ही रहेगी तथापि समाज एवं सरकार को भी अपना कर्तव्य एवं धर्म का पालन करने के साथ ही ''विश्वविद्यालयों की कक्षाएँ पाठ सुनने के कमरे नहीं बनें, छात्र जिज्ञासा, अन्वेशण अध्ययन से दूर रहकर तथ्यों और आंकड़ों के उपभोक्ता न बनें, प्राध्यापक आंकड़ों के थोक विक्रेता के स्थान पर चिन्तक बनें, सर्जक बनें, तभी शिक्षा की सार्थकता है और तभी वह समाज के निर्माण और सर्वागींण विकास में सहायक बन सकती है।''[4]

सन्दर्भ संकेत

1. भारतीय शिक्षा का विकास और उसकी समस्याएँ–रमन बिहारी लाल–रस्तोगी पब्लिकेशन्स, शिवाजी रोड, मेरठ, 2005, पृ0 417
2. भारतीय शिक्षा : मुद्दे, विकल्प, नीतियाँ – प्रकाशक – ओमेगा पब्लिकेशन्स, 4378/4 B,G-4 जे0 एम0 डी0 हाउस गली मुरारी लाल अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002, संस्करण–2013, पृ0 xxx
3. कृतिका 5, वर्ष 3–अंक–जनवरी–जून 2009, पृ0 39
4. भारतीय शिक्षा का बदलता परिदृश्य : चुनौतियाँ एवं समाधान की दिशाएँ, ओमेगा पब्लिकेशन्स, 4378/4 B,G-4 जे0 एम0 डी0 हाउस गली मुरारी लाल अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002,प्रथम संस्करण–2013, पृ0 122

अन्य सहायक सन्दर्भ ग्रन्थ–

- कमल नयन काबरा; भूमण्डलीय : विचार, नीतियाँ और विकल्प
- भारत में शैक्षिक सुधार (समसामयिकी महासागर), अरिहन्त नवम्बर 2009
- भारतीय शिक्षा का इतिहास एवं समस्याएँ – लाल, रमन बिहारी, एपसाइलन पब्लिशिंग हाउस, कानपुर
- आदि और मध्य युगीन भारत में शिक्षा–चौबे, सरयू प्रसाद, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
- भारतीय शिक्षा का बदलता स्वरूप–चुनौतियाँ एवं समाधान की दिशाएँ–डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव–प्रकाशक–ओमेगा पब्लिकेशन्स
- भारत में शिक्षा प्रणाली का विकास–सिंह डॉ0 कर्ण गोविन्द प्रकाशन, लखीमपुर खीरी
- सवालों के चक्रव्यूह में शिक्षा–प्रकाशक–डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव–ओमेगा पब्लिकेशन्स
- विद्या मेद्य मासिक पत्रिका, मेरठ, जुलाई, नवम्बर 2009,अगस्त 2010
- भारत में उच्च शिक्षा :कुछ अहम सवाल,कुछ बुनियादी समस्याऐी–डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव–प्रकाशक–ओमेगा पब्लिकेशन्स
- भारत में शिक्षा के उभरते क्षितिज और गहराती चुनौतियंी–डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव–प्रकाशक–ओमेगा पब्लिकेशन्स
- भारतीय शिक्षा का बदलता परिदृश्य : चुनौतियाँ एवं समाधान की दिशाएँ–डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव–ओमेगा पब्लिकेशन्स
- आओ स्कूल चलें हम (कुरूक्षेत्र)–ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली–2007
- भारत में शिक्षा का विकास–शर्मा, डॉ0 आर0 ए0, लाल बुक डिपों, मेरठ
- भारतीय शिक्षा : मुद्दे, विकल्प, नीतियाँ– डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव–प्रकाशक–ओमेगा पब्लिकेशन्स
- भारत में उच्च शिक्षा : चुनौतियाँ एवं समाधान की दिशाएँ –डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव, प्रकाशक–अल्फा पब्लिकेशन्स

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

बौद्ध धर्म की वर्तमान में प्रासंगिकता

(कोविड–19 के परिप्रेक्ष्य में)

डॉ0 संजू
एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास
राजकीय महाविद्यालय, अकबरपुर, कानपुर देहात

नरस्याभरणं रुपं, रुपस्याभरणं गुणः।
गुणस्याभरणं ज्ञानं, ज्ञानस्याभरणं क्षमा।।

अर्थात् मानव का आभूषण रूप है, रूप का आभूषण गुण है, गुण का आभूषण ज्ञान है और ज्ञान का आभूषण क्षमा है।

परिचय – क्षमा, दया, करुणा, सहनशीलता, परोपकार, सहयोग, सहानुभूति, अहिंसा, संवेदना, प्रेम या मानवता के प्रति सच्चा प्रेम आदि सभी ईश्वरीय या दैवीय गुणों को खरा उतारने से ही सच्चा मानव, महान पुरुष कहा जा सकता है। धर्मगुरु दलाईलामा कहते हैं कि महात्मा बुद्ध को तभी सच्चा ज्ञान मिल पाया था, जब उनमें दया, क्षमा, करुणा, अहिंसा जैसे भाव चरम पर आए थे, ऐसे महान आत्मा की शिक्षाओं एवं उपदेशों की वर्तमान में दरकार है। आवश्यकता है कोविड–19 वैश्विक महामारी से स्वयं एवं समाज को मुक्त कराने की अतः हम सबको हर छोटी–बड़ी बातों का ध्यान रखने व देशहित में कर्म करते रहना चाहिए। सच ही कहा गया है–

उद्यमेन हि सिहयन्ति कार्याणि न मनोरथै।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशान्ति मुखे मृगाः।

अर्थात् परिश्रम करने से, उद्योग करने से, पुरुषार्थ करने से शेर को भी शिकार मिलता है।

आत्मसंयम, मध्यममार्ग का अनुसरण करने की सीख देने वाले महान ज्ञानी महात्मा बुद्ध को समझने की एवं अमल करने की आवश्यकता है। छठी शताब्दी ई.पू. में बौद्ध धर्म का उदय हुआ। बौद्ध धर्म के संस्थापक महात्मा बुद्ध के जीवन–चरित्र पर अनेक बौद्ध ग्रन्थों (ललित विस्तार, बुद्ध चरित, महावस्तु, व सुत्तनिपात) से प्रकाश पड़ता है। महात्मा बुद्ध का जन्म कपिलवस्तु के पास लुम्बिनी वन में हुआ था। बुद्ध के पिता शुद्धोध्न शाक्यों के राज्य कपिलवस्तु के शासक थे और शाक्य लोग गौतम गोत्र के थे, इसीलिये सिद्धार्थ को गौतम बुद्ध कहते हैं। बुद्ध के बचपन का नाम सिद्धार्थ था। उनके जन्म के सातवें दिन ही उनकी माँ महामाया का देहान्त हो गया था, अतः सिद्धार्थ का पालन पोषण मौसी व विमाता प्रजापति ने किया। 16 वर्ष की आयु में उनका विवाह गणराज्य की राजुकमारी यशोधरा से कर दिया गया। बौद्ध ग्रंथों से ज्ञात होता है कि सांसारिक जीवन को त्यागने का विचार उनके मस्तिष्क में चार घटनाओं से आया। पुत्र राहुल के जन्म पर गौतम बुद्ध ने कहा कि आज मेरे बन्धन की श्रंखला में एक और कड़ी जुड़ गई। अतः एक रात वह यशोधरा तथा राहुल को सोता छोड़कर ज्ञान की खोज में निकल पड़े। बौद्ध ग्रंथों में गृहत्याग की घटना ''महाभिनिष्क्रमण'' के नाम से जानी जाती है। सिद्धार्थ ने गया में एक वट वृक्ष के नीचे समाधि लगाई व प्रतिज्ञा की कि जब तक ज्ञान प्राप्त न होगा वे वहाँ से हटेंगे नहीं। सात दिन व सात रात समाधि करने के पश्चात वैशाख पूर्णिमा के दिन सच्चे ज्ञान की प्राप्ति हुई। इतिहास में इस घटना को 'सम्बोधि' कहा गया, जिस वृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त हुआ उसे ''बोधिवृक्ष'' तथा गया को ''बोधगया'' कहा जाने लगा। बुद्ध ने ज्ञान प्राप्ति के पश्चात सर्वप्रथम पाँच ब्राह्मणों को उपदेश दिया जो पंचवर्गीय कहलाये और

इतिहास में इस घटना को ''धर्मचक्र प्रवर्तन'' के नाम से जाना जाता है महात्मा बुद्ध धूम–धूम कर धर्म का प्रचार करते रहे और कुशीनगर में अपने जीवन लीला समाप्त कर लिया इस घटना को ''महापरिनिर्वाण'' कहा जाता है।

वैशाख पूर्णिमा का दिन, जब राजकुमार सिद्धार्थ ने लुम्बिनी के साल वन में जन्म हुआ, सम्राट अशोक द्वारा स्थापित प्रशस्त स्तंभ जिस पर ब्रह्मी अक्षरों (लिपि) में लिखा है– 'इध तथागतो जातो अर्थात् यहाँ तथागत का जन्म हुआ है।'

धन्य है वैशाख पूर्णिमा का वह दिन, जिस दिन सिद्धार्थ गौतम ने बोधगया के पवित्र बोधिवृक्ष के नीचे सम्यक संबोधि की प्राप्ति की। जिसकी एक शाखा अशोक पुत्री संघमित्रा श्रीलंका ले गई, जो नगर अनुराधापुरम में रोपा गया। कृतज्ञ सिंहल जाति इस महान वृक्ष को जयश्री महाबोधी के नाम से स्मरण करते हैं।

धन्य हैं वैशाख पूर्णिमा का वह दिन, जिस दिन तथागत लगातार 45 वर्षों तक लोक कल्याण का जीवन बिताकर कुशीनगर के सालवन में महापरिनिर्वाण को प्राप्त हो गये। धम्मपद में कहा गया है कि– ''सुखो बुद्धांन उत्पादो, सुख संध देसना। सुखा संधस्य सामग्री, समगानों तपो सुखो।।''

अर्थात् संसार में बुद्ध का उत्पन्न होना सुखदायी है। सुखदायी है बुद्ध का धम्मदेशना संध की एकता सुखदायी है और एकता के साथ धर्म साधना करना सुखदायी होता है।

आज का मानव शारीरिक एवं मानसिक तनावों से ग्रसित है जिससे अनेकों व्यधियाँ उत्पन्न होती है और व्यक्ति सदा अशांति का अनुभव करते हैं। दुःखों से दुखित मानव को सुखी बनाना बौद्ध शिक्षा, बौद्ध दर्शन, बौद्ध धर्म का मुख्य उद्देश्य है। तथागत गौतम बुद्ध ने कहा– ज्ञान के साथ लोक में मनुष्यों के प्रयोजन हित सुख के लिए विचरण करो। गौतम बुद्ध ने संसार में लोगों को दुःख से पीड़ित देखा। उनके अनुसार इस संसार में चारों तरफ दुःख ही दुःख है। सारा जगत दुख से दुखी है, रोग भी दुख है मृत्यु भी दुख है। अप्रियों से सयोग दुख है, अभाव दुःख है, प्रिय लोगों से वियोग भी दुख है। इच्छित वस्तु का न मिलना भी दुख है। अर्थात् सम्पूर्ण मानव जीवन दुख मय है। दुख को दूर करने के लिये मुक्ति के लिए, निवारण के लिये अष्टांगिक मार्ग भी बताया।

(1) सम्यक् दृष्टि, (2) सम्यक् संकल्प, (3) सम्यक् वाक्, (4) सम्यक् कमन्ति, (5) सम्यक् आजीविका, (6) सम्यक् व्यायाम, (7) सम्यक् स्मृति, (8) सम्यक् समाधि

गौतम बुद्ध ने स्पष्ट कहा–

अप्त दीपों भव	–	यानि अपना दीपक स्वयं बनो
अप्त नायो भव	–	अपना स्वामी स्वयं बनो
अप्ता हि अप्तनो नाथो	–	मनुष्य अपना स्वामी आप है
अप्ता हि अतनोगति	–	दुर्गति अथवा सुगति की प्राप्ति अपने पर ही निर्भर करती है
अप्ता दीपा विहरथ	–	अपना प्रदीप आप बनो
अप्ता सखा	–	अपनी शरण में जाओ।

बुद्ध की शिक्षा आज के कोरोना वैश्विक संकट की घड़ी में बुद्धिवादी, चेतनावादी एवं मुक्तिवादी से युक्त हैं। बुद्ध ने भारतीय संस्कृति, मानव संस्कृति, मानव समाज के लिये अनमोल योगदान दिया है, जिससे मानवीय मूल्यो की रक्षा होती है– जैसे अविद्या एवं तृष्णा को दूर करने के लिये त्रिसरण, सदाचार के 10 नियम एवं आष्टांगिक मार्ग दिया है जिसका वर्तमान परिप्रेक्ष्य में पालन करना आवश्यक ही नहीं बल्कि अनिवार्य है। त्रिसरण का मतलब होता है तीनरत्न–

बुद्धं शरणं गच्छामि
धम्मं शरणं गच्छामि
सघं शरणं गच्छामि

बुद्धं शरणं गच्छामि का अर्थ होता है कि हम बुद्धि, विवेक, ज्ञान, चेतना और प्रज्ञा की शरण में जायें क्योंकि महात्मा फूले ने कहा है– शिक्षा ज्ञान के अभाव में नैतिकता की अवनति होती है तथा नैतिकता के अभाव में प्रगति अवरूद्ध हो जाती है और प्रगति के अभाव में सम्पत्ति लुप्त हो जाती है, अत्याचार होता है अर्थात इन सारी विपत्तियों का आर्विभाव अकेले अशिक्षा, निरक्षता, अधंविश्वास, अविद्या अज्ञानता से हुआ है। अविद्या नेत्री सर्व क्लेशानाम यानि अविद्या समस्त दुखों की जननी है। तथागत गौतम बुद्ध ने कहा था– ''सूर्य केवल दिन में आकाश साफ रहने पर प्रकाशित होता है। चन्द्रमा केवल रात में महीना पूरा होने पर ही प्रकाशित होता है। अग्नि केवल ईधन पाने पर ही प्रदीप्त होती है, परंतु शिक्षा बुद्धि ज्ञान विवेक, चेतना एवं प्रज्ञा दिनरात समानभाव से प्रकाशित होते रहते हैं।

धम्मं शरणं गच्छामि का अर्थ होता है कि – मैं धम्म की शरणं में जाता हूँ। धम्म का मतलब हिन्दू, मुसलमान, सिख, इसाई, सिक्ख, जैन, पारसी से नहीं। धम्म का अर्थ होता है– धारण करना, आचरण करना जैसे आग का धम्म है– जलाना, पानी का धम्म है शीतल करना। इसलिये धम्म का तात्पर्य स्वभाव, प्रकृति का नियम यानी कुदरत का कानून अर्थात बिल्कुल प्रकृतिवादी बन जाना ही धम्म की शरण में जाना हुआ। तथागत ने इसी प्रकृति की धम्म की शरण में जाने की शिक्षा, संदेश, उपदेश दिया है।

प्रकृति का अर्थ होता है– प्र– करोति इति प्रकृति, जिसका तात्पर्य होता है बनाना, कुछ करना, कुछ निर्माण करना। प्रकृति से सामंजस्यता बनाकर चलना ही धम्म हैं प्रकृति के साथ सम्यक जीवन ही धम्म का जीवन है। धम्म का मतलब मध्यम मार्ग, न अतिसुखमय जीवन न अतिदुखमय जीवन। यह मध्यमवर्ग न तो कोई अध्यात्मवाद है न ही कर्मकाण्डवाद है न हठवाद है न ही नास्तिकवाद है न ही अमरत्ववाद न ही शून्यवाद है, न निराशावाद न अति आशावाद, बल्कि ज्ञानप्राप्ति का सच्चा मार्ग है तथा जीवन यात्रा में दुःखों से मुक्ति पाने का एक साधन है।

सधं शरणं गच्छामि का अर्थ होता है कि– मैं संध की शरण में जाता हूँ। संध का अर्थ समूह से है। समूह जो बुद्धि और विवेक का अनुगामी हो, प्रकृति के नियम, कुदरत के कानून को मानता हो। ऐसे समूह की शरण में जाना अर्थात् भिक्षु संघ की शरण में जाना हुआ।

पंचशील – पंचशील का सीधा अर्थ है– पाँच नियम

1. पाणतिपाता वेरमणी सिक्खापदं समादियामि (हिंसा से बचना)
2. अदिन्नादाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि (चोरी से बचना)
3. कामेसुमिच्छा चारा वेरमणी सिक्खापदं समादियामि (काम और मिथ्याचार से बचना)
4. मुसावादा वेरमणी सिक्खापदं समादियामि (झूठ से बचना)
5. सुरा मेरय मज्ज पमादष्ठाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि (नशीली वस्तुओं एवं आलस्य से बचना)।

यानि हिंसा नहीं करना, चोरी नहीं करना, व्याभिचार नहीं करना, झूद नहीं बोलना एवं शराब का सेवन नहीं करना। पंचशील के ये सभी नियम सम्पूर्ण मानव समाज को सुखी सम्मानित और सुखद सुन्दर जीवन जीने के लिये पालन करने से मनुष्य का जीवन सुखमय हो जाता है। शील सम्पूर्ण मानसिक ताप को शांत कर देता है, शील अत्यन्त शीतल होता है परंतु आज दुःख इस बात का है कि लोग पंचशील को भूल गये हैं। अगर किसी को अपना सुख आराम और कल्याण हमेशा (इस कोविड–19 के दौर में) कायम रखना है तो उसको पंचशील नियमों को पालन करना आवश्यक नहीं अपितु अनिवार्य है। इसलिये वर्तमान परिप्रेक्ष्य में ''बौद्ध धम्म'' जरूरी है क्योंकि पंचशील जीवन की सही शिक्षा है। यह तथागत बुद्ध की धरती है। भारत को सोने की चिडिया कहा जाता था आज भी इस संकट के दौर में हमें गौतम बुद्ध की भिक्षाओं से सबक लेने की आवश्यकता है। तथागत को शामिल कर जब पृथ्वीलोक में अरहतों (राग, द्वेष से मुक्त) की संख्या निरन्तर बढ़ने लगी तो तथागत ने उन्हें संबोधित करते हुये कहा था– 'चरथ

भिक्खवे चारिकं बहुजन हिताय बहुजन सुखाय लोकानुकंपाय अत्थाए चिप्ताए सुखाए.....' अर्थात है भिक्षुओं बहुजनों के हित के लिये बहुजनों के सुख के लिये, लोक पर अनुकंपा करने के लिये धर्मोपदेश देते हुए विचरण करो। लोगों को ऐसे धर्म का उपदेश दो जो आदि में कल्याणकारी हो, मध्य में कल्याणकारी हो और अंत में कल्याणकारी हो। शब्दों और अर्थों के माध्यम में श्रेष्ठतम जीवन की स्थापना करो।

भारत में बौद्ध धर्म के विभिन्न प्रमुख स्थल

बिहार :

बोधगया – बिहार प्रदेश में स्थित यह वह स्थान है, जहां सिद्धार्थ को सम्यक सम्बोधि की प्राप्ति हुई थी और वे बुद्ध कहलाये, उरुवेला में निरंजना नदी के तट पर बोधि वृक्ष के नीचे सिद्धार्थ को बुद्धत्व की प्राप्ति हुई थी, आज बोधगया में अनेक देशों ने अपने बुद्ध विहार बनाये हैं, बुद्धत्व प्राप्ति के पूर्व सिद्धार्थ निरंजना नदी के दुसरे किनारे पर स्थित डुंगेश्वरी गुफा में कठिन तपस्या व ध्यान किया करते थे, यह गुफाएं आज भी मौजूद हैं, महाबोधि विहार यहां सबसे पवित्र और दुनिया के बौद्ध शिल्पों में से सबसे सुन्दर व भव्य निर्माणों में से एक है–

राजगीर – बिहार राज्य में स्थित इस स्थल में बुद्ध के काल में राजगृह अथवा राजगीर भी कहा जाता था, पांच पर्वतों से घिरे होने के कारण सुरक्षित यह मगध राज्य की राजधानी भी थी, बुद्ध के समय यहां बिम्बिसार का शासन था, बुद्धत्व प्राप्ति के पश्चात बुद्ध ने अपना दूसरा, तीसरा व चतुर्थ वर्षावास यहीं बिताया था। राजा बिम्बिसार ने बुद्ध को वेलुवन दान में दिया था, वहां विशाल विहार बनवाया था जो आज भी विद्यमान है जापान के सहयोग से यहां राजगीर के गृहकूट पर्वत पर विशाल विश्व शांति स्तूप व भव्य विहार निर्मित हुआ है।

वैशाली – बिहार राज्य में स्थित यह स्थल बुद्ध के काल खंड में लिच्छिवी वंश की राजधानी के तौर पर विश्व का प्रथम प्रजातांत्रिक राज्य था, बुद्धत्व प्राप्ति के पांचवे वर्षावास में बुद्ध प्रथम बार वैशाली आये, उन्होने पांचवा वर्षावास भी यही गुजारा, भगवान बुद्ध ने भिक्खुणी संध की स्थापना यहीं की, नगरवधू आम्रपाली यहीं पर संध में शामिल हुई, बुद्ध ने तेवज्ज सूत, महाली सूत, रतन सूत सहित अनेक सुतों को देशना यही की थी, बिहार राज्य की राजधानी पटना से 40 किमी की दूरी पर स्थित इसी वैशाली में बुद्ध ने अपने निर्वाण की पूर्व घोषणा की थी।

केसरिया – बिहार के ही पटना से 105 किमी की दुरी पर व चंपारण जिले में स्थित 104 फीट ऊँचा यह स्तूप विश्व के सबसे बड़े व ऊंचे स्तूपों में से एक हैं, सन् 1998 में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा खुदाई कर इसके अस्तित्व को दुनिया के समक्ष अनावृत किया गया, ऐसी मान्यता है कि बुद्ध जब वैशाली से केसरिया के लिये विदा हो रहे थे तब वैशाली के लोगों को भिक्षा पात्र दान में दिया था, इसके पश्चात इस भिक्षा पात्र को वैशाली के मठ में रखा गया जहां किसान और फल व्यापारी अपनी फसल काटने के बाद सर्वप्रथम इसी पात्र को समर्पित करते थे।

नालंदा – बिहार के पटना से 80 किमी की दूरी पर स्थित नालंदा विश्वविद्यालय के रूप में विश्व विख्यात नालंदा महाविहार कभी पुरे विश्व समूह का गौरव था, यह मानव के विकास और प्रकृति से समन्वय से जुड़े शुद्ध ज्ञान का केंद्र था, अपने पूर्ण वैभव में यहाँ 10 हजार विद्यार्थी और 2 हजार अध्यापक थे, यहां के कुछ प्रसिद्ध छात्रों में इत्सिंग, हेनसांग, जे–ताऊ–माऊ, ताओ शिंग, हुएं चाओं, धर्मस्वामिनी, आर्य भट्ट आदि प्रमुख है।

विक्रमशिला महाविहार – बिहार राज्य में स्थित इस स्थल की खुदाई में एक पुस्तकालय, स्तूप और वृहद् मठ प्राप्त हुआ है,

उत्तर प्रदेश :

सारनाथ – उत्तर प्रदेश के वारणसी में स्थित व वाराणसी रेलवे स्टेशन से 5 किमी. की दूरी पर यह स्थल बुद्ध धम्म में एक प्रतीक स्थल के रूप में विश्व विख्यात है यही वह पवित्र स्थल है, जहां बुद्ध ने अपनी प्रथम देशना (उपदेश) की थी, बोधगया में ज्ञान प्राप्ति के पश्चात सबके कल्याण हेतु बुद्ध ने सर्वप्रथम अपने पांच पुराने मित्रों धम्मोपदेश दिए, पहली बार बताया की उन्होने कल्याणकारी आर्य अष्टांगिक मार्ग खोज लिया है, इस प्रथम उपदेश को धम्मचक प्रवर्तन कहा जाता है, भगवान बुद्ध ने सारनाथ में ही भिक्खु संध की स्थापना भी की।

कुशीनगर – उत्तर प्रदेश का यह जिला बौद्धों के लिये एक महत्वपूर्ण तीर्थस्थल है, यह भगवान बुद्ध का महापरिनिर्वाण स्थल है, यहीं भगवान बुद्ध ने अंतिम सांसे ली थी, यहां भगवान बुद्ध ने दो साल वृक्षों के बीच में लेटकर महा परिनिर्वाण प्राप्त किया था, यहां भगवान बुद्ध महापरिनिर्वाण नामक विशाल स्तूप विद्यमान है, जहां बुद्ध ने अंतिम सांसे ली वह स्थल भी मौजुद है।

जौनपुर (उत्तर प्रदेश) – बुद्ध विहार की दीवार के अवशेष भी मिले हैं, अब तक के उत्खनन से यह ध्वनित हो रहा है कि लगभग ढ़ाई हजार वर्ष पूर्व यहां नगरीय सभ्यता मौजूद थी, संभव है कि यह स्थान विशेष व्यापार वाणिज्य का एक महत्पवपूर्ण पड़ाव भी रहा हो।

मध्य प्रदेश :

साँची – मध्य प्रदेश में स्थित साँची बौद्ध स्मारकों के लिए विश्व प्रसिद्ध ह, यह ....सेन जिले में एक छोटा सा गांव है, स्तूपों के लिये प्रसिद्ध यहां कई बौद्ध स्मारक मौजूद हैं, ईसा पूर्व तीसरी सदी से बारहवी सदी के दरम्यान बने स्तूप, मठों, बिहार और स्तंभों के लिये जाना जाता है, यहां निर्मित स्तूप तोरणों से घिरे हैं, स्तूप के द्वार की मेहराब पर भगवान बुद्ध का जीवन चरित्र खुदा हैं, यूनेस्को के इसे विश्व धरोहर की सूची में शामिल किया है, सांची में कुल 36 मठ, 18 बिहार, एक स्तूप के साथ ही एक अशोक स्तंभ मौजूद हैं 1854 ई. में पुरातात्विक विभाग ने यहां खुदाई करवाई थी।

उज्जैन – भगवान बुद्ध के अस्थि अवशेष को संचित कर बने स्तुप 2500 वर्ष से ज्यादा प्राचीन हैं, यह स्तूप उज्जैन रेलवे स्टेशन से 5 किमी दुरी पर ही स्थित है।

भरहुत स्तूप – प्रदेश के सतल जिले में स्थित यह एक प्रसिद्ध बौद्ध स्थल हैं, इस स्तूप को सम्राट अशोक ने ईसा पूर्व तीसरी सदी में निर्मित करवाया था, इस स्तूप में बुद्ध को बौद्ध प्रतीकों के रूप में दर्शाया गया है, जैसे बुद्ध के पद चिन्ह, धम्मचक्र, बोधिवृक्ष, इत्यादि।

ग्वालियर – हाल ही में मध्य प्रदेश स्थित ग्वालियर में शिवपुरी जिले के राजापुर गांव में करीब 2200 साल पुराना बौद्ध स्तूप मिला है, यह ईसा पूर्व .... वंश के काल का बताया जा रहा है, ग्रामीण इसे अंचल का पहला बौद्ध स्तूप बता रहे है, गांव के लोग अब तक इस स्तूप को कुटिया मठ के नाम से पहचानते आ रहे थे, पुरातत्वविदों का मानना है कि स्तूप के नीचे तांबे का कलश हो सकता है और उसमें सम्राट अशोक की अस्थियां एवं राख हो सकती हैं, ग्वालियर चंबल संभाग में पहला बौद्ध स्तुप ज्यादातर बपाल, विदिशा, देवास, होशंगाबाद के आस–पास के क्षेत्रों में मिले है।

ओडिसा :

यह स्थान धम्म संस्कृति के प्रमुख स्थलों में से एक हैं, प्राचीन बौद्ध विरासत से समृद्ध ओडिसा (उड़िसा) में क्षतिग्रस्त बुद्ध विहार एवं स्तूप सर्वत्र विद्यमान है, वोलगिरी, ढ़ेनकनाल, फूलबनी, कालाहांडी, संभल पुर, क्योंझार, गंजम, वालासोर और पुरी आदि जिलों में कई महत्वपूर्ण शोध किये गये हैं जहां बुद्ध अवशेष या तो मौजूद हैं या

प्रमाण मिला है।

ललितगिरी – उड़िसा की राजधानी भुवनेश्वर से लगभग 85 किमी. की दुरी पर स्थित यह स्थल प्रथम ई. सदी में स्थापित किया गया था, यह उड़िसा का सबसे उत्कृष्ट कलात्मक, प्राचीन एवं भव्य स्थलों में से है, खंडहरों में तब्दील हो चुके इस स्थल की खोल 1985 में पुरातत्व विभाग द्वारा की गयी थीं यहाँ उत्खनन में भगवान बुद्ध की अस्थिधातु प्राप्त हुई थी, मुख्य स्तुप के अतिरिक्त यहां तीन विशाल विहार, बहुकक्षों वाले चैत्यगृहों के अवशेष विद्यमान है।

उदयगिरी – सातवीं सदी में यहां उड़िसा का सबसे वृहद् बौद्ध परिसर था जो करीब 400 एकड़ में विस्तारित था, यहां दो विशाल विहार है तथा दोनों एक साथ मिलकर अपने समय की सबसे वृहद् बौद्ध स्थापनाएं हैं, वह स्थल भुवनेश्वर से 93 किमी. की दुरी पर स्थित है।

रत्नगिरि – यह स्थान बुद्ध धम्म की अन्य शाखा जैसे महायान एवं वज्रयान परंपरा का प्रमुख तीर्थस्थल हैं, इसमें विहार के दरवाजों पर उत्कृष्ट नक्काशी की गयी है, रत्नगिरी बौद्ध शिल्पकला के दृष्टिकोण से अत्यंत उनन्त थी, यहां भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के संग्रहालय में अनेक प्रकार के पत्थर की शिल्पकला व अवशेष संरक्षित हैं, भुवनेश्वर से 91 किमीं की दूरी पर स्थित रत्नगिरी में तारा, अवलोकितेश्वर, मंजुश्री और ध्यानी बुद्ध की प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं।

लान्गुली – उड़िसा के प्राचीनतम बौद्ध स्थल के रूप में दर्ज इस स्थल की खोज के बाद में हुई जैपोर जिला मुख्यालय से 6 किमी. की दुरी पर स्थित इस स्थल की खोज के उपरांत ये सर्वाविदित हुआ की यहाँ हेनसांग का वैभवशाली पुष्पगिरी महाविकार हैं, यह शिक्षा के महानतम केन्द्रों में से एक था।

धौली – भुवनेश्वर से 8 किमी. की दुरी पर स्थित धौली कलिंग युद्ध का मूक साक्षी है जिसने शासनप्रिय अशोक को धम्मानुरागी में परिवर्तित कर दिया। कलिंग युद्ध के बाद ही बुद्ध धम्म को गौरव पुरे भारत में फैला और भारत विश्व गुरू हो अखंड बना, जापान के सहयोग से यहां तक विशाल स्तूप निर्मित हैं।

हरियाणा :

कुरुक्षेत्र – हरियाणा राज्य के धम्मनगरी कुरुक्षेत्र के ऐतिहासिक बुद्ध स्तूपों का वर्णन कई ग्रंथों में हैं, थानेसर के शासक हर्षवर्धन के शासनकाल में यहां आये चीनी यात्री हेनसांग ने भी कुरुभूमि में स्तूपों का वर्णन किया है, भारतवर्ष के महान सम्राट अशोक द्वारा निर्मित बौद्ध स्तूपों के बारे में पुरातत्वविदों का भी एक मत हैं, वर्तमान में ब्रह्म सरोवर के प्राचीन शेरेन वाले घाट के ठीक सामने पुरातत्व महत्व के एक स्थल पर आज भी जीर्णशीर्ण हालत में एक बौद्ध स्तूप मौजूद हैं यहीं (कमल के फूलों के एक झुण्ड) अनोता झील पर बुद्ध ने दीक्षा दी थी, हरियाणा में दूसरा स्तूप पड़ोसी जिला यमुनानगर का चुनौती का स्तूप है।

झारखंड :

चतरा – इंतखोरी चतरा में स्थित यह बौद्ध स्तूप भद्रकाली मंदिर परिसर में हैं, बुद्ध पूर्णिमा के अवसर पर यहां बुद्ध धम्म अनुयायिओं की भीड़ उमड़ी रहती है, माना जाता है कि पहले यहां बौद्ध स्तूप था, जिसे छिपाने के लिये यहां मंदिर का निर्माण किया गया।

महाराष्ट्र :

एलोरा – छठीं एवं नौवीं सदी के दौरान निर्मित गुफा विहार कलचुरी, चालुक्य एवं राष्ट्रकूट राजवंशों के शासनकाल के लिये जाना जाता है, पत्थरों को नक्काशी कर निर्मित गुफाएं, विहार, बड़े हॉल, छोटे आवास अपनी महान शिल्पकला के लिये प्रसिद्ध है।

धम्मिगरी – यह महाराष्ट्र के नासिक जिले में इगतपुरी में स्थित हैं यह स्थल मुंबई महानगरी से 135 किमी. की दुरी पर स्थित है, यह अन्तराष्ट्रीय विपस्सना अकादमी का मुख्यालय है, बुद्ध धम्म के बड़े शोध केन्द्रों में से एक यहां पुरे साल विपस्साना शिविरों का आयोजन होता रहता हैं।

ड्रैगन पैलेस विहार – यह बुद्ध विहार कामठी, नागपुर महाराष्ट्र में स्थित है। 14 एकड़ भूमि में फैले इस विहार में एक विशाल म्यूजियम, वातानुकूलित सभार, एक सामुदायिक भवन एवं एक पुस्तकालय है।

कान्हेरी गुफा एवं अन्य स्थल – कान्हेरी गुफा मुंबई के बोरीवली में हैं, इसके अलावा महाराष्ट्र के दादर, चैत्यभूमि, राजगढ़, सतारा, पूणे, औरंगाबाद, जिल में दर्शनीय स्तूप एवं अन्य बौद्ध अवशेष विद्यमान हैं।

छत्तीसगढ़ :

सिरपुर – राय पुर से 78 किमी. की दुरी पर महासमुंद जिले में स्थित यह स्थान छठी एवं 10 वीं सदी में एक प्रमुख बौद्ध स्थल था और यहां चीनी यात्री हेनसांग ने भी भ्रमण किया था, सन् 2013 में परम पावन दलाई लामा के आने से इस स्थल का गौरव पुनः स्थापित हुआ है, उत्खनन से यहां 10 बुद्ध विहार व दस हजार बौद्ध भिक्खुओं के अध्ययन के पुख्ता प्रमाण प्राप्त हुये हैं, इसके अतिरिक्त कई बौद्ध स्तूप व नागार्जुन के आने के प्रमाण भी मिले हैं, यह दुनिया का सबसे बड़ा बौद्ध स्थल है, नालंदा में चार बुद्ध विहार मिले हैं जबकि यहां अब तक 10 बुद्ध विहार के होने के साक्ष्य प्राप्त हो चुके हैं–

आंध्र प्रदेश :

अमरावती स्तूप – गुंटुर जिले में स्थिल इसी स्तूप से स्तूप उपासना की शुरूआत हुई थी, यह भारत में निर्मित सबसे वृहद् स्तूप था, हालांकि अब इसके अवशेष ही बचे हैं, बुद्ध धम्म के विख्यात आचार्य बुद्धघोष का पता यहीं से मिलता हैं, आन्ध्र प्रदेश में अब तक 150 बौद्ध स्थलों की खुदाई हो चुकी हैं, प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर कहा जा सकता हैं कि बुद्ध धम्म यहां दूसरी सदी ईसा पूर्व से 14 वीं सदी तक अपने पुरे वैभव में मौजुद था व पूरे दक्षिण भारत में फैला।

अन्य स्थान –

कर्नाटक –	सनाती	कंगनाहाली	
गुजरात –	जूनागढ़		
हिमाचल प्रदेश –	धनकर बौद्ध मठ		
कश्मीर –	परिहास पुर		
अरुणाचल प्रदेश –	तक्तसांग मठ	गोरसम चोरटेन	दो द्रुल चोर्टन स्तूप
पंजाब –	संघोल		
गोवा –	गलेमगांव गुफा		
राजस्थान –	गविराट बौद्ध मठ		
तामिलनाडु –	कवेरीपुमपट्टीनम		

निष्कर्ष : कोविड–19 (कोरोना वायरस) वैश्विक महामारी से हमारा देश लड़ रहा है। यह एक ऐसा वैश्विक संकट है। जिससे हर वर्ग, हर देश को कीमत चुकानी पड़ रही है। इतिहास गवाह है जब–जब देश में संकट आया, महामारियाँ फैली तब–तब मानव जीवन में बड़ी सकारात्मक व नकारात्मक उथल–पुथल होती है। चेचक, फ्लैग, हैजा आदि महामारी फैली। यह ऐसी महामारियाँ हैं जो अपने साथ अनेक प्रश्नचिन्ह खड़ा करती है। कोरोना

महामारी जो एक छुआछूत है ऐसी विकट परिस्थितियों में आत्मसंयम? धैय, अनुशासन, संवेदनशील, परस्पर सहयोग एवं सदभाव, वसुधैव कुटुम्बकम की भावना विकसित करनी होगी, मनुष्य में यह विशेषता होनी चाहिए कि स्वयं जीकर दूसरे को भी जीने दो। प्राणी मात्र् में आत्मभावना, दया, क्षमा, सरलता आदि रखना ही धर्म है। मानव धर्म के सामान्यतः दस लक्षण बताए गए हैं – धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, अहिंसा, इन्द्रिय निरोध, धी (बुद्धि), विद्या सत्य व अक्रोध। इन सभी लक्षणों को जो पालन करता है सच्चे अर्थों में वह मानव है। वर्तमान में संकट की घड़ी से निबटने के लिए गौतम बुद्ध के चार आर्यसत्य, अस्टांगिकमार्ग, दसशील का अनुसरण करके अपनी व परिवार की रक्षा कर सकेंगे। साथ ही प्रतिहिंसा, क्रोध, आक्रोश, घृणा, आत्मपीड़ा आदि अवगुणों को भी तिलांजलि देकर हम एक सफल जीवन जीने की कला विकसित कर सकते हैं। देश व्यक्तियों से महान होता है 'The Country is Greater than the Men* महात्मा बुद्ध की शिक्षायें आचरण एवं विचार की शुद्धता पर केन्द्रित थी।

संदर्भ संकेत

1. डॉ. भीमराव अम्बेडकर के सामाजिक न्याय की अवधारणा – डॉ. ममता कुशवाहा
2. महामानव डॉ. भीमराव रामजी अम्बेडकर – डॉ. ज्ञानराज काशीनाथ गायकवाड़ राजवंश
3. प्राचीन भारत का इतिहास – शैलेन्द्र सेंगर
4. प्रबुद्ध भारत – अम्बेडकर बौद्ध दीक्षा विशेषांक
5. प्रबुद्ध भारत – अम्बेडकर महापरिनिर्वाण विशेषांक

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

चित्तवृत्तानां निरोधोपायाः

डॉ. पुष्पा यादव विद्यालंकार
एसो. प्रो. एवं अध्यक्षा संस्कृत विभाग
महिला महाविद्यालय पी. जी. किदवई नगर, कानपुर–11

महर्षि पतजंलि ने अपने ग्रन्थ में योग को 'चित्त' की वृत्तियों के निरोध के रूप में परिभाषित किया है–

'योगः चित्तवृत्तिनिरोधः'[1]

उन्होंने मानव के पूर्ण कल्याण तथा शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक शुद्धि के लिये अष्टांग योग मार्ग विस्तार से बताया है। उनके कथनानुसार–

योगांङ्गानुष्ठानाद शुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिरा विवेक ख्यातेः।।[2]

अर्थात यम–नियम इत्यादि अष्ट विध अंगों का आचरण करने से चित्त गत समस्त दोषों का, पंचविध क्लेशों का अभाव होने से विवेक ख्याति के उदयपर्यन्त ज्ञान का प्रकाश होता है।

तात्पर्य यह है कि योग के अंगों का सतत सेवन करने से चित्तवृत्तियों का निरोध हो जाता है, चित्त का विक्षेप नहीं होता। अविधा–अस्मिता आदि क्लेशों की निवृत्ति हो जाने से ज्ञान के आलोक की प्राप्ति होती है तथा आचरण से सभी अशुद्धियों या क्लोशों का नाश हो जाता है।

चित्तवृत्ति के निरोध के लिये पंतजलि योगसूत्र में आठ सोपानों का वर्णन किया गया है–

यम–नियम आसन–प्राणायम–प्रत्याहार–धारणा–ध्यान–समाधयोऽष्टा–वङ्.गानि।[3]

अर्थात् यम–नियम्–आसन–प्राणायाम–प्रत्याहार–धारणा–ध्यान–समाधि।

यम–यमुबन्धने धातु में अप प्रत्यय लगाने पर यम शब्द निष्पन्न होना है, जिसका अर्थ है शान्त करने वाला बांधने वाला या नियन्त्रित करने वाला। यम निषेधात्मक है, जीवन की बाधाओं को रोकने तथा निराकरण करने वाला है। यम– 'हिंसादिभ्यो निषिद्धकर्मभ्यो योगिनं यमयन्ति निवर्यन्तीति यमाः।'[4] अर्थात् हिंसा आदि हिसंक कर्मों से जो हटाने वाले हैं वे यम कहलाते है। अभिप्राय यह है कि जो अवांछनीय कार्यों से मुक्त करता है वह यम है। योग सूत्र में महर्षि पतंजलि ने कहा है– 'अहिंसा–सत्य–अस्तेय–ब्रह्मचर्य–अपरिग्रहा यमाः'[5] अर्थात अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह यम है। अहिंसा का अर्थ मन–वचन–कर्म से किसी को कष्ट या दुःख न देना है। महर्षि व्यास भाष्य में वर्णित है कि 'अहिंसा सर्वदा सर्वभूतानामभिद्रोहः'[6] अर्थात् सभी प्राणियों के प्रति किसी भी तरह का दुःख या कष्ट न पहुँचाना अहिंसा है। महर्षि पतजंलि ने अहिंसा के तीन भेद किये हैं– कृत, कारित एवं अनुमोदित। वेदों में मन, वाणी और शरीर तीनों से ही अहिंसा पालन के निर्देश मिलते है। अथर्ववेद में कहा गया है कि जो व्यक्ति कठोर भाषण द्वारा दूसरों को कष्ट पहुँचाते है या वाणी द्वारा द्रोह प्रकट करते हैं वेद में उन्हें 'द्रोहावाचः' कहा गया है। इसे हम वाचिक हिंसा भी कह सकते है। अहिंसा के फल के सम्बन्ध में महर्षि पतंजलि ने कहा है– अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौवैर त्यागः[7] अर्थात अहिंसा की प्रतिष्ठा होने पर उसके सामीप्य से वैर का त्याग हो जाता है। विज्ञान भिक्षु ने अहिंसा के महत्व का वर्णन करते हुये कहा गया है कि जिस प्रकार हाथी के पैर में अन्य जानवरों के पैर समा जाते है उसी प्रकार अहिंसा में सत्यादि सभी धर्मों अर्थों का समावेश हो जाता है। अतः अहिंसा से बढ़कर कोई धर्म नहीं, अहिंसा से बड़ा कोई सुख नहीं।

सत्य– सत्य का अर्थ मन–वचन और कर्म में एकरूपता होना है। सत्य का सम्बन्ध व्यक्ति के सरलीकरण से है। सत्य का तात्पर्य प्रामाणिकता के साथ जीवन जीना है। जैसा मन में संकल्प किया या किसी पदार्थ का

ज्ञान हुआ, उसे वैसे ही वाणी द्वारा बोलना, साथ ही उसके अनुसार व्यवहार करना सत्य तथा इसके विपरीत व्यवहार असत्य कहलाता है। व्यक्ति को अपनी वाणी का प्रयोग सजग होकर करना चाहिए, अपनी वृत्ति आन्तरिक रूप से शुद्ध होना चाहिये। सब प्राणियों के हित के लिये सत्य वाणी का प्रयोग करना अत्यन्त आवश्यक है। सत्य को स्पष्ट करते हुये महर्षि पतंजलि ने कहा है कि 'सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्'[8] अर्थात् सत्य की प्रतिष्ठा होने पर वाणी एवं विचारों से क्रियाफल दान की शक्ति उत्पन्न होती है। ऐसा व्यक्ति जो कुछ बोलता है, वह फलित होने लगता है। अतः स्पष्ट है कि सत्यवचन सामाजिक विश्वास एवं मैत्री का आधार है, जो मानव सत्य का पालन नहीं करता है, वह निश्चित रूप से महान सन्देह का पात्र हो जाता हैं 'सत्यमेव जयते नानृतं' अर्थात सत्य की जीत होती है, असत्य ही नहीं।

अस्तेय – चौर्य प्रवृत्ति का न होना। अस्तेय का अर्थ चोरी का अभाव है। दूसरे के धन का अपहरण करना ही स्तेय या चोरी है। योगसूत्र में सब प्रकार से एवं सभी आयामों से पूर्ण ईमानदारी को ही अस्तेय कहा गया है– 'अस्तेयं नाम मनोवाक्कायकर्मभिः पर द्रव्येषु निःस्पृहा।'[9] अर्थात् मन–वचन और कर्म के द्वारा दूसरों की वस्तुओं के विषय में निःस्पृह रहना ही ध्येय है। अस्तेय के फल की स्पष्ट करते हुये महर्षि पतंजलि ने कहा है कि 'अस्तेयप्रष्ठियां सर्वरत्नोपस्थनम्।'[10] अर्थात् अस्तेय के प्रतिष्ठित हो जाने पर साधक को समस्त रत्नों की प्राप्ति होती है। व्यास भाष्य में वर्णित है– सर्वदिक्स्थान्यस्योपतिष्ठन्ते रत्नानि[11] अर्थात् ईश्वर की कृपा से योगी या साधक को सब वस्तुएं प्राप्त हो जाती हैं, और साधक की कोई भी आवश्यकता रुकती नहीं है। ब्रह्मचर्य– ब्रह्मचर्य शब्द ब्रह्म और चर्य इन दो शब्दों के योग से निर्मित है। ब्रह्म का अर्थ है अन्तिम तथा चर्य का अर्थ है, आचरण। अभिप्राय यह है कि ऐसा आचरण जो ब्रह्मप्राप्ति के लिये आवश्यक हो। ब्रह्मचर्य के दो अर्थ हैं–

- चेतना को ब्रह्म के ज्ञान में स्थिर करना।
- सभी इन्द्रिय जनित सुखों में सयंम बरतना।

मुख्यतः उपस्थ इन्द्रिय के सयंम को ब्रह्मचर्य कहते है। व्यासभाष्य ने ब्रह्मचर्य को परिभाषित करते हुये कहा है कि ब्रह्मचर्यगुप्तेन्द्रियस्योपस्थस्य संयमः।[12] अर्थात् गुप्त इन्द्रिय जो उपस्थ है, उसके निग्रह को ब्रह्मचर्य कहा है। ब्रह्म के फल को महर्षि पतंजलि स्पष्ट करते हुये लिखा है– ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः।[13] अर्थात् ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा होने पर साधक में वीर्य लाभ एवं अपूर्व शक्ति का प्रादुर्भाव होता है, जिससे योगाभ्यासी को आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है। ब्रह्मचारी की देह तेजस्वी, कान्तिमान एवं स्फूर्तिमान होती है। आरोग्य के कारण मुख मण्डल पर सदैव प्रसन्नता एवं निर्भयता रहती है।

अपरिग्रह – जीवन–निर्वाह के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं का अपने लिये संग्रह न करना अपरिग्रह है। महर्षि पतंजलि ने अपरिग्रह को परिभाषित करते हुये कहा है– अपरिग्रहस्थैर्य जन्मकथंतासंबोधः।[14] अर्थात् अपरिग्रह के स्थिर होने पर जन्म–जन्मान्तर का ज्ञान प्राप्त होता है, इसका अर्थ यह है कि पूर्व जन्म में हम क्या थे, कैसे थे? इस जन्म की परिस्थितियां ऐसी क्यों हुई तथा हमारा भावी जन्म कब, कहाँ, कैसा होगा। इस प्रकार का ज्ञानोदय अपरिग्रह साधना द्वारा सम्भव होता है। महर्षि व्यास ने अपरिग्रह को स्पष्ट करते हुये कहा है कि विषाणामर्जन रक्षण क्षय सङ्ग हिंसदोष दर्शनाद स्वीकारणभ परिग्रहः।[15] अर्थात् विषयों के अर्जन में दुःख है, नाश होने में दुःख है कि सारा प्रयास व्यर्थ हो गया, सब नष्ट हो गया तथा साथ में रखने में दुःख, चिन्ता, तनाव तथा विषय भोग बिना हिंसा के सम्भव नहीं है। इन पांच दोषों को देखकर उनको अस्वीकार करना अपरिग्रह कहलाता है।

नियम– नियम का अर्थ रीति, प्रतिज्ञा, निश्चित, अनुशासन, व्रत रोक लगाना, सीमित करना एवं आत्मनिग्रह करना है। नियम ही मनुष्य के जीवन को अनुशासित करते है। महर्षि पतंजलि के अनुसार जिनके द्वारा स्वजीवन को पवित्र, स्वच्छ, निर्मल एवं नियमित किया जाता है उन्हें नियम कहते है। अभिप्राय यह है कि नियम मानव के व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित हैं, दूसरे व्यक्ति से सम्बन्धित नहीं सामान्यतः प्रत्येक व्यक्ति की अपनी एक सुनिश्चित

नियमितापूर्ण जीवन शैली होती है वही नियम कहलाता है।

साधक के लिये अन्तस् शोधन प्रक्रिया नियम है जिसे मुक्ति प्राप्ति का दूसरा साधन कहा गया है। यमों की भांति नियमों को भी पांच भागों में विभक्त किया गया है। महर्षि पतंजलि के अनुसार – शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वर प्राणिधानानि नियमाः।[16] अर्थात् शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय एवं ईश्वरप्रणिधान।

शौच – शौच का अर्थ है परिशुद्धता, पवित्रता आदि। ये दो प्रकार है–

ब्राह्म शौच– शरीर को स्नानादि से स्वच्छ रखना बाह्य शरीर की शुद्धि, स्वार्थ त्याग एवं सत्याचरण से व्यवहार की शुद्धि तथा विद्या एवं तप से पंचभूतों की शुद्धि बाह्य शुद्धि कहलाती है।

आन्तरिक शौच – राग–द्वेष–अहंकार–ईर्ष्या–काम–क्रोध आदि मलों को दूर करना आन्तरिक शौच है तथा मैत्री–करुणा–मुदिता इत्यादि द्वारा भी आन्तरिक शौच होता है। अर्थात् मैत्री करुणा–मुदिता–उपेक्षा द्वारा चित्त में रहने वाले राग–द्वेष–क्रोध–द्रोह–ईर्ष्या–असूया–मद–मत्सर–लोभ आदि मलों, कलुषों, अशुद्धियों का निराकरण ही आन्तरिक पवित्रता (शौच) हैं योग सूत्र में महर्षि पतंजलि ने कहा है– 'शौच स्वाङ्गजुगुप्सा पैरसंसर्गः'[17] अर्थात् शौच के अनुष्ठान से शरीर के अंगों में ग्लानि उत्पन्न होती है, अन्य व्यक्ति से संसर्ग का अभावा हो जाता है। व्यास भाष्य के अनुसार 'सत्वशुद्धिसौमन्स्यैकाग्रयेन्द्रियजयात्म दर्शनयोग्यत्वानि च'[18] अर्थात बाह्य शौच की सिद्धि होने पर सत्य शुद्धि, सौमनस्य, एकाग्रता इन्द्रियजय तथा आत्मदर्शन योग्यता आदि पांच फल प्राप्त होते है।

सन्तोष – सद्भावनापूर्वक पुरुषार्थ करने पर जो कुछ भी प्राप्त हो जाये, उसे पर्याप्त समझकर तृप्त रहना सन्तोष है। भाष्यकार व्यास ने सन्तोष की परिभाषा करते हुये लिखा है– 'संतोषः सन्निहितसाधनादधिकस्यानुपादित्सा'[19] अर्थात् जो भी निकट विद्यमान योग साधक पदार्थ से अधिक एवं अनुपयुक्त अन्य पदार्थ को ग्रहण करने की इच्छा का अभाव है, वह सन्तोष है। भोज के अनुसार – ''सन्तोष का अर्थ है, अपनी शक्ति के अनुसार पुरुषार्थ करना और जो कुछ भी प्राप्त हो उसी में प्रसन्न रहना।''[20] अभिप्राय यह है कि स्वकर्तव्य का पालन करते हुये, प्रबन्धा के ही अनुसार फल से सन्तुष्ट हो जाना, किसी भी प्रकार की तृष्णा का न होना ही संतोष है।

महर्षि पतंजलि की शौच की भांति सन्तोष के फल का वर्णन करते हुये कहा है कि 'सन्तोषादनुत्तमः सुखलाभः'[21] अर्थात् प्राप्त होने पर उत्तम सुख की प्राप्ति होती है।

तप – क्षुधा, पिपासा, शीत, ऊष्ण, अपमान आदि का सहर्ष सहन करना तथा मौन व्रत आदि करना तप के अन्तर्गत है। महर्षि दयानन्द के अनुसार जिस प्रकार सोना को अग्नि में तपाकर उसका मल दूर किया जाता है उसी प्रकार सद्गुणों एवं उत्तम आचरणों से अपने हृदय मन और आत्मा के मैल को दूर किया जाना तप है। व्यास भाष्य में तप को परिभाषित करते हुये कहा है – 'तपोद्वन्द्वसहनम्।'[22] अर्थात् तप का अर्थ है द्वन्द्व को सहन करना। अभिप्राय यह है कि उत्तम शुभ कार्यों की सिद्धि में जो भी बाधायें, प्रतिकूलतायें आये, उनको प्रसन्नता से सहन करते हुये सहजता–सरलता से जीवन के लक्ष्य को सिद्ध करना तप है। ये द्वन्द्व है– भूख, प्यास, सर्दी–गर्मी, सुख–दुःख, लाभ–हानि, जय–पराजय, सत्कार–तिरस्कार, मान–अपमान, स्मृति–निंदा आदि।

गीता में तप तीन प्रकार के कहे गये है– कायिक–जो शरीर से किया जायें, वाचिक जो वाणी से किया जाये और मानसिक जो मन से किया जाये। अतः योगियों और साधकों के लिये तप सर्वोत्तम प्राणायाम कहा गया है।

महर्षि पतंजलि ने तप के फल को बताते हुये कहा है– कायेन्द्रिय सिद्धिरशुद्धिक्षयात् तपसः।[23] अर्थात् तप के प्रभाव से जब अशुद्धि का नाश हो जाता है तब शरीर और इन्द्रिय को शुद्धि हो जाती है। तप के द्वारा पापों एवं क्लेशों का नाश होने पर शरीर में अणिमा–महिमा आदि सिद्ध हो जाती है।

स्वाध्याय : स्वध्याय का अर्थ है– आत्मचिन्तन करना। प्रणवपूर्वक, ओंकार के साथ मन्त्रों का जप, पाठ करना स्वाध्याय है। महर्षि व्यास ने स्वाध्याय के अर्थ को और स्पष्ट करते हुये लिखा है– 'स्वाध्यायः प्रणवदिपवित्राणां

जपो मोक्षशास्त्रध्यनं वा' ।[24] अर्थात् योगी, आध्यात्मिक, मोक्ष, शास्त्रों, वेदों, उपनिषद्, गीता, पुराण, दर्शन, आदि का अध्ययन और ओंकार का जप स्वाध्याय कहलाता है। विज्ञानभिक्षु ने स्वाध्याय को स्पष्ट करते हुये कहा है कि पापों को क्षीण करने वाले पवित्र ग्रन्थों का जप करना स्वाध्याय कहलाता है।[25] स्वाध्याय का जीवन निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान है। स्वाध्याय से मानव का जीवन, व्यवहार, सोच और स्वभाव बदलने लगता है। शुद्ध पवित्र, और सुखी जीवन जीने के लिये सत्संग और स्वाध्याय दोनों आधार स्तम्भ है। महर्षि पतंजलि ने स्वाध्याय के विषय में योगसूत्र में कहा है– 'स्वाध्यायादिष्टदेवता संप्रयोगः।'[26] अर्थात् स्वाध्याय से निष्ठा प्राप्त होने पर इष्टदेव के दर्शन हो जाते हैं। व्यासभाष्य में कहा गया है – देवाऋषयः सिद्धाश्च स्वाध्यायशीलस्य दर्शनं गच्छन्ति कार्यचास्य वर्त्तन्त इति।[27] अर्थात् साधक जिन देवताओं एवं ऋषियों–मुनियों के दर्शन करना चाहे, वे लोग इसे दर्शन देते है। योगी अर्थात् साधक जिस मनोकामना पूर्ति हेतु प्रार्थना करते हैं, वे उसे पूर्ण करते हैं–

ईश्वर प्राणिधान – ईश्वर प्राणिधान का अर्थ है– ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण, श्रद्धा। सभी कर्मों के फल की अभिलाषा की कामना न रखते हुये उस सर्वश्रेष्ठ गुरु ईश्वर में स्वयं को समर्पित करना ईश्वर प्राणिधान है। साध ाक की तप के द्वारा चित्त को नियन्त्रित रखने तथा स्वाध्याय द्वारा ईश्वर की महिमा को समझने के पश्चात् ईश्वर प्राणिधान में प्रवृत्ति होती है। महर्षि पतंजलि ने कहा है कि समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्' ।[28] अर्थात् समस्त कर्म ईश्वर को समर्पित करने से सम्प्रज्ञात समाधि की सिद्धि होती है। व्यासभाष्य के अनुसार – जिसने अपने समस्त कर्मों को ईश्वर को अर्पण कर दिया है। ऐसे योगी को समाधि की सिद्धि समाधि प्रज्ञा प्राप्त होती है जिसके द्वारा वह कालान्तर, देहान्तर एवं देशान्तर में विद्यमान सब अभीष्ट पदार्थों को वह यथार्थ रूप मे जानता है।[29]

अतः यम–नियम के पालन से साधक या योगी के मन के समस्त विकार दूर हो जाते हैं तथा साधक का मन जल के समान स्वच्छ हो जाता है।

आसन – आसन से तात्पर्य शरीर की वह स्थिति है जिसमें आप अपने शरीर और मन को शान्त–स्थिर एवं सुख से रख सके। महर्षि पतजंलि के अनुसार सुखपूर्वक बिना कष्ट के एक ही स्थिति में अधिक से अधिक समय तक बैठने की क्षमता को आसन कहते हैं – स्थिरसुखमासनम्।[30]

योगशास्त्र के अनुसार चौरासी लाख आसन है और ये सभी जीव–जन्तुओं के नाम पर आधारित है। वर्तमान में बत्तीस आसन ही प्रमुख है। आसनों का अभ्यास शारीरिक, मानसिक एवं अत्याधिक स्वास्थ्य लाभ एवं उपचार के लिये किया जाता है। आसनों को दो भागों में विभक्त किया गया है–

- गतिशील आसन
- स्थिर आसन
- गतिशील आसन – गतिशील आसन वे हैं जिसमें शरीर गति के साथ गतिशील रहता है।
- स्थिर आसन – वे आसन हैं जिसके अभ्यास में शरीर बहुत कम या बिना गति के कार्य करता है।

वर्तमान में प्रमुख रूप से उपयोग किये जाने वाले आसनों के नाम इस प्रकार है– स्वस्तिकासन, गोमुखासन, गोरक्षासन, अर्धमत्स्येन्द्रासन, योगमुद्रासन, शंखासन, सर्वांगासन, धनुरासन, भुजंगासन आदि।

प्राणायाम – प्राण के नियंत्रण से मन भी नियंत्रित होता है, क्योकि प्राण शरीर और मन के बीच की कड़ी है। प्राणायाम से चित्त की शुद्धि होती है और चित्त शुद्ध होने से अनेक तर्कों, जिज्ञासाओं का समाधान स्वयमेव हो जाता है। इन्द्रियों का स्वामी मन है और मन पर अंकुश प्राण का रहता है। इस प्रकार प्राणायाम वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से हम प्राणों का नियमन, नियन्त्रण विस्तार एवं शोधन करते है। चित्त शुद्ध होता है और चित्त शुद्ध होने पर ज्ञान प्रकट होता है जो योग साधना का प्रमुख उद्देश्य है। प्राणायाम मानवीय जीवन में विशेष महत्व रखता है। महर्षि पतंजलि ने प्राणायाम के मुख्यतः तीन भेद बताये है :–

बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकाल संख्याभि परिदृष्टो दीर्घ सूक्ष्मः।[31]

अर्थात् यह प्राणयाम बाह्यवृत्ति, आभ्यान्तर वृत्ति और स्तम्भवृत्ति वाला तीन प्रकार का होता है। देश, काल और संख्या द्वारा देखा जाता हुआ विशाल एवं हल्का होता है। उपरोक्त तथ्यों को निम्नबिंदुओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है–

बाह्यवृत्ति (रेचक) – प्राणवायु को नासिका द्वारा बाहर निकल कर बाहर ही जितने समय तक रोका जा सके, उतने समय तक रोके रखना बाह्यवृत्ति प्राणयाम है।

आभ्यन्तर वृत्ति (पूरक) – प्राणवायु को अन्दर खींचकर अर्थात श्वास लेकर जितने समय तक रूक सके, रोके रहना आभ्यन्तर वृत्ति है, इसका अपर नाम पूरक है।

स्तम्भ वृत्ति (कुम्भक) – श्वास–प्रश्वास दोनों की गतियों को जहाँ भी हो वही रोक देना स्तम्भवृत्ति प्राणायाम है।

महर्षि पतंजलि ने चौथे प्रकार का प्राणायाम भी बताया है–

बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः।[32]

अर्थात् अन्दर–बाहर के विषय को फेंकने वाला चतुर्थ प्राणायाम है। चतुर्थ प्राणायाम पूर्व वर्णित तीनों प्राणायाम से सर्वथा भिन्न है। सूत्रकार ने यहाँ यही प्रदर्शित करने के लिये 'चतुर्थपद' शब्द का प्रयोग किया है। चतुर्थ प्राणायाम में बाह्य एवं अंतः विषयों के चिन्तन का परित्याग कर देने से इस अवधि में प्राण बाहर निष्कासित हो रहे हो, अन्दर गमन कर रहे हो अथवा गतिशील हो या स्थिर हो, इस तरह की जानकारी को स्वतः परित्याग करके अपने मन को ईश्वर में विलीन कर देने से, देश, काल एवं संख्या के ज्ञान के अभाव में, स्वयमेव प्राणों की गति जिस किसी क्षेत्र में रुक जाती है, वही चतुर्थ प्राणायाम है।

प्राणायाम से मन पर नियंत्रण, मानसिक स्थिरता, शांति तथा एकाग्रता विकसित करने की पद्धति है। इसके अभ्यास से ध्यान के अभ्यास में आसानी होती है। शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक शक्ति का विकास करना संभव होता है। इसके साथ ही प्राणायाम का अभ्यास द्वारा शटचक्रों के जागरण में सुविधा होती है। प्राणायाम अनेक प्रकार के रोगों के निवारण में सहायक है। प्राणायाम के प्रमुख प्रकारों का वर्णन निम्नवत है – अनुलोम–विलोम, कपालभाति, भस्त्रिका, भ्रामरी, नाड़ीशोधन, प्रणव, केवली, कुंभक, दीर्घ, शीतकारी, शीतली, मूर्छा, सूर्यभेदन, चन्दभेदन आदि।

प्रत्याहार – श्रीराम आचार्य के अनुसार 'इन्द्रियों की बाह्य वृत्ति को सब ओर से हटाकर एकत्रित करके मन में लय करने के अभ्यास को प्रत्याहार कहते है। इन्द्रियों का विषयों से विलग होना ही प्रत्याहार है। कहने का अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार कछुआ अपने अंगों को समेट लेता है उसी प्रकार इन्द्रियों को इन घातक वासनाओं से विमुख कर अपनी आन्तरिकता की ओर मोड़ देने का प्रयास करना ही प्रत्याहार है।

काम, क्रोध, लोभ, मोह के अलावा व्यक्ति अन्य कई बाह्य कार्यों में संलग्न रहता है जो आज के आधुनिक समाज की उपज है जैसे शराब की लत, सिनेमा दर्शन और अत्यधिक शोर युक्त संगीत, अति भोजन, मांस–भक्षण के प्रति आसक्ति, महत्वकांक्षाओं की अन्धी दौड़ एवं अनेक ऐसी बातें जिससे पांचों इन्द्रियों पर अधिक भार पड़ता है और वह समयपूर्व ही निढाल हो रोगों की चपेट में आ जाता है।

आँख रूप को नाक गंध को, जीभ स्वाद को, कान शब्द को और त्वचा स्पर्श को भोगती है। भोगने की इस वृत्ति की जब अति हो जाती है तो इन सबसे मन में विकार उत्पन्न हो जाते हैं। ये भोग जैसे–जैसे वृद्धि को प्राप्त होते है तो इन्द्रियां सक्रिय होकर मन को विक्षिप्त करती है। मन व्याकुल होने लगता है जिससे शक्ति का क्षय होता है।

इन्द्रियों को भोगों से दूर करने तथा इन्द्रियों के रूख को भीतर की ओर मोड़कर स्थिर रखने के लिये प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। प्राणायाम के अभ्यास से इन्द्रियां स्थिर हो जाती है। सभी विषय समाप्त हो जाते है।

अतः प्राणायाम के अभ्यास से प्रतयाहार की स्थिति स्वयमेव बनने लगती है।

यम–नियम, आसन, प्राणायाम को साधने से प्रत्याहार स्वतः ही सध जाता है। इसके साधने से व्यक्ति की ताकत बढ़ती है, पवित्रता के कारण निखार आता है। किसी भी प्रकार के रोग शरीर और मन के पास नहीं फटकते है। आत्मविश्वास और विचार क्षमता बढ़ती है।

धारणा– धारण मन की एकाग्रता है। योग सूत्र में धारणा का अर्थ होता है मन को किसी एक बिन्दु पर लगाये रखना, एकाग्र करना सजगता बनाये रखने की क्षमता धारणा है। धारणा शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के धृ धातु से हुई है, जिसका अर्थ है आधार या नींव। इस प्रकार धारणा ध्यान की आधार शिला या नींव है। धारणा को परिभाषित करते हुये महर्षि पतंजलि ने लिखा है– देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।[33] अर्थात् देश विशेष में चित्त को स्थिर करना धारणा कहलाता है। स्पष्ट है महर्षि ने भी मन को एकाग्र करने की प्रक्रिया को धारणा कहा है। इस सूत्र में देश बन्ध पद का अभिप्राय यह है कि चित्तवृत्ति को शरीर के अन्दर किसी स्थान विशेष जैसे नाभिचक्र, हृदयकमल, नासिका का अग्रभाग, भृकुटि जिह्वाग्र में, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा आदि देवताओं में से किसी एक पर सभी विषयों से हटकर चित्तवृत्ति को स्थिर करने का नाम धारणा है।

धारणा से एकाग्रता बढ़ती है और एकाग्रता से अनेक कार्य सम्पन्न होते है क्योंकि हमारी मानसिक ऊर्जा एक बिन्दु पर स्थिर होती है। आध्यात्मिक और लौकिक दोनों प्रकार के कार्यों के लिये धारणा आवश्यक है। महर्षि पतंजलि धारणा की योग्यता को स्पष्ट करते हुये कहते है– धारणासु च योग्यताः मनसः।।[34] अर्थात् समस्त धारणाओं में मन की योग्यता होती है।

ध्यान – ध्यान शब्द की व्युप्पत्ति ध्यैयित्तायाम् धातु से हुई है। इसका अर्थ है चिन्तन करना। तात्पर्य यह है कि किसी विषय वस्तु पर चित्त की एकाग्रता ध्यान है। यह एक मानसिक अवस्था है जिसके द्वारा किसी वस्तु की स्थापना मन क्षेत्र में की जाती है। फलस्वरूप मानसिक शक्तियों का एक स्थान पर केन्द्रीकरण होने लगता है। यही ध्यान है। महर्षि पतंजलि ने कहा है– तत्र प्रत्यैकतानताध्यानम्।[35] अर्थात् पूर्वोक्त धारण वाली वस्तु पर तैल धारावत मन का एकाग्र हो जाना, ठहर जाना ही ध्यान है। ध्यान के विभिन्न प्रकार है। शांण्डिल्योपनिषद में दो प्रकार के ध्यान का वर्णन किया गया है– सगुण ध्यान और निर्गुण ध्यान।

सगुण ध्यान– सगुण इष्ट या मूर्ति का ध्यान है।

निर्गुण ध्यान– निर्गुण ध्यान से सिद्धियाँ प्राप्त होती है।

घेरण्ड संहिता में तीन प्रकार के ध्यान बताये गये हैं–

स्थूलंज्योस्तिथासूक्ष्मंध्यानस्य त्रिविधं विदुः।
स्थुलं मूर्तिमयं प्रोक्तं ज्योतिस्तेजोमयं सूक्ष्मं, बिंदुमयं ब्रह्म कुंडली परदेवता।।[36]

अर्थात् स्थूल ध्यान, ज्योति ध्यान और सूक्ष्म ध्यान के भेद से ध्यान तीन प्रकार का होता है।

स्थूल ध्यान– स्थूल ध्यान वह कहलाता है, जिसमें मूर्तिमय इष्टदेव का ध्यान हो।

ज्योतिर्मय ध्यान– ज्योतिर्मय ध्यान वह है जिसमें तेजोमय ज्योति रूप ब्रह्म का चिन्तन हो।

सूक्ष्म ध्यान – सूक्ष्म ध्यान उसे कहते हैं, जिसमें बिन्दुमय ब्रह्म कुण्डलिनी शक्ति का चिन्तन किया जाए।

चित्तवृत्तियों के निरोध में ध्यान का विशेष स्थान है। निजस्वरूप को मन में तत्वतः समझ लेना ही ध्यान है। ध्यान करते हुये चित्त ध्येयकार में परिणत हो जाता है, उसके अपने स्वरूप का अभाव हो जाता है। धारणा में केवल लक्ष्य निर्धारित होता है, जबकि ध्यान में ध्येय की प्राप्ति और उसकी प्रतीति होती है। ध्यान के माध्यम से क्लेशों से स्थूल वृत्तियों का नाश हो जाता है। ध्यान की महत्ता का वर्णन करते हुये गीता में कहा गया है–

यथा दीपो निवातस्थो नेंगते सोपमा स्मृता।

योगिनो यतचित्तस्य युंजतो योगासनः।।[37]

अर्थात् जिसप्रकार वायुरहित स्थान में स्थित दीपक की लौ चलायमान नहीं होती, वैसे ही उपमा परमात्मा के ध्यान में लगे हुये योगी के जीते हुये चित्त की कही गई है। घेरंड संहिता में कहा गया है कि ध्यानात्प्रत्यक्षं आत्मनः।[38] अर्थात् ध्यान द्वारा आत्म ज्ञान की प्राप्ति होती है। ध्यान एक विज्ञान है जो हमारे शारीरिक मानसिक, भावनात्मक, बौद्धिक और आध्यात्मिक विकास में हमारी सहायता कर हमें अपने सम्पूर्ण अस्तित्व का स्वामी बनाने में सहायक है। जब हम ध्यान का अभ्यास आरम्भ करते हैं तब हम अपने अस्तित्व और अपने व्यक्तित्व के प्रत्येक आयाम के विकास की प्रक्रिया में गतिशीलता लाते हैं। ध्यान के द्वारा सूक्ष्म मन के अनुभवों को स्पष्ट किया जाता है। जैसे–जैसे हम अपने भीतर सूक्ष्म, अनुभवों को जानने में सक्ष्म होते है, हम अर्न्तमुखी होते हैं यह आत्मसाक्षात्कार की अवस्था है। आत्मसाक्षात्कार का तात्पर्य यहां ईश्वर से सम्बन्ध नहीं अपितु स्वयं के अनुसंधान से है। ध्यान प्राचीन भारतीय ऋषियों–मुनियों, तत्ववेत्ताओं द्वारा प्रतिपादित ज्ञान–विज्ञान से युक्त एक विशिष्ट पद्धति है, इसके द्वारा मनुष्य का समग्र उत्थान, विकास, उत्कर्ष संभव है।

समाधि :– ध्यान की उच्च अवस्था को समाधि कहते हैं। जब साधक ध्येय वस्तु के ध्यान में पूर्णतया निमग्न हो जाता है, उसे अपने अस्तित्व का ज्ञान नहीं रहता है तो उस स्थिति को समाधि कहा जाता है। पतजंलि योगसूत्र से समाधि को आठवां अन्तिम स्थान प्राप्त है– तदेवार्थमात्रनिर्भासंस्वरूपशून्यमिव समाधि।[39] जब ध्यान में केवल ध येय मात्र ही प्रतीति होती है और चित्त का निज स्वरूप शुन्य सा हो जाता है। तब वह ध्यान ही समाधि हो जाता है। ध्यान करते–करते जब चित्त ध्येयाकार में परिणत हो जाता है। उसके अपने स्वरूप का अभाव सा हो जाता है, उसको ध्येय से भिन्न उपलब्धि नहीं होती, उस समय उस ध्यान का ही नाम समाधि है। समाधि योग की अवस्था में व्यक्ति का शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध की इच्छा नहीं रहती तथा उसे भूख–प्यास, शीतोष्ण, मान–अपमान तथा सुख–दुःख आदि की अनुभूति नहीं होती। समाधि के दो भेद है–

- सम्प्रज्ञात समाधि
- असम्प्रज्ञात समाधि

सम्प्रज्ञात समाधि– सम्प्रज्ञात समाधि का अर्थ है– सम यानी सम्यक् (संशयादि रहित्वेन) प्र–प्रर्कषेण, ज्ञात–साक्षात्कृत–सम्प्रज्ञात समाधि। जब ध्याता और ध्यान दोनों लुप्त हो जाते है तथा चित्तवृत्ति आत्माकार हो जाती है, ऐसी अवस्था का नाम सम्प्रज्ञात समाधि है। इसमें राजस, तामस वृत्तियों का निरोध हो जाने से केवल सात्विक वृत्ति का प्रकाश होता है तथा ध्येय विषय का पूर्ण साक्षात्कार उदित होता है। महर्षि पतंजलि समाधि के विषय में कहते हैं– 'ता एव सबीजः समाधि।'[41] अर्थात् सम्प्रज्ञात समाधि वह है जो वितर्क, विचार, आनन्द और अस्मिता के भाव से युक्त होती है, इसे सबीज समाधि कहते है। इस प्रकार सम्प्रज्ञात समाधि के चार भेद है–

वितर्कानुसार – पांचों स्थूल भूत और स्थूल इन्द्रियां इसके विषय है अर्थात् किसी स्थूल विषय या स्थूल इन्द्रिय पर चित्त को स्थिर करके उसके दिव्या–दिव्य स्वरूप का साक्षात्कार किया जाता है, इसमें संशय व विपर्यय नहीं रहता। इसके भी दो भेद होते है–

सवितर्क – अर्थ एवं ज्ञान की भावना से रहित।

निर्वितर्क – अर्थात् शब्द ज्ञान और अर्थ की भावना के रहित।

विचारानुगत – इसमें सूक्ष्म भूतों का, सूक्ष्म इन्द्रियों का तथा तन्मात्राओं का साक्षात्कार किया जाता है। इसके भी दो भेद है–

सविचार – दिशा, काल एवं धर्म की भावना से युक्त।

निर्विचार– दिशा, काल एवं धर्म की भावना से रहित।

आनन्दानुगत – इसमें 'अहमस्मि' इस अलंकार वृत्ति द्वारा आनन्द का अनुभव होता है। यथा– 'मैं सुखी हूँ' की भावना उत्पन्न होना आनन्द है।

अस्मितानुगत– अस्मिता अंहकार से भी सूक्ष्म होती है। ये चारों सम्प्रज्ञात समाधि कहलाती है। यही सबीज समाधि और सविकल्प समाधि है।

असम्प्रज्ञात समाधि – सम्प्रज्ञात समाधि की पराकाष्ठा में उत्पन्न विवेक ख्याति का उदय होता है। प्रकृति व पुरुष को अलग–अलग समझ लेना ही विवेक ख्याति है। विवेक ख्याति के बाद पर वैराग्य का उदय होता है, तभी सम्प्रज्ञात समाधि सिद्ध होती है। इसी असम्प्रज्ञात समाधि को निर्बीज या निर्विकल्प समाधि भी कहते है। इस समाधि में चित्त की कोई वृत्ति नहीं रहती है – योगश्चित्तवृत्ति निरोधः।[42] व्यास भाष्य में इसे ही योग समाधि कहा गया है। एकाग्र वृत्ति वाला ही समाधि की ओर गति कर सकता है। असम्प्रज्ञात समाधि के आगे कैवल्य की स्थिति प्राप्त होती है। इस समय पुरुष अपने शुद्ध रूप में स्थित होता है। जैसा कि महर्षि पतंजलि कहा है– तदाद्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।[43] अर्थात असम्प्रज्ञात समाधि में जीवात्मा की अपने तथा परमात्मा के स्वरूप में अवस्थिति होती है। इस अवस्था में समस्त दुःखों की निवृत्ति एवं नित्यानन्द की प्राप्ति होती है। योगसूत्र में सम्प्रज्ञात समाधि का लक्षण इस प्रकार किया गया है – विरामप्रत्याभ्यासपूर्वः संस्कारशेषेऽन्यः।[44] अर्थात् सभी वृत्तियों के निरोध का कारण संस्कार मात्र शेष को जब परवैराग्य की प्राप्ति हो जाती है उस समय स्वभाव से ही चित्त संसार के पदार्थों की ओर नहीं जाता, वह उनसे अपने आप अरत हो जाता है। उस उपरत अवस्था की प्रतीति का नाम ही विराम प्रत्यय है। इस उपरति प्रतीति का अभ्यास क्रम भी जब बन्द हो जाता है, उस समय चित्त की वृत्तियों का सर्वथा अभाव हो जाता है। केवल मात्र अन्तिम उपरत अवस्था के संस्कारों से युक्त चित्त रहता है, फिर निरोध संस्कारों में क्रम भी जब बन्द हो जाता है, उस समय चित्त की वृत्तियों का सर्वथा अभाव हो जाता है। केवल मात्र अन्तिम उपरत अवस्था में संस्कारों से युक्त चित्त रहता हैं, फिर निरोध संस्कारों में क्रम की समाप्ति होने से वह चित्त भी परमात्मा में लीन होता है। अतः इसी को असम्प्रज्ञात समाधि या निर्बीज समाधि कहते हैं इसी अवस्था को कैवल्यावस्था के नाम से भी जाना जाता है।

अन्ततः स्पष्ट हो जाता है कि महर्षि पतंजलि द्वारा प्रतिपादित अष्टांगयोग के द्वारा चित्त वृत्तियों का निरोध कर व्यक्ति समाधि की अवस्था को अभ्यास द्वारा प्राप्त कर सकता है।

संदर्भ संकेत

1. पतंजलि योगसूत्र – 1/2
2. पतंजलि योगसूत्र – 2/28
3. तदैव – 2/29
4. तदैव – 2/29
5. तदैव – 2/1
6. योग वार्तिकसूत्र– 2/30
7. पतंजलि योगसूत्र– 2/30
8. पतंजलि योगसूत्र परव्यास भाष्य – 30
9. तदैव – 35
10. तदेव – 36
11. शण्डिल्योपनिषद –1/1
12. पातंजलयोग सूत्र – 2/37
13. पातंजलयोगसूत्र पर व्यास भाष्य – 2/37

14. तदैव –30
15. तदैव – 38
16. तदैव – 30
17. पातंजलयोग सूत्र – 247
18. पातंजलयोग सूत्र – 2/40
19. तदैव – 2/41
20. पातंजलयोगसूत्र पर व्यास भाष्य – 2/32
21. पातंजलयोगसूत्र पर व्यास भाष्य – 42
22. पातंजलयोगसूत्र – 43
23. पातंजलयोगसूत्र पर व्यास भाष्य – 1
24. योवार्तिक, पृ. सं. –138
25. पातंजलयोगसूत्र –2/44
26. पातजंल योगसूत्र – 2/44
27. तदैव सूत्र सं. 2/44 पर व्यासभाष्य
28. तदैव सूत्र सं. 2/45
29. तदैव सूत्र सं. 2/45 पर व्यासभाष्य
30. तदैव सूत्र सं. 2/45 पर व्यासभाष्य
31. तदैव सूत्र सं. 2/46 पर व्यासभाष्य
32. पातजंल योगसूत्र 2/50
33. तदेव – 2/51
34. तदेव – 3/1
35. तदेव – 2/53
36. तदेव – 3/2
37. धेरण्ड संहिता – 6/11
38. गीता – 6/19
39. धेरण्ड संहिता – 1/11
40. योगसूत्र – 68
41. योगसूत्र – 1/46
42. योगसूत्र समाधिपाद – 1/2
43. योगसूत्र समाधिपाद – 1/3
44. योगसूत्र समाधिपाद– 69

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

मानवीय मूल्यों का उत्स संस्कृत वाङ्मय–एकानुशीलन

डॉ. अनिल कुमार सिन्हा
एसो. प्रो. संस्कृत विभाग
डी. ए–वी. कालेज, कानपुर

मानवीय मूल्यों पर विचार करने से पूर्व सर्वप्रथम यह आवश्यक हो जाता है कि 'मूल्य' के अर्थ पर विचार किया जाय। आपाततः पदार्थ का आन्तरिक गुण उसका मूल्य है जो जीवलोक में उसके महत्वएवं मान का कारण होता है। जिस पदार्थ के विनिमय के द्वारा जीवन के आवश्यक उपादानों को उपलब्ध करने की जितनी सम्भावना अधिक होती है, उसका उतना ही मूल्य होता है। यहाँ आवश्यकता और दुर्लभता मूल्य के निर्णायक तत्व हैं जिस पदार्थ की जीवन में आवश्यकता अधिक है और साथ ही उपलब्धि कठिन या यत्नसाध्य है उसका मूल्य बढ़ जाता है। इसके विपरीत सुलभ हो जाने पर आवश्यक से आवश्यक वस्तु का मूल्य घट जाता है अथवा आवश्यकता के अभाव में दुर्लभ से दुर्लभ वस्तु का मूल्य कम हो जाता है। कोई पदार्थ प्रमाता की इच्छा अथवा चेतना को जितना सन्तुष्ट करता है, उस पदार्थ का उतना ही मूल्य होता है। प्रसिद्ध दार्शनिक स्पिनोजा के अनुसार 'हम किसी वस्तु को इसलिए मूल्यवान मानते हैं कि हम उसकी कामना करते हैं – उसके लिए प्रयत्न करते हैं। मूल्य कहीं श्रेयस, तो कहीं प्रयोजनपरक हैं, कहीं उद्देश्य साधन की क्षमता का प्रतीक है तो कहीं आदर्शपरक। प्रकारान्तर से मूल्य से तात्पर्य वह है जो जीवन का लक्ष्य एवं प्राप्तव्य है तथा जिसे ग्रहण करने के लिए ही जीवन के समस्त क्रियाकलाप होते हैं।

यहाँ यह प्रश्न उत्पन्न हो सकता है कि प्रत्येक मनुष्य का लक्ष्य भिन्न–भिन्न होता है। 'मुण्डे–मुण्डे मतिर्भिन्ना', किन्तु जहाँ तक समग्र मानव जाति के लक्ष्य का प्रश्न है वह एक ही होता है। मनुष्य विवेकवान होने के कारण स्वभावतः महत्वाकांक्षी प्रकृति का होता है। प्रायः सभी मनुष्य अपने जीवन को सुखमय, शान्तिमय और कीर्तिमय बनाना चाहते हैं और यह सर्वथा सत्य है – 'कीर्तियस्य स जीवति'। अर्थात् उसी का जीवन धन्य है जिसकी समाज में प्रतिष्ठा एवं यश हो। अतः प्रायः सभी शिक्षित समाज उसके लिए यत्नशील रहता है। मानव समाज में मनुष्य तभी समादृत होगा जब वह आदर्श स्थापित करे।

मानवीय मूल्यों का सम्बन्ध मनुष्य के जीवन से है। प्रायः हम देखते हैं कि सृष्टि के समस्त व्यापार मनुष्य रूपी केन्द्र के चारों ओर घूमते दिखाई देते हैं। वेदव्यास का विश्वास लोक में कर्मवाद और देववाद से भी ऊपर अध्यात्म ब्रह्म या आत्मतत्व में है। उनकी स्पष्ट उद्घोषणा है – 'नहि मानुषाद् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित' अर्थात् इस संसार में मानव से श्रेष्ठ दूसरा कोई नहीं है। जिस मानव की इतनी महत्ता है और जो विश्व की परिधि का केन्द्र बिन्दु स्वीकार किया गया है वह यथार्थ में क्या है? इस पर गम्भीरता से विचार करने पर ज्ञात होता है कि वह मात्र स्थूल शरीर नहीं है अपितु उसमें एक दैवीय अंश विद्यमान है। भारतीय संस्कृति के अनुसार मनुष्य मर्त्य और अमृतत्व का संयोग है। शरीर मर्त्य और आत्मा अमृतत्व भाग है। मर्त्य और अमर्त्य दोनों भागों का जब तक एक सा विकास नहीं होगा तब तक मानव अतृप्त और अपूर्ण रहेगा। दोनों में समन्वय के बिना संतुलित मानव का आविर्भाव हो ही नहीं सकता। मनुष्य में मानवता का दैवीय गुण जागृत करना ही अध्यात्म है। यही मानवधर्म है।

हमारे ऋषियों, मनीषियों ने मानव जीवन के सर्वाङ्गीण उन्नयन हेतु जिस पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) की परिकल्पना की है प्रकारान्तर से उसी को हम मानवीय मूल्य कह सकते हैं। धर्म सबसे महत्त्वपूर्ण मानवीय मूल्य है। अब प्रश्न यह है कि धर्म क्या है? इसको लेकर समाज में बड़ी ऊहापोह की स्थिति है। अज्ञानी

लोग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र या हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाइयत को ही धर्म समझ बैठे हैं जो उनकी कोरी कल्पना है। धर्म के स्वरूप को प्रायः इस रूप में व्याख्यायित किया जाता है कि जिससे मानव का अभ्युदय अथवा कल्याण हो वही धर्म है। जैसा कि वैशेषिक दर्शन में कहा गया है – 'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।'[1] इसको इस रूप में भी प्रस्तुत किया जा सकता है – 'दम्भं विना यः क्रियते स धर्मः' अर्थात् मानव का निश्छल अथवा निष्कपट कार्य ही उसका धर्म है।

भारतीय मनीषा का सदैव से यह मत रहा है कि धर्म सिद्धान्त और विश्वास से कहीं अधिक मानव के आचरण में बसता है। हमारा जो भी विश्वास हो वह हमारे आचरण के द्वारा पूर्णरूपेण प्रमाणित होना चाहिए। जब तक सिद्धान्त के अनुसार आचरण नहीं होगा तब तक धर्म का उदय ही नहीं हो सकता है। धर्म आचरण से प्रकट होता है 'आचार प्रभवो धर्मः'। धारण करने से धर्म होता है मात्र कहने और व्याख्या करने से नहीं 'धारणाद् धर्मः धर्मो धारयति प्रजाः'। मनु महाराज ने धर्म के दस लक्षण बताये हैं –

'धृति क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधः दशकं धर्मलक्षणम्।।'[2]

जिस व्यक्ति में उपर्युक्त लक्षण होते हैं वही सच्चा धार्मिक व्यक्ति है।

मूल्य सदैव शाश्वत एवं अपरिवर्तनीय होते हैं। प्रत्येक संस्कृति शाश्वत मूल्यों पर ही आश्रित है। चाहे वह हिन्दू संस्कृति हो, बौद्ध, इस्लामिक या ईसाई। इसके बिना परिवार, समाज या राष्ट्र नाम की संस्थाओं में सामंजस्य नहीं आ सकता। भारतीय संस्कृति की नींव जीवन ;अथवा मानवीय मूल्यों यथा–सत्य, अहिंसा, दया, क्षमा, त्याग एवं परोपकार आदि की सुदृढ़ आधारशिला पर ही आधृत है। मानव का पूर्ण विकास पुरुषार्थ चतुष्टय के सेवन से होता है। मोक्ष परम पुरुषार्थ है जिसके एक बार प्राप्त होने पर भविष्य में कुछ भी प्राप्तव्य नहीं रहता। तीनों का यथोचित अर्थात् समान सेवन करना ही कल्याणकारी होता है। किसी एक या दो का सेवन गर्ह्य (निन्दनीय) है। आचार्य मनु का कथन है कि 'धर्मार्थकामाः सममेव सेव्या यो ह्येकसक्तः स नरो जघन्यः'। इन चार पुरुषार्थों में जो व्यक्ति एक को भी नहीं प्राप्त कर सकता उसका जीवन उसी प्रकार व्यर्थ है जैसे बकरी के गले का गलकम्बल

धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्यैकोऽपि न विद्यते
अजागलस्तनस्यैव तस्य जन्म निरर्थकम्'।[3]

प्रसंङ्गतः यहाँ पर ध्यातव्य है कि मानवीय मूल्यों के निर्धारण में संस्कृत वाङ्मय का क्या योगदान है? क्या यह अन्य भाषाओं की भाँति केवल एक भाषा है अथवा इसका कोई वैशिष्ट्य है? इस प्रसंग में यह कहना समीचीन होगा कि संस्कृत हम उस भाषा को कहते हैं जो परिष्कृत एवं परिमार्जित है। 'सम्यक् कृतं परिष्कृतं इति–संस्कृतं। जब भारत की संस्कृति का जन्म हुआ और मानव वाचाल हुआ। उसने भाषा सीखी । बोलने के यंत्र और तंत्र उसके पास आये। उसकी वाणी और प्रखर हुई। नाना क्षेत्रों में अनेक वाणियों का जन्म हुआ। नई–नई भाषाएँ निकलीं तब भाषा का जो परिमार्जित एवं परिष्कृत रूप सामने आया वह संस्कृत है। प्रकारान्तर से संस्कृत के विषय में यदि यह कहा जाय –

'आत्मा यथा शरीरेषु तथा भाषासु संस्कृतम्' तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। आचार्य दण्डी का भी अभिमत है –

'संस्कृत नाम दैवी वागन्वाख्याता महिर्षभिः
भाषासु मधुरा मुख्या दिव्या गीर्वाणभारती'।।

अर्थात् यह ऋषियों, महर्षियों के द्वारा अभिव्यक्त देव वाणी है तथा विश्व की सभी भाषाओं से अधिक मधुर, मुख्य एवं दिव्य है।

यह समग्र समाज को एक सूत्र में अनुस्यूत करने वाली भाषा है। इस भाषा के उन्नयन में ही समग्र विश्वजनीन

लोगों के व्यक्तित्व का विकास सम्भव है। यह अन्य भाषाओं की भाँति केवल भाषा ही नहीं है अपितु यह भारतीय ऋषियों, मनीषियों, तथा वैज्ञानिकों के द्वारा प्रस्तुत विशाल ज्ञान–राशि का प्रतिनिधित्व करने वाली या उसको सुरक्षित रखने वाली महान भाषा है। इसलिए अन्य भाषाओं की अपेक्षा इस भाषा का ज्ञान विशेष महत्त्व रखता है। संस्कृत वस्तुतः भारत का प्राण है। इसीलिए एक जनश्रुति बन गई है कि संस्कृत ही भारत है 'संस्कृतमेव हि भारतम्' संस्कृत के ज्ञान के बिना भारतीय संस्कृति और उसकी मूल भावना को समझना सम्भव नहीं है। एक विद्वान ने इसी आधार पर कहा है कि संस्कृति संस्कृत पर आश्रित है 'संस्कृतिः संस्कृताश्रिता'। संस्कृत की इस उदात्तता के कारण प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक शोपेनहावर ने कहा है कि उपनिषदों ने मुझे जीवन में शान्ति प्रदान किया है और वे ही मुझे मृत्यु पर शान्ति प्रदान करेंगे। गीता का अनुवाद संसार की सभी प्रमुख भाषाओं में हो चुका है। गीता का त्याग, समन्वय और निष्काम कर्म का संदेश सारे संसार में शिरोधार्य किया जाता है। भारत संसार को यदि अपना कुछ मौलिक योगदान देना चाहता है तो उसके पास ऋषियों तथा प्राचीन विचारकों द्वारा प्रदत्त संस्कृत ज्ञान की वह अमूल्य थाती है। इसी के आधार पर स्वामी विवेकानन्द ने अमरीकावासियों को भारतीय अध्यात्म के प्रति उन्मत्त बना दिया।

मानवीय मूल्यों की जितनी सुन्दर एवं विस्तृत व्याख्या संस्कृत वाङ्मय में प्राप्त होती है उतनी अन्यत्र कहीं नहीं। मानवता की रक्षा के लिए जो मूल्य निर्धारित हैं उन्हें ही मानवीय मूल्य कहा जाता है। मानव जीवन को सुखमय बनाने हेतु जिन तीन मूलभूत बिन्दुओं की अति आवश्यकता है वे हैं– धर्म, कर्त्तव्य और त्याग। यदि मनुष्य अपना धर्म, कर्त्तव्य और त्याग की भावना अपना ले तो सम्पूर्ण राष्ट्र का कायाकल्प किया जा सकता है। मनुष्य जन्म दुर्लभ है – 'दुर्लभं मनुष्यत्वम्'। मनुष्य योनि में मात्र जन्म लेने से मनुष्य–मनुष्य नहीं बनता, अपितु सतत् मननशील होने से मनुष्य बनता है। इसीलिए वेद का आदेश है 'मनुर्भव' अर्थात् मनुष्य बनो। वेद की शिक्षाएँ सार्वभौम हैं। उनकी शिक्षाएँ सम्पूर्णमानवमात्र के कल्याण के लिए हैं। वेदों के कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं यथा – संगच्छध्वं संवदध्वम्'[4] 'शुद्धाः पूता भवत, यज्ञियासः'[5] 'स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव'[6] 'मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे'[7]। वेद का सार है कि हे मानव ऐसे निवास कर कि सारा विश्व तेरे लिए एक घोंसला बन जाये 'यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्'। वेद का एक–एक शब्द विश्वबन्धुत्व एवं लोकमंगल की कामना करता है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि हम इस अमूल्य धरोहर की सार्वकालिक प्रासङ्गिकता का अर्थ खो चुके हैं। महर्षि व्यास के सम्पूर्ण ज्ञान का निर्गलितार्थ यह पंक्ति है – 'अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्। परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्'। वेदों के उक्त वचन वास्तव में जीवन में अपनाने योग्य हैं क्योंकि यह सर्वथा सत्य है –

'आदमी–आदमी जो बन जाए।
झगड़े सारे जहाँ के मिट जाएँ।।

जिन सिद्धान्तों एवं मान्यताओं के द्वारा भारत को जगद्गुरु की उपाधि से विभूषित किया गया था, वे सिद्धान्त एवं मान्यताएँ इसी भाषा में निहित हैं। विश्व में भारतवर्ष ही एक ऐसा राष्ट्र है जिसने मानव मूल्यों को सर्वत्र प्रचारित किया। मनुस्मृति में आचार्य मनु कहते हैं –

'एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं–स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।'[8]

अर्थात् हे विश्व के लोगों! यदि तुम्हें अपने चरित्र की शिक्षा लेनी है तो इस देश में उत्पन्न अग्रजन्मा ब्राह्मणों से प्राप्त करो। वेदों में चारित्रिक शुचिता पर बहुत बल दिया गया है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमायाति याति च
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु, हतो हतः'।[9]

नीतिशतकम् में भी कहा गया है – 'शीलं हि सर्वस्य नरस्य भूषणम्'। कठोपनिषद् में बालक नचिकेता पिता

को अपने वचन का पालन करते हुए यम के पास भेजने का आग्रह करता है। वह कहता है –

'अनुपश्य यथापूर्वे प्रतिपश्य तथापरे।
सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्य मिवाजायते पुनः।'[10]

उत्तररामचरितम में महाकवि भवभूति द्वारा भगवान राम के चारित्रिक वैशिष्ट्य को व्याख्यायित करते हुए कहा गया है –

'स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा।'[11]

इस प्रकार हम देखते हैं कि तत्कालीन समाज में जीवन अथवा मानवीय मूल्यों के प्रति कितनी अधिक जागरूकता थी।

वृहदारण्यक उपनिषद् आत्मसंयम ज्ञान एवं दान की शिक्षा देती है जिससे मनुष्य का वैयक्तिक एवं सामाजिक कल्याण सम्भव है। छान्दोग्य उपनिषद् में सत्य, अहिंसा, सरलता तथा तपस्या को आत्मोन्नति का साधन बताया गया है।

तैत्तिरीय उपनिषद में समावर्तन संस्कार के समय शिष्य को गुरु द्वारा दिया गया उपदेश कितना व्यावहारिक एवं कल्याणकारी है।

'सत्यं वद् धर्मचर, स्वाध्यायान्मा प्रमदः। सत्यान्न प्रमदितव्यम् धर्मान्न प्रमदितव्यम्। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्य देवोभव। अतिथि देवोभव। यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि। यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि। नो इतराणि'।। (शीक्षाध्याय, प्र. व.)

मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है कि सत्य पर अटल रहना जीवन का मुख्य ध्येय होना चाहिए –

'सत्येव जयते नानृतम यतोहि समूलो वा एष परिशुष्यति योऽनृतं वदति'

दूसरा मुख्य बिन्दु जो मानवता की रक्षा हेतु आवश्यक है वह है 'प्राणिमात्र में कर्त्तव्य भावना का उदय' समस्त वेद, पुराण मानव समाज को कर्त्तव्य पालन की शिक्षा देते हैं। अपने अभीष्ट की प्राप्ति के लिए कार्य करने की प्रेरणा तो विश्व के सभी धर्म दर्शनों में है किन्तु प्रयोजन सिद्ध न होने पर भी निस्पृह भाव से कर्म करते रहने की योजना भारतीय संस्कृति का ही वैशिष्ट्य है। गीता में कहा गया है –

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन
मा कर्मफलहेतुर्भूमाते सङ्गोस्त्वकर्मणि।।'[12]

ईशावास्योपनिषद् में मानव को भोग से विरत रहने का उपदेश नहीं दिया गया वरन् त्यागपूर्वक भोग करने की बात कही गई है।

ईशावास्यमिदं सर्व यत्किञ्च जगत्यां जगत्
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्'।।[13]

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्' का मूल मंत्र मानवीय मूल्यों के प्रसंग में सर्वाधिक उपादेय है।

यजुर्वेद में कर्तव्य कर्म की कामना की गई है –

'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः[14]

त्याग वह मूल बिन्दु है जो मानवीय मूल्यों के संस्थापन में संजीवनी का कार्य कर सकता है।

आज हमारे समक्ष सबसे बड़ी समस्या है मानवीय मूल्यों के रक्षा की। हम मानव तो हैं किन्तु मानवता के उन सभी गुणों यथा–धर्म, कर्म, सत्य, अहिंसा, दया, क्षमा, त्याग, परोपकार आदि मानवीय मूल्यों का ह्रास होता जा रहा है। इसका कारण यह है कि आज हम अपनी संस्कृति एवं उसके मूल में निहित संस्कृत भाषा से दूर होते चले जा

रहे हैं। जीवन अथवा मानवीय मूल्यों से रहित मनुष्य को पशुवत माना गया है। नीतिशतकम में यह श्लोक आया है।

'येषां न विद्या न तपो न दानं।
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।।'[15]

यह भाषा मानवीय मूल्यों की सत्प्रेरिका व संरक्षिका है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के संस्कृत के मूर्धन्य विद्वान प्रो. राजेन्द्र मिश्र जी की निम्नलिखित पंक्तियों के द्वारा संस्कृत के माहात्म्य को प्रदर्शित किया गया है।

'मातुः स्तन्यं बिना बालो यथा नो पुष्टिमर्हति।
समाजो भारतीयोऽयं अपुष्टः संस्कृतं बिना।।'[16]

जिसका आशय यह है कि जैसे माता के स्तनपान के बिना बालक का पोषण एवं संवर्द्धन सम्भव नहीं है। उसी प्रकार संस्कृत अर्थात् देववाणी के बिना भी भारतीय समाज का पोषण एवं संवर्द्धन सम्भव नहीं है।

संदर्भ संकेत

1. द्रष्टव्य–कणादसूत्र 1.1.2
2. द्रष्टव्य–मनुस्मृति 6.92
3. द्रष्टव्य–वही
4. द्रष्टव्य–ऋग्वेद 10.19 1.2
5. द्रष्टव्य– वही 10 18.2
6. द्रष्टव्य – वही, 5.51.15
7. द्रष्टव्य – यजुर्वेद 36.18
8. मनुस्मृति
9. महाभारत
10. कठोपनिषद
11. उत्तररामचरितम्
12. श्रीमद्भगवद्गीता 2.47
13. ईशावास्यापनिषद्, प्रथम श्लोक
14. ईशावास्यापनिषद्, द्वितीय श्लोक
15. नीतिशतकम् परिशिष्ट श्लोक संख्या 11
16. प्रो. राजेन्द्र मिश्र प्रणीत संस्कृतशतकम्, श्लोक सं. 1

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

अवधी भाषा में लोक संस्कृति के विविध सरोकार

डॉ. सुशीला सिंह
एसो0 प्रोफेसर – हिन्दी
भगवानदीन आर्यकन्या स्नातक महाविद्यालय, लखीमपुर–खीरी (उ0प्र0)

संस्कृति शब्द का 'कृ' धातु में सम उपसर्ग सुद्प्रत्यय से बना है। परम्परा प्राप्त सुन्दर जीवन पद्धति तथा सद्वृत्ति प्रेरित कर्म संस्कृति है। 'संस्कृति' जीवन की उन अवस्थाओं का नाम है जो मनुष्य में व्यवहार ज्ञान और विवेक पैदा करती है। ये मनुष्यों के व्यवहारों को निश्चित करती है उनकी संस्थाओं को संचालित करती है उनके साहित्य और उनकी भाषा को बनाती है। तथा उनके जीवन के आदर्श और सिद्धान्तों को प्रकाश देती है।[1]

संस्कृति सामाजिक मनुष्य के जीवन की सबसे बड़ी वास्तविकता है। संस्कृति ऐसी चीज नहीं है जिसकी रचना दस–बीस या सौ पचास वर्ष में की जा सके, अनेक शताब्दियों तक एक समाज के लोग जिस तरह खाते–पीते, रहते–सहते, पढ़ते–लिखते, सोंचते–समझते और राजकाज चलाते अथवा धर्म–कर्म करते हैं उन सभी कार्यों से उनकी संस्कृति उत्पन्न होती है। हम जो कुछ भी करते हैं, उसमें हमारी संस्कृति की झलक होती है, यहॉ तक की हमारे उठने–बैठने, पहनने–ओढ़ने, घूमने–फिरने, रोने–हँसने में भी हमारी संस्कृति की पहचान होती है।[2]

संस्कृति का स्वभाव है आदान–प्रदान। जो जाति केवल देना ही जानती है लेना नहीं उनकी संस्कृति का एक न एक दिन विनाश असम्भावी है। जिस प्रकार किसी तालाब का जल निकलता रहे, किन्तु जल प्रवेश करने के द्वार अवरूद्ध हों तो वह सूख जायेगा। उसी प्रकार जो संस्कृति दूसरी संस्कृतियों से ग्रहण करना नहीं जानती उसका विनाश शीघ्र होता है। भारतीय संस्कृति आर्यों की संस्कृति है जो वैदिक युग से प्रवहवान है जिसका लिखित रूप वेदों में अक्षुण्ण रूप से विद्यमान है। जिस प्रकार हिमालय से निकलने–वाली गंगा दीर्घकाल में अपना मार्ग परिवर्तित करती है पर वह अपने नाम रूप में वह गंगा ही रहती है उसी प्रकार आदि युग से अब तक परिवर्तन के साथ अनेक विदेशी जातियों ने भारत आगमन के प्रभाव से प्रभावित तथा जन जातियों के भाव से भावित संस्कृति के बाह्य रूप परिवर्तित होते रहते हैं पर उसका मूल जीवन की अतल गहराइयों में समाया हुआ है। हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक सम्पूर्ण मानव जीवन को एक सूत्र से पिरोने वाली भारतीय संस्कृति ही तो है। भाषा की विविधता भी सांस्कृतिक एकता को खंडित नहीं कर सकती है।

लोक संस्कृति बाह्याडम्बरों से दूर आधुनिक कृत्रिम सजावट से परे सीधी–साधी प्राकृतिक धारा के समान निरन्तर बहने वाली एक विशिष्ट प्रकार की संस्कृति है। लोक संस्कृति साहित्य की अक्षय संपत्ति है जिसके कारण कोई भी साहित्य उस देश की सांस्कृतिक गरिमा से जुड़ता है। लोक संस्कृति की निर्मल निर्झरणी में अवगाहन कर मात्र शरीर में ही नही वरन् आत्मा भी शीतल और पावन बन जाती है। पर्वों, उत्सवों, परम्पराओं, विश्वासों, व्यथा और उल्लास के अवसरों में लिपटी हुई ग्राम्य जीवन की सुगन्ध से ऊर्जा और चेतना प्रदान करती है अर्थात् जब साहित्य राज प्रसादों के विलास कक्ष में बन्द हो गया तब प्रणय का पावनकारी मुक्तिनाद ग्राम बहुटियों एवं ग्राम तरूणों के फलों से अमराइयों के बीच फूटा तब साहित्य की सरस्वती सहस्त्र होकर लाके कंठ पर तरंगित हुई, तब संस्कृति अत्यंत विश्वासों एवं प्रेरणाओं का आधार लेकर मीरा की भक्ति चरणों में घुंघरू बन गयी। तब वह लक्ष–लक्ष ग्राम निवासों की दीवारों पर शिल्प बनकर उभरी तब उसने सहस्त्र शिलाओं को जीवित अहिल्या का रूप किया। संगीत और हृदय की झनकार से मुखरित हो गये। जीवन अगणित तरंगों में बटा, अगणित नदियों में बजा और अगणित गीतों में फूटा यही सब समष्टिवत आत्म प्रकाश लोक संस्कृति है।[3]

किसी राष्ट्र के सांस्कृतिक वैभव का परिचायक वहॉ का लोक साहित्य होता है जिसमें उस राष्ट्र के संस्कार,

परम्परायें, जीवनादर्श, उत्सव, विषाद, नायक– नायिकाएँ ऋतु गीत विवाह, गीत भजन, राजनैतिक–सामाजिक, गीत विरह गीत इत्यादि को वाणी प्रदान की जाती है। यूँ तो प्रायः प्रत्येक देश में लोक साहित्य की एक सुदीर्घ परम्परा प्राप्त होती है परन्तु अधिकांश देशों का लोक साहित्य एकाध भाषाओं अथवा बोलियों तक सीमित रहता है। भारतवर्ष इस मामले में सौभाग्यशाली है क्योंकि इस देश की कोस–कोस पर बदले पानी, चार कोस पर बानी की परम्परा ने इसे बोलियाँ तथा भाषाओं का एक विस्तृत कोष प्रदान किया है जिसमें लोक साहित्य के अलबेले रंगरूप क्रीडा करते हुए देखे जा सकते है।[4]

भारतवर्ष गावों का देश है। यहाँ अधिकांश जनता गावों में निवास करती है। यहाँ की ग्रामीण जनता अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं की रक्षा बड़ी निष्ठा और लगन से करती आयी हैं। लोक साहित्य वह दर्पण है जिसमें अनचाहे ही संस्कृति का प्रतिबिम्ब पड़ता रहता है। किन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि एक लोक साहित्य भाग है और वह भी ऐसा भाग है जो अपने को बदलकर जीवन संदर्भ के साथ जोड़ते रहने के प्रयास में निरन्तर संलग्न है। लोक जीवन संस्कारों से आबद्ध है। जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त सोलह संस्कारों का वर्णन वेदों में प्राप्त होता है। इन संस्कारों को सम्पन्न करते समय मानव हृदय में अनेकानेक भाव तरंगे उद्वेलित होती रहती हैं और यह भाव मौखिक रूप से लोकगीत, लोकगाथा, लोककथा आदि के माध्यम से अभिव्यक्त होते रहते हैं।

प्रकृति भी मानव की सहचरी रही है विभिन्न ऋतुओं, पर्वों पर उठने वाले हृदयोंद्गारों को भी मनुष्य अपने गीतों तथा नृत्यों आदि के माध्यम से प्रकट करता चला आया है। प्राचीन काल से ही अवध क्षेत्र शूरवीर राजाओं की कार्यस्थली धन–धान्य से परिपूर्ण क्षेत्र रहा है। इस क्षेत्र में लोक जीवन की लम्बी परम्परा प्राप्त होती है। इस परम्परा का मूल लोक कथाओं, सहजभाव से प्रकट किये गये गीतों, मुहावरों, कहावतों, कथाओं और गाथाओं में छिपा हुआ है। आज भी अवध क्षेत्र में ग्रामीण जन अपूर्व श्रद्धा से युक्त होकर पारम्परिक मनःस्थितियों को स्वीकार करते हुये उल्लास पूर्ण जीवन का परिचय देते हैं। एक ओर उनका व्यक्तिगत जीवन एकान्तिक निष्ठा और विश्वास से सम्बद्ध है वहीं सामाजिक जीवन स्नान पर्व त्यौहार आदि से समृद्ध है। अवध क्षेत्र का यह लोक जीवन अपनी सामाजिक संस्कृति की सृष्टि करता है यही अवध की लोक संस्कृति है। लोक जीवन को मुख्यतः दो भागों में बाँट सकते हैं– पारिवारिक और सामाजिक जीवन। पारिवारिक जीवन पूजा–पाठ, व्रत, शकुन–अपशकुन रूढ़ियाँ, विश्वास और सामाजिक जीवन में तीज त्यौहार, उत्सव आदि के रूप में लोक संस्कृति की अभिव्यक्ति दृष्टि गोचर होती है। सांस्कृतिक तत्वों के आधार पर अवधी लोक जीवन पर प्रकाश डालना समीचीन होगा– आध्यात्मिकता, धार्मिकता, व्रतोपासना, सत्य और अहिंसा का आग्रह, अखण्डता की भावना, वर्ण व्यवस्था, कर्तव्य परायणता और नैतिकता, प्रकृति प्रेम और उत्सव प्रियता आदि।

आध्यात्मिकता हमारी संस्कृति की मेरूदण्ड है। प्रत्येक व्यक्ति जीवन की नश्वरता को अनुभव करता है। सभी जड़ चेतन पदार्थ नाशवान हैं सृष्टि के आरम्भ में ही भारतीय ऋषियों का ध्यान उस ओर गया अतः उन्होंने सत्–चित् आनन्द की खोज आरम्भ कर दी थी तथा भौतिक सुखों की निस्सारता सिद्ध कर दी थी। तब से आज तक मान व भौतिकता की प्राप्ति हेतु दौड़ लगाता रहा है पर ईश्वर जीव तथा प्रकृति से रहस्य के प्रति उसकी उत्कण्ठा कभी शान्त नहीं हो सकी। प्रकृति के मोहक आवरण के पीछे कुछ है जिसे पहचानने का प्रयास लोक मानस सदैव करता आया है। जनकवि श्री वंशीधर शुक्ल का कथन है कि ''मानव शरीर अनेक तत्वों से मिलकर बना है। किसी गुनी ने इसे माँ के गर्भ में बिना देखे ही बनाया है। उसी ने जीवन को बुद्धि, विद्या, बल, रूप, रंग सब प्रदान किया है।''[5]

लोक जीवन में तप का स्थान बहुत ऊँचा है वर्णाश्रम व्यवस्था में तपस्वी को अत्यधिक सम्मान प्राप्त है। मानव आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति हेतु तप की ओर प्रवत्त होते हैं किन्तु कभी–कभी जीवन की विषम परिस्थिति अथवा अभाव भी उसे तपस्या हेतु प्रेरित करते हुये देखा गया है। एक लोक गीत में राजा पुत्र के अभाव में वन में जाकर तपस्या में लीन हो जाता है और कोई योगी राजा से तपस्या का कारण पूछता है–

वन से निकरे एक जोगी तो राजा से पूछई से।

राजा कवन तोहरे जियरा संकट तौ मधुवन तपकरऊँ हो।।[6]

लोक मानस में अपने इष्ट देवता के प्रति गहन आस्था पाई जाती है। अवध के ग्रामीण जीवन में भी उसकी बहुलता है। अवध में मूर्तियों के माध्यम से साकर और सगुण की तथा भाव का विवेक के माध्यम से निराकार की पूजा अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित है जिसका स्वरूप लोक साहित्य के विभिन्न अवयवों में प्राप्त होता हैं। अनेक जातियों में जो भजन मिले है उनमें निराकार के प्रति आस्था मिलती है किन्तु, साकार देवी–देवताओं के प्रति गाए जाने वाले गीतों की भी कमी नहीं है।''[7]

अवध के ग्रामीणों के देवता, ब्रह्मा, विष्णु, महेश ही नहीं, ग्राम देवता भी होते हैं, तथा जिन देवताओं से ग्रामीणों का हित हुआ उन्हीं देवताओं की विशेष रूप से पूजा होने लगी। हनुमान जी संकटमोचक के रूप में अवध के गाँवों में प्रतिष्ठित हैं तो कुछ देवता बड़े–बड़े देवताओं के मन्दिरों के द्वारपाल हैं। गौर बाबा या गोरेश्वर शिव का ही रूप है प्रत्येक शुभकार्य के पहले गणेश वन्दना आवश्यक है तथा दुर्गा शक्ति का रूप मानी गई है।''[8]

सूर्य–चन्द्र पूजा – लोक जीवन में किसी भी कार्य के प्रारम्भ में सूर्य देव की प्रार्थना अवश्य की जाती है यथा – 'उवहु सुरूज मन उवहु सुरूज मन तुमहि बिन जग अंधियार।' कोई निर्धन, दहेज देने में असमर्थ पिता सूर्य देव से प्रार्थना करता है कि उसके घर कन्या का जन्म तभी हो जब घर में अपार सम्पत्ति हो– येन केन प्रकारेण कन्या का विवाह हो जाता है किन्तु उसकी गोद सूनी रहती है उसे ससुराल में उलाहने सुनने पड़ते हैं दुःखी कन्या सूर्य भगवान की उपासना करने को तत्पर होती है तो ननद भी उसकी सहायता करती हैं–

ये मोरी भाभी! अचरे मा लै तिल चुररी त सुरूज मनावउं।

किसी का पति छोड़कर परदेश चला जाता है तो किसी का पुत्र ब्याह के लिये ससुराल जाता है माँ सूर्य देव से कहती है यदि मेरा पुत्र सकुशल घर वापस आ जायेगा तो मैं आपको दूध की धार चढ़ाऊँगी। यही नहीं दैनिक उपासना में भी, सूर्य को प्रातः काल जल अर्ध्य के रूप में अर्पित कर प्रणाम करने की परम्परा प्रचलित है।

नदी पूजा – अवध क्षेत्र में सभी नदियाँ पवित्र मानी गयी है। गंगा, यमुना, शारदा, सरयू, आदि नदियों का सम्बन्ध ईश्वर के अवतारों से भी रहा है अवध क्षेत्र में गंगा के प्रति अटूट श्रद्धा विद्यमान है। सुख एवं दुख दोनों अवसरों पर स्त्रियां गंगा की शरण में जाती हैं मनौती के रूप में चूनर (पियरी) चढ़ाने का संकल्प करती हैं। कहीं किसी का पति परित्याग कर परदेश चला जाता है या संतान विहीन दम्पति अथवा किसी सुहागन के माँग का आभूषण (बेंदी) स्नान करते समय गंगा में गिर जाए। अथवा किसी को संसार से वैराग्य हो जाये, सभी अवसरों पर गंगा के प्रति अटूट विश्वास रखते हुये गंगा मइया के गीत गाये जाते हैं। गंगा स्नान से वैराग्य हो जाये। अथवा किसी को संसार वैराग्य हो जाये, सभी अवसरों पर गंगा के प्रति अटूट विश्वास रखते हुये गंगा मइया के गीत गाये जाते हैं। गंगा स्नान करने से तन–मन दोनों की शुद्धि होती हैं। ऐसा अवध निवासियों का अटूट विश्वास है सभी कामनाओं की पूर्ती गंगा मइया करती है क्योंकि गंगा लोक माता मानी गयी हैं।

नदी पूजन केवल हिन्दुओं की परम्परा ही नहीं रही है, बल्कि मुस्लिम बन्धु भी इसमें विश्वास रखते हैं एक गीत की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं–

'अल्लाह मोरे अइहे, मुहम्मद मोरे अइहै।

आगे गंगा थामली, जमुना हिलोरे लेंय।

बीचे मा खड़ी बीबी फातिमा उम्मद बलैया लेय।

वृक्ष पूजा – अवध क्षेत्र में लोगों का विश्वास है कि पृथ्वी में देवी देवता निवास करते हैं। जहाँ पीपल, नींम, आँवला, श्रीफल और पाकड़ होता है वहाँ देवता निवास करते है। पीपल में श्रीकृष्ण का वास है तो आँवले में साक्षात लक्ष्मी निवास करती है। नीम में दुर्गा देवी का वास होता है। शनि देव को प्रसन्न करने व ग्रह शान्ति हेतु पीपल

में प्रतिदिन या शनिवार को विशेष रूप से जल देना और पूजन की बहुप्रचलित परम्परा है। सोमवती अमावस्या को पीपल की विधिवत पूजा 108 परिक्रमा की जाती है। मृत आत्मा की तृप्ति के लिये पीपल पर एक पात्र भी लटकाया जाता है जिसे घंट कहते है इसका उद्देश्य मृतात्मा को पानी देना माना गया है। बरगद की पूजा सुहागन स्त्रियां जेष्ठ मास की अमावस्या को अपने पति के अखण्ड सौभाग्य के लिये करती हैं–

'जेठ मास बरसाइत होय। वट पूजन निकरी सब कोय।।'

तुलसी पूजन का महात्य पीपल से कम नहीं माना गया है तुलसी की पूजा अवध क्षेत्र में घर–घर की जाती है। कार्तिक मास में तुलसी का विवाह बड़े धूम–धाम से मनाया जाता है तथा देशी घी का दीपक जलाकर आरती की जाती है–

'तु ठाकुर कै सदा पियारी तुलसा आरति करहुँ तिहारी'

तुलसी की प्रशंसा में अनेक गीत गाये जाते हैं भक्त की हार्दिक इच्छा होती है कि उसके आँगन में तुलसी का वृक्ष अवश्य लग जाए–

'चंदन कपड़े तुलसी का बिरवा इ दोनो लगि जाए मोरे अंगना।'

अवध में कार्तिक मास में आँवला नौमी का त्योहार अत्यन्त धूम–धाम के साथ मनाया जाता है। इस वृक्ष के नीचे भोजन पकाकर खाने से अत्यन्त पुण्य लाभ प्राप्त होता है। नीम की पूजा चैत मास में जल चढ़ाकर की जाती है जब किसी को चेचक निकलती है तब भी नीम वृक्ष पूजन का विधान है। ऐसा लोक विश्वास है कि इन वृक्षों को काटने से पाप लगता है और देवता नारज हो जाते है।

पशु–पक्षी पूजा – अवध क्षेत्र में पशुओं में गाय, बैल, कुत्ता आदि की पूजा आज भी प्रचलित है। गाय को पशु नहीं देवता की कोटि में रखा गया है। गाय के दूध, दही, घी, गोबर, मूत्र को पंच गब्य (पाँच अमृत) होते हैं। पहली रोटी गाय को और पूजा होती है। पितृ पक्ष में कौए को भोजन निकाला जाता है। प्रतिदिन चिड़ियों कौवों को दाना चुगाना व पानी रखना पुण्य का काम माना जाता है। पशुओं के गले में मिट्टी की छोटी–छोटी घंटियां बांध दी जाती है। मछली पूजा व मछली को आटे की गोली खिलाना चीटियों को आटा या गुड़ डालना इस बात का सूचक है भारतीय जन जीवन में पशु पक्षियों एवं छोटे से छोटे जीव की रक्षा का भाव निहित है यही हमारे संस्कृति है। नागपंचमी को नागों सर्पों की पूजा दूध पिलाने की परम्परा आज भी चली आ रही है।

डीह बाबा या बरम बाबा की पूजा – गांवों की अशिक्षित एवं अन्धविश्वासी जनता ग्राम देवता के नाम से डीह या बरम बाबा की पूजा किसी निर्जन स्थान के वृक्षों की पीपल वट के रूप में की जाती है और किसी भी कार्य की निर्विध्न समाप्ति की याचना की जाती है।

मुइयां रानी की पूजा – ग्राम देवी का मुइयां देवी के नाम से पूजने लगते हैं तथा उनसे मनोकामना पूर्ति हेतु याचना करते है। मुइयां रानी के अलावा सती महारानी की लगुल जी के ब्रह्म देव की सिद्ध बाबा डोड़े डंडवहिया बाबा की पूजा के पश्चात् गौरी गणेश, नौ ग्रह की पूजा पंडित जी कराते हैं।

व्रत और त्यौहार – अवध क्षेत्र में अनेक व्रत प्रचलित हैं जैसे– नवरात्रि का व्रत नौ दिन तक रखकर देवी की पूजा की जाती है इसमें कन्यओं को देवी रूप में मानकर उनकी पूजा एवं उनको भोजन कराना तथा दान का विधान है। रामनवमी का व्रत राम जन्म के उपलक्ष में चैत मास की शुक्ल पक्ष की नवमी को किया जाता है।

ज्येष्ठ मास की अमास्वया को बड़ी अमावस्या का व्रत एवं पूजन सौभाग्यवती स्त्रियां अखण्ड सौभाग्य हेतु वट वृक्ष की पूजा करती हैं।

भादप्रद की शुक्ल पक्ष की तृतीया को स्त्रियां सौभाग्यवती स्त्रियां अखण्ड सौभाग्य हेतु वट वृक्ष की पूजा करती हैं।

भादप्रद की शुक्ल पक्ष की तृतीया को स्त्रियां सौभाग्य की इच्छा हेतु निर्जल व्रत रहकर शिव पार्वती की पूजा

करती हैं। रात्रि जागरण के गीत गाती है।

भादप्रद के कृष्ण पक्ष की छठ तिथि को पुत्रवती स्त्रियाँ पुत्र की मंगलकामना हेतु यह व्रत रखती हैं।

अनन्त चर्तुदशी का वृत चौदस को स्त्री–पुरूष दोनों के द्वारा रखा जाता है झांकी सजायी जाती है। रात्रि बारह बजे खीरे से कृष्ण जन्म करने के पश्चात् फलाहार किया जाता है। भजन कीर्तन गाये जाते है।

करवा चौथ का व्रत कार्तिक मास की शुक्ल पक्ष की चतुर्थी को स्त्रियां निर्जल व्रत रखकर मिट्टी के घड़े के आकार का करवा पूजती है। और रात्रि को चन्द्रमा को अर्ध्य देकर ही जलपान करती है।

कार्तिक मास की कृष्णपक्ष की अष्टमी को पुत्रवती माता पुत्र की मंगल कामना और पुत्र प्राप्ति की कामना दोनों ही भाव निहित है। इस अवसर पर कथा कही जाती है।

माघ मास की कृष्ण पक्ष चतुर्थी के दिन सकट चौथ का व्रत पुत्रवती माताएँ बच्चों के संकटों को दूर करने और दीर्धायु हेतु व्रत करती हैं उसमें श्री गणेश जी की पूजा में तिल, गुण से बकरा बनाकर उसे काटकर बलि देवता को चढ़ायी जाती है। लोक कथा कही जाती है।

फाल्गुन मास में त्रयोदशी को शिवरात्रि व्रत स्त्री और पुरूष दोनों रखते हैं यह व्रत निर्जल एवं फलाहारी दोनों तरीकों से रहा जाता है इसमें शिव जी की पूजा के साथ भजन कीर्तन करते हुये रात्रि जागरण किया जाता है।

सप्ताह के प्रतिदिन किसी न किसी देवता के प्रति श्रद्धा रखते हुये व्रत प्रचलित है, यथा– सोमवार– शंकर जी का, मंगलवार– हनुमान जी का, बुधवार– गणेश जी का, गुरूवार श्री विष्णु जी का, शुक्रवार संतीषी माता और शनिवार का व्रत शनि देवता तथा रविवार को सूर्य देवता को प्रसन्न करने के लिये एवं मनोकामना पूर्ति हेतु किया जाता है।

सत्य और अहिंसा का आग्रह – भारतीय संस्कृति का मूल सत्य और अहिंसा में निहित है। लोकगीतों एवं कथाओं में पशु पक्षियों के प्रति हिंसा का विरोध किया गया है। एक लोकगीत में हिरनी कौशिल्या रानी से कहती है कि जब सीता के पुत्र रत्न जन्म लेगा तब आप मुझे क्या पुरस्कार देंगी रानी कौशल्या कहती है–

'सौनवा माढ़वौ दूनौ सींग भोजन तिल चाउर हो।
हरिन भुगतौ अजोध्या कै राज्य, अभय वन विचरउ हो।।'

पातिवत्य धर्म की रक्षा – अवध क्षेत्र में अनेक लोकगीत, कथाएं एवं गाथाएं प्रचलित है जब स्त्रियाँ अपने पति की अनुपस्थित में अपने सतीत्व की रक्षा स्वयं करती हैं किसी नारी का पति धनोपार्जन हेतु परदेश गया है उसकी अनुपस्थिति में पर पुरुष उसे सोना, मोती आदि का लालच दिखाकर उसे अपने वश में करना चाहता है स्त्री कहती है तेरे सोने और मोती में आग लगे मैं सत् को नहीं त्याग सकती–

'अगि लगै सौनवा बजर परै मोतिया।
सत छाड़े कैसे पत रहिहै रे।।'

इसी प्रकार किसी पति वियुक्ता नारी का कथन है कि मेरे पति मुझे बैठने को मचिया कातने का चरखा दे गये है और दुहाई दे गये है कि मैं अपना पति व्रत धर्म न त्यागूँ।

समन्वय की भावना – अवध के गाँवों में सभी जातियों के लोग प्रेम पूर्वक निवास करते हुए वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुसार अपने–अपने दायित्व का निर्वाहन आज भी करते हुए देखे जाते है। यदि पण्डित पूजा–पाठ कराते है तो क्षत्रिय सभी ग्रामीणों की रखा का दायित्व संभालता है नाई बाल काटता है, धोबी कपड़ा धुलने का कार्य करता है, तो चमार जूते बनाने का व सिलाई का कार्य मेहतर गन्दगी साफ करने का कार्य बिना किसी हिचकिचाहट के करता है। ग्रामीण लोगों की आजीविका का साधन उनके यह कार्य ही हैं।

पारिवारिक जीवन में सामंजस्य – हमारे समाज में संयुक्त परिवार की प्रणाली विद्यमान है। आधुनिक सभ्यता के प्रभाव ने यद्यपि उन्हें विच्छिन्न किया है, किन्तु आज भी सास–ससुर, ननद–देवर, जेठ–जेठानी, सभी एक साथ

प्रेम पूर्वक निवास करते है और अपने–अपने दायित्वों का बखूबी स्वार्थ की भावना से रहित होकर निभाते है। पुत्र जन्म का उत्सव धूम–धाम से मनाया जाता है। सभी को यथोचित नेग (उपहार) दिये जाते हैं गीत गाये जाते है। बालक बड़ा होकर माता–पिता की आज्ञा का पालन करता है तथा वृद्धावस्था में उनकी सेवा सुश्रुषा करता हैं उन्हें तीर्थाटन कराता हैं। कन्या का विवाह माता–पिता तथा सामर्थ्य करते हैं उनके बाद बहन को सम्मान पूर्वक त्योहारों पर या फिर किसी उत्सव पर भाई नैहर लेकर आता है और सम्मान पूर्वक ससुराल विदा करता है। बहन भाई को रक्षा बन्धन पर राखी बांधती है और भईया दूज पर टीका करती हैं और उपहार प्राप्त करती है।

अवध क्षेत्र में राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुध्न का परस्पर भातृ प्रेम का आदर्श रहा है ज्येष्ठ भ्राता के विवाह में लघु भ्राता सहबोला रूप में भाई निरन्तर साथ में रहता है। ज्येष्ठ भ्राता के पुत्र जन्म पर भाभी देवर को नेग (उपहार) यथा सामर्थ्य देती है।

दाम्पत्य प्रेम के अनेक दृष्टान्त लोकगीतों, कथाओं और गाथाओं में प्राप्त होते हैं कोई स्त्री कुएं से जल भर रही है, राहगीर प्यासा है, पानी पीने की इच्छा से कुएं के निकट जाता है तो स्त्री की सुन्दरता पर मुग्ध होकर उसे हीरे मोती का लालच देकर उससे विवाह का प्रस्ताव रखता है किन्तु पतिव्रता स्त्री कहती है कि पानी पीना है तो पीकर अपने रास्ते जाओ। मेरे पति व्यापार हेतु विदेश गये हैं जब वे आएंगे तो मैं तुम्हें करवाऊँगी।

सास बहू के कटु एवं मधुर संबन्धों की झाँकी गीतों में बहुलता से प्राप्त होती है। कन्या सास के कठोर व्यवहार को स्मरण कर ससुराल नहीं जाना चाहती एक पिता पुत्री को समझाते हुये कहता है–

'राजा के राज रोज रे बेटी, परिजा के छठि मास।
सासु के राज दसै दिन बेटी, अखिर राज तुम्हार।।'

सास ननद बहू से घर का सारा काम कराती है जो बहू करने में अपने को असमर्थ पाती है यदि किसी को सन्तान नहीं होती है तो सास ननद व्यंग बाणों से उसका सीना छलनी कर देती हैं गीत में बहू की पीड़ा स्पष्ट देखने को मिलती है–

'सासु मोरी कई बझिनियां ननद ब्रज बासिन।'

कहीं–कहीं सास बहू के सम्बन्ध प्रेम पूर्वक दिखाई देते हैं। पुत्र बारह वर्ष पश्चात् लौटकर माँ से पत्नी के विषय में प्रश्न करता है तो माँ वधू की प्रशंसा भी करती है– तेरी पत्नी सुन्दर मुख वाली है तथा उसने दोनो कुलों का मान रखा है–

'तोरी धना अंगवा कै पातरि, मुहवा के सुन्दरि हो रामा
बेटा बड़े रे घरे के बिटियवा, दुनौ कुल राखै हो रामा।'[10]

ननद भौजाई को तिक्त सम्बन्ध गीतों की धरोहर हैं। ननद भौजाई में नोकझोंक, हास परिहास, ईर्ष्या–द्वेष सभी कुछ गीतों में प्राप्त होता है। भाई के बेटे के जन्म के समय ननद बधावा लेकर आती है, छट्ठी रखती है, काजल लगाती है और उपहार प्राप्त करती है। कभी कंगन की हठ तो कभी हीरे मोती की वस्तुओं की वस्त्रों आदि उपहार स्वरूप भाभी से करती है–

'ननद भौजी मिल केलि करैं बाबा के ओबरिबिच।
भौजी जो तोरे होरिला जनमिहै कंगना हम लेवैं।।'[11]

अवध क्षेत्र में सपत्नी के प्रति ईर्ष्या भाव की मार्मिक अभिव्यक्ति भी गीतों के माध्यम से स्पष्ट होती है। कोई बहन भाई के साथ मायके जाते हुये सपत्नी को डूबने का अभिशाप देती है।

लोक कल्याण की भावना – लोकगीतों एवं कथाओं में मानव आत्म लाभ के साथ–साथ लोक कल्याण की भी अप्रत्यक्ष परिकल्पना करता है। गीतों में कुंआ खोदवाने, आम की बगिया लगवाने, तालाब खुदवाने और मंदिर आदि के निर्माण को उद्देश्य लोक कल्याण की भावना ही है। ससुराल जाती हुई कन्या अपने पिता से नीम के

पेड़ को न काटने का अनुरोध करती है क्योंकि उस पर चिड़िया बसेरा लेती है।

'बाबा निमिया का पेड़ जिनिकाटेउ।
निमिया चिरइया बसेरा बलइया लेउँ बीरन।'[12]

लोक जीवन में पशुपक्षी के एकात्म प्रेम का सहज भाव परिलक्षित है जो सम्पूर्ण प्राणियों को एक सूत्र में बांध लेता है। गीतों में कोयल, तोता, चील, कौआ, भौरा और चर अचर मनुष्यों के सहचर के तरह कार्य करते हुये दिखाए गये हैं– एक गीत में भैरें से विवाह के न्यौता ले जाने की प्रार्थना है–

'अरे अरे काला भंवरा आंगन मोरे आवौ।
भंवरा आज मेरे काज विआह नेवत दै आवौ।'[13]

ग्रामीण संस्कृति में पंचों को परमेश्वर की संज्ञा प्रदान की गई है। ग्राम के मुखिया व अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति ही पंच होते है। किसी भी समस्या के समाधान में पंचों का निर्णय ही मान्य होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अवध क्षेत्र की सांस्कृतिक विशेषताएँ असंख्य है। गीतों में ही नहीं कहावतों, लोकोक्तियों, मुहावरों में भी संस्कृति सूक्ष्म रूप में समाहित है। सभी का उद्देश्य प्रेम पूर्वक, त्यागपूर्ण, संयमित और लोक कल्याण की भावना से युक्त जीवन यापन करना है लोक कथाओं का अन्तिम वाक्य ही होता है–

जैस हमार दिन बहुरै तैस सबके दिन बहुरै।

अन्त में मैं कहना चाहुँगी कि भाषा, साहित्य और संस्कृति की दृष्टि से यह परम आवश्यक होगा कि हम अवधी लोक साहित्य की प्रत्येक अंग की रक्षा हेतु कृत संकल्प हों, और उसके संरक्षण के साथ–साथ पुनः सृजन हेतु प्रयासरत हों, तभी हम अपनी संस्कृति को संरक्षित कर पायेंगे। हर क्षेत्र की अपनी एक अलग संस्कृति होती है जो दूसरी संस्कृतियों से भिन्नता रखते हुये एकता का भाव समेटे होती है। इन सभी क्षेत्रीय संस्कृतियों को मान देते हुये भारतीय संस्कृति को अक्षुण रखना होगा क्योंकि राष्ट्र निर्माण में सभी का अमूल्य योग दान रहा है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. कन्हैया लाल मणिकलाल मुंशी
2. संस्कृति के चार अध्याय, पृ. 653
3. सम्मेलन पत्रिका–लोक संस्कृति विशेषांक, पृ. 9
4. कृतिका (अन्तर्राष्ट्रिय शोध पत्रिका, जन.–दिस. 2015, पृ. 187–188), सम्पादक डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
5. ''बड़े तत्वन की जोरी देह, रचिसि कोई बिन देखा गुनी भरिसि सब रचि रचि गुन रस रंग बुद्धि विद्याबल हिम्मतिवन।''
6. अवध क्षेत्र में प्रचलित लोकगीत
7. अवधी लोकसाहित्य : सरोजनी रोहतगी, पृ0 सं. 459
8. अवधी लोकसाहित्य : सरोजनी रोहतगी, पृ. सं. 460
9. लखीमपुर के जनपदीय साहित्य सृजन में लोक तात्विक विमर्श : डॉ0 विमला शर्मा, पृ. 223
10. लखीमपुर के जनपदीय साहित्य सृजन में लोक तात्विक विमर्श : डॉ0 विमला शर्मा, पृ. 223
11. लखीमपुर के जनपदीय साहित्य सृजन में लोक तात्विक विमर्श : डॉ0 विमला शर्मा, पृ. 223
12. अवधी लोकसाहित्य : सरोजनी रोहतगी, पृ0 सं. 564
13. अवधी लोकसाहित्य : सरोजनी रोहतगी, पृ0 सं. 564

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

भारतीय संस्कृति के विकास में हिन्दी साहित्य की भूमिका

डॉ0 सुमन सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर – हिन्दी विभाग
दयानन्द गर्ल्स पी0जी0 कालेज, कानपुर

भारतीय संस्कृति विश्व की समस्त संस्कृतियों से प्राचीन एवं अक्षुण संस्कृति है। संस्कृति वह इकाई है जिसमें ज्ञान, विज्ञान, कला, नैतिकता, रीति रिवाज एवं समाज के सदस्य के रूप में मनुष्य के द्वारा अर्जित अन्य सभी योग्यताएँ शामिल है। भारतीय संस्कृति सनातन संस्कृति है अर्थात्– नित्य, निरन्तर, शाश्वत एवं स्थायी। वैदिक काल से लेकर अद्यावधि तक यह निरन्तर प्रवाहित धारा की भॉति कभी न रूकने वाली परम्परा रही है। ''संस्कृति उन समस्त आदर्शों की समाष्टि है जो मनुष्य को मानवतावादी दृष्टि प्रदान करती है। यह मानवतावादी दृष्टि समस्त जीवन व्यापारों और सामाजिक सम्बन्धों में व्याप्त रहती है।''[1] भारतीय संस्कृति देश, जाति, धर्म, सम्प्रदाय आदि सभी सीमाओं से परे है। भारत ही नहीं वरन् सम्पूर्ण विश्व के मानव जाति में एकता, प्रेम एवं साहचर्य का भाव भरती रही है। इसकी विरारटा का प्रमाण इसी उद्घोष के साथ प्रत्यक्ष होता है –

''सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।।''

जिस प्रकार सूर्य अपने प्रकाश से निरन्तर विश्व को प्रकाशित करता रहता है, उसी प्रकार भारतीय संस्कृति निरन्तर एवं शाश्वत प्रकाश पुंज के रूप में विश्व मानव समाज की अज्ञानरूपी अंधकार के ज्ञानरूपी प्रकाश फैलाने का कार्य करती रहती है।

''आत्म संस्कृतिर्वाव शिल्पानि, एतैर्य जमान आत्मानं संस्कृतेः''[2]

अर्थात् संस्कृति वह शक्ति है जो इस उन्नयन की साधना को सिद्ध करती है। भारत सदियों से 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के आधार पर अपनी संस्कृति का विकास करता रहा है। भारतीय संस्कृति के मूल तत्व सहयोग, सहिष्णुता, समन्वयवादिता, नारी का महत्व, सेवा, उदारता, त्याग आदि मानवीय गुण प्रमुख मौलिक तत्व हैं। भारतीय संस्कृति में नैतिक मूल्यों को सदाश्रेष्ठ माना गया है। इसीलिए आचार परमोंधर्म, अहिंसा श्रेष्ठतम धर्म, नहि सत्यात् परोधर्म, परोपकार पुण्याय के आदर्श स्थापित हुए। डॉ0 मंगलदेव शास्त्र के शब्दों में कहे तो ''सामाजिक सम्बन्धों में मानवता की दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करने वाले उन आदर्शों की समष्टि को ही संस्कृति समझना चाहिए।''[3]

साहित्य संस्कृति का वाहक है, साहित्य में संस्कृति की मनोरम झांकी अपने पूर्व वैभव के साथ चित्रित होती है। किसी भी देश या जाति का साहित्य उसके विचारों और भावनाओं के इतिहास का परिचय देता है। मनुष्य के मानसिक विकास के विविध आयामों में संस्कृति अपना विस्तृत रूप धारण करती है, जिसे प्रकाश में लाने का कार्य साहित्य करता है। डॉ0 सरनाम सिंह शर्मा ने ''साहित्य को संस्कृति का इतिहास कहकर उसे 'अतीत का प्रतिबिम्ब' तथा अनागत का प्रदीप माना है।''[4] साहित्य जन–मानस की अन्तबाह्य प्रतिछबियों का प्रकाशन करने वाला ज्ञान राशि का संचित कोष है। इसीलिए वह किसी देश या काल की संस्कृति के ज्ञान का सर्वाधिक प्रमाणिक आधार होता है। साहित्य में संस्कृति के जातीय मनोभाव सुरक्षित तो रहते ही है, इसके अतिरिक्त साहित्य मनुष्य को उस रागात्मक ऐश्वर्य की स्थिति तक पहुँचाता है और मानव को मानव के रूप में जीने की शिक्षा देता है।

''जड़ चेतन जग जीव जगत सकल राममय जानि।
बंदऊ सब के पद कमल सदा जोरि जुग पानि।।[5]

अर्थात् भारत में न केवल मानव मात्र में बल्कि चेतन, अचेतन, पदार्थ में भी बन्धुत्व के दर्शन होते है। जड़ चेतन सभी आत्मरूप हैं। आत्मा का तादात्म्य ईश्वर से है।

सनातन संस्कृति के संवाहक भारतीय ऋषि व महर्षियों ने मानव–मानव में कभी भी भेद नहीं माना तथा सम्पूर्ण मानव को एक परिवार का अंग मानकर सभी में एक दूसरे के प्रति दया, प्रेम, सहयोग, सहिष्णुता आदि भावनाओं को बलवती बनाने के लिए उदार चरित्र के निर्माण के लिए बतलाते है कि दूसरों का कल्याण करना ही परम धर्म है –

''परहित सरिस धरम नहीं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमई।।''

भारतीय संस्कृति में अहिंसा को सर्वोपरि धर्म माना गया है। इसके मूल में जीवन की व्यापकता का सिद्धान्त है। कबीर दास जी ने दया, प्रेम, विश्वबन्धुत्व की भावना पर विशेष जोर दिया और क्षमा, परोपकार, अहिंसा आदि नैतिक गुणों का ही उपदेश दिया –

''जहाँ दया तहाँ धर्म है, जहाँ लोभ तहाँ पाप।
जहाँ क्रोध तहाँ काल, जहाँ क्षमा तहाँ आप।।''

भारत की अनेकता और विविधता मौलिक तथा सनातन है। यहॉ मानव–प्रेम, विश्व बन्धुत्व और विश्व की एकता के मंत्र कण–कण में व्याप्त हैं। भारत विविध नाम, रूप, राग, द्वेष, स्वार्थ आदि के होते हुए भी तत्वतः एक है। मानवीय मूल्यों में प्रेम एक ऐसा तत्व है जो व्यष्टि व समष्टि दोनों का एक सूत्र में पिरोकर रखता है। सभी सुखी रहें जैसी भावना हिन्दी कविता में दर्शनीय है –

''औरों को हँसते देखो मनु, हँसों और सुख पाओ।
अपने सुख को विस्तृत कर लो, सबको सुखी बनाओ।

इन दिनों मनुष्य जीवन और इसके मूल्यों का अंकन करना भूल गया है। इसीलिए जीवन मूल्यों की उपेक्षा से उपजने वाली समस्याओं से पूरा संसार त्रस्त है। हिंसा, तनाव, लूटमार, आतंकवाद आदि ऐसी समस्यायें है जो सुलझने के स्थान पर उलझती ही जा रही है। चारों और मूल्यों का क्षरण हो रहा है। चाहे वह सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक या शैक्षिक क्षेत्र हो। राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त गिरते हुए भारतीय मूल्यों से क्षुब्ध और भविष्य के प्रति चिंतित हो कह उठते हैं –

''आओ विचारे आज मिलकर ये समस्यायें सभी,
हम क्या थे और क्या हो गये।''

भारतीय संस्कृति की समन्वयवादी प्रकृति के विकास की दृष्टि से हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल महत्वपूर्ण रहा है। साहित्य के इतिहास में इस काल का नामकरण भले ही भक्तिकाल किया गया हो, परन्तु भारतीय संस्कृति के मुख्य तत्व, इसकी उदात्त भावनाओं को अभिव्यक्ति इस काल की रचनाओं में हुई है। दादू, कबीर, रैदास, जायसी, नानक, देव, सूर, तुलसी आदि कवियों की रचनाओं में जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा स्थापित की गई। ''सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति सार्वभौम सत्य के आधार पर प्रतिष्ठित धार्मिक भावना और दार्शनिक चिन्तनधारा के माध्यम से हुई है। कला, शिल्प, साहित्य और संगीत इन्हीं के अनुशांगिक उपलब्धियॉ है। इन सबका क्षेत्र विशाल मानव–समाज है जिसकी प्रेरणा और प्रसाद से मनुष्य जीवन यापन करता है।''[6] हिन्दी काव्य–भाषा और साहित्य परम्परा की जीवंतता का सबसे बड़ा प्रमाण है कि भक्तिकाल का जन्म हिन्दू–मुस्लिम संघर्ष के साथ होता है और साहित्य इस संघर्ष का अनेक रूपों में चित्रण करती है पर जिसकी रचना में साम्प्रदायिक दृष्टि का संस्पर्श भी नहीं होने पाता। ''साहित्य को यह प्रकृति वास्तव में भारतीय संस्कृति की प्रकति है। जिस प्रकार विभिन्न जनगण के परस्पर मेल से भारतीय संस्कृति से समन्वयवादी चरित्र का विकास हुआ और इसमें विभिन्न जनगण की संस्कृति के तत्व अभिन्न रूप से घुल–मिलकर एक हो गये, उसी प्रकार हिन्दी साहित्य आरम्भ से ही विभिन्न

धर्मों और समाज के सभी वर्गों के लोगों के जीवन और रचना की भाषा रही।''[7]

भक्तिकाल रचनात्मकता की दृष्टि से ही नहीं, भारतीय सांस्कृतिक एकता की दृष्टि से भी अन्यतम है। कबीर, जायसी, सूरदास एवं तुलसीदास ने अपने साहित्य में प्रेम की स्थापना की। जाति–पाँति, छुआछूत एवं अमानवीयता के खिलाफ यह एक विराट उद्घोष था। जिसमें कवियों ने जनता से जुड़कर सामाजिक पवित्रता की स्थापना की।

''जाति–पाँति पूछै नही कोई,
हरि को भजै तो हरि को होई।।''

भक्ति आन्दोलन के सन्दर्भ में शिवकुमार मिश्र ने लिखा है – ''एक समग्र राष्ट्र के रूप में भारतवर्ष की खरी तथा सही पहचान कराने वाली अब तक दो ही ऐसी घटनाएँ हुई है, जिन्हें प्रायः सभी ने महान तथा युगान्तकारी घटनाओं के रूप में रेखांकित किया है। इनमें से एक घटना का संबंध मध्यकाल से है तथा दूसरी का आधुनिक काल से।''[8]

युग और व्यवस्थाओं के बदलने के साथ हमारी साहित्यिक और सांस्कृतिक अभिरूचियाँ, हमारी मान्यताएँ, हमारे विचार–विश्वास बदलते हैं और उनके अनुरूप साहित्य संस्कृति का भी रूप सामने आता है जो उनकी गतिशीलता उनकी जीवंतता और उनकी शक्ति का परिचायक है, किन्तु ऐसा नहीं है कि उनके भीतर जो स्थायी तत्व हैं वे समाप्त हो जाते है। भारतीय संस्कृति की चेतना और हिन्दी साहित्य का अंत संबंध रीतिकाल में अवश्य क्षीण दिखता है तो इसका तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ है। उत्तरदायित्व विहीन, विलासिता के वातावरण में उपजी श्रृंगार भावना नारी देह में सिमट गई थी। जैसे सब ओर से चोट खाकर किसी ओर रास्ता न पाकर बुद्धि घर के भीतर सिमट गई हो, जैसे जीवन के व्यापक क्षेत्रों में मनोविशेष का अवसर न मिलने के कारण मनोरंजन का एकमात्र साधन नारी देह की शोभाओं और चेष्टाओं के अवलोकन कीर्तन तक ही सीमाबद्ध हो गया हो।'' फिर भी इस काल में चिंतामणि, भूषण, मतिराम और बिहारी जैसे समर्थ कवि हुए जिन्होंने संस्कृति चेतना को बनाये रखा।

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल निश्चित रूप से सांस्कृतिक विमर्श का काल है। भारतेन्दु युग में ही राष्ट्रीयता, सामाजिक चेतना के प्रसार में हिन्दी साहित्य के सम्पूर्ण परिवेश को प्रभावित किया। द्विवेदी युग, छायावाद और छायावादोत्तर– काल में साहित्य और संस्कृति का जनोन्मुखी रूप विकसित हुआ। औपनिवेशिक दासता, स्वाधीनता संग्राम के इस दौर में अयोध्या सिंह उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश, माखन लाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा, महादेवी, निराला, सुमित्रानन्दन पंत, प्रसाद, दिनकर, मुक्तिबोध, धूमिल, नागार्जुन, प्रेमचन्द, जैनेन्द्र आदि कवियों कथाकारों ने भारतीय संस्कृति और साहित्य को मनुष्यता के उदात्त मूल्यों से आबद्ध किया। राष्ट्रीय–सांस्कृतिक काव्य धारा के कवियों की राष्ट्रीयता को उभारने वाली रचनाओं ने नया वातारण निर्मित किया। हिन्दी कविता एक ऐसे सुन्दर समाज की कल्पना करती है जहाँ सभी समान हों सबके हृदय एक हों।

''पुलकित तन हो मुकुलित मन हो, सरस और सक्षम जीवन हो
अन्न वस्त्र दा/सुखदा, शुभदा, प्राणों से भी बढ़कर प्यारी हिम किरीटिनी
जलधि पैंजनी/बने स्वर्ग ये भूमि प्यारी, अधर–अधर पर अमिताभ ताज हो
सतत अभ्युदित जन–जन प्रमुदित, सर्व सुखद सुन्दर समाज हो।।''

हिन्दी गद्य को प्रेमचन्द जैसे अनेक रचनाकारों ने समाज के विभिन्न वर्गों और नारी मनः स्थिति से जोड़ा और समृद्ध किया। आजादी के पश्चात् इससे मोहभंग की स्थिति पतनशील राजनीति और सामाजिक दुरावस्था को नागार्जुन, मुक्ति बोध, धूमिल श्री लाल शुक्ल आदि कवि–कथाकारों ने चित्रित किया। वर्तमान में भी रचनाकार अपनी रचनाओं से भारतीय संस्कृति को आत्मसात कर अपनी रचनाओं से हिन्दी साहित्य को समृद्ध कर रहे है। भारतीय संस्कृति को सामासिक प्रवृत्ति मनुष्यता के प्रति नकारात्मक मूल्यों के प्रतिरोध की रही है और यही प्रवृत्ति हिन्दी

साहित्य के सभी विधाओं में व्याप्त है। साहित्य सार्वकालिक और सार्वभौमिक है। इसमें भारतीय शाश्वत मूल्यों का संयोजन है, जो मानव जाति को दया, ममता, सौहार्द, विश्वबन्धुत्व जैसे अनेक मूल्यों से जोड़ने का विकल्प है। हिन्दी साहित्य एक तरफ जहाँ वर्तमान स्थिति व परिवेश को प्रस्तुत कर उसके दुष्परिणामों का दिग्दर्शन कराता है, वहीं दूसरी तरफ मानवीय प्रेम के उदात्त आदर्श को प्रस्तुत कर नयी मानवता की रचना करने की शिक्षा देता है।

''कोटि मनुजों में भरो ध्वनि सभ्यता को,
कि कोटि कण्ठों में बनी ध्वनि मनुष्यता की।''

सन्दर्भ संकेत

1. साहित्य शिक्षा और संस्कृति – आचार्य नरेन्द्र देव –पृ0/33
2. ऐतरेय ब्राह्मण – 6–5–1
3. भारतीय संस्कृति का विकास (वैदिक धारा) डा0 मंगल देव शास्त्री–पृ0–4
4. साहित्य, सिद्धान्त और समीक्षा – डॉ0 सरनाम सिंह शर्मा–पृ0–19
5. रामचरित मानव– तुलसीदास – 1/7
6. हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ0 नागेन्द्र – पृ0 – 79
7. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास – डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी–पृ0 43–44
8. भक्ति आन्दोलन और भक्ति काव्य– शिवकुमार मिश्र, पृ0–15

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

भोजपुरी लोकगीतों में पर्यावरणीय चेतना एवं संरक्षण

डॉ0 ज्योति सिन्हा
पूर्व फेलो, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, राष्ट्रपति निवास, शिमला (हिमाचल प्रदेश)

भारतीय सभ्यता व संस्कृति के विभिन्न अंगों में लोक साहित्य के अन्तर्गत लोकगीतों का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। जब से मानव समाज है तभी से लोक गीतों का भी इतिहास है। हमारे लोकगीत, लोक जीवन के समस्त तत्वों को उभारने वाले सीधे–सादे, सच्ची भावनाओं को प्रगट करने वाले गीत है। इन लोकगीतों में भारतीय संस्कृति की आधारशिला, लोक–संस्कृति प्रतिबिम्बित होती है। समाज की यथार्थ दशा का चित्रण इनमें होता है तथा इनके माध्यम से अपनी परम्परा, लोक संस्कृति को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाकर, लोक संस्कृति को संरक्षित करना इसका परम् उद्देश्य है। यदि किसी देश की सभ्यता–संस्कृति का अध्ययन करना हो तो वहाँ के लोकगीतों का अध्ययन करना चाहिए। किसी भी देश–समाज का लोकगीत उस स्थान के लोगों के हृदय का उद्गार है। इन लोकगीतो में भारत की आत्मा मुखर होकर बोलती है। लोकगीतों के भीतर छुपी भावों की व्यापकता एवं सौंदर्य इनके स्वतंत्र अस्तित्व को स्वयं परिलक्षित करती है।

हमारा देश ऋतुओं, नदियों, वनों, पर्वतों तथा विभिन्न जाति, भाषा, धर्मों का देश है। अपनी–अपनी भाषा में प्रत्येक, जन–समुदाय ने अपने भावों को अभिव्यक्त किया है। जीवन के सभी क्षेत्रों का वर्णन उनके लोकगीतों में अभिव्यक्त है।

लोकगीतों में भोजपुरी लोकगीतों का स्थान सर्वोपरि है। बिहार प्रदेश में बोली जाने वाली मुख्य रूप से कुछ भाषायें भोजपुरी, मैथिली एवं मगही में, भोजपुरी सर्वाधिक प्रचलित भाषा है जो सम्पूर्ण बिहार के साथ–साथ पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा देश के बाहर भी बोली जाती हैं। भोजपुरी साहित्य, भाषा, बोली पर अनेक विद्वानों ने अध्ययन किया है। जिनमें ग्रियर्सन, पं0 राम नरेश त्रिपाठी, डा0 उदय नारायण तिवारी, राहुल सांस्कृत्यायन, डा0 भोलानाथ तिवारी, हजारी प्रसाद द्विवेदी, रास बिहारी पाण्डेय, श्री कृष्ण दास इत्यादि मुख्य हैं।

'भोजपुरी' नामकरण के सन्दर्भ में अनेक मत हैं परन्तु स्पष्ट रूप से इसका सम्बन्ध बिहार प्रान्त के बक्सर जिले में स्थित 'भोजपुर' नामक गाँव से है। 'नयका भोजपुर' तथा 'पुरनका भोजपुर' के नाम से दो गाँव आज भी स्थित हैं। विद्वानों की मान्यता है कि भारत वर्ष ग्राम–गीतों की सम्पत्ति में संसार के अन्य देशों से सबसे अधिक धनवान है और भारत के अन्य प्रान्तों की अपेक्षा 'भोजपुर' प्रान्त की उर्वरा भूमि इस दृष्टि से सबसे अधिक समृद्धशालिनी है। इस भाषा में लोकगीतों का अनन्त भण्डार है।

भोजपुरी लोकगीतों की प्राचीनता, भाव–सम्पन्नता एवं मधुरता बरबस ही ध्यान आकृष्ट करती हैं। विषयों की विविधता, भाव–सौन्दर्य, रस–परिपाक तथा समाज के अन्तर्मन की पुकार इन लोकगीतों की निजी विशेषता है। इन गीतों में लोक जीवन अपनी समस्त सुन्दरता और शक्ति के साथ मुखर हो उठता है। इन गीतों से जन मानस का सीधा संस्कारगत सम्बन्ध होता है। प्रत्येक उत्सव, पर्व, तीज–त्यौहार के अवसर पर समयानुकूल गीत गाकर अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त कर मनोविनोद करना दिनचर्या का अभिन्न अंग है।

इन लोकगीतों का महत्व समझने के लिये इन गीतों के पीछे छिपे सामाजिक–आर्थिक तत्वों को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखने की आवश्यकता है। इन लोकगीतों में कहीं काले बादलों का स्वागत है, कहीं खेती की हरियाली पर खुशी व्यक्त की गयी है, कहीं सामाजिक जीवन की रूढ़िवादिता एवं कुरीतियों पर प्रहार है, कहीं पारिवारिक जीवन की विषमता एवं त्रासदी का दुःख है, कहीं धरती माता, सूरज देव तथा चन्दा मामा की बातें हैं, कहीं

नदी–पोखरों वनों, पर्वतों की पूजा तो कहीं देवी–देवताओं की मनौतियां भी मानी गयी हैं। प्रकृति की पूजा के साथ इस देश को हरा भरा तथा समृद्धिपूर्ण रहने की कामना भी की गयी है।

विविधता से परिपूर्ण हमारा देश भौगोलिक दृष्टिकोण से अतुल खनिज सम्पदा से समृद्ध है तथा प्रकृति के असीमित रहस्यों से भरा हुआ है। इन जीवन रक्षक तत्त्वों को बचाकर ही अपने जीवन को समुन्नत एवं सुखी बनाया जा सकता है। इसके लिये आवश्यक है कि हमारा पर्यावरण शुद्ध, प्रदूषण रहित हो। भारतीय संस्कृति, हिन्दू संस्कृति का ही पर्याय है जिसमें सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक जीवन कला–कौशल, ज्ञान–विज्ञान, पूजा–उपासना सभी का समावेश होता है। भारतीय संस्कृति में पर्यावरण चेतना व पवित्रता पर विशेष ध्यान दिया गया है। हिन्दू संस्कृति सत्य–अहिंसा, तप–सेवा के साथ–साथ पर्यावरण संरक्षण तथा विश्व–बन्धुत्व की भावना में विश्वास रखती है।

शाब्दिक अर्थ यदि ग्रहण किया जाये तो पर्यावरण का अर्थ, परि + आवरण = पर्यावरण अर्थात् चारों ओर छाया आवरण। हमारे चारों ओर का वातावरण जिसमें हम सांस लेते हैं, जिनमें वायु, जल, धरती, आकाश, ध्वनी इत्यादि से युक्त पूरा प्राकृतिक वातावरण आ जाता है। प्रकृति में वायु, जल, मिट्टी, पेड़–पौधों, जीव–जन्तुओं एवं मानव में एक सन्तुलन विद्यमान है जो हमारे अस्तित्व का आधार है। ''क्षिति–जल–पावक–गगन–समीरा''– इन पंचभूत तत्वों से हमारा शरीर निर्मित है और इसके संतुलन से ही हमारा जीवन संतुलित रह सकता है। सुखमय जीवन जीने के लिये स्वस्थ शरीर का होना अति आवश्यक है और हम स्वस्थ तभी रह सकते हैं जबकि हमारे आस–पास का वातावरण और परिवेश स्वस्थप्रद एवं लाभप्रद हो। स्वस्थ जीवन व्यतीत करने के लिये आवश्यक है कि हम पर्यावरण से अपना संतुलन स्थापित करें।

भारतीय संस्कृति के मान्यतानुसार – ''माता भूमौ पुत्रोऽहं पृथिव्याः'' अर्थात् पृथ्वी मेरी माता है, मैं उसका पुत्र हूँ। स्पष्ट है कि पृथ्वी के प्रति हमारा भी वहीं कर्त्तव्य है जो माता के प्रति पुत्र का होता है।

प्राचीन काल से ही लोगों को पर्यावरण के प्रति जागरूक रहने एवं सचेत रहने के लिये सदैव प्रेरित किया जाता रहा है। हमारे ऋषि मुनियों ने पर्यावरणीय चेतना को जन–जीवन से जोड़ दिया था। उनका दृष्टिकोण गहन एवं व्यापक था। वेदों में भी ऐसे कई सुझाव दिये गये हैं कि किस प्रकार से हम सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण के लिये प्रकृति के सहयोग से काम करें। ये सुझाव आज भी उतने ही सार्थक हैं जितने तब थे। पूर्व में लोगों को ज्ञान देने एवं जागरूकता उत्पन्न करने में कथा–प्रणाली का महत्वपूर्ण स्थान था। बाद में यह स्थान विशेष रूप से लोकगीतों ने ले लिया। भोजपुरी लोक गीतों में प्रकृति के इन सभी जीवन रक्षक तत्वों के संरक्षण का विशद् चित्रण मिलता है। वन–सम्पदा यथा वृक्ष, पेड़–पौधे वन्य जीवों, पशु'–पक्षियों के प्रति आस्था इन लोक–गीतों में स्पष्ट दिखता है जो पर्यावरणीय चेतना का प्रतीक है, यह सशक्त माध्यम एवं उदाहरण है तथा उन्हें संरक्षित एवं सुरक्षित रखने का पुरजोर प्रयास है।

सर्वप्रथम वृक्ष अथवा पेड़ पौधों की चर्चा करेंगे। पेड़–पौधों एवं वनस्पतियों में भी प्राण एवं संवेदनशीलता होती है, इस तथ्य से सभी परीचित हैं। जहाँ तक भारतीय संस्कृति का प्रश्न है वेदों–पुराणों में भी इनका विवरण पाया जाता है। एक खेतिहर किसान इन पेड़–पौधों की भाषा को अच्छी तरह समझता है। बदलते मौसम की खबर, पौधे, परिन्दे उसे पहले ही दे देते हैं। वह इस तथ्य से बखूबी परीचित होता है कि पेड़–पौधों में भी जीव का वास होता है।

आज भी धार्मिक अनुष्ठान व व्रत–पर्वों के अवसर पर विशेष रूप से अनेक वृक्षों की पूजा का विधान जन–जीवन में पाया जाता है। महिलायें विभिन्न अवसरों पर पीपल, वट, बरगद, नीम, तुलसी, केला इत्यादि की पूजा पूरे मनोयोग से करती हैं। अनेक लोकगीतों में इनके संरक्षण को ध्यान में रखते हुए उनकी महत्ता को जनमानस से परीचित कराया गया है। भोजपुरी लोकगीतों में इनका चित्रण इनकी महत्ता को स्वतः चित्रित करता है।

किसी भी मांगलिक अवसर पर गाने की शुरूआत देवी गीतों से ही होती है। इन देवी गीतों में आम, नीम,

अनार, इमली, बेल, नीम, पीपल इत्यादि का वर्णन अधिकांशतः पाया जाता है–

निबिया की डार मईया मोरी
झूलेली झुलुवआ हो कि झूलि–झूलि ना
मईया मोरी गावेली गीतिया
हो कि झूलि–झूलि ना .....

तथा नेबुला की गाछ वही निकली भवानी,
इमली की गाछ वही निकली भवानी
हाय नेबुला फूलवो न लागे महारानी।
अमवा की डाल वही निकली भवानी,
हाय अमवा बौरौ न लागे महारानी।

तथा देवी के दुवरे हरियर पीपर, लाल धजा फहराये भाया,
मईया के दुआरे अन्हरा पुकारे, देहु नयन घरि जाये भाया,

इसी तरह तुलसी वृक्ष का भी महात्म्य इन गीतों में वर्णित है। मान्यता रही है कि आंगन में तुलसी का पौधा लगाने से वहाँ का वातावरण शुद्ध एवं प्रदूषण रहित रहता है। आज भी घर–घर में तुलसी का पौधा प्रायः पाया जाता है।

छठी माता के एक गीत में तुलसी का वर्णन इस प्रकार है–

नदिया के तीरे–तीरे तुलसी मांग बाती
पुजेली गउरा देई जनम ऐहिवाती
ए छठी माता, करब राउर सेवा ऐ छठी माता

तथा कहवाँ लगईबो हम तुलसी, कहाँ रे बेल पत्र न हो
बहिनी कहंवा लगईबो गहबर गेन्दवा न हो।

हरे बांसों की महत्ता को भी इन लोकगीतों में चित्रित किया गया है। माड़ो छवाने के एक गीत में–

हरियर बंसवा कटईह मोरे बाबा,
हो रस भीजेला माड़ो।
छाईला हरियर बांस हो,
रस भींजेला माड़ो।

कटहल के पेड़ व उसकी डाल का वर्णन कजरी गीतों में प्रायः मिलता है–

हमरा ही बाबा के कटहर के गछिया से
कटहर में लागल बा झुलुअवा, हाय रे सांवरिया,
चार सखी अगवा हो, चार सखी पछवां से
चार सखी पटरा के बिचवा, हाय रे सांवरिया

चन्दन की लकड़ी का वर्णन भी पाया जाता है। 'नहावन' के एक गीत में बड़ा ही सुन्दर वर्णन है–

चन्दन काठ के चउकियां त मोतियन झालर हो।
ओही पर राम नहाले त सीता रानी निरखेली हो,
पूछेली सखिया सलेहर, सीता से पूछेली हो।
सीता कवन–कवन जप कईलु रमईया बर पावेलु हो।

लवंग के पौधे का वर्णन इस विवाह गीत में इस प्रकार किया गया है–

''मोरे पिछुवड़वा लंवगिया के गछिया
लवंग चुनेली सारी रात जी
लंवग चुनिअ चुनी सेजिया लगवली
बिचवा में पाकल पान जी''

इसी तरह कजरी झूमर गीतों लौवग, इलायची से सजे हुये पान के बीड़े का वर्णन प्रायः पाया जाता है–

''लवंग–ईलाची क बीड़ा लगाये।
चाहे भइया चाभे चाहे जाये
सवनवा में ना जइबो ननदी''

महुआ का वर्णन भी कुछ इस तरह किया गया है–

''महुआ के फूल झरे पलकन के छईयां
सारी रात महके बलम तोरी नेहिया''

अनेक होरी एवं चैती के गीतों में शंकर के साथ भांग–धतूरे का वर्णन अवश्य पाया जाता है–

''कालेके शिव के मनाई हो शिव मानत नाहीं,
पुड़ी–मिठाई शिव के मनही न भावे
भंगिया धतूर कहाँ पाई हो–

तथा– ''अरे रामा सांझे के सुतलका
भईल भिनसहरा हो रामा
उठ गउरा, भंगिया रगरि पियाव हो रामा–

अन्न का भी वर्णन इन गीतों में दिखता है। जंतसार के एक गीत में सरसों का वर्णन–

''मोरे पिछुअरवा सरसोईया, हहर–झहर करे हों,
रामा ताहि तरे सोवे पियवा पातर कि
निंदियों न आवेला हो।''

विवाह के अवसर पर हल्दी के समय चुमाने के गीत में इसी प्रकार धान, चावल व दूब का वर्णन मिलता है–

''साठी क चउरा, लहालही दूब रे
चुमेली अम्मा रानी देवेली असीस रे
मथवा चुमिय चुमि दीहली असीस रे
जियहुँ सुनर दुल्हा लाख बरीस रे
असरे जियहूँ जईसे धरती क धान रे।
ओसरे बढ़हूँ जईसे दुइजी क चान रे।''

फूलों व फलों का विषद् विवरण इन लोकगीतों के विभिन्न प्रकारों में यत्र–तत्र मिलता है। आम, केला, संतरा, नारियल इत्यादि का वर्णन अनेक ''सोहर'' गीतों में पाया जाता है–

'मचिया ही बइठेली सासू त बहू से अरज करे हो
बहुवा कवन–कवन फल खइलू होरिलवा बड़ा सुन्दर हो,

खईली मैं अमवा इमिलिया, धवद फल केरवा न हो
सासु छिलिछिली खइली नवरंगिया
सासु फोरि–फोरि खइली नरियरवा
होरिलवा बड़ा सुन्दर हो–

इसी प्रकार ''चैती'' गीत में विभिन्न फूलों का विवरण हैं–

सब बन अमवा फुलईले हो रामा, सइंया नाही अईले,
अमवा फुलइले, महुअवा फुलइले
बेला फुलइले, चमेला फुलइले
सुरख गुलाब फुलइले हो रामा, सईया नाहीं अइले।

फागुन के माह में फाग के अवसर पर गाये जाने वाले 'फगुआ' गीतों में हास–परिहास के संवादों को बड़े ही खुबसूरत ढंग से चित्रित किया गया है। समस्त टोले–मोहल्ले की भौजाईयां देवरों के व्यंग्य बाण से वंचित नहीं रह पाती हैं। ऐसे ही एक परिहास का वर्णन इस फगुआ में मिलता है जिसमें तरकारी बेचने का वर्णन है–

''रतिया खटक गईल खटकिनियां
दिनवा बेचे बइरिया ना
आलू बेचे भंटा बेचे और बेचे मुरईया
बीच बजार में टेढ़ी मारे
इ खटकिन हरजईया
रतिया खटक गईल खटकिनिया
दिनवा बेचे बईरिया ना।

इसके पश्चात् हम पशु–पक्षियों की महत्ता का वर्णन इन लोकगीतों में पायेंगे। प्रारम्भ से पशु धन को शान–शौकत, कुल की सम्पन्नता का एक अहम अंग माना जाता था। बेटी के विवाह में दान दहेज के रूप में पशु धन देने की प्रथा रही है। विवाह के अवसर पर 'खिचड़ी' खाने के रसम पर गाये जाने वाले गीतों में इस तरह का वर्णन प्रायः पाया जाता है–

''गईया में दिहलो भईसिया ऐ बेटी
अवरू बरध धेनु गाय रे
ऐतना दहेज हम बेटी के दिहली
काहे तूहू रूसेल दमाद हो।''

इसी तरह कजरी गीत में भी वर्णन है–

''हरे रामा गईया चरावे धनश्याम
बसुरिया बजावे रे हरि''–

हाथी–घोड़ा जैसे पशुओं को रखना भी आर्थिक रूप से सुदृढ़ एवं धन सम्पन्न होने की निशानी समझी जाती थी।

बेटी का बारात जब दवाजे पर आता था तो द्वार पर हाथी, घोड़े देखकर बराती लड़की वाले की सम्पन्नता का वर्णन करते थे। विवाह गीत में–

''जब बरियतिया गोइड़वे में आवे, हथिया करेला चिघाड़
बाबा मड़उवा धइले ठार, आहो रे बेटी रहना कुँआर।

इसी प्रकार जब बारात के साथ हाथी–घोड़ा आता है तो उसका भी वर्णन इन गीतों में हैं–

''कहँवा में रखबो हाथी से घोड़ा,
कहवाँ में रखबो सजन लोग हो।
दुअरे में रखबो में हाथी से घोड़ा,
मड़वा में रखबो सजन लोग हो।''

छठी गीत में भी इनका वर्णन है–

''हथिया के हउदा कसईबो, घोड़वा ए के लहास
ताहि घोड़वा आवेले महादेव छठी पूजन जाये
उखिया के खम्भवा गड़इबो ओह पर नेतने ओहार
गजमोती चउका पुरईबो चउमुख दियना बराये
ताहि चउके बइठेली गउरा देई छठी पूजन जाये।''

इनके अतिरिक्त कुत्ते व खरगोश का वर्णन भी 'गारी' जैसे गीतों में पाया जाता है, जैसे–

''जइसे कुकुरा के पोंछ
ओइसे भसुर जी के मोंछ।'' तथा
एही बरियतियन के खगगोश अईसन कानरे,
एही काने सुने अइले गीतिया हमार रे''

इन पशुओं के अलावां ऐसे हिंसक पशुओं का वर्णन भी बड़े ही रोचक ढंग से जीवन से जोड़कर किया गया है। पुत्र जन्म के अवसर पर गाये जाने वाले गीत 'सोहर' में एक बाघिन और बांझिन औरत के संवाद का वर्णन इस प्रकार है–

''सासु मोरी कहेली बझीनिया, ननद ब्रजबासिन हो
ललना जिनके हम बारी बियाही, त घर से निकालेल हो।
घर में से निकले तिरियवा त बन बीच ठाढ़ भईली हो
ललना बन में से निकले बघीनिया त सुख दुःख पुछेले हो,
तिरिया कवन बिपत तोहे पड़ले, कवन दुःख रोवेलु हो
सासु मोरी कहेली बझीनिया, ननदी ब्रजबासिन हो
बाघिन जिनके मैं बारी बियाही, त घर से निकालेल हो,
मत रोव एतिरिया मत रोव, हम नाही खाईब हो,
तिरिया जब हम तोहरा के खाईब, हमहू बांझिन होइब हो।

इसी प्रकार के अन्य 'सोहर' में नागिन और बाझिन स्त्री के दुःख–दर्द का सुन्दर चित्रण हुआ है–

घर में से निकलेली बहुवा बिरिछ तरे ठार भईली हो
ललना बिल में से निकले नगिनिया
बहुवा मुहवाँ चितवे ले हो।
काहे तोरा मुखड़ा धुमिल भईल, नयनन नीर बहे हो
किया तोरा कंता बिदेसे गइले, किया नईहर दूर बसे हो
बहुवा काहे नयन नीर बरसे कहहूं दुःख हमसे ना हो

नाही मोरा कंता बिदेसे गइले, नाही नईहर दूर बसे हो
नागिन कोरिवया के दुःख बड़ा भारी सहल नाहीं जाला हो
चुप रह ए बहुवा चुप रह नयन पोछ डाल हो बहुवा
दसवें में होई हे नन्दलाल महलिया उठे सोहर हो।''

एक सोहर गीत में हरिनी इसलिये व्याकुल है कि राजा उसके हिरन को मारकर अपने घर ले जायेगा, क्योंकि उसके घर पुत्र ने जनम लिया है। इस व्यथा से पीड़ित हिरनी से हिरन उसकी इस पीड़ा का कारण पूछता है। इस स्थिति का सुन्दर चित्रण, हिरन–हिरनी का भावपूर्ण्ज्ञ संवाद का वर्णन इस सोहर गीत में चित्रित किया है–

छापक पेड़ छिउलिया त पतवन गहबर हों,
अरे ओही तरे ढाढ़ हिरनिया त मन अति अनमन हो
चरत ही चरत हरिनवा त हरिनी से पूछेला हो,
हरीनी काहे तोहार चरहा मुराइल कि पानी बिनु झुराईल हो।

प्रारम्भ से ही कथा–प्रणाली के अन्तर्गत तोता–मैना, काग, कोयल, कबूतर, भंवरा इत्यादि को प्रतीकात्मक रूप में मानवीकरण के माध्यम से जनमानस के अत्यन्त सन्निकट माना जाता था। लोगों का पक्षी–प्रेम इतना स्पष्ट था कि वे पक्षियों की भाषा को आसानी पूर्वक समझ जाते थे। अपने सुख–दुःख को वे पक्षियों से भी बाँटते थे। पक्षियों के बोलने, चहकने, उठने–बैठने से अभिव्यक्त सभी बातों को जनमानस स्वतः समझ जाते थे। कागा जब छत की मुंडेरे पर बोलता है तो आज भी यह समझा जाता है कि कोई आने वाला है। कबूतर से संदेश भेजने की प्रथा से सभी परिचित हैं। अतः भोजपुरी लोकगीतों में इनका वर्णन आम जनमानस के जीवन के अभिन्न अंग के रूप में मिलता है।

एक देवी गीत में सुग्गा अथवा तोता से आग्रह किया गया है कि वह गंगा पार से देवी को बुला लाये–

''उड़ि जा रे सुगन गंगा पार बोलाई लाओ देवीन को
सोने की थाली में जेवना परोसो
उड़ जा रे सुगन गंगा पार जेवाय लाओ देविन के

तथा छठ गीत में भी ऐसा वर्णन है कि सुग्गे को मना किया जाता है कि वह केले के पेड़ पर न बैठे क्योंकि केले को छठी माता को चढ़ाना है–

''केरवा जे फरेला गवद से, ओह पर सुग्गा मँडराये
सुगना के मरबो धनुक से, सुग्गा गिरि मुरूझाये
सुगनी जे रोवेले बिरग से आदित होखना सहाय।

इसमें छठ पर्व की पवित्रता तथा सफाई की महत्ता पर ध्यान दिया गया है। अनेक गीतों में ''अमवा के डरिया से बोले रे कोयलिया, सुगना बोलेला अनमोल रे''– जैसी पंक्तियां बहुधा दिखाई देती है।

कोयल की बोली का बखान अनेक गीतों में मिलता है। परन्तु चैती के इस गीत में एक स्त्री कोयल से शिकायत करती है कि उसकी बोली सुनकर उसके पति की नींद टूट गई–

''बोलिया सुनत सैंया जागे हो रामा
कोईलर तोरी बोलिया–
रोज–रोज बोले कोइलर संझवा बिहनवा
आज बोले ले आधी रतिया हो रामा
कोईलर तोरी बोलिया–

वहीं पर चैती के एक गीत में कागा को संदेशा लाने के लिये, आग्रह किया गया है–

''तोहरो के देबो कागा दूध–भात कटोरवा
लेई आव पिया के सनेसवा हो रामा।

होरी के एक गीत में बगुला, मोर, पपीहरा का वर्णन भी मिलता है–

मुख चुवे गुलाल, मुख चुवे गुलाल,
चल बलम ओही बगिये में।
कहंवा बोले बगुलवा, बगुलवा बगुलवा
कहंवा बोले मोर, कहंवा बोले पपीहरा
कहंवा संइया मोर चल बलम ओही बगिये में।
तलवा बोले बगुलवा, बगुलवा, बगुलवा
बनवे बोले मोरे, नदी किनारे पपीहरा
सेजिये सईंया मोर, चल बलम ओही बगिये में,

अन्य गीत के एक प्रकार झुमर में भँवरा का वर्णन भी है–

''छोटी बड़ी है रसरिया, गगरिया ना डूबे डूबे ना,
फूलवा चुनन के बागों गयो जी
चुनने न पाइ दो चार फूलवा
बलम–भँवरा बन के आ गये ना।

इसी प्रकार एक दूसरे झूमर–गीत में पत्नी अपने पति से शिकायत कुछ इस प्रकार करती है–

''राजा चले रे बजरिया हाय जिया जर गये हमार
सास के लाये तोता, ननद के लाये मैना
हमको ले आये बन्दरिया हाय जिया जर गये हमार
सईया चले रे बजरिया हाय जिया जर गये हमार।

चील जैसे पक्षी से भी अपने पति को सन्देसा भेजने की बात कई गीतों में की गई है। 'सोहर–गीत' जो पुत्रोत्सव पर गाया जाता है और आनन्द का प्रतीक है, इसमें एक गर्भवती स्त्री अपने दूर–देश रह रहे पति को सन्देशा भेजवाती है।

''अकासे क चिलिया अकासे उड़े
अवरू पताले उड़े हो
चिलिया हमरो सन्देसा लेले जाहु
कहिह बनजरवा आगे हो
केथुन के हउवन कोठवा, केथुन केरा छाजन हो
रनिया कवने बरन बनजरवा त कईसे जगाईब हो
सोने के हउवे उनकर कोठवा पनेही केरा छाजन हो
चिलिया संवर बदन बनजरवा जगाई के कईहहू हो।

वर्षा ऋतु के आने पर, वर्षा न होने पर समस्त मानव तो व्याकुल होता ही हैं, पशु–पक्षी भी व्याकुल हो जाते

हैं। ऐसी ही व्याकुलता इस सोहर गीत में हंस–हंसीनि की है जिन्हें पानी न बरसने के कारण मछली खाने को नहीं मिल पा रहा है–

''हंस–हंसीनिया मन धूमिल अवरू मन व्याकुल हो
हे ललना, दुलुभ भईल चेलवा मछरिया, दुलुभ भईल झेंगवा ना हो
सांझ हो मेघवा घहरललन, आधी रात बरसेले हो
ललना लउके लागल चेलवा मछरिया
डुबकिया मारे झेंगवा ना हो
हंस–हंसीनिया मन आनन्द अवरू मन बिंहसेला हो
ललना मिलि गईले चेलवा मछरिया
मिलिय गईल झेंगवा न हो–

पानी बरसने के पश्चात् हंस–हंसीनी की खुशी की अभिव्यक्ति भी की गई है। यदि मछलियों की बात करें तो चेलवा, झेंगवा मछली के साथ–साथ रोहू मछली की बात भी कई गीतों में मिलती है। झूमर के एक गीत में–

''कोठे उपर कोठरिया रे नीचे बहे दरिया
ओहू में रोहू मछरिया रे, पिया डाले कंटिया।''

इस प्रकार भोजपुरी लोकगीतों में इन सभी के संरक्षण का चित्रण मिलता है। किसी न किसी रूप में वन्य जीवों एवं पशु–पक्षियों के प्रति आस्था इन लोकगीतों में स्पष्ट दिखता है। जो पर्यावरणीय चेतना का उदाहरण है।

भारतीय संस्कृति में भी विभिन्न पशु–पक्षियों को किसी न किसी देवता का वाहन मानकर, उनकी महत्ता को स्वीकार कर, उनको संरक्षण प्रदान किया है यथा भगवान शंकर का नन्दी, माँ सरस्वती का हंस, लक्ष्मी जी का उल्लू, गणपति का चूहा, माँ दुर्गा का सिंह, विष्णु भगवान का गरूड़, यमराज का भैंसा, तथा पृथ्वी का शेषनाग इत्यादि। धर्म से जोड़कर पूजा–पाठ के माध्यम से इन सभी का महत्व प्रत्यक्ष रूप से परिलक्षित होता है।

क्षिति–जल–पावक–गगन–समीरा के अन्तर्गत क्षिति का अर्थ धरती है। भारत में जमीन को झाड़–पोछकर लीपने–पोतने की परम्परा रही है। अनेक अवसरों पर गोबर से भूमि को लीप–पोतकर चौक पूरने तथा रोली–हल्दी चावल–धूप–दीप से पूजा करने की अपनी संस्कृति है। ऐसी मान्यता है कि इनके द्वारा जमीन पर पड़ी हुयी गन्दगी का शुद्धिकरण हो जाता है तथा अनेक कीटाणु जो हमारे स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं, मर जाते हैं। पूजन के अनेक अवसरों पर पृथ्वी का शुद्धिकरण किये जाने का विधान है जो इन लोकगीतों में भी स्पष्ट चित्रित किया गया है।

देवी–देवताओं द्वारा किये गये कार्यों को मानवीय रूप में चित्रित किया गया है जैसे सीताजी को राम की पत्नी के रूप में एक साधारण स्त्री की तरह व्यवहार करते हुये चित्रित किया गया है–

''सीता ने आंगन पोतेली, धनुक उठाये
राजा जनक प्रन राखे सुनहू मोरी रानी
जे यह धनुक उठइहे से ही हो सीता ब्याहन हो।''

इसी प्रकार एक 'विवाह–गीत' में –

''गाई के गोबर, पियर माटी अरे माई दहकि–दहकि
आंगन लीपि, सीता रे जोगे बर नाहीं
केई खोजेला वर, केई पूजेला वर अरे माई
केई उनकर तिलक चढ़ावे, सीता रे जोगे बर नाहीं –

'विवाह' जैसे संस्कार के अवसर पर अनेक 'मंगल–तिलक' गीतों में–

''गाई के गोबर मंगाई, त अंगना लिपाई
अरे माई गजमोती चउका पुराई, त पुजीला सुन्दर वर''

जैसी पंक्तियाँ बहुधा सुनाई देती हैं।

जल के रूप में वरूण देवता की पूजा के साथ जल के समस्त स्रोतों जैसे–सागर, समुद्र, नदी, पोखरा, ताल–तलैया, कुँआ, तालाब इत्यादि की पूजा का विधान तथा इनकी महत्ता लोकगीतों में विभिन्न मांगलिक अवसरों पर दिखाई देती है। यों समझा जाये तो कुआँ खोदवाने, तालाब–पोखरा खनाने तथा बाग–बगीचे लगाने की प्रथा सदा से रही है। जो सीधे धर्म से जुड़ी थी, मानवता से जुड़ी थी। इन सभी कार्यों को करने में जनकल्याण की भावना निहित रहती थी। इन सभी को सुरक्षित रखने तथा पर्यावरणीय परिवेश को हितकारी बनाये रखने के उद्देश्य से ही विभिन्न मांगलिक अवसरों पर इनके पूजा का भी विधान था। आज भी विवाह अथवा मुंडन संस्कार के अवसर पर कुँआ पूजने तथा पोखरा पूजने का रिवाज है। अनेक व्रत–त्यौहारों पर भी महिलाओं के नदी नहाने की परम्परा है।

गंगा नदी की महत्ता अनेक गीतों में वर्णित रहती है। गंगा नहाने पर परलोक की प्राप्ति होती है ऐसी मान्यता समस्त भारतवासियों की है।

''गंगा नहाई, सुरूज करी बिनतीं– जैसी पंक्तियां अनेक गीतों में मिलती हैं। 'बारहमासा' गीत में भी इन नदियों का वर्णन है–

''एहपार गंगा कि ओह पार जमुना, बीचे कदमिया के गाछ रे
ओही गाछ उपर काग बोले, बोले बिरहिया के बोल रे।
काग रे तोहे पाग देबो जबरे सजन घर आवहीं।

तथा ऐसे ही ''गंगा–जमुनवा के निर्मल पानी .....
सूहे हो अम्मा जुड़ावेली छाती, सुहे हो.....

इसी तरह एक विवाह–गीत में ऐसा प्रसंग है जिसमें बेटी का विवाह सात समुंदर पार करने की बात की गयी है–

''बाबा ही रे धन लोभी त धनवा लोभाई गइले
बेटी बियहले दूर देस सातों रे नदिया आँतर– ''

सोहर के एक गीत में बांझिन स्त्री गंगा मईया से अरज करती हैं कि वह अपनी आगोश में उसे ले लें क्योंकि बांझिन होने की पीड़ा वह नहीं सह पायेगी और समाज उसे ताना देगा जो उसके लिये असह्य है। इस प्रकार गंगा मईया को अपनी पीड़ा और दुःख का भागीदार बनाकर अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति करती हैं–

''गंगा जी के ऊँची अड़रिया, तिवईयां एक रोवेले हो,
मईया अपनो लहरिया हमके देतु त हम धसि मरती न हों,
किया तोरे सासु–ससुर दुःख किया नईहर दूर बसे हो
ए तिवई किया तोरे सईया परदेस, कवन दुःखे रोवेलू हो,
नाहीं मारे सासु–ससुर दुःखे, नाहीं नईहर दुर बसे हो
मईया नाहीं मोरे सईया परदेस, कोखिया दुःखे रोईले हो
चुप रहू ए तिवई चुप रह जनि रोई मरहूँ न हो
ए तिवई अपनो बलक हम मारब तोहरो जियाईब हो''।

इस तरह एक विक्षुब्ध नारी के दुःख का निवारण करने को माँ गंगा भी तत्पर हैं। अर्थात् गंगा मईया उसके इस दुःख से द्रवित होकर उसे सान्त्वना देती हैं। इस प्रकार पतित–पावनी गंगा जो मानव का उद्धार सदा करती

रही हैं और करती रहेगी। इस प्रकार नदियों में देवत्व भाव का निरूपण किया गया है। तीर्थ–व्रत तथा सोहर इत्यादि गीतों में वांछित फलदायिनी तथा पतित पावनी नदियों की महिमा अत्यधिक श्रद्धापूर्वक वर्णित की गयी है। लोक जनजीवन से जुड़कर उनकी सुरक्षा सर्वोपरि है। लोकगीतों में नदियों का गान पर्यावरण चेतना का प्रतीक है।

पोखरा खनाने का वर्णन भी यत्र–तत्र गीतों में मिलता है। विवाह के एक गीत में–

''कहवां के राजा रे पोखरा खनावेल
रेवती–रेवती बान्हे घाट रे
कहवां के राजा रे बियहन आवेल
घुमड़ी–घुमड़ी खोजे घाट रे–''

विवाह के अवसर पर कुआँ पूजने का विधान है। झूमर गीतों में कुआँ पनघट का वर्णन बहुतायत से मिलता है–

''गोरी धीरे चल गगरी, छलकियो न जाये।
गहीर कुईयां, पतालों में पानी
गोरी रेशम के डोरिया, सरकियो न जाये।

इसी प्रकार भाई–दूज त्यौहार पर जो गोबर्धन पूजा होती है, उस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में उस पर्वत की महत्ता वर्णित होती है। गोबर से बनाये गये देवता रूप गोबर्धन की पूजा करते समय महिलायें गीत गाती हैं–

''उठहु ए देव उठहु हो सुतले भईल छव मास
तोहरे बिन बारी न बिअँहीला हो
बिअहल ससुरे न जासु–''

इस प्रकार विभिन्न पर्वों एवं धार्मिक तथा मांगलिक अनुष्ठानों के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में जीव–जन्तुओं, पशु–पक्षियों, नदियों, कुआँ–तालाबों तथा प्रकृति के प्रति भी स्तुत्य भाव का प्रकटन लोकमानस की उपज है। तथा इस भाव के पीछे छिपा है पर्यावरणीय चेतना का रहस्य। पूर्जा, अर्चना, प्रातःभ्रमण, नदी स्नान, ब्रह्म मुहूर्त में उठना तथा सूर्योपासना इत्यादि भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग रहे हैं तथा साथ ही पर्यावरणीय चेतना। घर की गृहणियां नित्य ब्रह्म मूहूर्त में उठकर घर की सफाई करती है। इससे तन–मन की पवित्रता बनी रहती है।

जीवन के लिये चन्द्र–सूर्य की महत्ता निर्विवाद है। इन्हें जीवनदायिनी शक्ति के रूप में पूजा जाता था। प्रातः काल नहाकर सूर्य को अर्घ्य देने तथा प्रणाम करने की परम्परा प्रारम्भ से हमारी संस्कृति में रही है और आज भी कायम है। इसकी महिमा का वर्णन एक सोहर गीत में इस प्रकार है कि ननद अपनी भाभी से सुन्दर पुत्र होने का कारण पूछती है तो भाभी उसे बताती हैं कि सबेरे नहाकर सूर्य पूजा करने से उसे सुन्दर और स्वस्थ पुत्र की प्राप्ति हुयी–

''घर में से निकले ननदिया त, भउजी से पुछेले हो
ए भउजी कवन जतन तुहु कइलु, बलकवा बड़ी सुन्दर हो
माघ ही पूस के महिनवा न, गंगा नहइली अगिनी नाही तापीला हो
ननदी निहुरी सुरज गोड़ लगली होरिलवा बड़ा सुन्दर हो।।''

एक और गीत में बेटी का बदन सूर्य की ज्योति से कुम्हला जाने पर पिता के दुःख का वर्णन है। विवाह–गीत में यही भाव वर्णित है–

''जेठ बईसखवा के जरती भूभूतिया रे,
सूरूज उगेला चटकार रे।
सुरूज के उगले धीया कुम्मीलइली
बाबा के बिहरे करेज रे।

तथा बेटी का दहेज जुटा पाने में असमर्थ पिता व्यथित होकर सूर्य से प्रार्थना करता है कि निर्धन अवस्था में कन्या का जन्म ना हो और यदि हो तो उसे भगवान सम्पत्ति भी दें–

''गंगा पइठि बाबा सुरूज मनावेले
मोरे घर धीया जनि होय रे
धियवा जनम जब दीह विधाता
जब घरे सम्पति होय रे–''

एक अन्य विवाह गीत में भाई ससुराल में अपनी बहन के धूमिल सूरत को देखकर व्यथित हो जाता है तथा इसकी उलाहना वह अपने बहनोई को देता है–

''चाँद–सुरूज जईसन बहीनी संकलपो रे ना
से हो जरि जरि भइली कोइलिया रे ना''–

सूर्य की तरह ही चन्द्रमा की महत्ता स्वीकार कर जनमानस के जीवन से उसका अटूट सम्बन्ध बताया गया है। 'चन्दा मामा' कहने की प्रथा आज भी है और हमेशा रहेगी। अपनी शीतलता से सभी को रससिक्त करने वाला चन्द्रमा बच्चों के लिये हमेशा खिलौना ही रहा। आज भी बच्चों को सुलाते समय लोरी गाई जाती है–

''ए चन्दा मामा आरे आव, बारे आव
नदिया किनारे आव, सोने के कटोरवा में
दूध भात लेले आव
बबुआ के मुँह में घूटूक .....''

वहीं दाम्पत्य जीवन के सुमधुर क्षणों में भी चाँद को अपना साथी बनाने का वर्णन इन लोकगीतों में मिलता है –

एक प्रेम गीत में ऐसा ही भाव उल्लिखित है–

''आव हो चन्दा मामा आव हो अजोरिया
बीती जाला रतिया सुहानी
बलम रउवा लगवे त बानी।''

यदि देखा जाये तो हजारों भोजपुरी लोकगीत ऐसे मिलेंगे जो पर्यावरणीय महत्त्व के दृष्टिकोण से सभी तत्वों को अपने आप में समेटे हुये हैं। लोक जीवन से जुड़े ये लोकगीत सदैव समाज को चारों ओर से जागरूक एवं प्रेरित करते रहे हैं। भारतीय संस्कृति सदैव से पर्यावरण संरक्षण का संदेश देती रही है।

प्रकृति में वायु, जल, मिट्टी, पेड़–पौधे, जीव–जन्तुओं में मानव के साथ एक संतुलन विद्यमान है जो हमारे अस्तित्व का आधार है। इनके संतुलन से ही हमारा जीवन संतुलित रह सकता है। अतः इन तत्वों की सुरक्षा व संरक्षा करना हमारा दायित्व है।

'पर्यावरण' प्रकृति प्रदत्त अमूल्य निधि है। इस अमूल्य निधि को संजोकर रखना हमारा प्रथम कर्त्तव्य है। यदि हमने इनका दुरूपयोग किया तो ये हमारे जीवन के लिये रक्षक की जगह भक्षक हो सकते हैं। प्रदूषित पर्यावरण का मुख्य कारण जनसंख्या वृद्धि की समस्या तथा अंधाधुन्ध वैज्ञानिक प्रगति है। सुख समृद्धि की चाह में हम उन्हें ही विनष्ट कर रहे हैं जो हमारे जीवन का आधार है।

इस यंत्र युग में पर्यावरण विनाश अपने चरम पर है। आज पर्यावरण से अधिक व्यापक और महत्वपूर्ण कोई दूसरा वैश्विक मुद्दा नहीं है। पर्यावरण की आज जो स्थिति है वह कई वर्षों का परिणाम है। जो हमारे जीवन को ग्रहण लगा रही है। यदि समय रहते इसे नहीं रोका गया तो यह हमारे लिये शाप बन सकता है। पर्यावरणीय

चेतना, जागरूकता, एवं संरक्षण आज के समय की महत्वपूर्ण मांग है। भारतीय संस्कृति पर्यावरण को प्रदूषण से बनाने की जीवन पद्धति है अतः संस्कृति से विमुख न होकर अपनी संस्कृति से जुड़े रहने की आवश्यकता है। इससे हम स्वाभाविक रूप से स्वतः ही अपने पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचा सकते हैं। प्रकृति प्रेम एवं साहचर्य की भावना से हम पुनः उस श्लोक में छिपे रहस्यों को समझाने की आवश्यकता है जिसमें विश्व के सब प्राणियों में समभाव से स्वस्थ, दीघार्यु एवं सुखी होने की कामना की गई है–

यथा,

''सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःख भाग भवेत्।।''

अस्तु।

सन्दर्भ संकेत

1. व्यक्तिगत रूपसे स्व0 सीता रानी, ग्राम–भरखर, पोस्ट–मोहनियां, जिला–भभुआ, बिहार, द्वारा संग्रहित गीत।
2. भोजपुरी लोकगीत–भाग–2, डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय।
3. भोजपुरी लोक संस्कृति– डॉ0 श्री कृष्णदेव उपाध्याय।
4. लोकगीतों की सामाजिक व्याख्या– श्री कृष्णदास।
5. भोजपूरी लोक गीतों में सांस्कृतिक तत्व– श्यामा कुमारी।
6. 'सेतू' स्मारिका, प्रथम विश्व भोजपुरी सम्मेलन।
7. भोजपुरी लोकगाथा– सत्यव्रत सिनहा।
8. 'लोकवाणी' अतएव 'लोकवार्ता' पत्रिका।

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

भारतीय संस्कृति में तपोवन का स्वरूप

डॉ. पूजा श्रीवास्तव
असिस्टेंट प्रोफेसर – संस्कृत विभाग
महिला महाविद्यालय (परा.), किदवई नगर, कानपुर

वास्तविक रूप में भारतीय संस्कृति विश्व मानव की संस्कृति रही है। यह व्यक्ति–समाज–राष्ट्र के जीवन का सिंचन कर उसे पल्लवित, पुष्पित फलयुक्त बनाने वाली अमृत स्रोतस्विनी चिर प्रवाहिता सरिता है। यह मनुष्य के सामाजिक जीवन की अन्तश्चेतना है, जिसमें संस्कारों का अवबोध होता है, जिनका आश्रय प्राप्त कर सामाजिक जीवन मूल्यों एवं आदर्शों की संरचना होती है। भारत के कोटि–कोटि जनों की उपासना विधि, खान–पान, दिनचर्या सब भिन्न है परन्तु भारतीय संस्कृति का जो प्रवाह है वह सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है, क्योंकि यह वैदिक काल से लेकर अब तक प्रवाहमान धारा की तरह हमारे जीवन को स्पर्श करती आ रही है तथा अनवरत् प्रेरणा देती रही है। सांस्कृतिक परम्परा के निर्वहन अर्थ में कहा गया है –

'सा प्रथमा संस्कृति विश्ववारा'[1] अर्थात् यह प्रथम संस्कृति है जो विश्वव्यापी है या दूसरे शब्दों में कहा जाए कि यह विश्व का उन्नयन करने वाली है। यह एक ऐसी विश्व संस्कृति है जो संपूर्ण विश्व को अपने दिव्य प्रकाश से प्रकाशित करती है। संस्कृति को व्याख्यायित करते हुए ब्रह्मानन्द सरस्वती का मत है कि – संस्कृति शब्द 'कृ' धातु से भूषण अर्थ में 'सुट' का आगम करने पर बना है जिसका अर्थ है – भूषण भूत सम्यक् कृति या चेष्टा। अतः जिन चेष्टाओं के द्वारा मनुष्य अपने जीवन के समस्त क्षेत्रों में उन्नति करता हुआ सुख–शान्ति प्राप्त करता है उसे ही संस्कृति कहा जाता है अथवा मनुष्य के लौकिक पारलौकिक सर्वाभ्युदय के अनुकूल आचारों–विचारों को संस्कृति कहा जा सकता है।[2] यह मानव के संस्कारों की निर्मात्री है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र का यह श्लोक भी भारतीय संस्कृति की महत्ता पर प्रकाश डालता है –

व्यवस्थितार्यमर्यादः कृत वर्णाश्रम स्थितिः।
त्रय्या हि रक्षितो लोकः प्रसीदति न सीदति।।[3] (अर्थशास्त्र विद्यासमुद्देश)

अर्थात् मर्यादाएँ जिसमें व्यवस्थित हैं, वर्ण धर्म और आश्रम धर्म जिसमें पाले जाते हैं, जो वेदों से रक्षित है, ऐसा समाज प्रसन्न ही रहता है, दुःख प्राप्त नहीं करता है। भारतीय संस्कृति ऐसे गूढ़ गम्भीर सत्यों पर आधारित है जिनकी विश्व मानव को सदा ही आवश्यकता रहेगी। भारतीय संस्कृति ने व्यक्ति तथा समाज दोनों के समुचित विकास के मार्ग को प्रशस्त किया है। इसमें मनुष्य को समुन्नत बनाने के लिए षोडश संस्कारों, पुरुषार्थ चतुष्टय एवं चारों आश्रमों की व्यवस्था की गई है, जो हमारी संस्कृति के धरोहर हैं। आश्रम व्यवस्था के मनोवैज्ञानिक एवं नैतिक आधार जीवन के लक्ष्यों को निर्धारित करने वाले पुरुषार्थ होते हैं, जो तपोवनों के माध्यम से व्यक्ति को समाज के साथ सम्बद्ध कर उसकी व्यवस्था तथा संचालन में सहायता प्रदान करते हैं। 'आश्रम' शब्द की व्युत्पत्ति 'श्रम्' धातु से होती है, जिसमें रहकर अथवा जहाँ रहकर मनुष्य श्रम करता है, उसे आश्रम कहते हैं, इसलिए आश्रम, घर, कुटी, तपोवन आदि का पर्याय है।[4] अमर कोश (7–4) में आश्रम शब्द की व्याख्या करते हुए भानु जी दीक्षित ने लिखा है– आश्राम्यन्त्यत्र। अनेन वा। श्रमु तपसि । घञ। यद्वाआ समतांद्रमोऽत्र। स्व धर्मसाधनक्लेशात्। अर्थात् जिसमें सम्यक् प्रकार से श्रम किया जाए वह आश्रम है अथवा आश्रम जीवन की वह स्थिति हैं जिसमें कर्त्तव्य पालन के लिए पूर्ण परिश्रम किया जाए। आश्रम का अर्थ 'अवस्था–विशेष' 'विश्राम का स्थान' 'ऋषि–मुनियों के रहने का पवित्र स्थान' एवं तपोवन हैं।[5] त्याग, सहिष्णुता, सेवा की धुरी पर आरुढ़ यह तपोवन मात्र भारतीय संस्कृति की

विशेषता हैं। यह ऐतिहासिक सत्य है कि प्राचीन भारत वर्ष में तपोवन का जाल बिछा हुआ था, उस समय ऋषि–मुनियों का वन में निवास करने और तप करने का स्थान तपोवन ही हुआ करते थे। यह केवल ऋषि–मुनियों के तप करने व समाधि में बैठने का स्थान ही नहीं अपितु तपोवन का स्वरूप अपनी विशेष परिधि एवं विस्तार से अत्यधिक विस्तृत परिलक्षित होता है। एक ओर जहाँ मनुष्य तपोवन के माध्यम से जीवन में पुरुषार्थों के उपयोग करने का मनोवैज्ञानिक प्रशिक्षण प्राप्त करता है वहीं दूसरी ओर व्यवहार में वह समाज के प्रति इनके अनुसार जीवनयापन करता हुआ अपने कर्त्तव्यों को पूर्ण करता है।

पुरातन ग्रन्थों से अवगत होता है कि तपोवन की अपनी व्यवस्थाएँ होती थीं उनके कुछ नियम होते थे जिसमें मनुष्य अपने सम्पूर्ण जीवन में चारों आश्रमों (ब्रह्मचर्य, ग्रहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास) को अंगीकार करता हुआ संयमित रूप से नैष्ठिक (ब्रह्मचर्य) कार्य का सम्पादन करके लक्ष्य युक्त कर्त्तव्य का निर्वहन करता था।

जंगलों को जीवन के मंगल से भर देने वाले तपोवन का मुख्य उद्देश्य देश के ज्ञान–विज्ञान की प्रवाहिका नाड़ियों को लगातार स्पन्दित रखना था। शिक्षा किसी भी समाज के सर्वांगीण विकास की मूलभूत जरूरत होती है, उस जरूरत को पूर्ण करने वाले मनुष्य का जीवन सम्यक्रूपेण साधनापूर्ण होना चाहिए। इन्ही तथ्यों के ध्यान में रखते हुए प्राचीन भारत में तपोवन के महत्व को स्वीकारा गया। इन तपोवन में ऋषि–मुनि कुटी में रहकर ध्यान और तपस्या के साथ गृहस्थ और प्राचार्य के रूप में जीवन व्यतीत करते थे तथा नियमपूर्वक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाले सामवेदी महर्षि मधुर स्वर से सामवेद का गान करते थे, मन को संयम में रखकर नियमपूर्वक उत्तमव्रत का पालन करने वाले सामवेदी और अथर्ववेदी महर्षि पद और क्रम सहित साममन्त्रों को गाते और अथर्ववेद के मन्त्रों का उच्चारण किया करते थे –

यज्ञविद्याङ्ग विद्भिश्च यजुर्विद्भिश्च शोभितम्।
मधुरैः सामगीतैश्च ऋषिभिनियतवृतैः।।
भारूण्डसामगीताभिरथर्वशिरसोद्गतैः ।
यतात्मभिः सुनियतैः शुशुभे स तदाश्रमः।[6]

सामाजिक जीवन के अन्तर्गत यज्ञोपवीत संस्कार के बाद बालक–बालिकायें इन तपोवनों में स्थित विद्याकुलों में सामाजिक और आर्थिक भेदभाव को भूलकर समन्वित रुप से ज्ञान–विज्ञान व वेदाध्ययन में प्रवृत्त होते थे यहाँ ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए विद्यार्थियों को भावी जीवन के लिए शिक्षा प्रदान की जाती थी। जिससे वह पुरूषार्थ चतुष्टय की सिद्धि तथा मानव जीवन के सर्वागींण विकास में तत्पर होकर अपने भविष्य का निर्माण कर सकें। यहीं से शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक आदि शक्तियों के विकास का श्री गणेश होता था। ऋग्वेद् में लिखा है कि – 'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत'[7] अर्थात् ब्रह्मचर्य की साधना से विद्वान् ज्ञानी मृत्यु को दूर भगा देते हैं। वशिष्ठ एवं विश्वामित्र के तपोवन में निर्मित विद्याकुल अपनी विशेषता के लिये प्रसिद्ध थे। ऋषियों के संस्कारित जीवन की दिनचर्या समस्त विद्यार्थियों के जीवन को सुगंधित कर दिया करती थी। राजा दशरथ ने अपने चारों पुत्रों राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न को अध्ययन हेतु वशिष्ठ मुनि के आश्रम में भेजा ताकि वे प्राकृतिक वातावरण में रहकर एवं अनुशासित होकर शिक्षा प्राप्त करें। विश्वामित्र के आश्रम में राम का अस्त्र–शस्त्र विद्या की शिक्षा प्राप्त करना उक्त तथ्य की ओर संकेत करता है।[8] राम और सीता के दोनो पुत्रों लव–कुश को अस्त्र–शस्त्र की शिक्षा भी वाल्मीकि तपोवन में प्राप्त हुई। श्रीकृष्ण और बलराम ने जिन सान्दीपनि मुनि से शिक्षा ग्रहण की वे अपने तपोवन में रहा करते थे।[9] रघुवंश महाकाव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि तपोवन एक परिपूर्ण व्यावहारिक जीवन शैली का विकास केन्द्र हुआ करता है जहाँ जीवन धारण करने के निमित्त खाद्य संग्रह, कृषि कार्य, पशुपालन और उद्यान परिचर्चा की शिक्षा भी प्रत्यक्ष प्रदान की जाती थी। तपोवन में निर्मित विद्याकुलों में विद्यार्थियों को व्यावहारिक ज्ञान–विज्ञान के साथ विविध शाखाओं की शिक्षा भी प्रदान की जाती थी जिसके फलस्वरूप तर्क–वितर्क और दर्शनों की अनेकों

धारणाएँ विकसित हुईं। इन तपोवन में ही विपुल संस्कृत साहित्य की रचना हुई। वाल्मीकि कृत रामायण, व्यास कृत महाभारत आदि अनेकों ग्रन्थों का सृजन तपोवन में ही हुआ।

अत्यन्त हर्ष की बात तो यह है कि पश्चिम में जिन जंगलों को असभ्यता की निशानी कहा जाता है वही अरण्य अर्थात् वन हमारे भारतवर्ष में संस्कृति के अद्‌भुत केन्द्र रहे हैं। वाल्मीकि रामायण में उल्लिखित दण्डकारण्य नामक वन, महाभारत में खाण्डववन जहाँ पर इन्द्रप्रस्थ की स्थापना हुई, विभिन्न पुरातन ग्रन्थों में अनेकानेक वनों का वर्णन प्राप्त होता है जिनकी महत्ता अपने आप में अनूठी है। वनों की श्रृंखला में नैमिषारण्य का नाम भी आता है जहाँ सूत जी के नेतृत्व में शौनक आदि सहस्रों ऋषि मुनियों ने एक वृहद् ऐतिहासिक संवाद किया था। इन जंगलों में स्थित संस्कृति के अद्‌भुत केन्द्र–तपोवनो में लेखनी बद्ध ग्रंथों से भारतीय समाज आज भी प्रेरणा व मूल्य बोध को प्राप्त कर रहा है।

इन तपोवनों में बकायदा/नियमानुकूल पारिवारिक जीवन हुआ करते थे, जहाँ ऋषि मुनि अपने ग्रार्हस्थ धर्म–पंच महायज्ञ, अध्ययन, धनोपार्जन, सन्तानोत्पत्ति एवं दान आदि का पालन करते हुए सामान्य सांसारिक जीवन व्यतीत करते थे। उनमें संयम, सेवा व सहिष्णुता की भावना का पूर्ण रूपेण समावेश हुआ करता था।

जब श्री राम ने भार्या सीता को उसकी गर्भिणी अवस्था में ही राजमहल से निष्कासित कर दिया था तो सीता को वाल्मीकि मुनि ने अपने तपोवन में ही आश्रय दिया था –

आश्रमस्यविदूरे में तापस्यस्तपसि स्थिताः।
तास्त्वां वत्से यथा वत्सं पालयिष्यन्ति नित्यशः।।
इदमर्घ्य प्रतीच्छ त्वं विस्रब्धा विगतज्वराः।
यथास्वगृहमभ्येत्य विषादं चैव माकृथाः।।[10]

श्रीराम वन प्रकरण में श्रीराम को वनवास के समय अत्रि मुनि के तपोवन में जाने का अवसर प्राप्त हुआ वे अत्रिमुनि दण्डकारण्य के एक आश्रम में अपनी पत्नी अनुसूया के साथ निवास करते थे।[11] याज्ञवल्क्य मुनि भी अपनी दोनों पत्नियों – कात्यायनी और मैत्रेयी के साथ तपोवन में ही निवास करते थे।

महाभारत की कथा के अनुसार पुरूवंशी सम्राट दुष्यन्त का विश्वामित्र व मेनका की सन्तान[12] शकुन्तला नामक ऋषि कन्या से पहले प्रेम और फिर गान्धर्व विवाह[13] हुआ, वह शकुन्तला महर्षि कण्व ऋषि के तपोवन में ही रहा करती थी।[14] जहाँ वे अपने गृहस्थ धर्म के निमित्त सम्पूर्ण कार्यों को सम्पादित करते हुए जीवन निर्वाह करते थे। वाल्मीकि रामायण के अरण्यकाण्ड में विविध तपोवनों के दृष्टान्त प्राप्त होते है यथा– अगस्त्य मुनि का आश्रम, शबरी आश्रम, सुतीक्ष्ण मुनि का आश्रम आदि।[15]

प्रायः ये तपोवन समृद्ध हुआ करते थे। याज्ञवल्क्य मुनि का राजा जनक की ब्रह्मसभा से सोने से मढ़ी सींगों वाली हजार गऊओं को अपने आश्रम में लाना[16] एवं उनका पालन–पोषण करना तपोवन की समृद्धता को दर्शाता है। इसी प्रकार अत्रि मुनि की पत्नी अनुसूया द्वारा सीता को सोने के आभूषण प्रदान करना भी इसी तथ्य को स्पष्ट करता है –

इदं दिव्यं वर माल्यं वस्त्रमाभरणानि च।
अङ्गरागं च वैदेहि महार्हमनुलेपनम्।।[17]

अर्थात् यह सुन्दर दिव्यधार, यह वस्त्र, ये आभूषण, यह अङ्गराग और बहुमूल्य अनुलेपन मैं तुम्हें देती हूँ।

तपोवन का वातावरण अत्यन्त शान्तिमय, शक्तियुक्त तथा मन की प्रसन्नता को बढ़ाने वाला हुआ करता था। एक ओर जहाँ नगरीय जीवन में शोर, व्यस्तता और उससे तनाव और विलासिता पूर्ण होता था वहीं दूसरी ओर तपोवन का वातावरण अत्यन्त शान्तमय हुआ करता था। महाभारत में वर्णित महर्षि कण्वमुनि का तपोवन मन में अद्‌भुत आनन्दोल्लास की सृष्टि करता है। वन में शीतल वायु का चलना, सर्वत्र फूलों व फलों से युक्त वृक्ष, सर्वत्र मीठी बोली बोलने वाले विविध विहंगमों के कलरव की गूँज, कहीं कोकिलो की कुहू–कुहू तो कहीं झींगुरों की झीनी

झनकार की गूंज, वृक्षों के नीचे भँवरों का मंडराना, सभी ऋतुओं में पुष्पित एवं पल्लवित होने वाले छायायुक्त वृक्षों से आच्छादित वनों में निर्मित तपोवन की रमणीयता परिलक्षित होती है।[18] श्रीराम का स्वयं दण्डकारण्य में अनेकों तपोवनो का अवलोकन कर वहाँ के वातावरण में मनमुग्ध होना तपोवन की शोभा को दर्शाता है –

कुशचीरपरिक्षिप्तं ब्राह्मया लक्ष्म्या समावृतम्
यथाप्रदीप्तं दुर्दर्शं गगनेसूर्यमण्डलम्।।
शरण्यं सर्व भूतानां सुसम्मृष्टाजिंर सदा।
मृगै र्बहुभिराकीर्ण पक्षिसंधैः समावृत्तम्।।
पूजितं चोपनृत्तं च नित्य मप्सरसां गणैः
विशालैरग्निशरणैः स्रुग्भाण्डैरजिनैः कुशैः।।
समिद्भिस्तोयकलशैः फलमूलैश्च शोभितम्।
आरण्यैश्च महावृक्षैः पुण्यैः स्वादुफलैर्वृत्तम्।।[19]

अर्थात् तपोवन में कुश और वल्कल वस्त्र फैले हुए थे। आश्रम मण्डल ऋषियों के ब्रह्मविद्या के अभ्यास से प्रकट हुए विलक्षण तेज से व्याप्त होता था, इसलिए आकाश में प्रकाशित होने वाले दुर्दर्श सूर्य–मण्डल की भाँति वह भूतल पर उद्दीप्त हो रहा था, ये आश्रम समुदाय सभी प्राणियों को शरण देने वाले होते थे, वहाँ विभिन्न वन्य पशु रहते थे और पक्षियों के समुदाय भी उसे सब ओर से घेरे रहते थे। वहाँ का वातावरण इतना मनोरम था कि अप्सराएँ भी प्रतिदिन आकर नृत्य करती थीं। उस स्थान के प्रति उनके मन में बड़े आदर का भाव था। बड़ी–बड़ी अग्निशालाएँ यज्ञपात्र, मृगचर्म, कुश, समिधा, जलपूर्ण कलश और फल–मूल उसकी शोभा बढ़ाते थे। स्वादिष्ट फल देने वाले परम पवित्र तथा बड़े–बड़े वन्य वृक्षों से वह आश्रम मण्डल घिरा हुआ था।

अन्यत्र–सुतीक्ष्ण मुनि श्री राम से महामुनि अगस्त्य के तपोवन का वर्णन करते हुए कहते हैं –

स्थली प्राय वनोद्देशे पिप्पलीवन शोभते।
बहुपुष्पफलेरम्ये नाना विहगनादिते।।
पद्मिन्यो विविधास्तत्र प्रसन्नसलिलाशयाः।
हंसकारण्डवाकीर्णाङ्गक्र वाकोपशोभिताः।।[20]

महामुनि अगस्त्य के तपोवन की भूमिप्रायः समतल है तथा पिप्पलीका वन उस आश्रम/तपोवन की शोभा बढ़ाता है। वहाँ फूलों और फलों की बहुतायत है। नाना प्रकार के पक्षियों के कलखों से गूँजते हुए उस रमणीय आश्रम के पास भाँति–भाँति के कमल से युक्त सरोवर है, जो स्वच्छ जल से भरे हुए है। हंस और कारण्डव आदि पक्षी सर्वत्र फैले हुए हैं तथा चक्रवाकपक्षी भी वहाँ की शोभा बढ़ाते है।

प्रकृति व पर्यावरण के प्रति अनुराग, स्वाभाविक स्नेह एवं पशुओं के प्रति आत्मीयता के भाव के कारण विषधार सर्प, व हिंसक वन जन्तु भी सौम्यभाव से तपोवन में निवास करते थे –

नैकपक्षिगणाकीर्णा तपोवन मनोरभाम्।
तत्र व्यालमृगान सौम्यान्पश्यन् प्रीतिम वाप सः।।[21]

ऋषि मुनि समस्त जीवों के प्रति दया भाव रखते व उनकी बोली भी समझ जाया करते थे सर्वभूत रूतज्ञोऽहं दयावान् सर्व जन्तुषु[22] महर्षिकण्व का यह वक्तव्य उक्त तथ्य की पुष्टि करता है। ऋषियों के शान्त व दयालु स्वभाव के कारण मृगशावक तपोवन में निर्भय होकर विचरण करते एवं ऋषि–पत्नियों के द्वारा दिये गये नीवारधान को निःसंकोच भाव से खाते थे। पक्षियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए ऋषि कन्यायें वृक्षों के थालों में जल भरकर वहाँ से हट जाती थीं जिससे पक्षी निर्भय होकर जल पी सकें। सभी तपोवन वासियों का तपोवन प्राणियों के प्रति दया भाव तो रहता ही था साथ ही वहाँ के वृक्षों–लताओं के प्रति भी भाई–बहन जैसा स्नेह भी प्रकाशित होता है।

तपोवन वासी गृहस्थ धर्म के निमित्त दान एवं यज्ञ आदि कार्यों का भली भाँति निर्वहन करते थे। गृहस्थों के लिए पाँच महायज्ञ के विधानः का वर्णन प्राप्त होता है –

देवयज्ञो भूत यज्ञः पितृयज्ञस्तथैव च।
नृयज्ञो ब्रह्मयज्ञश्च पंचयज्ञः प्रकीर्तिता।। (बृहन्नारदीय पुराण)

दैहिक कार्यक्रम ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, नृयज्ञ तथा भूतयज्ञ इन यज्ञों के अनुष्ठान द्वारा वह वैयक्तिक उन्नति तो करता ही था साथ ही समाज एवं संसार के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन करता था। यज्ञ को सर्व कामनापूर्ण करने वाली कामधेनु और स्वर्ग की सीढ़ी कहा गया है। अतः यज्ञ उनकी दिनचर्या का अंग हुआ करता था। जिसके अति अल्प प्रयत्न द्वारा ही सद्गति के मार्ग खुल जाते हैं। यज्ञ द्वारा अदृश्य रूप से आकाश में एक ऐसा सद्भावना पूर्ण सूक्ष्म वातावरण उत्पन्न होता है जिससे संसार में फैले हुए अनेक प्रकार के रोग, शोक, भय, क्लेश, कलह, द्वेष, अन्याय, अत्याचार नष्ट हो सकते हैं और सर्वजन प्रेम एवं सुख व शान्ति पूर्वक रह सकते हैं। इन्हीं भावों से युक्त ऋषियों मुनियों के आश्रम का आकाश सर्वदा वेद मन्त्रों की ध्वनि एवं यज्ञ के धूम से आच्छादित रहा करते थे –

बलि होमार्चितं पुण्यं ब्रह्माघोषनिनादितम्[23] – अर्थात् बलिवैश्य देव और यज्ञ होम से पूजित पवित्र आश्रम समूह वेदमन्त्रों के पाठ की ध्वनि से गूँजता रहता था।

रघुवंश महाकाव्य के त्रयोदश सर्ग में राक्षसों की नगरी से लौटते समय श्री राम अगस्त्य ऋषि के आश्रम में हो रहे यज्ञ की ओर संकेत करते हुए सीता से कहते है –

त्रेताग्नि धूमाग्नमनिन्द्यकीर्ते–
स्तस्येदमाक्रान्तविमानमार्गम्।
घ्रात्वा हविर्गन्धि रजोविमुक्तः
समश्नुते में लघिमानमात्मा।।[24]

अर्थात् प्रशंसनीय कीर्तिवाले अगस्त्य ऋषि द्वारा त्रेताग्नि यथा–गार्हपत्य, दाक्षिणात्य एवं आहवनीय अग्नियों में दी गई हवन सामग्री की सुगन्ध से मिला हुआ यह धुँआ विमान के पास तक उठा चला आ रहा है जिसे सूँघते ही मेरी आत्मा पवित्र हो गई है और मेरे अन्तः करण से रजोगुण निकल गया अर्थात् मैं शान्ति का अनुभव कर रहा हूँ।

इसी महाकाव्य में सुतीक्ष्ण ऋषि द्वारा किये गये पंचाग्नि यज्ञ का वर्णन भी प्राप्त होता है।

हविर्भुजामेधवतां चतुर्णामध्ये ललाटं तपसप्तसप्तिः।
असौ तपस्यत्यपरस्तपस्वी नाम्नासुतीक्ष्णश्चरितेनदान्तः।।[25]

अर्थात् सुतीक्ष्ण नामवाले चरित्र में इन्द्रियों पर विजय प्राप्त किये हुए ये दूसरे मुनि ईधनवाली चार अग्नियों (चारों दिशाओं में जलने वाली अग्नियों) के मध्य में तथा मस्तक को तप्त कर देने वाले सूर्य से युक्त होकर (पञ्चाग्नि) तप कर रहे है।

वाल्मीकि रामायण में महर्षि अगस्त्य के आश्रम/तपोवन के वन यज्ञ–याग सम्बन्धी धूमों से व्याप्त होने का वर्णन दृष्टव्य होता है।।[26]

रघुवंश महाकाव्य में प्रतिबिम्बित महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में प्रज्वलित अग्नि, आहूति से सुंगधित पवन सम्पूर्ण आश्रम क्षेत्र को पवित्र कर देती थी –

अभ्युत्थिनग्निपिशुनैरतिथीनाश्रमोन्मुखान्।
पुनानं पवनोद्धूतैधूर्मराहुतिगन्धिभिः।।[27]

तपोवन वासियों के अतिथि सेवा/अतिथि सत्कार को जीवन का पावन कर्त्तव्य समझा जाता था।

गृहस्थ तथा तपस्वी के नित्यकर्मों में जिन पञ्च महायज्ञों का विधान किया गया है, उनमें अतिथि पूजन को भी यज्ञ का स्थान दिया गया है जिसे 'नृयज्ञ' कहा जाता है। उसकी महत्ता का परिचायक अतिथि देवो भवः' भारतीय

संस्कृति का मूल मन्त्र है। वशिष्ठ मुनि के तपोवन में ऋषियों द्वारा पुण्य कर्त्तव्य समझकर दिलीप और सुदक्षिणा के सत्कार का वर्णन दृष्टिगोचर होता है –

तस्मै सभ्याः सभार्याय गोत्रे गुप्तमेन्द्रियाः।
अर्हणामर्हते चक्रुर्मुनयो नय चक्षुषे।।[28]

वाल्मीकि रामायण में महर्षि अगस्त्य के तपोवन में ऋषियों द्वारा पत्नी सहित श्रीराम, व लक्ष्मण को यथोचित रीति से सत्कार पूर्वक तपोवन में ले जाना तथा स्वयं महर्षि द्वारा आसन तथा जल (पाद्य, अर्ध्य आदि) देकर उनका आतिथ्य सत्कार का वर्णन प्राप्त होता है –

तं शिष्यः प्रश्रितंवाक्यमगस्त्यवचनं ब्रुवन्।
प्रावेशयद् यथान्यायं सत्काराहै सुसत्कृतम्।।[29]
प्रतिगृह्य च काकुत्स्थमर्चमित्वाऽऽसनोदकैः।
कुशलप्रश्न मुक्त्वा च आस्यतामिति सोडब्रवीत्।।[30]

'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में अनुसूया एवं प्रियवंदा 'अतिथि देवोभव' की परम्परा का अनुपालन करती हुई दृष्टिगोचर होती हैं। जब शकुन्तला राजा का सत्कार किये बिना तपोवन से जाने लगती है तो अनसूया द्वारा शकुन्तला को निर्देशित करते हुए कहती है कि विशिष्ट अतिथि का बिना सत्कार किये जाना अनुचित है – सखि, न युक्तम् अकृत सत्कारमतिथि, विशेषं विसृज्यस्वच्छन्तोगमनम्।[31] उक्त कथन आतिथ्य सत्कार की स्पष्ट अभिव्यञ्जनां करता है।

गृहस्थ जीवन के अपने कर्त्तव्यों /उत्तरदायित्वों का निर्वहन करने के पश्चात् जब व्यक्ति वानप्रस्थ में प्रवेश करता है तो वह माया–मोह आदि का परित्याग कर तपोवन की ओर अग्रसर होता था जहाँ अग्निहोत्र, संयम तथा सब जीवों के प्रति करूणा व मैत्री भाव रखते हुए प्रकृति के नैसर्गिक वातावरण में जीवन निर्वाह करता था। अभिज्ञान शाकुन्तलम् में महर्षि कण्व अपनी भावुक पुत्री शकुन्तला को वानप्रस्थ जीवन की गौरवमयी प्राचीन परिपाटी से अवगत कराते हुए कहते हैं –

भूत्वाचिराय चतुरन्तमहीसपत्नी
दौष्यन्तिमप्रतिश्यं तनयं निवेश्य।
भर्ता तदर्पित कुटुम्बभरेण सार्ध
शान्तेकरिष्यसि पदं पुनराश्रमेऽस्मिन्।।[32]

अर्थात् चिरकाल तक चारों समुद्र तक व्याप्त पृथ्वी की सौत रहकर अपने अद्वितीय महारथी पुत्र दौष्यन्ति को राजसिंहासन पर बैठाकर और उसको अपने कुटुम्ब का भार सौंप देने वाले पति के साथ इस शान्त तपोवन में पुनः आकर निवास करोगी।

प्राचीन ग्रन्थों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि तपोवन अपने उत्तम गुणों से युक्त हुआ करते थे तथा सभी तपोवन वासी आश्रम व्रत का पालन करते हुए तपोवन में निवास करते थे। तपोवन में ऋषिगण राजा को कर के रूप में धन न देकर अपने तप का छठा भाग प्रदान कर राज्य की उन्नति में सहयोग करते थे।

यदुत्तिष्ठति वर्णेभ्यो नृपाणां क्षयि तद्धनम्।
तपः षड्भागमक्षय्यं ददत्यारण्यका हि नः।।[33]

ऋषि मुनियों के महान उद्देश्यों एवं उच्चतम लक्ष्य ने तपोवन में पूर्ण सुसंस्कृत तथा सुविकसित समाज का निर्माण किया। अतः स्पष्ट होता है कि भारतीय संस्कृति का मूल स्रोत नगर न होकर वन थे जहाँ मन्त्रदृष्टा ऋषियों ने गम्भीर मनन के द्वारा शाश्वत जीवन सिद्धान्तों को प्राप्त किया। हमारे दैनिक जीवन के आचार भी ऋषियों के

चिन्तन का ही परिणाम हैं। तपोवन के आदर्शों का अनुसरण करके ही रवीन्द्रनाथ टैगोर ने शांति निकेतन में एक ब्रह्मविद्यालय की स्थापना की, इनके आदर्शों का वास्तविक प्रयोग करके ही यह विद्यालय आज विश्वविख्यात विद्यापीठ – विश्वभारती विश्वविद्यालय के नाम से प्रख्यात है। यह विश्वविद्यालय अपने आदर्श वाक्य 'यत्र विश्वम् भवेत्यनीड़म्' अर्थात् सारा विश्व एक घर है, भारतीय संस्कृति के स्वरूप को साकार करता है।

संदर्भ संकेत

1. यजुर्वेद 7/14
2. डॉ. रामधारी सिंह दिनकर – संस्कृति के चार अध्याय – पृ. सं. – 653
3. डॉ. पूर्णचन्द्र शर्मा – संस्कृति के स्तम्भ – पृ. सं. 12
4. संस्कृत हिन्दी कोश – वामन शिवराम आप्टे
5. https ://hi.m.wikipedia.org > wiki
6. महाभारत – सम्भवपर्व, 70/38, 39
7. ऋग्वेद 11.5.19
8. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणे –
9. महाभारत – सभापर्व, अध्याय 38 भाग 21
10. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणे उत्तरकाण्ड, सर्ग 49 श्लोक 15,16
11. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणे अयोध्याकाण्ड सर्ग 117, श्लोक 05
12. महाभारत आदिपर्व सम्भव पर्व अध्याय – 72
13. महाभारत आदिपर्व सम्भव पर्व अध्याय 73 श्लोक 14, 15
14. महाभारत आदिपर्व सम्भव पर्व में शकुन्तलोपाख्यान
15. श्री मद्बाल्मीकीय रामायण – सम्पूर्ण अरण्यकाण्ड
16. महाभारत – शान्ति पर्व
17. श्री मद्वाल्मीकीय रामायण अयोध्याकाण्ड 118 वाँ सर्ग श्लोक –18
18. महाभारत आदि पर्व – सम्भव पर्व – 70 वाँ अध्याय श्लोक 3–13
19. वाल्मीकीय रामायण अरण्यकाण्ड – प्रथम सर्ग श्लोक – 2,3,4, 5,6
20. वाल्मीकीय रामायण अरण्यकाण्ड– प्रथम सर्ग श्लोक 38, 39
21. महाभारत आदिपर्व सम्भवपर्व – अध्याय 70/22
22. महाभारत आदिपर्व – सम्भवपर्व – अध्याय 72/14
23. बाल्मीकि रामायण अरण्यकाण्ड प्रथम सर्ग श्लोक 6
24. रघुवंश महाकाव्य – 13/28 – चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी
25. रघुवंश महाकाव्य – 13/41 – चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी
26. वाल्मीकीय रामायण – अरण्यकाण्ड ।। सर्ग – श्लोक नं. 80
27. रघुवंश महाकाव्य 1/57 चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी
28. रघुवंश महाकाव्य 1/55 चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी
29. बाल्मीकीयरामायण – अरण्यकाण्ड – 12/15
30. वाल्मीकीय रामायण – अरण्यकाण्ड – 12/26
31. अभिज्ञान शाकुन्तलम् – प्रथम अंक पृ. सं. – 155
32. अभिज्ञान शाकुन्तलम् – 4/20
33 अभिज्ञान शाकुन्तलम् – 2/13

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

लोक संस्कृति साहित्य का सिनेमाई विमर्श : कही ईसुरी फाग

डॉ0 सियाराम
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष–हिन्दी विभाग
तिलक महाविद्यालय, औरैया

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से हिन्दी कथा साहित्य विशेषतः उपन्यास विधा में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए है। इधर हिन्दी उपन्यास विधा का बड़ी तेजी से विकास में तीव्रता हुआ है। पिछले दो दशकों में तो इसके विकास के साथ विविधता भी परिलक्षित हुई है, कई नये–नये प्रयोग औपन्यासिक क्षेत्र में किये गये हैं। ऐसी स्थिति में उपन्यास की प्रवृत्ति एवं शैली में बदलाव आया है। विगत दो दशकों में क्षेत्र को सम्पूर्ण इकाई मानकर सूक्ष्मता पूर्वक इनके परिवेश का अध्ययन करना, क्षेत्रीय यथार्थ को पहचानना तथा क्षेत्र विशेष की माटी से सम्बन्ध स्थापन, वहाँ की बोली–भाषा, संस्कार, परम्पराओं और रूढ़ियों की गहराई में जाकर चरित्र उद्घाटन करना लेखकीय प्रवृत्ति बन गई है। लम्बे समय तक विदेशियों की परतंत्रता में विस्तृत भारत का अविकसित रह जाना स्वाभाविक था। अपने विस्तार के कारण ही जहाँ देश का समुचित विकास नही हो पाया वहीं इसी विस्तार के कारण ही विविधता भी आयी। इससे अविकसित एवं वैविध्यपूर्ण क्षेत्रों में परस्पर वैमस्य और विशिष्टता के तत्त्व भी खूब पनपे। इसीलिए इधर के प्रबुद्ध और संवेदनशील रचनाकारों का ध्यान इन क्षेत्रों की तरफ आकृष्ट हुआ। परिणामस्वरूप 90 के दशक के बाद सृजित उपन्यासों में रचनाकारों ने बड़ी तन्मयता और सूक्ष्मता से क्षेत्र विशेष की भौगोलिक, सामाजिक एवं मानसिक बारीकियों का अध्ययन किया है। इधर के उपन्यासों में तत्सम्बन्धी क्षेत्र की विशिष्ट सांस्कृतिक और लौकिक सम्पदा, प्राकृतिक मनोहरता और वहाँ की ठेठ ग्रामीण भाषा–शैली के साथ–साथ वहाँ के संस्कारों, वहाँ के जीवन की कटुता और विशेषताओं तथा विद्रूपताओं का भी चित्रण उपलब्ध होता है। ऐसी औपन्यासिक कृतियों में किसी व्यक्ति विशेष के नही बल्कि मानव स्वभाव के चित्रण की विशिष्ट प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। आज भले ही राजनीति में सामान्य एवं साफ–सुथरी छवि वाले व्यक्ति को महत्त्व देना मात्र राजनैतिक नौटंकी प्रतीत हो परन्तु साहित्यिक स्तर पर संवदेनशील तथा राष्ट्र और समाज के सच्चे हितचिन्तक लेखक सामान्य मनुष्य की ओर उन्मुख अवश्य हुए हैं और उन्होंने बड़ी ईमानदारी के साथ सामान्य मानव की जीवन प्रक्रिया का रेखांकन किया है। विगत दो दशकों में रचित अधिकांश उपन्यास सामान्य मानव की पक्षधरता के साक्षी हैं। पक्षधरता ऐसी कि ये रचनायें सामान्य मनुष्यों के जीवन के वैशम्य को अभिव्यक्ति देकर प्रबुद्ध पाठक वर्ग को इन विषमताओं के कारणों की खोज एवं इनके निदान के उपाय ढूढ़ने को आमंत्रित करती हैं। ऐसे रचनाकारों ने समकालीन शोषित और उपेक्षित जीवन के प्रति अपनी उत्सुकता, चिन्ता और प्रतिबद्धता को प्रकट किया है।

यद्यपि इन उपन्यासों में अतिशय स्थानीय बोली एवं व्यवहृत भ्रष्ट शब्दों, त्रटिपूर्ण उच्चारण एवं अश्लील प्रयोग पाठक को स्थान–स्थान पर अखरते हैं तथापि स्थानीय बोली, भाषा और शब्दों का संतुलित और आवश्यकतानुरूप प्रयोग, उनकी मानव स्वाभावानुकूल प्रस्तुति, लोकतत्त्वों का आनुपातिक प्रयोग कर रचनाकारों ने दोषमार्जन कर लिया है। यह इन रचनाकारों की प्रतिभा और पाठकों की रूचि के प्रति इनकी संवदेनशीलता का परिचायक है। जिस प्रकार उत्कृष्ट गद्य, लेखन की कसौटी मानी जाती है उसी प्रकार उपन्यास, कथा–लेखन की कसौटी कही जा सकती है। हिन्दी के लिए यह सुखद है, इसके अनेक प्रतिभा सम्पन्न लेखक–लेखिकाओं ने उपन्यास लेखन में सफल और परिष्कृत प्रयोग करके कथा की इस विधा को ऊँचाई देने का सतत् प्रयास किया

है। ऐसी ही रचनाकारों में मैत्रेयी पुश्पा का नाम अग्रगण्य है। इन्होंने हिन्दी उपन्यास जगत को बेतना बहती रही, इदन्नमम्, झूलानट, चाक, अल्मा कबूतरी, अगन पाखी, विजन, कस्तूरी कुण्डल बसै और कही ईसुरी फाग जैसी अनेक अनुपम कृतियाँ प्रदान की हैं। यहाँ हम इनके 'कही ईसुरी फाग' उपन्यास को अध्ययन का आधार बनायेंगे।

'कही ईसुरी फाग' बुन्दलेखण्ड के लोक चर्चित फाग गायक 'ईसुरी' एवं नायिका 'रजऊ' की कथा पर आधारित है। यह उपन्यास राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली से 2004 में प्रकाशित हुआ। उपन्यास लेखिका मैत्रेयी जी ने आरम्भ में ही अपने कथा नायक ईसुरी की लोक विश्रुता का वर्णन रामायण के रचनाकार तुलसी एवं पद/राग गायक सूरदास के समकक्ष ही किया है –

रामायण तुलसी कही, सूरदास ज्यों राग।
ऐसे ही कलिकाल में, कही ईसुरी फाग।।[1]

'कही ईसुरी फाग' का कथानक सीधे, सपाट और सरल रूप में प्रस्तुत नही किया जा सकता है। इसमें लोक प्रसिद्ध फाग गायक ईसुरी की आधिकारिक कथा के साथ–साथ शोधार्थिनी ऋतु व शोधार्थी माधव तथा लोक कलाकारों की मण्डली व उन्हें विदेश में लोक कला प्रस्तुति द्वारा चर्चित होने का कोरा लोभ दिखाने वाले दलालों के अन्तर्सम्बन्धों के अख्यानों पर आधृत है।

ग्रन्थारम्भ में ही लेखिका ने 'अस्वीकृति पत्र' द्वारा आधुनिक विश्वविद्यालयों में पी–एच0 डी0 (शोध) उपाधि प्राप्त करने की प्रक्रिया पर प्रश्न चिह्न लगाया है। ऋतु के शोध विषय 'ईसुरी के काव्य में नारी संचेतना' पर अस्वीकृति हेतु टिप्पणी करते हुए शोध निर्देशक का यह कहना है कि ''शोध ग्रन्थ के निष्कर्षों के लिए कुछ लिखित प्रमाण आवश्यक होते हैं, जैसे विद्वानों द्वारा लिखे गये ग्रन्थों के उद्धरण, इतिहास ग्रन्थों से लिये गये प्रमाण, पत्र–पत्रिकाओं में दिये गये मंतव्य। ऐसे ही साक्ष्यों से निष्कर्षों को पुष्ट किया जाता है। अन्य पांडित्यपूर्ण गवेषणाएँ, जो शोध का आधार हो सकती हैं, इस शोध प्रबन्ध में नही है।''[2] विश्वविद्यालयों में शोध कार्य के सम्बन्ध में अपनाये जाने वाले पारम्परिक मानदण्डों की पोल खोलता है। कारण कि शोध का उद्देश्य अज्ञात की खोज तथा ज्ञात का नये मानदण्डों का विश्लेषण करना होता है; न कि मात्र ग्रन्थों एवं पत्र–पत्रिकाओं से प्रमाण इकट्ठा कर 'कटिंग' एवं 'पेस्टिंग'। आज विश्वविद्यालयों में होने वाले शोधकार्यों में इसी 'शार्टकट' का बहुशः प्रयोग किया जा रहा है। यदि कोई परिश्रमी एवं अध्यवसायी शोधकर्ता अथक् परिश्रम से 'अज्ञात को ज्ञात' करने का प्रयास करता है तो उसका यह प्रयास 'प्रमाणों' के अभाव में सफल नही हो पाता। लोक साहित्य पर अध्ययन करना तो कठिन ही नही अपितु खर्चीला एवं अत्यन्त दुष्कर भी है क्योंकि यदि शोधकर्त्ता गाँव–गाँव घूम–घूमकर अपने शोध हेतु आवश्यक सामाग्री जुटा भी ले तो उसे विद्वानों के विचारों से प्रमाणित करना असम्भव ही होगा। जैसा कि सर्वविदित है, कुछ वर्षों पूर्व लोक साहित्य को गँवारू एवं असभ्य लोगों का साहित्य माना जाता था, ऐसे में कोई 'विद्वान' भला क्यों उसका अध्ययन करता। तो फिर लोक साहित्य शोधक प्रमाण कहाँ से लाये? ऐसे में तथाकथित विद्वान शोध निर्देशक यह कहकर 'अनावश्यक, काल्पनिक बातों, सुनी–सुनाई किंवदन्तियों को शोध कार्य का आधार बनाया गया' 'यह शोध तो एक तरह से ईसुरी जैसे महान कवि का चरित्र हनन है। यदि हमारे कीर्ति पुरुषों पर इस तरह के शोध प्रबन्ध लिखे जायेंगे तो हम उनकी प्रतिष्ठा की रक्षा किस प्रकार कर पायेंगे'[3] 'कही शोध कार्य को नकार देते हैं।

उपन्यास का आरम्भ लोक कलाकारों के रियाज और उसी समय दलालों के वहाँ पहुँचकर सौदेबाजी करने की सूचना के साथ होता है। लोक कलाकार नगड़िया वाला, धीरे पंड़ा बनने वाला, ईसुरी बनने बाला, झींका वाला, मंजीरा, ढोल और रमतुला बजाने वाले बैठक में फाग–नाट्य का अभ्यास कर रहे थे कि इतने में 'आइकोन फोर्ड' ब्रांड कार से दो 'लड़केनुमा आदमी' जींस और डैनिम की जैकिट पहने, मामने के बटन खोले, गले में अत्याधुनिक फैशन के तहत रूद्राक्ष की मालायें और बाहों पर काले धागे में ताबीज बाँधे प्रवेश करते हैं। इस सम्बन्ध में लेखिका

की यह राय– ''उनका पहनावा यूनीफार्म की तरह था, जो किसी संस्था की एकता के चिह्न की तरह होता है। संस्था के क्या तेवर होंगे यह लड़कों की सुर्ख आँखों से जाना जा सकता है। उनकी नजरें भी नेजों की तरह तेज थी। जल्दबाजी अंगों में फड़क रही थी। चाल में खास किस्म की धमक जो दहशत पैदा करती थी। चेहरे के भावों में लोलुपता का रंग लार की तरह टपकता था।''[4] इन दलालों का वास्तविक परिचय दे देती है। रही सही खबर उनके संवाद स्वयं दे देते हैं–

''कितेक दिनन कौ पिरोगराम है''[5]

''कैसो गाँव है ! गाँवन में आजकल फागें को सुनत ? बैंचो सब पिच्चर के दिवाने हैं। सबै स्वाँग चाइए।''[6]

यह पूरा प्रसंग लोक कलाकारों की दयनीयता एवं दलालों की विभिन्न फितरतों से भरा पूरा है। दलाल की नजर में कलाकार तथा कला संयोजक की कोई इज्जत नही होती है। तभी तो वे फागों का सफल संयोजन करवाने वाली सरस्वती देवी पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं– ''तुम लोग खुदई देखोगे, एक दिना कि तुम्हारी बूढ़ी सूरसती चिरइया जहाज में बैठकें उड़ गई। हम ऐसी तमाम औरतन खों जानते हैं, जौन अनुदान खा–खाकें मुटिया रही हैं। सों बस सुरसती जी होंगी मालामाल और तुम ससुर जू ठोकते रहो नगड़िया, नचते रहो जिंदगीभर।''[7] वे दलाल लोक कलाकारों को किस प्रकार साधते हैं और क्यों ? इस प्रश्न का उत्तर उन्हीं के शब्दों में दिया जा सकता है– ''फिरांस की पार्टी है, राग–रंग की सौकीन है। ओरछा में रजऊ और ईसुरी की प्रेम कहानी सुनी होगी। सालिगराम कहारे गुनी गाइड है सो समझा दई कि बुन्देलखण्ड में पग–पग पर मनमोहिनी लुगाई हैं।''[8] और फिर लाभ, लोभ, लालच और बेचारगी के बीच झूलते कलाकारों को आज की जनसंचार क्रान्ति की प्रलोभन और ढेर पैसों की लालच भी दिया जाता है– वीडियों फिल्म बनगी, सी0 डी0 बिकेंगी, हिस्सा बराबर का रहेगा। आमदनी लगातार होगी। जी0 टी0 वी0, सोनी टी0 वी0 पर देख लेना अपना फोटू।''[9] इस प्रकार अन्ततः वह लोक कलाकारों की फाग–मण्डली इन लोक दलालों के साथ चली जाती है और सत्रह गाँवों की खाक छानकर वहाँ पहुँची ऋतु और माधव खाली हाथ रह जाते हैं, जो अपने शोध के सिलसिले में 'रजऊ' के चरित्र और ईसुरी की सत्यता जानने हेतु वहाँ पहुँचे थे।

स्त्रियों के चरित्र को लेकर लोक में कैसी–कैसी रुढ़ियाँ एवं मान्यतायें बन जाती हैं ? किसी स्त्री को किस प्रकार बदचलन सिद्ध किया जाता है ? उस तथाकथित बदचलन स्त्री पर बात करना वो भी किसी लड़की का बदचलनी की ही निशानी माना जाता है। तभी तो ऋतु द्वारा 'रजऊ' के विषय में जानकारी माँगने पर एक आदमी विद्रूप सा चेहरा बनाकर कहता है कि ''आजकल पढ़ाई में लुच्चियायी फागें सोई पढ़ाई जाती ?''[10] यही नही एक दूसरे गाँव में एक मनचले नवयुवक ने ऋतु का स्वागत किया प्रस्तुत फाग द्वारा –

जुबना कौन यार खों दइए,
अपने मन की कइए।।
हैं बड़बोल गोल गुद्दा से का लौं देखे रइए।।
जब सर्रात सेज के ऊपर पकर मुठी में रइए।।
हात धरत दुख होत ईसुरी पीरा कैसें सइए।।[11]

और स्वागत भी ऋतु की बुआ के गाँव में हुआ। फिर बदनामी और बेइज्जती के भय से ऋतु पर शोध विषय को बदलवाने का भी दबाब पड़ा। ऐसे में रजऊ के स्त्रीत्व पर विचार न करके ऋतु शोध विषय बदलने को सोंचती है किन्तु बाद में ऐसा नही करती है।

औपन्यासिक कृति की आधिकारिक कथा लोक प्रसिद्ध फाग गायक ईसुरी और नायिका रज्जो अर्थात रजऊ की प्रेम कहानी है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि जब कोई किस्सा–कहानी लोक कंठ में सुरक्षित रहती है तो उसमें

विस्तार एवं विभिन्नता का स्वतः समावेश होता जाता है। लोक अपनी रुचि, मान्यता, परम्परा एवं आवश्यकतानुरूप उसमें परिवर्तन एवं परिवर्द्धन करता रहता है। चूँकि लोक कहानियाँ ही लोक को नैतिक एवं सामाजिक शिक्षा प्रदान करती आई हैं, इसलिए किसी कहानी के लोक कहानी बनने में तदनुरूप तत्त्वों का समावेश समाज के प्रबुद्ध वर्ग द्वारा स्वयं कर लिया जाता है। इसीलिए लोक रूचि के विषय में कहा जाता है – 'जितने मूड़ उतने ही विचार' अर्थात एक ही कहानी/घटना जितने लोगों द्वारा कही जायेगी उतने ही प्रकार की होगी। यही लोक धारणा 'ईसुरी–रजऊ' कथा पर भी चरितार्थ होती है। सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड प्रान्त में यह कथा कई रूपों में कही एवं सुनायी जाती है और कई रूपान्तरों के साथ–साथ बुन्देली में आज भी प्रचलित है। आलोच्य उपन्यास में ईसुरी और रजऊ की जो कथा रखी गई है उसका केन्द्रीय भाव प्रस्तुत है –

छतरपुर जिले के मधपुरा गाँव में बूढ़ी काकी अपनी बहू रजऊ अर्थात रज्जो की सासु रहती हैं। जब उनके पुत्र प्रताप का गौना आया तो वह अपनी पत्नी रजऊ की खूबसूरती पर ऐसा मुग्ध हुआ कि वह पढ़ना–लिखना सब भूल गया। परिणाम यह हुआ कि वह 'मिडिल' में फेल हो गया जबकि उसकी माँ उसे ''पढ़ाना चाहती है और नौकरी पेशा भी बनाना चाहती है।'' गाँव वालों के परिहास और माँ की इच्छा से प्रताप छतरपुर जाकर तीन वर्षों से मिडिल में लगातार फेल होने का सिलसिला तोड़ना चाहता है। छतरपुर जाकर पढ़ाई एवं परीक्षा के कारण वह 'होली' जैसे त्योहार पर घर नही पहुँच पाता है जबकि फागुन के मतवाले महीनें में फगवारा ईसुरी अपनी साथी धीरे पंडा के साथ फाग गायन हेतु आता है। फगवारा प्रेमानंद सूरे की कुटी में रहकर फाग गायन का आरम्भ करता है। यहीं गाँवों की परम्परानुसार उसे प्रताप–बहू रज्जो के अप्रतिम सौन्दर्य एवं लावण्य की चर्चा सुनायी पड़ती है। कवि, फागवारा और संवेदनशील पुरुश होने के नाते वह ईसुरी जो तीन लड़कों का बाप है और अपने घर में सुन्दर पत्नी को छोड़कर आया है, रज्जो के दर्शन की जुगत करने लगता है। प्रेमानन्द द्वारा रज्जो के सौन्दर्य की प्रशंसा एवं पिरभू जो उसी गाँव की नाइन बहू का पुत्र एवं रज्जो का मुँहलगा देवर है, ईसुरी की मिलनोत्कंठा को और बढ़ाता है। लोककवि ईसुरी अपनी फागों में रजऊ के काल्पनिक सौन्दर्य का वर्णन एवं उसके नाम की छाप जोड़ना शुरु कर देता है। अब शुरू होती है गाँव भर में यह चर्चा ''ईसुरी आजकल 'रजऊ' लगाकर फाग कह रहे हैं, क्या उनकी घरवाली का नाम रजऊ है ?–ना जी ना। अपनी औरत का नाम फाग संग कौन जोड़ेगा ? फाग में तो सदा दूसरे की जनी का नाम जोड़कर मजा लिया जाता है।

–प्रताप की दुल्हन से आँखे लड़ी हैं, ऐसी सुनी है हमने।''[12]

फिर क्या था, रजऊ के जेठ, काकी के जेठ के बड़े सुपुत्र घर, परिवार की इज्जत के रखवाले और प्रताप के पैतृक सम्पत्ति पर नजर गड़ाये रामदास ताऊ शीघ्र ही काकी के घर पर चेतावनी देने पहुँच गये। फिर शुरु होता है सासु की मर्दायाओं एवं कुल परम्पराओं के रक्षण हेतु बहू से रार–तकरार, मान–मनौव्वल और समझने–समझाने का अविरल–अविराम सिलसिला, आशंका और गालियों का यह दौर गाँव वालों के ताने, व्यंग्य और चटखारों के बीच चलता रहता है।

ईसुरी, प्रसिद्ध फगवारे, मजबूत बाहों, पुश्ट और मांसल जाँघों की स्वामिनी बीस वर्शीय नवयुवा, प्रोशित पतिका रज्जो, जिसका मुख–खिलौने जैसा सुन्दर, भरा हुआ चौड़ा चकला चेहरा, पूर्ण विकसित फूल सदृश, काले बालों की पाटी पारने वाली, सिन्दूर भरी माँग और सुर्ख चूड़ियों से भरी कलाई, नुकीली दाढ़ी पर गुदना के बुन्दे वाली, वह जहाँ खड़ी हो जाय वह जगह खिले उठे, उसकी चाल मतवाले हाथी सदृश, आल में पके रंग की धोती और हरे रंग की अंगिया पहने, उसके सौन्दर्य पर शनैः–शनैः डूबते गये, और गहरे डूबते गये। ईसुरी की इस डूबन में सहायक बनते गये पिरभू, प्रेमानन्द, रज्जो की मनमोहक अदायें और स्वयं प्रेम पगा और अतृप्त उनका हृदय। धीरे पंडा समय की नजाकत और परिस्थिति को भाँप कर चलने वाला इंसान, मित्र भाव से ईसुरी को समझाने लगा–

''ससुर जू, तुम क्या समझ रहे हो, हमारी जिजमानी खतम हो गयी, सो क्या हमारे कारण ? हमारा नाश हुआ है तुम्हारे मारे। बगौरा के रज्जब अली का मिजाज तुम तो जानते हो, पर तुमने समझी कि वहाँ चतुर्भुज की जमींदारी है। सो मन आई फागें बर्राने लगे और हम चले तुम्हारे पाछू–पाछू। सो ऐन उनकी बहन के निकरते ही फाग गा दी–

अँखिया पिस्तौलें सी भरकें, मारत जात समर कें।।
दारू दर लाल की गोली, गल कर देत नजर कें।।
देत लगाय सैन की सूजन पलक की होयी धर कें।।

बस! ..... हमने फाग तो कही नही अर्थ कर दिया, हमने सोचा वे हमें ईनाम देंगे पर हमें क्या पता था कि 'सूजन' उनकी बहन का नाम है। बस उनने सजा सुना दी। ''ईसुरी ने श्री मित्र धर्म का पालन करते हुए – अब ऐसा नही होगा। अबकी फाग का रंग ढंग ही ओर है।''[13] सफाई दे दी; परन्तु रज्जौ के प्रेम में डूबा ह्रदय उन्हें प्रियतमा के दर्शन हेतु रज्जों की गलियों, कुओं की तरफ बरबस खींचने लगा। इस लगाव और सम्बन्ध को सहेजते–छिपाते ईसुरी सोंचते ''काश, स्त्री और पुरुष के इस लगाव का कोई पवित्र सा नाम होता तो दुनिया में दुख दूर हो जाते।'' और ईसुरी में जानते थे कि ''जो औरत सास की गाली खाकर, आदमी से पिटकर हमारी प्रीति को बरकरार रख सकती है, वह मामूली नहीं, राधिका जू से दा पेड़ आगे की है।''[14] जबकि धीरे पंडा जानते हैं किसी ब्याहता से दूसरे के गाँव जाकर प्रेम करना 'सिर्री' होने की निसानी है। इसलिए ईसुरी को समझाते हुए कहा– ''भली चाहो तो ढंग से रहो, नातर तुम पिटोगे और हमें पिटवावोगे। प्यार का नशा झड़ जायेगा।''[15] किन्तु ईसुरी प्रेमी थे, प्रेमी को अपनी विरह व्यथा अपनी प्रेमिका तक पहुँचाये बिना चैन नही पड़ता, सो वे विकल हो पिरभू से नई फागों द्वारा रज्जो के पास संदेशे भिजवाते रहते और प्रिया मिलन की सतत् चालें चला करते।

रज्जो सब जानती, सुनती और चुप रहती क्योंकि हमारे समाज में जन्म–जात संस्कारों की यही भूमिका है। किन्तु वह समझ नही पा रही थी कि जिन्दगी का असली रूप क्या है ? वह किसी घटाटोप से घिरती जा रही थी या कोहरे से निकल रही थी ? वह यह भी नही समझ पा रही थी कि उसे जो खींच रहा है, असलियत में उसका नाम क्या है ? प्यार, मुहब्बत, बदचलनी, लालसा या बदनामी ? ईसुरी के बराबर फागों में 'रजऊ' सम्बोधन और प्रेम ने 'रजऊ' पर ऐसा प्रभाव छोड़ा कि वह सदैव ईसुरी के दर्शन एवं नित नये सृजित फागों की दीवानी हो गयी। यह प्रेम की लौ दोनो तरफ से समान रूप से लगी थी किन्तु रज्जौ ऐसी प्रेम दीवानी हुई कि वह रातभर सोये या न सोये फिर भी उसकी आँखों में सपनों की कमी न होती। न जाने कितने सपने! कलियों से, फूलों से और नई–नई कोपलों जैसे सपने। इन्हीं सपनों के बहाने रज्जो अपने प्रेम को बड़ा और लम्बा करने लगी और इसी अकांक्षा में कि कहीं फगवारे से मुलाकात हो जाय वह गाँव की प्रत्येक गली–रास्तों में चक्कर लगाती रहती। ऐसी धुन, ऐसी लगन कि पानी भरने जाने पर बेसुधी में रस्सी कुएँ पर छोड़ दे ? कभी गगरी कुएँ पर से खाली ही ले आये ? कभी भैंस का दूध दुहना भूल जाये। कभी आटे की जगह बेसन माँड डाले तो कभी गेहूँ, चना की जगह उड़द पीस डाले। कभी पोलका उल्टा पहन ले तो कभी धुतिया की किनारी उल्टी....। फागें सुनकर वह सब कुछ स्वयमेव भूल जाती। परम्परा, प्रेम और संस्कारों में बँधी रज्जो एक अनचाहे, अनजाने भय से सदैव उदास रहने लगी। ईसुरी रज्जो की सासु द्वारा उसकी बहू का नाम लगाकर फागें न गाने का कौल भरकर कहने लगे– काकी– जिस रजऊ का नाम अपनी फाग के संग लगाते हैं, वह न तो तुम्हारी बहू है और न प्रताप की दूल्हन–

देखी रजऊ काऊ ने नइयाँ।
कौन वरन तन मुइयाँ।
काँ तौ उनकी रहस रास है, काँ दए जनम गुसइयाँ ?[16]

तारीख गवाह है जब–जब प्रेमियों को सामाजिक मर्यादा एवं प्रतिष्ठा खतरे में दिखाई पड़ी है तो अकसर

उन्होंने बहाना बनाकर प्रेम करने से ही मना किया है। 'रज्जो' की अलौकिक व्याख्या के बाद सासु ने कुछ नही कहा किन्तु उदास रज्जो यह स्पष्ट जान गयी कि ''तीनों लोगों की साजिश ने उसको तबाह किया है। प्रताप, रामदास और ईसुरी। अहंकार, मर्यादा और डर उन मर्दों को नाइंसाफी की हद तक उतार लाया। अपघात्, छद्म और अपमान के चलते उसकी उम्मीदों का यही हश्र होना था ?''[17] उसने खुद को समझाया– मै अधर्म करती जा रही हूँ जबकि फगवारे ने पर–स्त्री को त्यागकर धर्म का रास्ता पकड़ लिया।''[18]

किन्तु, ईसुरी दीवाने ही रहे और रज्जो पागल। फागों में कुछ दिनों के अन्तराल बाद फिर रजऊ सम्बोधन लगने लगा और रज्जो भी गली, रास्तो के अलावा सूरे की कोठरी और मोदी की बगिया के निकुंजों में ईसुरी से एकांतालाप करने लगी। ऐसे में प्रताप क्या गाँव के अनाड़ी लोग भी इस मिलन का अभिप्राय स्पश्ट जान गये क्योंकि बसारी बाली बहू कहा करती है–

खैर खून खुसी बैर प्रीति मदुवान।
रहिमन दाबे ना दबै, जानै सकल जहान।।

ऐसे में फगवारे की पराई औरत से आशिकी और रज्जो का पर पुरुष के साथ गुलछर्रे उड़ाना, प्रताप को नपुंसक, बेचारा और खसिया बना गया लोगों की नजरों में। समय की नजाकत समझ कर धीरे ने मित्र धर्म का निर्वाह करते हुए ईसुरी को समझाया– ''विवाह बन्धन सामाजिक बन्धन है। हम तुम समाज में रहते हैं, उसके पार नही जा सकते और तुम अपनी फाग में खुल्लम–खुल्ला कह रहे हो कि रजऊ को छोड़ने का तुम्हारा कोई विचार नहीं, चाहे मरना पड़े।''[19] किन्तु ईसुरी न माने। इस परवान चढ़ते प्रेम को प्रताप ने देखा और ईसुरी के चरणों में गिर कर दया की भीख माँगी– 'महराज, हमें हमारी जोरू की बदनामी की सजा न दो।'[20] शंकालु प्रताप रजऊ का, अपनी बहू का पीछा करने लगा पनघट, खेत, बाग, ताल और मंदिर के आस–पास या दूर का ऐरिया उसके पाँवों तले रहने लगा। क्योंकि समझाना–बुझाना बेकार गया। गुहार–पुकार ठुकरा दी गई। दया की भीख मिली नहीं। एक गँवई किसान जो यह जानता है कि ''औरत का मालिक रहते किसी का हक नहीं बनता कि औरत के मामले को लेकर आगे आये। बस, इसीलिए ही अब तक बच रहे हो महाराज। ऊपर से हमारे धर्म में ब्राह्मण पर हाथ उठाना पाप माना गया है।''[21] और एक दिन साँझ के समय जब सूरज देवता अन्तर्धान हुए। गाँव के बाहर मोदी की बगिया में ईसुरी और रज्जो आलिंगन बद्ध हुए। सही समय, सही योग ओर आक्रमण के ग्रह–नक्षत्रों की प्रबलता में प्रताप ने लात–घूँसों की बरसात और लठिया से ईसुरी के पाँव की बजाय खूब पीठ पूजा की। रज्जो बचाने दौड़ी वह भी पिटी। उसी रात अफवाह फैली कि ईसुरी छतरपुर के राजा का आदमी है, वे प्रताप को बँधवाकर मँगा लेगे। आशंका और भय से प्रताप घर छोड़कर भाग गया और रामदास की सहायता से अंग्रेजी सेना में भर्ती हो गया क्योंकि प्रताप के भाग जाने से परिवारी होने के कारण सारी जमीन, जायदाद रामदास को ही मिलनी थी। इसलिए उन्होंने अफवाहों को उड़ाने और प्रताप को भगाने में मुख्य भूमिका निभाई। प्रताप के भाग जाने से रज्जो ऐसी टूटी कि उसने घर से निकलना, खाना–पीना सब छोड़ दिया। अब वह बार–बार अपनी गुइयाँ नाइन के उकसाने पर भी ईसुरी से मिलने नही जाती और ईसुरी सोंचते प्रताप के भाग जाने से अब उनके प्रिया मिलन का मार्ग कश्टकहीन हो गया किन्तु रजऊ मिलने क्यों नही आती ? इसी प्रकार एक दिन इंतजार करते–करते ईसुरी मधोपुरा छोड़कर चला जाता है। उसके साथ ही प्रेमानन्द सूरे भी चला गया।

ऋतु ने बसारी बाली बहू से ईसुरी और रज्जो की यही प्रेम कहानी सुनी। इसी प्रकार ओरछा के गाइड शालिगराम कटारे ने धौर्रा के राज कवि ईसुरी और मुसाहिब जू की इकलौती बेटी रज्जू राजा की प्रेम कहानी भी सुनायी, जिसमें फगवारे ईसुरी और रज्जूराजा के प्रेम–मिलन और राजकीय कोप का मिश्रण है। मुसाहिब जी द्वारा यह जान लेने पर कि ईसुरी उनकी बेटी रज्जूराजा का नाम लगाकर फागें गाता है और उसके रज्जू से प्रेम सम्बन्ध हैं, ईसुरी पर चोरी का लांछन लगाकर पिटवाया जाता है और रज्जू राजा को भी घोर यातनायें दी जाती

हैं। एक दिन नौकरानी रूकमणि की सहायता से ईसुरी–रज्जूराजा के लेकर कहीं गुमनाम जगह चले गये। कोई कहता कि बाप ने उसे बेतवा में बहा दिया, कोई कहता रज्जू देशपत दिमान की जासूसी औरतों की सेना में भर्ती हो गयी, कोई कहता वह छतरपुर की रानी के पास चली गयी और कोई कहता कि वह ईसुरी संग बघौरा की जमींदारिन आबादी बेगम के यहाँ चली गयी। हाँ ईसुरी के विषय में सब जानते थे कि वे अपने मित्र चतुर्भुज के पास बघौरा चले गये।

ईसरी और रज्जो की इस प्रेम कहानी के साथ–साथ लेखिका ने तद्युगीन चलने वाले स्वाधीनता संग्राम का भी यथोक्त वर्णन किया है। इसी क्रम में राजा मर्दन सिंह, देशपत दीवान, लक्ष्मीबाई आदि का अंग्रेजों से संघर्ष और पराजय की सूचना विभिन्न घटनाओं और पात्रों द्वारा दी गयी है। उस समय की जोगिनी यात्रा या दरवेशों का गा–गाकर क्रान्ति की जानकारी देना हो या राजन्य वर्ग के अलावा अति सामान्य स्त्री–पुरुशों की स्वाधीनता सम्बन्धी चेतना का वर्णन सभी को उपन्यास में स्थान दिया गया है।

ऋतु और माधव, माधव और ऋतु, दोनों डॉ0 पी0 के0 पाण्डेय के निर्देशन में शोधकार्य कर रहे हैं। ऋतु रजऊ के विराट् जीवन चरित का लोक में अनुसंधान कर रही है और माधव ईसुरी के जन्म, शिक्षा, विवाह, परिवार, व्यवसाय, काव्य संसार, मृत्यु और उनके व्यक्तित्व पर शोध कर रहा है ईसुरी को जीवन से, जीवन के आनन्द से, यौवन–उल्लास और इन्द्रिय बोध के संसार से अथाह प्रेम है। और यह प्रेम विपरीत लिंगी दो जनों में ही सम्भव है। इसीलिए यदि ईसुरी की कथा सत्य है तो रजऊ की कथा काल्पनिक नही हो सकती। ऐसा मानना है–ऋतु का। उसे यह बात अखरती है कि पूरे बुन्देलखण्ड में 'ईसुरी' के अस्तित्त्व को सभी स्वीकार करते है किन्तु 'रजऊ' को मात्र काल्पनिक क्यों माना जाता है ? वह सोचती है कि एक हाड़–मास की स्त्री खड़ी करके कवि या रचनाकार उसे वायावी कैसे बना देते हैं ? वह माधव से पूछती है– ''जो थीसिस तुम लाये हो, उससे रजऊ का क्या बनेगा? यह स्त्री विरोधी शोध ग्रन्थ हैं।'' माधव भी इसे स्वीकार करता है, इसीलिए वह कहता है– ''पारम्परिक रूप से शोध करने वाले लोग रजऊ को हाड़ मांस की स्त्री तो मानते हैं मगर सामने नही लाना चाहते। इससे ईसुरी जैसे महान कवि के चरित्र पर धब्बा लग सकता है।''[22] ऐसे ही ऋतु और माधव, रजऊ और ईसुरी के जीवन की सुलझी–अनसुलझी, ज्ञात–अज्ञात घटनाओं का लोक व्याप्त लेखा–जोखा ढूँढ़ने में लगे हुए थे। इस हेतु वे झाँसी, ओरछा, महोबा, छतरगढ़, टीकमगढ़, अर्थात समग्र बुन्देलखण्ड के गाँव–गँवई की खाक छान रहे है, जैसा कि लोक साहित्य अध्येताओं को करना पड़ता है। इस क्रम में वे स्वयं की ईसुरी और रजऊ के रूप में कल्पना करते रहते हैं। उनके मध्य परस्पर आर्कषण, लगाव और प्रेम का आग्रह–निवेदन उनकी चितवन और मुखाकृतियों से देखा जा सकता था।

चिरगाँव की निवासिनी ऋतु की कहानी भी अत्यधिक दिलचस्प है। वह एक कुआँरी अब्याहता माँ विमलेश की लड़की है, जो विद्यार्थी जीवन में अपने सहपाठी विकल को प्रेम करने लगी और अपनी कोमल भावनाओं के वशीभूत हो, ऊँच–नीच और सामाजिक मर्यादा आदि पर विचार करने के बाद भी स्वछन्द प्रेम की गहराइयों में उतरती गई, उतरती गई। घर की कुआँरी कन्या का जब किसी से प्रेम सम्बन्ध चल रहा हो, तो इसे जानकर घरवाले शीघ्र ही लड़की का किसी भी तरह विवाह कर देना चाहते हैं वही विमलेश के साथ हुआ। बाद में उसके पति ने गर्भ में पलने वाली संतान का हवाला देकर उसे कुलटा सिद्ध करके घर से निकाल दिया और गर्भवती विमलेश पति से निष्कासित और प्रेमी से दूर हो वहाँ पहुँच गई जहाँ से समाज का रास्ता बन्द हो जाता है। ऐसे में उसे माता–पिता भी शरण नही देते है किन्तु आसरा मिलता है – विधवा मौसी के यहाँ। वहीं पल–बढ़कर ऋतु आज जीवन के इस मोड़ तक पहुँची है। और माधव जो ऋतु की प्रतिभा और सौन्दर्य का कायल है और उसे सदैव उत्साहित किया करता है कि वह ''सच में स्त्री के लिए पुरुषों द्वारा गढ़ी भाषा को''[23] एक दिन अपदस्थ कर देगी। कॉलेज के दिनों में वे दोनों ईसुरी की फागें गाते और ईसुरी– रजऊ का अभिनय करते–करते कब प्रेमी–प्रेमिका बन गयें, कब वे

एक दूसरे की हार–जीत को अपनी हार–जीत समझने लगे, यह जान ही न पाये। खैर, ईसुरी के जीवन पर शोध करने वाला माधव, जो निम्न–मध्यम वर्गीय परिवार में पैदा हुआ, जिसके मामा छतरपुर के महाराजा कॉलेज में 'लेक्चरार' के पद पर माधव को नियुक्त करवा सकते हैं क्योकि वे 'मैनेजमेंट कमेटी' के सदस्य हैं। इसीलिए माधव की माँ उसे सदैव मामा के यहाँ भेजना चाहती हैं। बकौल माधव उसके मामा का घर 'आधुनिक नरक' है जहाँ रात में जागना और दिन में सोना होता है और मामा के बड़े बेटे संजय द्वारा क्रिकेट का सट्टा लगाया जाता है, जहाँ 'जिम' व्यायाम के बहाने 'रस रंजन' का कार्यक्रम चलता रहता है, वहाँ माधव को जाम बनाने होते हैं और झुक कर पेश करने होते हैं। इसीलिए माधव वहाँ जाना नही चाहता और उसने 'ईसुरी' द को अपना इष्ट बनाकर शोध कार्य जारी रखा। इसी बीच पिता ने उसे सगाई सम्बन्ध के लिए बुलाया, रिश्ता माधव के मामा की कृपा से धनी परिवार के यहाँ से आया था। माधव ने जाकर मना कर दिया, जिससे मामा और पिता दोनों ही माधव से रूश्ट हो गये। माधव भी घरवालों की अवहेलना के अपराध बोध से व्यथित रहने लगा। उसका स्वभाव चिड़चिड़ा तथा व्यवहार नीरस होता जा रहा था, जिसे ऋतु खूब समझ रही थी। उसे यह आशंका थी कि उसके जन्म की कथा कहीं उसे माधव से विलग न कर दे क्योंकि वह जानती है – ''मेरा भाग्य और अभिशाप दोनो जुड़वा हो गये हैं''[24] और वह यह भी कि आज भी लड़कियों के संग लड़कों पढ़ना, लिखना, घूमना, फिरना फैशन माना जाता है किन्तु इससे आगे हदबन्दी शुरु हो जाती है और यह हदबन्दी अक्सर लड़के के घर वालों की तरफ से लगती है। इस बार माधव जब छतरपुर गया तो ऋतु की माँ की अस्वस्थता का समाचार पाकर भी वापस नही आया। माधव तो नही आया किन्तु ऋतु को माधव की याद बराबर आती है और सम्मिलन की यादें उसके भीतर कोहराम मचाने लगीं, उसे पुनर्मिलन हेतु उकसाने लगीं। ऐसे समय ही माधव की भेजी चिट्ठी उसे मिलती है जिसमें माध ाव के मामा की तरफ से माधव को भविश्य में 'डिस्टर्ब' न करने की चेतावनी तथा माधव के पी–एच0डी0 छोड़ने की सूचना दी जाती थी। ऋतु भी माधव की यादों के साथ पी–एच0डी0 पूर्ण करने को महत्त्व देती है। कुछ समय बाद माधव का एक पत्र ऋतु को पुनः प्राप्त होता है, जिसमें माधव का फोन नम्बर तथा गुजरात प्रवास के दौरान 'अहमदाबाद' के दंगों की सूचना के साथ ऋतु को अपने पास बुलाने की सूचना दी गयी। ऋतु भी अपने शोध को पूरा करके शीघ्र माधव से मिलने हेतु छतरपुर जाना चाहती है। मगर चाहने से क्या होता है, ऋतु का शोध और उसका माधव से प्रेम दोनो उसके न चाहने पर भी अपूर्ण रह जाते हैं। लेखिका के शब्दों में– ''निकट से जानने की पीड़ा और दूर होते जाने की दर्दनाक मुक्ति के पीछे वह क्या है कि तन–मन मिलने के बाद भी भावनाओं का ऐसा बँटवारा.... अपने रास्तों पर भी और माधव..... में कुछ भी तो नही कह पाई माधव से, चाहत का यह भी एक रूप हैं ? या कि मुक्ति का मार्ग ?[25]

'कही ईसुरी फाग' उपन्यास का नामकरण लेखिका ने उपयुक्त ही किया है। सम्पूर्ण उपन्यास आयन्त ईसुरी के चरित्र, प्रेम एवं फागों से ही परिपूर्ण है। लोक प्रचलित ईसुरी और रजऊ की कथा विभिन्न रूपों में सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में प्रचलित है। आलोच्य कृति में लेखिका ने बड़ी ईमानदारी, तटस्थता और मानवीयता के साथ बुन्देलखण्ड क्षेत्र के जन जीवन का झाँकी प्रस्तुत की है। उसने अपनी कथात्मक प्रतिभा के बल पर ईसुरी के फागों की नायिका रजऊ के काल्पनिक चरित्र की साक्षात् कर दिया है। इसी क्रम में उसने गाँवों में प्रचलित अनेक किस्सों कहानियों का भी यथोक्त वर्णन किया है। लेखिका का मन स्त्री मन की विभिन्न गाँठों को खोलने के साथ–साथ उन्हें स्वतंत्रता, समानता और न्याय दिलाने में अधिक रमा है। इसी क्रम में उसने अनेक लोक प्रचलित रुढ़ियों एवं मान्यताओं का भी वर्णन किया है। मेरे विचार प्रस्तुत उपन्यास का से शीर्षक 'कही ईसुरी फाग' बहुत ही सार्थक है। इस कथ्य के लिए यह शीर्षक नवीन बोध की स्थापना के साथ पूर्ण व्यंजनात्मक एवं सटीक भी है।

'कही ईसुरी फाग' औपन्यासिक क्षेत्र में विशिष्ट स्थान का अधिकारी है। इसमें बुन्देलखण्ड क्षेत्र में प्रचलित ईसुरी की फागों को आधार बनाकर लोक नायक ईसुरी एवं रजऊ की कथा ही नही वरन् इस क्षेत्र में व्याप्त अनेक

विशिश्टताओं का अंकन हुआ है। यहाँ इन विशिष्टताओं में कुछ का उल्लेख समीचीन होगा–

1. परिवेश का सफल अंकन – आलोच्य कृति 'ईसुरी' के जीवन पर केन्द्रित है। प्रसिद्ध लोक कवि ईसुरी का समय प्रथम स्वाधीनता संग्राम अर्थात 1857 ई0 के आस–पास माना जाता है। इसीलिए लेखिका ने इसमें बुन्देलखण्ड क्षेत्र में होने वाली तद्युगीन क्रान्ति का भी वर्णन किया है। 1857 ई0 में बुन्देलखण्ड क्षेत्र में घटने वाले विभिन्न घटनाओं का वर्णन लेखिका ने सदाशयता सहानुभूति ओर प्रतिबद्धता के साथ किया है। इस हेतु रचनाकार ने उसी परिवेश के बीच रहने वाले पात्रों, चरित्रों एवं उनके क्रिया–कलापों, विश्वासों, व्यवहारों एवं रूढ़ियों का आश्रय लिया है। गंगिया बेड़िन और रजऊ जब क्रान्तिकारियों के लिए गुप्तचरी कर रही हैं तो वे अपने क्रान्तिकारी साथियों को सावधान एवं सचेत करने के लिए फाग लोकगीत का सहारा लेती है–

गुइयाँ बचके जइयो पानें।
गली बँदी तोय लानें।
राज कुराज परौ बेराजी की खों देंय डरानें।
गोर गैल घाट बँद गओ है, बच बच कें ही जानें।।[26]

अर्थात् हे सखी! पानी भरने के लिए बचकर जाना। गली पर हर ओर नाकेबन्दी है। आजकल बड़ा अंधेर है। मनमानी हो रही है, किससे शिकायत करें ? खतरनाक घाट हो गये हैं, हर जगह घातें लगी हैं। वास्तव में 'ईसुरी' के जीवन काल में अंग्रजों के अत्याचार बहुत ज्यादा बढ़ गये थे। 'झाँसी की रानी' के कारण अंग्रेज इतने भयाक्रान्त थे कि उन्होंने सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड को सैन्य छावनी में परिवर्तित कर दिया था। किसान डर के मारे अपने खेत और पशु छोड़कर भाग जाते थे। सर्वत्र मौत का सन्नाटा छाया रहता था, धाँय–धाँय की आवाज एवं धूल के गुबार रास्तों में दिखते ही रहते थे। फाग गायक ईसुरी मधोपुरा, धौर्रा एवं बघौरा से सम्बद्ध थे, अतः लेखिका ने इन सभी स्थानों एवं वहाँ की राजकीय व्यवस्था आदि का सफल अंकन किया है।

2. युग धर्म का निरूपण– आलोच्य उपन्यास लोक जीवन में व्याप्त 'ईसुरी' एवं रजऊ के चरित्र को उद्घाटित करने हेतु लिखा गया है। ईसुरी की कथा एवं फागें लोक कण्ठ में सुरक्षित रह, पीढ़ी दर पीढ़ी विकसित होती चली आ रही हैं। इसीलिए इस कथा में लोक रूढ़ियों, निष्प्राण परम्पराओं एवं अंधविश्वासों का मिल जाना अति स्वाभाविक है किन्तु इन रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों से लेखिका ने कहीं भी सहमति प्रदर्शित नही की है। ईसुरी दो बच्चों के पिता एवं विवाहित हैं फिर भी परस्त्री पर फागें रचते ही नही वरन् उससे प्रेम स्वाँग रचाने का ख्वाब भी देखने लगते है। इसीलिए उन्हें डाँटते हुए धीरे पंडा कहता है– ''क्या ही तुम्हारे हुनर का बाँकपन है ? फागों की कला में ये टहनी फूटी हैं ? दो बच्चन के बाप हो गए पर इश्क नही झाड़ पाए सो इश्कीली फागें कहने पर उतर आये ? आज तो मजनू को मात देने वाले लग रहे हो। हिम्मत करी तो पराई लुगाई पर उतर आए। तुम सदा के डरपोक साले, हमें निडर बनकर दिखा रहे हो ? या उस औरत को शेर बनकर डरा रहे हो ?[27]

स्वतंत्रता संग्राम के समय अंग्रेजों के खिलाफ जन चेतना की व्यापक लहर अंग्रेजी सेना के भारतीय सैनिकों तक पहुँच गयी। अब वे अंग्रेजों के बजाय अपने देश के लिए मर–मिटना चाहते हैं। लेखिका ने भी क्रान्ति के चित्रण में अपने दाय को प्रकट करते हुए रजऊ के पति प्रताप, जो अंग्रेजी सेना में सिपाही था, के माध्यम से कहा है– ''फिरंगियों के लिए मरने से अच्छा है, फिरंगियों के हाथ मरूँ। मेरा बस चलता तो चर्बी के कारतूस इस्तेमाल करने से पहले ही यहाँ से भाग लेता। ..... मैं उस झाँसी की रानी के पास जाना चाहता हूँ, जिसकी सहन शक्ति में अंग्रेजों की गुलामी के लिए जगह नही बची।''[28]

इसके अतिरिक्त लेखिका ने सरस्वती देवी, मीरा सिंह एवं ऋतु के माध्यम से नई चेतना अथवा आधुनिक चेतना को भी यथाशक्य स्वर दिया है। मीरा सिंह, जिनकी शादी सोलह वर्श की आयु में कर दी गयी तब वह मात्र

कक्षा–8 में पढ़ती थी और सत्रह वर्शीय पति नवीं कक्षा में पढ़ने वाला ऐसा छात्र, जिसका मन पढ़ाई में बिलकुल नही लगता था और मीरा पढ़ाई जारी रखना चाहती थी किन्तु भारतीय परिवेश में बहू का पढ़ाना अभी भी असंगत माना जाता है, वहाँ मीरा के लिए भी यह सम्भव नही था कालान्तर में दो बच्चों की माँ मीरा ने अपनी जीवटता और हिम्मत के बल पर विपरीत परिस्थितियों में भी बी0ए0 पास करके आँगनबाड़ी में नौकरी ही नहीं की अपितु महिला सशक्तिकरण की कार्यशालाओं में भी भाग लेने लगी। मीरा के सम्बन्ध मे लेखिका का यह विचार कि – ''धुर गाँव की लड़की मीरा ! जिसे रूरल कहा जाता है, वहाँ की स्त्री मीरा! उसे देखकर मेरी हिम्मत दुगुनी हो गयी जबकि वह बोली– तुम तो बड़ी बहादुर लगीं।''[29] वास्तव में लेखिका को स्त्री अधिकारों का पक्षधर सिद्ध करता है।

3. प्रेम–सम्बन्धों का चित्रण– 'कही ईसुरी फाग' में आद्यन्त स्त्री–पुरुष सम्बन्धों का निरूपण किया गया है। ईसुरी और मधोपुरा निवासी रजऊ के प्रेम सम्बन्ध, ईसुरी और धौर्रा के मुहासिब जू की पुत्री रज्जू राजा का प्रेम सम्बन्ध, मदनपुरा के तुलसीराम और माधुरी का प्रेम सम्बन्ध, ऋतु और माधव का प्रेम सम्बन्ध विकल और विमलेश के प्रेम सम्बन्धों के अलावा, सूरे, आदित्य सिंह आदि के अनेक प्रेम सम्बन्धों का चित्रण इस उपन्यास को 'प्रेम ग्रन्थ' सिद्ध कर देता है। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि ये सभी प्रेम कथाएँ स्वच्छन्द प्रेम से सम्बन्धित है। इनमें प्रेमी–प्रेमिका के मध्य प्रेम का जन्म एवं विस्तार तो होता है किन्तु वह सामाजिक स्वीकृति अर्थात् विवाह में परिणत नही हो पाते हैं।

4. लोक गीतों का सफल प्रयोग– आलोच्य उपन्यास का सम्पूर्ण केन्द्रीय कथानक लोक विश्रुत ईसुरी की फागों पर आधारित है। ईसुरी जनश्रुति एवं उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर बुन्देलखण्ड के प्रसिद्ध फाग गायक कवि हैं। फागें उनकी रग–रग में व्याप्त हैं, ऐसी कि ईसुरी और फागें एक दूसरे की पर्याय बन चुकी हैं। वसन्त ऋतु के फाल्गुन महीने में होली का त्योहार सम्पूर्ण उत्तर भारत में होलिकोत्सव के रूप में मनाया जाता है। फागुन के पूरे महीने में होरी, कबीरा, उलारा, चौताल, ढाईताल और फागों का सामूहिक एवं एकल रूप में गायन किया जाता है ।

'कही ईसुरी फाग' में लेखिका ने श्रृंगार रस से परिपूर्ण फाग लोकगीतो का खूब प्रयोग किया है। ये फागें मानव मन के विविध भावों को प्रस्तुत करने पूर्ण समर्थ हैं। फागों के गायन का आरम्भ सरस्वती वन्दना से ही किया जाता है–

मोरी खबर सारदा लइए।
कंठ बिराजी रइए।।
मैं अपड़ा अच्छर नहि जानूँ भूली कड़ी मिलइए।
तोरे डेरा हिंगलाज में ह्याँ लों फेरा दइए।
ईसुर कात सत्रु के बाने छीन के हम खों दइए।।

फागुन के महीनें में सर्वत्र रस की बरसात होने लगती है। वृक्षों पर कोयल, पत्तों में छिपा तोता मधुर ध्वनि में आवाज करने लगते हैं। आम्र मंजरियों में, खेतखलिहानों में फूले पौधो पर भ्रमर गुंजार करने लगते है। ऐसे में लोक कवियों के मन मधुकर भी दीवाने हो चटकीली, रंगीली फागें गाने लगते हैं–

चलतीं! चलतीं कर खाले खों मुइयाँ।
रजऊ बैस लरकइयाँ।
हेरत जात उँगरियन में हो तकती हो परछइयाँ।
लचकें तीनि परें करिहा में फरके डेरी बइयाँ।

हर तन मुख झरे पतर फूल से जे बागन में नइयाँ।
धन्न भाग वे सइयाँ ईसुर, जिनकी आँय मुनइयाँ।।[30]

क्या अनुपम सौन्दर्य है ? कैसी उदात्त भावना है ? मुँह नीचे का चलने वाली, लड़कपन वय की बहू, घूँघट की कोर से अपनी परछाईं को देखते चल रही है; उसकी कमर में तीन लचके पड़ रही हैं, हँसने से जैसे फूल खिल रहे हों। ऐसी बहू जिस प्रियतम की होगी उनके धन्य भाग हैं।

नवयौवना एवं नवविवाहिता बहुओं का फागों में विषद्ता से वर्णन प्राप्त होता है। अनुपम अद्वितीय सन्दरी बहू का वह पति सचमुच बड़ भागी होता है, जिसके पास ऐसी बहू हो–

घूँघट काए खोलत नइयाँ,
दिखनौसू है मुइयाँ।
गोरे बदन गुलाबी नैना बंग एकऊ नइयाँ।
चूमन गलुअन मन ललचावे झपट उठा लें कइयाँ,
ईसुर जिनकी आय दुलैया बड़े भाग वे सइयाँ।।[31]

ईसुरी की दृष्टि में रजऊ अपरूप सुन्दरी है, जिसके कितने ही छैल दिवाने होकर गली में पड़ रहते हैं रात भर। कितने ही कुएँ के पास खड़े रहते है। कितने ही गुनियों से मिलन के उपाय करा रहे थे, उस बैरिनि से क्या कहें ? इन्हीं भावों पर आधृत फाग द्रष्टव्य है–

कइयक हो गये छैल दिमानें,
रजऊ तुमारे लानें।
भोर भोर नों डरे खोर में, घर में जान सियानें।
दोऊ जोर कुआँ पै ठाड़े जब तुम जातीं पानें।
गुन कर करकें गुनियाँ हारे, का बैरिन से कानें।
ईसुर कात खोल दो प्यारी, मंत्र तुमारें लानें।।[32]

प्रणय की भावना एवं प्रेरणा, स्वछन्द वातावरण की उपज है। ऐसे में प्रेमी अपने प्रिय को सदैव अपनी आँखों के समक्ष ही देखना चाहता है, जिससे उसका मन भरा रहे। इसीलिए वह अपने प्रिय से स्पष्ट कह देता है–

'दिन भर दैबू करै दिखाई,
जमें मन भरजाई।
लगी रहो पौर की चौखट समझें रहो अवाई।
इन नैनन भर तुम्हें न देखें हमें न आवे राई।।[33]

कभी वह घर के बार बार मात्र इसलिए चक्कर कटता रहता है कि शायद उसे प्रिय के दर्शन हो जायें क्योंकि उसकी राह देखते–देखते सुबह से दोपहर होने को आ गयी है–

मन तक गए तुमारे घर नों,
ढूढ़ फिरे सक भर नों।
इतै पतौ ना चलौ तुम्हारौ, हेरी बार दुपर नों।
हेरत रए कुआँ के ऊपर परी न कऊँ नज नों।
ईसुर रजुआ कहाँ छिपी रईं बैठी कौन सुगर नों।[34]

प्रणय की सुकोमल भावना का सार यही है कि प्रणयी को अपना प्रिय संसार में सर्वाधिक सुन्दर प्रतीत होता

का बखान करते हुए कहता है–

मोरी रजऊ से नौनों को है,
डगर चलत मन मोहै।
अंग–अंग में कोल कोल कें ईसुर रंग भरौ है।
मन कौ हरन गाल कौ गुदना, तिल सौ तनक धरौ है।
ईसुर कात उठत जोबन की बिरहा जोर करौ है।[35]

अनमेल विवाह एवं बाल–विवाह सरीखी कुप्रथाएँ भारत में प्राचीन काल से ही प्रचलित रही हैं। किसी स्त्री का पति अभी मात्र तेरह वर्ष का है। ऐसे में वह बाल सुलभ क्रीड़ाओं में मस्त रहता है और रात में निर्द्वन्द्व सो जाता है किन्तु पत्नी युवती है, ऐसे में यदि वह यह कामना करे–

हम धन कबै मायके जाएँ,
जे बालम मर जाएँ।
खेलत रत दिन भर लरकन में रात परे मौं बाएँ।
काँच खोल कें हमने देखी, पौनी सी चिपकाएँ।

तो अनुचित क्या है ? किसी प्रेमी की प्रेमिका अन्य पुरुष ब्याहता है। कल सबेरे उसे ससुराल जाना है; ऐसे प्रेमी की क्या दशा होगी ? बेचारा प्रेमी सामाजिक मर्यादा के कारण रोने और पछताने के अतिरिक्त और कर ही क्या सकता है–

भौरईं रजऊ सासरे जातीं,
हमें लग लेओ छाती।
कै नईं सकत गरौ भर देतीं, आँसुअन अँखिया बाती।
ऊसेई चित्र लिखी सी रैगईं मौं से कहू न कातीं।
हमनें करीं हमईं जानत हैं अब पाछूँ पछतातीं।
ईसुर कौन कसाई डारी विकल विदा की पाती।[36]

ऐसे में यदि प्रेमी भगवान से यह प्रार्थना करे कि –

विधिना करी देह ना मेरी।
रजऊ के घर की देरी।।
आउत जात चरन की धूरा, लगत जात हर बेरी।
जात लगत चरन कमलन में, कुगत सुधरती मेरी।
लागौं आन कान के ऐंगर बजन लगी बजनेरी।[37]

तो बुरा कया है ?क्योंकि विदा होना कौन बड़ी बात है ?बात है विदा के बाद अलग होके रहना।

यदि प्रेमी परस्त्रीगामी है तो उसे और बचके रहना होगा क्योंकि प्रेमिका के घर वाले उसकी चौकसी पर तैनात है। ऐसी स्त्री अपने पति की मर्दानगी को यदि चुनौती देगी तो घर वालों का सतर्क होना स्वाभाविक है किन्तु प्रेमिका भी अपनी चातुरी से अपने प्रेमी को सतर्क रहने को कह देती है–

मन तक तकें रात सब घर के,
रइयो छैला बरके।
घिड़ खानें और पाग राखनें जेई काम सुगर कें।

का कर सकै हमारौ कोऊ, बिना पक लए करके।
ईसुर जिन पै बजीं नौबदें, ढपला बजें न छरकें।।[38]

किसी प्रेमी की प्रेमिका अपनी ससुराल चली गयीं। ऐसे में उस प्रेम वियोगी की दशा अत्यन्त सोचनीय है। लोक कवि उसकी दशा का वर्णन करते हुए कहता है–

कैसे मिटै लगी कौ घाऔ,
ई की दवा बताऔ।
दिन ना रात चियारें परतीं ज्वर ना खाएँ चाऔ।
गुनिया और नेवाते हारे, खेल खेल के माऔ।
कात ईसुरी कैसे करिए चलत न एक उपाऔ।।[39]

वसन्त का मादक महीना है। फागुनी हवा बावरी होकर सभी स्त्री–पुरुषों के सुमनों में मद की मतवाली मदिरा ढाल देता है। ऐसे में मदमस्त फगवारे नशीली एवं भड़कीली फागें स्वयमेव गाने लगते हैं–

जुबना छिओ न मोरे कसकें।
भए नये रंग रसकें।।
छाती से छाती लगतन और बैठ जैं गसकें।
छीतन रोम रोम भए ठाड़े प्रान छूट जैं मसकें।
साल एक की मानों ईसुर फिर मसकाले हँस कें।[40]

प्रणय की कोमल भावना में वर्ग एवं जाति भेद का कोई महत्त्व नही होता। प्रणय जहाँ भी पलता है, अतिशय कोमलता और मांसलता लेकर ही पलता है। प्रेयसी चाहता है कि उसे शीघ्र उसका प्रिय आकर मिले और वह उसकी छाती से लग जाए–

मोए तुम सिवाय न दूजौ,
तुम न और के हूजौ।
तुम सिवाय दुनिया में औरे इन आँखन ना सूजौ।
जो प्रन होवैं पतिबिरता कौ प्रान त्याग तन भूँजौ।
मन मरदन पै कौन चलावे नईं बालापन बूजौ।
रज्जू अपने जनम भरे में एक देवता पूजौ।।[41]

प्रेम की लगी लगन ऐसी है जो हानि–लाभ नही देखती, न उसके सामने जीवन और मरण का प्रश्न कोई महत्त्व रखता है। यह लगन जिसे लग जाये वह बैरागी बाना धारण कर प्रिया का नाम रटने लगता है और ऐसे प्रेमी को पाकर जो स्त्री अपने होशोहवाश न खो दे वह या तो नीरस–भीरु होगी या मन्दबुद्धि। इसी भावना का विस्तार लोक कवि ने अपने ढंग से किया है–

तोरे नैन मुलुक उजियारे,
हमें हेरतन मारें।
लगा भभूत करौं बैरागी बाबा बना निकारे।
कई एक खों भिक्षुक कर दऔ कयैक दीन निगारे।
कयैक भए फकीर ईसुरी इन बिन्नू के मारे।[42]

फाग का गायन और राधा–कृष्ण की प्रेम लीला का वर्णन दोनो परिपूरक हैं। फागों में यदि प्रेमी–प्रेमिका का

नाम लेना वर्जित हो तो राधा–कृष्ण का नाम ले लो अर्थात फागों में राधा–कृष्ण के श्रृंगारिक वर्णन बहुतायत से मिलता है। तत्सम्बन्धी एक फाग द्रष्टव्य है–

बातें सई कदम के तर की।
राधा और गिरिवर की।
आउत जात लखै नईं कोई, नर और नार नगर की।
पच्छिम दिसा पछाऊँ खिरकी अइयो गैल बगर की।
घूँघट दार दुअरिया दो हैं परत रात के घर की।
ईसुर कई सई सो पक्की ठोक हथेरी कर की।।[43]

केवल प्रेम और श्रृंगार पर ही फागें रची गईं हो ऐसा भी नही है। जब देश में स्वतंत्रता का प्रथम संग्राम चल रहा था तो फागें स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ गयीं। ईसुरी के समय बुन्देल खण्ड में क्रान्ति का बिगुल फूँकने वालों ने अंग्रेजों की मुखबिरी के लिए स्त्रियों को नियुक्त कर रखा था। गंगिया और रज्जो इसी काम हेतु देशपत दीवान के दल में शामिल की गयीं थीं। एक बार जब अंग्रेज देशपत दल को घेरने आ रहे थे तो इन्हीं ने निम्नांकित फाग द्वारा अंग्रेजों के आने की सूचना दी– ''गुइयाँ बचके जइयो पानें''[44]

एक बार जब क्रान्तिकारी राजा मर्दन सिंह को अंग्रेजों ने घेर लिया तो दरवेश के वेश में क्रान्तिकारियों का मुखबिर अन्य साथी क्रान्तिकारियों को फाग द्वारा ही सूचना देता है–

घिर गये बानपुर वारेहो।
चौतरफा से घेरा पर गये गसें गाँव के द्वारे हो।
उरझा सैन फिरंगी लूटे जोर पुरा घर सारे हो।
गौएँ मार दौरन में डारीं छेंके जन अति वारे हो।
आज टेर टेर कें कै रए छोड़ चलो घर द्वारे हो।।[45]

स्पष्ट ही है कि 'कही ईसुरी फाग' में लेखिका ने फाग लोक गीतों का सफल प्रयोग करके मानव मन की विभिन्न भावनाओं और परिवेश को सहज अभिव्यक्ति दी हैं।

5– भाषा–शिल्पगत वैशिष्ट्य– 'कही ईसुरी फाग' कृति का कथानक मूलतः लोक कवि ईसुरी स्वाभाविक है कि उपन्यास की भाषा लोक भाषा बुन्देली के निकट हो क्योंकि भाषा प्रयोग में लेखक की कसौटी उसी भाषा का सफल प्रयोग मानी जाती हैं, जिस क्षेत्र या भाषा से कथानक सबंध हाता है। यही भाषायी प्रयोग के चरित्र एवं बुन्देलखण्ड क्षेत्र से सम्बन्धित है। इसलिए यह रचना को दुरूह भी बना सकता है जिसके फलस्वरूप पाठकों को रस ग्रहण में कठिनाई अनुभव होती है, यह बात 'कही ईसुरी फाग' के सम्बन्ध में भी सही बैठती है। इस कृति के शिल्प ने जहाँ रचना के क्षेत्रीय स्वरूप को निखारा है, वहीं अनेक स्थलों पर कथ्य के सहज सम्प्रेषण में भी बाधा पहुँचाई है। लेखिका ने पात्रों के चिन्तन को उकेरने में प्रचलित हिन्दी का प्रयोग कर बहुत सीमा तक भाव सम्प्रेशणीयता में सफलता प्राप्त की है।

'कही ईसुरी फाग' की भाषा में ग्रामीण अंचल (बुन्देलखण्ड क्षेत्र) के शब्दों का बाहुल्य है। तद्भव शब्दों के लोकोच्चारण ने लोक विश्रुत कथानक को प्रभावशाली बनाने में सहायता की है। इस दृष्टि से कतिपय शब्द प्रयोग द्रश्टव्य हैं– सर्रात, रइए, करिहा, मुइयाँ, मुनइयाँ, बैस, रैजात, डुकरो, सिर्रिन, छत्तुर, पिरभू, चिमानी, काँकरेजू, चकफेरी, कुचबंदिया, कनबतियाँ, बछिया, झिझरी, हलकारना, कथरीं, घुइयाँ, सिपाई, पुन्न, पौंहचा, साक, मनिख, लरकौरे, मौखा, जनियन, सुरग, देहरी, करिहाई, सोंख, बामन आदि–आदि। इसी प्रकार लेखिका ने अंग्रेजी के लोक प्रचलित शब्दों का प्रयोग भी आश्यकतानुरूप ही किया है। ऐसे शब्दों के प्रयोग से उसे भाव बोध में सहायता ही

मिली है। इन शब्दों में मुख्य हैं– पैट्रोमैक्स, अंकल, आइकोन फोर्ड, होंडा सिटी, डेनम, जैकेट, ड्राइवर, हार्न, टेलीविजन, पिरोगराम, पिच्चर, परमामेन्ट, होटिल, फिरांस, सीजन, डीलिंग, मौडिल, टीसाट, मेकअप, टिकस आदि।

लेखिका ने सजीवता एवं स्वभाविकता लाने के लिए पात्रानुकूल भाषा का चयन किया है। काकी, परताप की माँ और रज्जो की सास का मानना है कि ईसुरी के कारण ही उनका बेटा भागकर फौज में भर्ती हुआ और रज्जो घर छोड़ने को मजबूर। वही काकी जब फगवारों में ईसुरी बने पात्र को फाग गाते सुनती हैं तो उस पर झपट पड़ती है। उनकी मनोदशा के अनुकूल भाषा का प्रयोग द्रष्टव्य है– ''ठठरी बँटे, जू हम रातई रात काए आए हैं, सो भी समझ रए होगे। हमारी बहू की जिन्दगानी बरबाद करकें इतै तुम फगनौटो गा रए! अब हम तुमारी जीभ पै लूधरा धरे बिना नही जाएँगे, जरत लूघरा।''[46] हमारे ग्रामीण समाज में आज भी यह मान्यता है कि यदि किसी विवाहित स्त्री के पति को यह पता चले कि उसके रहते उसकी पत्नी पर–पुरुष से प्रेम करती है तो वह आपे से बाहर हो जाता है। ऐसे समय में उसके मुँह से जलते–धधकते उद्‌गार गालियों के रूप में ही निकलते है। यही पुरुश मनोविज्ञान है, जिसे लेखिका बखूबी समझती है तभी तो वह रजऊ के प्रेमी ईसुरी के लिए प्रताप से कहलाती है– ''हमारी मादरचोद ईसुरी! औरत को बहकाने, बहलाने और लुभाने की कलाकारी ही ज्यादा जानता है। लोग कहते हैं उसे लोक कवि, जबकि उसको कहना चाहिए लुच्चा कवि।''[47]

स्पष्ट है कि प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने लोक प्रचलित भाषा का सहज एवं स्वाभाविक प्रयोग किया है। लेखिका ने पात्रों एवं संवादों की भाषा में अनुकूलता का सदैव ध्यान रखा है। बुन्देलखण्ड के लोक जीवन, लोक संस्कृति और मिट्‌टी की सुगन्ध मैत्रेयी जी के मन–प्राणों में गहरे तक समाई हुई है, इसीलिए 'कही ईसुरी फाग' के मध्य उनकी अपनी अभिव्यक्ति भी अनेकशः लोक भाषा से आपूरित हो गई है। एक सच्चे, संवेदनशील ओर भाव प्रवण रचनाकार के लिए भाषा का उदात्त एवं लोकानुरूप प्रयोग आवश्यक होता है, इसमें मैत्रेयी पुष्पा को पर्याप्त सफलता मिली है। लोक कथा बुन्देली का जैसा सफल प्रयोग 'कही ईसुरी फाग' में दिखलाई पड़ता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

समग्रतः यह कहा जा सकता है कि 'कही ईसुरी फाग' के माध्यम से मैत्रेयी पुष्पा ने हिन्दी उपन्यास साहित्य को समृद्ध करने का सफल प्रयास किया है। इस कृति में लोक साहित्य विमर्श, भाषा विमर्ष, स्त्री विमर्ष, स्वतंत्रता संग्राम में बुन्देलखण्ड क्षेत्र का योगदान, लोक साहित्य एवं लोक कलाकारों पर हावी होती टी0वी0 एवं सिनेमाई संस्कृति का चित्रण सभी कुछ है। यह कृति पठनीयता एवं साहित्यिकता की दृष्टि से परिपूर्ण है।

सन्दर्भ संकेत

1. 'कही ईसुरी फाग',पृष्ठ–V
2. कही ईसुरी फाग', पृष्ठ–VII
3. ईसुरी फाग', पृष्ठ–VII
4. कही ईसुरी फाग', पृष्ठ–9
5. 'कही ईसुरी फाग', पृष्ठ–10
6. 'कही ईसुरी फाग,' पृष्ठ–11
7. 'कही ईसुरी फाग,' पृष्ठ–11
8. 'कही ईसुरी फाग,' पृष्ठ–13
9. 'कही ईसुरी फाग,' पृष्ठ–13
10. 'कही ईसुरी फाग,' पृष्ठ–14
11. 'कही ईसुरी फाग,' पृष्ठ–14
12. 'कही ईसुरी फाग,' पृष्ठ–37
13. 'कही ईसुरी फाग,' पृष्ठ–29

14. 'कही ईसुरी फाग,' पृष्ठ–32
15. 'कही ईसुरी फाग,' पृष्ठ–32
16. 'कही ईसुरी फाग,' पृष्ठ–53
17. 'कही ईसुरी फाग,' पृष्ठ–53
18. 'कही ईसुरी फाग,' पृष्ठ–54
19. 'कही ईसुरी फाग,' पृष्ठ–71
20. 'कही ईसुरी फाग,' पृष्ठ–72
21. 'कही ईसुरी फाग,' पृष्ठ–73
22. 'कही ईसुरी फाग,' पृष्ठ–94
23. 'कही ईसुरी फाग,' पृष्ठ–15
24. 'कही ईसुरी फाग,' पृष्ठ–179
25. 'कही ईसुरी फाग,' पृष्ठ–340
26. 'कही ईसुरी फाग,' पृष्ठ–269
27. 'कही ईसुरी फाग,' पृष्ठ–34–35
28. 'कही ईसुरी फाग,' पृष्ठ–188–189
29. 'कही ईसुरी फाग,' पृष्ठ–66
30. 'कही ईसुरी फाग,' पृष्ठ–19
31. 'कही ईसुरी फाग,' पृष्ठ–26
32. 'कही ईसुरी फाग,' पृष्ठ–38
33. 'कही ईसुरी फाग,' पृष्ठ–47
34. 'कही ईसुरी फाग,' पृष्ठ–54
35. 'कही ईसुरी फाग,' पृष्ठ–75
36. 'कही ईसुरी फाग,' पृष्ठ–98
37. 'कही ईसुरी फाग,' पृष्ठ–98
38. 'कही ईसुरी फाग,' पृष्ठ–102
39. 'कही ईसुरी फाग,' पृष्ठ–136
40. 'कही ईसुरी फाग,' पृष्ठ–138
41. 'कही ईसुरी फाग,' पृष्ठ–157
42. 'कही ईसुरी फाग,' पृष्ठ–174
43. 'कही ईसुरी फाग,' पृष्ठ–250
44. 'कही ईसुरी फाग,' पृष्ठ–269
45. 'कही ईसुरी फाग,' पृष्ठ–284
46. 'कही ईसुरी फाग,' पृष्ठ–21
47. 'कही ईसुरी फाग,' पृष्ठ–110

❑❑

वैदिक वाङ्मय में ज्ञान–मीमांसा

डॉ0 रामेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी
एसो0 प्रोफेसर एवं अध्यक्ष – संस्कृत विभाग
राम स्वरूप ग्राम उद्योग पी0जी0 कालेज, पुखरायाँ, कानपुर देहात

सर्वज्ञकल्प वैदिक वाङ्मय अनेक विद्याओं का अपार स्रोत है। वेद संस्कृति धर्म, अध्यात्म,दर्शन एवं विज्ञान का मूलाधार है। तैत्तिरीय संहिता, आपस्तम्ब धर्मसूत्र, मनुस्मृति, नाट्यशास्त्र तथा अमरकोष आदि ने 'वेद' शब्द की व्युत्पत्ति बतायी गयी है। यह शब्द चार धातुओं से व्युत्पन्न होता है – (1) विद्ज्ञाने, (2) विद्–सत्तायाम् (3) विदलृ–लाभे और (4) विद्–विचारणे। इन व्युपत्तियों के द्वारा वेद शब्द का ज्ञानार्थक स्वरूप स्वतः सिद्ध है। ऋग्वेदभाष्यभूमिका में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 'वेद' शब्द का निर्वचन इस प्रकार किया है– विदन्ति जानन्ति, विद्यन्ते भवन्ति विन्दन्ति अथवा विन्दन्ते, लभन्ते, विन्दन्ति, विचारयन्ति सर्वे मनुष्याःसत्यविद्यां यैर्येषु तथा विद्वांसश्च भवन्ति ते वेदाः[1]। ज्ञानार्थ प्रतिपादक 'वेद' शब्द से ईश्वरीय ज्ञान ही अभिप्रेत है। सृष्टि के प्रारम्भ में तपःपूत ऋषियों के अन्तःकरण में ब्रह्मस्वरूप जिस ज्ञानराशि का आविर्भाव हुआ था उसे आज वेद के नाम से जाना जाता है । इस ज्ञानरूप शब्दराशि में दिये हुए सृष्टि–रहस्य को समझने एवं समझाने हेतु परवर्ती काल में ऐतरेय, याज्ञवल्क्य अत्रि, भरद्वाज, भृगु,कण्व, अंगिरा तथा अगस्त्य आदि ऋषियों द्वारा सर्वप्रथम जिस साहित्य का प्रवर्तन किया गया। वे सम्प्रति ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् के रूप में प्रसिद्ध हैं। इन्हें ही वैदिक वाड्.मय कहा जाता है।

वैदिक वाङ्मय में अध्यात्म, सृष्टि, तत्व, योग, धर्मशास्त्र–आचार शास्त्र चिकित्सीय विद्या, आयुर्वेद एवं युद्ध विद्या से सम्बन्धित ज्ञान का असीम भण्डार हैं। 'सर्वज्ञानमयो हि सः[2],' 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम[3],' वेदमेव सदाभ्यस्येत तपस्तप्यन् द्विजोतमः[4]' प्रभृति महर्षि मनु के वचनों से यह स्वतः सिद्ध है कि सृष्टि के समग्र धर्म अर्थात् क्रिया कलाप एवं सर्वविध ज्ञान का मूल स्रोत वेद है। प्राचीन काल से ही सुधी मनीषी एव विद्वान आचार्य लोग वैदिक ज्ञान विज्ञान का निरन्तर गहन चिन्तन मनन करते रहे तथा परिवर्ती अध्येताओं एवं गवेषको के लिए शोध परक नवीन चिन्तन का अवसर देते रहे हैं। परन्तु पाश्चात्यों की दृष्टि में वेद अविकसित मानव की विचारधारा का धरोहर मात्र है। कतिपय पाश्चात्य विद्वानो द्वारा वेदों को गड़रियों के गीत और जंगलियों की बड़बड़ाहट सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है। मैक्समूलर का यह मत है कि वेद बचकाना, मूर्खतापूर्ण और राक्षसवत् विकराल् नितान्त् असंगत बातों से भरपूर है'– इसे कौन इन्कार कर सकता है?[5] (That the veda is full childish silly and monstrous conceptions , who would deny ?- India-what can its teach us ?[5]) मैक्समूलर ने प्रायः वदो को निरर्थक सिद्ध करने का प्रयास किया है। मद्रास क्रिश्चियन सोसायटी की ओर से प्रकाशित 'vedic Hinduism' में मैक्समूलर ने कहा कि मैं एक बार फिर याद दिलाता हूँ कि वेदो में बहुत सी बचकाना और मूर्खता पूर्ण बातें भरी पड़ी हैं।[6] इसी से कुछ साम्य रखता हुआ विचार मैक्समूलर ने "Chips from German Workshop (Ed 1866) में व्यक्त किया है कि वैदिक सूक्तों की एक बड़ी संख्या बचकानी, जटिल, निकृष्ट और अत्यन्त साधारण है।[7] ग्रिफिथ प्रभृति पाश्चात्य विद्वानो ने वेदों को मानव पुस्तकालय की सबसे प्राचीन ग्रन्थ मानते हुए भी उन्हें पवित्र दिव्य ज्ञान और विविध विद्याओं का भण्डार नहीं माना, अपितु ऐतिहासिक, दृष्टि से महत्वपूर्ण संग्रह माना जिनसे प्राचीन असभ्यप्राय जंगली लोगों के विचारों और रीति–रिवाजों का पता चल सकता है।

वेद वास्तव में ऐसे ही हैं– ''यह सिद्ध करने के लिए मैक्समूलर ने वेदों का भाष्य किया। वेद के अनुसन्धान और अनुवाद कार्य में लगने का उद्देश्य था। उसने अपनी पत्नी के नाम लिखे एक पत्र मे इस रहस्य को उद्घाटित करते हुए लिखा है कि मेरा यह संस्करण और वेद का अनुवाद भारत के भाग्य को दूर तक प्रभावित करेगा। यह

उनके धर्म का मूल है और उन्हें यह दिखा देना है कि वह मूल कैसा है, गत तीन हजार वर्षो में इससे उत्पन्न होने वाली सब बातों को समूल उखाड़ने का एक मात्र उपाय है।[8]

यह उचित है कि विदेशी विद्वानों ने भारतीय न होते हुए भी संस्कृत साहित्य में, विशेषतः वैदिक वाड्.मय में अनुकरणीय अध्यवसाय किया परन्तु जातीय पक्षपात, ईसायत के प्रचार प्रसार हेतु दुराग्रह से परिपूर्ण होने एवं शास्त्र विषय में गहरा ज्ञान न होने को कारण वे वैदिक साहित्य को उसके यथार्थ रूप में प्रस्तुत न कर सकें। वस्तुतः उनका उद्देश्य ही भारतीयों में अपने धर्म,संस्कृति, साहित्य, सभ्यता, तथा परम्पराओं के प्रति अश्रद्धा और घृणा उत्पन्न करना था। इस दृष्टि से उन्हें सायण का भाष्य अपने अनुकूल जान पड़ा। उन्होंने वेदादि शास्त्रों के जो अनुवाद किये वे प्रायः सायण भाष्य के आधार पर ही किये और इस प्रकार वेदों को गडरियों के गीत और जंगलियों की बड़बड़ाहट सिद्ध करने मे सफल रहे।

कतिपय भारतीय विद्वानों ने मध्यकालीन आचार्यो विशेषतः सायण को ही इन सारे अनर्थों का जड़ माना। इन विदेशी विद्वानों को यदि सायण की अपेक्षा वेद का उत्तम भाष्य मिला होता तो सम्भवतः वेद की ऐसी दुर्दशा न होती। पाश्चात्यों द्वारा प्रस्तुत वेदादि शास्त्रों वह स्वरूप अवश्य ही न था जो अब है। सायण के भाष्य ने सबकी आँखो पर पट्टी बाँध दी। राजनैतिक दृष्टि से स्वतन्त्र हो जाने पर भी पाश्चात्यों के भारतीय मानस पुत्रों की आँखो पर वह पट्टी अभी तक ज्यों कि त्यों बंधी है।

वस्तुतः वेद 'विश्ववारा प्रथमा संस्कृति' एवं भारतीय विचारधारा के आधारभूत स्तम्भ हैं। वेदों की रचना–शैली बड़ी अद्भुत है। एक–एक ऋचा अनेक अर्थो का प्रतिपादन करती हैं। जिस प्रकार उससे आध्यात्मिक रहस्यों का ज्ञान प्राप्त होता है, उसी प्रकार उससे आधिभौतिक तथा आधिदैविक सत्य भी प्राप्त होता है। ऋषि दयानन्द ने वेदों की इस अद्भुत और अनन्त रत्न गर्भा निधि को उस पर पड़ी हुई धूलि और गर्द गुबार को झाण–पोंछ कर विशुद्ध रूप में हमारे सामने प्रस्तुत किया।

आदिकाल में धर्म का साक्षात् करने वाले ऋषि थे। वे स्वयमागत विज्ञान थे। उन्हें वेद और उनके ज्ञान के तत्व स्वयं ज्ञात हुऐ। इस प्रकार सृष्टि के आरम्भ में जिन ऋषियों ने परमेश्वर के ज्ञान स्वरूप वेद का साक्षात्कार किया, उनका ज्ञान उपदेश द्वारा आगे बढ़ा। सर्गादि में जब मानव बुद्धि निर्मल और स्मृति धारण शक्ति संयुक्त थी, सत्य बुद्धि तेज से देदिप्यमान अपरिमित सामर्थ्य वाले विद्वान् सीधे वेदों से ही सब तरह को ज्ञान प्राप्त कर लेते थे। उस समय वेद को छोड कर अन्य कोई शास्त्र न था किन्तु कालान्तर मे जब मानव की मेधा का क्रमशः ह्रास होने लगा, सत्वहीन अल्पमति और प्रवर्धमान रजोगुण तथा तमोगुण से अभिभूत होने लगे और उपदेश द्वारा भी वेद विद्यमान विद्याओं को ग्रहण करने में असमर्थ हो गये, तब विस्तार पूर्वक सुगम उपाय से विविध विद्याओं का ज्ञान कराने के लिये विविध शास्त्रों की रचना की गयी। इस शास्त्रावतार रूप इतिहास का निरूक्तकार यास्काचार्य ने अपने शब्दों मे इस प्रकार किया है कि सृष्टि के आरम्भ में (साक्षात्कृत धर्मा) मन्त्रार्थ को साक्षात करने वाले ऋषि हुए थे। उन्होंने (असाक्षात्कृत धर्मा) मन्त्रार्थ का साक्षात न जानने वाले मनुष्यों के लिए उपदेश से मन्त्रों के अर्थ जताए उत्तर काल में अथवा हीन मेधा वाले उपदेश से ग्लानि करते हुए उपदेश मात्र से समझ सकने वाले ने वेद तथा वेदाड्.गो का अभ्यास किया है –

''साक्षात्कृत धर्माण ऋषयो बभूवुस्तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृत धर्मस्य उपदेशेन मन्त्रान् संप्रादुः।
उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे विल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषुर्वेद च वेदाड्.गानि च।''[9]

यह निर्विवाद तथ्य है कि वेदों पर प्राच्य तथा पाश्चात्य विद्वानों द्वारा अनेक भाष्य किये गये किन्तु आज तक वेदों का सर्वमान्य भाष्य ज्ञात नहीं हैं। वेदों के ज्ञान का थाह लगा पाना अत्यन्त दुष्कर है। इसका यह कारण है कि वेदों की भाषा सांकेतिक प्रतिकात्मक एवं परोक्ष है तथा विशेषकर रूपकों से परिपूर्ण है। मन्त्रों की वाह्य सतही शब्द रचना की पृष्ठभूमि में अलौकिक ज्ञान अपिहित है। ब्राह्मण ग्रन्थ वेदों के सर्वाधिक निकट है। किन्तु इन ग्रन्थों

की भाषा शैली भी वेदवत ही है। पुराणों ने कथाओं के माध्यम से इन रूपकों को बृहदाकार किया। इस रूपक भाषा के आवरण में ज्ञान का जो रहस्य निहित है। वह मानव विज्ञासा का सर्वोच्च प्राप्तव्य लक्ष्य है। इस दिशा में सफलता की ओर उन्मुख होने के लिए सर्वप्रथम पूर्वाग्रह से ग्रसित होने के परिणाम स्वरूप मानस पटल पर द्वढ़ बैठी हुई अवधारणाओं का परित्याग अध्ययानारम्भ से पूर्व ही आवश्यक है। वेद को अविकसित मानव की धरोहर एवं गड़रियों के गीत और जंगलियों की बड़बड़ाहट मानकर जो अध्ययन होता है। उसकी दृष्टि वाह्य कलेवर तक ही सीमित रह जाती है। वह शब्द विन्यास एवं रूपक कौशल का विभेदन करने में सक्षम न हो सकने के कारण परम निगूढ़ ज्ञान को जो अक्षय निधि है से वंचित रह जाते हैं।

वैदिक वाड्.मय में दर्शन एवं विज्ञान का अभूतपूर्व संगम है। वैदिक ज्ञान को वही व्यक्ति जान सकता है, जो पहले उस परम तत्व को जाने ऋग्वेद द्वारा स्वयं यह रहस्य उद्घाटित किया गया है कि ऋचाओं को वही जान सकता है। जो उस अविनाशी परमतत्व को जाने–

''ऋचो अक्षरे परमे व्योमन यास्मेन देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तदविदुस्त इमे समासते।।''[10]

ऋचाओं के प्रतिपाद्य जिस अविनाशी परम आकाशवत व्यापक में समस्त देव पूर्ण रूप से स्थित है। जो इस परम तत्व को नहीं जानता वह ऋचा से क्या करेगा। जो उसे जानते है, वे ही इन ऋचाओं में सम् आसते सम्यक स्थान पाते है।

ऋचाएं रहस्यमयी है। ऋचाओं में वर्णित तत्व की सम्यक अवधारणा के बिना ऋचाओं का रहस्यमयी क्षेत्र अत्यन्त दुष्प्रवेश्य हैं। ऋचाओं का विषय परम तत्व है–

''ददृश्र एषामवमा सदांसि परेषु या गृहेषु व्रतेषु।''

जिनको या जो (एषाम) परम उत्कृष्ट (परेषु) परातच्च सम्बन्धी गूढ़ रहस्यमयी (गुहेषु) सिद्धान्तो (व्रतेषु) में सबसे छोटा (अवमा) अतिसूक्ष्म स्थल)सदांसि) दिखाई दियें है। (ददृश्रे) जिन्होंने सूक्ष्म दर्शन किया है वे ही प्रवचन कर सकते है। वेद की भाषा वैचित्र्य अपने अन्तस में रहस्यों को छिपायें है। वैदिक वाड्.मय ऋषियों की अन्तर्मन की उच्चस्थिति से उद्भूत हुए ज्ञान की धरोहर है।

वैदिक वाड्मय का तीन प्रतिपाद्य विषय है– कर्म उपासना ज्ञान। वेद अध्यात्म ज्ञान के भण्डार है। ज्ञान ही एक मात्र मुक्ति का साधन है। 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः– विश्व के धारक विभिन्न देवताओं को सम्बोधित सूक्तों के अतिरिक्त ऋग्वेद के अन्य अनेक दार्शनिक सूक्त ऐसे है। जो वैदिक ज्ञान की धारा को प्रवाहित करते है। ऋग्वेद के 'अस्यवामीय सूक्त' का तत्वज्ञान प्रतिपादक सूक्तों में इसका विशिष्ट स्थान है। अश्व विश्व सुवर्ण, रथ, गों, बृषभ, समुद्र, वृक्ष, दिन, रात्रि, आदि प्रतिकों के माध्यम से पुरूष प्रकृति तथा विश्व सर्जन की प्रक्रियाओं को इस सूक्त में समझाया गया है। इस सूक्त में प्रयुक्त प्रतीक कहीं–कहीं इतने क्लिष्ट हो गयें है। कि उनके विषय में निश्चितता के साथ कुछ भी कहना दुष्कर है। इस सूक्त की व्याख्या में प्रायः उच्च कोटि के सभी दार्शनिक विद्वानों ने सूक्त में प्रयुक्त प्रतीकों के समाधान का प्रयत्न किया है। ऋग्वेद के इस सूक्त एक मन्त्र में एकेश्ववाद की रथापना की गयी है।

''इन्द्रंमित्रं वरूणमग्निमाहुरथो दिव्यःस सुपर्णो गरूत्मान।
एक सद्विप्रा बहुधा वदंन्त्यग्निं यमं मातरिश्वाानमाहुः।।''[11]

अर्थात् अग्नि को इन्द्र मित्र तथा वरूण भी कहते हैं और वह दिव्य गरूत्मान सुपर्ण है। एक सत् को ज्ञानीजन अनेक प्रकार से बोलते हैं और अग्नि को यम एवं मातरिश्वा कहते है।

इस मन्त्र में अग्नि देवता को हिरण्मय पात्र समझें। अग्नि–प्रतीक में आत्मतत्व का दर्शन या ध्यान करना चाहिए। आत्माग्नि वही 'एक सत् (ओम् तत् सत्) हैं– जो अन्यत्र इन्द्र मित्र,वरूण,सुवर्ण,यम,मातरिश्वा जैसे प्रतीकों

के रूप में विद्यमान है। ज्ञानी इस तथ्य को जानते है कि सत्य सर्वत्र वही है और एक है हिरण्मय आवरण भले ही विभिन्न प्रकार हों। उस एक 'सत्' को शुक्ल यजूर्वेद संहिता के अन्तिम चालीसवें अध्याय में ओम् नाम दिया गया है।

कठोपनिषद में भी ओम् शब्द को वेदों एवं नाना प्रकार के छन्दों तथा शास्त्रों के द्वारा प्रतिपादित बताया गया–

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं सग्रहेण ब्रबीम्योंमित्येतत।[12]

इससे यह सिद्ध होता है कि सभी वेदों का प्रतिपाद्य विषय परम तत्व एक सत् ओम् है। 'ओम् नामक 'एक सत्' हिरण्मय पात्र से आवृत है। शुक्लयजुर्वेद में जहाँ एक ओर आत्मबोध के उपाय का प्रतिपादन है वहीं दूसरी ओर वेदों के अभिप्राय को ठीक ठीक समझने की कुंजी भी बतायी गयी। 'जीव' और 'परम' इन दोनों दृष्टियों से वेद का परम प्रतिपाद्य विषय आत्मा है। वेद में जीवात्मा और परमात्मा का प्रतिपादन होने के कारण प्रकारान्तर से स्वयं वेद को समझने के लिए समीचीन दृष्टि का भी इस मन्त्र में अनायास प्रतिपादन हो जाना स्वाभाविक है–

''हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम।
तत्वं पूषन्न पावृणु सत्य धर्माय दृष्टयें।।''[13]

हे सबका भरण – पोषण करने वाले परमेश्वर! सत्य स्वरूप आपकी सर्वेश्वर का श्रीमुख ज्योतिर्मय सूर्यमण्डल रूप पात्र से ढका हुआ है। आपकी भक्ति रूप सत्य धर्म का अनुष्ठान करने वाले मुझको अपने दर्शन कराने के लिए उस आवरण को हटा लीजिये।

इस मन्त्र से यह स्पष्ट है कि सत्य स्वरूप के दर्शन के लिए साधक को भी सत्य धर्म वाला होना चाहिए। सत्य को धारण करना ही सत्य धर्म वाला साधक हो सकता है। जीवन का जो भी आधार है यह धर्म है। शुक्ल यजुर्वेद के चालीसवें अध्ययन के आदिम मन्त्र में ''ईशावास्यमिदं सर्व यत्किञ्च जगत्यां जगत'' में इस आधार को 'जगती' कहा गया प्रतीत होता हैं वैदिक कोश 'निधण्टु' के अनुसार 'जगती' का अर्थ 'गौ'। गौ शब्द पशुवाचक होने के साथ इन्द्रिय वाचक भी है। मनुष्य के जगत की सीमा उसकी ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रिय और ज्ञान कर्म उभयात्मक इन्द्रियमन द्वारा निर्धारित होता है। जिस मनुष्य का जो और जितना इन्द्रियानुभूत है। वह और उतना उसका संसार है।

सत्य दर्शन के लिए एक अलग ही दृष्टि अपेक्षित है। जीवन के प्रति भोगपरक दृष्टि की अपेक्षा आत्मोन्मुख दृष्टिकोण द्वारा ही आत्मसत्य अनुभव में आ सकता है। जिस किसी को भी सत्यात्मा का साक्षात्कार करना हो, उसे योगोन्मुख जीवन पद्धति ग्रहण करना होगा, ऊपर से भोगमयी जीवन पद्धति द्वारा आत्म सत्य प्रत्यक्ष नहीं होता। सत्य पर आवरण पड़ा होने के कारण सभी को सत्यस्वरूप का साक्षात्कार नहीं हो पाता। शु0यजु0 के चालीसवें अध्याय के मन्त्रों में उन आवरणों का उल्लेख है। अन्धेन तमसा वृता:[14] अन्धं तम:[15]। इनका स्वरूप भी इसी अध्याय में भोगवृत्ति, वित्तलोभ[16], कर्मलेप[17], आत्महनन[18] विजुगुप्सा, विचिकित्सा[19] मोहशोक[20] विद्या अविद्या, सम्भूति असम्भूति पृथक आत्मसन्ता को न समझ पाना[21]। ये आत्मा पर पडे हुए 'अनृत' या असत्य के आवरण हैं।

ऋग्वेद में अनेक देवताओं की स्तुति की जाती हुई दृष्टिगोचर होती है। किन्तु अनेक देवता सृष्टि के कारण नहीं हो सकते और इन अनेक देवताओं का भी कोई एक कारण होगा। इस विचार से एक देव की धारणा प्रतिष्ठित हुई। उसीएक देव को प्रजापति हिरण्यगर्भ पुरूष आदि के नाम से सबका कारण माना गया। बहुदेववाद से एकेश्वरवाद या सर्वेश्वरवाद तक पहुँचने में चिन्तन के चार स्तरों को पार करना पड़ा[22]– पहली अवस्था प्रकृति के सभी तत्वों को देवता मानकर पूजा प्रचलित हुई। सभी देवताओं को समान रूप से सबका ईश्वर, शासक, नियन्ता, प्रकाशक आदि कहा गया। दूसरी अवस्था में सभी का समान कार्य होने के कारण इन देवताओं का एक दूसरे से तादात्म्य भाव स्थापित किया गया। तीसरी अवस्था में सभी देवताओं को एक समूह में सम्बोधित किया गया। चौथी अवस्था में सभी देवताओं के अलग–अलग आस्तित्व को मिटाकर एक देववाद का विकास हुआ। इस एकदेव के

ही वे सभी नाम हो गयें। एक देववाद, एकेश्वरवाद एवं सर्वेश्वरवाद आदि नामों से जाना गया।

''इन्द्रं मित्रं वरूणमग्निमाहुरथों दिव्यःस सुपर्णो गरूत्मान।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।''

अस्यवामीय सूक्त[23] के अतिरिक्त एकेश्वरवाद से सम्बन्धित समस्त सूक्त ऋग्वेद के दशम मण्डल में ही पाये जाते हैं। इनमें देवसूक्त[24] विश्वकर्मनं् सूक्त[25] पुरूषसूक्त[26] हिरण्यगर्भ सूक्त[27] नासदीय सूक्त[28] वागाम्भृणी सूक्त[29] तथा सृष्टि सूक्त[30] सभी के सभी वैदिक ऋषियों के अन्तर्मन की उच्चस्थिति के प्रतीक है। जो सृष्टि विषयक अनेक रहस्यों का उदघाटन करते हैं। वैदिक वाङ्मय में इस सभी दार्शनिक सूक्तों के साथ आरण्यक एवं उपनिषद भी ज्ञानकाण्ड के नाम से जाने जाते हैं।

अस्यवामीय सूक्त के एक मन्त्र में विश्व की कल्पना एक वृक्ष के रूप में की गई है। परमात्मा और जीवात्मा दो पक्षी इस वृक्ष पर एक साथ रहते हैं। इन दोनों को 'सयुजा' (एक साथ तादात्म्य भाव से संयुक्त रहने वाला) तथा 'सखाया' (समान नाम धारण करने वाला) कहा गया है। आत्मा तथा परमात्मा में वस्तुतः कोई भेद नहीं। दोनों में कोई वियोग नहीं है। दोनों में जो भेद है वह यह है कि उनमें एक (जीवात्मा) संसार में आसक्त होकर उसके भोगों को भोगता है। जबकि दूसरा (परमात्मा) साक्षी रूप में अनासक्त होकर उसको देखता रहता है–

''द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते।
त्योरन्यः पिप्वलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।।''[31]

वैदिक ऋचाओं का अर्थ करना अत्यन्त क्लिष्ट एवं गवेषणा साध्य कार्य है। मंत्रों का भावविश्लेषण करने हेतु प्राचीन भारतीय भाष्यकारों ने जिन तीन वर्गों में विभाजित किया है। उन्हें क्रमशः आधिदैविक आधिभौतिक और आध्यात्मिक कहा जा सकता है। आधिदैविक अर्थ में समस्त सृष्टि का उद्भव स्थिति और संहार जिन विलक्षण शक्तियों द्वारा हो रहा है। उन्हें देवता कहा जाता है। उन्हें या उनके माध्यम से परमपिता परमात्मा को प्रसन्न करने के लिए ही वेदवाणी का प्रवर्तन हुआ। ऐसा अनेक विचारको का मत है। तदनुसार उन्होंने मन्त्रार्थ करते हुए त्तद देवता एवं उनकी विशिष्ट सामर्थ्य को ध्यान में रखकर व्याख्या की हैं। मन्त्रों के यज्ञ सम्बन्धी जो अर्थ किये गये है। उन्हें आधिभौतिक अर्थ कहा जाता है। जिस प्रकार हमारे शरीर में आत्मा चाहे दिखाई न पड़े किन्तु प्राणियों के जीवन का वही मूलाधार है। इसी प्रकार वेद की अक्षर में आत्माज्ञान समाया हुआ है। ऐसा अध्यात्मावादियों का मत है। यथा ऋग्वेद के एक प्रसिद्ध मन्त्र में निहित रहस्यपूर्ण गुत्थियों को सुलझाने का प्रयत्न विभिन्न भाष्यकारों ने विभिन्न रूपों में किया है–

''चत्वारि श्रृंगाः त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधा वद्धो बृषभो रोरवीति महादेवो मर्त्या आविवेश।।''[32]

इस मन्त्र का आधिदैविक पद्धति से अर्थ करते हुए कहा गया है कि चार सींग, चारों दिशाए, तीनों वेद, तीन पैर, दिन और रात, दो सिर, सातों प्रकार की किरणें सात हाथ एवं पृथ्वी, द्यु, अन्तरिक्ष, तीन प्रदेशों अथवा ग्रीष्म, वर्षा, शीत, तीन ऋतुओं से वँधा होने कारण सूर्य ही वास्तविक 'महादेव' है।

इसी मन्त्र का यज्ञ परक अर्थ करते हुए सायण न कहा है कि चारों वेद रूपी चार सींग वाला, सोम निकालने के तीनों समय रूपी तीन चरण वाला सातों छन्द रूप सात हाथ वाला यज्ञ ही 'महादेव' है।

महर्षि पाञ्जलि ने इस मन्त्र का व्याकरण परक अर्थ करते हुए कहा है कि 'शब्द' ही महादेव है। चार प्रकार के शब्द– नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात इसके चार सींग है। तीनों काल भूत भविष्य वर्तमान इसके तीन पैर है। नित्य और कार्य दो प्रकार की भाषायें इसके सिर है। सातों विभाक्तियाँ इसके सात हाथ है। हृदय कण्ठ और मुख से उच्चरित होने के कारण वह तीन जगह से निवद्ध है।

निरूक्त परिशिष्ट में इस प्रकार की अनेक व्याख्याओं का संकेत मिलता है। उक्त जैसे सैकड़ो मन्त्र रहस्यवाद

से ओत प्रोत है जिन पर भाष्यकारों ने विभिन्न रूप से विचार व्यक्त किये है। अस्यवामीय सूक्त जैसे अनेक सूक्त रहस्यपूर्ण तत्वों को वेद अपने अन्तस्तल में समेटे है। जिनकी विशदीकरण भारतीय विद्वानों में स्मृति इतिहास,पुराण वेदाङ्ग आदि के सहारे किया है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि वैदिक मन्त्र अनेकार्थक है। उनके बोध के लिए अर्थकर्ता को साधक की भाँति एकाग्रचित्त, पूर्वाग्रह से रहित होकर व्यापक एवं सूक्ष्म दृष्टि अपनानी होगी। यदि मन्त्रों का अर्थ किसी को स्पष्ट नहीं हो तो इसमें मन्त्रों का क्या दोषघ महर्षि यास्क ने कौत्स के तर्को का उत्तर देते हुए लिखा है कि सामने खड़े ठूंठ को अन्धा न देखे इसमें बेचारे ठूंठ का क्या अपराध है–

'नैष स्थारणोरपराधो यदेनमन्धो न पश्यति पुरूषापराधःस भवति'

आज संसार चाहे जितना उन्नति का दावा करे परन्तु मानवीय समस्याओं का जैसा समाधान वेद में है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। मानव जीवन के लिए जो कुछ भी उपयोगी है, वेद में उस सबका निदर्शन है। वेद मे ऐहिक के साथ पारलौकिक ज्ञान, भौतिक के साथ आध्यात्मिक ज्ञान, और अभ्युदय के साथ निःश्रेयस् का विवेचन है। यदि मानव के लिए वेद इतना उपयोगी न होता तो ब्राह्मणों ने प्राणपण से उनकी रक्षा हेतु प्रयास न किया होता। दाक्षिणात्यों ने वेदों को कण्ठाग्र करना अपने जीवन का लक्ष्य न बनाया होता और ''ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मो षडङ्. गो वेदोध्येयोज्ञेयश्च'' के अनुसार बिना किसी लाभ की आशा के वेदों के पठन–पाठन में अपना सम्पूर्ण जीवन न लगाया होता।

सन्दर्भ संकेत

1. ऋग्वेदभाष्य भूमिका (स्वामी दयानन्द)
2. मनुस्मृति 2/7
3. तदेव 2/6
4. तदेव 2/166
5. That the veda is full childish silly and monstrous conceptions , who would deny ?- India-what can its teach us? Page -57
6. "I remind you again that the Vedas contain agreat deal of what is childish and foolish" –Vedic Hinduism.
7. " A large number of Vedic hymns are childish in the extreme tedious, low and commonplace" Chips from a german workshop (Ed.1866 P.27)
8. "This edition of mine and the translation of the veda will, here after, tell to agreat axtent on the fate of india. It is the root of their religion and th shw them what the root is, I feel sure is the only way of uprooting all that has sprung from it during the last three thousand years" (Life an letters of Frederick Maxmuller, vol.1 chap.xv, page -34
9. निरुक्त 1/20/2
10. ऋग्वेद 1/164/39
11. त्देव 1/164/46
12. कठोपनिषद् 1/2/15
13. शुक्ल यजुर्वेद 40/15
14. असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽवृताः।
    ताँस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः।। तदेव40/3
15. अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
    ततो भूय इवते तमो य उ विद्यायां रताः।। तदेव 40/9

16. ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत।
तेन त्यक्तेन भुञ्जिथा मागृधः कस्य स्विद्धनम्।। तदेव 40/1
17. कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्मलिप्यते नरे।। तदेव 40/2
18. तदेव 40/3
19. यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजिगुप्सते।। तदेव 40/6
20. यास्मिन सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः।। तदेव 40/7
21. अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्यांरताः।। तदेव 40/12
22. संस्कृत वाङ्मय का वृहद् इतिहास– प्रथम खण्ड वेद– सप्तम अध्याय पृ0 195
23. ऋग्वेद 1/164
24. तदेव 10/72
25. तदेव 10/81–82
26. तदेव 10/90
27. तदेव 10/121
28. तदेव 10/129
29. तदेव 10/125
30. तदेव 10/190
31. तदेव 1/164/20
32. तदेव 8/58/3

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

वेदों में वर्णित शासन व्यवस्था की वर्तमान में उपादेयता

डॉ0 आशारानी पाण्डेय
एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष संस्कृत विभाग
डी0जी0 पी0जी0 कॉलेज, कानपुर

वैदिक काल से ही भारतीय राजव्यवस्था जनतांत्रिक मूल्यों की चेतना से युक्त एवं उसी के आधार पर उद्भूत हुई जो कालान्तर में विकसित और रूपान्तरित होती गई। संहिता, ब्राह्मण, अरण्यक, उपनिषदों के अनन्तर सूत्र साहित्य, आर्ष साहित्य, पौराणिक साहित्य में वर्णित राज्यव्यवस्था अपने भीतर न्यूनाधिक रूप से लोककल्याण के सनातन भारतीय मूल्य समाहित किए रही।

अपने वर्तमान स्वरूप में लोककल्याणकारी राज्य की अवधारणा बीसवीं शताब्दी की एक प्रमुख अवधारणा है। कल्याणकारी सिद्धान्त, राज्य को एक कल्याणकारी संस्था मानते हुए इस बात का प्रतिपादन करता है कि राज्य के द्वारा वे सभी कार्य किए जाने चाहिए जो व्यक्तियों के कल्याण में हों। साधारणतः लोककल्याणकारी राज्य का तात्पर्य एक ऐसे राज्य से है जिसके अन्तर्गत शासन की शक्ति का प्रयोग किसी वर्ग विशेष के कल्याण हेतु नहीं वरन् सम्पूर्ण जनता के कल्याण के लिए किया जाता है। इस रूप में लोककल्याणकारी राज्य का विचार नया नहीं है। पाश्चात्य विद्वान् जब यह मत व्यक्त कर रहे थे कि प्राचीन भारत में कभी भी गणतंत्रात्मक शासन नहीं रहा उस समय ''काशी प्रसाद जायसवाल'' जैसे विद्वानों ने 'यजुष' के 'गण' तथा 'गणपति' शब्द से बताया कि प्राचीन भारत में वैदिक काल से गणतन्त्रात्मक शासन विद्यमान था। यह गणतन्त्रात्मक शासन वैदिक ही नहीं अपितु महाभारत काल, छठी शताब्दी ईसा पूर्व से लेकर ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में प्रचलन में था।

अगर हम वर्तमान के भारत की बात करें तो यहाँ सुशासन के सभी समीकरण गड़बड़ा रहे हैं। आरक्षण की राजनीति, जातिगत राजनीति, वोट की राजनीति, परिवारवाद की राजनीति, अपराध की राजनीति आदि ने भारतीय जनता को राजनीति से विमुख कर दिया है। राजनेता, देश के विकास के लिए नहीं 'स्व' के विकास के लिए सत्ता में आते हैं, घोटाले करते हैं, कालाधन जमा करते हैं और जनता की कमाई से अपनी तिजोरियाँ भरते हैं, बदले में जनता को मिलती है भुखमरी, गरीबी, बेबसी और मौत। इस भयावह स्थिति से मुक्ति हेतु हमें अपने प्राचीन राज्यव्यवस्था की ओर उन्मुख होना ही पड़ेगा क्योंकि सुव्यवस्थित एवं कल्याणकारी राज्य हेतु सम्प्रति हमें सही सोच एवं विचारधारा की आवश्यकता है। हमारे ऋषियों ने पृथ्वी के सभी भौतिक तथ्यों व नियमों में संकल्प शक्ति का अद्भुत प्रयोग देखा, अनुभव किया व जाना, ये सिद्धान्त व नियम इतने दृढ़ थे कि धरा की कोई शक्ति उन्हें उनके पथ से विचलित नहीं कर सकती। वेद कहता है कि श्रेष्ठजन ही नेता बने ''आ देवानामभवः कतुरग्ने''[1]

वैदिक वाङ्मय का अवलोकन करने से स्पष्ट होता है कि उस समय दो प्रकार की शासन पद्धतियाँ प्रचलन में थीं। एक गणतन्त्रात्मक तथा दूसरी राजतन्त्रात्मक। गणतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था का शासन संचालन समूहों द्वारा किया जाता था जिसे 'गण' कहते थे। इन गणों का एक प्रमुख होता था जिसे 'गणपति' की संज्ञा दी गई है। वैदिक काल में इस प्रकार के राज्यों को जनराज्य की संज्ञा दी गयी है। यदु, तुर्वश, द्रुह्यु अनु, पुरु, गन्धारि, अमूजवत्, महावृष आदि जनराज्यों का वर्णन हमें वैदिक साहित्य में मिलता है तथा वेदों में 'आदित्य, वसु, मरुत, रुद्र, विश्वेदेव' जैसे कई गण देवताओं का भी उल्लेख हुआ है। इन गण देवों के नामोल्लेख से पता चलता है कि विशिष्ट व्यक्तियों का समूह उस राज्य के शासन का संचालन करता था और गणों की संख्या 12, 8, 49, 11 आदि हो सकती थी। सम्भवतः इस संख्या का आधार इस जनराज्य का उपास्य गण देवता रहा होगा। वैदिक साहित्य में जनराज्यों के संघ के भी उल्लेख मिलते हैं। ऋग्वेद[2] में दशराज्ञ युद्ध का उल्लेख मिलता है। इस युद्ध में परुष्णी

नदी के तट पर राजा सुदास ने इन जनराज्यों के संघ को पराजित किया था।

राज्य का प्रमुख राजा अथवा राष्ट्राध्यक्ष कहलाता है जो लोककल्याण हेतु विभिन्न प्रशासनिक क्रियायें करता है।

उभे सुश्चन्द सर्पियषोदर्वी श्रीगर्णांश सासनि।
उतो न उत्पूर्या उक्येषु शवेसस्पत इर्ष स्तोतृभ्य आभार
एवां अगिनमश्रुर्य मुर्गीभिज्ञशे भिरानुषक
दद्यस्मे सुवीर्यमुत व्यदाश्वश्वमिषं स्तोतृम्य आभर।

ऋग्वेद और अथर्ववेद के कई सूक्तों में प्रजा के द्वारा राजा के निर्वाचन का उल्लेख है। ऋग्वेद एवं अथर्ववेद से ज्ञात होता है कि राजा के निर्वाचन के लिए सभी प्रतिनिधि एकत्र होते थे और वे सर्वसम्मति से राजा का निर्वाचन करते थे।[3] अथर्ववेद के अनुसार राजा की नियुक्ति का कार्य समिति करती थी। वही राजा को स्थायित्व प्रदान करती थी। राजा की इस नियुक्ति के साथ राजा से यह आशा की जाती थी कि वह लोकप्रिय होकर रहे जिसे जनता उसको पसन्द करे। वह ऐसा कोई काम न करे जिससे वह पद्च्युत हो जाए।

विशस्त्वा सर्वा वाग्छन्तु।
मा त्वद्, राष्ट्रमधि भ्रशत।।[4]

अथर्ववेद में उल्लिखित है कि प्रजा को प्रसन्न करने के कारण राजन्य या राजा हुआ– 'सोऽरज्यतं, ततो राजन्योऽजायत।''[5] राजा का प्रमुख कर्तव्य है– प्रजा का पालन, रक्षण और संवर्धन। प्रजापालन राजा का कर्तव्य है। यजुर्वेद में उद्धृत है कि राजा का अभिषेक प्रजा के कल्याण और उनके विकास के लिए होता है। वैदिक मंत्रों में स्पष्ट रूप से दोनों की एक दूसरे के प्रति सद्भावना और सहायता की आकांक्षा की गयी है–

क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसि।
मा त्वा हिंसीन्मा मा हिंसी।।[6]

अर्थात् हे राजन्! तू छात्रबल अर्थात् राज्यशक्ति का आश्रयस्थल है, तू क्षात्रबल का केन्द्र है। यह (प्रजा) तुझे न मारे, तू भी मुझको न मार। ऋग्वेद में राजा को 'गोपोजनस्य' (प्रजा के रक्षक) और 'पुराम नेता' (नगरों पर विजय प्राप्त करने वाला) के विभूषण से विभूषित किया गया है।

राजा के सिंहासन पर आसीन होने पर उसे जलों से अभिषिक्त किया जाता था। एक वैदिक मंत्र के अनुसार 'तुझे हम सब जलों के वर्चस् से अभिसिंचित करते हैं।[7] ये जल सम्भवतः जनपद या राष्ट्र की सब नदियों व जलाशयों से लिया जाता था। जैसी प्रथा भारत में बाद में भी बनी रही। राज्याभिषेक के समय राजा को कर्तव्यों से परिचित कराता हुआ पुरोहित कहता है– यह राज्य तुम्हें कृषि के लिए, क्षेम के लिए, समृद्धि के लिए और पुष्टि के लिए सौंपा गया है। तुम इसके संचालक, नियामक और ध्रुवरूप से धारणकर्ता हो। सार्वजनिक कल्याण हेतु इस राज्य के राजपद पर तुम्हें अभिषिक्त किया जा रहा है।

कृष्यै त्वा, क्षेमाय त्वा, रय्यै त्वा, पोषय त्वा।[8]

यजुर्वेद में एक और स्थान पर कहा गया है– 'हे अग्निरूप राजन्! तू हम प्रजाओं के लिए मंगलकारी होकर इस राष्ट्र में आसीन हो तत्पश्चात् राजधर्म में आसीन हो जाओ।''[9] वेदों में अनेक स्थानों पर राजा के कर्तव्यों का उल्लेख किया गया है– राष्ट्र के नियंत्रक राजा तुम दृढ़तापूर्वक उत्तरदायित्वों को संभालो, कृषि उन्नति, जनकल्याण, आर्थिक समुन्नति तथा राष्ट्र की सुदृढ़ता के लिए यह राष्ट्र तुम्हें दिया जा रहा है। राजा विद्वानों व व्यापारियों की रक्षा करें, व्यापार और शिक्षा को संरक्षण दें, प्रजा की सुरक्षा करें तथा प्रजा में सुरक्षा की भावना पैदा करें व उसे निर्भय बनायें। ऋग्वेद में उक्त कर्तव्यों के अतिरिक्त अर्थव्यवस्था को ठीक रखने के लिए कठोरता से कर वसूलने के भी निर्देश दिये गये हैं।

राजा राष्ट्ररक्षा का उत्तरदायित्व स्वीकार करते हुए अभिषेक के समय धर्मानुयायियों और प्रजाजनों के समक्ष सत्यनिष्ठा से शपथ लेता था। 'ऐतरेय ब्राह्मण' के मंत्रानुसार राजा कहता है कि, 'जिस रात्रि में मेरा जन्म हुआ और जिस रात्रि में मेरी मृत्यु होगी, उन दोनों के मध्य में मैंने जो भी इष्टापूर्त (पुण्य कर्म) किये हों, वे सब नष्ट हो जायें और मैं स्वर्ग, समस्त शुभ कर्म, आयु और सन्तान से वंचित हो जाऊँ, यदि मैं किसी भी प्रकार से देश और जनता के साथ द्रोह करूँ–

स ब्रूयात सह श्रद्धया–यां च रात्रिं जायेऽहं, यां च प्रेतास्मि,
तदुभयमन्तरेणेष्टापूर्तमे लोकं सुकृतमायुः, प्रजां वृञ्जीथाः, यदि ते द्रुह्येम इति।[10]

तदन्तर पुरोहित राजा की पीठ पर पलाश की छड़ी से एक हल्का प्रहार (दण्ड) करता था। उसका यह आशय होता था कि राजा अदण्डनीय है।[11] धर्म की उदारता और शासक–शासित के बीच समानता का यह उच्च आदर्श केवल वैदिक संस्कृति में ही देखने को मिलता है। विशेषाधिकार प्राप्त कोई भी व्यक्ति किसी प्रकार की अहमन्यता तथा दूसरे की उपेक्षा का अहंकार अनुभव नहीं करे, इसके लिए पूरी व्यवस्था निश्चित थी। ऐसा विदित होता है कि राजा का उत्तरदायित्व देश व प्रजा की रक्षा व पालन तो था ही साथ ही देश व जनता के साथ विश्वासघात अक्षम्य अपराध भी था।[12] वह निरंकुश और स्वेच्छाचारी नहीं हो सकता था। उसकी स्थिति समानों में 'ज्येष्ठ' जैसी होती थी, इसी कारण वैदिक युग के शासन को 'जनतंत्रात्मक या लोकतंत्रात्मक राज्य' (जन या जनता का राज्य) कहा जा सकता है। कर्तव्य विमुख होने पर राजा को पद से च्युत कर देश से निर्वासित कर दिया जाता था तथा अपने दोषों को स्वीकार करने पर उसका पुनः निर्वाचन हो जाता था। इस पुनः स्थापना तथा प्रजा द्वारा राजा के संवरण का उल्लेख अथर्ववेद के सूक्तों[13] में विशदता से किया गया है।

वैदिक राजव्यवस्था में राजा के क्रिया–कलापों पर नियंत्रण रखने के लिए सभा, समिति, और विद्थ जैसी संस्थाएँ थीं। जैसी आजकल लोकसभा–राज्यसभा, विधानसभा–विधान परिषद हैं।

सभा के सदस्यों को समेय विप्र कहा गया है।[14] सभा के लिए 'किल्विषस्पृत' शब्द का प्रयोग हुआ है। जिसका अर्थ है, सभा वह है ''जो अभियोग द्वारा किसी व्यक्ति पर लगाए हुए कलंक को दूर करती है।''[15] तैत्तिरीय संहिता[16] में ब्राह्मणों की सभा का तथा मैत्रायणी संहिता[17] में राजा की सभा का वर्णन मिलता है।[18] सभा के सदस्यों को 'पितर' कहा गया है। काशी प्रसाद जायसवाल ने सभा को राष्ट्रीय न्यायालय का कार्य करने वाली सार्वजनिक संस्था कहा है। अनन्त सदाशिव अल्तेकर ने सभा को न्याय व्यवस्था देखने वाली ग्राम–संस्था बताया है।[19] सभा के लिए 'नरिष्ठा' शब्द का प्रयोग हुआ है। नरिष्ठेति नाम सभायायुज्यते इति। सायणाचार्य के अनुसार नरिष्ठा वह है जिसके निर्णय को कोई न टाल सके। स्त्री–पुरुष दोनों ही सभा के सदस्य होते थे।[20] यजुर्वेद और अथर्ववेद में कहा गया है कि स्त्री सभा में विजयशालिनी और अजय होती है।[21] सभा सदस्यों के गुणों का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि समेय (सभा का सदस्य) प्रिय मधुरभाषी, सत्यवादी, ओजस्वी वक्ता, विद्वान तथा यशस्वी हो जो अपने तेज से सारी सभा को अपने अधीन कर ले।[22] प्रयाज, अनुयाज, हुतभाग, अहुताद तथा पंचप्रदिश आदि सभा के पाँच भेद बताए गए हैं। पंचप्रदिश राजा के निर्वाचन में भाग लेते थे। सभा के अध्यक्ष के रूप में सभापति का उल्लेख हुआ है।

येषां प्रयाजा उत वानुयाजा हुतभागा अहुतादश्च देवाः।
तेषां वः पंच प्रदिशो विभक्ताः, तान् वो अस्मै सत्रसदः कृणोमि।[23]

वेदों में उल्लेख है कि समिति का मुख्य कार्य राजा को मन्त्रणा देना और विधि निर्माण करना था।[24] एक सूक्त में राष्ट्र की सुरक्षा व्यवस्था, शत्रुनाशन, राष्ट्रीय आय की व्यवस्था, जनकल्याण, विविध शिल्पों की उन्नति तथा प्रजा के योगक्षेम की व्यवस्था करना समिति के मुख्य कार्य बताये गये हैं। छान्दोग्योपनिषद्[25] तथा बृहदारण्यक[26] में उल्लेख है कि समिति विद्वानों के ज्ञान की परीक्षा करती थी। 'जिमर' तथा 'अल्तेकर' के मतानुसार

सभा ग्राम संस्था थी जबकि समिति राज्य की केन्द्रीय परिषद् थी।[27] उल्लेख है कि समिति राजा का चयन और अभिषेक करती थी तथा अयोग्य होने पर राजा को पद्च्युत भी कर सकती थी। ध्रुवाय ते समिति, कल्पतामिह पदच्युत[28] राजा यदि पुनर्प्रतिष्ठा चाहे तो उसे 'सौत्रामणि' नामक यज्ञ करना होता था। समिति की प्रत्येक बैठक में राजा का उपस्थित होना अनिवार्य था। इस समिति में राजनैतिक विषयों के अतिरिक्त शिक्षा और ज्ञान सम्बन्धी बातों पर वाद–विवाद हुआ करता था। अथर्ववेद में सभा और समिति को प्रजापति की दुहिताएँ माना गया है–

'सभा च सा समितिश्चातां प्रजापते र्दुहितरी संविदाने'[29]

वैदिक काल की तीसरी संस्था 'विदथ' थी जिसका वैदिक साहित्य में बहुधा उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद में विद्थ शब्द का 108 बार उल्लेख हुआ है तथा 'विद्थ' शब्द की उत्पत्ति 'विद्' धातु से हुई है। जिसका अर्थ ज्ञान और सत्य का अन्वेषण करना है।[30] तीन विदथों का उल्लेख है।[31] अग्निवत् तेजस्वी कवि तीनों विदथों पर अधिकार स्थापित करता है।[32] राजा विद्थ के तीनों सदनों को अलंकृत करते हैं और विद्थ के निर्णय के अनुसार ही राज–शक्ति धारण करते हैं।[33] वेदों में बताया गया है कि, विद्थ के सदस्य धीमान् ज्ञानवान, जिज्ञासु तथा अनुसंधानप्रिय होने चाहिए। विद्थ के क्रिया–कलापों में मुख्य रूप से धार्मिक कार्यों की व्यवस्था, शास्त्रीय चर्चा–वाद विवाद में सत्यार्थ निर्णय, नास्तिकता का निवारण कर आस्तिकता की स्थापना, सांस्कृतिक गतिविधियों पर नियंत्रण, लोक कल्याण के कार्य तथा राजा को राजशक्ति प्रदान करना आदि आते हैं।

वहनिं चकर्थ विदथे यजध्यै।[34]
बृहद् वदेम विदथे सुवीराः।[35]
यौ वै स धर्मः सत्यं वै तत्।[36]
अदेवयुं विदथे देवयुभिः सत्रा हतं सोमसुता जनेन।[37]
प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू। प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता।।[38]

सभा और समिति के विषय में वैदिक साहित्य के आलोचनात्मक अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि सभा एक व्यापक आधार पर निर्मित राजनैतिक संस्था थी, जिसकी अपेक्षा समिति का स्वरूप चुने हुए प्रतिनिधियों से निर्मित होता था। इन दोनों की तुलना क्रमशः आधुनिक लोकतंत्र की राजनैतिक संस्थाओं, लोक–सभा व राज्य सभा से की जा सकती है। इन दोनों के परामर्शों की उपेक्षा वेदकालीन राजा कदापि नहीं कर सकता था। ये तथ्य स्पष्ट करते हैं कि वैदिक युग में राजनैतिक दृष्टि से प्रचुर प्रबुद्धता एवं जागृति विद्यमान थी। प्राचीन वैदिक राजतन्त्र प्रणाली में राजा की सलाह के लिए मंत्रियों की नियुक्ति एक प्रकार से अनिवार्य थी।

राजा के दायित्वों के निर्वहन में पुरोहित का महत्वपूर्ण योगदान माना गया है। राष्ट्र संचालन से सम्बद्ध अंगों में पुरोहित अग्रणी या मुख्य माना जाता था। वह न केवल धर्माचार्य था अपितु राजनीतिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण व्यक्ति माना जाता था। ऐतरेय ब्राह्मण में राजा को सबका अधिपति, ब्राह्मणों तथा धर्म का रक्षक माना गया है साथ ही यह भी निर्देशित किया गया है कि कोई भी कार्य करने से पूर्व क्षत्रिय (राजा) को ब्राह्मण (पुरोहित) के पास जाना चाहिए, क्योंकि उससे यश प्राप्त होता है। संक्षेप में यह कह सकते हैं कि प्रजा कल्याण में राजा की अभिरुचि बनाये रखने, राजा को विराट मानव धर्म की ओर प्रवृत्त करने, राजनीतिक दृष्टि से राजा के समस्त सार्वजनिक कार्यों, न्याय व्यवस्था और प्रशासकीय कार्यों में पुरोहित का प्रभावशाली योगदान रहता था। राजा के उपदेशक, पथप्रदर्शक, दार्शनिक और मित्र के रूप में वह राजा का एकमात्र सहकारी था।

पुरोहित के विषय में कहा गया है–

तस्माद्राजा यज्ञय कर्मणो ब्राह्मण।
पुरोद्धीन देवाने मे अत्रम् अदन्निति।

अर्थात् बिना पुरोहित के देवता भी राजा से अन्न ग्रहण नहीं करते थे। पुरोहित का मुख्य काम युद्धस्थल में

देवताओं की प्रार्थना कर राजा को विजयी बनाने में सहायता प्रदान करना था। दासराज्ञ युद्ध के अवसर पर राजा सुदास के पुरोहित वसिष्ठ के द्वारा विजय के निमित्त देव प्रार्थना करने का स्पष्ट निर्देश ऋग्वेद (7/83/4) में मिलता है। पुनश्च नदी सूक्त में वर्णन है कि सुदास के पुरोहित विपाश एवं सुदुद्रि इन दोनों नदियों से प्रार्थना करते हैं कि वे अपना जलस्तर कम कर दें ताकि भरत सेना बिना क्षति के पत्तन पार कर जायं–

ओ षु स्वसारः कारवे श्रृणोत ययौ वो दूरादनसा रथेन।
नि षू नमध्वं भवता सुपारा अधोअक्षाः सिन्धवः स्त्रोत्याभि।

वैदिक युग में शासन संचालन का कार्य धर्म आधारित था, जिसका नेतृत्व पुरोहित करता था। आज के भारत के लिए भी यह आवश्यक है कि राजनीति के क्षेत्र में धार्मिक भाव जागृत हो इससे आत्मा एवं मन में शुद्धिकरण होता है तथा नैतिक मूल्यों का विकास होगा। क्योंकि धर्म की भावना से किये गये कार्य में सफलता के साथ–साथ स्थायित्व भी रहता है।

ऋग्वैदिक काल की अपेक्षा उत्तरवैदिक काल में राजा की सहायतार्थ पदाधिकारियों की संख्या में वृद्धि हुई तथा अनेक विभाग स्थापित किये गये। राजा मंत्रियों की सहायता से शासन चलाता था जो 'रत्निन' नाम से सम्बोधित थे। शतपथ ब्राह्मण में एकादश रत्निन उल्लिखित है। रत्निन के अतिरिक्त कतिपय राजकीय अधिकारी भी विभिन्न विभागों के अध्यक्ष होते थे– अन्नपति, पशुपति, पथिपति, क्षेत्रपति, अश्वपति, अश्वप, हस्तिप, गोपाल, अविपाल, अजपाल, अरण्यपति, वनस्पति, वनप, दावप, व्रातपति आदि।

सैन्य सेवा, व्यापार–वाणिज्य, यातायात तथा गृह सेवा से सम्बद्ध अनेक अधिकारी, कर्मचारी नियुक्त किये जाते थे जो राजा को शासन में, राष्ट्र की सुरक्षा व शक्ति वृद्धि में पूरा–पूरा सहयोग देते थे।

प्रत्येक मानव को अपने अधिकार के उपयोग का ज्ञान होना चाहिए, क्योंकि अपने अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण करके वह दूसरों को प्रताड़ित करता है, अतः समाज में एक सशक्त न्याय व्यवस्था अवश्य होनी चाहिए। निरपराध को दण्ड से बचाना और अपराधी को दण्ड प्रदान करना, न्याय व्यवस्था का परम प्रयोजन है। वेदों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि राजा को न्यायप्रिय होना चाहिए और सत्य के साथ रहना चाहिए।

सच्चासच्च वचसी सस्पृधाते।
तयोर्यत सत्यं यतरद ऋजीयः।
तदित् सोमोऽवति हन्त्यासात्।
वृन्ति रक्षो हन्त्यासद वदन्तम्
उभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते।[39]

अर्थात् वह सत्य की रक्षा करता है, असत्य पक्ष को दण्डित करता है, झूठ बोलने वाले को कड़ी सजा देता है और उन्हें जेल में डाल देता है।

वैदिक न्याय व्यवस्था में परम्परागत कानून की महत्ता थी। नये कानून की अधिक आवश्यकता नहीं पड़ती थी क्योंकि अधिकतम् न्यायिक कार्य ग्राम स्तर पर ही सम्पादित कर दिये जाते थे। स्मृतिकारों ने भी स्वीकार किया है कि न्याय करते समय लोकाचार देशकाल आदि का भी ध्यान रखना चाहिए। मनु भी इसी बात का समर्थन करते हैं–

'तदेश–कुल–जातीनाम्, अविरुद्धं प्रकल्पयेत।

ईश्वर ने राजा के कार्यों की सफलता और जीवों की रक्षा के लिए दण्ड की व्यवस्था की थी। दण्ड के भय से समस्त प्रजा स्व–स्व कर्तव्यों का पालन करती है। मनु ने दण्ड को अत्यावश्यक बताया है क्योंकि दण्ड व्यवस्था न होने पर सबल–निर्बल को प्रताड़ित करने लगेगा। दण्डनीति ही संसार को रोके हुए है, राजा को अपराधी को दण्ड देना अनिवार्य था, चाहे वे उसके अपने प्रियजन ही क्यों न हो–

माता–पिता च भ्राता च, भार्या चैव पुरोहितः।
नादण्डयो विद्यते राज्ञो, यः स्वधर्मे न तिष्ठति।।[40]

वैदिक युग में दण्ड का स्वरूप शारीरिक न होकर आर्थिक था। मृत्यु दण्ड की प्रथा नहीं थी। उन्हें जेल में डाल देने की व्यवस्था थी।

त्रिर्यातुधानः प्रसितिं त एतु।[41]
इन्द्रो यातूनाम भवत् पराशरः।[42]

अथर्ववेद में यातुधानों, राक्षसों एवं चोरों को मार डालने का भी विधान था। वेदों में असत्य सम्भाषण करने वाले के अस्तित्व को समाप्त कर देने का नियम था–

सत्यं धूर्वन्तम् अचितं न्योष[43]

अपराधों की जघन्यता पर दण्ड की कठोरता निर्धारित होती थी। वैदिक युग में निष्पक्ष न्याय करके उसके अनुसार दण्ड दिया जाता था। सम्प्रति देश के राजा, अर्थात् प्रधानमंत्री को वैदिक न्याय व्यवस्था से शिक्षा लेनी चाहिए।

वेदकालीन समाज में राजा, प्रजा एवं राज्याधिकारी में राष्ट्र के प्रति समर्पण की भावना विद्यमान थी, माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः की बलवती भावना से भावित रहते थे। वेद राष्ट्र में व्याप्त क्षेत्रवाद को भुलाकर एक राष्ट्र, एक धर्म, की शिक्षा देता है। आदर्श साम्यवाद और समरसता की भावना से अनुप्राणित मंत्र द्रष्टव्य है–

समानो मंत्रः समितिः, समानीसमानं मनः सहचित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रममिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।

अर्थात् हमारा मन एवं चित् एक जैसा हो संगठन का मंत्रणा समान हो, हमारा विचार समान हो, कर्मप्रवृत्ति समान हो।

सम्पूर्ण शोध का परिणाम या निष्कर्ष यह निकलता है कि वेदों में वर्णित राजनीति एवं शासन व्यवस्था एक विलक्षण आदर्श प्रस्तुत करता है, जो आज पतनोन्मुखी भ्रष्टाचारपूरित भाई भतीजावाद से ग्रसित जातिवाद से विकृत भारतीय राजनीति को स्वस्थ एवं उन्नत बनाने में पूर्णतया सक्षम है। वेद शासक, प्रशासक के कर्तव्य, प्रजारक्षण और प्रजापालन, राजतन्त्र के आदर्श, सैन्य संचालन, युद्धनीति, दण्डनीति आदि विषयों में हमें मार्ग दर्शन प्रदान करता है। यदि हमारे राष्ट्र के कर्णधार हमारे नेता, मंत्री, न्यायाधीश, नीतिवेत्ता, सैन्यबल और प्रजा इन गुणों को अपने आचरण में उतार ले तो, राजा, प्रजा एवं राज्याधिकारियों में एक–दूसरे के प्रति सहयोगात्मक नीति की प्रवृत्ति जाग्रत होगी, निःस्वार्थ भाव से उसमें देश के प्रति समर्पण की भावना उत्पन्न होगी, स्वचिन्तन की जगह परचिन्तन वृत्ति होगी तो देश एक दिन निश्चय ही उन्नति के सोपान पर आरूढ़ होगा और राष्ट्र में व्याप्त नानाविध बुराईयाँ स्वतः समाप्त हो जायेगी। प्रत्येक व्यक्ति में ईश्वर का ही निवास परिलक्षित होगा। हमें गौरवान्वित होना चाहिए कि आधुनिक यूरोपीय विद्वानों ने हमारी वैदिक शासन प्रणाली को सर्वश्रेष्ठ माना है। वेद– बहुजनहितायः, बहुजन सुखाय, कृष्णवन्तोविश्वमार्य, मित्रस्य चक्षुषा समीक्षा महे, वसुधैव कुटुम्बकम् के सिद्धान्तों का उद्घोष करता है, अतः वर्तमान भारत के प्रत्येक व्यक्ति का एक ही मूल मंत्र होना चाहिए–

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेद।।

सन्दर्भ संकेत

1. ऋग्वेद 7, 18, 8–9
2. ऋग्वेद 10, 173, 1 से 6, अथर्ववेद 3, 4, 1 से 7, 6, 87, 1 से 3, 6, 88, 1 से 3
3. अर्थवेद 3, 4, 1 से 7

4. अथर्ववेद 6, 87, 1
5. ऋग्वेद 10, 173, 1 से 6
6. यजुर्वेद 20/1
7. अथर्ववेद 4/8/5
8. यजुर्वेद 9/22
9. अथर्ववेद 7/12
10. ऐतरेय ब्राह्मण 8, 3, 15
11. शतपथ ब्राह्मण 5, 4, 4, 7
12. अथर्ववेद 2, 88, 3
13. अथर्ववेद 3, 31, 3, 4
14. ऋग्वेद 2, 24, 13
15. ऋग्वेद 10, 71, 10
16. ब्राह्मणस्य सभा। अव सभां रून्धे/तैत्तिरीय संहिता 1, 7, 6, 8
17. तस्य सभायाः। मैत्रायणी संहिता 2, 2, 1
18. अथर्ववेद 7, 12, 1
19. अथर्ववेद 7, 12, 2
20. यजुर्वेद 13, 26
21. अथर्ववेद 7, 38, 4
22. अथर्ववेद 1, 30, 14
23. यजुर्वेद 16, 242 यस्मिन् देषे निशीदन्ति विप्रा वेदविदस्त्रयः।
    राजश्रचाधिकष्तो विद्वान् ब्रह्मणस्तां सभां विदुः।। मनु0 8/11
24. ऋग्वेद 10, 166
25. छान्दोग्योपनिषद् 5, 13
26. बृहदारण्यक 6, 2
27. अथर्ववेद 8, 10, 12, 1
28. अथर्ववेद 6/88/3
29. अथर्ववेद 7/12/1
30. ऋग्वेद 6, 51, 2
31. ऋग्वेद 8, 39, 9
32. ऋग्वेद 38, 5–6
33. ऋग्वेद 7, 93, 3
34. ऋग्वेद 3.1.1
35. ऋग्वेद 2.23.19
36. बृहदारण्यक0 1.4.14
37. ऋग्वेद 7.9.3.5
38. अथर्ववेद 5.12.7
39. ऋग्वेद 7/104/12–13
40. महाभारत–शान्तिपर्व–121/60
41. अथर्ववेद 8/3/11
42. ऋग्वेद– 7/104/21
43. अथर्ववेद– 8/3/21

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

वैदिक युग में पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा

डॉ0 सुरेन्द्र कुमार सिंह
पटना विश्वविद्यालय, पटना

वेद भारत का ही नहीं अपितु सम्पूर्ण संसार का प्राचीनतम (सबसे प्राचीन) ग्रंथ है। इस विषय में कोई सन्देह नहीं है। वेद पृथ्वी पर सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। सभी वेद संस्कृत भाषा में लिखा गया है। इसलिए यहाँ विचारणीय यह है कि वेदों में पर्यावरण की चर्चा है या नहीं है ? यदि वेदों में पर्यावरण की चर्चा की गई है तो यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि हमारे पूर्वज पर्यावरण संरक्षण के लिए अत्यन्त प्रयत्नशील थे। वे लोग पर्यावरण के महत्त्व को पूर्णतः जानते थे।

आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण में मुख्य रूप से प्रकृति को ही पर्यावरण के नाम से जाना जाता है। प्राचीन काल में प्रकृति अत्यन्त पवित्रा थी। ''प्रकर्षा कृतिः प्रकृति रिति'' अर्थात् ईश्वर का सर्वोत्कृष्ट यत्न इसका अभिप्राय था। प्रकृति और पुरुष में पारस्परिक समता है। प्रकृति और पुरुष में पारस्परिक अन्योन्याश्रय सम्बन्ध माना गया है। पुरूष को ईश्वर या ब्रह्म कहा गया है। अतः प्रकृति तत्सारुप्यम ब्रह्म ही है। वस्तुतः पञ्चमहाभूत पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश, वायु को ही ब्रह्म कहा गया है। अतः इनकी रक्षा अनिवार्य है। वायु पर्यावरण का पहला कारक है। वायु किसे कहते हैं ? इसका क्या महत्त्व है हम पूर्णतः जानते हैं। वायु ही प्राण है। अतएव इसे ''प्राणवायु'' के नाम से जाना जाता है। वस्तुतः वायु न केवल मानवों का अपितु समस्त चराचर भूत प्राणियों का जीवन है। ईश्वर की उत्पत्ति का कारण भी वायु ही है।

ऋग्वेद संहिता के ग्यारहवें अनुवाद में 23 सूक्त हैं। जिनके परमेष्ठी नामक प्रद्यापति ऋषि है, तथा परमात्मा देवता है। यहाँ नासदीय सूक्त में कहा गया है–

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं
नासीद्रजो नो व्योभा परोयत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्म्म
न्नभः किमांसीद्गहनं गभीरम्।।
न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि
न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं
तस्माद्धान्यन्न परः किं च नास।।
तम आसीत्तमसा गूक्हमग्रे
प्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
इयं विसृष्टिर्यत आबभूव
यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योम
न्त्सो अङ्गवेद यदि वा न वेद।।

ऋग्वेद सभी वेदों में प्राचीनतम है। यहाँ भी पर्यावरण के महत्त्व का वर्णन किया गया है। ''आसीदवात

स्वध्या तदेकम्'' मन्त्र के द्वारा संकेतित होता है कि पञ्चमहाभूत ही इस सृष्टि का कारण है। आज न सिर्फ हमारी सरकार अपितु सम्पूर्ण विश्व पर्यावरण संरक्षण एवं प्रदूषण के अपनयन हेतु चिन्तित है। इस समय संसार के सभी बुद्धिमान् (विद्वान) व्यक्ति अधिकाधिक वृक्षों की आवश्यकता महसूस करते हैं। परन्तु यह अवधारणा वर्तमानकालिक ही नहीं है यह तो मूलतः वैदिक ऋषियों की धारणा रही है। अतएव वे लोग वृक्षों को बार–बार नमस्कार करते हैं–

नमोवृक्षेभ्यः (यजुर्वेद 16–17)
ओषधीनां पतये नमः (यजुर्वेद 16–16)
अरण्याणां पतये नमः (यजुर्वेद 16–20)
नमो वन्याय च (यजुर्वेद 16–34)

संसार के सभी पदार्थों में चेतना का साक्षात्कार करनेवाले भारतीय मनीषी प्रकृति के प्रति अत्यधिक उदार थे। उनका मत है कि अत्यन्त सूक्ष्मता से देखने पर प्रकृति सजीवता की प्रत्यक्ष मूर्ति दिखाई देती है। वैदिक साहित्य के अनुशीलन से पता चलता है कि प्रकृति से हमारा न केवल बाह्य सम्बन्ध है अपितु आन्तरिक सम्बन्ध है। जैसे हमारे हृदय में माता–पिता, सूखा, बन्धु आदि का स्थान है वैसे ही प्रकृति का भी स्थान है।

आञ्जनागन्धिं सुरभिं बहून्नाम कृषीवलाम्।
प्राह मृगाणां मातरं अरण्यामनिम शंस्तिम्।।

इस समय हमारी सरकार पर्यावरण के महत्त्व को देखते हुए ''विश्व पर्यावरण दिवस'' उत्सव के रूप में मनाते हैं। प्रायः सभी विद्यालय व महाविद्यालय आदि में वृक्षारोपण अभियान के रूप में किया जाता है। इसके प्रचार–प्रसार में सरकार के द्वारा लाखों करोड़ों रूपये आबंटित की जाती है। परन्तु सरकार पहले ही यदि ऋषि के वचनानुसार काम करती तो यह विकट पर्यावरण समस्या नहीं आती। जैसे–

मधुमान्नो वनस्पतिः (ऋग्वेद 01–90–08)
माध्वीर्नः सन्त्वोषधी (यजुर्वेद 13–27)
सुमित्रायाः न आपः ओषधयः सन्तु (यजुर्वेद 36–27)
ओषधयः शान्ति वनस्पतयः शान्ति (यजुर्वेद 36–17)

भारतीय संस्कृति में वृक्षारोपण अत्यधिक पुण्यदायी माना जाता है। एकमन्त्र में स्पष्ट निर्देश है कि पादपारोण अवश्य करना चाहिए। कभी भी वृक्षों को क्षति नहीं पहुँचानी चाहिए। जैसे–

वनस्पतिं वन आस्थापयध्वम्। (ऋग्वेद 10–101–11)
पुनश्च – याॠ पौयौषधी हिंसी। (यजुर्वेद 6/12)

यहाँ जिज्ञासा होती है कि वृक्षों की हिंसा क्या है ?वृक्षों का काटना वृक्षों की हिंसा कहलाती है। वैदिक काल में सभी जगह यज्ञों का महत्त्व था। यज्ञों में निश्चित रूप से होम होता था। होम का क्या महत्त्व है ? होम में विविध प्रकार के लकड़ी एवं घृत आदि का प्रयोग होता है। अथर्ववेद के अनुसार पर्यावरण संरक्षण के लिए होम परम आवश्यक है। होम से निकली हुई घूम पर्यावरण को शुद्ध करती है। पर्यावरण में जीव–जन्तुओं के द्वारा मल–मूत्र त्याग से अनेक प्रकार के प्रदूषण उत्पन्न हो जाता है। जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, तो निश्चित रूप से होता ही है। पृथ्वी पर गिरी हुई वृक्ष, पत्ते आदि के द्वारा अत्यन्त भयानक प्रदूषण फैलता है। अनेक प्रकार के विषाणु वायुमण्डल में उत्पन्न हो जाते हैं। हमारे लिए ये सूक्ष्म कीड़े अत्यन्त हानिकारक होते हैं। इनके दंश या स्पर्श से असाध्य रोग होता है। इनसे रक्षा के लिए होम से निकली हुई घूम लाभकर एवं रोग निवारक होता है। जैसे–

यज्ञ धूमस्य संपर्कात् दिशो भान्ति गतज्वराः। (शतपथ ब्राह्मणे)
पुनः– घृताहिवनः दीदिवः प्रतिष्भ। (ऋग्वेद)

रिसता दह्यग्ने तवं रक्षस्वनः।। (ऋग्वेद)
पञ्चराज्यानि वीरूथाम सोम श्रेष्ठ निब्रुमः।
दर्भा भंगो यवः सहस्ते नो मुञ्चत्वं हसः।। (अथर्व 11–06–15)

पौराणिक युग में भी वृक्ष पूजनीय था। उस समय पूजा का कारण न केवल भगवत् भक्ति थी अपितु पूजा के माध्यम से पर्यावरण शुद्धि एवं रोगों का नाश ही मूल कारण प्रतीत होता है। जैसे–

आदौ सर्ववृक्षमयं पूर्व विश्वमजायत।
एते वृक्षाः महाश्रेष्ठाः सर्वे देवांश संभवः।। (स्कन्द पुराण)
एकोहरिः सकलवृक्षगतो विभाति,
नाना रसैस्तु परिभावित मूर्त्तिरेव।
वृक्षाधिवासमगमत कमला च देवि
दुःखादि नाशकरी सततं स्मृता{पि।। (स्कन्द पुराण 6/247/21–22/224/9)

पद्मपुराणे – यः पुमान रोपयत् वृक्षान् छाया पुष्प फलोपमान्।
सर्व सत्वोपयोगाय स याति परमां गतिम्।।

भारतवर्ष में प्रायः सभी सनातन धर्मानुयायी के घरों में स्त्रियाँ वृक्षों की पूजा करती हैं। स्कन्द पुराण के छठे अध्याय के वृक्षारोपण प्रसंग में अधोलिखित वृक्षों की पूजा अनिवार्य बताया गया है। जो नीचे द्रष्टव्य हैकृ

अश्वत्थ – अश्वत्थं रोपयेद यस्तु पृथिव्यां प्रयतोनरः।
तस्य पाप सहस्राणि विलयं यान्ति तत्क्षणात्।। स्कन्द(ना.) 6/247/38

पलाश – पलाशः सर्वदेवानां आधरो धर्म साधनम्।
द्यत्रा लोकस्तु तस्य स्यातत्र पूज्यो महातरुः।। स्कन्द 6/248/7

तुलसी – तुलसी रोपिता येन गृहस्थेन महाफला।
गृहे तस्य दारिद्रयं जायते नात्रा संशयः।। स्कन्द 6/249/1

बिल्व वृक्ष – अयं बिल्वतः श्रेष्ढः पवित्राा पाप नाशनः।
तस्य मूले स्थिता देवी गिरिजा नात्र संशयः।। स्कन्द 6/251/14

धत्री – सर्वदेवमयी धात्री वासुदेवमनः प्रिया।
आरोपनीया सेव्या च पूजनीया सदा नरैः।। स्कन्द (वै.) 12/13

वटवृक्ष – अमरस्त्वं कदाकल्पो हरेश्चायतनं वटः।
न्यग्रोध हर मे पापं कल्पवृक्ष नमोऋस्तुते।। ब्रह्मपुराण 58/14

महाकवि कालिदास के कृतियों में रघुवंश महाकाव्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है इसके द्वितीय सर्ग में राजा दिलीप के गोसेवा का वर्णन है। भारत में गाय विशेष रूप से पूज्य माना जाता है। गाय केवल दूध देनेवाली ही नहीं, अपितु इसके मल–मूत्र में कीड़े को विनाश करने की असीम शक्ति होती है। अतएव राजा दिलीप के द्वारा गोसेवा किया गया। गाय के दूध में सन्तानोत्पत्ति की शक्ति होती है। अतएव अपना प्राण देकर भी राजा दिलीप को गोसेवा हितकारिणी प्रतीत होता है। यहाँ वृक्षों के महत्त्व को भी बार–बार दिखाया गया है। जंगल में एक देवदारू नामक वृक्ष है। माँ पार्वती इस वृक्ष को पुत्रवत् पालन की थी। पार्वती के जाने पर उस वृक्ष की रक्षा हेतु भगवान शिव के द्वारा एक सिंह को नियुक्त किया गया था। जब नन्दिनी के द्वारा उस देवदारू के त्वचा को क्षति पहुँचाई गयी तो क्रोधित सिंह नन्दिनी को मारने के लिए तत्पर हो गया। यहाँ सिंह दिलीप से इस प्रकार कहता है–

अमुं पुरः पश्यसि देवदारुं
पुत्रीकृतोऋसौ वृषभध्वजेन।

यो हेमकुम्भस्तन निसृतानां स्कन्दमातुः पयसां ररक्षः। (रघुवंश 2/36)

महाभारतेऋपि पर्यावरण रक्षणाय वृक्षाणां महत्वं दृश्यते।

यथा हि– एकोवृक्षो हि यो ग्रामे भवेत् पर्ण फलान्वितः।

चैत्योभवति निर्ज्ञाती रूपनीयः सुपूजितः।। (महाभारत आदिपर्व 138/25)

पर्यावरण रक्षा में नदी का महत्त्व – भारत में प्रायः सभी जगह हिन्दुओं के लिए पर्यावरण के सन्दर्भ में नदी का महत्त्व देखा जाता है। पूजा प्रत्येक भारतीय व्यक्ति का दैनिक कार्य होता है। पूजा के आरम्भ में प्रथमतः नदी का स्मरण किया जाता है। स्नान काल में तो प्रत्येक भारतीय नदियों का स्मरण करते ही है। यहाँ यह श्लोक द्रष्टव्य है–

गंगे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती।

नर्मदे सिन्धुकावेरी जलऋस्मिन् सन्निधि कुरु।।

पर्यावरण के कारकों में नदियों और पर्वतों का महत्त्व सर्वविदित है। वैदिक काल से आजतक इन कारकों का महत्त्व असन्दिग्ध रहा है। वेदों में स्पष्ट कहा गया है कि नदियों के किनारे ज्ञानियों को ज्ञान की प्राप्ति होती है। जैसे कि ऋग्वेद में कहा गया है–

उपगहवरे गिरी संगमे च नदीनां।

धियो विप्रोऋजायत्।। (ऋग्वेद 8/6/24)

(यजुर्वेद 26/15)

महाभारत के शान्तिपर्व में व्यास स्पष्ट कहता है कि पर्यावरण संरक्षण के दृष्टि से तालाब का निर्माण, वृक्षारोपण, नदी सेवन जलाशयों का शुद्धिकरण, आदि कार्य पुण्यदायी होता है। जैसे–

तस्यात्रडागं कुर्वीत आरामाश्चैव रोपयेत्। (शान्ति पर्व 58, 32)

प्रायः विवाह काल में वर–वधू के आशीर्वाद के समय में पुरोहितों के द्वारा सुमंगली पाठ किया जाता है। उसमें विविध प्रकार के पर्वत, वृक्ष, नदी आदि का स्मरण दम्पति के दीर्घायु के लिए किया जाता है।

सा चन्द्रभागा वरुणात्वसी नदी,

कुर्वन्तु वः पूर्ण मनोरथं सदा।।

पर्यावरण का संरक्षक पर्वत – पहाड़ का निर्माण भी ईश्वर के द्वारा पर्यावरण संरक्षण के लिए ही किया गया है। पहाड़ प्रकृति की बहुमूल्य निधि है। पर्वत के चोटियों एवं घाटियों के गोद में बड़े–बड़े जंगल होते हैं। जो पर्यावरण शुद्धि के लिए सर्वोत्तम साधन माने जाते हैं। प्राचीन काल के कवि एवं नाटककार अपने–अपने काव्यों में पर्वतों का वर्णन विस्तार पूर्वक किया है। इस सन्दर्भ में महान् नाटककार कालिदास रचित कुमारसंभव महाकाव्य का यह वस्तुनिर्देशात्मक मंत्रणाचरण देखने योग्य है–

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयानाम नगाधिराज।

पूर्वा{परौ तोयनिधैगाह्य स्थितः पृथिव्यामिवमान दण्डः।। (कुमारसंभवम् 1–1)

देवता सम्बन्धी यह यास्क का निर्वचन अत्यन्त प्रसिद्ध है। हिमालय पर देवताओं का निवास है। स्वयं देवाधिदेव भगवान् शिव का निवास हिमालय ही है। हिमालय न कवेल बर्फ के लिए प्रसिद्ध है, अपितु इसके गोद में अनेक जंगलें एवं उनमें प्राप्त दिव्य औषधि–वनस्पतियाँ आदि भी है। हिमालय के लिए कहा जाता है कि यह पृथ्वी पर स्वर्ग के समान है। रोगी यहाँ आकर रोगमुक्त हो जाते हैं। मनोरोगी भी यहाँ स्वस्थ हो जाता है। कुष्ठ रोगी अत्यन्त शीघ्र स्वस्थ हो जाता है। इसीलिए कहा गया है–

यं सर्वशैलोऋषि परिकल्प्य वत्सं मेरौस्थिते दोग्धरि दोहदक्षे।
भास्वन्ति रत्नानि महौषधीश्च पृथूपदिष्टां दुदुहुः धरित्रीम्।। (कुमारसंभवम् 1–2)

हिमालय के क्षेत्र को भारत में विष्णु रूपात्मक माना जाता है। जैसे देवताओं में विष्णु कल्याणकारी एवं शान्ति प्रदान करनेवाले हैं। वही स्थान हिमालय का भी है। मुख्यतः भारत का सम्पूर्ण भूभाग, पर्यावरण, हिमालय पर्वतमाला से प्रभावित होता है। भारतीय जलवायु संचरन में हिमालय की महती भूमिका होती है। जहाँ शीतकाल में एशिया से आनेवाली शीतवायु रोक दिया जाता है। जिससे शीत ऋतु में तापमान न्यूनाधिक नहीं हो पाता है। शीत वायु सभी प्राणियों के लिए प्राणघातक होता है। परन्तु ग्रीष्म ऋतु में यही हिमालय वर्षा का उपकारक होता है। अतएव महाकवि कालिदास कहते हैं–

तिर्यगूर्ध्वमधस्ताच्च व्यापको महिमा हरेः।
त्रिविक्रमोधतस्यासत्सि तु स्वाभाविकस्तव।। (कुमारसंभव 6–71)

हिमालय को पर्यावरण का रक्षक, संशोधक, वनस्पति का निधि एवं देवताओं का अधिवास कहा जाता है। इसका मूल यहाँ का परिशुद्ध वायु ही है। यहाँ घूमने मात्र से रोग भाग जाता है। अतएव हलायुध कोष में कहा गया हैकृ

फल पाकावसानास्तु बुधैरोषधयः स्मृताः (हलायुधकोष)

पुनः– पृक्तस्तुषारै गिरि निर्झराणां
अनोकहा कम्पित पुष्पगन्धिः।
गंङ्गा प्रपातान्तं विरूदशष्णं
गौरी गुरोर्गह्वर माविवेश।। (रघुवंश 2–6)

इस प्रकार सम्पूर्ण रूप से हम देखते हैं कि पर्यावरण परिशुद्धि के लिए हमारे ऋषि–मुनि, कवि सभी प्राचीन काल से अत्यन्त प्रयत्नशील रहे हैं।

संदर्भ संकेत

1. ऋग्वेद संहिता – दयानंद संस्थान
2. यजुर्वेद संहिता – दयानंद संस्थान
3. अर्थवेद संहिता – दयानंद संस्थान
4. वाल्मीकि रामायण – गीता प्रेस, गोरखपुर
5. संस्कृत साहित्य का इतिहास–ए॰वी॰ कीथ
6. संस्कृत साहित्य का इतिहास – वाचस्पति गैरोला
7. कालिदास ग्रन्थावली–अनु॰ श्री रामप्रताप त्रिपाठी
8. उत्तरामचरितम् – अनुवादक आचार्य प्रभु दत्त स्वामी
9. ऋक् सूक्त समुच्च–डॉ॰ रामकृष्ण आचार्य
10. अभिज्ञानशाकुन्तलम् – अनुवादक डॉ॰ बाबू राम त्रिपाठी।

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कर्म क्या है ? : कर्म का विज्ञान

डॉ. पूजा दीक्षित
प्राचार्य
श्रीकृष्ण जनका देवी परास्नातक महाविद्यालय, मंगलपुर, कानपुर देहात (उत्तर प्रदेश)

कर्म क्या है? क्या अच्छे कर्म करने से गलत कर्मों का असर खत्म हो जाता है? भले लोगों को दुःख क्यों उठाने पड़ते हैं ? कर्म बंधन कब और कैसे रुकता है...?

जब तक आपको कर्म बाँधते हैं, तब तक आपके लिये हमेशा पुनर्जन्म है ही। अगर आपको कर्म बंध ान होगा तो अगले जन्म में आपको उसके परिणाम भुगतने होंगे। 'कर्म' का अर्थ होता है 'क्रिया।'

'कर्म' और 'फल' का अनिवार्य संबंध है। इसी को 'कर्मवाद' या 'कर्म सिद्धान्त' कहते हैं।

जीवन में हम कर्म के माध्यम से जो चाहे वो पा सकते हैं और कर्म को ही भगवान मानते हैं।

प्रायः यह बहस अक्सर छिड़ जाती है कि मानव–जीवन में किस वस्तु का ज्यादा महत्व है– भाग्य का या कर्म का? कर्मवादी सिद्धान्तों को मानने वाले तर्क रखते हैं कि, यह संसार कर्म के सिद्धांतों पर टिका है, जीवन में हम कर्म के माध्यम से जो चाहे वो पा सकते हैं वह कर्म को ही भगवान मानते हैं। उनके अनुसार ''देव–देव अलसी पुकारा'' वाली कहावत भाग्यवादी वालों के लिये ही बनी है।

कर्मवादी व्यक्ति मानता है कि पुरुष अपने पुरुषार्थ के बल पर जीवन में वो हर–चीज़ प्राप्त कर सकता है। जिसकी उसे लालसा या आकांक्षा है। देवी भागवत महापुराण में भी कहा गया है– ''उद्यमं साहसं धैर्यं बुद्धि शक्ति–पराक्रमः। षेडते यत्र वर्तन्ते तत्र दैव सहायकृत।।''

अर्थात् यदि आप चाहते हैं कि, आपका भाग्य फले, आपका भाग्य–सौभाग्य में बदले तो उद्यम, साहस, धैर्य, बुद्धि, शक्ति और पराक्रम को अपनाओ, ईश्वर आपकी मदद करेंगे।

किन्तु 'भाग्य' और भाग्यवादी मनुष्य इससे इतर सोंचता है, उसके अनुसार जीवन में घटने वाली हर घटना भाग्य पर निर्भर करती है।

प्रायः यह कहते हुए लोग मिल जायेंगे कि, ईश्वर की इच्छा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। रामायण में भी यह कहा गया है कि ''होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को कर तर्क बढ़ावै साखा।। कहि लगे जपन हरिनामा। गईं सती जहाँ प्रभु सुखधामा।।'' अर्थात् जो कुछ राम ने रच रखा है, वही होगा। तर्क करके कौन बातों को बढ़ावा दे, ऐसा कहकर शिव जी भगवान श्री हरि का नाम जपने लगे और सीता जी वहाँ गई, जहाँ सुख के धाम प्रभु श्री रामचन्द्र जी थे।

यह प्रसंग उस समय का है जब माता सती जी ने श्री शिव भगवान की बात पर विश्वास नहीं किया यह अंतहीन बहस है कि, भाग्य बड़ा है या कर्म। इसके बारे में सबके पास अपने तर्क हैं, लेकिन हर हाल में हमें सकारात्मक सोच के साथ जीवन में कुछ उल्लेखनीय करने के लिये प्रेरणा लेनी चाहिए।

अक्सर युवा सोचता है, कि बिना कुछ किये ही उसे वह सब कुछ मिल जाए जो वह चाहता है। यह मंथन हम सभी के दिमाग में चलता हैं कि भाग्य बड़ा है या कर्म! अनंतकाल से इस विषय पर बहस चली आ रही है, कि कर्म महत्वपूर्ण है या भाग्य!

महाभारत में जब अर्जुन ने कुरुक्षेत्र में युद्ध में अपने स्वजनों को अपने सामने खड़ा पाया तो उनका शरीर निस्तेज हो गया। तब भगवान कृष्ण ने अर्जुन से कहा कि, राज्य तुम्हारे भाग्य में है या नहीं यह तो बाद में पहले तुम्हें युद्ध तो लड़ना पड़ेगा, अपना कर्म तो करना ही पड़ेगा। तुलसीदास जी ने भी रामचरितमानस में लिखा है– ''कर्म प्रधान विश्व रचि राखा'' अर्थात् युग तो कर्म का है। किसान जब खेत में बीज बोता है तो उसे यह नहीं पता होता कि बारिश होगी या नहीं। जमीन से बीज के अंकुर फूटेंगे या नहीं। अगर पौधे आ गये तो उस पर फल आयेंगे या नहीं लेकिन किसान बीजों को जमीन में बोता है और फसल की चिंता ईश्वर पर छोड़ देता है।

यह एक अंतहीन बहस है कि भाग्य बड़ा है या कर्म। इसके लिये सबके पास अपने–अपने तर्क हैं। कर्म को प्रधान कहा गया है। नीतिशास्त्र का एक श्लोक है–

उद्यमेन ही सिंधीत, कर्याणि न मनोरथ। न हि सुप्तस्य सिंहस्य, प्रविष्यंति मुखे मृगा।।

इस श्लोक का अर्थ है कि, उद्यमेन ही सिधंति अर्थात् मेहनत् करने से कार्य पूर्ण होता है। कार्यों में सफलता प्राप्त होती है। मन के सोचने पर जीवन में सुख, समृद्धि और सफलता नहीं प्राप्त होती सकल जीवन व्यतीत करने के लिये कर्म करना पड़ता है। कर्म प्रधान होता है किन्तु भाग्य–विधाता होता है। विधि का विध ाान ही भाग्य कहलाता है।

''दीपक बोलता नहीं, उसका प्रकाश परिचय देता है। ठीक उसी प्रकार आप अपने बारे में कुछ न बोलें, अच्छे कर्म करते रहें वही आपका परिचय देंगें।''

'होम'– ''अध्यात्म एक बोधि वृक्ष''

कर्म को जीवन का पर्याय कहा जा सकता है, क्योंकि निष्क्रियता तो मृत्यु के समान होती है। पल–पल कुछ न कुछ करते रहने वाले व्यक्ति का हर काम सफल, सुखदायक कैसे हो सकता है। इसका मतलब यह कैसे निकाला जा सकता है कि व्यक्ति सुकर्मी है या दुष्कर्मी? वास्तव में देखा जाये तो कर्म के पीछे का इरादा व्यक्ति की प्रवृत्ति को दर्शाता है। किसी भी कर्म के लिये एक विचार, तीव्र, आकांक्षा और निर्णय जरूरी होता है और उसको पूरा करने के लिये दृढ़ इच्छाशक्ति, उत्साह, अनुशासन, और विश्वास प्रेरक होता है।

कुछ संकल्प आंतरिक समृद्धि के लिये होते हैं। हर धर्म अच्छे कर्मों के लिये प्रेरित करता है। ईमानदारी और प्रार्थना को व्यक्ति की अच्छी मानसिक स्थिति के लिये जरूरी माना जाता है। किसी निश्चय और पूर्ण समर्पण के साथ किए गये काम से भौतिक लाभ और आध्यात्मिक उपलब्धि दोनो मिल सकते हैं।

अध्यात्म की शरण में जाकर हमारा जीवन बदल सकता है। अध्यात्म वह शक्ति है, जो हमारे जीवन की अद्भुत संरचना कर सकती है। प्रभु के प्रति अगाध श्रद्धा और अध्यात्म का संगम किसी व्यक्ति को कहाँ पहुँचा सकता है, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। बस मन और इच्छाशक्ति मजबूत होनी चाहिए। ध्यान के जरिए जब हम आज्ञा चक्र को सुदृढ़ करते हैं, जब तब हमारे कलेक्टिव मांइड को मजबूती मिलती है। और वह शक्ति हमारे लक्ष्य को राह को नहीं रोक सकती। कर्म और साधना के माध्यम से व्यक्ति सुनिश्चित और सुदृढ़ बनता है।

जीवन का दर्शन ही अध्यात्म है। जीवन के रहस्य में डूब जाना ही समाधि है। समस्याओं से निपटने की कला भी अध्यात्म है। अगर आपको अपनी चेतना के शिखर पर पहुँचना है तो जीवन के रहस्य में डूब जाए, जीवन–दर्शन को समझें। क्योंकि जीवन–दर्शन ही अध्यात्म का आधार है।

अंत में यही कहा जा सकता है कि भाग्य भी उन लोगों का साथ देता है जो कर्म करते हैं किसी खुरदरे पत्थर को चिकना बनाने के लिये हमें उसे रोज घिसना पड़ेगा। ऐसा ही जिन्दगी में भी समझें। हम जिस किसी भी क्षेत्र में हो, जिस स्तर में हो, किन्तु हमें अपना कर्म करते रहना चाहिए और फल की चिंता नहीं करनी चाहिए।

वस्तुतः प्रत्येक कर्म को भाग्य की वृद्धि या भाग्य की कुंजी कह सकते हैं। कर्म और भाग्य दोनों की अपनी–अपनी जगह महत्ता है।

सन्दर्भ – कर्म की परिभाषा को ''श्रीमद्भागवत गीता'' में अति सुंदर ढंग से परिभाषित किया गया है। इस श्लोक से उसे विस्तृत वर्णित किया है–

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।।3=5।।

कोई मनुष्य किसी भी अवस्था में क्षणमात्र भी कर्म किए बिना नहीं रह सकता क्योंकि सभी प्राणी प्रकृतिजन्य गुण करने के लिए विवश होते हैं। कर्म और भाग्य का विवरण सभी पुराणों और उपनिषदों में मिलता है।

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

भारतीय समाजवाद में लोहिया का योगदान

अरविंद कुमार
शोध छात्र
वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर (यूपी)

डॉ0 राम मनोहर लोहिया की समाजवादी दृष्टि के विकास में निश्चय ही मार्क्सवाद तथा समाजवाद की अन्य धाराओं की भूमिका होगी। लेकिन समाजवाद को उन्होंने जिस तरह देखा और अपनाया, वह उनका अपना विचार है। लोहिया के समाजवादी दर्शन में अपने समय की वास्तविक चुनौतियों को समझने और देश तथा दुनिया की विविध समस्याओं का समाधान खोजने की बेचौनी और सामर्थ्य, दोनों दिखाई पड़ते है। सबसे बड़ी बात यह है कि – लोहिया के समाजवाद में समग्रता का जज्बा है। इस लिए उसमें एक पूर्ण जीवन – दर्शन बनाने की संभावना वास करती है। यह एक बड़ा कारण है कि परिवर्तन के आकाक्षी हजारों नौजवान तथा अन्य लोग लोहिया की तरह इस तरह खीचे जैसे प्यासा नदी की ओर भागता है। ये वे लोग थे जो समय के सबसे शक्तिशाली नेता जवाहर लाल नेहरू की नीतियों और आचरण से छले गए। महसूस करते थे और जिन्हें गांधी से पूरी तसल्ली नहीं होती थी।

'लोहिया के समाजवाद की विशेषता क्या थी?'

1. यह पूरी तरह से भारतीय मन की उपज थी। इसकी अपनी शब्दावली थी। लोहिया जब समता के मूल्य की चर्चा करते है, तो उन्हें उपनिषदों के ऋषि वही याद आते है जो हर स्थिति में समभाव रखने के आग्रही थे। वस्तुतः इस प्रकार को मानसिक ट्रेनिग के बिना जीवन मे कोई ठोस और अनेक टिकाऊ सन्तुलन नहीं बनाया जा सकता निजी सम्पति की जड़ में आसक्ति की केंद्रीय भूमिका है। आसक्ति में केंद्रित होती है, जब कि जो कुछ है, उसमे दूसरों का भी बराबर हिस्सा है। किसी हद तक अनासक्ति की साधना किये बगैर समाजवादी समाज नहीं बनाया जा सकता। लेकिन यह अनासक्ति वैराग्य की सहयोगिनी नहीं, बल्कि जीवन को छक कर जीने की आवश्यक शर्त है। लोहिया का समाजवाद पूर्णतः इहलौकिक होते हुए भी उनकी सीमाओं का अतिक्रमण करता है तथा संभ्यता को संस्कृति का परिष्कार देने की कोशिश करता है।

2. लोहिया का समाजवाद भारत की विशेष स्थिति को समझने और उसके अनुसार मुद्दे निर्धारित करने की कोशिश करता है। उनके पहले और उनके बाद भी कोई ऐसा चिंतक या नेता दिखाई नही पड़ता जिसने जाति और भाषा के सवाल को निर्णायक महत्व दिया हो। आज भी जाति – प्रथा के उन्मूलन की कोई कार्यनीति दिखाई नहीं पड़ती, जबकि आरक्षण का ढोल और जोर से पीटा जाने लगा है, जो लोहिया के लिए अवसर की समानता के जरिए जाति को कमजोर करने और प्रगति में सबकी समझदारी सुनिश्चित करने का एक माध्यम था।

3. लोहिया के समाजवाद में एशियाई स्वाभिमान की खुशबू है। इस खुशबू में अफ्रीका की अनोखी रंगत भी शामिल है, यो की यूरोप ने पिछले तीन सौ वर्षों में इतिहास को जो दिशा दी है, उसका एक जैसा शिकार में दोनों महादेश रह चुके है। फलस्वरूप लोहिया ने पश्चिम के इरादों पर हमेशा सन्देह किया। इसके जोश में वे यह दावा करने की हद तक चले गए कि मार्क्सवाद एशिया के खिलाफ यूरोप का आखिरी हथियार है। पश्चिमी सभ्यता के कुछ गुणों को स्वीकार करते हुए भी लोहिया को बराबर लगता रहा कि इस सभ्यता में अपने को नया जीवन प्रदान करने की क्षमता नहीं रह गई है। पश्चिमी की विश्व – दृष्टि में हमेशा कुछ न कुछ खोट रहा है। और औद्योगिक क्रांति के बाद तो वह राक्षसी सभ्यता का केंद्र बन बैठी। वर्तमान वैश्विक विश्वाद की सहेली नहीं, उसकी सौत है। इसके बावजूद लोहिया किसी से कम अन्तराष्ट्रीयवादी नहीं थे। उनके चौखम्भा राज्य के ऊपर एक एयर खम्भा

था – विश्व संसद और विश्व सरकार का।

4. समाजवाद की जो दूसरी धाराएं उपलब्ध है उनमें उत्पादन के ढांचे, पूंजी की भूमिका और उपयोग की सीमा के बारे में कोई यथार्थसंगत कैफियत नहीं मिलती सभी यह मानते है कि पश्चिमी रहन – सहन ही पूरी दुनिया का भविष्य है और सभी को यह भविष्य हासिल करने की कोशिश करनी चाहिए। सोवियत संघ इसी लालसा के चलते मारा गया और अब चीन को पूँजीवाद आकर्षित कर रहा है। उपभोग को उपयोगियतावाद में बदल ढलने की तरंग समाजवादी समाज के रास्ते मे सबसे बड़ी रुकावट है। लेकिन लोहिया को छोडकर तीसरी दुनिया के किसी अन्य अर्थशास्त्री या राजनेता ने यह हिसाब नहीं लगाया कि पश्चिमी देशों में औसत श्रमिक के पीछे कितनी पूंजी का निवेश कर सकते है। लोहिया की मान्यता थी की ऐसी कोई भी सभ्यता विश्व सभ्यता नहीं बन सकती जो विश्व के सभी समाजों को रहन–सहन का कमोबेश बराबर स्तर उपलब्ध न करा सके। इसलिए यह दावा आधारहीन नहीं है कि लोहिया के समाजवाद में सिर्फ भारत या एशिया – अफ्रीका की मुक्ति के लिए भी गहरा सरोकार था। लोहिया ने अपने समाजवाद को इन दो शब्दों के जरिए परिभाषित किया था – समता और सम्पन्नता। लेकिन समता की शर्त लगा देने के बाद सम्पन्नता की एक सीमा बन जाती है।

5. अहिंसा का विचार लोहियाई समाजवाद के केंद्र में है। हिंसा का पथ सभी किस्म के समाजवादियों को लुभाता रहा। मार्क्सवादियों ने तो इसे क्रांति का स्वाभाविक सहचर मान रखा है। जबकि क्रांति और हिंसा के बीच कोई अनिवार्य सम्बंध दिखाई नहीं पड़ता। स्वयं मार्क्स ने हिंसा को क्रांति का मिडवाइफ कहा है, न की उसकी जननी लेकिन अहिंसा गांधी की तरह लोहिया के लिए भी रणनीति नहीं, बल्कि एक बुनियादी मूल्य थी। अपनी इस आस्था के बल पर लोहिया यह दावा करते थे कि या तो गांधी रहेंगे या एटम बम रहेगा। आज दुनिया बम से ऊब चुकी है और गांधी को याद करने लगी है दिलचस्प है कि अहिंसा के प्रति लगाव ने लोहिया को आंदोलनी होने से कतई नहीं रोका बल्कि वह औजार दिया जिसके बल पर सच्चा जन आंदोलन खड़ा किया जा सकता है। वह वीर ही क्या जिसमें करुणा न हो। गांधी का नारा था – करेंगे या मरेंगे। लोहिया ने अपने सिपाहियों को यह संकल्प दिया – मारेंगे नहीं पर मानेंगे नहीं। ऐसी दृढ़ता के बिना अहिंसा लुंज – पुंज हो जाती है। इसी से लड़ने का वह रास्ता खुलता है जो गांधी को सत्याग्रह और लोहिया को सिविल नाफरमानी की ओर ले जाता था। इस रास्ते पर चलने के लिए किसी समूह या दल की भी जरूरत नहीं है। इसका सहारा लेकर बच्चे तक अन्याय का विरोध कर सकते है।

6. लोकतंत्र के बिना समाजवाद की कल्पना नही की जा सकती। वस्तुतः समाजवाद लोकतंत्र की ही एक निष्पति है। लोकतंत्र के साथ सबसे बड़ी दुर्घटना यह हुई कि उसका विकास पूंजीवाद की छांव में हुआ। पूंजीवादी लोकतंत्र की कानूनी सिस्टम जीने की आजादी के बजाय धन कमाने की आजादी को ज्यादा महत्वपूर्ण मानता है। इसलिए साम्यवादी व्यवस्थाओं ने लोकतंत्र को शक की निगाह से देखा जबकि उन्हें लोकतंत्र को और ज्यादा ठोस तथा मानवतावादी बनाना चाहिए था। डॉ0 लोहिया मिजाज से ही लोकतांत्रिक थे। उन्होंने हमें सिखाया कि लोकतंत्र और केंद्रीकरण साथ – साथ नही चल सकते। बहस की सम्पूर्ण आजादी उन्हें अत्यंत प्रिय थी, पर कार्य के स्तर पर मर्यादा की मांग वे जरूर करते थे।

7. लोहिया का समाजवाद सिर्फ आर्थिक व्यवस्था तक सीमित नहीं है, न वह यह मानता है कि अर्थ ही मानव अस्तित्व की धुरी है। उनके अनुसार यह मूलतः एक नैतिक व्यवस्था है, जिसकी अभिव्यक्ति जीवन के सभी पहलुओं में बराबर ताकत के होनी चाहिए। यह अकारण नहीं है कि राजनीति और अर्थशास्त्र के साथ – साथ कला और साहित्य में भी लोहिया का आना – जाना बना रहता था। सत्य और सौंदर्य दोनों उन्हें आकर्षित करते थे। समाजवाद तब तक अन्तोषजनक जीवन – दर्शन नहीं बन सकता। जब तक जीवन के सभी पक्षो तक उसका फैलाव न हो। असल मे तो यह एक पूर्ण मानव की खोज का ही एक सुंदर उपकरण है।

8. लोहिया के समाजवाद में व्यक्ति और समुदाय दोनों के जायज दावों का सम्मान है। व्यक्ति न तो सिर्फ अपने लिए जीता है, न सिर्फ समाज के लिए। दोनों एक दूसरे से शक्ति पाते हैं और एक दूसरे को समृद्ध करते हैं। इसी तरह लोहिया का आदमी न क्षण में जीता है न किसी सूदूर स्वर्ग के लिए वर्तमान को दाँव पर लगाकर। वह अल्पकालीन और दीर्घ कालीन के बीच पुल तैयार करने की कोशिश करता है पूरकता और द्वंदात्मकता का यह दर्शन लोहिया के समाजवाद की खास ऊनी शक्ल हज जिसकी सार्थकता आज कुछ ज्यादा ही है, क्योंकि हमारे समय पर और इसमें भारत का समय शामिल है, तरह – तरह की एकांगिताएँ हावी होती जा रही हैं।

सन्दर्भ संकेत

1. लोहिया राम मनोहर : क्रांति के लिए संगठन, भाग एक नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद 1983
2. लोहिया राम मनोहर : कांचन मुक्ति, नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद 1956
3. लोहिया राम मनोहर : समाजवाद की राजनीति, नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद 1968
4. लोहिया राम मनोहर : समाजवाद के आर्थिक आधार, नव भारत प्रकाशन गृह लहरिया, सहाय 1952
5. लोहिया राम मनोहर : समाजवादी एकता, हिदायत नगर, हैदराबाद 2–2–19
6. लोहिया राम मनोहर : समाजवादी आंदोलन का इतिहास, न्यास प्रकाशन, हैदराबाद
7. लोहिया राम मनोहर : जातिप्रथा, नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद 1964
8. लोहिया राम मनोहर : आजाद हिन्दुस्तान के नये रुझान, नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, प्रथम संस्करण 1968

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

दीनदयाल उपाध्याय का राजनीतिक चिन्तन

मन्जू सोनी
शोध–छात्रा, राजनीतिविज्ञान विभाग
तिलकधारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जौनपुर

पण्डित दीनदयाल जी के व्यक्तित्व को शब्दों में पिरो पाना बड़ा कठिन है। वे एक कुशल संचालक, देशभक्त, संगठनकर्त्ता एवं दूरदर्शी राजनीतिज्ञ थे। वे एक साधारण पुरुष थे, लेकिन इस साधारण पुरुष में असाधारण विद्वता, महानता का पूर्ण समावेश था। सादा जीवन उच्च विचार की जीती–जागती प्रतिमा थे। आज प्रत्येक भारतीय इनके त्यागमय जीवन का ऋणी है। पण्डित दीनदयाल उपाध्याय देश तथा दुनिया के स्थायी विकास के लिए राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक जिन सिद्धान्तों को जनता के सामने रखा वे प्रचलित सिद्धान्तों से अलग थे। वे मानव को विभाजित कर देखने के पक्षधर नहीं थे। एकात्म मानववाद तथा अन्त्योदय उनके विचारों की समग्रता को प्रकट करते हैं। पण्डित दीनदयाल उपाध्याय के जीवन के हर पहलू को बड़ी सहजता और सरलता से पाठकों के मानस पटल पर अंकित किया है।[1]

दीनदयाल जी के अनुसार, "परस्पर जोड़ने वाला विचार हमारी संस्कृति है। यही सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का मर्म है।"

यह तो सर्वविदित है कि पण्डित दीनदयाल उपाध्याय एक अदम्य प्रतिभाशाली और विवेकशील युग पुरुष थे। उनके विचारों की सार्थकता आज के सन्दर्भ में एक अपेक्षित भविष्यवाणी मानी जा सकती है। यह सत्य है कि आज प्रत्येक मानवतावाद से दूर और एकात्मवाद से कोसों दूर होता जा रहा है। अत एव आज की परिस्थितियों से घिरे रहने के कारण पण्डित दीनदयाल उपाध्याय के विचारों की सार्थकता को सन्दर्भित करना सम्भवतः कार्य प्रतीत होता है।

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय एक महान देशभक्त, कुशल संगठनकर्त्ता, मौलिक विचारक, दूरदर्शी, राजनीतिज्ञ तथा प्रबुद्ध साहित्यकार थे। वह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के चिन्तक तथा संगठनकर्त्ता थे। वे भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष भी रहे। वे समावेशित विचारधारा के समर्थक थे तथा एक मजबूत और एक सशक्त भारत चाहते थे।

पण्डित दीनदयाल जी भारत की सनातन विचारधारा को युगानुकूल रूप में प्रस्तुत करते हुए देश को 'एकात्म मानव–दर्शन' जैसी प्रगतिशील विचारधारा दी। दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानववाद तथा अन्त्योदय विचार आज भी प्रासंगिक है। भारत में अनेकवाद अपनाए गए, अब तो वैश्वीकरण और उदारीकरण को भी लम्बा समय हो गया, लेकिन अमीर व गरीब के बीच की खाई बढ़ी है। यह व्यक्तिवादी व उपभोगवादी चिन्तन का भी परिणाम है। ऐसे में दीनदयाल उपाध्याय जी समाज के सबसे निचले पायदान पर, जो व्यक्ति हैं उनके उत्थान के प्रयास पर प्राथमिकता देते हैं।

दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार, "भवन निर्माण में पहले छत नहीं बनाया जा सकता है। निर्माण नींव से शुरू होता है।"[2]

कई बार गहरे प्रवाह की गति का भास दूर से देखने से नहीं हो पाता। यदि प्रवाह में कोई फूल अथवा अन्य वस्तु बहती चली आए, तो उसके सहारे दृष्टि गति का मान सरलता से कर लेती है। इसी भाँति संस्थाओं और आन्दोलनों में कई व्यक्ति ऐसे होते हैं, जिनके माध्यम से उनके सूक्ष्म विकास और परिवर्तन को उनके उतार–चढ़ाव, मोड़ तथा गति से सरलता से समझा जा सकता है। पण्डित दीनदयाल उपाध्याय जी का जीवन भी जनसंघ के

विचार–प्रभाव में उसी पुश्प की भाँति है जो प्रवाह की गति, मोड़ और उतार–चढ़ाव को दिग्दर्षित करता है।

भारतीय जनसंघ की स्थापना डॉ0 श्यामा प्रसाद मुखर्जी द्वारा वर्श 1951 में किया गया एवं दीनदयाल उपाध्याय को प्रथम महासचिव नियुक्त किया गया। वे लगातार 1967 तक जनसंघ के महासचिव बने रहे।

भारतीय जनसंघ ने अपने सम्मुख अखण्ड भारत का ध्येय रखा है। अखण्ड भारत देश की भौगोलिक एकता का ही परिचायक नहीं अपितु जीवन के भारतीय दृष्टिकोण का द्योतक है, जो अनेकता में एकता का दर्षन करता है।[3]

उनके चिन्तन में एक ऐसी मौलिकता है जो भारतीय इतिहास, परम्परा, राजनीति और भारतीय अर्थनीति से प्रस्फुटित है। उनके चिन्तन का प्रेरणा बिन्दु भारत का वह निर्धन, अनिकेत और रूढ़ियों से असमर्थ नागरिक है, जिसने काल तथा हर प्रकार के विदेशी आक्रमणों के थपेड़ों के बीच भारत के 'स्व और अभिमान' को अपने निर्धन, दुर्बल एवं शोषित शरीर में जीवित रखता है।

दीनदयाल उपाध्याय अपने जीवन के प्रारम्भिक वर्षों से ही समाज–सेवा के प्रति अत्यधिक समर्पित थे। वर्ष 1937 में अपने कॉलेज के दिनों में वे कानपुर में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के साथ जुड़ें, वहाँ उन्होंने आर0एस0एस0 के संस्थापक डॉ0 हेडगेवार से बातचीत की ओर संगठन के प्रति पूरी तरह अपने आपकों समर्पित कर दिया।

एकात्म मानववाद तथा अन्त्योदय के रूप में पण्डित दीनदयाल उपाध्याय जी ने भारत की तत्कालीन राजनीति और समाज को उस दिशा में मुड़ने की सलाह दी, जो सौ फीसदी भारतीय है। इसका उद्देश्य ऐसा स्वदेशी सामाजिक–आर्थिक मॉडल प्रस्तुत करना था, जिसका केन्द्र मानव था। वे मानव के सम्पूर्ण दृष्टि से सम्बन्ध पर व्यापक दृष्टिकोण रखने का काम किया। वे मानव को विभाजित करके देखने के पक्षधर नहीं थे।

दीनदयाल जी समाजवाद और साम्यवाद को कागजी और अव्यावहारिक सिद्धान्त के रूप में देखते थे। उनका स्पष्ट मानना था कि भारतीय परिप्रेक्ष्य में यह विचार न तो भारतीयता के अनुरूप है और न ही व्यावहारिक ही है। भारत को चलाने के लिए भारतीय दर्शन ही कारगर वैचारिक उपकरण हो सकता है। चाहे राजनीति का प्रश्न हो, चाहे अर्थव्यवस्था अथवा समाज की विविध जरूरतों का प्रश्न हो, उन्होंने मानवमात्र से जुड़े लगभग प्रत्येक प्रश्न की समाधानयुक्त विवेचना अपने वैचारिक लेखों में की है। शासन का उद्देश्य अन्त्योदय की परिकल्पना के अनुरूप होना चाहिए। इनको लेकर भी उनका रूप स्पष्ट है। भारतीय अर्थनीति कैसी हो, उसका स्वरूप क्या हो, इन सारे विषयों को दीनदयाल उपाध्याय जी ने "भारतीय अर्थनीति विषय की दिषा में रखा है।"[4]

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी की विचारधारा का एक महत्त्वपूर्ण एवं बुनियादी सिद्धान्त है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का अभिप्राय राष्ट्रवाद का वह स्वरूप जो संस्कृति से जुड़ा हो तथा उसका आधार सांस्कृतिक हो। पण्डित दीनदयाल उपाध्याय जी कहा करते थे कि, राष्ट्र केवल एक भौतिक निकाय नहीं हुआ करता। देश में रहने वाले लोगों के अन्तःकरण में अपनी भूमि के प्रति असीम श्रद्धा की भावना का होना ही राष्ट्रीयता की पहली आवश्यकता है। उनका मानना था कि संस्कृति एवं धर्म एक–दूसरे से जुड़े हैं, उनके अनुसार एक जीवित राष्ट्र की पहचान यह है कि अपने ऊपर सभी प्रकार की आक्रमण व नकारात्मक प्रभावों का सामना करते हुए राष्ट्र–निर्माण की ओर बढ़ते हुए अपनी समग्रता को बरकरार रखना है। किसी भी राष्ट्र की प्रगति के लिए उसके नागरिकों में राष्ट्रवाद की भावना का होना जरूरी है। उनका मानना था कि भारतीय राष्ट्रवाद की पहचान राजनीतिक रूप से अधिक सांस्कृतिक रूप में रही है। भारतीय राष्ट्रवाद की परिकल्पना यूरोपीय राष्ट्रवादी परिकल्पना से भिन्न है। भारतीय संस्कृति में राष्ट्र प्रकृति का रूप धारण करता है तथा भावात्मक विचार के रूप में उपस्थित है। भारतीय संस्कृति का विकास विभिन्न क्रान्तियों एवं सामाजिक आन्दोलन से प्रभावित तथा विभिन्न संस्कृतियों के सम्मिलन से हुआ है। जैसा कि हम जानते हैं कि भारतीय संस्कृति की पहचान चार पुरुषार्थों– धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष से होती है। इसीलिए उपाध्याय जी ने सभी तत्वों के समन्वय में माध्यम से राष्ट्र निर्माण की बात कही।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया के पश्चात् वर्तमान समय में जब पूरे विश्व में संरक्षणवाद धीरे–धीरे हावी हो रहा है तथा सम्पूर्ण विश्व नवीन चुनौतियों का सामना कर रहा है, तो पण्डित दीनदयाल उपाध्याय का सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का विचार भारतीय सन्दर्भ में पूरी तरह प्रासंगिक और मार्गदर्शक सिद्ध होता है।[5]

किसी भी देश के आर्थिक विकास के लिए शिक्षा तथा रोजगार मुख्य रूप से उत्तरदायी है। भारतवर्ष के स्वतन्त्र होने के उपरान्त भारत में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तकनीकी आदि क्षेत्रों में अनुमान से अधिक विकास कार्य हुए हैं, साथ ही जनता के जीवन–स्तर को ऊपर उठाना हमारे लक्ष्य विकास का एक स्रोत है, जिसका अनुसरण कर हम भव्य भारत का निर्माण करने की ओर अग्रसर हैं। दल की आर्थिक अर्थनीति के निर्धारण में उनकी एक और बड़ी देन आर्थिक विषमताओं को दूर करने की थी। वे विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था के समर्थक थे। विदेशी ऋण को समाप्त कर स्वावलम्बन की बात भी दीनदयाल जी ने की थी। उनका मत था कि प्रदेशों की केन्द्र पर आर्थिक निर्भरता अनुचित है। प्रदेश को और अधिक स्रोत और साधन दिये जाने चाहिए। आय की अधिकतम सीमा बांधने तथा काम के अधिकार को मौलिक आधिकारों में जोड़े जाने का आग्रह दीनदयाल उपाध्याय जी का था। राजनीतिक दलों के लिए एक संयुक्त आचार संहिता की आवश्यकता की बात सर्वप्रथम दीनदयाल जी ने कहा।[6]

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय के विचारों से प्रेरित होकर पण्डित दीनदयाल योजना का प्रारम्भ हमारी केन्द्र सरकार द्वारा किया गया, जिसके अन्तर्गत कौशल विकास तथा अन्य उपायों के माध्यम से आजीविका के अवसरों में वृद्धि कर शहरी और ग्रामीण गरीबी को कम करना है। इस योजना की मुख्य विशेषताएँ कौशल प्रशिक्षण और स्थापना के माध्यम से रोजगार, सामाजिक एकजुटता तथा शहरी निराश्रय के लिए आश्रय की व्यवस्था करना है।

पंडित जी ने विश्व इतिहास के सांस्कृतिक सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक घटनाक्रम का विस्तृत एवं गहन अनुशीलन करते हुए तत्कालीन वैश्विक पटल में व्याप्त आपसी वैमनस्य शक्ति एवं सत्ता संघर्ष तथा आत्मघातक प्रतियोगी वातावरण के संदर्भ में एक ऐसा व्यावहारिक जीवन दर्शन प्रतिपादित किया है, जो कि समस्त वैयक्तिक राष्ट्रीय व वैश्विक जटिलताओं के सार्थक एवं सकारात्मक समाधान हेतु व्यवहारिक नीतियां हेतु मार्गदर्शन करता है। भारत के विकास का आधार अपनी भारतीय संस्कृति हो। सबका साथ सबका विकास ही जीवन का मंत्र है, क्योंकि व्यक्ति समाज राष्ट्र की उन्नति से ही विश्व का कल्याण होगा। उन्होंने मानव की बुनियादी आवश्यकताओं के साथ–साथ कृषि, शिक्षा, उद्योग, नियोजन, महंगाई, विकेंद्रीकरण, पशुपालन, मशीनीकरण, उपभोग, उत्पादन, वितरण तथा बेरोजगारी जैसे महत्वपूर्ण मुद्दों पर गहन चिंतन किया है तथा इन आर्थिक समस्याओं के समाधान हेतु भारतीय प्रकृति परिस्थिति व संस्कृति के अनुसार समाधान प्रस्तुत किए जो वर्तमान समय में गंभीर आर्थिक समस्याओं के वास्तविक समाधान में पूर्णतया प्रासंगिक है।[7]

दीनदयाल उपाध्याय विदेश नीति को भी राष्ट्र निर्माण का आवश्यक अंग मानते हैं। उनका मानना है कि प्रत्येक राष्ट्र को शांतिपूर्ण सह अस्तित्व की भावना के लिए काम करना चाहिए। पंडित दीनदयाल जी कहते थे, जिस प्रकार राजनीतिक लोकतंत्र का आधार वयस्क मताधिकार है, उसी तरह आर्थिक लोकतंत्र का आधार यह होना चाहिए कि प्रत्येक वयस्क को कार्य का अवसर मिले। केवल रोजगार ही नहीं, बल्कि रोजगार चयन की स्वतंत्रता के द्वारा भी राष्ट्र निर्माण किया जा सकता है। किसी भी राष्ट्र के निर्माण के लिए सुव्यवस्थित नियोजन की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण होती है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने नियोजन के दोनों तरीकों जो साम्यवादी तथा समाजवादी देशों में प्रचलित है, का समन्वय किया। नियोजन के संदर्भ में उनका मानना है शासन अपने हाथ में बहुत ही थोड़े एवं अपरिहार्य उद्योग हाथ में ले ले तथा शेष का नियंत्रण के द्वारा निगमन करता चला जाए। पंडित दीनदयाल उपाध्याय की उपर्युक्त बात उदारीकृत अर्थव्यवस्था की ओर संकेत करती है जो कि वैश्वीकरण का आधार है। भारतीय अर्थनीति का आधार 'सबको काम' ही हो सकता है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने शिक्षा के माध्यम से गरीबी बेरोजगारी जैसी समस्याओं के निदान पर बल दिया।[8]

उन्होंने कहा आर0एस0एस0 विचारधारा के राष्ट्रवादी विचारक थे, जिनके महत्वपूर्ण विषयों पर प्रकट किए हुए विचार काफी अहमियत रखते हैं। केंद्रीय राज्य मंत्री कृष्णपाल गुर्जर ने कहा कि, केंद्र में मोदी सरकार पंडित दीनदयाल उपाध्याय द्वारा दिखाए गए मार्ग का अनुसरण कर रही है और कमजोर वर्गों, अनुसूचित जाति और जनजाति के सामाजिक आर्थिक उत्थान के प्रति वचनबद्ध है। इस संबंध में कई योजनाओं को शुरू किया गया है।[9]

दीनदयाल ग्रामीण कौशल योजना, प्रधानमंत्री आवास योजना, स्वच्छ भारत अभियान, प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना, दीनदयाल ग्राम ज्योति योजना। भाजपा ने पंडित दीनदयाल उपाध्याय के सिद्धांतों व विचारों को लोगों तक पहुंचाने के लिए राष्ट्रीय एकता अभियान शुरू किया है। उन्होंने कहा है कि दीनदयाल और डॉ0 श्यामा प्रसाद मुखर्जी जम्मू कश्मीर में अलग झंडे और विशेष दर्जे के विरोध में थे। उन्होंने एक राष्ट्र एक संविधान के मिशन पर काम किया। आज अनुच्छेद 370 और 35ए का हटाया जाना उनके विचारों को जमीनी स्तर पर लागू करना है।

देश में कई विचारधाराओं ने जन्म लिया तथा कई प्रकार के वैचारिक वाद सामने आए। एक तरफ पश्चिम का उपभोगवाद था, दूसरी तरफ मार्क्सवाद, लेनिनवाद, माओवाद था। समाजवाद का विचार भी अस्तित्व में था। इसी समय में इन्हीं परिस्थितियों के मध्य एक महापुरुष पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने भी अपने विचार रखे उनके विचार भारत को मजबूत बनाने तथा अपने पैरों पर खड़े होने से संबंधित थे। यह कोई वाद नहीं था, बल्कि एक दर्शन था। उनके विचार प्राचीन अवधारणा 'वसुधैव कुटुंबकम' एवं 'सर्वे भवन्तु सुखिन' का ही दूसरा स्वरूप है। दुनिया को एक ऐसे मॉडल की तलाश है जो एकीकृत और सधारणीय हो। एकात्म मानव दर्शन ऐसी ही एक दर्शन तथा अपनी प्रकृति में एकीकृत है। उपाध्याय द्वारा लिखा हुआ हर चीज समसामयिक होते हुए भी स्थाई महत्व की है। उनके विचारों की प्रासंगिकता आज भी भारतीय राजनीति में बनी हुई है। उनके नेतृत्व में सशक्त जनसंघ का विचार विकसित हुआ।

यह भारत का दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि हमारे यहां देश के महापुरुषों चिंतकों तथा महान विचारकों ने जिन्होंने अपना संपूर्ण जीवन भारत की प्रगति समृद्धि तथा विकास को समर्पित कर दिया था उन्हें हमारे भारतीय नेताओं ने दल तथा जाति के आधार पर बांट कर उनका बटवारा अपने–अपने हितों व स्वार्थ के लिए कर दिया। तत्कालीन व्यवस्था और परिस्थितियों में उनके विचारों तथा दर्शन को महत्व नहीं दिया गया तथा गलत नीतियों का अनुसरण कर आज देश विनाश के कगार पर पहुंचा दिया गया। आज की परिस्थितियों को देखते हुए पंडित दीनदयाल जी के विचार व दर्शन सही दिशा दे सकते हैं।

संदर्भ संकेत

1. उपाध्याय, पंव् दीनदयाल – 'राष्ट्रीय जीवन–माला', हरीश दत्त षर्मा, डायमण्ड बुक, 2005.
2. उपाध्याय, पंव् दीनदयाल – 'विजय कुमार मलहोत्रा', प्रवीन प्रकाशन, 2016.
3. उपाध्याय, पंव् दीनदयाल – 'एकात्म मानववाद : तत्त्व मीमांसा सिद्धान्त विवेचना', प्रभात प्रकाशन, 2014.
4. उपाध्याय, – 'भारतीयता का संचारक पण्डित दीनदयाल', संजय द्विवेदी विजडम पब्लिकेशन।
5. उपाध्याय, – 'पण्डित दीनदयाल : व्यक्ति दर्शन', कमल किशोर गोयनका, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, 2017.
6. मिश्रा, डॉ0 विनोद – 'पंव् दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानव–दर्शन।'
7. दीनदयाल उपाध्याय – भारतीय अर्थ–नीति विकास की एक दिशा।
8. deendayalupadhuau.org

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

विवेकानन्दचरितामृतम् महाकाव्य में राष्ट्रीय भावना

श्रीमती मिथलेश गंगवार
असिस्टेन्ट प्रोफेसर – संस्कृत विभाग
डी0जी0पी0जी0 कालेज, सिविलाइन्स, कानपुर
शोध–छात्रा
कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

संस्कृत साहित्य ने भारतीय वाङ्.मय की निरन्तर युगानुकूल प्रवृत्तियों को आत्मसात् किया है। संस्कृत ने राष्ट्र को एकता के सूत्र में बाँधने के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किया। अपने राष्ट्र की भूमि, जनसमूह, संस्कृति, सभ्यता, इतिहास, धर्म, साहित्य, कला, राजनीति और जीवनदर्शन आदि के प्रति लोगों के मन में गरिमा एवं महिमा में एक प्राकृतिक स्वाभिमान की जो भावना है, उसे ही राष्ट्रीय भावना कहा जाता है। डॉ0 गणेशदत्त शर्मा विरचित विवेकानन्दचरितामृतम् महाकाव्य में राष्ट्रीय भावना से ओत प्रोत अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं। विवेकानन्द जी का जन्म उस समय हुआ, जब भारत परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था, समस्त जनता ब्रिटिश सरकार के अत्याचारों, पाखण्ड, अशिक्षा, अन्धविश्वास आदि से त्रस्त थी। स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने विवेकानन्द को देखा तो उनका मन आशा से पूर्णतया प्रकाशित हो उठा। उन्होंने सोंचा कि–

''युवाऽसौ बलवान प्राज्ञः देशस्य हितसाधने।
समर्थः सर्वथा नूनं साधु स्याद्दीक्षितो यदि।।''[1]

स्वामी विवेकानन्द के मन की शंका–परमेश्वर क्या है?उसकी प्राप्ति का उपाय क्या है?इसका निवारण करते हुए स्वामी रामकृष्ण कहते हैं कि ''ईश्वर अनादि सच्चिदानन्द, विश्व का रचयिता और उसका नायक है, वह सभी प्राणियों के अन्दर स्थित है, उसे स्वाध्याय, चिन्तन, ध्यान और नित्य उपासना द्वारा देखा जा सकता है।'' स्वार्थ से दूर रखकर सब जीवों की सेवा ही ईश्वर की सबसे अच्छी पूजा है। इस प्रकार विवेकानन्द को दीक्षित कर स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने उन्हें राष्ट्र की दरिद्रता दूर करने का आदेश दिया।

''हरस्व राष्ट्रदारिद्र्यं ज्ञानं कर्म च संदिश।
अद्वयत्वप्रचारेण शान्तिं स्थापय वैश्विकीम्।।''[2]

गुरु के आदेशानुसार विवेकानन्द ने लोगों के कष्ट दूर करने का तथा संसार में अज्ञानता के नाश का, सद्विचार और विवेक की वृद्धि द्वारा स्थायी सुख शान्ति की स्थापना करने का आजीवन व्रत धारण किया। उन्होंने–

''गुरुणाऽथ समादिष्टं देशोत्थानमहाव्रतम्।
साधितुं निर्ययौ साधुर्भारतभ्रमणं प्रति।।''[3]

भारत भ्रमण के दौरान अनेक नगरों का भ्रमण तथा विभिन्न व्यक्तियों से मिलकर देश की स्थिति, नारियों की दुर्दशा, अनपढ़, नौजवान, किसानों की दीनता, धर्माधिकारियों का धर्म के आचरण से शून्य, पाखण्ड को ही धर्म मानने वाले ब्राह्मणों और अत्याचारी गोरे अंग्रेजों को देखकर वह बहुत दुःखी हुए। उन्होंने भारत के उद्धार की दृढ़ प्रतिज्ञा की–

''राष्ट्रं समुत्थापयितुं मनस्वी, समर्पितोऽभूदनपेक्ष्य सर्वम्।
एकत्वस्वातन्त्र्यविचारयुक्तांन्, कर्तुं प्रवृत्तश्च स्वदेशजातान्।।''[4]

विवेकानन्द ने सारी दिशाओं को अपने ज्ञान से प्रकाशित किया और मोहनिद्रा में सोए हुए जनमानस को

जगाया। यात्रा करते समय अजमेर में एक मुसलमान का अतिथ्य स्वीकार कर, समदर्शिता को प्रमाणित किया। वह कहते हैं कि हम सभी एक ही परमात्मा के पुत्र हैं।

''पुत्राः सर्वे जना यस्मादेकस्यैव परात्मनः।
आत्मीयोऽयं परो वेति कस्माद्धि भेदभावना।।
विश्वेषां पृथिवी माता यस्याः सर्वे वयं सुता।
अतः सहोदरा एवं द्रोहवृत्तिः कथं पुनः।।''[5]

बुद्धिमान शंकर पाण्डुरंग के विदेश जाकर ज्ञान को फैलाने के प्रस्ताव का अनुमोदन करते हुए विवेकानन्द बोले–यदि पश्चिम के लोगों को कल्याणकारी आत्मज्ञान दिया जाए और उनसे अभ्युदय (भौतिक उन्नति) का सूत्र ले लिया जाए तो दोनों के संगम में ही विश्व का मंगल निहित है।

''अज्ञानतमसो नाशात्तत्र स्यादात्मिकं सुखम्।
निर्धनताभिशापाच्च मुक्तं स्याद् भारतं तदा।।''[6]

स्वामी जी शिकागो में होने वाली धर्म सभा में सम्मलित होने के लिए जलयान पर चढ़ गए, वह पोत ज्यों ही तट से लक्ष्य की ओर चला त्यों ही जन्मभूमि के वियोग से विवेकानन्द क्षण भर के लिए खिन्न हो उठे। भारत माँ को प्रणाम करते हुए बोले–

''अवोचत् प्रणमन् धीरो देहि मे वरदे वरम्।
मातः निरस्य ते दास्यं नयेयं वैभवं परम्।।''[7]

समुद्र के मध्य में भी निरन्तर राष्ट्र का चिन्तन करने वाले विवेकानन्द सदा वन्दनीय हैं।

''मध्येजलनिधिं कुर्वन् सततं राष्ट्रचिन्तनम्।
नूनं ज्ञाननिधिर्वन्द्यो वन्द्या हि राष्ट्रधर्मता।।''[8]

विवेकानन्द ने जब जापान की समृद्धि देखी तब उनकी विज्ञान और परिश्रम की प्रंशसा की और भारत की समृद्धि के विषय में सोंचा–

''चलेन्मे भारतं वर्षं यदि जापानपध्दतौ।
समृद्धि सत्वरं यायादैच्छद्भारतभूसुतः।।''[9]

विश्व धर्म सभा में भाषण देते समय विवेकानन्द भारत के विषय में कहते हैं– सभ्यतायाः प्रभातं वै यत्र पूर्वमजायत्। मेरा भारतवर्ष सारी पृथिवी व सारे जगत् का गुरु था, जिससे विश्व के सभी मानवों ने चरित्र की शिक्षा ली थी। सभी मानव अमृत पुत्र अविनाशी परमात्मा के पुत्र हैं और आपस में भाई–भाई हैं। अतः सारे विश्व को ही अपना कुटुम्ब समझना चाहिए। भिन्न भिन्न नामों से जाना जाने वाला समस्त विश्व का धर्म एक ही है। अनेक ध र्मों का अनुसरण करने वाले सभी साधक परमात्मा की ही शरण में जाते हैं–

''साधकाः सततं नानाधर्ममार्गानुसरिणः।
विश्वात्मशरणं यान्ति जलानि जलधिं यथा।।''[10]

विश्व धर्म सभा के अन्य सत्रों में विवेकानन्द ने वेदान्त–दर्शन तथा 'हिन्दू धर्मसार' विषयों पर भाषण करते हुए वहाँ उत्तम ख्याति प्राप्त की। अमेरिका में जो विवेकानन्द का अभिनन्दन हुआ, उसे उन्होंने भारत का ही वन्दन माना। संसार में वो लोग धन्य हैं, जो प्रशंसनीय पद पाकर भी जननी जन्मभूमि की उपेक्षा नहीं करते।

भारत के अपने बन्धुओं के लिए विवेकानन्द कहते हैं– अपने विद्या बुद्धि और बल से तीनों लोकों में सदा पूजे जाने वाले आर्यवंश में उत्पन्न हुए हम लोग सौभाग्यशाली हैं, किन्तु खेद है, काल के वशीभूत होकर आज हमारा

भारत विद्या से रहित और पराधीन होकर बहुत दुर्दशा से ग्रस्त है। कृषि, गोरक्षा और व्यापार के द्वारा समृद्ध जो भारत सारे लोकों में सोने की चिड़िया कहलाता था, वही अब अन्न और घर से रहित हो गया है। अनेक जाति और वर्ग में बँटे हुए भारतमाता के पुत्र व्यर्थ में ही परस्पर विवाद करते रहते हैं। जिनके पूर्वजों ने सारे जगत् को उत्तम ज्ञान और सदाचार में दीक्षित किया वे (भारतीय) स्वयं आज आलस्य और मोह (अज्ञान) की निद्रा में डूबे हुए हैं। देश की शोचनीय दशा मुझे दिन–रात पीड़ित करती है, यदि मेरी प्रसन्नता चाहते हो तो एकता के सूत्र में बंध जाओ–

''उतिष्ठत प्रजाग्रत निद्रां त्यजत बान्धवाः।
एक्यसूत्रे सुबद्धाः स्त कुरुध्वं शक्त्युपासनम्।।''[11]

अविद्या, दीनता और दरिद्रता रूपी दैत्य का वध करके, परतन्त्रता को दूर करके स्वराज्य की प्राप्ति करो। लोगों की सेवा आपका धर्म और राष्ट्र चिन्तन परम धर्म हो–

''आर्तदीनविपन्नानां सेवा धर्मोऽस्तु वः सदा।
भूयाच्च परमो धर्मः सततं राष्ट्रचिन्तनम्।।''[12]

स्वामी विवेकानन्द ने अमेरिका में योग और वेदान्त का नित्य शिक्षण किया। वह चिर शान्ति के लिए योग को महत्त्व देते हैं– योगस्य शरणं यान्तु बान्धवाश्चिरशान्तये। कर्मयोग, भक्तियोग, तथा अध्यात्मविद्या आदि विषयों पर व्याख्यान देकर पाश्चात्य विद्वानों के मध्य प्रतिष्ठा को प्राप्त किया। उन्होंने अपने ज्ञान से पश्चिम को प्रकाशित कर अपनी जन्मभूमि पर वापस आने की इच्छा की–

''प्रतीचीं भासितां कृत्वा दिशं ज्ञानगभस्तिभिः।
इयेष भारतं यातुं जन्म भूदर्शनोत्सुकः।।''[13]

''साढ़े तीन वर्ष तक पश्चिम दिशा में रहकर भारत आगमन पर कैसा अनुभव हो रहा है''–मित्र सेवियर ने जब पूछा, तब विवेकानन्द समुद्र के मध्य भारत का वन्दन करते हुए बोले–

''आसीद् यद्धि महत् प्रेम मामकं भारतं प्रति।
परदेशप्रवासे तु जातं तद्धि महत्तरम्।।[14]
नूनं स्वर्गसमा किं वा जन्मभूस्तीर्थसन्निभा।
श्रद्धेया पूजनीया च मत्कृते सततं सखे।।
अस्या धूलिकणाश्चापि मदर्थं चन्दनोपमा।
एतस्या वन्दनं मन्ये देव्या अर्चनसन्निभम्।।''[15]

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं कि–''मेरी विद्या, ज्ञान तप ध्यान, योग की विभूतियाँ और मेरा सर्वस्व ही मेरी मातृभूमि के लिए अर्पित हो'' इसके अतिरिक्त मेरी अन्य कोई कामना नही। मैं भारत में सेवा केन्द्रों की स्थापना करके दीन दुःखियों की सेवा करूँगा, अपने बन्धुओं को विद्या और बल से विभूषित करके, दासता के जाल को काट डालूँगा यह मेरी दृढ़ प्रतिज्ञा है।

विवेकानन्द नवजागृति का सन्देश देते हुए कहते हैं कि–''उत्तम ज्ञान व कर्म की एकता, नाना धर्मों का समन्वय, दीनों की निःस्वार्थ सेवा और भिन्नता में अभिन्नता'' इन चार वाक्यों को वेदमन्त्र के समान समझना चाहिए और यदि भारत का उत्थान चाहते हो तो उक्त चारों को अपने जीवन में अपनाकर, सार्थक सिद्ध करो। इस प्रकार आर्य देश के सोए जनमानस को जगाया, जिससे लोगों में आत्मविश्वास का संचार हुआ–

''शक्तिः संप्रत्यभिज्ञाता भारतेनात्मनो द्रुतम्।
उदतिष्ठज्जरत्सिंहो बली मन्ये वितन्द्रितः।।''[16]

देवभूमि हिमालय में ज्ञान के इच्छुक एवं सन्तप्त आत्मा वाले व्यक्तियों की शान्ति के लिए एक आश्रम का निर्माण किया, जहाँ से बुद्धिमान कैप्टन सेवियर ने प्रबुद्ध भारत नामक मासिक पत्र प्रकाशित किया। इस पत्र के माध्यम से नौजवानों को देशभक्ति, आत्मविश्वास और दूसरों की सेवा आदि की भावनाएँ भली प्रकार विस्तृत की। विवेकानन्द कहते हैं–भारत में जन्म लेने वाले सभी व्यक्ति एक ही माता की सन्तान हैं, सभी सहोदर हैं। सभी अपनी शक्ति पहचान कर राष्ट्र के कार्य में लग जाएँ।

''सुवीराः सूनवो यस्याः शत्रूणां घातकास्तथा।
सैवाद्य भारती माता हा। परतन्त्रपीडिता।।
अभिज्ञायात्मशक्तिं भो। धैर्य धारयत ध्रुवम्।
स्थापयन्तु जगन्मूर्ध्नि तथा चोद्धृत्य मातरम्।।''[17]

उन्होंने कश्मीर के राजा को छुआ–छूत, जातिप्रथा और अन्धविश्वास आदि को दूर करने को कहा और आत्मविश्वास को दृढ़ करो, देश के उत्थान के लिए जनता में जागृति उत्पन्न करो– देशोत्थानकृते भूप विधेहि जागरं जने।

भारतीय संस्कृति के विषय में विवेकानन्द कहते हैं–

''भारतस्यात्मभूता या प्राणशक्श्चि शाश्वती।
ऐषा सर्वजनग्राही संरक्ष्या च प्रयत्नतः।।''[18]

इसका आधार संस्कृत है–

''संस्कृतवाङ्.मयं नूनमाधारः संस्कृतेर्यतः।
संस्कृताध्ययनं तस्माद् ध्येयं भवतु जन्मिनाम्।।''[19]

वे नारियों को संस्कृति की प्रतिमा के समान मानते थे। भारत की नारियों के निरक्षर होने पर खेद प्रकट करते हैं, उनके विचार में नारी शिक्षा राष्ट्रीय कार्य होना चाहिए।

''राष्ट्रकृत्यं भवेत्तस्मात् महिलानां प्रशिक्षणम्।
सर्वत्र सर्वथा मान्याः स्त्रियो राष्ट्रविभूतयः।।
यूनां च युवतीनां च स्कन्धेषु भारतोदयः।
सुनिश्चितस्ततो युक्ता तयोर्विद्याबलोन्नतिः।।''[20]

सेवियर की मृत्यु के विषय में सुनकर विवेकानन्द बहुत व्यथित हुए। बेलूर मठ से मायावती आश्रम सेवियर की पत्नी को सान्त्वना देने के लिए गए। वहॉ अत्यधिक शीत से पीड़ित, रुग्ण शरीर होते हुए भी, आत्मबल से दृढ़ विवेकानन्द वर्फीले रास्तों को पैदल ही पार करके बेलूर मठ आ गए। विवेकानन्द कहते हैं कि इस शरीर का प्रयोजन सिद्ध हो चुका है।

''जातु गात्रमिदं यातु येन सिद्धं प्रयोजनम्।
गुरुणा में समादिष्टं लोकबोधात्मकं परम्।।''[21]

विवेकानन्द का शरीर ज्यों ज्यों कृश होता गया त्यों त्यों उनका आत्मबल शक्त होता गया। दुर्बल शरीर होने पर गुरु रामकृष्ण परमहंस के जन्मोत्सव पर दर्शनार्थियों को भवन की खिड़की से ही आशीर्वाद प्रदान किया और अपने शिष्यों को बुलाकर नर सेवा, राष्ट्र सेवा का उपदेश दिया।

''राष्ट्रमेवास्तु देवो वः दीनो नारायणस्तथा।
उपास्यं ब्रह्म सर्वेषामेतन्तममानुशासनम्।।''[22]

अन्तिम समय में वह कहते हैं कि देह से करने योग्य समस्त कर्म को मैं कर चुका हूँ और ''मै कौन हूँ'' यह जान लिया है अब यह शरीर त्यागना है जिसके द्वारा मैने लक्ष्य को प्राप्त कर लिया है। संसार में सभी का कल्याण करने वाले तथा स्वराष्ट्र का चिन्तन करने वाले अपने आवास पर ही समाधि में लीन हो गए।

''स्वराष्ट्रं चिन्तन् वै भुवनजनकल्याणधिषणः।
समाधौ सम्पृक्तौ निजनिलयमध्ये यतिवरः।
गुरुं ध्यायं ध्यायं सकलजनधात्रीं च जननीम्।
गतो हंसः हंसं सततसुखधामैव परमम्।।''[23]

युवाओं के प्रेरणास्रोत स्वामी विवेकानन्द एक आध्यात्मिक गुरु तथा समाज सुधारक थे। समाज के सेवा कार्य के लिए उन्होंने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। युवाओं में राष्ट्रप्रेम की भावना का जो गूढ़ सार उनके एक–एक वाक्य में मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। उनके लिए भारत भूमि पवित्र भूमि है, भारत एक तीर्थ है, सर्वस्व है। आध्यामिकता का आधार लेकर चिन्तन मनन कर राष्ट्र चेतना जाग्रत करना उनका मुख्य उद्देश्य था।

सन्दर्भ संकेत

1. विवेकानन्दचरितामृतम् – 1.7
2. विवेकानन्दचरितामृतम् – 2.58
3. विवेकानन्दचरितामृतम् – 3.22
4. विवेकानन्दचरितामृतम् – 3.56
5. विवेकानन्दचरितामृतम् – 4.15–16
6. विवेकानन्दचरितामृतम् – 4.34
7. विवेकानन्दचरितामृतम् – 6.5
8. विवेकानन्दचरितामृतम् – 6.6
9. विवेकानन्दचरितामृतम् – 6.12
10. विवेकानन्दचरितामृतम् – 7.20
11. विवेकानन्दचरितामृतम् – 8.20
12. विवेकानन्दचरितामृतम् – 8.21
13. विवेकानन्दचरितामृतम् – 10.35
14. विवेकानन्दचरितामृतम् – 10.45
15. विवेकानन्दचरितामृतम् – 10.47–48
16. विवेकानन्दचरितामृतम् – 12.14
17. विवेकानन्दचरितामृतम् – 12.32–33
18. विवेकानन्दचरितामृतम् – 12.57
19. विवेकानन्दचरितामृतम् – 12.58
20. विवेकानन्दचरितामृतम् – 12.62–63
21. विवेकानन्दचरितामृतम् – 14.13
22. विवेकानन्दचरितामृतम् – 14.24
23. विवेकानन्दचरितामृतम् – 14.27

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कालिदास कृत काव्यों में अद्‌भुत रस स्थिति

डॉ. निरूपमा दीक्षित
संस्कृत विभाग
महात्मा बुद्ध लोक कल्याण एवं ग्राम्य विकास संस्थान, निधासन
लखीमपुर खीरी (उ.प्र.)

संस्कृत–काव्य साहित्य में रस का सम्बन्ध जलवीचिवत् है। रस साहित्य से प्रथक् नहीं है। रस ही वह तत्व है जो काव्य में सहृदय के द्वारा हृदयगम्य होकर उसके अन्तस्थल को आन्दोलित कर देता है, जिसमें सहृदय आप्लावित हो परमानन्द की स्थिति को प्राप्त करता है।

रस व्यापक तथा बहुधार्थक शब्द है। इसका प्रयोग आदिकाल से चला आ रहा है। भारतीय वाङ्गमय में वैदिक काल से रस शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया जाता रहा है। काव्य–जगत् में जहाँ एक ओर अलंकार रीति प्रवृत्ति ध्वनि आदि भिन्न–भिन्न सम्प्रदायों को किसी महान् आत्मा की छाया में 'सम्प्रदाय' ऐसा व्यापक तथा प्रभावशाली अस्तित्व प्राप्त हुआ वहीं दूसरी ओर 'रस' भी सर्वोपरि तथा सशक्त सम्प्रदाय के रुप में प्रतिष्ठित हुआ।

रामायण तथा महाभारत रसगर्भित काव्य हैं, जिनमें रसों की चारुता निरुपण परिलक्षित होता है। महाभारत काल के पश्चात् काव्य में रस का स्वरुप मुख्यतः आनन्द का परिचायक रहा है लेकिन यह नहीं कहा जा सकता है कि वैदिक काल में रसोत्पादक साहित्यिक ग्रन्थों का निरुपण नहीं हुआ। ऋग्वेद में इन्द्र और दैत्यों के साथ हुये युद्ध में वीररस, नायिका रुप में चित्रित ऊषा के वर्णन में श्रृङ्गार रस, प्राणरहित सुबन्धु को पुनः जीवित करने के लिये विप्रबन्धु आदि द्वारा कथित कुछ सूक्तों में करुणरस का भी प्रयोग परिलक्षित है। जिसमें उपमादि अलंकार तथा अनुष्टुपादि छन्दों का भी प्रयोग देखा जा सकता है।

रस के प्रथम उद्‌भावक महाकवि वाल्मीकि लौकिक संस्कृत काव्य के जनक हैं। इन्होंने कविता में करुण रस की अभिव्यंजना की। इसमें क्रौंचयुगल में से एक (पुरुष क्रौंच) का वध ही कारण है। क्रौंच वध के कारुणिक दृश्य को देखते ही उस महर्षि के मुख से अकस्मात् निसृत वाक् ही काव्य का रुप धारण करती है। क्रौञ्चवध के प्रसंग को दृष्टिगत करते हुये महर्षि ने बहेलिये को जो शाप दिया वह इस प्रकार है

'मा निषाद प्रमितष्ठां त्वमगमः शाश्वती : समाः।
यत्क्रौंचमिधुनादेकमवधी : काममोहितम्।।[1]

यह कवि की भावनाओं का मूर्तरुप पद्य है। आनन्दवर्धन ने इसी को काव्य की आत्मा कहा है। –

'काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा,
क्रौञ्चद्वन्दवियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः।[2]

रस–सिद्धान्त के आदि प्रवर्तक आचार्य नन्दिकेश्वर हैं, परन्तु उनका कोई ग्रन्थ उपलब्ध न होने से नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरत–मुनि को आद्याचार्य माना जाता है। अतः रस के सम्बन्ध में सर्वप्रथम भरत ने नाट्यशास्त्र में रस स्वरुप लक्षण तथा चर्वणा पर विशिष्ट बल दिया है। इस विषय में भरतमुनि का सूत्र इस प्रकार है –

'विभावानुभाव व्यभिचारि संयोगाद्रस निष्पत्तिः।।[3]

परिभाषा सभी आचार्यों ने पृथक–पृथक की है, जिसमें से प्रमुख आचार्य मम्मट ने रस की परिभाषा तथा लक्षण इस प्रकार दिया है –

'कारणान्यथ कार्याणि सहकारिणि यानि च।
रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः।।

विभावानुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः ।
व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायिभावोरसः स्मृतः।।[4]

अर्थात् लोक में रति आदि भावों के जो कारण कार्य तथा सहकारी भाव हैं इनका जब काव्य या नाट्य में प्रयोग किया जाता है तो वह क्रमशः विभाव, अनुभाव तथा सहकारी भाव कहलाते हैं तथा इन भावों के द्वारा अभिव्यक्त किया गया स्थाईभाव रस कहलाता है।

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार रस की निष्पत्ति इस प्रकार होती है –

विभावेनानुभानेन व्यक्तः संचारिणा तथा।
रसतामेति इत्यादिः स्थायिभावः सचेतसाम।।[5]

रस के बिना किसी अर्थ का प्रवर्तन सम्भव ही नहीं है –

'न हि रसावृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते।'

अतएव रस ही वह तत्व है जो लोक सामान्य से परे है तथा अलौकिकोपाथि से अलंकृत है। आचार्य भामह की यह कारिका रस की अलौकिकता की ओर संकेत करती है –

'स्वादुकाव्यरसोन्मिश्रं शास्त्रमत्युपयुज्यते।
प्रथमालीढमधवः पिबन्ति कटु भेषजम्।।[6]

अर्थात् जिस प्रकार शहद का मधुर आस्वाद पाकर मनुष्य अत्यन्त कंड़वी औषधि भी पान कर जाता है उसी प्रकार काव्य के आस्वादनात्मक तत्व रस से मिश्रित होकर गम्भीर शास्त्र भी सुलभता से जाना जा सकता है।

रसान्तर्गत अद्भुत रस विवेच्य विषय होने के कारण सर्वप्रथम अद्भुत शब्द की व्युत्पत्ति करना आवश्यक है। 'अद्भुत' न भूतम् इति वा' अर्थात् जो पूर्व न हुआ हो। अद्भुत शब्द आश्चर्य, आश्चर्यजनक बात या घटना, विलक्षण चमत्कार अचम्भा तथा अचरज के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

'अद्भुत रस' के लिये अद्भुत शब्द का प्रयोग मूलरुप में ब्रह्मा की इच्छा का परिणाम है –

'यथा च गोत्रकुलाचारोत्पन्नान्यात्तोपदेशसिद्धानि पूंसां नामानि
भवन्ति तथैवैषां रसानां भावानां च नाट्याश्रितानां
चार्थानामाचारोत्पन्नान्याप्तोपदेशसिद्धानि नामानि।'[7]

अर्थात् जिस प्रकार गोत्र, कुल और आचार के अनुसार तथा आप्त–पुरुषों के उपदेशानुसार माता–पिता की इच्छा के अनुकूल किसी बालक का एक नाम विशेष रख दिया जाता है, उसी प्रकार नाट्य मर्मज्ञ प्रतिपादकों ने स्वेच्छा से विभिन्न रसों को भिन्न–भिन्न नामों से अभिहित किया है।

अद्भुत चमत्कार का पर्याय होने के कारण कर्णपूर ने इसे रसास्वाद कहा है –

'रसेसारश्चमत्कारो यं बिना न रसो रसः।
तच्चमत्कार सारत्वे सर्वत्तैवाद्भुतोरसः।।[8]

यह चमत्कार ही रस का सार है जिसके बिना रस की स्थिति कदापि सम्भव नहीं है। वही चमत्कार सर्वत्र अद्भुत रस के नाम से जाना जाता है।

संस्कृत साहित्य के समस्त काव्यों में एक रस अंगी रस के रुप में रहता है अन्य रस अंग रुप में समाहित रहते हैं। यथा – एको रसः करुणमेव कहकर भवभूति ने करुण रस प्रधान काव्य को काव्य माना है उसी प्रकार आचार्य धर्मदत्त ने अद्भुत रस को ही सभी रसों का मूल माना है।

'रसे सारश्चमत्कारः सर्वत्राप्यनुभूयते।
तच्चमत्कार सारत्वे सर्वत्राप्यद्भुतोरसः।।

और इसी आधार पर नारायण नामक आचार्य ने अद्भुत–रस को ही एक मात्र मुख्य रस माना –

'तस्मातकारणमेवाह कृती नारायणो रसम्।'

नाट्यशास्त्र प्रणेता आचार्य भरतमुनि ने काव्यों तथा नाटकों में अद्भुत रस का प्रयोग आवश्यक माना है – विशेषकर नाटक के अन्त में –

'निर्वहणेकर्तव्यों नित्यं हि रसोऽद्भुतस्तज्जैः।'

अतः अद्भुत रस ही समस्त रसों में अनिवार्य रुप में विद्यमान है अन्यथा इसके बिना रसानुभूति असम्भव है। 17वीं शताब्दी के कवि महादेव ने अपने ग्रन्थ 'अद्भुत–दर्पण' में अद्भुत को ही अंगीरस के रुप में स्वीकार करते हुये राग के कथन के माध्यम से यह सिद्ध करते हैं।

'यत सत्यमभितः स्तब्धैः इन्द्रियैरिन्द्रजालवत्।
अद्भुतैकरसावृत्तिः अन्तर्मीलयतीव माम्।।[9]

दीपशिखा की उपाधि से विभूषित, संस्कृत काव्य–जगत् के अतुलनीय नाटककार महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य की अमर विभूति है। इन्होंने काव्य–जगत् को जो दिशा प्रदान की है वह एक महनीय कवि के कला कौशल पर निर्भर करती है। कालिदास के प्रमुख नाटकों यथा–मालविकाग्निमित्रम् विक्रर्मोवशीयम् एवं अभिज्ञान शाकुन्तलम में अद्भुत रस की यत्र–तत्र रसानुभूति हुई है उन्हीं प्रसंगों का वर्णन निम्न नाटकों में दर्शाने का प्रयास किया गया है।

'मालविकाग्निमित्र' कालिदास की प्रथम नाट्यरचना है जिसमें मालविका तथा अग्निमित्र की प्रणय–कथा वर्णित है। मालविका पटरानी धारिणी की नृत्यसंगीत कुशल परिचारिका तथा अप्रतिम सौन्दर्य शालिनी है। एक बार अग्निमित्र ने जब उसे प्राप्त करने के लिये अपने मित्र विदूषक से सहयोग की आकांक्षा की। रानी धारिणी मालविका के सौन्दर्य के भय से उसे राजा की दृष्टि से छिपा कर रखती थी। दोनों के प्रेम की अतिशयिता को देख रानी ने मालविका को कारागार में बन्द कर दिया, किन्तु विदूषक ने जो छल कपट में अति प्रवीण था अपने मित्र के प्रणयव्यापार को केनापि प्रकारेण सफल बनाने का श्रेय प्राप्त कर लिया।

अद्भुत रस यहाँ भी परिलक्षित होता है जब अग्निमित्र ने चित्रदर्शन के पश्चात् मालविका के वास्तविक सौन्दर्य का अवलोकन किया और अतीव सौन्दर्य को देखकर आश्चर्यचकित हो विचार करने लगा कि चित्रकार ने उसके चित्र निर्माण में अवश्य ही असावधानी की होगी यह उसका सौन्दर्य राजा के अन्तस् में आश्चर्य का उद्भावक है।

'चित्रगतायांमस्यां कान्ति विसंवादिशङ्कि में हृदयम्,
सम्प्रति शिथिल समाद्यिंमन्ये येनेपमालिखिता।।[10]

यहाँ अग्निमित्र अप्रय है, मालविका आलम्बन विभाव, उसका अप्रतिम रुप उद्दीपन विभाव, रोमांचित होना, गद्गद् होना, हर्षित होना आदि अनुभाव तथा हर्ष गर्वधृति आदि व्यभिचारी भावों से पुष्ट होता हुआ राजागत विस्मय अद्भुत रस का परिपाक कर रहा है।

'क्षणे–क्षणे यन्नवतामुपैति जैसे परिवर्तनीय सौन्दर्य ने राजा के ऊपर इन्द्रजाल के सदृश अपना प्रभाव कर दिया मालविका सभी अवस्थाओं में अधिकाधिक मनोहारिणी दिखलाई पड़ रही थी। मालविका की मुस्कान में वह जादू है जो राजा को मनः कांक्षित वस्तु प्रदान करने में समर्थ है।

'स्मयमानमायताक्ष्याः किञ्चिद भव्यक्त दशन शोभिमुखम्।
असमग्रलक्ष्य केसरमुच्छ्वदित पङ्कजं दृष्टम्।।[11]

जब मालविका पर्दे के पृष्ठ भाग में छिप गयी तब तो राजा को ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे उसकी आँखों का भाग्य फूट गया हो, हृदय का महोत्सव समाप्त हो गया हो और धैर्य पर नियंत्रण कर दिया गया हो। –

'भाग्यास्तमयमिवाक्ष्णोर्हृदयस्य महोत्सवावसानमिव।
द्वारपिद्यानमिव धृतेर्मत्ये तस्यास्तिरस्करिणीम्।।[12]

अंक की समाप्ति तक राजा मालविका में पूर्ण आसक्त हो गया उसने अपने अद्भुत सौन्दर्य से राजा के हृदय में अपना पूर्ण स्थान बना लिया।

पंचम अंक में अशोकवृक्ष के दोहद के लिये मालविका ने जो पाद प्रहार किया उसमें भी अचानक पुष्प प्रस्फुटित हो गये इस समृद्धि को देखकर महारानी धारिणी विस्मित हो गयीं।

अग्नि मित्र के पिता पुण्यमित्र ने राजकुमार वसुमित्र को अपने अश्वमेघ यज्ञ के घोड़े की रक्षा के लिये सेनापति बना दिया। संयोगवशात् वह घोड़ा यवन सैनिकों द्वारा पकड़ लिया गया। इस पर दोनों सेनाओं में भयंकर युद्ध हुआ। कुमार वसुमित्र ने बड़े पराक्रम के साथ युद्ध करके उस घोड़े को जीत लिया। यह समाचार जब अचानक महारानी धारिणी को प्राप्त हुआ उस समय आश्चर्य की अतिशयता से विस्मय का वातावरण उपस्थित हो गया।

तत्पश्चात रानी धारिणी जिसने मालविका के लिये राजा को प्रदत्त करना सोंच रखा था इस अवसर पर छोटी रानी इरावती की सहमति पाकर उसे श्रृंगारसज्जित कर वधूरुप में राजा को सौंप दिया –

'इदमार्यपुत्रः प्रिय निवेदनानुरुपं –पारितोषिकं प्रतीच्छत्विति।'[13]

हे आर्यपुत्र कुमार की विजय के प्रिय समाचार के अनुरुप यह प्रिय पुरस्कार तो लीजिये।

निर्वहणेऽद्भुतम् के अनुरुप कालिदास ने प्रत्येक नाटक में इस नियम का प्रतिपालन किया है। मालविका एक वर्ष तक दासी रुप में रही और तत्पश्चात उसके राजकुमारी होने का रहस्य उन्मीलित हो गया, जिससे विस्मय नामक स्थायी–भाव पुष्ट होकर अद्भुत रस रूप में आस्वाद्य हो गया।

कालिदास की द्वितीय नाट्यकृति विक्रमोर्वशीयम्' शास्त्रीय शब्दावली में त्रोटक नाम से अभिहित है क्योंकि इसमें पाँच अंक है तथा इसके नायक एवं नायिका मानवी तथा दैवीय हैं, नायिका उर्वशी एक अप्सरा है, जिसके रुपजाल में पुरुरवा आबद्ध हो जाता है और अन्ततोगत्वा उसे प्राप्त कर लेता है।

'विक्रमोर्वशीय' का मुख्य रस श्रृंगार है तथा अद्भुत रस उसके सहचर के रुप में विद्यमान है इसमें पुरुरवा तथा उर्वशी का संयोग दैवीय (चमत्कारिक) है इस नाटक का प्रारम्भ ही विस्मय से हुआ है। सर्वप्रथम केशी नामक दैत्य ने उर्वशी का हरण कर लिया उसकी सखियाँ उसके विलुप्त होने पर कोलाहल करने लगीं। राजा ने उस कोलाहल को सुनकर उसका कारण जान लिया। उसने उर्वशी को केशी दैत्य के हस्तपंजर से मुक्त किया। वह मूर्च्छावस्था में थी। किन्तु कुछ क्षणों के पश्चात् वह चैतन्यावस्था को प्राप्त हो गयी। राजा उसके अनुपम सौन्दर्य को देखकर मुग्ध हो गया क्योंकि उसके अलौकिक सौन्दर्य की विस्मयात्मक शक्ति ने उसे आबद्ध कर लिया, वह आश्चर्य चकित हो विचार करने लगा –

'अस्याः सर्गविद्यौप्रजापर्तिभूचन्द्रो नु कान्ति प्रदः।
श्रृंगारैकरसः स्वयं नु मदनो मासो नु पुष्पाकर :।।
वेदाभ्यासजडः कथं नु विषयो व्यावृत्त कौतूहलो।
निर्मातुं प्रभवेन्मनोहरमिदं रुपं पुराणो मुनिः।।'[14]

अर्थात् उर्वशी की सृष्टि करने के लिये कान्ति प्रदान करने वाला चन्द्रमा स्वयं ब्रह्मा बना होगा या श्रृंगार रस के देवता ने इसका निर्माण किया होगा अथवा कुसुमाकर बसन्त ने इसकी रचना की होगी अन्यथा वेद के अभ्यास से जड़ीभूत तथा विषयोपभोग से दूर रहने वाले वृद्ध ऋषि ऐसा मनोहर रुप कैसे उत्पन्न कर सकते थे।

यहाँ राजा पुरुरवा आलम्बन है उर्वशी का अप्रतिम सौन्दर्य उद्दीपन विभाव है। रोमांचित होना, चकित–होना आदि अनुभाव हैं। हर्ष, आवेग, ग्लानि, आश्चर्यचकित होना आदि व्यभिचारी भाव हैं, इनसे पुष्ट होता हुआ विस्मय

नामक स्थायीभाव अद्भुत रस का परिपोषक है।

तत्पश्चात् उर्वशी ने अपनी इन्द्रपुरी को प्रस्थान किया और राजा अपनी राजधानी आ गया, लेकिन दोनों का मन एक दूसरे के प्रति आकृष्ट हो चुका था। उर्वशी इन्द्रपुरी जाते समय अपनी सखियों समेत उड़ी उस समय लता की शाखा में वैजमन्ती माला के फँसने का नाट्य करके राजा को घूमकर देखने का अवसर निकाल लिया उसके चले जाने के पश्चात् राजा ने कहा – अरे मदन दुर्लभ वस्तु की ही अभिलाषा करता है यह अप्सरा आकाश में उड़कर जाती हुयी मेरे मन को शरीर से उसी प्रकार बलपूर्वक खींचे लिये जाती है जिस प्रकार कोई राजहंसी टूटे हुये कमल की नाल से उसका तन्तु खींचे चली जाती है। यहाँ मन को खींचकर ले जाना सामान्य बात न होकर विशेष बात है यही विशेष चमत्कार का पर्याय है, जो अद्भुत रस को उद्घाटित करता है।

तत्पश्चात् सहसा उन दोनों का मिलन राजकीय प्रमदवन में हुआ। जब वे दोनों बिहार करने के लिये गन्धमादक पर्वत पर गये। वहाँ उर्वशी किसी कारण से रुष्ट होकर कार्तिक स्वामी के वन में प्रवेश कर गयी। वहाँ वह लता के रुप में परिवर्तित हो गयी। उसका यह सहसा परिवर्तन विस्मय को ही उत्पन्न करता है। राजा अत्यन्त दुःखित होकर विलाप करने लगा लेकिन दैववशात् उसकी भेंट एक साधु से हो गयी जिसने उसे संगमनीय मणि दिया। जिसके स्पर्श से वह लता पुनः उर्वशी बन गयी। दोनों का मिलन हो गया तथा वे दोनों राजधानी चले गये।

यहाँ भी आश्चर्य होता है जब उसी संगमनीय मणि से राजकुमार आयु का पता चला जिसे उर्वशी ने च्यवनऋषि के आश्रम में पालन पोषण हेतु छोड़ दिया था। अन्ततः पुत्र–गोपन का रहस्य भी खुल जाता है।

अन्तिम अंक में च्यवनऋषि के आश्रम से एक तपस्विनी बालक को लेकर आती है जो उर्वशी का पुत्र राजकुमार आयु था उसे पाकर राजा स्वयं वनगमन हेतु विचार करके राजकुमार आयु के राज्याभिषेक का आदेश देते हैं। उसी क्षण देवर्षि नारद का सहसा आगमन हुआ जिसे देखकर राजा को विद्युत–संपात का दर्शन हुआ।

'राजा–कुतो न खलु विद्युत–सम्पातः, अये भगवान नारद, य एष–

'गोरो चनानिकषपिङ्गजटाकलापः।
संलक्ष्यते शशिकला मलवीत सूत्रः।।
मुक्तागुणातिज्ञयसम्भृतमण्डन श्रीः।
हेय प्ररोह इव जङ्गम कल्पवृक्षः।।[15]

अर्थात् गोरोचना की कसौटी के सदृश पीतवर्ण की जटाओं वाले, चन्द्रकान्तिवत् निर्मल यज्ञोपवीत धारण किये, मोतियों के माला के उत्कर्ष से बढ़ी हुई आभूषणों की शोभा वाले नारद जी स्वर्ण शाखाओं वाले चलायमान कल्पवृक्ष के सदृश प्रतीत हो रहे थे।

यहाँ राजा पुरूरवा आलम्बन विभाव, विद्युतवत, नारद उद्दीपन विभाव उनकी चमक से चकाचौंध होना अनुभाव तथा हर्ष, गर्व आदि व्यभिचारी भावों से पुष्ट होकर विस्मय अद्भुत रस का परिपाक कर रहा है।

तत्पश्चात् सभी ने उनका स्वागत किया और राजा द्वारा पूंछे जाने पर उन्होंने इन्द्र प्रदत्त सन्देश कहा –

देवराज इन्द्र ने राजा का उर्वशी के वियोग में वनवास का निश्चय जान लिया था अतः सन्देश भेजा है कि सिद्धों के कुछ समय के बाद देवासुर संग्राम होने की सम्भावना है। अतः युद्ध में सहायक होने के कारण राजा सन्यास न लें उर्वशी सदैव उनके साथ रहे यह सुनकर वह प्रसन्नातिरेक से गद्गद हो उठी –

त्रिकालदर्शिभिर्मुनि भिरादिष्टः सुरासुर विमर्दो भावी। भावाश्चसायुगीनः सहायः तेन न त्वया शस्त्रन्यासः कर्तव्य इयं चोर्वशी यावदायुस्तव सहधर्मचारिणी भवत्विति।'[16]

और भी रम्भादि अप्सराओं द्वारा आयु के अभिषेक के लिये तीर्थ जल देना अद्भुत रस की सर्जना है, जो युवराज के उज्जवल भविष्य का सूचक है।

अस्त यह कहा जा सकता है कि यद्यपि इस नाटक का मुख्यरस श्रृंगार है तथापि अद्भुत भी उसके सहचर रुप में आदि से अन्त तक व्याप्त है। अतः विक्रमोर्वशीय श्रृंगार रस की मुख्यधारा के भीतर अद्भुत रस का एक व्यापक संकेतित स्रोत भी है।

अभिज्ञान शाकुन्तलम्

'अभिज्ञानशाकुन्तल–कालिदास कृत कृतियों में एक प्रख्यात नाटक के रूप में विश्व विश्रुत है। यह सात अंकों का नाटक है। इसका नायक दुष्यन्त तथा नायिका शकुन्तला है। इसमें दोनों के प्रणय संयोग तथा वियोग की कथा वर्णित है। इस नाटक का भी अंगीरस श्रृंगार है और यथानुकूल अद्भुतरस का समावेश भी बड़े ही मनोहारी रूप में परिलक्षित होता है।

नाटक के प्रथम अंक में ही आश्चर्य की उद्भावना हो जाती है। आश्रम में प्रवेश करते ही राजा दुष्यन्त तपस्विकन्याओं के अलौकिक सौन्दर्य को देखकर आश्चर्यचकित हो जाता है और सहसा कह उठता है – कि अन्तः पुर की रानियों में भी वह सौन्दर्य दुलर्भ है जो इन आश्रमवासिनी बालिकाओं को प्राप्त है। इनके रूप की नैसर्गिक शोभा ने राजा को आकृष्ट कर लिया क्योंकि यही रूपाकर्षण ही प्रेमाभ्युदय का अग्रदूत है। यहाँ श्रृंगार के सहचर के रूप में अद्भुत का सन्निवेश हुआ है। जब भ्रमर शकुन्तला के निकट आया वह उससे भयभीत हो कर त्राण पाना चाहती थी तत्क्षण दुष्यन्त को देखकर शकुन्तला का चित्तविकार उत्पन्न हो गया जो तपस्विनियों के लिये अस्वाभाविक था। शकुन्तला स्वयं में विस्मित हो गयी –

'किंतु खल्विमंजन' प्रेक्ष्य तपोवनविरोधिनी विकारस्य गमनीयाऽ–स्मि संवृत्ता।'[17]

शकुन्तला की प्रिय सखी अनुसूया ने जब दुष्यन्त से उसका परिचय पूंछा और राजा ने भी जानकारी प्राप्त की कि उसका विवाह हो चुका या नहीं, उसके साथ प्रेम करना धर्मसंगत है या नहीं, वह कन्या सवर्ण है या असवर्ण। इन सब बातों का निराकरण करते हुये उसने कहा – कि मनुष्यों में ऐसा रूप भला कहाँ मिल सकता है? क्योंकि तरल प्रभा वाली विद्युतभला पृथ्वी तल से कैसे उत्पन्न हो सकती है। यहाँ शकुन्तला के प्रति उत्पन्न भाव में विस्मय परिलक्षित है।

नाटक के द्वितीय अंक में जब विदूषक को दुष्यन्त का शकुन्तला के प्रति प्रेम भाव ज्ञात हुआ तब विदूषक ने राजा के मुख से शकुन्तला के रूप सौन्दर्य की प्रशंसा इस प्रकार सुनी–ब्रह्मा ने उसकी रचना करते समय पहले उसको अपने चित्त में मूर्तित करके या मन में संसार की सभी सुन्दरियों के रूपों को संचित करके उसमें प्राण डाले होंगे क्योंकि ब्रह्मा की निपुणता तथा उसके शरीर की शोभा पर विचार करने से यही प्रतीत होता है कि उन्होंने इसमें किसी अद्भुत स्त्रीरत्न की ही सृष्टि की होगी।

नाटक के चतुर्थ अंक में महर्षि कण्व को शकुन्तला परिणय का ज्ञान आकाशवाणी के द्वारा ही होता है यथा कमलिनियों के कारण हरित वर्ण के तालाब दिखलाई दे रहे थे, जिनसे मार्ग का मध्य भाग रमणीय हो गया था, घनी छाया वाले वृक्षों से सूर्य की किरणों का ताप रोक दिया गया था इस प्रकार इसका मार्ग कमलों के पराग से कोमल धूलि–कणों से युक्त शान्त और अनुकूल पवन से युक्त तथा कल्याणकारी हो।[18]

इस प्रकार की आकाशवाणी सुनकर सभी लोग गौतमी, शकुन्तला, प्रियंवदा आदि आश्चर्य चकित हो गये और शकुन्तला से कहने लगे कि वन देवताओं ने उसे अनुमति प्रदान कर दी है अतः वह देवताओं को प्रणाम करे। यहाँ आकाशवाणी के द्वारा इस प्रकार अनुमति पाना मात्र विस्मय का ही परिचायक है। अतः यहाँ अद्भुत रस है।

जब महर्षि कण्व ने शकुन्तला की विदाई के समय गौतमी से पुष्प लाने के लिये कहा, उसी समय सभी वृक्षों ने शकुन्तला को कुछ न कुछ भेंट अवश्य दी। जैसे कोई ग्रहस्थ अपनी पुत्री की विदाई पर उसे अनेक वस्तुयें प्रदान करता है। किसी वृक्ष ने उसे चन्द्रमा के समान श्वेत रेशमी मांगलिक वस्त्र दिये, किसी ने चरणों के रंगने के लिये

महावर (लाक्षारस) दिया, अन्य वृक्षों ने कलाई तक उठे हुये सुन्दर नूतन किसलयों की प्रतिस्पर्धा करने वाले वनदेवता के करतलों से आभूषण प्रदान किया।[19]

यहाँ शकुन्तला को वृक्षों द्वारा भेंट देने में विस्मय नामक स्थाई भाव है। इसमें आलम्बन अलौकिक वस्तुयें हैं यथा रेशमी वस्त्र, लाक्षारस, आभूषण आदि। बार बार विचार करना उद्दीपन विभाव है। आश्चर्यचकित होकर देखना अनुभाव है तथा हर्ष, औत्सुक्य आदि व्यभिचारी भाव हैं। यह अद्भुत का उत्तम उदाहरण है।

पंचम अंक में जब राजा दुष्यन्त दुर्वासा के शाप के कारण अपनी पत्नी शकुन्तला को पहचानने में असमर्थ रहा और बहुत प्रयास करने पर भी उसने उसे अपनी पत्नी स्वीकार नहीं किया। अतः शाङ्र्गस तथा गौतमी ने उसे हठपूर्वक राजा के पास छोड़ दिया। इसके कारण शकुन्तला विलाप करने लगी। दुष्यन्त ने कहा कि आप लोग इसे क्यों धोखा दे रहे हैं क्योंकि चन्द्रमा कुमुदों को ही विकसित करता है। कमलों को नहीं अतः उसका इस पर कोई आधिपत्य नहीं है। तत्पश्चात पुरोहित ने यह निर्णय किया कि सन्तानोत्पत्ति तक वह उसके घर रूके और यदि महात्माओं के कथनानुसार उसके प्रथम चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न हो तो यह अन्तःपुर में प्रविष्ट कराई जायेगी अन्यथा वह अपने पिता के घर रहेगी। यह सुनकर शकुन्तला अपने भाग्य की निन्दा करके रूदन करती हुई पुरोहित के पीछे–पीछे चल दी। पुरोहित ने इस आश्चर्यपूर्ण घटना का निवेदन राजा से इस प्रकार किया उसी क्षण तेजोमयी मूर्ति रूप समान आकार वाली एक स्त्री सहसा उसे अप्सरातीर्थ के समीप उठाकर चली गयी। सभी आश्चर्यचकित हो गये।[20]

इसी अंक में जब ऋषि यही तर्क करते हैं कि राजा को शकुन्तला को स्वीकार करना चाहिये। तब भी दुष्यन्त का संयमी मन डिगा नहीं। उनके इस दृढ़ संकल्प को देखकर कंचुकी विस्मित हो उठा।

सप्तम् अंक में जब तापसी राजा से यह जानना चाहती है कि क्या यह राजा दुष्यन्त का पुत्र है, राजा उस पुत्र को अपने सदृश देखकर विस्मित हो गया और उसे सर्वदमन ही समझा।

वस्तुतः 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में अद्भुत रस का अन्य स्थानों पर भी यथेष्ट परिपाक हुआ है। सर्वप्रथम अद्भुतरस की सृष्टि कवि ने शकुन्तला के जन्म के वृत्तान्त में, ऋषिकुमार द्वारा दुष्यन्त के प्रभाव वर्णन में, कण्व के कथन पर कोयल द्वारा शकुन्तला को जाने की अनुमति देने में, अदृश्य प्रभामण्डल में शकुन्तला के विलय, वनस्पतियों का वसन्त द्वारा दुष्यन्त का आदेश मानने में, मारीचि के आश्रम में लोकोत्तर विभूतियों के वर्णन में, बालक सर्वदमन की सिंह शावक से क्रीडा, देव–दानवों के माता–पिता से दुष्यन्त और शकुन्तला की भेंट मारीच शिष्य का आकाश मार्ग से कण्व को शकुन्तला स्वीकार की सूचना देने आदि के प्रसंगों में अद्भुत रस का उत्तम परिपाक हुआ है। अस्तु अभिज्ञान शाकुन्तल में अन्य रसों के साथ अद्भुत रस का भी सुन्दर परिपोष हुआ है।

सन्दर्भ संकेत

1. ध्वन्यालोक 1.5.11
2. नाट्यशास्त्र 6.61
3. काव्य प्रकाश–4.27.28
4. साहित्य दर्पण – 3.1
5. काव्य–5.3
6. ना.शा. 6 पृ. 301
7. अलं. कौ. पृ. 137
8. अ. द. पृ. 35
9. मालविका. अ. 2,2
10. माल. 2.10

11. माल. 2.11
12. माल. पृ. 217
13. विक्रमोर्वशीयम् 2,10
14. विक्रमो. 5.19
15. विक्रमो. 5 पृ. 223
16. अहो! मधुरमासा' दर्शनम्।
    शुद्धान्तदुर्लभमिदं वपुराश्रमवासिनोयदिजनस्य।
    दूरीकृताः खलु गुणैरूघान लताः वनलताभिः।।' (अ.शा. 2, 17)
17. रम्यान्तरः कमलिनी हरितैःसरोभिश्छायातुमैर्नियमितार्क मयूखतापः।
    भूयातकुशेशयरजोमृदुरेणुरस्याः
    शान्तानुकूलपवनश्च शिवश्च पन्थाः।।' (वही, 4.11)
18. 'क्षोमं केनचिदिन्दुपाण्डुतरूणा माङ्गल्यमाविष्कृत',
    निष्ठ्यूतश्चरणो परागसुभगौ लाक्षारसः केनचित्।
    अन्येभ्यो वनदेवताकरतलेरापर्वभागोत्यिते,
    दत्तान्याभरणानि नः किसलयोरभेदप्रतिद्वन्दिभिः।। (वही, 4.11)
19. सा निन्दन्ती स्वानिभाग्यानि बाला बाहत्क्षेपं क्रन्दित् च प्रवृत्ता।
    स्त्रीसंस्थान चाप्सरस्तीर्थमारादुत्क्षित्येनो ज्योतिरेक जगाम्। (वही, 5.35)
20. वही, 5, पृ. 400

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

श्रृंगार के अनूठे उपासक विद्यापति

डॉ. सुजाता चतुर्वेदी
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
क्राइस्ट चर्च महाविद्यालय, कानपुर

मध्यकालीन भारतीय साहित्य में भक्तिकाल नवीन पुनर्जागरण के रूप में आविर्भूत हुआ था, जिसे एक विशाल जन–समूह का संरक्षण प्राप्त था। 14वीं से 16वीं शताब्दी का साहित्य अनेक प्रभावान एवं प्रतिभावान साहित्यकारों की आभा से देदीप्यमान था। चंडीदास से लेकर सूरदास, तुलसीदास, कबीर, मीरां आदि इस नवजागरण के सन्देश–वाहक थे। इन सबमें विद्यापति का स्थान और उनका व्यक्तित्व सबसे अलग और निराला है। विद्यापति का जन्म सं. 1425 में बिहार के दरभंगा जिले में विसपी गाँव में हुआ था। ये मिथिला के एक संपन्न ब्राह्मण–कुल में उत्पन्न हुए, जो अपनी विद्वत्ता के लिए विख्यात था. स्वयं विद्यापति धर्म, दर्शन, भूगोल, न्याय आदि के प्रकांड पंडित थे और संस्कृत, अवहट्ट तथा मैथिली भाषाओं पर अभूतपूर्व अधिकार रखते थे। हिंदी साहित्य में वे एक ओर वीरगाथाकाल का प्रतिनिधित्व "कीर्तिलता" और "कीर्तिपताका" से करते दिखाई देते हैं, जो अवहट्ट में रची गईं. दूसरी ओर वे हिंदी में भक्ति और श्रृंगार की परंपरा के प्रवर्तक माने जाते हैं। "पदावली" में उनका श्रृंगारी रूप है, जो मैथिली भाषा में अत्यंत हृदयहारी रूप में अभिव्यक्त हुआ है। साथ ही संस्कृत में रचित उनकी प्रसिद्ध कृति "शैव सर्वस्व सार" है, जिसमें वे भक्तिभाव में निमग्न दृष्टिगत हैं।

विद्यापतिदरबारी कवि थे. किन्तु तत्कालीन दरबारी कवियों से उनकी मनोवृत्ति बहुत भिन्न थी. दरबारों की चकाचौंध, भोग–विलास, वैभव से पूर्ण वातावरण ने उनकी आत्मा की शुद्धता का हनन नहीं किया. अपितु दरबारों से उन्होंने जीवन का रस ग्रहण किया. वहाँ से उन्होंने कई बहुमूल्य अनुभव प्राप्त किए, जिनसे उनके व्यक्तित्व में विशिष्ट अभिजात संस्कार उत्पन्न हुआ. दरबार में रहते हुए विद्यापति ने अपने आश्रयदाता राजा को प्रसन्न करने हेतु कभी अत्युक्ति की शरण नहीं ली और न ही कभी स्वाभिमान से समझौता ही किया. दरबार में विद्यापति का बहुत सम्मानजनक स्थान था. वे महाराज कीर्तिसिंह के केवल आश्रित कवि ही नहीं, मित्र भी थे. शिवसिंह के शासनकाल में कवि को अभूतपूर्व आदर प्राप्त हुआ. अपना सम्पूर्ण जीवन राजदरबारों में बिता देने वाले विद्यापति ने अपने कृतित्व को कभी भी दरबारी छाया से ग्रस्त नहीं होने दिया.

"उनके गीतों में दरबारी संस्कृति की नहीं, जनता के मानस की आवाज है. उन्होंने राधा–कृष्ण के प्रेम में सामान्य जनता के सुख–दुःख, मिलन–विरह को अंकित किया है.....'कीर्तिलता' में दरबार के वर्णन बड़ी बारीकी से चित्रित हैं.....विद्यापति दरबारी कवि होते हुए भी जन–कवि हैं. उन्होंने अपनी कविता में इन दोनों भावधाराओं का समन्वय कर दिया है."('विद्यापति', डॉ.शिवप्रसाद सिंह,पृ. 23–24)

विद्यापतिसौन्दर्योपासक कवि थे. वे सौंदर्य के वायवी रूप की ओर आकृष्ट होने वाले रहस्यवादी नहीं थे, वे सौन्दर्य को स्थूल रूप में साक्षात देखने के अभ्यासी थे. सौन्दर्य उनके अनुसार अपरूप होता है, जो मन में पुलक, प्राणों में शक्ति और शरीर में रोमांच भर दे. इस प्रकार के सौन्दर्य में चिर नूतनता समाविष्ट होती है, जो उसे नितांत विशिष्ट बना देती है. इसीलिए विद्यापति क्षण–क्षण परिवर्तित नूतन सौन्दर्य के उपासक हैं. इस नवयौवन के सौन्दर्य को देखकर नव वसंत के आगमन पर आम्र गंध से प्रमत्त कोकिल की तरह उनकी कविता कूक उठती है।

"नव वृन्दावन नव नव तरु गन
नव नव विकसित फूल

नवल वसंत नवल मलयानिल
मातल नव अति कूल
बिहरइ नवल किसोर
कालिंदी पुलिन कुंज वन सोभन
नव नव प्रेम विभोर"

("विद्यापति", 'ग्रियर्सन : भाषा और साहित्य चिंतन', अरुण कुमार, पृ. 185)

विद्यापति के मन में सौंदर्य गंभीर पीड़ा का संचार करता है, जो सौंदर्य की शाश्वत शक्ति का द्योतक है. यह ऐसी नैसर्गिक पीड़ा है, जो मन में व्याप कर नायक व नायिका को प्रथम रूप दर्शन के पश्चात पुनः दर्शन हेतु व्याकुल कर देती है–

"सपनेहु न पूरलमन के साध, नयन देखल हरि एत अपराध
मंद मनोभव मन जरे आगी, दुर्लभ पेम भेल पराभव लागी"

('विद्यापति', शिवप्रसाद सिंह, पृ. 287)

प्रेमविद्यापति के काव्य की सबसे बड़ी प्रेरणा है. सौन्दर्योपासक कवि स्वाभाविक रूप से प्रेमिल हृदय का स्वामी होता ही है। शुक्लजी ने प्रेम के रंजनकारी प्रभाव को विद्वान की बुद्धि, कवि की प्रतिभा, चित्रकार की कला, उद्योगीकी तत्परता, वीर के उत्साह के रूप में प्रसारित पाया है और इसे ईश्वर का अनुग्रह माना है। प्रसिद्ध कवि दांते इस प्रेम को अपने जीवन की सबसे बड़ी प्रेरणा–शक्ति कहा करते थे। राधा और कृष्ण के महान प्रेम को लौकिक अभिव्यक्ति देने हेतु विद्यापति के समक्ष राजा शिवसिंह और उनकी पत्नी रानी लखिमा देवी का साक्षात उदाहरण उपस्थित था। 'पदावली' के सर्वश्रेष्ठ गीत इन्हें समर्पित हैं। संयोग शृंगार के अत्यंत मधुर गीतों में विद्यापति ने लखिमा को साक्षी की तरह उपस्थित किया है। डॉ. विमान बिहारी मजुमदार के शब्दों में –

"पदावली के 198 पदों में शिवसिंहलखिमा का नाम आता है। लखिमा का नाम बहुत से पदों में शिवसिंह के साथ आया है, कुछ में केवल शिवसिंह का।" ('विद्यापति', सं. डॉ. विमान बिहारी मजूमदार, पृ. 18)

इन पदों से यह भी स्पष्ट होता है कि राजा–रानी से विद्यापति का सख्य–भाव का संबंध था। अन्यथा इस प्रकार की शृंगारिककाव्योक्तियों को इतनी स्पष्टता से उनके नाम के साथ कहना कठिन होता।

विद्यापति चाक्षुष मैत्री या प्रथम दर्शन से उत्पन्न प्रेम का वर्णन बहुत सुन्दरता से करते हैं। राधा और कृष्ण दोनों क्षण मात्र एक–दूसरे को देखकर परस्पर आकृष्ट हो जाते हैं। प्रेम के विषय में विद्यापति की धारणाएँ इतनी उच्च हैं कि वे उसे केवल मांसल इन्द्रिय–तृप्ति का साधन मात्र समझ ही नहीं सकते. 'पदावली' के एक पद में उन्होंने प्रेम की व्यापक व्याख्या करते हुए कहा है कि प्रेम तो फूल का पौधा है। इस फूल को कृष्ण ले आये और फुलवारी में लगा दिया। प्रेमपूर्ण वार्ता के जल से यह निरंतर सींचा गया। शील और मर्यादा के घेरे बाँध कर इसकी रक्षा की गई और फूल का यह नन्हा पौधा प्राण के खंभे पर अवलंबित रहा। तब एक दिन इसमें प्रेम का पुष्प फूला, जो अमूल्य था। यह अत्यंत सुन्दर पुष्प और भी विकसित हुआ, तब दो जीव जो अलग–अलग थे, सदा के लिए एक हो गए। इस फूल को सदा निंदा तथा असूया के कीड़ों से बचाया गया, साहस ने इसको फल दिया –

"फूल एक फुलवारी लाओलमुरारी,जतनेपटाओल सुवचन वारि,
चौदिसवान्हलसीलकआरि, जिवेअवलम्बनकरुअवधारि,
ततहुफुललफुल अभिनव पेम, उस मुल लहए न लाखहु हेम,
अति अपरुवपेम परिणत भेल,दुइ जीव अछत एक भइ गेल,

पिसुन कीट नहीं लागलताहि, साहस फल देलविहिनिरवाहि,
विद्यापति कह सुन्दर सेहु, करये जतन फलमत होए जेहु।"

('विद्यापति', डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. 265)

रस के रूप में शृंगार व्यापक और विस्तृत रस है। इसके अंतर्गत प्रेम और सौंदर्य की महत्ता सर्वोपरि है। विद्यापति ने 'कीर्तिपताका' के आरंभिक अंश में शृंगार को रसराज माना है। वे कहते हैं कि कवियों के बीच नव जयदेव कवि, रसों के बीच शृंगार रस और शत्रुओं के बीच जगत में सिंह तुल्य जगत सिंह, ये तीनों त्रिभुवन के सार हैं –

"कवि मह नव जयदेव कवि,रस मह एहु सिंगार,
जगतसिंहरिपुराअ मह, तीनि त्रिभुवन सार।"

('हिंदी साहित्य रूपरंपरा और परख, डॉ. वीरेंद्र श्रीवास्तव, पृ. 70)

'कीर्तिपताका' के आरंभिक अंश में विद्यापति ने शृंगारवानअर्धनारीश्वर शिव की अर्चना की है। तत्पश्चात रसों के राजा शृंगार की चर्चा की है। वे शृंगार को संसार का सार मानते हैं।

'पदावली' में विद्यापतिने राधा–कृष्ण की प्रेम–लीला का वर्णन करने के लिए शृंगार रस का आलंबन किया है। विद्यापति ने 'पदावली' में जनभाषा मैथिली के माध्यम से जन–सामान्य तक शृंगारिक वर्णन को परंपरागत रूप में पहुँचाने हेतु राधा–कृष्ण का आश्रय लिया है। वयः संधि के समय नवयुवतियों की लज्जा–मिश्रित मुद्राओं एवं अनुराग जन्य चेष्टाओं आदि का अत्यंत स्वाभाविक रूप में चित्रण हुआ है। विद्यापति ने शब्दों के द्वारा वयःसंधि प्राप्त मुग्धा का सजीव रूप चित्रित किया है, जिससे लज्जा, भावना, आवेग, उद्वेग, अनुभाव, आंगिक चपलता आदि का एक साथ स्वर मुखरित होता है। विद्यापति ने सौंदर्य को अनेक रूपों से देखा, कुशल मणिकार की तरह उन्होंने चुना, सजाया, संवारा और आलोकित किया। नायिका के अद्‌भुत सौंदर्य–चित्रण के साथ ही उन्होंने नायक के विलक्षण सौंदर्य को भी उकेरा है। राधा जितनी लावण्यमयी हैं, कृष्ण उतने ही सौन्दर्यागार हैं। यही सौन्दर्य प्रेम की भूमिका का आधार है –

"ए सखि ! पेखलि एक अपरुप, सुनइतमाधविसपन सरूप,
कमल जुगल पर चांदक माला,तापरउपजलतरुनतमाला।"

('विद्यापति और उनकी पदावली', देशराज सिंह भाटी एवं जीवन प्रकाश जोशी, पृ. 61)

विद्यापतिने 'पदावली में शृंगार की विविध अवस्थाओं का अत्यंत मौलिक एवं जीवंत चित्रण किया है। विरह की सुदीर्घ अवधि के उपरान्त मिलन का मनोहारी चित्रण कवि ने किया है। मिलन के प्रसंग में विद्यापति के काव्य का आदर्श ही है कि 'जेहने विरह हो तहने स्नेह' ('महाकवि विद्यापति', शिवनंदन ठाकुर,पृ. 136)। राधा–कृष्ण के विरहोपरांत पुनर्मिलन में नायक से मिलने की नायिका की आतुरता, भावोल्लास एवं उन्माद का अपूर्व वर्णन कवि ने किया है–

"किंकिनीकिनिकिनिकंकनकनकनकलरब नूपुर बाजे,
निज मदे मदन पराभव मानलजय जयडिमडिम बाजे।"

('विद्यापति', सं. खगेन्द्रनाथ मिश्र एवं विमान बिहारी मजुमदार, पृ. 459)

विद्यापति ने मुग्धा नायिका की स्वाभाविक लज्जा एवं मिलन की अखंड उत्कंठा को सरसता से व्यक्त किया है। 'पदावली' में प्रत्येक कोटि की नायिकाओं के मिलन का चित्रण विद्यापति ने बहुत सुन्दरता से किया है। कवि ने अभिसार में परकीया नायिका का चित्र खींचा है। वह अपने प्रियतम से मिलने के लिए अनेक कष्टों को सहन करती है। वर्षा–ऋतु की तिमिराच्छन्ननिशीथ में कंटकाकीर्ण भूमि पर एकाकिनी नायिका अभिसार–गमन करती है।

वह सखी से कहती है कि जैसे काली कसौटी पर सोने की परीक्षा होती है, उसी प्रकार उसने अपने स्वर्ण रूपी प्रेम की परीक्षा भादों की घनी अंधकारमय रात्रि में दी है। इस प्रकार विद्यापति ने 'पदावली' में कृष्णाभिसारिका, शुक्लाभिसारिका एवं दिवसाभिसारिका नायिकाओं का चित्रांकन किया है।

संयोग शृंगार को जागृत करने हेतु प्रकृति नायक–नायिका की भावनाओं के उद्दीपन का साधन है। अतएव कवियों द्वारा प्रकृति–चित्रण स्वाभाविकता व निपुणता से किया गया है। वसंत वर्णन में प्रकृति के स्वच्छंद स्वरूप का भावनामय वर्णन करने के बहुत अवसर मिलते हैं. महाकवि ने वसंत के उन्मादकारी वातावरण का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है. सारा वातावरण ही मुखरित होकर प्रेममय, आनंदमय व उल्लासमय हो रहा है। वृन्दावन की रागरंजित क्रीड़ास्थली का प्रभावशाली निरूपण कवि ने किया है –

"मधुर वृन्दावन माँझ, मधुर मधुररससाज,
मधुर जुवतिजन संग, मधुर मधुररस रंग."

('विद्यापति और उनकी पदावली', देशराज सिंह भाटी एवं जीवन प्रकाश जोशी,पृ. 539)

शृंगार के उद्दीपन के अनुकूल वातावरण–सृजन के लिए विद्यापति संस्कृत–काव्य की परम्परानुसार प्रकृति एवं ऋतुओं को साधन बनाते हैं, किन्तु वे अपने हृदय की उल्लासपूर्ण अनुभूतियों के योग से इस प्रभाव में पर्याप्त वृद्धि कर देते हैं। यही प्राकृतिक साधन वियोग और विरह में नायिका को भीतर तक मर्माहत और विदग्ध कर देते हैं।

'पदावली' में विद्यापति ने एक ओर संयोग शृंगार के अभूतपूर्व चित्र खींचे हैं, तो दूसरी ओर उन्होंने विप्रलंभ शृंगार के अनूठे दृश्य उकेरे हैं. पूर्वराग की स्थिति में वियोग पक्ष की दशा गंभीर होती है. कवि ने अनेक ऐसे दृश्यों का संयोजन किया है, जहाँ वियोग शृंगार हेतु आवश्यक अनुभावों और संचारी भावों की प्रयुक्ति स्वाभाविक और संगत रूप से की गई है–

"लोटइधरनि, धरनिधरिसोइ, खने खने साँस खने खनेरोइ,
खने खनेमुरछइ कंठ परान, इथि पर की गति दैव से जान"

('विद्यापति', डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. 134)

कृष्ण के विछोह के कारण राधा विरह–वियोग को सहती है। इसके अंतर्गत नायक–नायिका के मनोभाव व अंतर्व्यथा बहुत मार्मिक रूप से वर्णित है। प्रेम–विदग्ध नायक–नायिका के लिए वे सभी प्राकृतिक उपादान जो संयोग में सुखकारी थे, अब दारुण दुःख के कारक हैं. ऐसी वियोगमय स्थिति का अंकन विद्यापति ने 'पदावली' में अनेक स्थानों पर बहुत कुशलता से किया हैदृ

"अनिल अनल बम मलअजबीख,जे छल सीतलसे भेल तीख,
चाँद संताबएसविताहुजीनि, नहि जीवन एक मत भेल तीनि."

('विद्यापति पदावली', बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पृ. 9)

इस प्रकार पूर्वराग के अंतर्गत विराहोत्कंठिता नायिका के विरहाकुल हृदयोद्गारों का द्रवीभूत करने वाला चित्रण 'पदावली' में किया गया है।

प्रियापराधजनित कोप को मान कहते हैं.विप्रलंभ शृंगार के अंतर्गत मान का प्रमुख स्थान है. यह दुधारी तलवार की तरह है. इसकी चोट प्रहार करनेवाले एवं जिस पर प्रहार किया जा रहा है, दोनों पर समान ही पड़ती है. शृंगार में विरह–पक्ष की उद्भावना बड़ी स्वाभाविक एवं मर्मस्पर्शी है. राधा के मान कर लेने पर कृष्ण के लिए सर्वत्र विरह की ज्वाला उन्हें दग्ध करने को तत्पर है. मदन के प्रहारों से आहत कृष्ण कातर, अश्रुयुक्त, विकल हैं –

"मदन कुंज पर बइसल नायक वृंदा सखि मुख चाहि,
जोड़िजुगुल कर बिनतिकरए कत सुरतिमिलावहराहि,

हम पर रोखिबिमुखभइसुंदरिजबहुचललि निज गेहा,
मदन हुतासनमझमनजारलजीब न बाँधइथेहा."

('विद्यापति और उनकी पदावली', पृ. 446)

मान श्रृंगार–काव्य का महत्वपूर्ण अंग है. इससे संबंधित प्रियतम की निष्ठुरता, अपनी उपेक्षा, आनंद में बाधा इत्यादि के अनेक जीवंत चित्र 'पदावली' में प्राप्त होते हैं।

नायक–नायिका में से एक का विदेश में होना प्रवास कहलाता है. 'पदावली' में कार्यवश प्रवास का चित्रण मिलता है, जहाँ कवि की लेखनी अत्यधिक मार्मिक हो उठी है. प्रवासी प्रियतम की तरुण विरहिणी प्रकृति में वसंत की शोभा देखकर अपने दुर्भाग्य पर व्यथित हो उठती है. 'पदावली' में विरहिणी प्रोषितपतिका नायिका की निश्छल प्रेम–पीड़ा की अनुभूति स्वाभाविकता से फूट पड़ी है –

"तेल–बिंदु जैसे पानिपसारिअऐसन मोर अनुराग,
सिकता जल जैसे छनहिसूखाएतैसन मोर सुहाग।"

('विद्यापति की पदावली', सं. रामवृक्षबेनीपुरी, पृ. 249)

अपने प्रेम की गंभीरता, विरह–व्यथा की प्रखरता, प्रकृति का उद्दीपनकारी रूप, प्रवासी प्रिय के सकुशल लौट आने की मंगलकामना की भावनाएँ प्रोषितपतिका नायिका के माध्यम से 'पदावली' में कवि ने व्यक्त की हैं। ऐसी विरहिणी की अपने प्रियतम के प्रति पीर–भरी भावना भी कितनी मंगलमयी होती है, यह इन पंक्तियों में कवि ने स्पष्ट किया है –

"युग–युग जीवथुवसथु लाख कोस,हमर अभाग हुनक नहिदोस,
हमर करम भेल विहि विपरीत, तेजलनि माधव पुरुबकपिरीत."

('विद्यापति की पदावली', सं. कुमुद विद्यालंकार एवं जयवंशी झा, पृ. 253)

इस प्रकार विद्यापति ने वियोग श्रृंगार पर अनेक पदों की रचना की है। प्रवास–विरह के लगभग सभी पक्षों को उन्होंने पूरी मर्मस्पर्शिता के साथ अभिव्यक्त किया है। ऐसे पदों में पांडित्य–प्रदर्शन की अपेक्षा भावुकता का रंग प्रखर है। विरह की असह्य वेदना के कारण राधा की स्थिति शोचनीय हो गई है। प्रियतम कृष्ण को अनेक सन्देश भेजने के उपरांत भी जब उन्होंने कोई सुधि नहीं ली, तब नायिका की विह्वलता चरम पर पहुँचने लगती है। ऐसी स्थिति में मूर्च्छा का आना स्वाभाविक है। 'पदावली' में विद्यापति ने इसका अत्यंत हृदयग्राही चित्रण किया है। अपने भवन के बाहर निकलते ही विरहिणी राधिका को सर्वत्र भ्रमरों का गुंजार सुनाई देता है। इस कामोद्दीपक गुंजार को सुनकर राधा मूर्च्छित हो गिर पड़ती है –

"अकामिक मंदिर भेलि बाहर, चहुँदिससुनलकभमर–झंकार,
मुरुछिखसलमहि न रहलिथीर, न चेतए चिकुर न चेतए चीर।"

('विद्यापति', मजुमदार संस्करण, पृ. 369)

वस्तुतः श्रृंगार के विभिन्न पक्षों के विषद विवेचन के साथ 'पदावली' में विद्यापति ने प्रेम और सौंदर्य का विलक्षण वर्णन किया है। रससिद्ध व प्रेम–मर्मज्ञ कवि ने मानव–मन में उत्पन्न प्रेम की विविध भाव–लहरियों का अत्यंत सूक्ष्म एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। राधा–कृष्ण की प्रेम–लीलात्मक काव्य–परंपरा में विद्यापति का निस्संदेह अद्वितीय स्थान है। 'पदावली' में श्रृंगार–वर्णन के चित्रों में आलंबन, उद्दीपन, अनुभाव, संचारी भावों का इतना अनूठा संयोजन हुआ है कि उत्कृष्ट व हृदयग्राही काव्य की अनूठी परंपरा का सृजन हुआ है। जहाँ संयोग श्रृंगार के पद जीवंतता, उत्फुल्लता और स्वच्छंदता से परिपूर्ण हैं, वहाँ विप्रलंभश्रृंगार के चित्रों में अनुभूति की गहराई, भाव–प्रवणता और तन्मयता का अद्‌भुत परिपाकदृष्टव्य है.विरहानुभूतियों के चित्रण में विद्यापति की विशिष्टता है–

आत्मनिवेदन के रूप में विरहोद्‌गारों की अभिव्यक्ति। इस आत्माभिव्यंजना की शैली के अनूठे प्रयोग के कारण विद्यापति की 'पदावली' में अनुभूतियों का अविरल प्रवाह, अभिव्यक्ति की स्वाभाविकता, छंदों की कमनीयता और भाषा की मार्मिक कोमलता का अभूतपूर्व संयोजन हुआ है। 'देसिलवयना सब जन मिट्ठा' की उक्ति को चरितार्थ करते हुए विद्यापति ने मिथिला में तत्कालीन प्रचलित लोकभाषा, मैथिली, में 'पदावली' को रचकर उसे लोक–प्रसिद्धि का एक और पुष्ट आधार प्रदान किया। उन्होंने जन–प्रचलित भाषा में साहित्य–रचना करके उसे शाश्वत लोक–स्मृति का अंग बना दिया।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. 'हिंदी साहित्य कोश', भाग 1, प्रधान सम्पादक,धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञान मंडल लि., वाराणसी, द्वितीय संस्करण.
2. 'हिंदी साहित्य : परंपरा और परख', डॉ. वीरेंद्र श्रीवास्तव, भारती भवन, पटना, 1971.
3. 'विद्यापति और उनकी पदावली',देशराज सिंह भाटी एवं जीवन प्रकाश जोशी, हिंदी साहित्य संसार, दिल्ली, 1963.
4. 'विद्यापति', सं. खगेन्द्र नाथ मिश्र एवं विमान बिहारी मजुमदार, नवीन संस्करण, सं. 2010.
5. 'महाकवि विद्यापति', शिवनंदन ठाकुर, पुस्तक भंडार, पटना, 1998.
6. 'विद्यापति', डॉ. शिवप्रसाद सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, 1998.
7. 'विद्यापति की पदावली', सं. रामवृक्ष बेनीपुरी, पुस्तक भंडार, पटना.
8 'विद्यापति की पदावली', सम्पादक एवं भाष्यकार, कुमुद विद्यालंकार एवं जयवंशीझा,रीगल बुक डिपो, दिल्ली.
9. 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास', डॉ. रामकुमार वर्मा, 1958.
10. "विद्यापति", 'ग्रियर्सन : भाषा और साहित्य चिंतन', अरुण कुमार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली.

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

क्या कबीर समाज सुधारक थे ?

डॉ. आदित्य कुमार मिश्र
सहसेपुर, खमरिया, भदोही
कृषि विभाग–भदोही

कतिपय विद्वानों ने कबीर को एक समाज सुधारक माना है। वस्तुतः सबसे पहले कबीर पंथी विद्वानों के अतिरिक्त ईसाई मिशनरियों ने कबीर की रचना का अध्ययन किया और जो ग्रंथ उनके हाथ लगा वह था 'बीजक'। बीजक में खण्डन मण्डन की उक्तियाँ अपेक्षाकृत अधिक हैं। अतः पहले लोग कबीर को समाज सुधारक ही मानने लगे। किन्तु कबीर की अन्य रचनाओं के प्रकाश में आने पर या आने के परिणाम स्वरूप अब कबीर को समाज सुधारक नहीं माना जा सकता है। जिस, समय कबीर का आविर्भाव हुआ उस समय भारतीय समाज में दो प्रधान वर्ग थे– हिन्दू व मुसलमान। ये दोनों ही वर्ग धर्म के व्यावहारिक पक्ष एवं बाह्याडम्बर से ओत–प्रोत थे। हिन्दू समाज वर्ण व्यवस्था की लकीर पीट रहा था। जनता में अंधविश्वास एवं कुरीतियों का बोल–बाला था। बाह्याडम्बर एवं पाखण्ड ने हिन्दू धर्म के वास्तविक स्वरूप को दबा दिया था। बज्रयानी, सिद्ध व नाथ योगी क्रमशः पूर्वी और पश्चिमी भारत में अपना वर्चस्व बढ़ाये हुये थे। ये बज्रयानी सिद्ध बौद्ध धर्म की महायान शाखा से सम्बन्धित थे जिनमें वाममार्गी साधना पंचमकार आदि के सेवन की प्रवृत्ति थी। बौद्ध व जैन मतावलम्बी अपने–अपने धर्मों को ही श्रेष्ठ समझते थे। इसी प्रकार नवागत मुसलमान हिन्दू समाज में अपने को नहीं खपा पा रहे थे। विजित हिन्दू को वे हेय दृष्टि से देखते थे। कुछ सूफी विचारकों ने यद्यपि हिन्दू–मुस्लिम विचारधारा के समन्वय का प्रयास किया किन्तु हिन्दू–मुसलमान सदैव एक दूसरे के विरोधी थे। ऐसी पृष्ठभूमि में जब कबीर का आविर्भाव हुआ तब उन्होंने धर्म के नाम पर फैले हुए अनेक भेद भाव ऊँच–नीच आदि को मनुष्य कृत बताया। उनका मानना था कि एक ही ज्योति से उत्पन्न एक ही जैसे शरीर वाले मनुष्यों में केवल जन्म के आधार पर ऊँचा–नीचा नहीं माना जा सकता है–

एकै ज्योति सबै जग कीया, कवन भक्त को मन्दा।

इसी प्रकार आध्यात्मिक एकत्व पर कबीर की सामाजिक विचारधारा आधारित है। उन्होंने अनुभव किया था–

व्यापक ब्रह्म सबनि मैं एकै, को पंडित को जोगी।
राणा रंक कवन सू कहिए कवन वैद्य कवन सो रोगी।

एक ही तत्व पंडित योगी, राजा, रंक वैद्य, रोगी सभी में व्याप्त है। इसी तथ्य की अभिव्यक्ति उन्होंने बड़ी सीधी सादी किन्तु ह्रदय को जीत लेने वाली वाणी में कहा–

'एक राम देखा सबहिन में कहै कबीर मनमाना।'

कबीर एक सच्चे भक्त के रूप में प्राणी मात्र की इसी एकता को महत्व देते हैं। उनकी दृष्टि में हिन्दू, मुसलमान, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि के भेद कृत्रिम है। वर्ण–व्यवस्था को महत्व देने वाले ब्राह्मणों को चुनौती देते हुये और दूसरों को नीचा दिखाने वाले ब्राह्मणों से उन्होंने प्रश्न किया– 'जो तू बाभन वभनी जाया। तौ आन वाट हौइ क्यों नहिं आया।'

इसी प्रकार वे ब्राह्मणों को लक्ष्य कर कहते हैं कि सच्चा ब्राह्मण वह है जो ब्रह्म विचार करे। वह चाहे जिस जाति में उत्पन्न हुआ हो।

'कहै कबीर जो ब्रह्म विचारे सो बाभन कवियत है हमारे।'

उन्होने ब्राह्मणों को आगाह किया कि यदि वे इसी प्रकार दुष्कर्मों में लिप्त रहे तो अगले जन्म में वे भी जुलाहे

होंगे, जैसा कि स्वयं कबीर के साथ हुआ–

पूरब जनम हम बाभन होते। औछे करम तय हीना।
राम देव की सेवा चूका। पकरि जुलाहा कीन्हा।

इसी प्रकार मुसलमानों को भी कबीर ने आड़े हाथों लिया। वे प्रश्न करते हैं–

'जो तू तुरुक तुरूकिनी जाया। तौ भीतरि खतनां क्यों न कराया।'

मुसलमानों में व्याप्त कुरीतियों पर भी वे तीखे प्रहार करते है–

मुसलमान के पीर औलिया मुर्गा–मुर्गी खाई।
खाला तेरी बेटी ब्याहे घरहि में करै सगाई।

उन्होने मुसलमान धर्म में मान्य शब्दों की नयी व्याख्या की। वे कहते हैं–

'सो मुल्ला जो मन सो लरै। गुरु उपदेश काल स्यो जुरो।'

वास्तव में कबीर हिन्दू व मुस्लिम धर्म की कुरीतियां दिखाकर यह कहना चाहते हैं कि ये मनुष्य को गुमराह करने वाली बातें हैं। धर्म के वास्तविक स्वरूप को इन बातों से कुछ लेना–देना नहीं है। उनकी दृष्टि में तीर्थ, व्रत, मंत्र, जप, चोटी, जनेऊ जितने कृतिम हैं उतने ही रोजा, नमाज, आदि भी कृतिम हैं। पंडित का शास्त्र ज्ञान कर्मकाण्ड जितने व्यर्थ हैं उतने ही मुल्ला की पुकार, काजी की नमाज व कुरान की दुहाई भी व्यर्थ है। हिन्दुओं को लक्ष्य कर कबीर ने कहा–

'पाहन पूजै हरि मिलै तो मैं पूजूँ पहाड़।'

इसी प्रकार मुसलमानों को लक्ष्य कर कहा–

काकर पाथर जोरि के मस्जिद लियो चुनाय।
ता चढ़ि मुल्का बांग दे क्या बहरा भयो खुदाय।

कबीर ने इस प्रकार धार्मिक और सामाजिक अन्धविश्वासों व रूढ़ियों को निरर्थक बताते हुये धर्म के वास्तविक स्वरूप पर बल दिया। उन्होंने न केवल धार्मिक, सामाजिक क्षेत्रों में फैले अन्धविश्वासों पर कटाक्ष किया। आध्यात्मिक सिद्धि का अभिमान करने वाले व समाज में अपने को श्रेष्ठ घोषित करने वाले योगी व सन्यासी को भी नहीं छोड़ा–

जोगी, जती, तपी, सन्यासी बहुतीरथ भ्रमना।
लुचित, मुण्डित, मोनि जटाधर अन्ति तऊ मरना।

कबीर ने इस प्रकार समाज में व्याप्त कुरीतियों व मिथ्याचारों को दिखाकर वस्तुतः यह बताने की चेष्टा की है कि भक्ति में उनकी कोई उपादेयता नहीं है। वस्तुतः कबीर के सामाजिक विचार एक भक्त के विचार हैं। विद्वानों ने कबीर को इसीलिये समाज सुधारक नहीं माना है। रामचन्द्र तिवारी का मत है– ''वे समाज रचना के, सुधारवादी आन्दोलन के किसी प्रकार के पुरस्कारता न होकर वैयक्तिक साधना के प्रचारक थे। इसलिये उनको समाज–सुधारक नहीं कहा जा सकता है।'' कबीर को अनेक रूपों में प्रतिष्ठित करने वाले डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार भी कबीर को समाज सुधारक नहीं माना जा सकता। वे वैयक्तिक साधना के प्रचारक थे। किन्तु वैयक्तिक साधना के प्रति उत्तरदायी होते हुये वे समाज की अनिश्चित परिस्थितियों के प्रति उदासीन नहीं रह पाये थे। आचार्य द्विवेदी ने बहुत वक्त देकर निष्कर्ष रूप में यह कहा है–

''कबीर का मूल व्यक्तित्व भक्त का है इसी के इर्द–गिर्द उनकी भव्य प्रवृत्तियां भी प्रकाशित हो उठी हैं। अतः उनको समाज सुधारक नहीं भक्त ही माना जा सकता है।'' आचार्य द्विवेदी का मत है कि कबीर विभिन्न धर्मों की विशेषताओं का संकलन करने वाले न थे वे तो उनका समूल खण्डन करने वाले थे और उन्हीं को वे ग्रहण करते थे जो उनके अनुभव के आधार पर खरा उतरता था। उन्होने अपने अनुभव के आधार पर मनुष्य की जातिगत,

विसंगतियाँ, धर्मगत सम्प्रदायिकता सभी को महत्वहीन बताया। कबीर उस ऊँचे धरातल पर खड़े हैं जहाँ मनुष्य न हिन्दू है न मुसलमान है, न ऊँचा है और न ही नीचा है, वह केवल मनुष्य मात्र है। वे समाज की कुप्रथाओं व कुरीतियों की निन्दा इसलिये करते हैं कि वे उनके अनुभव के आधार पर खरे नहीं उतरते हैं। जब वे कहते हैं–

''हिन्दू अपनी करै बड़ाई, गागर छुवन न देयी।
वैश्या के पायन तर सोये, यह कैसी हिन्दुआयी।''

अथवा जब कबीर कहते हैं–

चली है कुलबोरनी गंगा नहाय
सेतुआ कराई, बहुरी भुजाई, घूँघट ओढ़े मटकत जाई।

अथवा जब वे कहते हैं–

''नारी की झाँई परत अंधा होत भुजंग।''

तब वे एक समाज सुधारक की भाँति नहीं अपितु एक सच्चे भक्त के रूप में पथ भ्रष्ट समाज को गलत राह पर न चलने का स्मरण दिलाते हैं। इसलिये उन्हें समाज सुधारक न कहकर समाज उद्धारक कहना अधिक समीचीन होगा। सुधारक अपने सिद्धान्त को साधन मानता है और सुधार को साध्यः अर्थात् अपने सिद्धान्तों के द्वारा वह सामाजिक सुधार करना चाहता है किन्तु कबीर का इस प्रकार का कोई साध्य नहीं हैं। वे मानव मात्र की एकता का प्रतिपादन इसलिये करते हैं कि वही सच्चा रास्ता है। इस प्रकार कबीर का ..... पूर्णतया आध्यात्मिक है। कुछ विद्वान उनकी उक्तियों में सामाजिक शोषण का विरोध ढूढ़ते हैं। उदाहरण – श्री प्रकाश चन्द्र गुप्त जी ने लिखा है कि – ''सामाजिक शोषण अनाचार व अन्याय के विरूद्ध संघर्ष में आज भी कबीर का काव्य एक तीखा अस्त्र है। कबीर से हम रुढ़िगत सामाजिक दुराचार और अन्यायी सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध डटकर लड़ना सीखते हैं और यह भी सीखते हैं कि विद्रोही कवि किस प्रकार शोषण के दुर्ग के सामने अन्त तक अपना माथा ऊँचा रखता है।'' कबीर की उक्तियों और प्रथम दृष्टया अवलोकन से सही माना जा सकता है किन्तु कबीर का मूल उद्देश्य इससे भी अधिक महत्वपूर्ण है। वे जब अपनी वाणी में सामाजिक विसंगतियों आदि की बात करते हैं तो उनका लक्ष्य मानव मात्र की एकता प्रतिपादित करते हुये आध्यात्मिक पथ पर अग्रसर करना होता है। इस प्रकार वे सच्चे अर्थों में एक भक्त सिद्ध होते हैं, समाज सुधारक नहीं।

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में डॉ. अम्बेडकर के चिन्तन का महत्व

डॉ0 अभिलाष सिंह यादव
असिस्टेंट प्रोफेसर–राजनीति शास्त्र
महामाया राजकीय महाविद्यालय धनूपुर, हण्डिया, इलाहाबाद

आज भारतीय समाज अनेका–अनेक समस्याओं से ग्रस्त है। स्वतन्त्रता के बाद से अनवरत यह प्रयास किया गया कि भारतीय समाज का जीवन स्तर समान्नत हो और वह अपनी पूर्व गामी स्थापनाओं, संस्कृति, सभ्यता प्रभृति जीवन तत्वों के विकास का मील का पत्थर बन सके। प्रत्युत शनैः–शनैः समग्र प्रयत्नो के परिणाम प्रतिकूल प्रभाव अंकित करते गये और जय की औदात्य मूलक संचेतना को पारंग्मुखी दुष्चेतना में विवर्तित होने के साक्ष्य बनकर रह गए। आज जीवन की यह भयावह त्रासदी हमारी समग्र उन्नति को निगलती जा रही है।

सामाजिक विकास की प्रक्रिया में विचार अथवा वैचारिकी का विशेष महत्व होता है। कोई भी तथ्यात्मक विचार चाहे वह कही भी और कैसे भी उत्पन्न हुआ हो भौतिक जगत को किसी भी जगत को किसी विश्वास की तुलना में अधिक प्रभावित करता है।

तथ्यात्मक या अवलोकन पर आधारित विचार कल्पनात्मक विचारों की तुलना में अधिक प्रभाव शाली होते हैं यद्यपि कई बार कल्पनात्मक विचार भी समाज को प्रभावित करते हैं जैसे जर्मनी में शुद्ध आर्य प्रजाति की गैर वैज्ञानिक अवधारणा ने समाज को प्रभावित किया। उसी प्रकार भारतीय समाज में जाति की कल्पनात्मक व्याख्या वाले विचारों ने हजारों वर्षों से हिन्दू समाज की संरचना में निर्णायक भूमिका का निर्वाह किया।

डॉ. अम्बेडकर को सामाजिक न्याय के क्रान्ति दृष्टाओं में सम्मान के साथ लिया जाता है। भारतीय समाज में हजारों वर्षों से व्याप्त जाति प्रथा और उससे उत्पन्न दोषों को सामूल नष्ट कर देने का विचार सामाजिक क्रान्ति का आधुनिक विचार है इस विचार के प्रणेता डॉ. अम्बेडकर माने जाते है।

डॉ. अम्बेडकर की जयन्ती और उससे जुड़े हुए अनेक संस्मरण तत्कालिक भारतीय समाज का जो चित्रण प्रस्तुत करते हैं उसे देखकर यह कहा जाता है कि डॉ.अम्बेडकर द्वारा प्रतिपादित सामाजिक न्याय का विचार उस समय की अनिवार्य आवश्यकता थी। जातिगत भेद–भाव, छुआ–छूत तथा सामाजिक दूरी सम्पूर्ण समाज की मानसिकता पर छाई हुयी थी। ऐसे समय में डॉ. अम्बेडकर हमारे सामने एक नवचारक के रुप में आते हैं।

सामान्य शब्दावली में हम नवचारक उसे कहते हैं जो किसी विचार को जन्म देता है, डॉ. अम्बेडकर ने जिस सामाजिक विचार को जन्म दिया वह तात्कालीन समाज के लिए नया विचार ही कहा जाता है। नवाचार के सिद्धान्त के विद्वान बार्नेट का कथन है "नवाचार की उत्पत्ति के कारण उस समाज की संस्कृति में निहित होते हैं।"

संस्कृति विचारों के संचय, विचारों के अदान–प्रदान प्रतिस्पर्धा, विचारों के संघर्ष और सामंजस्य से नये विचार को स्वयं जन्म देती है, इन सांस्कृतिक परिस्थितियों तथा अन्य निर्णायक कारकों के आधार पर नवाचार स्वयं ही प्रस्फुटित होता है।

बार्नेट के इस कथन का यह तात्पर्य नहीं है कि नवाचार के अधिवक्ता महत्वहीन होते हैं वास्तव में संस्कृति में निहित निर्णायक तत्वों के सामंजस्य की प्रक्रिया नवाचार के मस्तिष्क में ही सक्रिय होती है और इस प्रकार अनेक वर्षों में कोई ऐसा विचार जन्म लेता है जो सामाजिक बदलाव का पर्याय बनता है।

भारतीय समाज के इतिहास में जातीय असमानता का इतिहास जितना प्राचीन है उतना ही प्राचीन जातिप्रथा का विरोधी है, गौतम बुद्ध से लेकर मध्यकालीन भारत के कवियों और सामाजिक चिन्तकों ने जन्मगत असमानता

का विरोध अपने–अपने तरीके से किया।

डॉ. अम्बेडकर के विचारों की पृष्ठभूमि गौतम बुद्ध के चिन्तन से लेकर कबीर और रैदास तथा महात्मा ज्योतिबा फुले के विचारों से निर्मित हुयी है। ऐतिहासिक तथ्यों के विश्लेषण और वैचारिक धरातल की सभ्यता एक्त कथन को प्रमाणित करती है। भारतीय वैचारिकी के सूक्ष्म अध्ययन से यह बोध होता है कि भारतीय समाज में परस्पर विरोधी विचारधारायें सदैव अस्तित्व में रही हैं। जाति प्रथा के विरोध में उत्पन्न होने वाले विचारों में भी एक अन्तर विरोध बना रहा है। एक श्रेणी की विचार धारा हिन्दू धर्म को स्वीकार करते हुए जाति प्रथा का विरोध करती रही है।

डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक विचार को उक्त दोनों में से किस श्रेणी के अन्तर्गत देखा जा सकता है इस हेतु सामाजिक चिंतन का विश्लेषण करना आवश्यक होगा। सामाजिक न्याय, जातिप्रथा एवं हिन्दू दर्शन से सम्बन्धित डॉ. अम्बेडकर के विचार यह स्पष्ट करते है कि डॉ. अम्बेडकर हिन्दू धर्म के ग्रन्थों में उल्लिखित दोषों को हिन्दू धर्म का दोष माना और अपने विचारों के माध्यम से समाज को जागृत करने का कार्य किया। जाति प्रथा के सन्दर्भ में चर्चा करते हुये उन्होने लिखा है कि "जाति न तो श्रम विभाजन पर आधारित है और न ही प्राकृतिक क्षमताओं पर, जाति व्यवस्था जिन विषैले सिद्धान्तों पर अनसे कुण्ठाए जन्म लेती है।"

डॉ. अम्बेडकर इस मत से सहमत नही थे कि जाति व्यवस्था के सिद्धान्त मनु द्वारा प्रतिपादित हैं, वे सोचते थे कि कोई भी व्यक्ति कितना भी शक्तिशाली क्यों न हो वह जाति प्रथा का निर्माण नही कर सकता। उनका मानना था कि मनु पूर्व भी अस्तित्व में थी।

डॉ. अम्बेडकर के जाति व्यवस्था सम्बन्धी उक्त विचारों से यह स्पष्ट होता है कि वे हिन्दू धर्म की मान्यताओं को जाति की उत्पत्ति का मूल कारक मानते थे। उन्होने इस इस हिन्दू रुढ़िगत मान्यता का खण्डन किया कि जाति संगठन और संस्तरण शास्त्रों तथा स्मृतियों द्वारा निर्मित है। वे इस तथ्य भी इन्कार करते हैं कि जाति व्यवस्था का निर्माण ब्राह्मणों द्वारा हुआ। उनके कथनानुसार ब्राह्मण जाति प्रथा जैसी शैतानी–व्यवस्था को बढ़ावा देने के उत्तरदायी तो हो सकते है किन्तु जाति प्रथा के जनक नहीं है। हिन्दू पर परम्परागत सिद्धान्तो के साथ डॉ. अम्बेडकर आधुनिक मानव शास्त्रीय व्यवस्थाओं से भी असहमत थे जो जाति की उत्पत्ति के विभिन्न आधारों का विवेचन करती है। उनके मतानुसार भारतीय समाज के विभिन्न उन्मुक्त वर्गों ने स्वयं ही अपने आपको बंद वर्गों में कैद किया।

इस प्रकार डॉ. अम्बेडकर ने जाति व्यवस्था से सम्बन्धित अनेक धारणाओं और मान्यताओं का खण्डन करते हुए जाति प्रथा के दोषों को समाज के सामने रखा।

जातिप्रथा के समस्त दोषों और जाति व्यवस्था जन्य सामाजिक दुष्परिणामों से अवगत डॉ. अम्बेडकर का विरोध गांधीवादी की मध्यमार्गी विचारधारा से बढ़ता चला गया। आजादी के पश्चात डॉ. अम्बेडकर ने संविधान के माध्यम से और तथा कथित निम्नवर्गों के उत्थान का मार्ग प्रशस्त किया।

डॉ. अम्बेडकर ने आजाद भारत में दलितों के साथ किये जाने वाले अपमान जनक व्यवहार का अनुभव किया। हिन्दू धर्म में रहते हुए वे मान्यताओ का विरोध करते रहे किन्तु 14 अक्टूबर 1956 को अन्ततः उन्होने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया।

वर्तमान भारतीय समाज में जनसंख्या का एक महत्वपूर्ण भाग डॉ. अम्बेडकर ने के पद चिन्हों पर चलते हुए बौद्ध धर्म का अनुयायी है। डॉ. अम्बेडकर ने इस तरह दलित वर्गों में हिन्दू रुढ़िवादी के प्रति न केवल विराग पैदा किया अपितु उन्हें सद्मार्ग दिखलाया। डॉ. अम्बेडकर के चिन्तन की परिपूर्णता उनके बुद्ध दर्शन कि व्याख्या में दिखाई देती है। जिसमें उन्होंने त्रयी सिद्धान्त के मध्यकाल से सामाजिक क्रान्ति का शुभारम्भ किया। डॉ. अम्बेडकर ने ज्ञान, संगठन, भ्रातत्व तथा संघर्ष के माध्यम से भारत में मानववाद के नवीनतम सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

डॉ. अम्बेडकर के चिन्तन का आकर्षण और उसकी उग्रता आजादी के बाद के प्रारम्भिक वर्षों में उतनी मुखर

नही रही। सत्तर के दशक में दलित पेंथर नामक संगठन के द्वारा डॉ. अम्बेडकर के चिन्तन को अधिक उग्र रूप देकर समाज के समक्ष लाया गया। दलित पेन्थर आंदोलन तेजी से पनपा और धीरे–धीरे लुप्त भी होता चला गया। वर्तमान भारत की राजनीति में डॉ. अम्बेडकर के त्रयी सिद्धान्त के भ्रातत्व और ज्ञान के उपदेश को भुलाकर केवल संगठन शक्ति के आधार दलित उत्थान का मार्ग खोजने का प्रयास किया जा रहा है। तात्पर्य यह है कि डॉ. अम्बेडकर के विरोधी और अनुयायी अलग–अलग तरीकों से उनकी चिन्तनधारा का स्वरुप परिवर्तित कर रहे हैं। यदि डॉ. अम्बेडकर के चिन्तन के अनुरूप समाज का निर्माण होता है तब भारत को शक्तिशाली राष्ट्र बनने से रोका नही जा सकता।

संदर्भ संकेत

1. भटनागर डॉ. राजेन्द्र मोहन, डॉ. अम्बेडकर चिन्तन और विचार 2002, पृ0 1
2. Ogburn & Nimk off Sociology Eurasia pub. Delhi,1966, P. 584
3. Barnett H.G. Innovation Mc Graaw Hill Book Co. New yark.1953, P. 23
4. दूबे, लकी डॉ. भीमराव अम्बेडकर, मध्य प्रदेश, सन्देश, 10 अप्रैल 1891, पृ0 4
5. Limye Madhu Prime Movers Role of individuals in history. Ralient publishers, New Delhi, 1985, P. 194

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कोरोनाकाल में तथागत बुद्ध का नीतिशास्त्र

डॉ0 बृजेन्द्र सिंह बौद्ध
वरिष्ठ प्रवक्ता, अर्थशास्त्र
बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी

विश्व में भारत, चीन और मिश्र की संस्कृतियाँ अति प्राचीन मानी जाती है। किसी भी देश की भौतिक एवं अभौतिक उपलब्धियाँ संस्कृति की समग्रता का रूप होती है। किसी भी देश में यह जरूरी नहीं कि भौतिक एवं अभौतिक संस्कृति का अनुपात समान रूप से विकास हो। किसी देश में भौतिक संस्कृति का विकास अधिक हुआ हो, किसी में अभौतिक संस्कृति का। कहीं पर भौतिक संस्कृति अधिक तो अभौतिक कम। यही रूप दुनिया में देखने को मिलता है। आज हमें जरूरत है तथागत बुद्ध की नीति की जिसमें शील, समाधि, प्रज्ञा का समावेश कोरोनाकाल से संकटग्रस्त मानव के मस्तिष्क को शान्ति अर्थात् सुख की अनुमति प्राप्त हो सकती है। तथागत बुद्ध का बताया गया मध्यम मार्ग। मध्यम मार्ग पर चलकर हम इस संकट से बाहर निकल सकते है। पूरी दुनिया में तथागत बुद्ध का मध्यम मार्ग ही ऐसा मार्ग है जिससे मस्तिष्क के तनाव को दूर किया जाता है और मानव इस महामारी से लड़ने में सक्षम बन सकता है।

प्रस्तावना – भारत वर्ष कोई छोटा देश नहीं है। इसकी आयु कम नहीं है। इसका विस्तार विधितापूर्ण है। यह मानव जगत का समुद्र है। जिस प्रकार समुद्र की थाह लगाना, अवगाहन करना, इस पार से उस पार पहुँचना कठिन है, उसी प्रकार इस विषय पर विचार करना भी कठिन है लेकिन हमें एक बात का ध्यान रखना चाहिए। वह यह है कि लोग अपनी–अपनी तरह से 'संस्कृति' की पूरी व्याख्या कर लेते हैं। भारतीय संस्कृति पर शोध करने वाले आधुनिक शोधकर्ता क्या करते है वे ऋग्वेद से लेकर ब्राह्मणग्रन्थ, उपनिषद, धर्मसूत्र, स्मृति और अन्त में पुराण तक एक मार्ग निर्धारित कर लेते हैं। भारतीय संस्कृति पर शोध कार्य करने हेतु उनके लिए केवल यही रास्ता है क्योंकि मनु और सभी स्मृतिकारों ने कहा है कि दुनिया में जो भी ज्ञान है वह वेद से ही निकला है। जो संस्कृति वेदों के अनुकूल है, वही भारतीय है। इस वैदिक संस्कृति के विस्तार का मूल या हृदय–स्थल इस देश में प्रयुक्त जनभाषा पालि और प्राकृत रही है। पालि या प्राकृत कोई एक भाषा नहीं है। यह तत्कालीन अनेक जन भाषाओं के योग का परिणाम है। इन भाषाओं में जो कुछ लिखा गया है, उसे भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाला नहीं माना गया है। लेकिन संस्कृत साहित्य अल्प है। इसका विकास ब्राह्मणों व अन्य द्विजों ने पालि व प्राकृत को सुधार कर तथा इनका संस्कृतकरण किया।

संस्कृत का अर्थ क्या है ? इसका अर्थ है संस्कार किया हुआ, सुधारा हुआ, वही संस्कृत है। वैदिक भाषा में पालि और प्राकृत को ढालकर संस्कृत को एक विशिष्ट भाषा के रूप में जन्म दिया गया और इस प्रकार आम लोगों के लिये अध्ययन का रास्ता रोक दिया गया। संस्कृत को देववाणी या देव भाषा बताया गया है। इस भाषा में तो काव्य तक नहीं है। संस्कृत में जितने भी काव्य की गई है। रामायण मूल रूप से प्राकृत में था। लेकिन बाद में इसका संस्कृत में अनुवाद किया गया। संस्कृत के काव्यों में कवियों ने पालि व प्राकृत का गुणगान किया है। बाणभट्ट अपनी 'कादम्बरी' में शुरू के बीस श्लोकों की बात करते हुए कहते हैं ''मैं प्राकृत के कवियों का प्रसाद लेकर इसे बना रहा हूँ।'' इससे स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय संस्कृति को चारों ओर से काटकर अपने ढ़ंग से बना ली गई है। भाषा, साहित्य महाकाव्य, पुराण आदि इसी ढ़ंग से बनाए गए है।''[1] भारतीय संस्कृति को मखौल बना दिया गया है, विशाल समुद्र को छोटा–सा द्वीप बना दिया गया है। जबकि भारतीय संस्कृति का मूलभूत तत्व है, जीवन की अंतरगता अर्थात् अर्न्तजगत को देखना। एक बाह्म जगत है और एक व्यक्ति है जिसके भीतर भी

एक जगत है। कहते है कि भारतीय संस्कृति आध्यात्मिक है। यह आध्यात्मिक शब्द बड़ा भ्रामक है। भारत में सभी लोग आध्यात्मिक शब्द का अर्थ अपने–अपने ढ़ंग से करते हैं। भूत–प्रेत की पूजा करने वाले भूत–प्रेत को ही आध्यात्मिक कहते हैं। ईश्वरवादी, देववादी भी इसी को आध्यात्मिक कह देते हैं। हम सब संस्कारों से प्रभावित हैं और संस्कारों का अपना अलग–अलग इतिहास होता है। वैदिक के साथ ''संस्कृति'' शब्द नहीं लगना चाहिए। वैदिक धर्म कर्मकाण्डी धर्म था। ब्राह्मण धर्म के प्राचीन ग्रन्थों को आप देखेंगे कि उनके अध्याय के अध्याय इस चीज के प्रतिपादन से भरे पड़े हैं कि धर्म बिना मांस और हिंसा के सम्भव नहीं है। ''आश्वलायन कहते हैं कि ''न अमांसो मधुपर्को भवति'' (आ0स0) यहाँ तक कि जब कोई अतिथि आ जाए तो मधुपर्क देना हो या देवता को मधुपर्क देना हो तो उसे मांस रहित नहीं होना चाहिए। वेदों की जो धारा थी, उसमें भोग एवं आनन्द को भोग के रूप में स्वीकार किया गया था। बृहदारण्यक उपनिषद में यहाँ तक कहा गया है कि जब ब्रह्मविद्या में किसी को पाण्डित्य प्राप्त करना है तो उसे बैल और सांड का मांस खाना चाहिए। ''य इच्छेत्, पुत्रों में पण्डितो विगीतः समितिंगमः शुश्रूषितां वाचं भाष्ति जायेत, सर्वान् वेदान्, अनुब्रवीत, सर्वमायुरियादिति मांसौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयाताम् ईश्वरौ जनयितवा औक्षेण आर्षभेण वा'' (बृ, 6/4/18) अर्थात यदि किसी माता को यह इच्छा हो कि हमारा पुत्र ब्रह्मविद्या में पारंगत हो तो उस माता को अपने पुत्र के लिए क्या करना चाहिए ? तो कहते हैं कि उसको गौ मांस या अच्छा मांस खिलाना चाहिए। ब्रह्म विद्या में पाण्डित्य प्राप्त करने के लिए। ऋग्वेद में कहा जाता है कि ''स्वादिष्टया मदिष्टया पवस्थ सोमधारया इन्द्राय पातवे सुत;'' (ऋ.9/1/1)। अर्थात् इन्द्र को जब सोम दिया जाने लगता है, तब देवता, पुरोहित सभी की कामना जग उठती है, हम लोग सोम पान करें और उससे अमृत हो जाएं। (अपाम सोमं अमृता अभूम 8/48/83), इस प्रकार अमृत्व प्राप्त करना है तो हमें सोम रस एवं गोमांस तक खाना है।''[2] पुत्र पैदा करने के लिए भी यज्ञ (पुत्रेष्ठि यज्ञ) होता था। पुत्र का जन्म किसी और क्रिया से होता है, लेकिन इसके लिए यज्ञ सम्पन्न किए जाते थे। कहने का तात्पर्य यह है कि उस समय बहिरंगता का जोर था। लोगों को शूद्र, मलेच्छ, अनार्य बनाकर रखना, यह सब बहिरंगता है। शराब, मैथुन भोग यही बहिरंगता है। यहाँ तक कि इसके सारे देवता भी भोगी थे। इसके विरोध में तथागत भगवान बुद्ध ने आध्यात्मिकता की स्थापना की। उन्होंने कहा कि आध्यात्मिकता मनुष्य के मन से शुरू होती है। धर्म आन्तरिक होता है, बाह्य नहीं। इस प्रकार भोगवादी संस्कृति के स्थान पर त्यागवादी, आध्यात्मिक संस्कृति की स्थापना करने का श्रेय तथागत भगवान बुद्ध को है। वर्तमान में कोरोना के प्रभाव को कम करने में तथागत भगवान बुद्ध के पथ पर जाने की अतिआवश्यकता है। इसका कारगर इलाज अष्टागिंक मार्ग है।

सामाजिक क्षेत्र में तथागत बुद्ध का नीतिशास्त्र – मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। मनुष्य के समाज में नीतिशास्त्र में प्रदत्त नैतिक मूल्य ही ऐसी अवधारणा हैं, जो मनुष्य को पशुओं से अलग करते हैं। यथार्थ में मनुष्य के समाज के निर्माण में मूल्य महत्वपूर्ण एवं प्रभावकारी भूमिका का निर्वाह करते हैं। मनुष्य के जीवन में नैतिक मूल्य ही ऐसी अवधारणायें हैं, जो नैतिकता के मूल्यांकन के मुख्य आधार होते हैं। आज दुनियाभर में नैतिक मूल्य सर्वोपरि होने के कारण, इस महामारी से लड़ पा रहे है, नहीं तो अन्यथा की स्थिति स्वास्थ्य सुविधा तहस–नहस हो जाती है। आज हमारे डॉक्टर, नर्स, समस्त स्वास्थ्यकर्मी, कोरोना वारियर्स अपनी जान जोखिम में डालकर देश की सेवा कर रहे हैं। हमारे लोगों की जान बचा रहे हैं। यह नैतिक मूल्यों का परिणाम है। इन्हीं नैतिक मूल्यों की सहायता से मनुष्य शुभ–अशुभ, मंगल–अमंगल, नैतिक–अनैतिक, अच्छा–बुरा और सत्य–असत्य में भेद करता है। अगर मानव जाति में नैतिक मूल्यों का प्रादुर्भाव नहीं हुआ होता, उस स्थिति में मनुष्य और सभी जीव–जन्तु एक समान होते। समाज का आदर्श विकास इस बात पर भी निर्भर करता है कि उस समाज में मनुष्यों की नैतिक मूल्यों के प्रति कैसी और कितनी आस्था एवं मान्यता है ? और किस गति से वे लोग मूल्यों का अनुशीलन कर रहे हैं ? यदि उनकी आस्था, मान्यता और गति सकारात्मक है, तो निश्चित ही उस समाज का विकास आदर्श एवं तीव्र गति से होगा। यदि भारत के इतिहास का अवलोकन किया जाये, तो यह निश्चित रूप से कहा जा सकता

है कि भारत के आधुनिक समाज की अपेक्षा उपनिषद्–काल और श्रमण–काल में लोगों का नैतिक मूल्यों का ज्ञान, आस्था, मान्यता और उनके अनुशीलन की गति सकारात्मक थी, जिसके कारण से आज भी भारत की संस्कृति को विश्व में सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है और लोग उसकी भूरि–भूरि प्रशंसा करते हैं। आज भारत में सामाजिक क्षेत्र के अन्तर्गत नैतिक मूल्यों का पराभव तीव्र गति से हो रहा है। अपहरण, हत्याऐं, आत्महत्याऐं, लड़ाई–झगड़े जोरों पर हैं। चोरी, डकैती, जेबकतरी और उठाईगिरी का बोलवाला है। व्यभिचार, बलात्कार और अप्राकृतिक यौनाचार का बाजार बड़ा गर्म है। कुछ लोग व्यभिचार को व्यवसाय मानकर धन्धा कर रहे है। दहेज के लोभी बहुओं का शोषण, उत्पीड़न करते है और उन्हें जीवित जलाने में नहीं चूकते है। मारपीट तो आम बात सी हो गई है। बात–बात में झूठ बोलना, बकवास करना, अपशब्दों और गाली–गलौज का प्रयोग करना आज के समाज का फैशन बन गया है। नशे की लत ने समाज को बर्बाद करके रख दिया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक भारतीय समाज में नैतिक मूल्यों में कितनी गिरावट आई है। नैतिक मूल्यों के प्रति संवेदनशीलता लुप्त करने का एक कारण औद्योगीकरण, बढ़ती हुई बेरोजगारी और निर्धनता भी है। इनके कारण समाज में असमानता उत्पन्न होती जा रही है। वर्तमान में कोरोना महामारी के कारण भी इस तरह की समस्याओं का शीघ्र समाना करना पड़ेगा। ऐसी स्थिति में तथागत बुद्ध के मध्यम मार्ग पर चलने की जरूरत होगी। तथागत भगवान बुद्ध ने कहा है कि – ''यदि व्यक्ति सम्यक (कुशल) मार्ग का अनुसरण करें तो सुख और स्वतंत्रता उसकी होगी। यदि वह स्वार्थ को अपना मार्गदर्शक बनाए, इससे केवल पाप और मुसीबतें उसके सिर पर सवार होगी।'' इन मर्यादाओं के उल्लंघन से मनुष्य के सभी कर्म अकुशल कर्म हो जाते हैं और इन बातों से बचे रहने से वे कर्म कुशल–कर्म माने जाते हैं। इन दस अकुशल–कर्मों में तीन कुकर्मों का सम्बन्ध शरीर से है, चार कुकर्मों का वाणी से है और शेष तीन कुकर्मों का मन से है।

शरीर के तीन कुकर्म हैं – प्राणी हत्या, चोरी और व्यभिचार। वाणी के चार कुकर्म है – झूठ बोलना, कठोर बोलना, चुगलखोरी और बेकार बातचीत करना और इसी प्रकार मन के तीन कुकर्म हैं – ईर्ष्या, घृणा और अज्ञान।''[3] तथागत ने कहा है, यदि इन दोषों से मुक्त कोई आदमी पश्चाताप नहीं करता और आराम से रहता है, तो यह दुष्कर्म उसकी ओर ऐसे आगे बढ़ेंगे, जैसे पानी समुद्र की ओर आगे बढ़ता है। जब पहले की अपेक्षा समय बीतने पर पाप और अधिक प्रबल हो जाता है, तो पहले की अपेक्षा इसका परित्याग और कठिन हो जाता है। यदि किसी दुश्चरित्र आदमी को अपने अकुशल कर्मों का बोध हो जाता है और वह उन्हें त्याग देता है तथा शीलवान बन जाता है, तो उसके पापों का क्षय होने लगता है और एक दिन उनका विनाश हो जाता और ऐसे व्यक्ति पूर्ण बोधि प्राप्त कर लेते हैं। इसीलिए तथागत बुद्ध ने अपने अनुयायियों को मार्गदर्शन और मुक्ति के लिए दस शीलों की देशना की। जो निम्मवत् है –

1. हत्या नहीं करना, अपितु जीवन का सम्मान करना।
2. चोरी अथवा लूटपाट नहीं करना, अपितु सभी की सहायता करना कि वे अपने श्रम के फल का आनन्द ले सके।
3. अशुद्धता से दूर रहते हुए पवित्र जीवन व्यतीत करना।
4. झूठ नहीं बोलना, अपितु विवेक, निर्भयता और प्रेम के साथ सत्य बोलना।
5. बुरी बातें नहीं बनाना और उन्हें दुहराना भी नहीं, अपने मानव बंधुओं में खोट नहीं निकालना, अपितु उनके अच्छे पक्षों को देखते हुए उनके शत्रुओं से उनकी रक्षा करना।
6. अपशब्द नहीं बोलना, अपितु शालीन और गरिमापूर्ण वचनों का प्रयोग करना।
7. व्यर्थ बातों में समय नहीं गंवाना, अपितु सोद्देश्य बात करना अथवा मौन रहना।
8. लोभ नहीं करना और ईर्ष्या भी नहीं करना, अपितु दूसरों की सम्पत्ति पर हर्षित होना।
9. अपने ह्रदय में वैमनस्य नहीं रखना और घृणा नहीं पालना, शत्रुओं के विरूद्ध भी नहीं, अपितु समस्त जीवों को दयालुता के साथ गले लगाना।

10. अपने मन को अज्ञान से मुक्त रखना और सत्य की शिक्षा के प्रति उत्सुक रहना जिससे उस संशय और त्रुटि से बच सकें जो निर्वाण की ओर ले जाने वाले आर्य आष्टांगिक मार्ग के दर्शन में बाधा उत्पन्न करते हैं।

तथागत बुद्ध ने कहा – ''सब्बपापस्स अकरणं कुसलस्स उपसम्पदा।
सचित्तपरियोदपनं एतं बुद्धान सासनं।।''

अर्थात् ''समस्त बुराइयों से बचना, कुशल कर्मों को करना, पूर्ण मन का संयम और शुद्धता, बुद्ध का यही उपदेश है।''[4]

आर्थिक क्षेत्र में तथागत बुद्ध का नीतिशास्त्र – सामान्यतः देखा गया है कि जहाँ धन का बाहुल्य होता है, वहाँ नैतिक मूल्यों में शिथिलता एवं धुंधलापन आ जाता है। मनुष्य का भौतिक शरीर नैतिक एवं मानवीय मूल्यों की ओर अग्रसर होने के लिए साधन होता है। यदि शरीर (साधन) ही असहाय और शक्तिहीन हो गया, तो वह साध्यों की ओर किस प्रकार अग्रसर हो सकता है ? ''बुद्ध ने कभी भी गरीबी, दरिद्रता, भूख, अज्ञान का समर्थन नहीं किया है। बल्कि मानवी जीवन से इन दुखों का विनाश हो, समाज से गरीबी मिटे, समाज की भूख समाप्त हो, लोगों का अज्ञान दूर हो, उनकी दरिद्रता नष्ट हो इसी के लिए बुद्ध का सारा प्रयास था, यही उनके दर्शन की मूल प्रेरणा थी। क्योंकि उन्होंने ज्ञान की प्राप्ति के लिए जो तपश्चर्या और आत्म–पीड़न का अत्यन्त उग्र रूप अपनाया था। जिसके कारण उनके शरीर का बल जाता रहा, वे भूख तथा प्यास से परेशान थे, उनका मन थकावट के मारे एकाग्र और शांत नहीं था। इसलिए उन्होंने कहा था कि ऐसे आदमी को कभी नया ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। यह बुद्ध का अपना अनुभव था। बुद्ध ने यह कहीं नहीं कहा कि, भाग्यवान हैं वे लोग जो गरीब है। उन्होंने यह भी नहीं कहा कि जो पीड़ित हैं, उन्हें अपनी परिस्थिति बदलने के लिए प्रयास नहीं करना चाहिए। बल्कि उन्होंने वीर्य, उत्साहपूर्वक परिस्थिति को बदलने का प्रयास करने का उपदेश दिया है।''5 धन के अभाव में व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। तथागत बुद्ध को कहना पड़ा कि –

''जिघच्छा परमा रोगा संखारा परमा दुखा।
एवं ञत्वा यथाभूतं निब्बानं परमं सुखं।।

अर्थात् – ''भूख सबसे बड़ा रोग है, संस्कार सबसे बड़े दुख है, ऐसे यथार्थ (रूप से) जानकर निर्वाण सबसे बड़ा सुख है।''[6] इसी क्रम में तथागत ने कहा कि –

''आरोग्य परमा लाभा, सन्तुटिठ परमं धनं।
विस्सासपरमा ञाती, निब्बानं परमं सुखं।।

अर्थात् – ''निरोग होना परम लाभ है, सन्तोष परम धन है, विश्वास सबसे बड़ा बन्धु है। निर्वाण सबरने बड़ा सुख है।''[7]

तथागत बुद्ध ने धनियों के अधिक से अधिक धन इकट्ठा करने की प्रवृत्ति की निन्दा की है। उन्होंने राजा और धनियों के काम–भोग की धन–तृष्णा की निन्दा की है। तथागत बुद्ध स्वयं राजपाट का त्याग कर आए थे, इसलिए धन–सम्पत्ति से उन्हें किसी भी प्रकार का लोभ एवं मोह नहीं था। लेकिन बुद्ध के अनन्य भक्त श्रावस्ती निवासी अनाथपिण्डिक श्रेष्ठि अत्यन्त ही सम्पत्ति से सम्पन्न थे, लेकिन इतना होने पर भी वह धन एवं सम्पत्ति में लिप्त नहीं थे और वह सम्पत्ति को मानव–जीवन के साध्यों की प्राप्ति के लिए साधन मात्र मानते थे। जब मनुष्य का धन के प्रति इस प्रकार का सम्यक दृष्टिकोण होता है, उस अवस्था को आदर्श अवस्था कहा जाता है और उस अवस्था में नैतिक एवं मानवीय मूल्यों का सम्बर्द्धन होता है और मनुष्य उनका अनुशीलन करता हुआ साध्यों की प्राप्ति करता रहता है। ''वैदिक काल में गुरूकुलों को आज की भाँति राज्य से कोई निश्चित अनुदान प्राप्त नहीं होता था। उस समय राजा, महाराजा और समाज के धनीवर्ग के लोग इन गुरूकुलों को स्वेच्छा से भूमि, पशु अन्न, वस्त्र, पात्र, मुद्रा दान स्वरूप भेंट करते थे।''[8] इसलिए दान प्राप्त करने वालों में धन–सम्पत्ति, पशुओं और

दास–दासियों की परिग्रह करने की प्रवृत्ति बढ़ गई थी। उन्हें दान में प्राप्त वस्तुओं के प्रति काफी लोभ एवं मोह पैदा हो जाता था। श्रमण–संस्कृति के उदय के समय महावीर ने अनुभव किया कि ब्राह्मण ऋषियों एवं मुनियों के पतन के अनेक कारणों में से एक कारण उनमें धन–सम्पत्ति आदि के संग्रह की प्रवृत्ति थी। इसलिए महावीर ने अपने अनुयायियों से अपरिग्रह मूल्य के अनुशीलन का उपदेश दिया। तथागत बुद्ध ने तो धन–सम्पत्ति को इकट्ठा करने की प्रवृत्ति पर कहा कि धन संग्रह करना तालाब में पानी इकट्ठा करने जैसा है। तालाब का पानी मनुष्य के पीने योग्य नहीं होता है। तालाब के पानी में कीड़े पड़ जाते है। जब मनुष्य धन एवं सम्पत्ति को जीवन में साधन के स्थान पर साध्य मानने लगता है, उस समय नैतिक एवं मानवीय मूल्यों का अवमूल्यन होना आरम्भ हो जाता है। उस समय मनुष्य का उचित एवं अनुचित साधनों से धन कमाना केवल मात्र जीवन का सर्वोच्च साध्य हो जाता है। इसके लिए मनुष्य चोरी, डकैती, जुआ, रिश्वत, झूठ, हत्या, अपहरण, व्यभिचार जैसे पाप कर्म करने एवं कराने में भी नहीं चूकता है। जब मनुष्य के चित्र में धन के प्रति तृष्णा उत्पन्न हो जाती है, तो उसका चित्त नियंत्रण और संतुलन में नहीं रह पाता है। चित्त के असंतुलित होने पर मनुष्य बुरे से बुरा काम करने में नहीं चूकता है। सम्पत्ति के प्रति लोभ, मोह, राग होने से मनुष्य का नैतिक पतन आरम्भ हो जाता है, उस स्थिति में मूल्यों का अवमूल्यन एवं पराभव होना आवश्यक है। छोटे और बड़े कारखानों में नैतिक एवं मानवीय मूल्यों का पराभव बड़ी तीव्रगति से हो रहा है। व्यवसाय का अस्तित्व ही शोषण पर निर्भर करता है और जहाँ शोषण होता है, वहीं पूँजीपतियों और नौकरशाहों की मिलीभगत से भ्रष्टाचार अपने आप ही पनपने लगता है।

व्यक्तिगत सम्पत्ति के प्रश्न पर तथागत बुद्ध और आनन्द के बीच हुआ वार्तालाप अत्याधिक ज्ञानवर्धक है। जो आपके समक्ष प्रस्तुत है – आनन्द द्वारा एक प्रश्न पूछे जाने पर तथागत बुद्ध ने कहा –

आनन्द ! मैंने कहा है कि (वस्तुओं पर) अधिकार के कारण ही लोभ उत्पन्न होता है। यह कैसे होता है, इसे इस प्रकार से समझा जा सकता है।

''जहाँ किसी का किसी वस्तु पर कब्जा नहीं होता है तो क्या इस कब्जे के प्रति दुराग्रह के विरोध में कोई लोभ लालच प्रकट होता है।''

नहीं, भगवान् !

''इसलिए आनन्द बिल्कुल यही कारण, यही आधार है, यही कब्जा (स्वामित्व) ही सारे लोभ की उत्पत्ति है। मैंने कहा कि किसी वस्तु के लिये हठ करना ही कब्जे (अधिकार) का कारण होता है। वह कैसे ? आनन्द ! उसे इस ढ़ंग से समझना चाहिए। जहाँ किसी वस्तु के प्रति अधिकार भावना का दुराग्रह नहीं होता और जहाँ इस भावना का शमन हो जाता है, क्या वहाँ कब्जे का प्रकट होना सम्भव है ?''

नहीं भगवान् !

''अतः आनन्द यही कारण है, यही आधार है, यही कब्जे (स्वामित्व) की उत्पत्ति का कारण है। हठ का कारण है।''[9]

तथागत बुद्ध ने व्यक्तिगत सम्पत्ति के हेतु भिक्षुओं के लिए निश्चित नियम बताऐं। इन नियमों के अनुसार एक भिक्खु निम्नलिखित आठ वस्तुओं के अतिरिक्त व्यक्तिगत सम्पत्ति के रूप में अन्य कुछ भी नहीं रख सकता है। ये वस्तुएं हैं – ''चीवर, संघाटी, अन्वसिक, एक लुंगी (अन्तर्वास) के लिए बन्धन, एक भिक्खापात्र, एक उस्तरा, एक सुई, एक छन्नी।''[10] भिक्खु द्वारा सोना–चाँदी प्राप्त करने पर पूरी तरह से रोक इस भय से लगाई गई कि सोना–चाँदी से वह उपरोक्त आठ वस्तुओं के अलावा जिनको रखने का आदेश है, अन्य वस्तुएँ न खरीद ले। यह सत्य है कि भारत के लगभग सभी आर्थिक क्षेत्रों में नैतिक मूल्यों का पराभाव हुआ है। अगर पराभव ना हुआ होता तो इस महामारी काल में 12.5 करोड़ लोग बेरोजगार नहीं हुये होते। उत्तर प्रदेश में लगभग 36 लाख लोग पलायन करके अपने घरों को आये हैं। महामारी के कारण शहर छोड़कर गाँव को आये। भूखे–प्यासे लोगों ने हजारों किलोमीटर पैदल यात्रा करके घर वापसी की है। कई घटनाऐं रास्ते में हुई, कुछ लोगों की ट्रेन से कटकर मृत्यु

हुई, कई लोगों की वाहनों के टकराने से मृत्यु हुई। इस महामारी काल में असामयिक इन्सानों की मृत्यु हुई है, यही नैतिक पराभव है।

राजनीतिक क्षेत्र में तथागत बुद्ध का नीतिशास्त्र – तथागत बुद्ध गणतंत्र प्रणाली और उसके सिद्धान्तों से अत्यधिक प्रभावित थे। गणतंत्र प्रणाली आज की जनतांत्रिक शासन–प्रणाली से मिलती जुलती थी। जो विशेषताएं एवं गुण एक जनतांत्रिक शासन–प्रणाली में होती है, वे सभी बातें तथागत बुद्ध के व्यक्तित्व में थीं, इसलिए वे महान जनवादी व्यक्ति थे। जनतांत्रिक शासन–प्रणाली को सफल बनाने के लिए लोगों में जनतांत्रिक मूल्यों के प्रति आस्था होना आवश्यक है। किसी भी गणराज्य के अजेय होने के लिए सात बातें आवश्यक होती हैं – ''(1) राष्ट्रचालक संसद, सन्निपात बहुत से हो अर्थात् लोग बार–बार एकत्रित होकर काम का निर्णय करें, (2) एक साथ मिलकर बैठक करें और काम में लगें, (3) कानून का उल्लंघन न करें, (4) वृद्धों का सम्मान करें, उनकी बात सुने, (5) स्त्रियों पर जबरदस्ती न करें, (6) धर्म, धार्मिक भावों के लोगों का ख्याल रखें और (7) सत्पुरूषों की रक्षा का प्रबन्ध करें। समानता, स्वतंत्रता, बन्धुत्व, सामाजिक–न्याय और धर्म–निरपेक्षता आधुनिक जनतंत्र के आधारभूत सिद्धान्त माने जाते हैं। तथागत बुद्ध ने कहा – ''किसी भी विवाद के बारे में स्वयं संघ को ही निर्णय करना होगा। संघ को इकट्ठे होकर विचार करना चाहिए और जब तक किसी निर्णय पर न पहुँचा जाये, तब तक उस सम्बन्ध में अच्छी तरह ऊहा–पोह करनी चाहिए और बाद में उस निर्णय को स्वीकार करना चाहिए।'' इससे यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान भारतीय जनतंत्र की नींव प्राचीन गणतंत्र में पाई जाती है। प्राचीन काल की गणतंत्र प्रणाली नैतिक एवं मानवीय मूल्यों के अत्यधिक समीप थी। लेकिन आज की जनतंत्र प्रणाली में नैतिक और मानवीय मूल्यों का कोसों तक सम्बन्ध ा नजर नहीं आता है। सत्य तो यह है कि ''भारतीय जनतंत्र, धनतंत्र, गणतंत्र, कुर्सीतंत्र आदि में बदल गया है। जबकि भारतीय संविधान के अनुच्छेदों में समानता का अधिकार अनुच्छेद–14, धर्म मूलवंश, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर विभेद का प्रतिषेध अनुच्छेद–15, लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता अनुच्छेद–16, स्वतंत्रता का अधिकार अनुच्छेद–19, शिक्षा का अधिकार अनुच्छेद–21(क), शोषण के विरूद्ध अधि ाकार अनुच्छेद–23, धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार अनुच्छेद–25–26, संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार अल्पसंख्यकों हेतु अनुच्छेद 29–30; में आम लोगों हेतु प्रदत्त है।''[11] इन अधिकारों का सरकारों के द्वारा पालन सुनिश्चित नहीं हो पाया है। अपने–अपने हिसाब से अधिकारों का उपयोग एवं हनन आम बात है। यह भारत के नैतिक मूल्यों का ह्रास का परिणाम है।

शैक्षिक क्षेत्र में तथागत बुद्ध का नीतिशास्त्र – मनुष्य जब पैदा होता है, उस समय प्राकृतिक दृष्टि से उसमें और अन्य पशुओं में विशेष अन्तर नहीं पाया जाता। धीरे–धीरे बड़ा होता है, उस समय वह परोक्ष रूप से अपनी माँ और परिवेश से शिक्षा प्राप्त करता है और बड़ा होकर विद्यालय में प्रवेश लेकर औपचारिक शिखा ग्रहण करता है। इसके बाद स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय में प्रवेश लेकर औपचारिक शिक्षा ग्रहण करता है। वर्तमान समय में बालक अपने अध्यापकों के माध्यम से जो शिक्षा प्राप्त करता है, वह शिक्षा नैतिक मूल्यों के सम्वर्द्धन में विशेष भूमिका का निर्वहन नहीं कर पाती है। उसमें और नैतिक मूल्यों के अन्तर्गत उच्च कोटि का नकारात्मक सह–सम्बन्ध है। इस पर सरकार, शिक्षक और अभिभावक संवेदनशील नहीं है। जबकि उस समय में, शिक्षा और नैतिक मूल्यों का समावेश हुआ करता था। एक बार तथागत ने श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में एक देवता के द्वारा मंगल कर्मों के बारे में बताया। उस समय उन्होंने शिक्षा के बारे में कहा – ''शिष्ट होना, सुशिक्षित होना और सुभाषण करना – यह उत्तम मंगल है।''[12] तथागत बुद्ध का यहाँ पर सुशिक्षा का तात्पर्य यह शिक्षा है, जो नैतिक मूल्यों की पर्याय हो। महामंगल सुत्त में बुद्ध के द्वारा 38 नैतिक कर्मों का उल्लेख किया गया है, जो किसी न किसी नैतिक मूल्यों की ओर ले जाती है।

तथागत बुद्ध के द्वारा बताये गये उपाय –

(1) एक समय वैशाली में दुर्भिक्ष हुआ था और महामारी फैली थी। जैसी वर्तमान में कोरोना महामारी फैली

है। लोग कुत्तों की मौत मर रहे थे। मृत्यु का तांडव नृत्य हो रहा था। मृत्यु का ऐसा विकराल रूप तो लोगों ने कभी नहीं देखा था, न सुना था। सब उपाय किए गए थे, लेकिन सब उपाय हार गए थे। फिर कोई और मार्ग न देखकर लिच्छवी राजा राजग्रह जाकर भगवान को वैशाली लाए। भगवान की उपस्थिति में मृत्यु का नंगा नृत्य धीरे–धीरे शांत हो गया था – मृत्यु पर तो अमृत की ही विजय हो सकती है। फिर जल भी बरसा था, सूखे वृक्ष पुनः हरे हुए थे; फूल वर्षों से न लगे थे, फिर से लगे थे, फिर फल आने शुरू हुए थे। लोग अति प्रसन्न थे और भगवान ने जब वैशाली से विदा ली थी तो लोगों ने महोत्सव मनाया था, उनके हृदय आभार और अनुग्रह से गदगद थे और तब किसी भिक्षु ने भगवान से पूछा था – यह चमत्कार कैसे हुआ ? भगवान ने कहा था – भिक्षुओं, बात आज की नहीं है। बीज तो बहुत पुराना है, वृक्ष जरूर आज हुआ है। मैं पूर्वकाल में शंख नामक ब्राह्मण होकर प्रत्येक बुद्ध पुरूष के चैत्यों की पूजा किया करता था और यह जो कुछ हुआ है, उसी पूजा के विपाक से हुआ है। जो उस दिन किया था वह तो अल्प था, अत्यल्प था, लेकिन उसका ऐसा महान फल हुआ है। बीज तो होते भी छोटे ही हैं। पर उनसे पैदा हुए वृक्ष आकाश को छूने में समर्थ हो जाते हैं। थोड़ा सा त्याग भी, अल्पमात्र त्याग भी महासुख लाता है। थोड़ी सी पूजा भी, थोड़ा सा ध्यान भी जीवन में क्रांति बन जाता है और जीवन के सारे चमत्कार ध्यान के ही चमत्कार है। तब तथागत भगवान बुद्ध ने कहा –

''थोड़े सुख के परित्याग से यदि अधिक सुख का लाभ दिखाई दे वो धीरपुरूष अधिक सुख के ख्याल से अल्पसुख का त्याग कर दे।''

''दूसरों को दुख देकर जो अपने लिए सुख चाहता है, वह वैर में और वैर के चक्र में फंसा हुआ व्यक्ति कभी वैर से मुक्त नहीं होता।''

(2) तथागत बुद्ध ने कहा – ''हे परिव्राजकों ! ये दो अंत की बातें हैं जिससे प्राणी को सदा बचना चाहिए – एक ओर उन चीजों में संलग्न रहने की आदत से जिनका आकर्षण वासनाओं एवं मुख्यतः विषयासक्ति पर निर्भर करता है – यह संतुष्टि प्राप्त का निम्नकोटि का तथा विधर्मी मार्ग है, अयोग्य है, हानिकारक है तथा दूसरी ओर आदत के अनुसार इसका अभ्यास, तपश्चर्या अथवा काय–क्लेश जो दुखदायी है, अयोग्य है तथा हानिकारक है।''[14] इन दोनों सिरे की बातों से अलग एक मध्यम मार्ग है।

(3) चार आर्य सत्य – तथागत भगवान बुद्ध ने देखा था कि ''संसार में सभी दुःखी है – रोगी, रोग से दुखी है, वृद्ध, वृद्धावस्था से, मृतक, मृत्यु से, धनी, धन रक्षा की चिन्ता से और प्रेमी प्रेम को अविछिन्न बनाए रखने के प्रयत्न से। तथागत ने दुःख के मूल को समझा था। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे, कि दुःख भी के मूल में है। दुःख का कारण है, दुःख का निरोध है और उसके दूर करने का उपाय भी है। यही चार आर्य सत्य है'' चौथे आर्य सत्य में सत्य मार्ग है अर्थात् अष्टांगिक मार्ग है। जिस पर चलकर मनुष्य शान्ति को प्राप्त कर सकता है, अर्थात् दुःखों से मुक्त हो सकता है।

(4) आष्टांगिक मार्ग और योग – आष्टांगिक मार्ग के आठ अंग इस प्रकार है –

1.	सम्यक दृष्टि	प्रज्ञा (ज्ञान)
2.	सम्यक संकल्प	
3.	सम्यक वाणी	
4.	सम्यक कर्मान्त	शील (सदाचार)
5.	सम्यक आजीविका	
6.	सम्यक व्यायाम	
7.	सम्यक स्मृति	समाधि (योग)
8.	सम्यक समाधि	

इस कोरोनाकाल में प्रज्ञा, शील, समाधि के माध्यम से दुःखों से मुक्ति की ओर आगे बढ़ सकते है। योग के माध्यम से प्रतिदिन प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि कर सकते है। वर्तमान संकट से बचा जा सकता है।

निष्कर्ष : समाधि कलेशों को रोकती है, जैसे पर्वत नदियों के महावेग को रोकता है। समाधिस्थ होने पर दोष आक्रमण नहीं करते। सर एम. मोनियर विलियम्स अनुसार – समाधि (योग) चित्त की एकाग्रता है। परम पूज्य बाबा साहब डॉ0 बी.आर. आंबेडकर के अनुसार – खाली समाधि तो एक नकारात्मक स्थिति है, क्योंकि वह इतना ही तो करती है कि संयोजनों को अस्थायी तौर पर स्थगित रखे। इसमें मन स्थायी परिवर्तन निहित नहीं है। सम्यक समाधि एक भावात्मक वस्तु है। यह मन को, कुशल कर्मों का एकाग्रता के साथ चिन्तन करने का अभ्यास डालती है और इस प्रकार मन की, संयोजनोत्पन्न अकुशल कर्मों की ओर आकर्षित होने की प्रवृत्ति को ही समाप्त कर देती है। सम्यक समाधि मन को कुशल और हमेशा कुशल ही कुशल सोचने की आदत डाल देती है। सम्यक समाधि मन को वह अपेक्षित शक्ति देती है जिससे आदमी कल्याणरत रह सके।

सन्दर्भ संकेत

1. बौद्ध संस्कृति बनाम ब्राह्मणवाद, प्रो0 (डॉ0) जगन्नाथ उपाध्याय, सम्यक प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–31–33;
2. भगवान बुद्ध, बौद्ध धर्म और उनका दर्शन, प्रो0 (डॉ0) जगन्नाथ उपाध्याय, सम्यक प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–37;
3. बुद्ध धम्म का सार, प्रो0 पी0 लक्ष्मी नरसू, अनुवादक सत्यप्रकाश, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या– 49–50;
4. बुद्ध धम्म का स्वरूप, प्रो0 पी0 लक्ष्मी नरसू, सम्पादक–तारा राम, अनुवादक मोज़ेज माइकेल, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–153–154;
5. बौद्ध धर्म के विकास में डॉ0 बी.आर. अम्बेडकर का योगदान, डॉ. विमलकीर्ति, संगीता प्रकाशन, विश्वास नगर, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–253;
6. धम्मपद, गाथा और कथा, रचनाकार – ताराराम, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–403–404;
7. वही – पृष्ठ संख्या–404–405;
8. भारतीय शिक्षा का इतिहास एवं समस्यायें, रमन बिहारीलाल, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ, पृष्ठ संख्या–03;
9. बुद्ध और कार्ल मार्क्स, बाबा साहेब डॉ0 बी.आर. आंबेडकर अनुवादक शीलप्रिय बौद्ध, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–21;
10. वही – पृष्ठ–22;
11. भारत का संविधान, सिद्धार्थ बुक्स, शाहदरा, दिल्ली, पृष्ठ संख्या–03–07;
12. बुद्ध का नीतिशास्त्र, डॉ. धर्मकीर्ति, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–34;
13. एस धम्मो सनंतनो, भाग–दस, धम्मपद : बुद्ध–वाणी ओशे; पृष्ठ–03;
14. भगवान बुद्ध और उनका धम्म, बाबा साहेब डॉ0 बी.आर. आंबेडकर, अनुवादक डॉ0 भदंत आनन्द कौसल्यायन, सम्पादक आचार्य जुगल किशोर बौद्ध, सम्यक प्रकाशन, पृष्ठ संख्या–149;
15. अश्वघोषकालीन भारत, डॉ0 अँगनेलाल, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–114;

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

जाति भेद पर डॉ0 बी0 आर0 अम्बेडकर के विचार

बलवन्त कुमार प्रजापति
(शोधार्थी) राजनीति विज्ञान विभाग
टी0डी0पी0जी0 कॉलेज, जौनपुर

''हम कब तक इन विरोधाभासों से भरा जीवन जीते रहेगें? हम कब तक सामाजिक और आर्थिक जीवन में समानता को अपनाने से इन्कार करते रहेंगे?'' —डॉ0 बी0 आर0 अम्बेडकर

सामाजिक और आर्थिक समानता के प्रति उपर्युक्त आग्रह राजनीतिक समानता की सार्थकता पर गम्भीर चर्चा की मांग करती है। स्वतंत्र भारत के संविधान के शिल्पकार, आधुनिक मनु की संज्ञा से विभूषित, भारत रत्न बाबा साहेब डॉ0 बी0 आर0 अम्बेडकर ऐसी सख्शियत रहे हैं जिनसें हम सभी किसी न किसी रूप में अवश्य परिचित हैं। बाबा साहेब जीवन पर्यन्त जाति भेद की पीड़ा से संत्रस्त रहे और इससे मुक्ति का निरन्तर हर तरीके से और यथासम्भव प्रयास करते रहे। जाति भेद समाप्ति हेतु पहले तो उन्होंने सुधारात्मक आन्दोलनों का रास्ता अपनाया, फिर संवैधानिक संस्थाओं के माध्यम से इसकी प्राप्ति करना चाहा। हालांकि इसमें उन्हें सीमित सफलता ही मिली, क्योंकि भारत का संविधान जाति भेद समाप्ति के लक्ष्य को तो स्वीकार करता है (अनुच्छेद 17), परन्तु स्वयं जाति समाप्त करने के बाबा साहेब के लक्ष्य को नहीं स्वीकार करता (अनुच्छेद 15 : धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर विभेद का प्रतिशेध)। बहरहाल, जब जाति भेद की समाप्ति के लिए बाबा साहेब के मंशाानुरूप सांस्थानिक सुधारों पर सहमति नहीं बन पाई तब उन्होनें अन्ततः वो निर्णय लिया जिसका इतिहास में दूसरा उदाहरण मिलना मुश्किल है और वो था स्वयं हिन्दू धर्म को त्याग कर बौद्ध धर्म को अपना लेना। यानि मानव मात्र की जन्मना असमानता पे आधारित हिन्दू सामाजिक व्यवस्था को त्याग कर विवेक और तर्क के साथ मानवमात्र के समानता पर आधारित बौद्ध सामाजिक व्यवस्था को अपनाना।

प्रस्तुत पेपर जाति भेद पर डॉ0 अम्बेडकर के विचारों की विवेचना चार खण्डों में रखकर किये जाने का प्रस्ताव करती है। पहला खण्ड उस सामाजिक और शैक्षणिक परिवेश से संबंधित है जहां बाबा साहेब के जाति भेद पर उनके विचारों को ढलता हुआ देखा जा सकता है और जाति भेद समाप्ति के उनके सुझावों से भी संबंधित है। दूसरा खण्ड वर्ण, जाति और जाति भेद की संकल्पना पर बाबा साहेब द्वारा विश्लेषण से संबंधित है। यह खण्ड जाति भेद के विपक्ष में बाबा साहेब द्वारा प्रस्तुत तर्कों को शामिल करती है। तीसरा खण्ड जाति भेद की समाप्ति को लेकर डॉ0 अम्बेडकर के आमूल—परिवर्तनवादी सुझावों को शामिल करती है। चौथा खण्ड जाति भेद पर डॉ0 अम्बेडकर के विचारों का आलोचनात्मक मूल्यांकन से संबंधित है। यह खण्ड जहां एक तरफ इसी विषय पर महात्मा गांधी के साथ उनकी मत भिन्नता, स्वतंत्रता प्राप्ति के राष्ट्रीय आन्दोलन बनाम जाति भेद समाप्ति के प्रश्न पर बाबा साहेब के दृष्टिकोण पर चर्चा करती है, वहीं दूसरी तरफ यह खण्ड बाबा साहेब के जाति भेद के प्रश्न को सामाजिक न्याय के प्रश्न से जोडने में, उसे राजनीतिक मुद्दे में परिवर्तित करने में जिसकी परिणति आरक्षण के रूप में संवैधानिक गारंटी के रूप में हुई को रेखांकित करती है।

पहला खण्ड — जाति भेद पर डॉ0 अम्बेडकर के विचारों पर चर्चा से पूर्व उस सामाजिक—शैक्षणिक परिवेश पर चर्चा प्रासंगिक है जिसमें वे पले—बढे थे। उनका परिवार महात्मा बुद्ध, संत कबीर और महात्मा ज्योतिबा फूले की विचारधारा को आत्मसात करने वाला और उस पर आचरण करने वाला था। इसका प्रभाव डॉ0 अम्बेडकर पर पड़ना स्वाभाविक था। उनका मानवमात्र में समानता के सिद्धान्त पर विश्वास इसी प्रभाव से सम्भव हुआ था। उनके पिता के फौज में होने और आर्थिक स्थिति ठीक—ठाक होने के बावजूद भी हिन्दू समाज में उन्हें सम्मान नहीं मिलता

था। स्कूली जीवन में बाबा साहेब को इस स्थिति से दो–चार होना पड़ा था, कारण था उनकी जाति हैसियत। महार जाति जिससे वे संबंधित थे उसका कोई सामाजिक रूतबा नहीं था क्योंकि वह जाति बाह्य (आउट कास्ट) थी। अमेरिका के कोलंबिया विश्वविद्यालय से प्रथम भारतीय स्नातक का तमगा हाशिल करने और अपनी तमाम अर्जित योग्यताओं के बावजूद भी वे सामाजिक सम्मान हासिल नहीं कर सके क्योंकी उनकी जाति आउट कास्ट थी। यही वो परिवेश था जिसने बाबा साहेब को आमूल परिवर्तनवादी बना दिया जो जाति समाप्ति के विचार के रूप में सामने आया।

दूसरा खण्ड– वर्ण, जाति और अस्पृश्यता पर डॉ0 अम्बेडकर के विचार जाति या कास्ट का अभिप्रायः जाति समाज को वगीकृत करने का तरीका है। जाति भारतीय समाज की विशेषता है। 'जाति' की उत्पत्ति वर्ण–व्यवस्था से हुई। वैदिक काल में भारतीय समाज चार वर्णो में विभाजित था –ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। 'वर्ण' शब्द "वृञ्–वरणे" धातु से बना है जिसका अर्थ है– "जिसको वरण किया जाए" वह समुदाय। वर्ण व्यवस्था श्रम–विभाजन (यानि कर्म) पर आधरित थी। उत्तर–वैदिक काल (यानि ब्राह्मण–काल) में ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों के लिए विशेषाधिकारों का विधान किया गया और वर्ण का स्थान जाति ने लिया। जाति का निर्धारण जन्म से किया जाने जगा। वर्ग यानि क्लास भी समाज को वर्गीकृत करने का एक तरीका है। जाति का आधार जन्म है जबकि वर्ग का आधार व्यवसाय है। समकालीन शान्ति अध्ययन के अन्तर्गत जाति को संरचनात्मक हिंसा का एक उदाहरण बताया जाता है।

जाति भेद (कास्ट डिसक्रिमिनेशन) का अभिप्राय – जाति भेद का तात्पर्य समाज में व्यक्तियों के बीच उनकी जाति को आधार बनाकर भेद–भाव करना है। इस प्रकार जाति भेद जन्म के आधार पर व्यक्तियों को श्रेश्ठ या हीन मानता है। जाति भेद का चरम व निकृष्टम् रूप "अस्पृष्यता" के रूप में देखा जाता है जब केवल जाति के कारण समाज के कुछ सदस्यों को उनके मानवीय अस्तित्व/स्तर से नीचे गिरा दिया जाता है और उनके साथ सभी प्रकार के सम्पर्क यहाँ तक कि उनका स्पर्श करना भी निषिद्ध कर दिया जाता है। दार्शनिक दृष्टि से जाति भेद का विचार समानता के आदर्श के विरुद्ध है। यह प्रत्येक व्यक्ति को साध्य मानने के नैतिक नियम के विरुद्ध है।

वर्ण, जाति और अस्पृष्यता की उत्पत्ति का डॉ0 अम्बेडकर द्वारा विश्लेषण – डॉ0 अम्बेडकर ने वर्ण की उत्पत्ति के पराम्परागत सिद्धान्त का खण्डन किया है। इस सिद्धान्त के अन्तर्गत आदि पुरुष/बह्मा से वर्ण की उत्पत्ति हुई (पुरुष सूक्तः ऋग्वेद, 10 वॉ मण्डल)। आदि पुरुष के मुख से ब्राह्मण, भुजा से क्षत्रिय, उदर से वैश्य और पैर से शूद्र की उत्पत्ति हुई और इसी आधार पर वर्णो के कार्य भी निर्धारित हुए। डॉ0 अम्बेडकर का मानना था कि वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति श्रम विभाजन से हुई और सबसे शुरूआती दौर में केवल तीन वर्ण थे – ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य। ''शूद्र'' की उत्पत्ति ब्राह्मण–क्षत्रिय संघर्ष की देन है। जिन क्षत्रियों ने ब्राह्मणों की सर्वोच्चता को स्वीकार करने से इन्कार किया उन्हें ब्राह्मणों ने शूद्र का दर्जा दे दिया। सामाजिक–आर्थिक संदर्भों में उनके ऊपर अनेक बन्दिशे लगा दी गयी। परिणामस्वरूप उनकी स्थिति में लगातार नकारात्मक परिवर्तन होता गया।

कालान्तर में एक ही वर्ण अलग–अलग जातियों में बट गया। डॉ0 अम्बेडकर के अनुसार अस्पृश्यता की उत्पत्ति ब्राह्मण–बौद्ध संघर्ष के कारण हुई। बौद्ध धर्म द्वारा उत्पन्न चुनौती का सामना करने के लिए ब्राह्मणों ने भी अनेक नियम बनाए। हिन्दू समाज के जिन सदस्यों ने इन नियमों को मानने से इन्कार कर दिया उन्हें हिन्दू समाज से बहिष्कृत कर दिया गया। उनके साथ सारे सम्पर्क तोड़ लिये गये और कालान्तर वे अछूत या अस्पृष्य (पंचम वर्ण) के रूप में सामने आये।

जाति भेद के विपक्ष में डॉ0 अम्बेडकर के तर्क – डॉ0 अम्बेडकर जाति भेद के कटु विरोधी थे। उन्होंने इसकी अनेक कमियां बताया है –

(1) जाति भेद ने हिन्दू समाज का विघात किया है। हिन्दुओं में उस चेतना का सर्वथा अभाव है जिसे समाज विज्ञानी समग्र वर्ग की चेतना कहते है। एक तरह से यह उस इच्छा के निर्माण में, जिसे जीन जैक्स रूसो की "सामान्य इच्छा" कहा जा सकता है, में बाधक है। समाज का निर्माण तो तब होता है जब लोग एक–दूसरे से अन्तर्क्रिया करें जबकि जाति व्यवस्था इस अन्तर्क्रिया में बाधक है। जाति भेद के कारण हिन्दू समाज असंख्य टुकडों

में विभाजित हो गया और अन्ततः गुलाम हो गया।

(2) जाति भेद के कारण हिन्दू समाज की गतिशीलता समाप्त हो गयी। हिन्दू समाज एक बन्द समाज बन गया और इसका प्रसार नहीं हो पाया। एक समय तक हिन्दू धर्म मिशनरी धर्म रहा और जाति व्यवस्था के विकास के साथ ही इसका मिशनरी रूप जाता रहा। जाति का धर्मान्तरण से विरोध है। यदि मान भी लिया जाएं कि किसी दूसरे धर्म का व्यक्ति हिन्दू धर्म अपनाना चाहता है तो अगला प्रश्न यही है कि उसकी जाति क्या होगी ? यह एक ऐसा प्रश्न है जिससे ऐसा हर हिन्दू परेशान हो उठेगा जो अन्य धर्म के लोगों को अपने धर्म में लाने को इच्छुक है। इसलिए हिन्दू समाज में धर्म बदलकर आने वालों के लिए कोई स्थान नही है। जाति के कारण हिन्दुओं में उस भावनात्मक एकता का अभाव पाया जाता है जो किसी भी समाज के सांगठनिक एकता के लिए आवश्यक होता है।

(3) जाति प्रथा के कारण समाज में अस्थायित्व और तनाव पैदा होता है। जातीय हिंसा इसका एक रूप है। आज भी इसे जब–तक देखा जा सकता है। उना जैसी घटनाएं इसके हालिया उदाहरण हैं।

(4) जाति व्यवस्था की तरह ही वर्ण व्यवस्था भी अपमानजनक है। बाबा साहेब लिखते हैं कि "मैं मानता हूं कि गुण आधारित होने के बावजूद इस व्यवस्था के आदर्शों को मैं नहीं समझ पाया। पहली बात तो ये चातुर्वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत यदि एक व्यक्ति को उसके गुणों के आधार पर हिन्दू समाज में स्थान मिलता है तो मेरी समझ में नहीं आता कि आर्य समाजी इन पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र का लेबिल लगाने पर जोर क्यों देते हैं। किसी भी विद्वान को ब्राह्मण नाम दिये बगैर सम्मानित किया जा सकता है। बिना क्षत्रिय पुकारे ही किसी सिपाही को सम्मान दिया जा सकता है।"

(5) चातुर्वर्ण की कठिनाईयॉ – जाति व्यवस्था का अस्तित्व ही इस बात का प्रमाण है कि समाज का चार निश्चित श्रेणियों में विभाजन असम्भव है। मनुष्यों के स्वभाव और गुणों में भिन्नता के कारण उनके गुणों के उपयोग की दृष्टि से वर्गों की घेराबन्दी नितान्त अनुपयोगी है। एक प्रतिभा सम्पन्न व योग्य व्यक्ति अपने जीवन में बहुमुखी प्रतिभा व योग्यता का प्रदर्शन कर सकता है और कई तरह के कार्यों का सम्पादन कर सकता है, अतः एक वर्ग की घेराबन्दी व्यक्ति के बहुमुखी प्रतिभा का हनन करने वाली व्यवस्था है।

मानव स्वभाव के विपरित होने से ही वर्ण व्यववथा के समर्थकों ने इसे सफलतापूर्वक चलाने के लिए दण्ड की व्यवस्था की। कई हिन्दू धर्मशास्त्रों में वर्ण व्यवस्था या जाति व्यवस्था को वैधता प्रदान किया गया है। वर्ण व्यवस्था और जाति व्यवस्था को ईश्वरीय विधान से जोड़ा गया है।

चातुर्वर्ण व्यवस्था में स्त्री की स्थिति पर गौर नहीं किया गया। एक स्त्री की प्रास्थिति का निर्धारण कैसे होगा? क्या उन्हें भी चातुर्वर्ण में बांटा जाएगा या फिर अपने पति की सामाजिक स्थिति प्रदान किया जाएगा। यदि उन्हें अपने पति की सामाजिक स्थिति मिलेगी तो फिर गुणों पर आधारित वर्णों के नियमों का क्या होगा? यदि गुणों पर आधारित प्रास्थिति मिलेगी तो फिर वह किस तरह की होगी? क्या वह वाास्तविक होगी या फिर नाममात्र की। इस तरह से वर्ण व्यवस्था के सर्मथकों को यह मानना पड़ेगा कि इस व्यवस्था में स्त्री के लिए प्रावधान नहीं है।

(6) जाति भेद के कारण निम्न जातियों का शोषण होता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों ने मिलकर शूद्रों को दबाए रखना तय किया। शूद्रों को उनकी जाति के लिए निर्धारित व्यवसाय को अपनाना पड़ता है और उन पर अनेक अपात्रताएं लाद दी जाती हैं। जाति भेद अपने विभिन्न आयामों में सामने आता है जैसे– उन्हें शिक्षा ग्रहण करने से रोका गया, सम्पत्ति जोड़ने से रोका गया, यह सोचकर की कहीं शूद्र चातुर्वर्ण व्यवस्था के विरूद्ध विद्रोह न कर बैठें उन्हें अस्त्र–शस्त्र रखने पर पाबन्दी लगाई गई, सार्वजनिक तालाबों और कुओं की उपयोग की मनाही, मन्दिर में प्रवेश को लेकर पाबन्दियॉं, किसी राजकीय पद पर नियुक्ति नहीं, पृथक आवासीय क्षेत्र, शूद्रों के जीवन का कोई मूल्य नहीं आदि। बाबा साहेब लिखते हैं कि भारत वर्श के अन्धकार व पराजय का काल वह समय है जब देश की जनता के एक बड़े हिस्से को बर्बाद करने वाली चातुर्वर्ण व्यवस्था का चतुर्दिक विकास हुआ।

(7) जाति भेद स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्व और न्याय जैसे आदर्शों के विरूद्ध है।

(8) जाति व्यवस्था व्यक्ति के गरिमा के सिद्धान्त का उल्लघंन है। जाति भेद के कारण व्यक्ति को उसकी

योग्यता के बजाए जन्म के कारण श्रेष्ठ या हीन माना जाता है।

(9) जाति व्यवस्था ''अस्पृष्यता'' के उदय के लिए भी जिम्मेदार है। डॉ0 अम्बेडकर लिखते हैं कि ''जाति वाह्य'' की संकल्पना तार्किक रूप से तभी प्रासंगिक है जब समाज में जाति का सिद्धान्त प्रचलित हो। एक जाति विहीन समाज में जाति वाह्य अस्पृश्य का विचार भी प्रासंगिक नहीं है। उनके शब्दों में ''जातिवाह्य जाति व्यवस्था का ही उपोत्पाद है।''

बाबा साहेब ने न केवल जाति भेद के विरोध में तर्क दिये बल्कि जातीय श्रेष्ठता का समर्थन करने वाले तर्कों का खण्डन भी किया। ऐसे दो प्रमुख तर्क थे – आर्थिक तर्क और जीवशास्त्रीय तर्क। आर्थिक तर्क के आधार पर माना जाता था कि वर्ण व्यवस्था और जाति व्यवस्था के द्वारा परम्परागत पैतृक कौशल का हस्तान्तरण पीढ़ी–दर–पीढ़ी होता था और प्रत्येक व्यक्ति कोई न कोई हुनर (स्किल) या व्यवसाय सीख लेता था। डॉ0 अम्बेडकर ने आर्थिक तर्क को गलत माना। वे लिखते हैं कि इस व्यवस्था में श्रम का विभाजन व्यक्ति के स्वाभाविक अभिवृत्ति (नेचुरल एप्टीट्यूड) पर आधारित नहीं है। यह आर्थिक स्वतंत्रता के विरूद्ध है।

जीवशास्त्रीय तर्क के तहत भारत में वर्ण व्यवस्था के समर्थक वर्ण की तुलना नस्ल से करते थे और जीव वैज्ञानिक दृष्टि से नस्लीय शुद्धता को बनाये रखने के लिए वर्ण भेद का समर्थन करते थे। डॉ0 अम्बेडकर लिखते हैं कि वर्ण की तुलना नस्ल से नहीं की जा सकती। यह कहना उचित नहीं है कि जाति व्यवस्था का विकास नस्लीय शुद्धता बनाये रखने के लिए हुआ। ऐतिहासिक तथ्य यह है कि जातियों के अस्तित्व के पहले ही भारतीय लोगों के रक्त व संस्कृति में विदेशी तत्व घुलमिल चुके थे। भारत में सभी वर्ण मिश्रित वर्ण हैं क्योंकि हजारों सालों तक समाज में सहमिलन की प्रक्रिया चलती रही। जाति व्यवस्था विभिन्न जाति के लोगों के बीच अन्तर्विवाह की मनाही करती है। यह लोगों के अपने पसन्द के जीवनसाथी चुनने की स्वतंत्रता का दमन करती है। इसने हिन्दू समाज को पूरी तरह से असंगठित और अनैतिक व्यवस्था में बदल दिया है।

तीसरा खण्ड : जाति भेद की समाप्ति – डॉ0 अम्बेडकर की कृति 'एनीहिलेशन ऑफ कास्ट' (1936) की मूल विषय वस्तु जाति व्यवस्था का उन्मूलन करके एक जाति विहीन समाज की स्थापना करना है। बाबा साहेब ने जाति भेद की समाप्ति के लिए सुधारवादी रूख अपनाने की बजाए आमूल परिवर्तनवादी रूख अपनाया। महात्मा गांधी से अलग विचार रखते हुए बाबा साहेब यह मानते हैं कि चूंकि जाति भेद जाति व्यवस्था का अनिवार्य परिणाम है, अतः जाति भेद की समाप्ति जाति व्यवस्था का उन्मूलन करके ही सम्भव है। इसके लिए उन्होंने अनेक सुझाव दिये–

(1) डॉ0 अम्बेडकर के अनुसार जाति व्यवस्था की जड़ें हिन्दू धर्म ग्रन्थों में है। इससे जाति व्यवस्था को बौद्धिक समर्थन मिलता है, अतः जाति भेद को समाप्त करने के लिए हिन्दू धर्मशास्त्रों की मूल मान्यताओं से विद्रोह करना होगा। उन्होंने हिन्दू धार्मिक व्यवस्था और ब्राह्मणवादी सामाजिक व्यवस्था को तोड़ने के लिए कई बातों पर बल दिया –
   (अ) हिन्दू धर्म का केवल एक मानक ग्रन्थ हो और उसकी व्याख्या तार्किक आधार पर की जाये जो सभी हिन्दुओं द्वारा मान्य व स्वीकार हो। इसके अतिरिक्त जो दूसरे धर्मग्रन्थों के सिद्धान्तों, नियमों आदि का प्रचार करना दण्डनीय अपराध घोषित किया जाय।
   (ब) धार्मिक व्यक्तियों जैसे पुरोहित, पुजारी और शंकराचार्य के पद समाप्त किये जाए। यदि रहे भी तो फिर इसका आधार वंशानुगत न होकर राज्य द्वारा ली जाने वाली प्रतियोगिता परीक्षा हो।
   (स) धार्मिक व्यक्तियों को राज्य के कर्मचारी माना जाय। राज्य के द्वारा इन्हें वेतन दिया जाय और कर्तव्य की अवहेलना करने पर उनके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही किया जाय।
   (द) प्रमाणित सक्षमता के आधार पर ये पद सभी व्यक्तियों के लिए खुले हों।

   इन उपायों के द्वारा बाबा साहेब वर्ण व्यवस्था में निहित पवित्रता (होलिनेस) की धारण पर चोट करना चाहते थे।
(2) डॉ0 अम्बेडकर जाति व्यवस्था को तोड़ने के लिए अन्तर्जातीय विवाह को बढ़ावा देना चाहते थे।
(3) अन्तर्जातीय खान–पान और सामाजिक समागम पर बल दिया जाए।

(4) बाबा साहेब निम्न जातियों और अछूतों को आत्म सम्मान के साथ रहने की सलाह देते हैं। उन्हें नए हुनर और व्यवसाय सीखने की सलाह देते हैं। उन्हें पराम्परागत निकृष्ट व्यवसाय को छोड़ने और स्वच्छता से रहने पर बल देते हैं।

(5) डॉ0 अम्बेडकर ने आर्थिक प्रजातंत्र अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति की उत्पादन के साधनों तक पहुँच को निम्न जातियों के उत्थान के लिए आवश्यक माना।

(6) अन्य उपाय –

(अ) शिक्षा व्यवस्था पर ब्राह्मणों का एकाधिकार समाप्त कर उसे सर्वव्यापी बनाया जाय।

(ब) अस्त्र–शस्त्रों एवं सेना में भर्ती से सम्बन्धित मामलों पर क्षत्रियों का एकाधिकार समाप्त किया जाए। भर्ती योग्यतानुसार हो।

(स) सभी वर्गों व जातियों के लोगों को समान रूप स चुनाव लड़ने व मत देने का समान अवसर प्रदान किया जाए।

(द) एक नयी सामाजिक व्यवस्था के निर्माण का प्रयास किया जाए जो स्वतंत्रता, समानता एंव भ्रातृत्व भी मूल और उदात्त भावना पर आधारित हो।

(य) वैज्ञानिक मनोवृत्ति को प्रोत्साहन दिया जाय।

(र) औद्योगीकरण एवं शहरीकरण को बढावा दिया जाए।

डॉ0 अम्बेडकर लिखते हैं कि मेरी राय में यदि हिन्दू समाज वर्ण रहित, जाति रहित समाज हो जाये तो इसमें अपनी रक्षा के लिए पर्याप्त बल आ जायेगा। बिना ऐसे आन्तरिक बल के हिन्दुओं के लिए स्वराज मात्र गुलामी की दिशा में एक ओर कदम है।

खण्ड चार : जाति भेद पर डॉ0 अम्बेडकर के विचारों की समीक्षा – जाति भेद पर उपर्युक्त वर्णित डॉ0 अम्बेडकर के विचारों से यह स्पष्ट है कि वे चातुर्वर्ण व्यवस्था का तीव्र प्रतिवाद करते हैं और जाति व्यवस्था की उत्पत्ति उसी से मानते हैं और इस तरह वर्ण व्यवस्था को व्यापक तार्किक आधार देने वाली मनुस्मृति की तीव्र भर्त्सना करते हैं। फिर भी वे कुछ अक्षेपों से बच नही सकते। पहला आपेक्ष यही है कि डॉ0 अम्बेडकर ने जाति विहीन समाज का लक्ष्य रखा जिसे भारतीय सन्दर्भ में एक अयथार्थवादी विचार कहा जा सकता है। बाबा साहेब स्वयं इस तथ्य से परिचित थे कि भारत में जाति विहीन समाज का निर्माण करना एक कपोल कल्पना है। यही कारण है कि जब संविधान निर्माण का समय आया तो संविधान निर्माता के रूप में उन्होंने अपने स्वप्नलोकीय विचारों को छोड दिया और जाति विहीन समाज बनाने के बजाय जाति व्यवस्था में सुधार पर बल दिया।

दूसरा आक्षेप, जाति भेद समाप्ति पर गांधीजी का विचार है। गांधीजी के अनुसार जन्म पर आधारित वर्ण वयवस्था को बनाये रखते हुए भी अगर सभी वर्णों के कार्यों को समान आदर और महत्व दिया जाये तो जाति भेद समाप्त किया जा सकता है। इसके लिए जाति उन्मूलन एक मात्र समाधान नहीं है। गांधीजी के अनुसार अस्पृष्यता का वर्ण व्यवस्था से सीधा और अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है बल्कि वाह्य विकृति है इसलिए, वर्ण व्यवस्था को समाप्त करने के बजाय इसमें रचनात्मक सुधार की आवश्यकता है। गांधीजी के अनुसार हिन्दू धर्मशास्त्र छुआ–छूत का सर्मथन नहीं करते, अतः धर्मशास्त्रों की मूल मान्यताओं से विद्रोह करना ठीक नहीं है।

तीसरा आक्षेप, राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति बाबा साहेब के दृष्टिकोण पर है। अनेक आलोचकों के अनुसार जाति भेद के प्रश्न को बाबा साहेब ने इतना महत्व दिया कि स्वतंत्रता प्राप्ति के राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान उनका दृष्टिकोण हमेशा संकीर्ण रहा। उन्होंने जाति के प्रश्न पर साम्राज्यवादी शासकों से भी समझौता कर लिया। बाबा साहेब जाति का विश्लेषण करते हुए इस सीमा तक आगे निकल गये कि उन्होंने एक विध्वंशकारी की भूमिका अपना ली और समूची हिन्दू सामाजिक व्यवस्था को उखाड़ फेंकने का सुझाव दिया। उन्होंने अछूतों को हिन्दुओं से अलग मानते हुए उनके लिए पृथक निर्वाचन मण्डल की मांग की। इस सन्दर्भ में जाति भेद समाप्ति बनाम राष्ट्रीय

स्वाधीनता के प्रश्न पर बाबा साहेब का गांधीजी के साथ मतभेद खुलकर सामने आया। बाबा साहेब के अनुसार अस्पृष्यता का कलंक विदेशी दासता की तुलना में अधिक गम्भीर है। जब तक समाज का एक बड़ा वर्ग सामान्य मानवीय अधिकारों से वंचित है तब तक राजनीतिक स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं है।

जाति भेद पर डॉ0 अम्बेडकर के विचारों पर लगे आक्षेपों के बावजूद इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि उन्होंने जाति भेद के प्रश्न को सामाजिक न्याय के प्रश्न से जोड़ने में सफल हुए और जातिगत शोषण को नागरिक अधिकारों का उल्लंघन कहा। इस प्रकार बाबा साहेब ने जाति भेद के प्रश्न को एक राजनीतिक मुद्दा बना दिया और दलितों से संबंधित मुद्दों को एक आन्दोलन का रूप दे दिया और आरक्षण एवं विशेष सुविधाओं की मांग को लेकर दलितों के हित में एक नया पक्ष प्रस्तुत किया था। यह बात भी उल्लेखनीय है कि गांधीजी से अलग विचार अपनाते हुए बाबा साहेब ने जाति भेद के विरोध में भावनात्मक तर्क देने की बजाय सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक तर्क दिये जो अधिक यथार्थवादी है। जाति भेद के विरोध में दिये गये उनके तर्क अत्यंन्त सारगर्भित हैं। बाबा साहेब के दर्शन का सबसे मौलिक पक्ष वह है जहाँ पर उन्होंने जाति व्यवस्था की जड़ पर कुठारघात करने का सुझाव दिया है। बाबा साहेब उस ''पवित्रता'' की भावना को उखाड़ फेकना चाहते थे जो इसे बौद्धिक समर्थन देती है। इसी बिन्दु पर बाबा साहेब अपने पूर्ववर्ती विचारकों जैसे – श्री नारायण गुरू और ज्योतिबा फूले से अधिक मौलिक और प्रगतिशील हैं।

संदर्भ संकेत

1. अम्बेडकर, बी0 आर0 (1987), राइटिंग्स एण्ड स्पिचेज, बम्बई : महाराष्ट्र सरकार प्रकाशन, वाल्यूम : 1 और 3,
2. अम्बेडकर, बी0 आर0 (1988), कांग्रेस और गांधी ने अछूतों के लिए क्या किया ?, (अनुवादक) जगन्नाथ कुरीन, लखनऊ : समता साहित्य प्रकाशन
3. अम्बेडकर, बी0 आर0 (2007), एनीहिलेशन ऑफ कास्ट, नई दिल्ली : क्रिटिकल क्वेस्ट, 1936 संस्करण
4. अम्बेडकर, बी0 आर0 (2017), हू वेयर दि शूद्राज?, दिल्ली : कल्पाज पब्लिकेशन, 1946 संस्करण
5. गाबा, ओम प्रकाश (1999), भारतीय राजनीति विचारक, नोएडा : मयूर पेपर बैक्स
6. गाबा, ओम प्रकाश (2010), राजनीति–चिन्तन की रूपरेखा, नोएडा : मयूर पेपर बैक्स
7. जिलयोट, इलीनोर (1992), फ्रॉम अनटचेबल टू दलित : एस्सेस ऑन दि अम्बेडकर मूवमेंट, नई दिल्ली : मनोहर प्रेस
8. दास, भगवान (1998), बाबा साहेब डॉ0 भीमराव अम्बेडकर : एक परिचय एक संन्देश, लखनऊ : दलित लिबरेशन टूडे प्रकाशन
9. यादव, गीता (2018), भारतीय राजनीतिक एवं सामाजिक समस्याएँ, नई दिल्ली : इम्पायर बुक्स इन्टरनेशनल
10. यादव, वीरेन्द्र सिंह (संपा0) (2011), समतामूलक समाज एवं सामाजिक परिवर्तन के युगपुरुष : डॉ0 भीमराव अम्बेडकर, नई दिल्ली : ओमेगा प्रकाशन
11. रोड्रिग्ज, बेलेरियन (संपा0) (2002), दी इसेंशियल राइटिंग्स ऑफ बी0आर0 अम्बेडकर, नई दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
12. रोड्रिग्ज, बेलेरियन (2008), बी. आर. अम्बेडकर, इन इग्नू, आधुनिक भारत में सामाजिक और राजनीतिक चिन्तन, नई दिल्ली : इग्नू
13. लिमये, मधु (2002), बाबा साहेब अम्बेडकर – एक चिन्तन, दिल्ली : आत्मराम एण्ड संस
14. शास्त्री, धर्मवीर (1990), डॉ0 भीमराव अम्बेडकर और दलित आन्दोलन, दिल्लीः शेष साहित्य प्रकाशन
15. सिंह, आर0जी0 (2002), डॉ0 अम्बेडकर के सामाजिक विचार, भोपाल : मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
16. सिंह, मोहन (2008), डॉ0 अम्बेडकर : व्यक्तित्व के कुछ पहलू, इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, चतुर्थ संस्करण,
17. सिंह, रघुवीर (2000), डॉ0 अम्बेडकर और दलित चेतना, दिल्ली : कामना प्रकाशन
18. सूचना एंव जन सम्पर्क विभाग, उ0प्र0 (1993), डॉ0 बाबा साहेब अम्बेडकर : लेख एवं भाषण, लखनऊ

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

टैगोर और गांधी के शिक्षा सम्बन्धी विचार

डॉ0 कमलेश सिंह
6ए, कटरा रोड, इलाहाबाद–211002

शिक्षा एक शास्वत जीवन प्रक्रिया है शिक्षा ही मानव के सर्वांग्रीण विकास की कसौटी है। अतः सच्ची शिक्षा वही है जिसमें भौतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और सामाजिक उद्देश्यों में सामंजस्य और समन्वय स्थापति हो तथा जो विद्यार्थियों को चरित्र वान, श्रमवान बनाने के साथ स्वालम्बी बनने की प्रेरणा दे।[1] किन्तु वर्तमान शिक्षा–संस्थायें और विश्वविद्यालय बुद्धिजीवियों की एक फौज तैयार करते हैं, जिनका पूरा ध्यान अपने अस्तित्व को सँवारने पर केन्द्रित रहता है। यह हमकों, अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली की देन है। भारत में शिक्षा–दीक्षा की एक प्राचीन समृद्ध परंपरा रही है, जो आज विलुप्त–प्राय हो जाने पर भी हमारी स्मृति में सुरक्षित है। उन गुरूकुलों या आश्रमों में प्रवेश लेते ही विद्यार्थियों में राजा–रंक का भेद मिट जाया करता था। अनन्य साधिका महादेवी[2] वर्मा ने विक्रमशिला विश्वविद्यालय का दीक्षान्त भाषण देते हुए कहा था कि तत्कालीन अनुष्ठान ऐसी संधि–बेला थी, जिसमें शिष्य की परीक्षा समाप्त और गुरू की परीक्षा का आरंभ होता था। इसी से स्नातक अपने आचार्य कुल से ही पहचाना जाता था। उनकी शिष्य परंपरा समाज को गतिरूद्ध करने वाली रूढियों को खण्ड–खण्ड करने का संकल्प लेकर कार्य क्षेत्र में प्रवेश करती थी। ''सा विद्या या विमुक्तये'' अथार्त् विद्या वही है, जो हमकों मुक्त करें। किसी प्रकार लाग–लपेट न हो, ऊपर से संघर्षों में विचार में, सबसे कोई भ्रम न हो, सत्य को हम बोल सकें।

राष्ट्र की परतंत्रता के साथ इन आदर्शों में जो स्खलन आया उसका आभास गोस्वामी तुलसीदास द्वारा वर्णित तत्कालीन सामाजिक एवं शैक्षिणक परिवेश में पाया जा सकता है। उन्होंने गुरू की परिभाषा दी है–

''हरे शिष्य धन शोक न हरई।
सो गुरू घोर नरक मह परई।।''

अर्थात जो गुरू शिष्य का धन को हरता है, उससे शुल्क लेता है, उसका शोक नहीं हरता, वह घोर नकर में पड़ता है। गुरू का कर्तव्य है कि वह ऐसा ज्ञान दे जो विद्यार्थी का शोक दूर करें, संघर्ष में शक्ति और प्रेरणा दे, किन्तु वर्तमान में इस प्रवृत्ति में ह्रास दिखाई देता है। दार्शनिक जे. कृष्णमूर्ति के शब्दों में कहें तो यह कह सकते है कि वह हमें समग्र मनुष्य बनाती, चाहे एक डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक, प्रबन्धक या विशेषज्ञ बनाये। हमारी वर्तमान शिक्षा–प्रणाली की सबसे सबसे बड़ी कमी यह है कि वह विशिष्ट वर्गवादी है। इससे पढ़े लिखें लोगों के मध्य गहराई पैदा हुई है। आज छात्रों के बीच व्याप्त असंतोष, अनुशासन हीनता, ऊच्छृखंलता और अशिष्टता के लिए मानसिक शिक्षा पद्धित ही उत्तरदायी है। आज सम्पूर्ण शिक्षा–प्रणाली, परीक्षा–प्रणाली, मूल्याँकन पद्धति में दोष आ गये हैं जो छात्र में वर्तमान श्रम और असुरक्षा की भावना के लिए जिम्मेदार हैं, जिसमें छात्रों में असंतोष व बेचैनी होती है।[3] शिक्षा प्रणाली में व्याप्त विसंगतियों के कारण ही हम संविधान के अनुच्छेद 45 में वर्णित प्रावधानों को प्राप्त करने में बुरी तरह असफल हुए हैं। आचार्य विनोवाभावे ने एक बार कहा था कि– ''मैं मानता हूँ कि सरकार बदलती है तो झंडा बदलता है, सो शिक्षा बदलनी चाहिए।''[4] परन्तु अनेक शिक्षा समितियों की सिफारिशों के बावजूद क्या हम शिक्षा में गुणात्मक परिवर्तन पाये हैं?वर्तमान भारतीय शिक्षा का यह दुर्भाग्य रहा है कि शिक्षा में परिवर्तन की आवाज नक्कारखाने में तूती की आवाज साबित हुई। आज आवश्यकता है, शिक्षा मे गुणात्मक परिवर्तन की शिक्षा–व्यवस्था को मजबूत करने की।

उपर्युक्त चर्चा से स्पष्ट है कि वर्तमान शिक्षा–प्रणाली में अमूल परिवर्तन की आवश्यकता है। इसके लिए हम

विदेशी विद्धानों एवं सिद्धान्तों की तरफ सख्त करना पड़ेगा। टैगोर तथा गांधी के शिक्षा सम्बन्धी विचारों को आधुनिक सन्दर्भों में विवेचित करना पड़ेगा। इस लिए टैगोर तथा गाँधी के शिक्षा सम्बन्धी विचारों में चर्चा की अति–आवश्यकता है।

टैगोर एक महान कवि, सुधारक तथा सामाजिक और राजनैतिक चिन्तक होने के अतिरिक्त एक महान शिक्षा–विद् थे, शिक्षा एक ऐसा विषय है जिसका क्षेत्र केवल किसी राष्ट्र–विशेष तक सीमित नहीं होता। शिक्षा का महत्व सार्वभौमिक है और इसका सीधा सम्बन्ध मुनष्य के मस्तिष्क और हृदय से है। शिक्षा व्यक्ति के गरिमा की पोषक तथा मानवता के आत्मिक पक्ष की परिचायक है। शिक्षा के ही द्वारा यह किसी व्यक्ति या समाज की अति या अवनति पहचान सकते हैं। कोई देश कितना स्वतंत्र है, इसका अन्दाजा इसी बात से लग सकता है कि उस देश के लोग शिक्षित है कि नहीं और अगर साधारण अर्थ में शिक्षित है भी तो वास्तव में वे मानव संस्कृति के वाहक के रूप में अपने को प्रस्तुत कर सकते हैं कि नहीं। टैगोर अपने काव्यात्मक अर्न्तमुखी प्रतिभा के कारण सहज ही शिक्षा के प्रश्न को अत्यन्त महत्वपूर्ण मानते थे और इसकी विषद् व्याख्या इन्होंने की है।[5]

टैगोर के शिक्षा सम्बंधी विचारों का श्री गणेश 1892 से माना जाता है। इसी वर्ष इन्होंने 'शिक्षार हेर फेर' नामक पुस्तक लिखकर समकालीन शिक्षा प्रणाली के दोषों की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया। सन् 1901 में उन्होंने 'शान्ति निकेतन' नामक विद्यालय की स्थापना की और नयी शिक्षा पद्धति की नीवं डाली। 1921 में 'विश्व–भारती' विश्वविद्यालय की नींव पड़ी और आज यह विश्वविद्यालय देश में ही नहीं विदेशों में भी प्रसिद्ध है। टैगोर ने इस तथ्य को अत्यन्त निकट से महसूस किया कि विद्यालय प्रणाली (जो उस जमाने में प्रचलित थी) छात्रों को समाज और प्रकृति से पृथक करती है तथा असामान्य स्कूली वातावरण तैयार करती है। अतः उन्होंने शांतिनिकेतन में एक विद्यालय खोलने का निर्णय लिया। जिसका उद्देश्य शिक्षा को एक प्रभावशाली औजार बनाना तथा आनन्दायक अनुभवों में परिणत करना था। टैगोर ने शिक्षण संस्थाओं की ग्रामीण–पद्धित पर जोर दिया जो कि प्राचीन काल की तपोवन शिक्षा का ही एक रूप था। उन्होंने एक तर्क प्रस्तुत किया कि जीवन खुले आकाश के नीचे धरती के अन्तस्थल में बच्चों के शरीर और मन दोनों के लिए लाभकारी है।

टैगोर ने यह भी महसूस किया है कि कम से कम विकासशील बच्चों के लिए बनावटी शहरी वातावरण, जो मूल्यों के प्रति दूश्चिता का परिणाम हैं, शत्रु के समान है। यह आध्यात्मिक वृद्धि में बाधक हैं। उन्होंने सोचा कि इस प्रकार की खुली हवा में बच्चों को पढ़ाया जाना प्रकृति के साथ गहरे सम्पर्क को बढ़ावा देना है तथा शिक्षा को अनौपचारिकता प्रदान कर उसे ज्यादा आनंदायक बनाना। सबसे बढ़कर तो यह शिक्षा को सस्ता बनाता है। टैगोर चाहते थे कि स्कूलों में कुछ ऐसा प्रावधान हो जिससे नैतिक चरित्र का निर्माण करने में मदद् मिले।

टैगारे यह भी चाहते थे कि शिक्षण की प्रक्रिया में कुछ सुधार हो तथा इसको इस ढंग से साकार किया जाए कि यह ज्यादा आनंददायक और रूचिकर हो। इस संस्थाओं की आवश्यकता को महसूस किया जहाँ शिक्षक छात्र साथ–साथ रह सकें तथा अपने बीच वैयक्तिक संबंध स्थापित कर सकें। टैगोर ने ब्रह्चर्य व्यवस्था को फिर से बहाल करना चाहा ताकि छात्रो को अनुशासन की शिक्षा दी जा सके और शिक्षा के लिए आधार तैयार किया जाए। टैगोर की योजना में अनुशासन और आवासीय प्रणाली एक दूसरे के पूरक है। अतः दोनों को साथ–साथ चलना चाहिए। उन्होंने यह अनुभव किया कि नैतिक शिक्षा को तभी आत्मसात् किया जा सकता है जब साथ रह रहे शिक्षकों का भी नैतिक चरित्र उच्च हो।

उन्होंने यह भी अनुभव किया कि जीवन में निर्माण काल में छात्रों को जीवन साधारण परेशानियों के बारे में नहीं बताया जाना चाहिए। क्योंकि, निम्न चरित्र वाले व्यक्तियों के क्रिया कलाप उनके मस्तिष्क पर अपरिपक्व इच्छा जागृत हो सकती है। इसमें छात्रों को ऐसी शिक्षा देने पर बल दिया जो उनमें आन्तरिक बल उत्पन्न करे ताकि वे बाद के जीवन में दूसरों के अशोभनीय क्रिया–कलापों का सामना करने में समर्थ हो सकें।

टैगोर ने शिक्षण संस्थाओं को चलाने में छात्रों की सक्रिय भागीदारी का खुलकर पक्ष लिया। यह सक्रिय भागीदारी छात्रों की अधिशेष ऊर्जा की निकासी एवं उनके चरित्र के बहुमुखी विकास में सहायक हो सकती है। परिसर में एक स्वस्थ और सुन्दर वातावरण का निर्माण करने में योगदान देकर उन्होंने सक्रिय भागीदारी का आनंद महसूस किया। इसमें एक सौन्द्रर्याभूति भी विकसित होती है। छात्रावास चलाने की जिम्मेदारी छात्रों में अपनापन का भाव और जिम्मेदारी का अहसास कराती है तथा संस्थान की सेवा के लिए सहयोगात्मक प्रयास अपनाना भी सीखाती है। विद्यालय शिक्षा के इन आदर्शों को साकार करने के लिए टैगोर ने शांतिनिकेतन में ब्रह्चर्य आश्रम की स्थापना की। इसी शांतिनिकेतन को कालांतर में विश्वविद्यालय परिणत कर दिया गया। जहॉ तक शिक्षा के उद्देश्य का प्रश्न है टैगोर ने उन्नत विचार दिये। टैगारे के शिक्षा सम्बन्धी मन्तव्यों को निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है–

1. मनुष्य के संपूर्ण प्रकृति को सुस्पष्ट बनाना।
2. छात्रों को अपने आपकों अभिव्यक्त करने में समर्थ बनाना।

टैगोर ने सोचा कि इसे एक ऐसा शिक्षा प्रणाली द्वारा प्राप्त किया जा सकता है, जहॉ छात्रों को भावों, पंक्तियों में वर्णित विचार ध्वनि तथा शरीर के क्रिया–कलापों द्वारा व्यक्त करने का अवसर मिलता हो। जैसे–चित्रकला, संगीत और नृत्य द्वारा।

ललित कला का प्रशिक्षण न सिर्फ भावात्मक क्षमता को विकसित करता है बल्कि छात्रों को शब्दों के अतिरिक्त अन्य माध्यम के द्वारा भी अभिव्यक्ति अर्जित करने में मदद करता है। शिक्षा की उपयोगिता सिर्फ तथ्यों को एकत्र करना मात्र ही नहीं बल्कि मनुष्य को समझना तथा खुद को दूसरे मनुष्य के समझने योग्य बनाना है। अतः टैगोर ने ललित कला को विद्यालयों और महाविद्यालयों में विज्ञान तथा मानविकी विषयों के समकक्ष ही मान्यता पर जोर दिया। टैगोर ने ललित कला और संगीत को राष्ट्रीय अभिव्यक्ति का सबसे बड़ा स्रोत माना जिसके बिना लोग अंधेर में रहते हैं।

3. छात्रों को इस लायक बना सके कि खुद ज्ञान की उत्पत्ति कर सके जो कि शिक्षण संस्थाओं का प्रमुख कार्य है। साथ–साथ इन संस्थाओं का अन्य कार्य है ज्ञान का वितरण। इस सक्रिय झुकाव (प्रवृत्ति) के साथ इस विशिष्टता के लिए छात्रों को संपर्क में लाया जाना चाहिए ताकि उनकी सक्रिय प्रतिभा का विकास हो सके।
4. स्थानीय लोगों की सामाजिक आर्थिक समस्याओं के लिए ज्ञान के प्रयोग को निश्चित बनाना।

इसके लिए उन्होंने कहा कि शिक्षण संस्थाओं को स्थानीय लोगों की सामाजिक आर्थिक प्रगित से स्वाभाविक रूप से जुड़ा होना चाहिए। ये सभी प्रमुख बाते थी जिनका उपयोग टैगोर ने विश्वभारती विश्वविद्यालय को साकार बनाने में किया।

टैगोर के इन सब विचारों को व्यावहारिक रूप देना सम्भवतः आसान कार्य नहीं है किन्तु उनके द्वारा प्रणीत आदर्शों को शिक्षा के क्षेत्र में लाना महत्वपूर्ण है, यह बात टैगोर ने स्वयं भी कहीं है। वे कहते है कि शिक्षा का महत्व सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना के अलावा और कुछ नहीं हो सकता और जो वास्तव में सांस्कृतिक मूल्य हैं वे शाश्वत् हैं उनको राष्ट्रवाद को संकीर्ण सीमाओं में कैद करके नहीं रखा जा सकता।[8] स्पष्ट है कि उनकी शिक्षा सम्बन्धी मान्यताएं उनकी विशद् आस्थाओं पर आधारित है।

शिक्षा के सम्बन्ध में गाँधी का दृष्टिकोण बुनियादी रूप से राष्ट्रीय था। वे शिक्षा पद्धति में राष्ट्रीयता के प्रमुख पक्षधर थे। उनके विचार में अंग्रेजी शिक्षा पद्धति का उद्देश्य ऐसे शिक्षित वर्ग को तैयार करना था जो केवल अंग्रेजी की सेवा कर सके। गाँधी जी के अनुसार ''इस शिक्षा पद्धति ने लगभग उन सभी बातों की उपेक्षा की जो भारत को अपने शिक्षा क्षेत्र के अनुभव से प्राप्त हुई थी। जैसे पर्यावरण बच्चों की समरूपता विद्यार्थी और शिक्षक का

सम्बंध, जनता के साथ मेल–जोल और भारतीय संस्कृति से प्रेम। यह एक विडम्बना है कि गाँधी जी ने अंग्रेजी शिक्षा पद्धति से जिन सामाजिक और सांस्कृतिक खतरों की पूर्व कल्पना की थी कमोवेश वही खतरे हमारी वर्तमान शिक्षा पद्धित से उत्पन्न हो गये है।''[9]

गाँधी जी व्यक्ति को केवल साक्षर कर देने में ही शिक्षा की सार्थकता नहीं मानते थे बल्कि वे एक ऐसी शिक्षा पद्धित के पक्ष में थे जो व्यक्ति में बुद्धि और आत्मा का विकास कर सके। उसमें कथनी और करनी में एक होने की प्रेरणा जगा सके। उसे आत्मनिर्भर बनाने के साथ–साथ उसे निर्भय भी बना सके।

गाँधी जी ने प्रारम्भिक शिक्षा को बुनियादी शिक्षा मानते हुए उसे एक सहज और स्वाभाविक वातावरण का एक विस्तार मानते थे। वह बच्चों को बुनियादी अच्छाई में विश्वास करते थे। वह यह भी मानते थे कि शिक्षा का रूवरूप बच्चों की संस्कृति के सहज और उत्तरोत्तर विकास के अनुसार ही होना चाहिए। गाँधी जी की प्रारम्भिक शिक्षा खेले के वातावरण में शुरू होती है इसमें बच्चों की आजादी का ध्यान रखा जाता है और वह बाल केंद्रित होती है।[10]

बच्चों को निःशुल्क शिक्षा के बारे में भी गाँधी जी के विचार नितान्त मौलिक हैं। वे मानते थे कि बुनियादी शिक्षा मुक्त और अनिवार्य होनी चाहिए। निःशुल्क शिक्षा से उनका आशय, सरकार द्वारा उस अधिकतम सहायता करने के अपने अनुभव से मिलती है। बच्चों को अपनी शिक्षा का पूरा या थोड़ा खर्च उठाने के लिए काम करना चाहिए। गाँधी जी ने कहा था, ''मै कल्पना कर सकता हूँ कि स्कूल अपना खर्च खुद पूरा करे अगर अपने चारों ओर के वातावरण के अनुसार खर्च खुद पूरा करें अगर अपने चारों ओर के वातावरण के अनुसार बच्चों को व्यवासायिक शिक्षा दी जाय तो वे स्कूल में अपने ऊपर होने वाले खर्च को पूरा कर सकेगें। साथ ही आगे चलकर वे अपनी जिन्दगी में भी इसका उपयोग कर सकेगें।''[11]

गाँधी जी का विचार था कि बुनियादी शिक्षा से जुड़ा व्यावसायिक अनुभव विद्यार्थी को शिक्षा का साधन और जीविका का स्रोत दोनों बन सकता है। क्योंकि वे सदैव यह मानते थे कि स्वतंत्र रहने के लिए दूसरों की दया या सहायता के बजाय प्रत्येक आदमी व समाज को आत्म निर्भर होना चाहिए। गाँधी जी का विचार था कि जब तक सभी शिक्षा संस्थानों में सभी स्तरों पर कुछ न कुछ व्यावसायिक प्रशिक्षण शुरू नहीं किया जाता तब तक 'श्रम व रोटी' की अवधारणा को कार्यान्वित नहीं किया जा सकता। वस्तुतः बच्चों की आरम्भिक शिक्षा के बारे में गाँधी जी ने बिल्कुल भिन्न दृष्टिकोण अपनाने का सुझाव दिया था। उन्होंने कहा था कि मै जो रूप रेखा बना रहा हूँ उससे साहित्य का प्रशिक्षण अलग नहीं है, इसमें व्यावसायिक प्रशिक्षण है जो स्कूल में अधिकांश समय में दिया जाएगा। साथ ही बच्चों को मौखिक रूप से आरम्भिक इतिहास, भूगोल, गणित, शिष्टाचार भी सिखाया जायेगा। जब वे इतना सीख जाएंगे तब वे अपने घर में भी इस शिक्षा का उपयोग कर सकेगें और मौन क्रांतिकारी बन जायेगें।

प्रचलित शिक्षा में शारीरिक एवं आध्यात्मिक विकास की उपेक्षा की गयी। केवल मस्तिष्क का शिक्षित करने का प्रयत्न था गाँधी जी इससे असहमत थे उनके मतानुसार पाठय्क्रम ऐसा नहीं होना चाहिए जिसमें केवल बौद्धिक विकास हो। यदि पाठय्क्रम में किसी क्राफ्ट का केन्द्रीय स्थान दिया जाय तो प्रचलित शिक्षा के दोष दूर हो सकते है। अतः उन्होंने क्रिया प्रधान पाठय्क्रम की नींव बनायी। क्राफ्ट कोई भी हो सकता है भारतीय समाज की दृष्टि से कृषि, कताई–बुनाई, गत्ते का कार्य, लकड़ी का काम, धातु का काम आदि में से क्राफ्ट को चुना जा सकता है। पाठ्यक्रम में मातृभाषा को प्रमुख स्थान देना चाहिए। गणित, सामाजिक अध्ययन, ड्राइंग, तथा संगीत भी पाठ्यक्रम में अवश्य होने चाहिए। सामान्य विज्ञान को भी रखा गया है। सामान्य विज्ञान के साथ–साथ नक्षत्र ज्ञान के सामान्य तत्व भी निहित थे। कहने का आशय यह है कि गाँधी जी का पाठ्यक्रम भी बेसिक एवं लघु माध्यमिक स्तर तक सीमित है। गाँधी जी शिक्षण प्रक्रिया में एक ऐसा सुधार चाहते थे जिससे छात्रों एवं आध्यापकों के बीच खाई कम हो इसलिए मुख्य परिवर्तन थे–

1. शिक्षण का माध्यम मातृभाषा,
2. शिक्षण पुस्तकीय न होकर क्राफ्ट केन्द्रित हो,
3. वह शिल्प के द्वारा बालकों को गीता में वर्णित निष्काम कर्मयोग के महत्व से परिचित कराना चाहते थे।[12]

जिस प्रकार गाँधी जी ने राजनीति, सामाजिक क्षेत्रों में ख्याति अर्जित की उसी प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण उपलब्धि प्राप्त की। यह बात अलग है कि उनके सामाजिक, राजनैतिक प्रभामंडल में शिक्षा का क्षेत्र दब जाता है। उन्होनें शिक्षा के उद्देश्य के रूप में वैयक्तिक एवं सामाजिक दोनों प्रकार के उद्देश्यों का प्रतिपादन किया है। व्यक्ति और समाज एक दूसरे के पूरक है, न कि विरोधी। वे बालकों में नैतिक गुणों का विकास करना चाहते थे। साक्षरता अपने आप में शिक्षा नहीं है। बच्चें का शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, विकास ही शिक्षा है। जीवन में श्रम का अत्यधिक महत्व है। शिक्षा शिल्प केन्द्रित होनी चाहिए। विद्यालय में इस प्रकार का वातावरण होना चाहिए कि बालक प्रयोग कर सके। उपर्युक्त सभी विचार प्रगतिशील है। इनमें मनोवैज्ञानिक गुट है। दर्शन सम्मतता भी इसमें है। गाँधी जी ग्रामीण भारत की नाड़ी पहचान गये थे। भारत गाँवों में बसा है और किसी भी शिक्षा पद्धति की सफलता यहाँ पर ग्रामीण शिक्षा के परिणामों पर ही निर्भर है। भारतीय समाज के लिए उन्होंने बेसिक शिक्षा को सर्वोत्तम शिक्षा कहा है किन्तु बेंसिक शिक्षा के महान स्तम्भ डॉ0 जाकि हुसैन के शब्दों में, ''जिस प्रकार से राज्यों में बेसिक शिक्षा व्यवहार में लायी गयी है वह प्रवंचना मात्र रही हैं। गाँधी जी के शिक्षा सम्बन्धी विचार कोरी कल्पना मात्र नहीं है उनके विचार शिक्षा सम्बंधी प्रयोगों पर आधारित हैं। गाँधी जी जब अफ्रीका में थे तब सत्याग्रह आंदोलन चलाने के लिए उन्होंने जोहांसबर्ग से कुछ मील दूर पर एक फार्म किराये पर ले लिया था। इस टालस्टॉय फार्म में सत्याग्रही सपिरवार रहते थे जिसमें हिन्दू, मुसलमान, पारसी आदि सभी थे। इन सत्याग्रहियों के बच्चों को पढ़ाने के लिए एक स्कूल खोला गया। गाँधी जी स्वयं इन बच्चों को पढ़ाते थे। शिक्ष मातृभाषा द्वारा दी जाती थी। पुस्तकों का सहारा बहुत कम लिया जाता था। इस तरह हम देख सकते हैं कि गाँधी जी कि शिक्षा सम्बंधी विचार उनके स्वयं के अनुभवों पर आधारित है। अक्टूबर 1937 में वर्धा में नवीन शिक्षा पर विचार करने के लिए शिक्षा शास्त्रियों का एक 'अखिल भारतीय सम्मेलन' आयोजित किया गया। इस सम्मेलन के सभापति गाँधी जी थे। सम्मेलन में कुछ प्रस्ताव रखे गये जो बेसिक शिक्षा के मूल भूत सिद्धान्त हैं –

1. प्रथम सात वर्ष तक देश के सभी बच्चों को अनिवार्य निःशुल्क शिक्षा दी जाए,
2. शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा को रखी जाए
3. बच्चे की सम्पूर्ण शिक्षा का केन्द्र कोइ शिल्प हाथ का काम हो,
4. सम्मेलन यह आशा करता है कि शिक्षा की इस प्रणाली से शनैः शनैः शिक्षकों का वेतन भी निकल आयेगा।

इन्हीं आधार भूत नियमों पर भारतीय शिक्षा की बुनियाद खड़ी हुई है जिसे गाँधी जी 'नई तालीम' या 'बुनियादी शिक्षा' कहते थे। इस शिक्षा को और भी कई नामों से पुकारा जाता है। जैसे– वर्धा योजना, आधारभूत शिक्षा, नेशनल एजूकेशन, मौलिक शिक्षा, बेसिक एजूकेशन अथार्त है एक पर विभिन्न नामों से पुकारते है।

वास्तव में गाँधी जी के शिक्षा सम्बंधी विचार आज भी उतने ही प्रासंगिक है। जितने उनके समय में थे उनके शिक्षा दर्शन के सम्बन्ध में महान शिक्षा शास्त्री जान डयूई ने लिखा है गाँधी वादी शिक्षा पद्धति सभी पद्वतियों से एकदम आगे है उसमे भरपूर शक्ति की सम्भावनाएँ है। गाँधी जी अपने स्वभाव, विचार तथा कर्म में पूर्णतः राष्ट्रवादी थे। उन्होने 'वसुधैव कुटुम्बकम के सिद्वान्त का अनुसरण किया था तथा अपने राश्ट्र प्रेम की भावना को कभी भी संकुचित नही होने दिया। उनके लिये राष्ट्र प्रेम मां के दूध की भांति ही सहज रूप से जीवनदायी भाव था। गांधी जी यह मानते थे कि व्यक्ति को गांव सम्प्रदाय देश के व्यक्तित्व से एक कर देना चाहिये। उनका राष्ट्रवाद आत्म त्याग के एवं सेवा के दृढ़ आधारों पर आधारित था। गांधी जी का विचार था कि राष्ट्रवाद के अभाव में अन्तर्राष्ट्रवाद का होना पूर्णत असम्भव है। इसलिये ही उन्होने कहा था कि मेरी राष्ट्रीयता गहरी अन्तर्राष्ट्रीयता है।

गांधी ने परामर्श दिया कि विश्व के समस्त स्वतन्त्र राष्ट्रों की सहायता से विश्व सरकार का निर्माण किया जाय जो सत्य और अहिंसा पर आधारित हो उन्होने अन्तर्राष्ट्रीय अहिंसक सेना की स्थापना पर विशेष बल दिया।[15]

गांधी जी के स्वयं के शब्दों में ''हमे अपनी सेवाओं के क्षेत्र की, अपने आसपास के व्यक्तियों से राज्य की सीमाओं से बाहर एक विस्तृत करने के लिये किसी भी प्रकार की सीमा आरोपित नहीं कमी जा सकती है, क्योंकि ईश्वर ने किसी भी राज्य की सीमा का निर्माण नहीं किया है यदि मैं अपने देश के लिये स्वतन्त्रता चाहता हूं तो मैं ऐसी स्वतन्त्रता का पात्र नही होऊंगा, यदि मैं प्रत्येक जाति के समान अधिकारों तथा स्वतन्त्रता का समर्थन नही करता हूँ। उन्होंने व्यक्तियों के एक दूसरे पर आधारित होने के तथ्य को मान्यता दी। उनके शब्दों में मैं पूर्णतः स्वतन्त्र रहने की इच्छा करता हूँ, परन्तु इससे अन्य व्यक्तियों की स्वतन्त्रता में बाधा नही पड़नी चाहिये।''[16]

सन्दर्भ संकेत

1.. 'वर्तमान शिक्षा प्रणाली दोष एवं निराकरण'–राधा कृष्ण मिश्र, पृ0 –132
2. वही, पृ0–137
3. वही, पृ0–138
4. वही, पृ0–139
5. 'गांधी, नेहरू, टैगोर और अम्बेडकर' – डॉ0 एम0सी0 जोशी ,पृ0–93, 94
6. 'आधुनिक भारतीय इतिहास एवं सस्कृति –विजयराय, पृ0–135
7. 'वही, पृ0–136
8. 'गांधी, नेहरू, टैगोर और अम्बेडकर' – डॉ0 एम0सी0 जोशी, पृ0–96
9. 'भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन –ए. के. महाजन से उद्धृत, पृ0–4
10. 'वही, पृ0–4
11. 'वही, पृ0–5
12. 'मोहन दास करमचन्द गांधी'–डॉ0 अरूण कुमार मिश्र, पृ0–39
13. 'वही, पृ0–40
14. 'वही, पृ0–41
15. 'भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन' –ए.के. महाजन, पृ0–5
16. 'वही, पृ0–5

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

महाकौशल की क्षेत्रीय ऐतिहासिक व्यक्तित्व शौर्य, त्याग और ममता का आह्वान – सुभद्रा कुमारी चौहान

सत्येन्द्र कुमार शेन्डे
सहायक प्रोफेसर (हिन्दी)
शासकीय पी.जी. कॉलेज, सिवनी (म.प्र.)

सुप्रसिद्ध पाश्चात्य कवि थामस कार्लाइल ने एक बार कहा था– यदि इतिहास किसी राष्ट्र की जीवनी है तो साहित्य उस राष्ट्र की आत्मकथा होता है। इसलिए, किसी भी राष्ट्र की उन्नति के लिए इतिहास और साहित्य, दोनों को योगदान महत्वपूर्ण होता है।

साहित्यकार सबसे बड़ा योद्धा होता है। हिन्दी साहित्य के बीसवीं शताब्दी के इतिहास में कुछ ऐसे नाम उभरते हैं, जिन्होंने न केवल भारत के स्वाधीनता संग्राम में अपना योगदान किया बल्कि साहित्य को भी समृद्ध कर समाज और देश को एक नई दिशा भी दी। सुभद्रा कुमारी चौहान हिन्दी साहित्य के इतिहास की एक असाधारण और प्रेरणात्मक व्यक्तित्व के रूप में प्रतिष्ठित हैं1 और इतिहास के पन्नों में एक अमर स्वतंत्रता संग्राम सेनानी के रूप में भी प्रसिद्ध हैं।

भारत के स्वतंत्रता आंदोलन की कर्मठ प्रहरी और राष्ट्रीय चेतना की अलख जगाने वाली महान रचनाकार सुभद्रा जी का जीवन और उनका साहित्य वर्तमान पीढ़ी को भी प्रकाश स्तंभ की तरह आलोकित करने का माद्दा रखते हैं। यह तथ्य भी विदित है कि लोकगीत, अलिखित इतिहास और तत्कालीन जनजीवन का प्रामाणिक दस्तावेज होतें हैं। इस संदर्भ में, भला कोई भारतवासी यह पंक्तियाँ भी भूल सकता है–

"चमक उठी सन् सत्तावन में, वह तलवार पुरानी थी,
.....खूब लड़ी मर्दानी वह तो, झांसी वाली रानी थी।"

उक्त कविता को भारतीय जनमानस ने अपना कण्ठहार बनाकर स्वयं के प्रति जो कृतज्ञता व्यक्त की है, उसमें राष्ट्रदेवता के चरणों में आत्म–बलिदान की अनंत श्रृंखला का स्पृहणीय गौरव युक्त परिचय मिलता है।[2]

सुभद्रा जी का व्यक्तित्व दो रूपों में हमारे सामने आता है– पहला, एक ओजस्वी स्वंतत्रता सेनानी और दूसरा, साहित्यकार के रूप में। सुभद्रा जी भारत के स्वाधीनता आंदोलन की प्रखर और मुखर सिपाही थीं। स्वतंत्रता के महासंग्राम में स्वयं को समर्पित करने की प्रेरणा उन्हें उनके दादाजी से मिली थी, जो 1857 के स्वाधीनता–महासमर में शहीद हुए थे। सन् 1923 ई0 के जबलपुर के झंडा सत्याग्रह में गिरफ्तारी देने वाली सुभद्रा जी पूरे प्रांत में, सर्वप्रथम अकेली महिला थीं। गाँधीजी की प्रेरणा पाकर जबलपुर में, 18 मार्च 1923 ई0 को नगरपालिका भवन में चरखायुक्त तिरंगे को जब फहराया गया तो अंग्रेज डिप्टी कमिश्नर ने झंडा उतारने का आदेश दिया और पुलिस ने झंडे को कुचला भी। तब जनता क्रुद्ध हो गई। झंडा सत्याग्रह प्रारंभ हो गया। इस सत्याग्रह में पं. सुंदरलाल, श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान, नाथूराम मोदी आदि गिरफ्तार किए गए।[3] पति लक्ष्मण सिंह ठाकुर के साथ सच्ची सहधर्मिणी के रूप में, घर की चारदीवारी से निकल, सड़कों पर उतरकर आज़ादी की चेतना फैलाने का दुस्साहसिक कार्य सुभद्रा जी ने किया। जनता में राष्ट्रीय चेतना जगाने के लिए बैठकों, सभाओं, जुलूसों और अंग्रेजी सरकार विरोधी रैलियों का सफल संचालन किया। स्वाधीनता आंदोलन में महिलाओं के योगदान को अग्रणी बनाने में कर्मठ सेनानी के रूप में सुभद्रा जी अद्वितीय भूमिका रही।

सच्चे संत–साहित्यकार के रूप में सुभद्रा जी का कृतित्व अतुलनीय है। राष्ट्रीय चेतना जगाने में सुभद्रा जी

की प्रखर लेखनी ने सारे देश में प्राण फूंकने का काम किया। सुभद्रा जी ने लिखा–

'भूषण अथवा कवि चंद नहीं,
बिजली भर दे वह छंद नहीं,
है कलम बंधी, स्वच्छंद नहीं,
फिर हमें बताए कौन हंत,
वीरों का कैसा हो वसंत'[4]

बताना उचित होगा कि सुप्रसिद्ध साहित्यकार और सुभद्रा जी की सहेली महादेवी वर्मा ने उन्हें 'बिजली का छंद' की संज्ञा दी थी।[5] 'झांसी की रानी' जैसी उनकी ओजपूर्ण कविताओं ने जनमानस को आजादी की लड़ाई में सर्वस्व न्यौछावर करने की प्रेरणा दी। इसके अलावा सुभद्रा जी की कविताओं उनका सरल, सहज और प्रेरणादायी मातृत्व भी झलकता है। 'यह कदम्ब का पेड़ अगर मॉ होता यमुना तीरे...' जैसी कविताएं हिन्दी ही नहीं, बल्कि विश्व–साहित्य की भी अनमोल धरोहर हैं।

ओज और वीरता का हुंकार भरने वाली कवयित्री के अलावा सुभद्रा जी ने अप्रतिम गद्यकार के रूप में उत्कृष्ट गद्य साहित्य की भी रचना की है। 'बिखरे मोती', 'उन्मादिनी' और 'सीधे–सादे चित्र' जैसे संग्रहों में उनकी 46 कहानियां संकलित हैं। कहानियों के माध्यम से हिन्दी साहित्य में स्त्री–विमर्श को सबसे पहले सुभद्रा जी ने उठाया है, यह सच्चा विश्लेषण करना अभी बाकी है।

हिन्दी के हजार सालों के इतिहास में चुनिंदा महिला रचनाकारों में सुभद्रा जी का नाम अग्रणी है। स्वाधीनता की अमर सेनानी, समाज–सेविका, सहृदय मॉ, सह–धर्मिणी और सजग राष्ट्र–प्रहरी के रूप में सुभद्रा कुमारी चौहान का व्यक्तित्व और कृतित्व हमारे लिए प्रेरणा स्त्रोत है। आइए, महाकौशल के जिले सिवनी और सुभद्रा जी के संबंधों पर इतिहास के नज़रिए से देखने की कोशिश करें।

महाकौशल का जिला सिवनी सुभद्रा जी की जीवंत स्मृति–शाला है सुभद्रा जी का जन्म 16 अगस्त 1904 को इलाहाबाद (अब प्रयागराज) में हुआ था, इसलिए प्रयागराज उनकी जन्मभूमि है। उनका विवाह ठाकुर लक्ष्मणसिंह चौहान से हुआ और जबलपुर में सुभद्रा जी ने अपने पति के साथ अथक संघर्ष किया, अपने परिवार और बच्चों का पालन–पोषण करने के साथ ही, आज़ादी की लड़ाई में भाग लिया, इसलिए जबलपुर उनकी कर्मभूमि है। यहाँ यह भी बताना प्रासंगिक होगा कि महाकौशल के जिले सिवनी से भी सुभद्रा जी का गहरा, निरंतर और अटूट रिश्ता था। उनके पति और महान स्वाधीनता सेनानी लक्ष्मणसिंह चौहान सिवनी की जेल में बंद थे, जिनसे मिलने वे प्रायः सिवनी आया करतीं थीं और सिवनी की जनता को स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेने के लिए प्रेरित करतीं थीं।

सिवनी से सुभद्रा जी के लगाव का सबसे गौरवमयी क्षण वह है– जब 28 नवम्बर 1933 को महात्मा गांधी का आगमन सिवनी हुआ।6 बालाघाट से आते हुए उन्हें शाम हो गई थी। सिवनी के हजारों लोग बापू का इंतज़ार कर रहे थे। जैसे ही बापू अपने अनुयायियों के साथ सिवनी के मिशन स्कूल के सामने पहुँचे, उनके दर्शनों के लिए भीड़ उमड़ पड़ी। जनता ने भाव–विभोर होकर बापू का अभिनंदन किया। तब बापू के सम्मान में स्वयं सुभद्रा जी ने स्वागत–गीत लिखा और जनता के सामने सस्वर ओजपूर्ण पाठ भी किया। आज यह जगह गाँधी भवन चौक कहलाती है। इतिहास गवाह है कि गाँधीजी के आगमन पर, सिवनी की जनता ने रात को दीप जलाकर इस ऐतिहासिक दिन को दीपोत्सव की तरह मनाया। अगली सुबह गाँधीजी ने सिवनी के शुक्रवारी मैदान में, सिवनी की जनता को संबोधित किया, तब सुभद्रा जी भी उनके साथ थी। आज यह स्थान गाँधी चौक कहलाता है।

सुभद्रा जी का सिवनी की दादू धर्मशाला में अक्सर अस्थाई निवास हुआ करता था। सिवनी के जीटी जटार, कुंजबिहारी खरे, दुर्गाशंकर मेहता और राधाबाई जठार जैसे लोगो के साथ सुभद्रा जी ने सिवनी में अछूतोद्धार और स्वतंत्रता आंदोलन को गति प्रदान की थी।

यह दुःखद संयोग है कि उन्होंने अपने जीवन की अंतिम सांस भी सिवनी के कलबोड़ी नामक ग्राम में ली। नागपुर से जबलपुर लौटते समय, इस स्थान पर, उनकी कार दुर्घटनाग्रस्त हो गई। सुभद्राजी बुरी तरह घायल हो गईं और इसी स्थान पर शौर्य, त्याग और ममता का आह्वान करने वाली कवयित्री ने अपनी देह त्याग दी। सहसा उनकी ही पंक्तियाँ याद आतीं हैं–

घायल होकर गिरी सिंहनी, उसे वीर–गति पानी थी।
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी।

वर्तमान पीढ़ी के ऊर्जावान युवा समाज सुधारक और जनप्रतिनिधि मोहन चंदेल ने सुभद्रा जी की स्मृति अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए समाधि स्थल बनवाया है और प्रतिवर्ष सुभद्रा जी की जयंती और पुण्यतिथि पर श्रद्धा सुमन समर्पित करते हैं। हम कह सकते हैं कि यदि पावन गंगा की माटी प्रयागराज सुभद्रा जी की जन्मभूमि है, पवित्र नर्मदा भूमि जबलपुर सुभद्राजी की कर्मभूमि है तो पुण्य वैनगंगा की स्थली सिवनी सुभद्राजी की समाधि–भूमि है। सिवनी के ग्राम कलबोड़ी में स्थित, सुभद्राजी के समाधि स्थल को देखकर उनकी ही पंक्तियां, जो उन्होंने झाँसी की रानी की समाधि के संदर्भ में रचीं थी, सहसा याद आतीं हैं–

"यहीं कहीं पर बिखर गई वह, भग्न विजय–माला सी,
उसके फूल यहां संचित हैं, है यह स्मृति शाला सी।"

विडंबना है कि कालांतर में, सिवनी की जनता ने सुभद्रा जी को भुला दिया। सिवनी से गहरा नाता रखने वाली सुभद्रा जी की स्मृति की कोई भी निशानी सिवनी में नहीं है– न कोई गाँव, न कोई सड़क, न ही कोई सरकारी ईमारत। कुछ भी सुभद्रा कुमारी चौहान के नाम पर नहीं। राज्य सरकार और सिवनी की जनता ने सुभद्रा जी की यादों को सहेजने के लिए यह तक नहीं सोचा कि सिवनी के पीजी कॉलेज का नामकरण सुभद्रा जी के नाम पर किया जाए ? यहाँ यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि उनके सुपुत्र अशोक चौहान ने अस्सी के दशक में, सिवनी के शासकीय पीजी कॉलेज में बतौर प्रोफेसर अध्यापन कार्य किया था।

हिन्दी साहित्य की महत्वपूर्ण छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा जी ने एक बार कहा था– "नदियों का कोई स्मारक नहीं होता। दीपक की लौ को सोने से मढ़ दीजिए पर इससे क्या होगा ?हम सुभद्राजी के संदेश को दूर–दूर तक फैलायें और आचरण में उसके महत्व को मानें, यही असल स्मारक है।"

इस शोध आलेख के माध्यम से, इतिहास और साहित्य के सभी सुधिजनों से एक निवेदन है कि यह भी गर्व भरा कदम होगा कि सरकारी सहायता का मुंह ताके बगैर सिवनी स्थित सुभद्रा जी की समाधि को एक राष्ट्रीय तीर्थ का रूप दिया जाए, यही सुभद्रा जी के प्रति सच्ची–कृतज्ञ श्रद्धांजलि होगी।

संदर्भ संकेत

1. पेज नम्बर 07, स्वाधीनता की हलचल और सुभद्रा कुमारी चौहान– कुमुद शर्मा, पुस्तक वार्ता (जनवरी–फरवरी, 2018), महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र
2. पेज नम्बर 120, बिजली भरा छंद– डॉ. सत्येन्द्र शर्मा, संचयन भाग–दो, प्रधान संपादक कौशल प्रसाद मिश्र (2001 संस्करण), म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल (म.प्र.)
3. पेज नम्बर 274, मध्यप्रदेश में स्वतंत्रता संग्राम – डॉ. हंसा व्यास, (2018 संस्करण), म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल (म.प्र.)
4. पेज नंबर 78, वीरों का कैसा हो वसंत – सुभद्रा कुमारी चौहान, अर्वाचीन काव्य (सन् 2013),– संपादक– डॉ. वीरेन्द्र मोहन, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल (म.प्र.)
5. पेज नंबर 38, पथ के साथी – महादेवी वर्मा, राधाकृष्ण प्रकाशन (वर्ष 1995), नई दिल्ली
6. सिवनी गजेटियर

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

भौतिकवादी चकाचौंध है मनुष्य की अधोगति का कारण – क्रांतिकारी संत तरुण सागर

डॉ. कमलेश कुमार जैन
प्रवक्ता – हिन्दी
चन्द्रप्रभा दिगंबर जैन कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, तिजारा, अलवर (राजस्थान)–301411

समकालीन समय में मनुष्य का जीवन अनेक विषमताओं से भरा हुआ है। पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से आक्रांत इस देश का मानव अनेक विपत्तियों को स्वयं निमंत्रण दे रहा है। भौतिकता की चकाचौंध में मानव अपने जीवन के उन शाश्वत मूल्यों को विस्मृत कर बैठा है, जो कि उसके जीवन के लिए नितांत आवश्यक हैं। यही कारण है कि हर तरफ अशांति, भय, दुःख, निराशा और विशाद का वातावरण फैला हुआ है। फलस्वरुप आज मनुष्य के जीवन में उलझाव की प्रवृत्तियाँ बढ़ती जा रही हैं। वह विवेक शून्य हो गया है। आखिर वह क्या करें? संत साहित्य में इन सबका कारण मनुष्य का भौतिक सुख सुविधाओं में लीन होना, पश्चिम की ओर अधिक उन्मुख होना तथा उसी को विकास का पैमाना मानते हुए, उस जैसा बनना और कर्म से विमुख होना बताया गया है। संत साहित्य त्याग, प्रेम, सत्य और श्रम के महत्व को मनुष्य का प्रमुख कर्त्तव्य बताता है। प्रकृति का सहचर बनकर ही मनुष्य अपना अस्तित्व बनाए रख सकता है। उसका विरोध करके नहीं। हिन्दी साहित्य के दृष्टिकोण से संत काव्यधारा भक्तिकाल में दिखाई देती है और वहीं तक दिखाई देती है। लेकिन क्या उसके बाद संत काव्यधारा समाप्त हो गई? ऐसा नहीं है। संत काव्यधारा की परंपरा आज तक चली आ रही है। आधुनिक युग में अनेक संत कवि हुए हैं। इन संत कवियों ने भी अपनी कविताओं एवं विचारों के माध्यम से समाज और दुनिया को वही संदेश दिए हैं जो भक्तिकाल के कवियों ने दिए थे। संत परंपरा में ऐसी ही अलख जगाने वाले संत हुए। क्रांतिकारी मुनि श्री तरुण सागर जी महाराज। उन्होंने भक्ति की शक्ति को प्रबल बताया है। भक्ति जीवन में अमृत के समान है और विषय वासनाएँ हलाहल के समान हैं। लेकिन वे भक्ति को मात्र पूजा पाठ या आराधना तक ही सीमित नहीं करते हैं। वे लिखते हैं–

''दुर्लभ है यह मानव जीवन। दुर्लभ है हरा–भरा यौवन।
इसको क्यों विषयों संग जीता। अमृत छोड़ हलाहल पीता।''[1]

संत तरुण सागर हलाहल आज के भौतिक संसाधनों और पश्चिम की नकल पर उस जैसे होने को कहते हैं। इस हलाहल में आज का व्यक्ति फंस गया है। सबसे बड़ी बात यह है कि उसे यह हलाहल दुविधा नहीं सुविधा लगती है। क्योंकि भौतिक संसाधनों का अभ्यस्त हुआ व्यक्ति इसे ऐशो आराम के सामान समझता है। व्यक्ति मूलतः अपने जीवन का उद्देश्य सुख मानने लग गया है। जबकि संत काव्य भी यही कहता है कि जीवन का मूल उद्देश्य सुख ही है। लेकिन वह सुख भौतिक संसाधनों में नहीं बल्कि कर्म में है। कर्त्तव्य में है।

डॉ. के.एल. जैन संतों एवं संत काव्य की प्रमुखता को बताते हुए उसके महत्त्व को रेखांकित करते हुए कहते हैं – ''यदि सही मायने में देखा जाए तो वे संत महान हैं, जो इस भौतिक जगत को समस्त संताप से मुक्त करने में लगे हैं। इतना ही नहीं बल्कि एक सच्चा संत द्वार–द्वार और गली–गली जाकर अलख जगाता है और संसार में भटके हुए राहगीरों को पथ दिखलाता है।''[2] संत काव्य भी यही कार्य करता है। सांसारिक मोह माया में भटक चुके व्यक्ति को सही राह दिखाने का काम करती हैं ये कविताएं। संत तरुण सागर की कविताओं में भी वही अलख दिखाई देती है।

संत तरुण सागर जी ने क्रोध को सबसे बड़ा शत्रु बताया है। उनका मानना है कि क्रोध को जीत लिया जाए

तो मनुष्य परम सुखी हो सकता है। क्रोधी मानव अपना होश खो देता है। उसका पहला प्रहार विवेक पर होता है। क्योंकि जब भी क्रोध किसी पर आता है तो मनुष्य के विवेक को नष्ट कर उसे अंधा बना देता है। मुनि श्री का इस क्रोध के संबंध में कहना है कि – ''क्रोध तो सदा दुख देता है। क्रोध के शिकंजे में आने वाला सुखी कैसे रह सकता है? बिच्छू का डंक और आराम? सर्प का दंश और अमृत? अग्नि का स्पर्श और शीतलता? क्रोध से हारा और सुखी? कदापि संभव नहीं। मन के दर्पण में क्रोध की फूंक मारने से आत्मदर्शन संभव नहीं है। खौलते पानी में अपना प्रतिबिंब कैसे देख सकते हो। और क्रोधी व्यक्ति आत्मदर्शन कैसे कर सकता है? आत्मदर्शन, आत्मानुभूति और आत्म साक्षात्कार उनकी संपदा है, जो सहिष्णु हैं, सहनशील हैं, क्षमावान हैं, क्षमाशील हैं।''[3] मुनि श्री स्वयं मानते हैं कि दुःख का मूल कारण व्यक्ति की आकांक्षा है। दुःख कहीं बाहर से नहीं आता, वह व्यक्ति के अंदर है। दुःख कामना से आता है। वह व्यक्ति की कल्पना से आता है। वह व्यक्ति की वासना से आता है। वह व्यक्ति की अभिप्सा से आता है। वह चित्त से आता है।

तत्संबंध में भगवान महावीर स्वामी के संदेश को रेखांकित करते हुए मुनि श्री लिखते हैं–''सुख न सत्ता में है, न काम में और न अर्थ में। सुख तो आत्मा में है। अपने आप में है। जैसे फूल की सुगंध फूल में है। शक्कर की मिठास शक्कर में है। दीपक का प्रकाश दीपक में है। वैसे ही आत्मा का सुख आत्मा में है। आत्मा आनंद का अनंत सागर है। सुख का अक्षय भंडार है। निराकुलता व शांति का असीम कोश है।''[4]

मुनि श्री तरुण सागर जी महाराज मनुष्य को परमात्मा की शक्ति का पुंज मानते हैं। वे कहते हैं–''मनुष्य अनंत संभावनाओं का पुंज है। उसमें अनंत शक्तियाँ हैं लेकिन दुर्भाग्य इस बात का है कि वह अपनी इन शक्तियों को पहचानने का यत्न नहीं करता। वह शक्ति की तलाश बाहर करता है। देवी देवताओं के रूप में लेकिन वह अपने अंदर विराजमान परमात्मा के ऊपर विश्वास नहीं करता।''[5] यहां मुनि श्री तरुण सागर जी महाराज मूर्ति पूजा का खंडन करते हैं और बहुत स्पष्ट रुप से कहते हैं कि व्यक्ति को अपनी शक्ति पहचाननी चाहिए। उसकी शक्ति श्रम में है। उसकी प्रतिभा में है। बिना श्रम के सिर्फ मूर्तियों पर आधारित रहने वाला एवं कुछ भी न करने वाले व्यक्ति कभी भी सफल नहीं हो सकते। राष्ट्र और समाज का भला नहीं कर सकते। देश तथा समाज हित कर्तव्य की बात व्यक्ति को तब करनी चाहिए जब वह अपने कर्तव्यों को सही रूप से, इमानदारी से, परिश्रम के साथ करता हो। पश्चिम के अंधानुकरण के आधार पर आज का मनुष्य श्रम से बचना चाहता है। वह विकास की मंजिल पर बिना श्रम की सीढी के चढना चाहता है। वह बिना मेहनत के सफलता का परचम लहराना चाहता है। लेकिन जब तक परिश्रम नहीं करेगा तब तक यह संभव नहीं है। संत तरुण सागर इसी श्रम पर बल देते हैं। व्यक्ति की इसी शक्ति को पहचानने के लिए कहते हैं।

मुनि श्री ने मृत्यु को जीवन का अनिवार्य सत्य बताया है। वे लिखते हैं – ''मृत्यु का बोध व्यक्ति को असद् कर्मों से रोकता है। धर्म भावना की ओर प्रेरित करता है। प्रायश्चित की प्रेरणा देता है। परमात्मा का स्मरण करने की ललक उत्पन्न करता है। दान पुण्य का उत्साह पैदा करता है।

ऐसा क्यों होता है? इसलिए कि मृत्युबोध व्यक्ति में मृत्यु के प्रति श्रद्धा को पैदा कर देता है।''[6] यहां क्रांतिकारी संत तरुण सागर जी महाराज कहना चाहते हैं कि सद्भावों की ओर मनुष्य तब जाना चाहता है जब उसे लगता है कि वह कुछ न कुछ असंगत कर रहा है। कुछ न कुछ असामाजिक कर रहा है या कुछ न कुछ अन्यायिक कर रहा है। अर्थात जब जब वह गलत करता है तब–तब ऐसी स्थिति का सहारा लेता है, जिससे कि वह अपनी गलती का प्रायश्चित करे। हालांकि उस समय भी गलती का प्रायश्चित कम और उस गलती से उसका कुछ अनिष्ट न हो यह भाव अधिक होता है। संत तरुण सागर स्पष्ट रुप से कहते हैं कि मनुष्य यदि असामाजिक करे ही न तो उसे अलग से ईश्वर को स्मरण करने की आवश्यकता महसूस नहीं होगी।

मृत्यु एक प्रकार से जीवन का हिसाब किताब ही तो है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा है–

''तुमने जितनी ताजी सांसे खींची हैं।
तुमने जितनी बासी सांसें छोड़ी हैं।

उन सबका हिसाब करो और करो रखवाली।
क्योंकि कल आने वाला है सांसो का माली।''[7]

सांसो का माली है 'मृत्यु'। हिसाब चुकाने में घबराहट कैसी? यदि हिसाब गड़बड़ होगा, तो घबराहट तो होगी ही। मृत्यु से वही घबराते हैं जिनका हिसाब–किताब ठीक नहीं होता। लेकिन जिसने सारी जिंदगी बड़े जतन से जीवन को जिया है, वह कभी मृत्यु से नहीं घबराता। वह तो मृत्यु का स्वागत करता है। मैथिलीशरण गुप्त की कविता मनुष्य के द्वारा जीवन में किए जाने वाले अनैतिक कार्य भ्रष्टाचार, बेईमानी इन सब की ओर इशारा कर रही है। यदि मनुष्य किसी के साथ अन्याय, अत्याचार और किसी का शोषण न करें तथा ईमानदारी से, परिश्रम के साथ, सही मार्ग पर चलते हुए अपना जीवनयापन करें तो मृत्यु का भी उसे भय नहीं रहता है। क्योंकि जो गलत करता है, जो असंगत करता है, वही व्यक्ति डरता है और वही व्यक्ति कमजोर होता है। यहां तरुण सागर जी उसी की ओर संकेत कर रहे हैं। जिसने सारी जिंदगी बड़े जतन से जीवन को दिया है, वह कभी मृत्यु से नहीं घबराता। वह तो मृत्यु का स्वागत करता है। क्योंकि जिसने कभी जीवन में गड़बड़ न की हो, ईमानदारी से सही मार्ग पर चलकर जीवन जिया हो, अपने कर्तव्य का निर्वहन ठीक से किया हो, उसे मृत्यु का क्या भय।

मुनि श्री कहते हैं – ''मानव को जागृत चेतना लेकर जीना चाहिए। जागृत चेतना का अर्थ है, जो कर रहे हो करो, लेकिन कर्ता मत बनो, साक्षी बनकर रहो।''[8] यहाँ संत तरुण सागर किसी भी प्रकार के कार्य को करने के बाद ढिंढोरा पीटना या फिर बिना कार्य किए हुए, बिना श्रम के भोजन करना या सदियों से चली आ रही रुढी गत परंपराओं का निर्वहन करना, इन सबके पर गंभीरता के साथ कटाक्ष करते हैं। जागृत चेतना से तात्पर्य उनका यही है कि अपने अधिकारों के प्रति सजग रहना। अपने कार्य के प्रति सजग रहना। प्रत्येक मनुष्य का मनुष्य के रूप में सम्मान करना। जाति, धर्म, वर्ण, लिंग आदि के आधार पर छोटा या बड़ा न मानते हुए, समता की दृष्टि से पूरे विश्व को समभाव से देखना और मनुष्य इस प्रकार से विचार करेगा तो निश्चित रुप से तमाम तरह की विकृति, महामारी, त्रासदी, षडयंत्र, शोषण, तनाव आदि से मुक्त रहेगा।

एक स्वच्छ जीवन उसका होगा और जब मनुष्य स्वच्छ, सुंदर और स्वस्थ होगा तो उसका समाज तथा राष्ट्र भी और समूचा विश्व भी स्वतंत्र, स्वच्छ और स्वस्थ होगा। मुनि श्री तरुण सागर के क्रांतिकारी विचारों में आज के संदर्भ में बहुत सारी ऐसी बातें हैं जिन पर यदि विचार किया जाए तो निश्चित रुप से समाज और दुनिया में फैली विकृतियों और महामारियों को समाप्त किया जा सकता है। उनके विचारों के अनुसार पश्चिम की नकल नहीं करनी है। भौतिक सुख साधनों की लिप्सा नहीं रखनी है। जीवन का उद्देश्य सुख लेना नहीं देना है। परिश्रम के बिना जीवन का कोई महत्त्व नहीं। क्योंकि ये सब विकृतियों के जनक हैं। मनुष्य स्वस्थ रहता है श्रम से और भौतिक साधन श्रम से छुटकारा दिलाते हैं।

संदर्भ संकेत

1. चपलमन–काव्य संग्रह–मुनि तरुण सागर, पृ.–77
2. महाकवि आचार्य विद्यासागर ग्रंथावली परिशीलन, शोध आलेख, डॉ. के.एल. जैन, पृ.–103
3. क्रोध को कैसे जीतें–मुनि तरुण सागर, पृ.–15
4. क्रोध को कैसे जीतें–मुनि तरुण सागर, पृ.–15
5. दुःखों से मुक्ति कैसे मिले–मुनि तरुण सागर, पृ.–220
6. दुःखों से मुक्ति कैसे मिले – मुनि तरुण सागर, पृ.–221
7. मैथिलीशरण गुप्त ग्रंथावली – संपादक – डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल, पृ.–356
8. मुझे आपसे कुछ कहना है–मुनि तरुण सागर, पृ.–67

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी जी और स्वाधीनता आंदोलन : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. श्रीमती राजेश जैन
प्रोफेसर एवं विशेष कर्तव्यस्थ अधिकारी
कार्यालय क्षेत्रीय अतिरिक्त संचालक, उच्च शिक्षा सागर–संभाग, सागर (म.प्र.)

भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी जी आधुनिक भारत के महान जननायक थे। भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में गाँधी जी के विचारों और योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। वे असाधारण व्यक्तित्व के धनी थे, वे राजनीतिज्ञ न होते हुए उच्च कोटि के राजनीतिज्ञ थे। वे अर्थशास्त्री न होते हुए भी एक महान अर्थशास्त्री थे। यही नहीं वे एक समाज सुधारक और दार्शनिक भी थे। इन सबसे ऊपर वे एक सच्चे कर्मयोगी थे। वे वर्तमान भारत के राष्ट्र निर्माता थे। उन्होंने अपने सिद्धांतों के आधार पर मानवता को समाज के नवनिर्माण की नई राह दिखाई। इसलिये भारतवासी उन्हें राष्ट्रपिता अथवा बापू के नाम से याद करते हैं। रवीन्द्र नाथ टैगोर ने उन्हें महात्मा के नाम से सम्बोधित किया, महात्मा का अर्थ है महान आत्मा। अतः गाँधी जी विश्व के महान नेताओं के समकक्ष माने जाते हैं– वे एलफ्रेड, वांशिगटन, वैलेस, गैरीसन तथा इब्राहिम लिंकन आदि राष्ट्र निर्माताओं की भाँति महान थे।

भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में गाँधी जी की विशेष महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उन्होंने सन 1893 से 1915 तक दक्षिणी अफ्रीका में रहकर वहां सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह जैसे अस्त्र अपनाकर भारतीयों की स्थिति सुधारने में सफलता प्राप्त की। सन् 1915 से 1917 तक भारत में रहकर अंग्रेजों की शोषणपूर्ण नीति का अवलोकन किया, तब उन्होंने सन् 1917 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की बागडोर संभाली और सन् 1947 तक वे भारतीय राजनीतिक मंच पर छाये रहे। इस युग को गाँधी युग के नाम से भी जाना जाता है।

गाँधी जी ने भारत की स्वाधीनता के लिये अनेक आंदोलन चलाये जिनमें प्रमुख हैं – (1) असहयोग आंदोलन (2) सविनय अवज्ञा आंदोलन (3) भारत छोड़ो आंदोलन (4) कृषक–श्रमिक आंदोलन आदि। उनके द्वारा चलाये गये सभी आंदोलन पूर्णतः सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह के सिद्धांत पर आधारित थे। यहां मैं सत्य अहिंसा और सत्याग्रह पर पृथक–पृथक चर्चा करना आवश्यक मानती हूँ तत्पश्चात स्वाधीनता आंदोलन में गाँधी जी के योगदान को स्पष्ट करना उचित होगा।

गाँधी जी और सत्य – गाँधी जी के अनुसार सत्य बोलना ही सत्य नहीं है वाणी में और व्यवहार में भी सत्य होना असली सत्य है। सत्य सभी प्रकार की नैतिकता का सार है। सत्य के माध्यम से कुछ भी प्राप्त किया जा सकता है सत्य उस पेड़ की भांति है जिसके फल कभी समाप्त नहीं होते, यह ईश्वर की भांति अमर है। उनकी दृष्टि से ईश्वर, सत्य, धर्म और नैतिकता सबका एक ही अर्थ है। गाँधी जी के विचारों में सत्य वह है जो एक व्यक्ति आंतरिक स्व–अनुभव में महसूस करता है। यह हमारी आत्मा से निकली आवाज है। उनका कहना है कि सत्य ही हमारा आराध्य है। इसी के लिये हमारा जीवन है, हमारी क्रियायें हैं, हमारी सांसें हैं यदि हम सत्य के लिये जीना सीख जायें तो शेष सभी नियमों का पालन सरल हो जाता है क्योंकि सत्य हमारी आत्मा से निकली आवाज है।

गाँधी जी के अनुसार – ज्ञान ही हमें सत्य की ओर ले जाता है और अज्ञानता सत्य से दूर ले जाती है। सत्य वह है जो समक्ष है और वास्तविक है और सत्याग्रह सत्य के लिए आग्रह करना है, सत्य की खोज करना है। यह वह कृति है जो सत्य स्नेह तथा अहिंसा पर आधारित है। यह वह तरीका है जिसके द्वारा सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक अन्याय से लड़ा जा सकता है। सत्य केवल सच बोलने का नाम नहीं होता बल्कि सच पर अड़े रहने का नाम है। नैतिकता पर जमे रहने का नाम है, नैतिक तरीकों को अपनाने का नाम सत्य है। यह अपनी बात दूसरों

पर थोपने का नाम नहीं है अपितु दूसरे के विवेक को जाग्रत करने का नाम है। दूसरे की आत्मा तक पहुँचने का नाम है। गाँधी का कहना था कि विश्व के समस्त जीवों से प्रेम करो। धरती पर निम्नतम कोटि का प्राणी भी ईश्वर का प्रतिरूप है इसलिए वह तुम्हारे प्रेम का अधिकारी है। आबू नि आदम को ज्ञान देने वाले फरिश्ते की सीख को दोहराते हुए गाँधी जी कहते हैं कि जो मनुष्य अपने साथ जीवन बिताने वाले मनुष्य से प्यार करता है, वही ईश्वर से प्यार करता है। गाँधी जी ने भारत की स्वतंत्रता के लिये सत्य को एक अस्त्र के रूप में प्रयोग किया।

गाँधी जी और अहिंसा – आधुनिक युग में महात्मा गाँधी जी ने सत्य के साथ–साथ अहिंसा को भारत की स्वाधीनता आंदोलन में एक राजनीतिक सिद्धांत के रूप में अपनाया है और इसकी शक्ति को प्रमाणित किया। गाँध ी जी ने यह बताया कि अहिंसा निर्बल व्यक्ति का आश्रय नहीं है बल्कि शक्तिशाली का अस्त्र है। विरोधी की शक्ति से डर जाना या अत्याचार के विरूद्ध बल प्रयोग न कर पाने की स्थिति अहिंसा नहीं है। इसके विपरीत यह नैतिक दृष्टि से शक्तिशाली व्यक्ति या समूह का बल है जो सत्य पर दृढ़ निष्ठा रखने से प्राप्त है। अहिंसा स्वयं एक शक्ति है जिससे विरोधी के हृदय पर विजय प्राप्त की जाती है। मनुष्य के लिये अहिंसा आत्मशुद्धि (Self Purification) का साधन है। जब मनुष्य के मन में कोई मैल नहीं रह जाता, तब उसमें इतनी नैतिक शक्ति आ जाती है कि वह अन्याय करने वाले का हृदय परिवर्तन कर देती है। अहिंसा का साधक, सत्य के प्रति अनन्य निष्ठा रखकर असत्य की शक्ति को परास्त करने की क्षमता रखता है इसी अहिंसा रूपी अस्त्र को अपनाकर गाँधी जी ने अंग्रेजों का हृदय परिवर्तन कर दिया था।

गाँधी जी कहते हैं कि अहिंसा कायर का कवच नहीं है अपितु यह बहादुरी का उच्चतम गुण है। गाँधीजी का मानना था कि जो व्यक्ति हिंसा की राह पर चलते हैं वे विनाश की ओर बढ़ते हैं और जो अहिंसा के पथ पर चलते हैं वे परम सत्य की प्राप्ति करते हैं तथा दूसरों को भी सत्य से परिचित कराते है। गाँधी जी के अनुसार किसी जीव को नहीं मारना ही अहिंसा नहीं है बल्कि मन वचन और कर्म से किसी को कष्ट नहीं पहुँचना ही अहिंसा है। अहिंसा का मार्ग भले ही सरल दृष्टिगोचर होता है परन्तु इस पर चलना तलवार की तीक्ष्ण धार पर चलने के समान है। सफल साधक ही अहिंसा की डोर पर चल सकता है। अहिंसा का मार्ग अपनाने का यह मतलब कदापि नहीं निकाला जाना चाहिए कि अन्याय एवं अत्याचार सहकर अहिंसा का पालन करें। अन्यायी एवं अत्याचारी की आत्मा को जीतकर हम उसमें परिवर्तन कर सकते हैं। गाँधी जी अहिंसा को सर्वोच्च प्रकार की सक्रिय शक्ति भी मानते थे उन्होंने अहिंसा की तुलना अपने भीतर विराजमान भगवान से की है। वे कहते हैं कि अहिंसा रेडियम की तरह काम करती है रेडियम की छोटी से छोटी मात्रा भी किसी रूग्ण अंग के बीच में रख दी जाये तो वह लगातार चुपचाप और बिना रूके काम करती रहती है और अंत में सारे रोगग्रस्त अंग को निरोगी बना देती है।

दूसरे शब्दों में गाँधीजी के अनुसार अहिंसा सकारात्मक दृष्टि से दूसरों के प्रति स्नेह एवं प्रेम की अभिव्यक्ति है अहिंसा वह सिद्धांत है जिसमें अपने विरोधी को प्रेम से जीता जाता है घृणा या लड़ाई से नहीं। अहिंसक की दृष्टि में कोई भी घृणा का पात्र नहीं हो सकता, पापी भी नहीं। गाँधी जी का कहना था कि अहिंसा का पुजारी अपने सहचरों के दुःख से द्रवित होकर उसके निवारण के लिये प्रयत्नशील होगा। वह अपने पराए का भेद मिटाकर जनसेवा में अपना जीवन अर्पित कर देगा। अतः अहिंसा कई तरीकों से व्यक्त होती है– वार्ता, व्रत, धरना, सामाजिक बहिष्कार, असहयोग, हड़ताल सविनय अवज्ञा आदि। उन्होंने कहा कि वीरों की अहिंसा वह अहिंसा होती है जब किसी के पास बल होने के बावजूद भी वह बल का प्रयोग नहीं करते हैं। कमजोर की अहिंसा वह होती है जो अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिये विवश होकर अहिंसा का प्रयोग करें। गाँधी जी के अनुसार सत्य और अहिंसा दोनों गुण मानव को वास्तविक अर्थों में मानव बनाते हैं। जिस व्यक्ति में अहिंसा और सत्य के गुणों का समावेश हो जाता है वह निरंतर सफलता प्राप्त करता चला जाता है, जिस प्रकार गाँधी जी ने भारत की स्वतंत्रता के लिये अंग्रेजों के विरूद्ध जो भी संघर्ष किया उन सब में सत्य और अहिंसा के सिद्धांत को अपनाकर अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है।

गाँधी जी और सत्याग्रह – सत्य और अहिंसा का अटूट संबंध ही सत्याग्रह के विचार को जन्म देता है। सत्याग्रह का शाब्दिक अर्थ है– सत्य+आग्रह, अर्थात 'सत्य पर अडिग रहना' (Insistence on Truth) सत्य क्या है? इसका निर्णय कैसे हो? जब अहिंसा का पालन करते हुए मनुष्य आत्मशुद्धि कर लेता है तो उसका अन्तःकरण ही सत्य का दर्पण बन जाता है। जब मनुष्य को यह विश्वास हो जाये कि वह सत्य के मार्ग पर चल रहा है, तब चाहे उसे कितनी ही बाधायें और यातनायें क्यों न सहन करनी पड़े, अपने मार्ग से तनिक भी विचलित न होना सत्याग्रह है। सत्य की सिद्धि कठिन तो है परन्तु अन्ततः विजय उसी की होती है। अतः सत्याग्रही कभी पराजय स्वीकार नहीं करता। वह किसी भी परिस्थिति में सत्य के पथ से विचलित नहीं होता। स्वयं सत्य पर दृढ़ रहकर ही वह अपने विरोधी का ह्रदय परिवर्तन करने को तत्पर होता है। दूसरे शब्दों में सत्याग्रह का अर्थ सभी प्रकार के अन्याय, अत्याचार और शोषण के विरूद्ध आत्मबल का प्रयोग करने से था।

सत्याग्रही अपने आपको कष्ट पहुँचाकर जैसे कि– अनशन करके, अथवा कारावास में यातना सहन करके, विरोधी के मन को आंदोलित कर देता है जिससे वह अंततः अन्याय के मार्ग से हटकर न्याय के मार्ग पर चलने के लिए नैतिक रूप से विवश हो जाता है। इसी सत्याग्रह की विधि को गाँधी जी ने स्वराज्य की प्राप्ति के लिए अपनाया। सत्याग्रह सत्य के लिये आग्रह करना है। सत्य की खोज करना। यह वह कृति जो सत्य स्नेह तथा अहिंसा पर आधारित है। यह वह तरीका है जिसके द्वारा सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक अन्याय से लड़ा जा सकता है। सत्याग्रह सत्य तक ले जाने का मार्ग है। गाँधी जी कहते हैं कि एक सत्याग्रही को सत्यवादी, अहिंसात्मक एवं दूसरे के लिये मन में कोई बैर–द्वेष नहीं रखना चाहिए। गाँधी जी आजादी के आंदोलन में इसी सोच को लेकर आये थे।

सत्याग्रह के सिद्धांत में यह बात याद रखना चाहिए कि सत्य तो शाश्वत और निर्विकार है परन्तु मनुष्य स्वयं अपूर्ण है। अतः कोई भी व्यक्ति यह दावा नहीं कर सकता कि उसने सत्य का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया है। राजनीति के क्षेत्र में सत्य की व्याख्या के प्रश्न पर मतभेद हो सकता है ऐसी स्थिति में गाँधी जी के अनुसार हठधर्मिता (Obstinacy) का रास्ता अपनाना उपयुक्त नहीं होगा। सत्याग्रही को विरोधी पक्ष के साथ संवाद स्थापित करके एक–दूसरे के दृष्टिकोण को समझने की प्रेरणा देना चाहिए ताकि दोनों पक्ष मिलकर सत्य का अन्वेषण कर सकें। विरोधी पक्ष सत्याग्रही के आमंत्रण को अस्वीकार कर दे, अर्थात बात–चीत के लिये तैयार न हो तब उसे नैतिक दबाव के तौर–तरीके का सहारा लेना चाहिए।

महात्मा गाँधी जी और स्वतंत्रता आंदोलन – महात्मा गाँधी जी ने भारत के स्वाधीनता आंदोलन (Endependence Movement) के दौरान सत्य अहिंसा और सत्याग्रह के सिद्धांतों को अपनाकर अंग्रेज सरकार के विरूद्ध सशक्त राष्ट्रीय आंदोलन चलाये जो इस प्रकार हैः–

(1) असहयोग आंदोलन (1920–1922 तक) – गाँधी जी के नेतृत्व में चलाया जाने वाला असहयोग आंदोलन प्रथम जन आंदोलन था। इसमें गाँधी जी ने सशक्त अंग्रेजी साम्राज्य के विरूद्ध एक अहिंसात्मक जंग लड़ी थी। इस आंदोलन का व्यापक जन आधार था, शहरी क्षेत्र से मध्यमवर्ग और ग्रामीण क्षेत्रों में किसानों और आदिवासियों का इसे व्यापक समर्थन मिला। इसमें श्रमिक वर्ग की भी भागीदारी थी। इस कारण यह प्रथम जन आंदोलन बन गया। असहयोग आंदोलन अंग्रेजों के अत्याचार के खिलाफ 01 अगस्त 1920 को गाँधी जी द्वारा शुरू किया गया सत्याग्रह आंदोलन था। यह अंग्रेजों द्वारा प्रस्तावित अन्यायपूर्ण कानूनों और कार्यों के विरोध में देशव्यापी आंदोलन था। इस आंदोलन में यह स्पष्ट किया गया था कि स्वराज्य अंतिम उद्देश्य है लोगों ने ब्रिटिश सामान खरीदने से इंकार कर दिया और स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग को प्रोत्साहित किया। गाँधीजी ने अपनी पुस्तक 'हिन्द स्वराज्य' में लिखा है कि ब्रिटिश सरकार भारत में भारतीयों के सहयोग से ही चल सकती है इसलिए अगर भारतीयों ने सहयोग देने से इंकार कर दिया तो हम ब्रिटिश साम्राज्य के पतन के बाद स्वराज्य प्राप्त कर सकते हैं। अतः गाँधी जी ने अंग्रेजों को किसी भी प्रकार के सहयोग न देने की नीति अपनाई।

असहयोग आंदोलन के लिये 1919 में पारित रौलेट एक्ट (काला कानून) 13 अप्रैल 1919 को जलियावाला बाग हत्याकाण्ड सन् 1914 से 1918 तक प्रथम विश्वयुद्ध, हण्टर समिति और खिलाफत आंदोलन आदि कारण विशेष रूप से उत्तरदायी थे। गाँधी जी ने आंदोलन को सफल बनाने के लिए सम्पूर्ण देश का भ्रमण किया और जनता को अपने कार्यक्रम से अवगत कराया। सर्वप्रथम सरकार द्वारा प्रदान की गई उपाधियों को लौटाकर, सिविल सेवाओं, पुलिस, सेना, अदालतों विधान परिषदों, स्कूल और विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करके आंदोलन प्रारंभ किया तथा स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग पर जोर दिया गया। घर–घर में चरखे से बने कपड़े का प्रयोग किया जाने लगा जिससे विदेशी कपड़ों का आयात बहुत गिर गया। आंदोलन प्रगति पर था कि दुर्भाग्यवश 5 फरवरी 1922 को नाराज किसानों ने उत्तर प्रदेश के चौरी–चौरा में एक स्थानीय पुलिस स्टेशन पर हमला किया। इस घटना में 21 पुलिस कर्मी और एक थानेदार मारे गये। अतः गाँधी जी ने आंदोलन में हिंसा का प्रवेश होने के कारण आंदोलन वापिस ले लिया। यह आंदोलन अत्यन्त सफल रहा क्योंकि इसे लाखों भारतीयों का प्रोत्साहन मिला। इस आंदोलन ने ब्रिटिश प्रशासन को हिलाकर रख दिया।

(2) सविनय अवज्ञा आंदोलन (1930–1934) – सरकार द्वारा दमन किये, जाने के विरोध में अहमदाबाद अधिवेशन में कांग्रेस ने सविनय अवज्ञा आंदोलन चलाने का निर्णय किया। महात्मा गाँधी जी ने इस आंदोलन का नेतृत्व किया। इस अभियान का लक्ष्य ब्रिटिश सरकार के आदेशों की सम्पूर्ण अवज्ञा करना था। सन् 1929 के लाहौर अधिवेशन में कांग्रेस ने घोषणा कर दी कि उसका लक्ष्य भारत को पूर्ण स्वाधीन करना है। इस आंदोलन के दौरान यह निर्णय लिया गया कि भारत 26 जनवरी को पूरे देश में स्वतंत्रता दिवस मनायेगा। अतः 26 जनवरी 1930 को पूरे देश में बैठकें आयोजित की गई और कांग्रेस ने तिरंगा झण्डा फहराया। ऐसी स्थिति में गाँधी जी ने 12 मार्च 1930 को साबरमती से समुद्रतट के एक गांव दाण्डी में नमक कानून तोड़ने की यात्रा आरंभ की। इस यात्रा के प्रत्येक कदम के साथ भारतीयों में उत्तेजना और जोश बढ़ता ही जा रहा था। 6 अप्रैल 1930 को गाँधी जी ने नमक कानून तोड़कर ब्रिटिश सरकार की धज्जियां उड़ा दी। कार्यक्रम के तहत महिलाओं ने शराब की दुकानों, अफीम के अड्डों और विदेशी विक्रेताओं के सामने धरने दिये, विदेशी वस्त्रों की होली जलाई गई। सरकार ने आंदोलन को दबाने के लिए सख्त कदम उठाये। गाँधी जी सहित अनेक नेताओं को जेल में डाल दिया अनेक प्रकार की यातनायें देने लगे और सन् 1930 से 1932 तक तीन गोलमेज सम्मेलन लंदन में आयोजित किये गये लेकिन भारतीयों को कुछ भी हाथ नहीं लगा। इसी बीच गाँधी जी को रिहा कर दिया गया था ताकि वे गोलमेज सम्मेलन में भाग ले सके। ब्रिटिश सरकार ने कुछ समझौते किये थे लेकिन कुछ दिनों बाद ही ब्रिटिश सरकार ने सभी शर्तों को तोड़ दिया। जिसके कारण यह आंदोलन अपने आप धराशाही हो गया। इस आंदोलन ने ब्रिटिश सरकार को यह दिखा दिया कि अब भारत की जनता उनकी सत्ता ठुकराने के लिये कमर कस चुकी है।

(3) भारत छोड़ो आंदोलन (1942) – भारत छोड़ो आंदोलन देश का सबसे बड़ा आंदोलन था जिसकी वजह से अंग्रेज भारत छोड़ने पर मजबूर हो गये थे। यह आंदोलन ऐसे समय प्रारंभ किया गया जब दुनिया काफी बदलावों के दौर से गुजर रही थी। पश्चिम में द्वितीय विश्वयुद्ध लगातार जारी था। पूर्व में साम्राज्यवाद के खिलाफ आंदोलन तेज होते जा रहे थे। ऐसे समय में एक तरफ भारत, गाँधीजी के नेतृत्व की आशा कर रहा था, वही दूसरी तरफ सुभाषचन्द्र बोस भारत को आजाद करने के लिये फौज तैयार कर रहे थे ऐसा कहना गलत नहीं होगा कि जन आंदोलन से भारत की आजादी की मजबूत जमीन तैयार हो चुकी थी, बस उसमें अब स्वतंत्रता के बीज को बोना शेष था।

अप्रैल 1942 में क्रिप्स मिशन की असफलता के बाद ही स्वतंत्रता के लिये गाँधी जी का तीसरा जन आंदोलन आरम्भ हो गया। इसे भारत छोड़ो आंदोलन के नाम से जाना जाता है। 8 अगस्त 1942 को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने बम्बई में हुई बैठक में भारत छोड़ो आंदोलन प्रस्ताव पारित किया। इस प्रस्ताव में घोषित किया गया कि अब ब्रिटिश शासन की तत्काल समाप्ति भारत में स्वतंत्रता तथा लोकतंत्र की स्थापना के लिये अत्यंत जरूरी है।

भारत छोड़ो आंदोलन द्वितीय विश्वयुद्ध के समय 9 अगस्त 1942 को आरंभ किया गया था जिसे 'अगस्त क्रांति' के नाम से जाना जाता है। जिसकी बागडोर गाँधी जी के हाथों में थी। इस आंदोलन का लक्ष्य भारत से ब्रिटिश साम्राज्य को समाप्त करना था। इसमें 'करो या मरो' का नारा दिया गया। गाँधी जी ने कहा कि इस प्रयास में हम या तो स्वतंत्रता प्राप्त करेंगे या फिर अपनी जान दे देंगे। लेकिन 9 अगस्त 1942 की सुबह ही गाँधी जी सहित कांग्रेस के अधिकांश नेता गिरफ्तार कर लिये गये उन्हें देश के अलग–अलग भागों में जेल में डाल दिया गया, साथ ही राष्ट्रीय कांग्रेस की गतिविधियों पर प्रतिबंध लगा दिया गया। देश के प्रत्येक भाग में हड़तालों और प्रदर्शनों का आयोजन किया गया। सरकार द्वारा पूरे देश में गोलाबारी लाठी–चार्च और गिरफ्तारियां की गई। लोगों का गुस्सा भी हिंसक गतिविधियों में बदल गया। सरकार ने समाचार पत्रों पर प्रतिबंध लगा दिया। सन् 1942 के अन्त तक लगभग 60000 लोगों को जेल में डाल दिया गया। कई हजार लोग मारे गये परन्तु गाँधी जी का नारा 'करो या मरो' और 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' सम्पूर्ण देश में गूंज उठा था। गाँधी जी द्वारा चलाये सभी आंदोलन ने ब्रिटिश सरकार को भारत को स्वतंत्र करने के लिए मजबूर कर दिया।

इस प्रकार गाँधी जी द्वारा चलाये गये सभी आंदोलन, सत्य, अहिंसा सत्याग्रह के सिद्धांत पर आधारित थे, उन्होंने स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग पर बहुत अधिक जोर दिया। इसलिए गाँधी युग में चारों तरफ खादी ही खादी दिखाई देने लगी थी और लोगों ने उसे हृदय से अपना लिया था। आज चीन जैसे देशों को सबक सिखाने के लिए स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग रामबाण सिद्ध हुआ है।

वर्तमान समय में गाँधी जी द्वारा स्वाधीनता आंदोलन में जो भूमिका निभाई वह प्रासंगिक है अथवा नहीं। इस संबंध में स्पष्ट है कि उन्होंने भारत की आजादी में बहुत बड़ा योगदान दिया है। गाँधी जी को सभी ने युग पुरुष के रूप में स्वीकार किया। पिछली सदी में शायद ही ऐसा कोई जननायक के रूप में इस धरती पर आया हो जिसने लोगों के जीवन में इतना गहरा प्रभाव छोड़ा हो। गाँधी जी के सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह संबंधी विचार विश्व के अनेक नेताओं ने अपनाये। गाँधी जी का कहना था कि– अगर देश का विकास करना है तो गांवों का विकास जरूरी है। कुटीर उद्योग लगाना आवश्यक है, व्यक्तियों या विद्यार्थियों में कौशल विकास करना बहुत जरूरी है जो आज के समय की सबसे बड़ी जरूरत बन गई है। गाँधी जी के विचारों को अपनाने से सरकार का भारत को आत्मनिर्भर बनाने का लक्ष्य पूरा होने की संभावना है। इसलिए युवा वर्ग को अवश्य ही गाँधी जी के विचारों का अध्ययन कर अपने जीवन में उतारने का प्रयास करना चाहिए। अतः स्पष्ट है कि विश्वशान्ति में गाँधी जी के योगदान को कभी भी भुलाया नहीं जा सकता।

सन्दर्भ संकेत

1. डॉ. अरोड़ा, एन.डी. – राजनीति विज्ञान, टाटा मैक्ग्राहिल नई दिल्ली, 2011, पृ.138
2. गावा, ओमप्रकाश – राजनीतिक विचारक, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2001, पृ.65
3. गोयल, ओ.पी. – भारतीय राजनीतिक विचारक, किताब महल, इलाहाबाद, 1965, पृ.136
4. गांधी, मोहनदास करमचन्द – सत्य के प्रयोग आत्मकथा : भारतीय साहित्य संग्रह, राजपाल एण्ड संस दिल्ली, 2018, पृ.19
5. गावा, ओमप्रकाश – राजनीतिक विचारक, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2001, पृ.66
6. M.K. Gandhi, My Experiment with Truth, p.591
7. कश्यप, सुभाष – संवैधानिक विकास एवं स्वाधीनता संघर्ष, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, नई दिल्ली, 1999, पृ.123
8. गावा, ओमप्रकाश – राजनीतिक विचारक, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2001, पृ.69
9. प्रतियोगिता दर्पण, उपकार प्रकाशन, आगरा, 1992, पृ.1126

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

महिला सशक्तीकरण अभियान कितना सफल है?

डॉ. अन्शु केडिया
एसोसिएट प्रोफेसर–समाजशास्त्र
ए0पी0सेन मेमोरियल गर्ल्स डिग्री, कालेज, लखनऊ

समाज में दोयम् दर्जे के नागरिक की हैसियत से जीवन जीने वाली महिलाओं के आस्तित्व से ही मानवीय दुनिया का आस्तित्व है। लिंगभेदीय असमानता की शिकार इन महिलाओं की समस्याओं को सदैव समझा गया, इनके उत्थान व विकास से सम्बन्धित नीतियों को भी बनाया व अपनाया गया। ये नीतियां चाहे स्वतंत्रता पूर्व राजाराम मोहन राय, ईश्वर चंद्र विद्यासागर, महात्मा गांधी, ज्योतीवा फुले आदि जैसे–समाज सुधारकों और विचारको के प्रयास का परिणाम हो या स्वतंत्रता पश्चात् संवैधानिक नीतियो का सरकारों व विभिन्न स्वैच्छिक संगठनो के प्रयासों से महिला सम्बन्धित मुद्दे हमेशा नीतियों की प्राथमिकता में रहे हैं, फिर भी आज हमारे देश की महिलाएँ उस अपेक्षित हैसियत को नहीं प्राप्त कर पायी है जिसकी वे हकदार है अपवाद स्वरूप कुद महिलाओं को छोड़कर जिन्होंने न सिर्फ देश मे वल्कि विदेशों में अपनी शोहरत के परचम लहराए है। देश की संवैधानिक सत्ता के सर्वोच्च पदों पर भी आसीन हुई है लेकिन यह प्रतिनिधित्व बेहद कम है। नीतियाँ बनाने वाली यह महिलाएँ एक तरफ देश को चला रही हैं, वहीं दूसरी ओर पारिवारिक, सामाजिक, शारीरिक, धार्मिक हिंसा के खिलाफ अपनी एकजुटता प्रदर्शित न कर पुरूष प्रधान सत्ता के पोषण में मदद कर रही हैं।

आज देश की आधी से ज्यादा महिलाएँ 'बालिका वधू' हैं। लगभग 64.7% लड़कियों को 18 वर्ष से पहले दुल्हन बनना पड़ता है, लगभग 9.1% लड़कियों का विवाह 12 वर्ष की उम्र तक कर दिया जाता है। नेशनल फैमिली हेल्थ सर्वे 2005 – 06 के अनुसार बालिग होने से पूर्व 100 में से 40: लड़कियाँ माँ बन जाती है। 0.6% लड़कियाँ तो 12 साल से पहले माँ बनने लगती है।

महिलाओं के विरूद्ध हिंसा चाहे वह घर की चहारदीवारी में हो या सार्वजनिक स्थल पर अनेक स्तर के प्रयासो के बावजूद भी थमने का नाम नहीं ले रही है। सरकारी कानून बनते तो हैं, लेकिन वह आम नागरिक की या तो समझ से बाहर होते हैं या उनकी कठिन प्रक्रिया उसे अपने को परे रखने पर विवश कर देती है। इसी की कड़ी मे शामिल है घरेलू हिंसा अधिनियम। इस अधिनियम का पारित होना एक अच्छा प्रयास है। इसके बारे में लोगो को जागरूक करने का जितना प्रयास सरकारी मशीनरी द्वारा किया गया, उससे कई गुना ज्यादा महिला मुद्दो पर कार्य करने वाले स्वैच्छिक संगठनों द्वारा परन्तु आंकड़े बताते है कि इस तरह के यौनिक शोषण सम्बन्धी घटनाओं मे कहीं से भी कमी नहीं आ रही हैं। वर्ष 2008 मे गृह मंत्रालय द्वारा जारी आंकड़ो के अनुसार देश में हर दिन बलात्कार के 57 मामले दर्ज होते हैं यानी हर 25 मिनट में एक महिला के साथ बलात्कार होता है। प्रति मिनट 106 महिलाएं छेड़छाड़ का शिकार होती हैं। राष्ट्रीय महिला आयोग के अद्यतन आंकड़े दर्शाते हैं कि प्रत्येक 24 मिनट में एक महिला यौन शोषण, प्रत्येक 43 मिनट मे अपहरण, प्रत्येक 54 मिनट में बलात्कार और 102 मिनट के अन्तर से दहेज उत्पीड़न की शिकार होती हैं। इसी प्रकार राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो की वर्ष 2007 की रिपोर्ट में अकेले दिल्ली में बलात्कार के 513 मामले दर्ज किये गये जो उसी अवधि के दौरान मुम्बई (171) बंगलौर (62) इंदौर (74), पुणे (65), चेन्नई (46), में दर्ज किये गये मामलों की अपेक्षा काफी अधिक है ये वे मामले हैं जो दर्ज कराए गये हैं, अर्थात् प्रकाश में आये हैं लेकिन वास्तविक मामले इससे कहीं ज्यादा है, जो सामाजिक, पारिवारिक इज्जत जैसे प्रश्न के आगे बहुत कमजोर पड़ जाते है। इस तरह की हिंसाए महिलाओं को मनोवैज्ञानिक स्तर पर तोड़कर रख देती है। अतः मात्र कानून बनाने से ही इसका उन्मूलन नही हो सकता। आवश्यकता है कि इसके लिए

चौतरफा प्रयास किए जाएं। इन प्रयासों में कानून बनाना तो शामिल है, साथ ही महिलाओं को अच्छी तरह से शिक्षित करना भी जरूरी है ताकि वे स्वयं भी अपने अधिकारों के लिए जागरूक हो सके। महिलाओं का घर से बाहर निकलकर आर्थिक क्षेत्र में स्वलम्बी बनना बेहद जरूरी है ताकि आर्थिक स्वतंत्रता उन्हे आर्थिक व मानसिक रूप से मजबूती दे सके और वे अपने निर्णय स्वयं ले सके। महिलाओं की ये स्थिति चूंकि हमारी समाजीकरण की प्रकिया में हमारे मन मस्तिस्क मे बैठा दी जाती है अतः परम्परागत प्रस्थिति को, जो पीढ़ियो से चली आ रही है, को तोड़ने के लिए पुनः हर तरह के प्रयास की आवश्यकता होगी।

वर्तमान युग संचार क्रांन्ति का युग है अतः मीडिया भी इस क्षेत्र में महती भूमिका निभा सकता है। कुछ टीवी चैनल्स महिलाओं के धारावाहिको के माध्यम से महिलाओं का जो चरित्र चित्रण कर रहे हैं, वे दर्शाते है कि या तो महिला एक निहायत कूटनीतिज्ञ है जो पैसे के लिए कुछ भी कर सकती है, या अत्यधिक सीधी सादी सती सावित्री है जो पूरे कुनबे को समेटे जिन्दगी जी रही है। ये दोनों ही प्रकार के चरित्र अलग–अलग छोर के है जो एक आम भारतीय महिला का प्रतिनिधित्व नहीं कर पाते। इन्ही टी0वी0 चैनल्स में ऐसे भी है जो ग्लैमर के नाम पर समाज मे अश्लीलता परोस रहें है। मीडिया जो कि समाज का दर्पण है और जिसकी महती भूमिका समाज में फैली कुरीतियों के खिलाफ माहौल बनाने की है वह कैसे अपने उत्तरदायित्व को निभा पायेगा। विभिन्न धारावाहिकों में महिलाओं के इस तरह के चरित्र चित्रण से समाज को क्या दे पाएगा?

सरकार द्वारा कन्या भ्रूण हत्या समस्या को देखते हुए इसे कानूनी जुर्म घोषित किया गया है। यहाँ तक कि पैथालॉजी मे जांच करवाकर लड़का–लड़की का पता लगाना भी गैर कानूनी है। लेकिन लड़कियो के प्रति दुर्भावना रखने वाले लोगो को किसी न किसी प्रकार से व्यवस्था से छिद्र मिल ही जाते हैं। वे न कानून की परवाह करते हैं और न अपने अन्तर्मन की हैं और सहजता से ही अजन्में बच्चे की हत्या करवा देते हैं। इस प्रकिया ने काफी हद तक लिंग अनुपात को ही गड़बड़वा दिया है। स्त्री–पुरूष के बीच का यह अनुपात 1991 में प्रति 1000 पुरूष की तुलना मे 945 से गिरकर 2001 मे 927 हो गया है और तो और शिक्षा व समृद्धि ने इसके अनुपात को बढ़ाने मे सहयोग ही दिया है। पंजाब, गुजरात, हरियाणा जैसे– समृद्ध राज्यों का उदाहरण तो सभी के सामने है ही। एक अनुमान के अनुसार पिछले 20 वर्षों में देश भर में लगभग 1 करोड़ बेटियों को जन्म से पहले मार दिया गया।

बेटियों के प्रसव पूर्व मारे जाने के उदाहरण तो है ही प्रसव के दौरान मां भी बहुसंख्या से मरती हैं। एक अनुमान के अनुसार भारत में प्रतिवर्ष 1 लाख महिलाएं प्रसव दौरान मृत्यु का शिकार होती हैं। इसका मुख्य कारण महिला का कुपोषित होना व 18 वर्ष से पूर्व विवाह का किया जाना भी है।

नारी वर्ग के साथ तिरस्कार, अपमान, शोषण, असहाय, अबला जैसी भावनाएँ केवल भारतीय संदर्भ मे ही नहीं दिखायी देती, वरन् यह वैश्विक है। फ्रांसीसी महिलाओं ने फ्रांसीसी क्रान्ति में भागीदारी दी। बास्तील के पतन में सहयोग दिया, परन्तु विजय के प्श्चात् बने संविधान में इन्ही महिलाओं को नकार दिया गया। यहां तक कि अमेरिकी व फ्रांसीसी संविधान में इन्हे मताधिकार से भी वंचित कर दिया गया।

यूरोपीय देशों में नारी आंदोलन 19वीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों मे सामने आने लगे एवं सांगठनिक रूप से ये अपने आपको मजबूत भी करने लगे । इन्हे मतदान का अधिकार तो मिला पर इसे पर्याप्त न मानते हुए लूसी स्टोन ने 1855 मे कहा ''मत देने और सम्पति रखने का अधिकार मेरे लिए बहुत थोड़ा है अगर मैं स्वयं अपने शरीर और उसके इस्तेमाल को पूरे अधिकार मे नहीं रख सकती।'' यूरोप और अमेरिका मे महिलाओ की काम की दशा, आर्थिक स्वतंत्रता जैसे मुद्दों के लिए अनवरत आवाजे उठती रही, कुछ सुधार भी होते रहे, परन्तु नारी मन से स्वतंत्रता महसूस करने मे सफल न हो सकी। फ्रांसीसी लेखिका सीमोन द बोवुआर ने अपनी कृति 'द सेकेण्ड सेक्स' (अनुवादित स्त्री उपेक्षिता) में नारी की स्थिति का गहन विश्लेषण कर औरत के शोषण के विभिन्न कारणों को गिनाया व इसके लिए प्रकृति को भी दोषी ठहराया।

उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भिक दौर का उदारवादी नारीवादी आन्दोलन मात्र दासता उन्मूलन व मताधिकार तक

सीमित रहा। इसने महिलाओं के हितों हेतु सामाजिक चेतना तो उत्पन्न की, परन्तु यह चेतना सदियो से चली आ रही सामाजिक संरचना में अन्तर्निहित शोषण के मुद्दे को छू भी न सकी । यही कारण रहा कि उदारवादी नारीवादी आंदोलन दूसरी दोनों मुख्य नारीवादी विचार धाराओं मार्क्सवादी/समाजवादी व रेडिकल नारीवादी की आलोचना का शिकार भी रही। मार्क्सवादी नारीवादियों का मानना रहा है कि महिलाओं का शोषण समाज की परम्परागत, पारिवारिक ढांचे में निहित है अतः आवश्यक है कि उन्हे सार्वजनिक उत्पादन में शामिल किया जाए और साथ ही घरेलू श्रम के बदले उनके वेतन का भी निर्धारण हो।

मार्क्सवादी व रेडिकल नारीवादी समर्थक दोनों ही महिलाओं का उत्पीड़न परम्परागत स्थिति में देखते है जहां मार्क्सवादियों का जोर श्रम पर रहता है वहीं रेडिकल नारीवादी समर्थक पारिवारिक निजी व सार्वजनिक विभाजन को पूरी तरह गलत सिद्ध कर नारा देते हैं, ''व्यक्तिगत ही राजनीतिक है।''

पुराने सभी विचारों से भिन्न इसने स्त्री को पहले से मौजूद सैद्धान्तिक ढांचे मे स्थित करने का प्रयास न कर पूरी संरचना के ही परिवर्तन की बात की, ताकि परिवर्तित दृष्टिकोण स्त्री केन्द्रित विचारों को नए सिरे से पिरो सके। रेडिकल नारीवादियों ने स्त्री और पुरूष के अलगाव की स्थित में सामाजिक संगठन का एक वैकल्पिक आधार भी प्रस्तुत किया जिसका आधार इनके अनुसार समलैंगिक सम्बन्ध हो सकता है।

इन आन्दोलनो से उठी आवाज आज इस स्तर तक पहुंच ही गयी है जो जनमानस को झकझोरने के लिए पर्याप्त है। काहिरा तथा बीजिंग जैसे अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में नारी मुद्दे को एजेण्डों में शामिल किया जाना इस समस्या के प्रति सहमति दर्शाता है, परन्तु इसके प्रति गहन संवेदनशीलता की दरकार है। मात्र कागजों में समेटना या सेमिनारों, कार्यशालाओं या गोष्ठियों में दो शब्द कहकर फौरी तौर पर संवेदनशीलता व्यक्त कर देना पर्याप्त नहीं है। दिक्कत तो यही है कि एजेण्डे में शामिल करना ही हल नहीं, हल तभी निकलेगा जब कार्य रूप में रणनीतिक पहल होगी।

भारत में महिला व पुरूषों के बीच जनसंख्या का अनुपात 52 और 48 का है। इसके साथ ही साथ यदि देश की अर्थव्यवस्था में महिलाओं के योगदान का अध्ययन करें तो पता चलता है कि यह इनके अनुपात से बहुत कम मात्र 22.2% है। ये आंकड़े उन महिलाओं के हैं जो प्रत्यक्षतः आर्थिक क्षेत्र में अपने आपको लगाए हुए हैं। यह महिलाओ के साथ विडम्बना नही तो क्या है कि उनके घर के श्रम व खेती के श्रम को आर्थिक रूप से आंका नही जाता क्योंकि यह उनका दायित्व माना जाता है। हमारे पितृ सत्तात्मक मूल्यों, मान्यताओं मे यह धारणा बलवती रही है कि महिलाएं कुछ काम नहीं करती हैं, या वे कमाती नहीं है क्योंकि हमारे यहां घरेलू श्रम आय मे नहीं आंका जाता। अभी हाल ही में आए अदालती फैसले इस मिथक को तोड़ने में मील का पत्थर साबित हो सकते हैं कि महिलाएं कुछ काम नहीं करती।

दिल्ली तीस हजारी कोर्ट ने अपने एक अहम् फैसले में सड़क हादसे की शिकार एक गृहणी की मौत पर बतौर मुआवजा 7.33 लाख रूपये उसके परिजनों को देने का निर्देश दिया । इस गृहणी की आय अदालत ने प्रति माह 6000/–मानी। कोर्ट ने इस फैसले का आधार सुप्रीम कोर्ट के एक फैसले लता बाधवा बनाम् स्टेट ऑफ बिहार केस 1989 को बनाया, जिसमें एक गृहणी संतोश रानी की दुर्घटना में मौत हो गयी। सुप्रीम कोर्ट ने उस महिला की आय उस समय 3,000/– प्रति माह आंकी। बढ़ती मंहगाई तथा बदलती जीवन शैली के अनुरूप तीस हजारी कोर्ट ने यह राशि बढ़ाकर 6,000/– कर दी। उम्र की सीमा सुप्रीम कोर्ट ने 34 से 59 साल तय की थी। पोस्टमार्टम रिपोर्ट के अनुसार संतोश रानी की उम्र 50 वर्ष आंकी गयी । अतः ट्रक की इन्श्योरेन्स कम्पनी को 9 साल की उसकी आय तथा साथ में कुछ हर्जाना मिलाकर देने का निर्देश दिया गया।

इसी केस से मिलते जुलते केस का निर्णय चेन्नई उच्च अदालत मे सुनाया गया। इस केस मे पति–पत्नी दोनों ही एक दुर्घटना में मारे गए। पति के नौकरी पेशा होने के कारण उसका मुआवजा उसके वेतन के आधार पर आसानी से तय हो गया लेकिन पत्नी चूँकि गृहणी थी अतः मुआवजा का निर्धारण कठिन था। कोर्ट ने महिला का वेतन 3,500 आंका और इस आधार पर 7.6 लाख रूपये मुआवजा देने का निर्देश दिया। कोर्ट ने कहा

कि एक गृहणी को भी कमाने वाले सदस्य के रूप में गिना जाना चाहिए क्योंकि उसके द्वारा दी जाने वाले घरेलू सुविधाएं ही पति को पुनः ऊर्जावान बनाकर अर्जन कार्य हेतु सक्षम बनाती हैं। अपने निर्णय में जजों ने गृह कार्य के आकलन के मोटे तौर पर 3 आधार भी गिनाए। (1) यदि वह घर पर नही होती और बाहर कमाती होती तो कितना कमाती। (2) अगर शादी के बाद पति–पत्नी को बराबर का आर्थिक पार्टनर माना जाए तो पति के वेतन का आधा हिस्सा उसका है। (3) यदि वह घर में जितना काम करती थी, उसके लिए किसी को पैसा देकर करवाया जाए तो कुल काम के लिए कितना पैसा देना पड़ेगा।

इसमें दो राय नहीं है कि महिलाओ को हाशिए पर रखकर कोई भी देश आर्थिक विकास मे सक्षम रहा हो। जो भी देश महिलाओ को विकास की मुख्य धारा में जोड़ते गए, सफलता के पथ पर शीघ्रता से अग्रसर भी होते गए। वर्तमान में कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जहां महिलाओं ने अपनी सफलता का परचम न लहराया हो, यह यही सिद्ध करता है कि महिलाओं को यदि अवसर दिया जाये तो वे परिवार, समाज व देश के विकास में हितकारी सिद्ध होगी। इस सच्चाई से हमारे देश की सरकार भी अवगत है जिसका परिणाम हमें महिलाओं सम्बन्धित अनेक नीतियों व कार्यक्रमों मे दिरवायी देता है। भारत में महिलाओं द्वारा संगठित संघर्षो का सिलसिला पूना के शैक्षणिक सुधारो संबन्धित संघर्षो (1921) से नजर आता है। सन 1946 ई0 में संयुक्त राष्ट्र के तत्वावधान में महिलाओं की स्थिति के बारे में एक आयोग का गठन किया गया जिसकी 25वीं रिपोर्ट सभी देशों से अपील करती है कि अपने यहां महिलाओं की स्थिति उन्नत करने के प्रयास करें।

भारत में महिलाओं की स्थिति की जांच के सम्बन्ध में सन 1971 ई0 में एक राष्ट्रीय स्तर की कमेटी 'कमेंटी ऑन स्टेट्स ऑफ वीमेन' बनी। दस महिला सदस्यों की इस कमेटी ने सन 1974 ई0 में सरकार को दी गयी अपनी रिपोर्ट में अन्य सिफारिशों के अलावा राजनीति में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी पर विशेष जोर दिया। सन 1980 के दशक में महिला आन्दोलन अपनी पूरी मजबूती और स्पष्टता के साथ उभरा। सन 1983 ई0 में विभिन्न महिला संगठनों द्वारा दहेज विरोधी मोर्चे का गठन किया गया। परिणामस्वरूप भारत सरकार ने परिवार द्वारा सताई गयी महिलाओं के लिए 'क्राइम अगेन्स्ट वीमेन सेल' खोलें। सन 1985 ई0 में राष्ट्रीय महिला विकास की प्रकिया मे महिलाओं के योगदान को देखते हुए सातवीं पंचवर्शीय योजना में 'महिला और विकास' विषय पर अलग से फोकस किया गया।

केन्द्र सरकार द्वारा वित्तीय समर्थन प्राप्त संवैधानिक निकाय 'राष्ट्रीय महिला आयोग' की स्थापना की गयी। 26 अक्टूबर 2006 से घरेलू हिंसा से सम्बद्ध महिला संरक्षण सम्बन्धी अधिनियम भी लागू किया गया, जिसमें 1 वर्ष कैद और 20,000/– जुर्माना या दोनों को प्रावधान हैं।

सन 1993 ई0 में एक राष्ट्रीय महिला कोष की भी स्थापना की गयी यह कोष देश की गरीब महिलाओं को अपनी सामाजिक और आर्थिक स्थिति मे सुधार हेतु आय सृजन मे सहयोग देता हैं। वर्तमान में इसकी मूल राशि बढ़ाकर 100 करोड़ रूपये कर दी गयी है।

गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले परिवारों के द्वारा स्वयं सहायता समूह के माध्यम से स्वरोजगार हेतु ऋण एवं अनुदान का प्रावधान स्वर्ण जयन्ती ग्रामीण स्वरोजगार योजना के अर्न्तगत रखा गया है। वर्तमान में देश में लगभग 7 लाख स्वयं सहायता समूह है जिसमें महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने में उल्लेखनीय योगदान दिया है।

महिलाओं और बच्चों के समग्र विकास के लिए सन 1985 ई0 में मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अधीन महिला और बाल विकास विभाग गठित किया गया है। सन 2006 ई0 में इसे स्वतंत्र मंत्रालय का दर्जा दे दिया गया। गर्भवती व धात्री महिलाओं के पोषण व 6 वर्ष तक के बच्चों के स्वस्थ विकास के लिए समेकित बाल विकास परियोजना कार्यक्रम एक वृहद कार्यक्रम के रूप में पूरे देश में चलाया जा रहा है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रत्येक ग्राम स्तर पर आंगन बाड़ी खोली गयी है जो पूरक पोषाहार, वजन, अनौपचारिक शिक्षा, स्वास्थ्य परीक्षण जैसे कायक्रमों से महिलाओं व बच्चों को लाभान्वित कर रही है।

महिला और बाल विकास मंत्रालय के माध्यम से हाल ही में धन लक्ष्मी, उज्जवला, प्रियदर्शनी आदि कई नयी

योजनाएं शुरू की गयी हैं। 24 जनवरी को राष्ट्रीय बालिका दिवस घोषित किया गया है।

असम के अतिरिक्त देश के 'बीमारू राज्यों' में 1 अप्रैल 2005 से जननी सुरक्षा योजना प्रारम्भ की गयी है। पूर्व नाम राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना के नाम से जानी जाने वाली यह योजना गरीबी की रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले परिवारों की महिलाओ हेतु है। प्रसव पूर्व और प्रसवोपरान्त मातृत्व लाभ हेतु 500/– वित्तीय सहायता प्रदान करने को भी व्यवस्था हैं।

इसी तरह स्वयंसिद्धा, स्वास्थ्य घर योजना, स्वाधार, इन्दिरा आवास योजना, साइकिल प्रदाय योजना, लाडली लक्ष्मी योजना, गोद भराई योजना आदि वे विभिन्न योजनाएं हैं जो महिलाओं को केन्द्र में रखकर बनायी गयी हैं व वर्तमान में चल रहीं हैं।

अभी तक महिलाओं के लिए आर्थिक अर्जन के लिए कुछ निश्चित व्यवसाय ही सर्वमान्य स्वीकृति रहें है, चाहे वह शिक्षण जैसे कार्य हों या रिसेप्शनिस्ट का। परन्तु वर्तमान व्यावसायीकरण की प्रकिया ने महिलाओं के लिए नए अवसर खोले हैं। अब वे माल्स, फाइनेन्स, मीडिया, काल सेण्टरस आदि में बहुतायत में दिखने लगी है। यह बात जरूर दीगर है कि इन अधिक घण्टों की नौकरी में ये मेहनत के अनुसार अभी भी पर्याप्त वेतन नहीं पा पाती। संगठन शक्ति के अभाव में सौदेबाजी भी नहीं कर पाती। यहीं कारण है कि नियोक्ताओं के लिए महिला कार्मिक प्राथमिकता में रहते हैं। कुछ एक महिलाएं आर्थिक क्षेत्र के शीर्ष पायदान पर भी पहुंची है पर इनकी संख्या उंगलियों पे गिनी जा सकती है। नारी सशक्तीकरण जैसे मुद्दे उठाते समय आम जिन्दगी से जूझती नारी वर्ग को ध्यान में रखकर ही रणनीति बनानी होगी।

अभी हाल ही में केरल सरकार द्वारा महिलाओं को आबकारी गार्ड के रूप मे भर्ती करने का निर्णय लिया गया। पुलिस में भी महिलाएं भर्ती की जा रहीं है। पेट्रोल पम्प पर भी महिला स्टाफ दिखायी देने लगा है यहां तक कि बसों मे महिला कण्डेक्टर की नियुक्ति की भी चर्चा जारी है।

यद्यपि इन क्षेत्रों में महिलाओं की नियुक्ति महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता के मद्देनजर नहीं की गयी, वरन् इन क्षेत्रों में महिलाओं की बढ़ती भागीदारी के उपरान्त होने वाली समस्याओं के चलते की गयी है। जो भी हो इसके दूरगामी परिणाम लिंग समानता के परिप्रेक्ष्य में सहायक ही सिद्ध होंगे और महिलाओं लिए आर्थिक विकल्प भी प्रस्तुत करेंगे।

भारत एक कल्याणकारी देश हैं और संविधान में भी यह उल्लिखित है कि लिंग के आधार पर किसी तरह का भेदभाव नहीं किया जायेगा। दुर्भावना करने पर कारावास, आर्थिक दण्ड जैसे प्रावधान भी हैं। सरकार के इरादे तो नेक लगते हैं परन्तु अपेक्षित परिणाम अभी दूर की ही कौड़ी है। इसके लिए जरूरी है कि सरकारी कानूनों के क्रियान्वयन के लिए सरकारी मशीनरी की इन मुद्दों पर समझ भी हो। महिलाओ की स्वयं के मुद्दो पर निर्णय में भागीदारी होनी चाहिए। पंचायत राज अधिनियम मे दी गयी आरक्षण व्यवस्था ने ग्रामीण महिलाओं को जन प्रतिनिधि बनने का अच्छा अवसर प्रदान किया है। इन महिला जन प्रतिनिधियों के कार्य यद्यपि पूरी तरह कसौटी पर खरे नहीं उतर पाए हैं, फिर भी कम जागरूक, अशिक्षित, संयुक्त परिवार के माहौल मे पली–बढ़ी इन ग्रामीण महिलाओं को यदि पर्याप्त मार्गदर्शन मिले, प्रशिक्षण मिले तो ये महिलाएं समाज से मूलभूत परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। कहीं कहीं इन जन प्रतिनिधियों ने सराहनीय कार्य भी किए है जो कि संसद में इस वर्ग के आरक्षण का रास्ता प्रशस्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका को निवर्हीत कर सकती है।

संदर्भ संकेत

1. जागृति, कुरूक्षेत्र, मार्च 2009
2. डा0 नीरज कुमार गौतम, कुरूक्षेत्र, मार्च 2009
3. अंजलि सिन्हा, कैसे हो गृहिणियों के काम का मूल्यांकन, सम्पादकीय, अमर उजाला व समरथ।

❑❑

हिन्दी सिनेमा में बदलते स्त्री – अस्मिता के प्रश्न

सोनम तोमर
शोध छात्रा (हिन्दी)
बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ

भारतीय हिन्दी फिल्मों ने समाज में अभूतपूर्व परिवर्तन किए हैं अभिनय, संगीत, चित्रण के माध्यम से मनोरंजन के साथ ज्ञान व जागरूकता में भी विकास किया है परन्तु शुरुआती दौर में सिने जगत को काफी कठिनाईयों का भी सामना करना पड़ा जिसमें अभिनय के लिए अभिनेत्री की भागीदारी सुनिश्चित कराना चुनौतीपूर्ण था क्योंकि भारतीय फिल्मों में प्रारम्भ में काम करने के लिए स्त्रियाँ नहीं आती थी जिसका कारण भारत में प्राचीन काल से ऐसी अवधारणा थी कि नाच–गाने की प्रस्तुति करने वाली स्त्रियाँ अविश्वसनीय होती हैं उनका चरित्र अच्छा नहीं माना जाता था इसलिए ''20वीं सदी की शुरुआत में जब दादा साहब फाल्के ने 1913 में 'राजा हरिश्चंद्र' फिल्म बनाने का फैसला किया तब फिल्मों में काम करने के लिए पुरुष तो तैयार हो गए लेकिन महारानी तारामती के किरदार को निभाने के लिए कोई महिला राजी नहीं हुई यहाँ तक कि वेश्याओं ने भी इसे अपनी गरिमा के खिलाफ समझ कर अभिनय करने से इंकार कर दिया। दादा साहब फाल्के क्या करते? मजबूर होकर होटल के वेटर अन्ना सालुंके को मना लिया और महिला की वेशभूषा में तारामती के रूप में पेश कर दिया।''[1] इस तरह भारत की पहली नायिका निजी जीवन में पुरुष थी लेकिन फिल्मों में नारी की मौजूदगी के बिना पर्दे पर जीवन को दिखाना मुमकिन ही नहीं नामुमकिन था। जिस तरह से सिक्के के दो पहलू होते हैं। उसी तरह से हिन्दी सिनेमा में स्त्री और पुरुष दोनों की भागीदारी का अपना महत्व है। दादा साहब फालके ने फैसला किया कि अपनी अगली फिल्म के लिए वह किसी महिला को मना लेंगे और उनकी तलाश पूरी हुई ''उन्होंने फिल्म 'भस्मासुर मोहिनी' में काम करने के लिए 'कमलाबाई गोखले' को मना लिया।''[2] मराठी नाटकों में काम करने वाली कमलाबाई भारत की हिंदी सिनेमा की पहली अभिनेत्री मानी जा सकती हैं उन्हें देखकर दूसरी महिलाओं ने भी फिल्मों में कार्य करने की हिम्मत जुटाई उनका पहला संघर्ष स्वयं से ही था क्योंकि उन बन्धनों को स्त्री ने अपना भाग्य मान रखा था इसके बाद अपने पति, भाई, पिता, परिवार, समाज और फिर भारतीय समाज की रूढ़िवादी व्यवस्था आदि न जाने तमाम कितनी चीजों से जूझते हुए वह पर्दे पर आई।

इसमें भारतीय निर्देशकों का बड़ा महत्वपूर्ण योगदान रहा। भारतीय परंपरागत समाज में स्त्री प्रश्नों को केंद्र में लाने का महत्वपूर्ण प्रयास हिन्दी सिनेमा ने पहली संवाद फिल्म 1931 'आलम आरा' आर्देशिर ईरानी के निर्देशन से ही शुरू हो गया था। इस फिल्म में आलम आरा का अभिनय 'जुबेदा' और 'आदिल' का अभिनय मास्टर विट्ठल ने निभाया था। 1912 से 1930 तक मौन सिनेमा के माध्यम से तथा उसके बाद लगातार बदलती छवि ने समाज में अभूतपूर्व बदलाव किए। बीसवीं सदी के तीन दशक बाद ''1935 में होमी वाडिया के निर्देशन में बनी फिल्म ''हंटरवाली'' ने स्त्री के अबला रूप का फ्रेम तोड़ कर उसे रॉबिनहुड की तरह गरीबों और अत्याचार के खिलाफ लड़ने वाली समाज की मददगार के रूप में पेश किया इस फिल्म की नायिका फिल्म के माध्यम से 'फियरलेस नादिया' के नाम से पहचानी जाने लगी और सुपर विमेन का कंसेप्ट देकर हिंदी सिनेमा को एक नई थीम और नया उद्योग सौंप गई। इस फिल्म में नायिका के अभिनय से समाज में क्रान्ति की लहर दौड़ गई, प्रभावित महिलाएँ घर के बाहर की दुनिया से रू–ब–रू होने लगी थी। नायिका का स्वयं चलती ट्रेन के ऊपर दौड़ना, घोड़े की सवारी, शेर के पिंजरे में खाली हाथ जाना, चाबुक लेकर सताने वालों की धुनाइ करना, अनेक ऐसे काम दिखाए गए।''[3] जिसके परिणामस्वरूप स्त्री को सबला होने की चेतना की एक नई दिशा मिली।

इसके बाद हिन्दी सिनेमा ने एक अलग से विषय व शीर्षक की फिल्म से भारतीय समाज को परिचित कराया जो शायद वर्तमान समय में भी इतना आसान नहीं हो सकता है। यह दौर भारतीय समाज के परतंत्र से स्वतंत्र होने के संघर्ष का था, जिसमें गांधी जी के विचारों का प्रभाव स्त्री व समाज के प्रत्येक वर्ग पर देखा जा सकता है उनके विचारों से प्रभावित निर्देशक फ्रेंच ऑस्टिन ने 1936 में 'अछूत कन्या' के माध्यम से बताना चाहा की 'महानता और अच्छे गुणों का किसी जाति विशेष से कोई संबंध नहीं है व्यक्ति जन्म से नहीं कर्म से बड़ा होता है 'अछूत कन्या' जातिवाद की वेदी पर एक अछूत लड़की कस्तूरी और ब्राह्मण पुत्र प्रताप के बचपन की दोस्ती से लेकर युवा अवस्था में प्रेम की गाथा है ''दोनों के माँ–बाप उनकी भावनाओं के खिलाफ उनकी शादी करवा देते हैं जिसका परिणाम कस्तूरी के ट्रेन की चपेट में आकर मर जाने से होता है जाति भेद और छुआछूत पर निशाना साधने के कारण कट्टरपंथी हिंदुओं ने 'अछूत कन्या' का काफी विरोध किया लेकिन यह फिल्म हिट रही खासकर युवाओं ने इसे काफी पसंद किया उस दौर में सामाजिक बंधनों, नैतिक मान्यताओं के कारण युवा अपनी भावनाएँ दबाकर जीते थे उनमें विद्रोह करने का साहस नहीं था।''[4] जात–पात, ऊँच–नीच के बंधनों को तोड़ने और प्रेम संदेश देने वाली यह फिल्म मात्र स्त्री विमर्श ही नहीं अपितु दलित विमर्श की नींव डालने का भी काम करती है। 'अछूत कन्या' इतिहास में एक मील का पत्थर फिल्म मानी जाती है।

इस फिल्म को देखते समय हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध उपन्यासकार धर्मवीर भारती का उपन्यास 'गुनाहों का देवता' याद आता है जिसमें चंदर और सुधा के प्रेम के अव्यक्त और अलौकिक रूप का चित्रण है चन्दर का नैतिक मूल्यों के समकक्ष अपने प्रेम को कुर्बान कर देना और अन्त में सुधा की मृत्यु पाठकों को भावुक होने पर विवश कर देती है। हिन्दी सिनेमा और साहित्य का सम्बन्ध अटूट है क्योंकि दोनों के केन्द्र में समाज रहा है। सामाजिक बदलाव और कुरीतियों के खिलाफ आवाज उठाना दोनों के मुख्य बिन्दु रहे हैं। हिन्दी सिनेमा में महबूब अली के योगदान को कैसे भुलाया जा सकता है। 1940 में उनके निर्देशन में आई 'औरत' को (A) वर्ग मतलब (एडल्ट) फिल्म घोषित कर, सूचना व प्रसारण मंत्रालय जिसे 1951 में सेंसर बोर्ड का नाम दिया गया रिलीज होने पर रोक लगा दी थी वजह यह थी कि उसके नायिका बिना दुपट्टे के परदे पर दिखाई गई थी परन्तु उन्होंने अपना संघर्ष समाप्त नहीं किया और 1957 में एक ऐसी फिल्म लेकर हमारे सामने प्रस्तुत हुए जिसे आज भी हिन्दी सिनेमा में बड़ा हस्तक्षेप माना जाता है। 'मदर इंडिया' भारत की पहली टेक्निकल फिल्म थी जिसने भारतीय माँ, आदर्श नारी की तस्वीर को बदलने का प्रयास किया ''जब राधा का बेटा बिरजू लाला की बेटी को विवाह मंडप से उठा लाता है राधा उसे रोकने की कोशिश करती है लेकिन वह नहीं मानता तो उस पर बन्दूक तान देती है बिरजू कहता है 'तुम मुझे मार नहीं सकती, तू मेरी माँ है' राधा कहती है 'मैं एक औरत भी हूँ'। गोली मारते समय राधा के चेहरे पर एक आदर्श नारी के दृढ़ता का भाव है लेकिन बिरजू को गोली लगते ही दृढ़ता के भाव ममत्व के भाव में बदल जाते हैं दरअसल राधा का यह संघर्ष व्यक्तिगत नहीं अपितु गाँव का और स्त्री की अस्मिता का संघर्ष है।''[5]

स्त्री अस्मिता के प्रश्न को लेकर हिन्दी सिनेमा पहले से ही संवेदनशील दिखाई पड़ता है जिसने स्त्री विमर्श की नींव ही नहीं स्त्री से सम्बन्धित विचार, विवेचन, परामर्श, चर्चा, जीवन से जुड़े संघर्ष एवं अस्तित्व पर मंथन किया हैं। स्त्री विमर्श स्त्री को सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा मानसिक शोषण से मुक्त करके पुरुष के समान सहभागिता का स्थान प्रदान करा कर उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व एवं अस्मिता को समाज में प्रतिष्ठित कराना ही हिन्दी सिनेमा व साहित्य का मुख्य उद्देश्य रहा है। प्रेम जीवन का महत्वपूर्ण पहलू होता है सब जगह व्याप्त होने के बाद भी लोग समाज के सामने स्वीकार करने में हिचकते हैं। 1960 में 'आसिफ' के निर्देशन में दस साल की मेहनत से बनी ''मुगल–ए–आजम'' भारतीय सिनेमा में ऐतिहासिक परिकथा मानी जाती है इसमें सम्राट का बेटा सलीम सुन्दर वैश्या अनारकली के प्रेम में अपने पिता व समाज के खिलाफ एक निराशाजनक युद्ध छेड़ देता है यह फिल्म पाकीज़गी की रूमानियत और मादकता की ऐसी मिसाल बन गई जिसके बराबरी सिने इतिहास का कोई रोमांटिक

दृश्य नहीं कर सकता 'जब प्यार किया तो डरना क्या' जैसे गीत के माध्यम से समाज के सम्मुख प्रेम करने की स्वतंत्रता व उसे स्वीकार करने का साहस इस फिल्म का सार है। इसके बाद 1976 में ''लैला–मजनू'' की लैला ने एक बार पुनः प्रेम की गुहार लगाते हुए समाज के समक्ष कहा ''कोई पत्थर से न मारे मेरे दीवाने को, हुस्न हाजिर है मोहब्बत की सजा पाने को''।

70 के दशक में गुलजार ने कमलेश्वर की कहानी पर आधारित फिल्म 'आंधी' में एक होटल प्रबंधक और एक राजनेता की इकलौती बेटी के प्रेम में बनते बिगड़ते रिश्तों को दिखाते हुए राजनीति में स्त्री की उपस्थिति व महत्व पर प्रश्न खड़ा किया था। इस फिल्म पर प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के राजनीतिक जीवन की छाप दिखाई पड़ती है। पिता के विवाह विरोध के बाद भी वैवाहिक जीवन में परिवेश और शादी के बाद परिवार और राजनीतिक महत्वाकांक्षा का द्वंद्व आरती को दोहरे पड़ाव पर ले आता है पति का राजनीति में काम को करना नापसंद करना आरती को परिवार छोड़ने पर मजबूर कर देता है। उसका वैवाहिक जीवन को त्याग राजनीति में आगे बढ़ना नारी की बदलती प्राथमिकताओं व उसके निर्णय क्षमता को दिखाता है।

राजा राममोहनराय, दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानंद, ज्योतिबा फुले, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर जैसे महान सामाजिक कार्यकर्ताओं के प्रयासों से 1856 में विधवा पुनर्विवाह अधिनियम पारित हुआ था परन्तु इतने वर्षों के बाद भी हम विधवा पुनर्विवाह को जमीनी स्तर पर सही से लागू न करा सके इसके महत्व को लोगों तक पहुँचाने का कार्य हिन्दी सिनेमा ने 'प्रेम रोग' (1982) फिल्म के सुखांत समाप्ति से करने की कोशिश की थी। राज कपूर ने एक इंटरव्यू में कहा था कि ''हम भारतीय बड़े पाखंडी होते हैं। जब अपने देश को सर्वोच्च सम्मान देना होता है तो उसे भारत माता कहते हैं परन्तु वास्तव में हम अपनी महिलाओं से निकृष्टतम् व्यवहार करते हैं। इस देश में औरतें सरेआम बेइज्जत की जाती हैं, जिंदा जलाई जाती हैं, और उनके साथ गुलामों सा बर्ताव किया जाता है किसी और देश में कितने बलात्कार और बहुओं को जलाने के मामले सामने नहीं आते जितने भारत में। हमारे देश में बेटी के जन्म को श्राप माना जाता है क्यों? ऐसा क्यों होता है औरत के साथ? आज जब विज्ञान ने इतनी तरक्की कर ली है फिर भी हम अमानवीय परम्पराओं की बेड़ियों में जकड़े हुए हैं। इस विषय ने मुझे इतना उद्वेलित किया कि मैंने इसी शीर्षक (प्रेम रोग) से फिल्म बनाने का निर्णय किया।''[6] इस फिल्म के माध्यम से महिला सशक्तिकरण की झलक भी दिखाई पड़ती है मनोरमा की माँ अपने पति से कहती है ''अगर मैं मर जाऊँ तो तुम दूसरी औरत लाने में जरा भी देर नहीं करोगे फिर मेरी बेटी क्यों विधवा का जीवन जिए?'' एक माँ का अपनी बेटी के प्रति यह प्रेम और सशक्त रूप इन रूढ़िवादी मान्यताओं के बदलाव की गुहार लगाता है।

1991 में उदारीकरण, औद्योगीकरण, पूँजीवाद के फैलते प्रभाव से प्रत्येक वर्ग (समाज, साहित्य, सिनेमा) को नई दिशा प्रदान की और सभी को बाजार का हिस्सा बना दिया अब नारी अबला से सबला व क्रांतिकारी रूप में भी दिखने लगी। 1994 में फूलन देवी के व्यक्तिगत जीवन पर आधारित फिल्म ''बैंडिट क्वीन'' ने समाज में यौन–उत्पीड़न और भेदभाव के खिलाफ मजबूत आवाज उठाई यह फिल्म स्त्री होने व दलित स्त्री होने दोनों की पीड़ा को बयां करती है। बाल विवाह, शोषण, अत्याचार की शिकार फूलन को घटनायें और परिस्थितियाँ उसे एक गिरोह का प्रमुख बनने के लिए अग्रणी करती है आत्म सम्मान, अपनी व दबे कुचलों की रक्षा के लिए हाथ में हथियार उठाकर उसने अपनी स्वतंत्रता का बिगुल बजा दिया था परन्तु स्वतंत्रता इतनी आसान नहीं थी। बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में हिन्दी सिनेमा ने पूरे भारतवर्ष में विभिन्न विमर्शों को जन्म दिया स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, किन्नर विमर्श, अल्पसंख्यक आदि।

नए लेखक, नयी कहानियाँ, नए विषय, नए कलाकार अब साहित्य और सिनेमा का हिस्सा बनने के बाद स्त्री रूप में बड़े बदलाव दिखाई पड़ते हैं। 21वीं सदी की स्त्री निडर भाव, निर्णय क्षमता, अधिकारों की माँग, विद्रोही चरित्र, हिंसा के खिलाफ आवाज उठाना उसने प्रारम्भ कर दिया था। राजकुमार संतोषी के निर्देशन में सन् 2001

में बनी ''लज्जा'' फिल्म पुरुष प्रधान समाज की शिकार चार अलग–अलग महिलाओं को हालात एक दूसरे से मिलाते हैं रामायण की सीता के कठिन जीवन संघर्ष व अग्नि परीक्षा पर प्रश्न उठाती यह फिल्म सीता के चरित्र को लेकर बनी धारणा को तोड़ने का कार्य करती है प्रत्येक पुरुष को सीता जैसी पत्नी इसलिए चाहिए क्योंकि वह सहनशील होगी परन्तु अब यह सम्भव न था। ''लज्जा'' फिल्म में जानकी नौटंकी में सीता का अभिनय के दौरान दर्शकों के समक्ष कुछ प्रश्न उठाती है – वह कहती है रावण मुझे उठा कर ले गया था उसमें मेरा क्या दोष? हम दोनों पति–पत्नी एक दूसरे से अलग रहे हैं मैं अकेली अग्नि परीक्षा क्यों दूँ? हम दोनों देंगे, सदियों से औरत ही सती होती आई है क्या कोई मर्द होता है अपनी औरत के लिए सती? यह विरोध उसका अपने अधिकारों व एक समान भाव न मिलने के कारण है वह प्रत्येक स्तर पर पुरुष से बराबरी की माँग करती है। तत्पश्चात् हिन्दी सिनेमा में स्त्री की भूमिका पर नजर डालें तो सन् 2008 में मधुर भंडारकर के निर्देशन में बनी फिल्म ''फैशन'' याद आती है। फैशन और ग्लैमर जगत जितना चमचमाता हुआ दिखता है यह सिर्फ सच्चाई का एक पहलू है इस चमचमाहट के पीछे जो अंधियारा छिपा है वह इतना गहरा है कि किसी और को तो क्या? लोग खुद को नहीं पहचान पाते। फिल्म में शोनाली गुजराल कहती है – ''यह जगह ही ऐसी है कि कब क्या बदल जाए कुछ नहीं पता चलता?'' फिल्म में 'मेघना माथुर' एक छोटे शहर की मध्यमवर्गीय लड़की मशहूर सुपर मॉडल बनने के सपने को पूरा करने के लिए अति महत्वाकांक्षा की शिकार हो जाती है जिसका परिणाम बड़ा दुखद होता है। मेघना जैसी बहुत सी लड़कियाँ जब उस चकाचौंध से टकराती हैं तो पता चलता है सपने और यथार्थ में कितना व्यापक अंतर है।

सिनेमा जगत की संवेदनहीनता, पूंजीवादी नीति, प्रतिस्पर्धा, महत्वाकांक्षा की होड़ में मनुष्य का मशीनीकरण होता जा रहा है जहाँ पर अभिनेत्री को मात्र वस्तु रूप में जिस तरह चाहे सजाएँ दिखाएँ उसकी अपनी बुद्धिमत्ता को शून्य आँका जाता है फिल्म में डिजाइनर का यह कथन 'डार्लिंग यू आर मॉडल अकल इस्तेमाल करने की कोई जरूरत नहीं है' पुरुषवादी सोच को दर्शाता है भारतीय संस्कृति व सभ्यता की बात करें तो हमारे यहाँ कलाओं का बड़ा महत्व रहा है परन्तु उसमें स्त्री भागीदारी की कमी पहले से ही रही है लेकिन पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव ने जो बहुत पहले से ही 'पारसी थिएटर' के माध्यम से हिन्दी सिनेमा में विद्यमान था के रूप में स्त्री और उसके नजरिए में बड़ा बदलाव किया अपनी जड़ों से कटाव और आधुनिकता के नाम पर पुरुषों की बराबरी जैसे शब्दों का सहारा लेकर आज की स्थिति नग्नता और अश्लीलता का पर्याय होती जा रही है।

हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध कवि मैथिलीशरण गुप्त कहते हैं।

''हम कौन थे, क्या हो गए हैं, और क्या होंगे अभी,
आओ विचारें आज मिलकर यह समस्याएँ सभी।''

इस समस्या का समाधान 1875 में आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती ने ''वेदों की ओर लौटो'' के नारे से दिया था इस कथन से तात्पर्य शास्त्री ज्ञानी या पंडित होने से नहीं अपितु अपनी जड़ों को छोड़ हम पूँजीवादी दुनिया की ओर अधिक अग्रसर हो गए हैं वहाँ से वापसी का संकेत है। भारतीय समाज में पितृसत्तात्मक सोच व उसकी जड़ों का फैलाव पूरे देश में व्याप्त था और है तो उससे सिनेमा जगत कैसे अछूता रह सकता है दरअसल सिने जगत का एक पहलू भोग भी है जहाँ पर सब एक दूसरे का भोग अपने स्वार्थ के लिए करते हैं चाहे वह अभिनेत्री हो या निर्देशक। परन्तु बाहर से सख्त दिखने वाली नारी अपनी प्रवृत्ति के अनुसार अंदर से बहुत कोमल भाव की होती है।

प्रसिद्ध साहित्यकार हजारी प्रसाद के शब्दों में ''स्त्री के दुख इतने गंभीर होते हैं कि उसके शब्द उसका दंशमाश भी नहीं बता सकते सहानुभूति के द्वारा ही उस मर्म वेदना का किंचित आभास पाया जा सकता है।'' वर्तमान हिन्दी सिनेमा की बात करें तो आज के सिनेमा के प्रश्न बीसवीं सदी के सिनेमा से अलग दिखते हैं। सिनेमा ने स्त्री मुद्दों पर बनी फिल्मों में अपने प्रश्नों का विस्तार किया है अब वह सजावट की वस्तु नहीं बल्कि कठिन परिश्रम

व धैर्यशीलता से महिलाएँ आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक सभी क्षेत्रों में सफलता का परचम लहरा रही हैं विश्व भर का ध्यान उनकी ओर आकर्षित हो रहा है।

लेखिका सुमन राजे अपनी कविता से आज की स्त्री शक्ति को सूचित करती हैं – ''सुन्दरियों, अपनी उपस्थिति को सिर्फ मोहक और दर्शनीय रूप मत दिया करो सुन्दरियों, ... तुम ऐसा करके तो देखो बदल जाएगी यह दुनिया सारी।''

इस तथ्य की सत्यता भी दिखाई पड़ रही है आज के समय में अभिनेत्री अपनी इच्छा अनुसार अभिनय व अपनी बात को रखने का निर्णय लेने जैसी स्थिति में धीरे–धीरे आ रही है समाज में भी उसके प्रति संकीर्ण सोच में बदलाव, अवसरों की उपलब्धता में इजाफा हुआ है लेकिन इस बात को भी नकारा नहीं जा सकता कि आज भी हम इतने बदले हैं अपनी रूढ़िवादी सोच, संकीर्ण मानसिकता के कारण हमारे यहाँ शोषित नारी की संख्या कम नहीं है या यूँ कहें कि शोषण नहीं उसके तरीके बदले हैं। सरकार द्वारा चलाए गए महिला सशक्तिकरण कार्यक्रमों को भी हिन्दी सिनेमा ने समाज के समक्ष उठाया है जिसने दहेज प्रथा, बेटी बचाओ–बेटी पढ़ाओ, शौचालय सुविधाएँ, भ्रूण हत्या पर रोक आदि।

अभी हाल ही जनवरी 2020 में आयी फिल्म ''छपाक'' लक्ष्मी अग्रवाल एसिड अटैक सरवाइवर की सच्ची घटना पर आधारित है उसने पन्द्रह वर्ष की उम्र में एक चौंतीस वर्ष के पुरुष के प्रेम को अस्वीकार कर दिया था जिस कारण उसने लक्ष्मी पर एसिड फेंका था। एसिड अटैक के बाद सात सर्जरी के बावजूद मालती अपने चेहरे के दसवें हिस्से को भी हासिल नहीं कर पाती जो एसिड फेंके जाने से पहले था। मालती कहती है ''कितना अच्छा होता एसिड बिकता ही नहीं, बिकता नहीं तो मिलता भी नहीं फिर फेंकता भी नहीं'' इस घटना से मालती के आत्मविश्वास में कमी, सपनों का दमन, निराशावादी जीवन उसको उभरने नहीं देते। उसने किसी को स्वीकार नहीं किया तो इसकी सजा उसने एसिड फेंक कर मालती को दी, उसके बाद वही समाज उसे देखने को तैयार नहीं है।

मालती माँ से कहती है ''नाक नहीं हैं कान नहीं हैं झुमके कहाँ लटकाउँगी'' यह मार्मिक संवाद एक महिला की क्षीण होती इच्छा शक्ति को दर्शाता है 12 दिसम्बर सन् 2012 में दिल्ली में निर्भया सामूहिक बलात्कार के बाद जनता में जागरूकता व उसके बाद मालती एसिड अटैक केस के कारण इसकी बिक्री पर रोक को लेकर संघर्ष इतिहास के पन्नों में दर्ज हो गया है। हिन्दी सिनेमा ने इसे बड़ी उपलब्धि के रूप में दर्शकों के सामने प्रस्तुत किया सिनेमा में ऐसे प्रयास पहले भी किए गये थे। 1978 में ''सत्यम् शिवम् सुन्दरम्'' रूपा का गाल आग से जल जाने पर चेहरा कुरूप हो जाता है परन्तु प्रारम्भ में रूपा के आत्मिक सौंदर्य से प्रभावित तथा अंत में राजीव का उसको जले हुए रूप के साथ पत्नी स्वीकार करना समाज में इस तरह की महिलाओं की उपस्थिति दर्ज कराता है 1985 में ''राम तेरी गंगा मैली हो गई'', 1982 में ''प्रेमरोग'', 1999 में ''मन'', 2006 में ''विवाह'' आदि के माध्यम से तन की सुन्दरता को गौण व मन की सुन्दरता को मुख्यधारा से जोड़ने का कार्य बखूबी किया है। बीसवीं सदी की तुलना में 21वीं सदी का हिन्दी सिनेमा अपने उत्कर्ष पर है।

निष्कर्षतः भारतीय सिनेमा का सफर स्टील फोटोग्राफी से शुरू होकर अवाक्, सावक, ब्लैक एण्ड ह्वाइट, स्टण्ट मैन, कलर जैसे विभिन्न उपादानों से होता हुआ आज डिजिटल युग तक आ पहुँचा है हिन्दी सिनेमा की इस यात्रा की परख यदि स्त्री सापेक्ष नजरिए से करें तो हम पाएँगे सिनेमा में स्त्री प्रतिनिधित्व का सवाल कई चरणों से होकर गुजरा है सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन के साथ–साथ स्त्री चरित्रों के प्रति दृष्टिकोण में भी बदलाव आया है यह बदलाव अचानक से न आकर आहिस्ता–आहिस्ता काल सापेक्ष रूप में सामने आया है।

यौन हिंसा, लिंगभेद, रूढ़िवादी सोच, महिला सशक्तिकरण, स्त्री आत्मसम्मान, खेलजगत, सिनेमाजगत, अभिनय, निर्देशक, मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति जैसे पदों पर स्त्री की मौजूदगी उसके बदलते अस्तित्व को

दिखाती है जिनको हम लज्जा, फैशन, नो वन कैन किल्ड जेसिका, तनु वेड्स मनु, कहानी, क्वीन, मैरीकॉम, नीरजा, दंगल, पिंक, चॉक एण्ड डस्टर, तुम्हारी सुलु, छपाक, थप्पड़, सांड की आँख, पंगा आदि बहुत सी फिल्मों के माध्यम से देख सकते हैं सिनेमा के प्रारम्भिक दौर में जहाँ बाल–विवाह, दहेज, विधवा पुनर्विवाह, स्त्री शोषण, तलाक जैसे विषय हुआ करते थे वहीं बदलती समाज की मानसिकता और परिस्थितियों के अनुसार आज शिक्षा, आर्थिक निर्भरता, नौकरी, लैंगिंक स्वतंत्रता जैसे नवीन विषय लिए जा रहे हैं। वर्तमान स्त्री का बेबाक साहसी चरित्र चमत्कृत कर देने वाला है कुछ अभिनय उदाहरण – माधुरी दीक्षित, ऐश्वर्या राय, कंगना रनौत, प्रियंका चोपड़ा, दीपिका पादुकोण, आलिया भट्ट, तापसी पन्नू आदि ने सिने जगत में अपना लोहा मनवाया है तो वहीं निर्देशन के क्षेत्र में भी फराह खान, मेघना गुलजार, पूजा भट्ट, सोनाली बेन्द्रे, तनुजा चन्दा आदि ने महिला के सशक्त रूप को विश्व पटल पर लाने के सफल प्रयास किए हैं। वर्तमान परिवेश में स्त्री प्रत्येक स्तर पर अपनी पहुँच सुगम बना रही है अब उसने बेचारी, अबला जैसे प्रतिमान धूमिल कर दिये हैं।

सन्दर्भ संकेत

1. शमीम खान, सिनेमा में नारी, पृ. 15
2. शमीम खान, सिनेमा में नारी, पृ. 16
3. मनीष कुमार मिश्रा (संपादक), भारतीय सिनेमा विचारों का लोकतंत्र और स्त्री, पृ. 65
4. शमीम खान, सिनेमा में नारी, पृ. 37
5. शमीम खान, सिनेमा में नारी, पृ. 48
6. शमीम खान, सिनेमा में नारी, पृ. 15

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

पंचायती राज के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं के सशक्तीकरण के प्रयास–संवैधानिक प्रावधान एवं वास्तविक स्थिति

डॉ0 अर्चना वर्मा
सहायक प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

प्रस्तावना : किसी भी समाज की उन्नति व प्रगति उसके मानवीय संसाधनों महिलाओं व पुरूषों के बीच संमानता पर निर्भर करती है। यह ही सामाजिक संरचना के आधार स्तम्भ होते है। पूर्ण एवं निरन्तर विकास के लिए आवश्यक है कि दोनों आधार स्तम्भ अर्थात् महिला व पुरूष मिलकर समाज निर्माण में योगदान दे। परन्तु अल्पविकसित व विकासशील देशों के सन्दर्भ में यह धारणा कोरी–कल्पना ही साबित होती है। हमारे समाज में पारम्परिक रूप से प्रदत्त सत्ता में पुरूष अपना पारम्परिक हक जताता रहता है इसके पीछे यह तर्क है कि वह निर्णय लेने में सक्षम है। महिलाओं द्वारा दोहरे दर्जे के कार्यों को किए जाने के पीछे तर्क दिया जाता रहा है कि उनमें बुद्धिमता, दूरदृष्टि व दृढ़ निर्णय लेने वाली कुशलता का अभाव रहता है। इस प्रकार की व अन्य अनेक कमियाँ भी बिना किसी तार्किक आधार के महिलाओं से लम्बे समय से जुड़ी रही है। जबकि बिना किसी दुविधा के यह सिद्ध हो गया है कि यदि महिलाओं को समान अवसर व सुविधाएँ प्रदान की जाएं तो महिलाएँ न सिर्फ पुरूषों के समान बल्कि उनसे बेहतर कार्य कर सकती है।

हमारा देश ग्राम्य प्रधान रहा है। 2011 की जनगणना के अनुसार देश की कुल जनसंख्या का 71.3 प्रतिशत गांवों में निवास करता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सरकार ने ग्रामीण समुदाय के विकास पर ध्यान दिया। सरकार द्वारा ग्रामीण विकास को गतिशील करने के उद्देश्य से सामुदायिक विकास योजना 1952 एवं राष्ट्रीय विस्तार योजना 1953 में प्रारम्भ की गयी परन्तु दुर्भाग्यवश यह योजनाएँ अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकी। बलवन्त राय मेहता कमेटी 1957 की संस्तुतियों के आधार पर त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था सन् 1959 में देश में लागू की गयी। अशोक राय मेहता कमेटी 1977 तथा जी0वी0 राव कमेटी 1985 ने पंचायती राज व्यवस्था को व्यक्तिोन्मुखी बनाने हेतु महत्वपूर्ण सुझाव दिए।

73वें संविधान संशोधन अधिनियम, जो 24 अप्रैल, 1993 से लागू हुआ, द्वारा पंचायतों को संवैधानिक दर्जा प्राप्त हुआ महिलाओं के विकास के दृष्टिकोण से 73वाँ संविधान अधिनियम वास्तव में एक मील का पत्थर साबित हुआ जिसने पंचायतों में 33 प्रतिशत सीटों पर महिला प्रतिनिधियों को आरक्षण प्रदान किया। इसका प्रमुख उद्देश्य महिलाओं को राजनैतिक रूप से सशक्त किया जाना हो। यही भी तय किया गया कि यह आरक्षण महिला पदाधिकारियों के स्वयं के लाभ के लिये न हो बल्कि चुनी गयी महिलाएँ पिछड़ी व दबी महिलाओं के जीवन स्तर में सुधार कर सके। अधिनियम केवल महिलाओं को आरक्षण देने तक ही सीमित नहीं है अपितु उनकी अधिकाधिक भागीदारी सुनिश्चित करना चाहता है। साथ ही उन महिलाओं को भी आरक्षण प्रदान करता है तो अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों व अन्य पिछड़ी जातियों की है तथा उन्हें भी निर्णयकारिता में भाग लेने का समान अवसर प्रदान करता है।

महिला सशक्तिकरण के संदर्भ में कई प्रकार की शंकायें भी सामने आती हैं। जो अनेक प्रकार की भ्रांतिया

पैदा करती है। क्या वास्तव में हम महिलाओं को सशक्त करना चाहते हैं? क्या वास्तव में इससे पहले महिला उद्धार के लिए कोई नियम कानून नहीं बनाए गए थे? क्या महिलाएँ अपने राजनैतिक अधिकार प्राप्त करने के लिए वास्तव में लड़ाई लड़ेगी? महिलाएँ किस तरह संवैधानिक जिम्मेदारी निभायेंगी और अपना कर्तव्यपालन करेंगी जबकि उनका एक बड़ा प्रतिशत अभी भी अशिक्षित एवं राजनैतिक क्षितिज पर अनुभव शून्य हैं? वे इन बदली परिस्थितियों में सामंजस्य कैसे स्थापित कर पायेंगी? उन्हें जनसभाओं के लिए अधिक समय देना पड़ेगा, रात में भी घर के बाहर रहना पड़ सकता है। पुरूषों से कंधे से कंधा मिलाकर चलना होगा, ऐसे निर्णय भी लेने होंगे जो अक्सर पुरूषों के विरूद्ध होंगे। पंचाती राज संस्थाओं के साथ वह कैसा कार्यानुभव करेंगी? ऐसे ही अनेक प्रश्नों के उत्तर देने के लिए प्रस्तुत शोध एक प्रयास है।

पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं को संवैधानिक आरक्षण प्राप्त हुए लगभग डेढ़–दो दशक व्यतीत हो चुके है और अब आवश्यकता इस बात है कि एक वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन किया जाए कि क्या महिलाओं की इस राजनैतिक सहभागिता से उनकी स्थिति में अपेक्षित सुधार हुआ है और क्या वास्तव में उनका सशक्तिकरण हुआ है? यदि नहीं तो क्यों? महिला सशक्तिकरण के लिए किन आवश्यक कदमों को उठाकर और कैसे उनमें आत्मविश्वास को जागष्त किया जाए?

भारत में सामाजिक पुनर्जागरण और राजनैतिक चेतना के विकास की शुरूआत 19वी शताब्दी के प्रारम्भ में बंगाल में ब्रह्मसमाज के संस्थापक राजा राममोहन राय, बम्बई में प्रार्थना समाज के संस्थापक स्वामी दयानंद द्वारा समाजिक सुधारों की श्रृंखला में स्त्री उत्थान के विषय पर प्राथमिक क्षेत्र में महिलाओं का वास्तविक पर्दापण 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ के प्रथम दशक में कांग्रेस के स्वदेशी आंदोलन में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका के साथ हुआ इसी में दूसरे दशक में वे सीधे राजनीतिक क्षेत्र में उतर पड़ी। 1917 के कलकत्ता के अधिवेशन में श्रीमती एनी बेसेंट को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की प्रथम महिला अध्यक्ष के गरिमामयी पद की बागडोर सौंपी गई। यह देश की राजनीति के क्षेत्र में भारतीय महिलाओं के सक्रिय योगदान की दिशा में पहला सफल कदम था। 1917 में ही स्थानीय शासन और शिक्षा जैसे क्षेत्रों से सम्बन्धित निर्वाचित निकायों में महिलाए किस क्षमता से कार्य कर सकती है, की सम्भावना को तलाशने का भी कार्य किया।

1926 तक सभी प्रान्तों में स्त्रियों को उन्हीं शर्तों पर मत देने का अधिकार मिल गया जो कि उन प्रान्तों में पुरूषों के लिए लागू थी। अप्रैल 1926 में तत्कालीन सरकार ने एक कदम और उठाया–महिलाओं को प्रान्तीय विध ाान सभाओं के चुनाव लड़ने का अधिकार भी प्रदान कर दिया। 1927 में ऑल इण्डिया वीमन्स कांफ्रेस नामक *अखिल भारतीय महिला संगठन* यद्यपि प्राकृतिक रूप से गैर–राजनीतिक था, तथापि स्त्रियों में सामाजिक सुधारों के साथ, राजनीतिक जागृति लाने में प्रारम्भ से ही गतिशील रहा। आज भी यह संगठन महिलाओं की उन्नति में सतत् प्रयासरत है। इस संगठन का नारा रहा है– समान अधिकार (विशेष अधिकार नहीं) और समान दायित्व। इस प्रकार से वैधानिक क्षेत्र में भी महिलाओं का प्रतिनिधित्व चलता रहा। 1927 में *'कॉमनवेल्थ ऑफ इण्डिया बिल'* में महिला परिषद के प्रतिनिधित्व ने बिना लिंग भेदभाव के समान अधिकार व समान कर्तव्य की धारा जोड़ने पर जोर दिया। शिक्षा, ज्ञान, विज्ञान, व्यवसाय के क्षेत्रों में महिलाएँ जिस प्रकार आगे बढ़ी है। राजनीतिक क्षेत्र में उतनी प्रगति नहीं हुई है।

संवैधानिक प्रावधान : महिला पुरूष समानता की प्रतिबद्धता नीति–निर्माण के सर्वोच्च स्तर पर अर्थात् भारत के संविधान में भली–भांति स्थापित है। महिलाओं के लिए बनाए गए कुछ महत्वपूर्ण संवैधानिक उपबंध इस प्रकार है –

अनुच्छेद–14 जिसमें विधि के समक्ष समानता तथा विधियों का समान संरक्षण धर्म, मूल, वंश, जाति, लिंग जन्मस्थान के आधार पर विभेद का प्रतिषेध (अनुच्छेद–15) लोक नियोजन के विषय में अवसर की समानता

(अनुच्छेद–16) और अस्पृश्यता द्वारा उपाधियों का अन्त (अनुच्छेद–17, 18) शामिल है।

स्वतंत्रता का अधिकार :

अनुच्छेद–21 जिसमें जीवन तथा व्यक्तिगत स्वंतत्रता के संरक्षण का अधिकार और भाषण तथा अभिव्यक्ति, सम्मेलन, संगम या संघ बनाने, भारत के किसी भाग में जाने और निवास करने तथा बस जाने की स्वतंत्रता का अधिकार और कोई पेशा या व्यवसाय करने का अधिकार (अनुच्छेद–19) शामिल है।

शोषण का अधिकार :

अनुच्छेद–23 व 24 जिसके अन्तर्गत सभी प्रकार के बलात् श्रम, बालश्रम और मानव के दुर्व्यवहार का निषेध किया गया है।

इन सभी मूल अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिए संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद–32) दिया गया है। राष्ट्रीय महिला उत्थान नीति 2001 में यह परिकल्पित है कि बजट प्रक्रिया महिलोन्मुख बनाई जाएगी। इन उपबन्धों को कानूनी ढांचे के द्वारा लागू एवं पारित किया जाता है। ऐसे कुछ कानून इस प्रकार है :–

- अनैतिक व्यापार (निवारण) अधिनियम–1956
- मातृत्व हित लाभ अधिनियम–1961
- दहेज निषेध अधिनियम–1961
- स्त्री अशिष्ट रूपण (निषेध) अधिनियम–1986
- सती प्रथा (निवारण) अधिनियम–1987
- घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम–2005

महिला विकास हेतु राजकीय कार्यक्रम :

जवाहर लाल नेहरू ने नियोजन लागू करते समय यह कहा था कि भारत का वर्तमान समाज भले ही पुरूष प्रधान व पुरूष निर्मित विधानों द्वारा संचालित रहा हो किन्तु इस देश का भविष्य पुरूषों की अपेक्षा महिलाओं पर अधिक आधारित होगा। इसी कथन को दृष्टिगत रखते हुए महिलाओं के विकास एवं उत्थान हेतु प्रत्येक पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत यथा समय कुछ योजनाओं के अधीन विभिन्न मंत्रालयों द्वारा प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से महिलाओं पर आधारित कार्यक्रम चलाए गए। भारत में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के नाम पर बनी पंचायती राज संस्थाएं ही ग्रामीण विकास को सार्थक गति प्रदान कर सकती है। भारत में राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान सम्पूर्ण देश के विकास तथा ग्रामीण क्षेत्रों की चहुँमुखी उन्नति हेतु 73वें संविधान संशोधन के माध्यम से संविधान की 11वीं अनुसूची में जिन 29 विषयों का समावेश किया गया है, वे वस्तुतः सामाजिक आर्थिक विकास की कुंजी है।

73वें संविधान संशोधन में महिलाओं को स्थानीय संस्थाओं में निर्णयकारिता से महत्वपूर्ण रूप से जोड़ दिया है। ग्राम पंचायतों में बड़ी मात्रा में महिलाएं चुनी गयी। 1995 के ग्राम पंचायत चुनावों में उत्तर प्रदेश में कुल 799780 चुने गए प्रतिनिधियों में महिलाओं की संख्या 120591 रही। पंचायत समिति सदस्यों की कुल 19991 संख्या में महिलाओं की सदस्य संख्या 13865 तथा जिला परिषद में कुल 2687 में से 634 महिला सदस्य रही। इन आंकड़ो से स्पष्ट है कि संविधान संशोधनों ने बड़ी संख्या में महिलाओं को ग्राम विकास में भागीदगी ही नहीं बल्कि नेतष्त्व करने का अवसर भी दिया हो परन्तु राजनीतिक प्रक्रिया में महिलाओं की भागीदारी के सवाल पर महिलाए कई दशकों से संघर्ष करती आ रही है।

भारत में महिलाओं की स्थिति मिली–जुली है बहुत कम महिलाओं को अपनी स्थिति पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त है। अधिकतर महिलाएँ काफी–सीमा तक अपने पिता, पति, भाई अथवा बेटों पर आश्रित है। महिला विकास के लिए समाज और पुरूषों के दृष्टिकोण के साथ–साथ स्वयं महिलाओं को भी अपना दृष्टिकोण परिवर्तित करना होगा

कि उनका घर परिवार से पृथक एक मनुष्य के रूप में भी अस्तित्व है और ऐसा व्यापक स्तर पर जागृति, शिक्षा और आर्थिक सशक्तिकरण द्वारा ही संभव है। पंचायती राज में महिलाओं को आरक्षण प्राप्त हुए डेढ़ दो दशक बीत चुका है और आवश्यकता तो इस बात की है कि अध्ययन किया जाए कि आखिर क्या कारण है जिससे कि महिला सशक्तिकरण को सार्थकता प्रदान नहीं की जा सकी है। प्रस्तुत शोध यह जानने का प्रयास है कि क्या वर्जनाएँ है कि महिलाए अपनी भागीदारी सुनिश्चित नहीं कर पा रही है व किन प्रयासों द्वारा सार्थकता प्रदान की जा सकती है। समाजशास्त्रीय हस्तक्षेप के माध्यम से महिला नेताओं में जागषति लाकर उन्हें पद अनुरूप कार्य करने का सम्बल प्रदान करना ही शोध का उद्देश्य है।

अध्ययन :

प्रस्तुत अध्ययन उत्तर प्रदेश के बाराबंकी जिले की तीन ग्रामसभा सरसवाँ, दशरथपुर तथा लिलौली में 20 वर्ष से लेकर 56 वर्ष या इससे ऊपर की महिलाओं को सम्मिलित किया गया है। जिसमें हिन्दू धर्म को मानने वाली महिलाओं का प्रतिशत अधिक है। इनमें से 63 प्रतिशत अशिक्षित है। अधिकतर महिलाएं गृहणी है तथा 21 प्रतिशत कृषक मजदूर है इनसे ग्राम पंचायत से सम्बन्धित कई जानकारियाँ पूछी गई जो निम्न है।

सारणी–01

ग्राम सभा की बैठक में सम्मिलित होने की स्थिति

क्र0सं0	ग्राम सभा की बैठकों में सहभागिता	ग्राम सभा सरसवाँ	ग्राम सभा दशरथपुर	ग्राम सभा लिलौली	कुल योग	प्रतिशत
1.	हाँ	06	05	20	31	10.3
2.	नहीं	94	95	80	269	98.7
	योग	100	100	100	300	

सारणी–01 से स्पष्ट है कि 89.7 प्रतिशत महिलाएँ ग्राम सभा की बैठक जैसी महत्वपूर्ण गतिविधि में सम्मिलित नहीं होती है। जबकि गांवों के सही विकास के लिए आवश्यक है कि ग्राम सभा की बैठकों में सम्मिलित हुआ जाए।

सारणी–02

उत्तरदाताओं की ग्राम सभा के कार्यों के विषय में जागरूकता

क्र0सं0	ग्राम सभा की बैठकों में सहभागिता	ग्राम सभा सरसवाँ	ग्राम सभा दशरथपुर	ग्राम सभा लिलौली	कुल योग	प्रतिशत
1.	गरीबी उन्मूलन हेतु लाभार्थियों का चयन	20	19	28	67	22.3
2.	ग्राम विकास योजनाएँ	44	37	43	124	41.3
3.	ग्रामवासियों की समस्याओं पर विचार विमर्श करना व सुलझाना	18	22	30	70	23.3
4.	जानकारी नहीं	10	13	14	37	12.3
	योग	100	100	100	300	

सारणी–02 से स्पष्ट है कि 37 महिला उत्तरदाताओं को ग्राम सभा के कार्यों के बारे में जानकारी नहीं है। 124 उत्तरदाताओं ने ग्राम विकस की योजना बनाना ग्राम सभा का प्रमुख कार्य बताया, 70 उत्तरदाताओं के अनुसार ग्राम सभा का कार्य गांव की समस्याओं पर विचार–विमर्श करना व सुलझाना है। जबकि 67 महिलाओं के अनुसार गरीबी उन्मूलन हेतु लाभार्थियों का चयन ग्राम सभा का प्रामुख कार्य है उत्तरदाताओं ने पंचायत

निधि के उपयोग, आबादी भूमि एवं चारागाह आदि अनेक पक्षों को नजर अन्दाज किया है।

सारणी–03

उत्तरदाताओं की पंचायत चुनाव में सहभागिता

क्र0 सं0	पंचायत चुनावों में उम्मीदवारी	नही लड़ी तो क्यों, लड़ी तो समस्याएँ	ग्राम सभा सरसवाँ	दशरथपुर	लिलौली	कुल योग	प्रतिशत
1.		रूचि नहीं	73	46	66	185	61.67
		आने जाने की समस्या	08	27	19	54	18
	नहीं	अशिक्षित	05	05	01	11	3.7
	286	गरीबी	06	08	02	16	5.3
	95.3 प्रतिशत	भ्रष्टाचार	02	01	00	03	1.0
		पुरूष लड़ते है	01	01	0	02	0.67
		पारिवारिक कारण	03	08	04	15	5
2.	हाँ	कोई समस्या नहीं	02	02	02	06	02
	144.7 प्रतिशत	भीड़ का सामना	00	02	00	02	0.67
	144.7 प्रतिशत	कई समस्याएँ रही	00	00	06	06	02
		योग	100	100	100	300	

सारणी–03 में महिलाओं के पंचायत चुनावों में उम्मीदवारी को स्पष्ट किया गया है। 286 उत्तरदाताओं ने कहा कि वे पंचायत चुनावों में उम्मीदवार नहीं रही है। जिसमें 185 उत्तरदाताओं की चुनाव लड़ने में कोई रूचि नहीं रही जबकि 54 उत्तरदाताओं को आने जाने के साधन की समस्या रही। केवल 14 महिला उत्तरदाता पंचायत चुनावों में उम्मीदवार रही है।

सारणी–04

उत्तरदाताओं के अनुसार महिला प्रतिनिधियों के दायित्वों का निर्वहन

क्र0 सं0	दायित्व का निर्वहन	कारण	ग्राम सभा सरसवाँ	दशरथपुर	लिलौली	कुल योग	प्रतिशत
1.	सहयोगी	घर का प्रतिबन्ध	68	63	48	179	59.7
		स्वयं की रूचि नहीं	08	00	10	18	6
		अनपढ़ है	02	19	11	32	10.67
		पति दबंग है	03	03	01	07	2.3
2.	स्वयं करती है	48	10	10	28	48	16
3.	पता नहीं	16	09	05	02	16	5.3
		योग	100	100	100	300	

सारणी–04 में महिला प्रतिनिधि होने पर अपने दायित्वों के निर्वहन को स्पष्ट किया गया है। 236 महिलाओं का कहना है कि किसी महिला के प्रतिनिधि चुन लेने के बाद भी उनके दायित्व उनके पति या कोई अन्य पुरूष सहयोगी द्वारा पूरे किए जाते है जिसका कारण 179 महिलाओं ने कहा कि घर के प्रतिबन्धों के कारण वे स्वयं उत्तरदायित्व नहीं पूर्ण करती। जबकि 32 महिलाओं का मत है कि वे अनपढ़ है। तत्पश्चात् 18 महिलाओं ने कहा

कि उनकी स्वयं की रूचि नहीं हो इन दायित्वों को पूर्ण करने में व 07 महिलाएं मानती है कि उनके पति दबंग है जो उन्हें उनके दायित्व पूर्ण नही करने देते। दूसरी तरफ 48 महिलाएँ प्रतिनिधियों के द्वारा स्वयं दायित्व पूर्ण करने की स्थिति का समर्थन कहती है जबकि 16 महिलाएँ नही जानती कि दायित्वों की पूर्ति कौन करता है वे स्वयं या सहयोगी।

सारणी–05

महिलाओं की पंचायत चुनाव में भागीदारी

क्र0 सं0	दायित्व का निर्वहन	ग्राम सभा			कुल योग	प्रतिशत
		सरसवाँ	दशरथपुर	लिलौली		
1.	उम्मीदवार के चयन में	1	2	9	12	4
2.	वोट देने में	85	95	88	268	89.3
3.	चुनाव प्रचार में	6	1	3	10	3.3
4.	चुनाव लड़ने में	2	0	0	2	0.7
5.	कोई भागीदारी नही (वोट भी नहीं देते)	6	2	0	8	2.7
	योग	100	100	100	300	

सारणी–05 से स्पष्ट है कि 268 महिला उत्तरदाता पंचायत चुनावों में वोट देकर अपनी भागीदारी करती है। 12 महिलाएँ चुनाव प्रचार में तो 02 महिलाएँ चुनाव के लिए उम्मीदवारी में खड़ी होती है। जबकि 8 महिलाओं का कहना है कि वे कोई भी भागीदारी नहीं करती यहाँ तक कि वे वोट भी नहीं देने जाती है।

सारणी–06

महिला प्रतिनिधियों की सीट का आधार

क्र0सं0	क्या महिला प्रतिनिधि महिला आरक्षित पर चुनी गई	ग्राम सभा			कुल योग	प्रतिशत
		सरसवाँ	दशरथपुर	लिलौली		
1.	हाँ	86	90	89	265	
2.	नहीं	04	00	02	06	
3.	पता नहीं	10	10	09	29	
	योग	100	100	100	300	

सारणी–06 से स्पष्ट है कि जब उत्तरदाताओं से पूछा गया कि महिला प्रतिनिधि क्या महिला आरक्षित सीट पर चुनी गई या नहीं तो 265 उत्तरदाताओं का कहना था कि महिला प्रतिनिधि महिला आरक्षित सीट पर ही चुनी गई। जबकि 29 महिला उत्तरदाता इस बारे कोई जानकारी नही रखती है। अतः स्पष्ट है कि महिलाओं को प्रतिनिधित्व आरक्षित सीट के कारण ही मिला। अधिकतर महिलाओं का कहना है कि पंचायत सीट न जाए इसलिए महिला आरक्षित होने पर पुरूष अपने घर की बहू या पत्नी को आरक्षित सीट पर खड़ा करवाते है। अर्थात् महिला आरक्षित सीट न हो तो महिलाओं का चुनाव में खड़े होने का मौका नगण्य ही होगा।

निष्कर्ष : पंचायती राज व्यवस्था में अनेक खामियों के बावजूद इसके महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता। सबसे अहम पहल यह है कि पंचायती राज व्यवस्था महिलाओं की भागीदारी का एक सशक्त माध्यम बनकर उभरी है। मात्र आरक्षण हो जाने से महिलाएं बेहतर प्रभाव दिखाए यह असंभव है इसलिए स्थानीय स्तर पर ऐसे वातावरण का निर्माण किया जाए जिससे महिलाएं इस प्रक्रिया में भागीदारी कर सके। इसके अतिरिक्त महिला प्रतिनिधियों

को अधिक से अधिक शैक्षणिक भ्रमण कराया जाए जिससे इनके आत्म विश्वास में बढ़ोत्तरी होगी। जब ये दूसरी जगह के पंचायत प्रतिनिधियों द्वारा किए गए आदर्शकार्यों को देखेगी। तो स्वयं आगे बढ़ने को प्रेरित होगी तथा महिला प्रतिनिधियों द्वारा किए अच्छे कार्यों को प्रोत्साहित किया जाए एवं स्थानीय मीडिया के माध्यम से प्रचार–प्रसार किया जाए। इससे महिलाओं को आत्मबल तथा प्रोत्साहन मिलेगा। पंचायती राज कानून से ग्रामीण राजनीति में महिलाओं को आगे आने का मौका मिला है तथा उनका राजनीतिक रूप से सशक्तिकरण हुआ है। यह सशक्तिकरण पुरूष प्रधान समाज में अपेक्षित उद्देश्य को अभी तक प्राप्त नहीं कर पाया है फिर भी कुछ सुधारों के साथ इसे बनाये रखने की आवश्यकता है महिला सशक्तिकरण में पंचायती राज व्यवस्था का महत्वपूर्ण योगदान है। समय के साथ इसके अच्छे परिणाम देखने को मिलेंगे।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. आहूजा, राम; भारतीय समाज।
2. गोस्वामी, सुधा; भारत की चर्चित महिलाएँ, प्रतियोगिता दर्पण, उपकार प्रकाशन, आगरा, दिसम्बर, 1999
3. चन्द्र, उमेश; पंचायती राज–महिलाओं से अपेक्षाएँ, योजना, राकेश प्रेस, नई दिल्ली, फरवरी, 1995
4. पाण्डेय, प्रशान्त; पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी, योजना, राकेश प्रेस, नई दिल्ली, जुलाई, 1996
5. सिंह, सीमा; पंचायती राज और महिला सशक्तिकरण, विधा विहार, नई दिल्ली।
6. मैथ्यू जॉर्ज, डायरेक्टर–इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, पंचायती राज में महिलाएँ, नई दिल्ली पंचायती राज अधिनियम, 1993

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

पंचायती राज : महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता का सशक्त माध्यम

डॉ. अम्बिका प्रसाद मिश्रा
प्रधानाचार्य
प्राइमरी स्कूल, मलूकपुर, ऐरायाँ, फतेहपुर (उ.प्र.)

महात्मा गाँधी ने कहा था ''स्त्री पुरूष की संगिनी है जिसकी बौद्धिक क्षमताएँ पुरूष की बौद्धिक क्षमताओं से किसी भी तरह कम नहीं हैं। पुरूष की प्रवृत्तियों में उन प्रवृत्तियों के प्रत्येक अंग एवं उपांग में उसे भाग लेने का अधिकार है। स्वाधीनता का भी उसे उतना ही अधिकार है जितना पुरूष को।''[1] इतिहास इस बात का साक्षी है कि दुनिया में ऐसा कोई भी देश नहीं है जहाँ सृष्टि की मेरूदण्ड महिलाओं को हाशिए पर रखकर विकास का लक्ष्य सम्भव हुआ हो। महिलाओं को विकास की मुख्य धारा से जोड़े बिना किसी समाज, राज्य एवं देश के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। देश के प्रथम प्रधानमंत्री पं0 जवाहर लाल नेहरू का कहना था, ''जब स्त्रियाँ आगे बढ़ती हैं तो परिवार आगे बढ़ता है, गाँव आगे बढ़ते हैं और राष्ट्र भी अग्रसर होता है।[2] महात्मा गॉधी ने लिखा है, ''नारी ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट कृति है, वह अहिंसा की अवतार है तथा अपने धार्मिक आग्रहों के परिप्रेक्ष्य में वह पुरूष जाति से कोसों आगे है।[3] शास्त्रों में तो यहाँ तक कहा गया है कि ''यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता, यत्र नार्यः न पूज्यंते निष्फलाः सर्वाक्रियाः।[4] अर्थात् जहाँ नारियों की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं और जहाँ नारियों की पूजा अथवा सम्मान नहीं हेाता, वहाँ सारी क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं।

यह सर्वविदित है कि हमारे देश की जनसंख्या का लगभग आधा भाग 48.53 प्रतिशत महिलाएँ हैं,[5] किन्तु राजनीति में महिलाओं की भागीदारी अपेक्षाकृत बहुत कम है। राष्ट्रीय राजनीति में तो महिलाओं की भागीदारी स्वतंत्रता प्राप्ति के 72 वर्षों बाद भी 14.5प्रतिशत ही हो पायी है। 73वें संविधान संशोधन द्वारा पंचायतीराज संस्थाओं में महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत स्थान आरक्षित किये जाने के प्रावधान ने पंचायतों में महिला भागीदारी की दिशा में मील के पत्थर का काम किया है।

भारत में यद्यपि वैदिक काल से ही महिलाओं को बराबरी का दर्जा प्राप्त था। शिक्षा का समान अधिकार मिला था।तभी तो वे ज्ञानी, विद्वान, पंडित और विचारिका हुआ करती थीं। गार्गी, मैत्रेयी, अपाला, घोशा ऐसी ही महिलाओं के उदाहरण हैं। सम्पत्ति पर भी उनका समान हक था। इसका उल्लेख आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/29/3 में मिलता है। घर की स्वामिनी होने के बावजूद उनका कार्य–क्षेत्रघर तक सीमित नहीं था। वे घर के बाहर भी निकलती थीं। क्षत्रिय स्त्रियों को तो युद्ध में सारथ्य करने का अधिकार था। वे सभाओं और राजनीतिक गतिविधियों में भी सक्रिय रुप से सहभाग करती थीं। वैदिक धर्मग्रन्थों के अध्ययन से हमें यह भी जानकारी मिलती है कि महिलाएँ, 'विद्थ' जिसे हम भारतीय आर्यों की सबसे पुरानी जनसभा कह सकते हैं, तथा 'सभा' और 'समिति' में भी बैठती थीं तथा राजनीतिक वाद–विवाद में भाग लेती थीं। 'ऋग्वेद' से जानकारी मिलती है कि 'योषा' विदथ में शरीक हुई थी –

''गुहा चरन्ती मनुषो न योषा सभावती विदथ्येव सवाक्।''[6]

लेकिन मध्यकालीन युग, जिसे महिला अधिकार की दृष्टि से अंधकार युग भी कहा जाता है, में महिलाओं को अधिकार और सम्मान विहीन कर दिया गया। उसे घर की चाहारदीवारी में न केवल बंदकर दिया गया बल्कि

मानवीय अधिकारों के अतिरिक्त समस्त राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया।[7] परिणामस्वरुप अशिक्षा, बाल–विवाह, बहु–विवाह, दासी–प्रथा, पर्दा–प्रथा जैसी कुप्रथाओं का जन्म हुआ और नारी मात्र दासी व भोग्या बनकर रह गयी।

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में श्रीमती एनी बेसेन्ट, सरोजनी नायडू, कस्तूरबा गाँधी, कमला नेहरू, विजय लक्ष्मी पंडित, सुचेता कृपलानी आदि महिलाओं का अनूठा योगदान रहा है।

स्वतन्त्रता–प्राप्ति के पश्चात आजाद भारत की खुली हवा में महिलाओं को बराबरी का दर्जा दिलाने व सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक क्षेत्रों में उनकी भागीदारी बढाने के अनेक प्रयास किये गये हैं। संविधान की प्रस्तावना, नीति–निदेशक तत्वों,मूल अधिकारों और कर्तव्यों तथा विशेश रुप से अनुच्छेद 15 तथा 16 में समानता हेतु प्रावधान किए गए हैं।इसके अतिरिक्त समय–समय पर निर्मित विभिन्न कानूनों द्वारा भी सदियों से सलीब पर चढ़ी स्त्री को उतारने का प्रयास किया गया। इनमें बाल–विवाह निषेध अधिनियम, 1976; विशेष विवाह अधिनियम, 1954; दहेज निषेध अधिनियम,1961 औषधि द्वारा गर्भ समापन अधिनियम, 1971 सती निवारण अधिनियम, 1987 आदि मुख्य हैं।

लेकिन इससे महिलाओं की स्थिति में, विशेष रूप से उनकी राजनीतिक स्थिति में अधिक अन्तर नहीं आया। आजादी के 72 वर्ष बीत जाने के बाद भी राष्ट्रीय राजनीति में महिलाओं की भागीदारी बहुत कम है। पहली लोकसभा में जहॉ महिलाओं की भागीदारी 5 प्रतिशत थी, वहीं 17वीं लोकसभा में महिलाओं की भागीदारी लगभग 14.5 प्रतिशत 78 महिलाएँ तक ही पहुँच पायी है। जबकि अमेरिका में यह 32 प्रतिशत तथा पड़ोसी देश बॉग्लादेश में 21 प्रतिशत है।[8]

स्वतन्त्रता–प्राप्ति के पश्चात देश के सर्वोच्च पदों जैसे–राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री,राज्यपाल व अन्य महत्तवपूर्ण पदों को महिलाओं ने सुशोभित किया है, किन्तु इनकी संख्या अत्यधिक न्यून रही है।

अतः पंचायती राज सम्बन्धी 73वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 पारित हुआ। इसके अन्तर्गत महिलाओं को पंचायती राज व्यवस्था के प्रत्येक स्तर पर एक तिहाई आरक्षण देने की व्यवस्था की गयी। वर्तमान में आन्ध्र प्रदेश, बिहार, छत्तीसगढ., झारखण्ड, केरल, महाराश्ट्र, उड़ीसा, राजस्थान, त्रिपुरा व उत्तराखण्ड में पंचायतों में महिलाओं को 50 प्रतिशत आरक्षण देने की व्यवस्था की गयी है।[9] इसी व्यवस्था के परिणाम स्वरूप संपूर्ण देश की पंचायत व्यवस्था में आज 31 लाख से अधिक चुने हुए प्रतिनिधि हैं जो कि त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था के माध्यम से चयनित हुए हैं। इनमें से 44 प्रतिशत से अधिक महिलाएँ हैं।

वर्तमान समय में यदि आँकड़ों की दृष्टि से पंचायती राज व्यवस्था को देखा जाए तो 253268 ग्राम पंचायत, 6614 मध्यवर्ती पंचायत तथा 630 जिला पंचायत सहित कुल 260512 पंचायत संस्थाएँ हैं।[10] इन संस्थाओं में कुल 2903277 ग्राम पंचायत प्रतिनिधि, 180000 क्षेत्र पंचायत प्रतिनिधि, तथा 17527 जिला पंचायत प्रतिनिधि सहित कुल 3100804 पंचायत प्रतिनिधि हैं।[11] इन पंचायत प्रतिनिधियों में 1292203 महिलाएँ ग्राम पंचायतों में, 75620 महिलाएँ क्षेत्र पंचायतों में तथा 8091 महिलाएँ जिला पंचायतों में प्रतिनिधित्व कर रही हैं।इस प्रकार कुल 1375914 महिलाएँ पंचायतों में प्रतिनिधित्व कर रही हैं।[12] ग्राम पंचायत स्तर पर महिला प्रतिनिधियों का प्रतिशत 47.39 तथा मध्यवर्ती स्तर पर 42 एवं जिला स्तर पर 46.16 प्रतिशत है। पंचायतों में कुल 13 लाख 75 हजार 914 महिला प्रतिनिधियों का वर्चस्व है जिसमें से कुल 80 हजार से ज्यादा (तीन स्तरों पर) महिलायें अध्यक्ष हैं।

केवल उत्तर प्रदेश में कुल 826458 निर्वाचित पंचायत प्रतिनिधियों में लगभग 33 प्रतिशत अर्थात् 272733 महिलाएँ हैं, जिसमें से लगभग 20000 (तीनों स्तरों पर) महिलाएँ अध्यक्ष हैं।

भारत में पंचायती राज संस्थाओं में निर्वाचित महिला प्रतिनिधि : मार्च 2018 के अनुसार–

राज्य / केन्द्र शासित प्रदेश	निर्वाचित प्रतिनिधि	निर्वाचित महिला प्रतिनिधि	प्रतिशत
आन्ध्र प्रदेश	156050	78025	50.00
अरूणांचल प्रदेश	9389	3658	38.99
असम	2682	013410	50.00
बिहार	127391	57887	45.44
छत्तीसगढ़	170285	93287	54.78
गोवा	1564	516	32.99
गुजरात	144016	71988	49.99
हरियाणा	70035	29499	42.12
हिमांचल प्रदेश	28723	14398	50.13
झारखण्ड	60782	30757	50.60
कर्नाटक	104967	50892	48.48
केरल	18372	9630	52.42
मध्य प्रदेश	392981	196490	50.00
महाराष्ट्र	240122	121490	50.60
मणिपुर	1723	868	50.38
मिजोरम	3502	828	23.64
उड़ीसा	107487	53551	49.82
पंजाब	97180	32393	33.33
राजस्थान	124854	70527	56.49
सिक्किम	1096	548	50.00
तमिलनाडु	117599	39975	33.99
त्रिपुरा	6646	3006	45.23
तेलंगाना	103468	51735	50.00
उत्तर प्रदेश	826458	272733	33.00
उत्तराखण्ड	64606	35957	55.66
पश्चिम बंगाल	59402	30157	50.77
ए0 एण्ड एन0 द्वीप समूह	858	302	35.20
चण्डीगढ़	169	58	34.32
दादरा नगर हवेली	136	47	34.56
दमनदीव	172	92	53.49
लक्षद्वीप	110	41	37.27
योग	3100804	1375914	44.37

पंचायतों के माध्यम से अनेक महिलाएँ, जैसे–फातिमा बी (आन्ध्र प्रदेश), सविता बेन (गुजरात), सुधा पटेल (गुजरात), गुड़िया बाई (मध्य प्रदेश), आदि ऐसी हजारों महिलाएँ हैं जिन्होंने पंचायतों का नेतृत्व सम्हालने के पश्चात् ग्रामीण विकास के अनेक सामाजिक एवं आर्थिक कार्यों को आगे बढ़ाया है।13केरल में कोडाखरी नामक एक पंचायत है जिसके सभी पदों पर महिलाएँ विराजमान हैं।[14]

पंचायतों में इतनी बड़ी संख्या में महिलाओं के आने से जमीनी स्तर पर काफी बदलाव हुए हैं। पूर्व पंचायतीराज मंत्री मणिशंकर अय्यर बार–बार कहते हैं कि भारत में एक मौन लोकतांत्रिक क्रान्ति हो रही है, जो अभी राष्ट्रीय स्तर पर सार्वजनिक रूप से भले ही दिखाई नहीं दे रही है पर उसकी धीमीं आँच भारतीय लोकतंत्र को मजबूत बना रही है। इतना ही नहीं यह क्रांति देश में सत्ता विमर्श के ढाँचे में भी बदलाव ला रही है। पंचायत स्तर पर इतनी बड़ी संख्या में महिलाओं की भागीदारी ने स्थानीय स्तर पर सामुदायिक जीवन और उसकी चेतना तथा संस्कृति में भी परिवर्तन लाया है। इन निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों में दलित, आदिवासी, पिछड़ी जाति तथा मुस्लिम महिलाएँ भी हैं। इन महिलाओं ने सत्ता के जातीय समीकरण को ही नहीं, बल्कि सामाजिक और आर्थिक समीकरण को भी बदल दिया है।

प्रारम्भ में जब पंचायतों में महिलाओं हेतु आरक्षण प्रदान किया गया और उन्हें चुनाव लड़ने हेतु प्रोत्साहित किया गया, तब समाज के कुछ वर्गों द्वारा इसे गंभीरता से नहीं लिया गया और महिलाओं को सिर्फ पुरूषों की कठपुतली माना गया। परंन्तु आज समय के साथ धीरे–धीरे महिलाओं को अपनी क्षमताओं का अहसास हो रहा है। आज महिलायें सामाजिक विकास व अपनी पहचान बनाने हेतु सक्रिय रूप से राजनैतिक क्षेत्र में आ रही हैं।

पंचायतों में राजनैतिक सहभागिता से महिलाओं के आत्म विश्वास में वृद्धि हुई है और वे स्वयं के विकास से जुड़े हुये मुद्दों पर आज मजबूती से आवाज उठा रही हैं। पंचायत में पदाधिकारी बनने से महिलाओं का परिवार तथा आस–पास के क्षेत्र में सम्मान बढ़ गया है और जो पुरूष महिलाओं के साथ गैर बराबरी का व्यवहार करते थे, वे भी आज महिलाओं के द्वारा दिये जाने वाले सुझावों व निर्णयों को मान रहे हैं। जिन स्थानों पर महिला सरपंच चुनी गयी हैं, वहाँ पंचायतों में भ्रष्टाचार पर रोक लगाने में मदद मिली है। महिला एवं बाल विकास तथा अन्य समाज कल्याण से सम्बन्धित योजनाओं व कार्यक्रमों को अधिक प्रभावी ढंग से लागू किया जा रहा है।

यद्यपि पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता के मार्ग में अनेक बाधाएं आज भी विद्यमान हैं, जैसे निरक्षरता, पर्दा प्रथा, महिलाओं की पुरुषों पर निर्भरता, दोहरे सामाजिक मूल्य, पारम्परिक समाजिक पृष्ठभूमि, महिलाओं में झिझक, अज्ञानता, आर्थिक पिछड़ापन, जाति व्यवस्थातथा महिला प्रतिनिधियों के प्रति होने वाली हिंसा आदि, जिससे महिलाएँ उतने अच्छे ढंग से अपनी सहभागिता सुनिश्चित नहीं कर पा रहीं हैं जितना होना चाहिए।

जाहिर है कि सत्ता के क्षेत्र में पहली बार पर्दापण करने के कारण बहुत सी महिला पंच या सरपंच अनुभवहीन हैं। उन्हें सरकारी नियमों, कायदों और कानूनों की सम्यक जानकारी नहीं है। बहुत सी महिलाऍं अशिक्षित भी हैं। इस कमी को दूर करने के लिए राज्य सरकार उनके लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाती है जिनमें शामिल होकर विभिन्न नियमों, और कानूनों की जानकारी पाने के साथ–साथ वे एक दूसरे का अनुभव बॉट सकती हैं। इससे वे विभिन्न समस्याओं से निपटने के लिए अलग–अलग तरीकों को समझ सकती हैं। इस तरह के प्रशिक्षण कार्यक्रमों को सुचारु तथा व्यापक बनाने की जरुरत है जिससे वे गॉव तथा देश के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विकास की वास्तविक संवाहक बन सकें।

संदर्भ संकेत

1. दिव्या पाण्डे, ''महिला उत्पीड़न के खिलाफ कानूनी संरक्षण,'' योजना, मार्च 2009, पृ0–42
2. नाटाणी, प्रकाश नारायण, 'महिला जागृति और कानून', आविष्कार पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स जयपुर–2002 पृ0 37

3. बसु, दुर्गादास; ''भारत का संविधान–एक परिचय'', बाधवा एण्ड कम्पनी, 2001, पृ0– 271
4. वर्मा, सरोज कुमार; ''सशक्तीकरण के भारतीय संदर्भ'', योजना, अक्टूबर–2008, पृ0–24
5. CENSUS OF INDIA-2011
6. ऋग्वेद 1.16 7.3 उद्धृत डा0राम शरण शर्मा, प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार व संस्थाएँ, पृ0 92
7. आनंद, निर्मल कुमार, ''पंचायती राज संस्थाओं में महिलाएं'' कुरूक्षेत्र, मई, 2007, पृ0–44
8. द हिन्दू,नई दिल्ली, 30 मई 2019।
9. MINISTRY OF PANCHAYATI RAJ, "woman reservation in panchayatiraj" , press information bureau, government of india retrieved 22 march 2014
10. http://lgdirectory.gov.in Report generatedon 18/04/2019
11. MINISTRY OF PANCHAYATI RAJ, compilation as on 27/03/2018
12. MINISTRY OF PANCHAYATI RAJ, compilation as on 27/03/2018
13. अग्रवाल, एम0 एल0 और मोहन, मयंक; ''पंचायती राज : महिलाओं की भूमिका'', कुरुक्षेत्र, मार्च–2005, पृ0–29
14. WOMAN'S MALAYALAM, 24 november, 2015

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

स्त्री विमर्श : नारी अबला से सबला

डॉ0 शोभा रानी श्रीवास्तव
एसोसिएट प्रोफेसर–हिन्दी विभाग
बद्री विशाल पी0जी0 कॉलेज, फर्रूखाबाद

स्त्रियों के लिए सामान्यतः अबला शब्द का प्रयोग किया जाता है। अबला अर्थात् बल रहित, जिसमें कोई बल नहीं हो। कदाचित आज के वातावरण के परिप्रेक्ष्य में 'अबला' सम्बोधन अर्थ की दृष्टि से सार्थक होता है किन्तु यह कोई गुण नहीं है। स्त्री की विवषता के साथ ही साथ समाज की एक बहुत बड़ी भूल और कमजोरी भी है जिसके घातक परिणाम पग–पग पर समाज को झेलने पड़े। पुरुष द्वारा अहंकारवश ऐसे लगाए गए प्रतिबन्धों के कारण ही महिलाएँ मानसिक दृष्टि से अविकसित, योग्यता की दृष्टि से अक्षम और शारीरिक दृष्टि से दुर्बल तथा निर्बल बन कर रह गई।

प्राचीन काल में जब भारतीय संस्कृति अपने चरमोत्कर्ष पर भी थी तब स्त्रियों के लिए कहीं भी 'अबला' शब्द का प्रयोग नहीं होता था, प्राचीन कालीन किसी भी ग्रंथ में कहीं भी स्त्रियों के लिए अबला या रक्षित जैसे शब्द प्रयुक्त नहीं हुए। वैदिक साहित्य के मर्मज्ञ और संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित श्री पाद दामोदर सातवलेकर ने लिखा है–''प्राचीनकाल में जिस प्रकार वीर पुरुषों के नाम प्रसिद्ध थे उसी प्रकार वीर स्त्रियों के नाम भी सुनने में आते है। काली, भवानी, अंबिका, एकवीरा आदि सैकड़ों देवियाँ अपनी शूरवीरता के कारण पूज्य हो गई हैं। पुरुष देहधारी सभी देवता प्रायः शस्त्रधारी हैं, लेकिन हिन्दुओं की देवियाँ तो पुरुषों से भी अधिक आयुध धारण किये हुए हैं। देवताओं के सामान्यतः दो हाथ चित्रित किए गए हैं, अधिक से अधिक चतुर्भुज या षष्ठभुज भी होते हैं और उनके हाथों में उतने ही शस्त्र धारण किये गए मिलते हैं, किन्तु देवियों के तो अठारह या बीस हाथ शस्त्रायुध युक्त मिलते है।''

अर्थात प्राचीनकाल में स्त्रियाँ आत्मरक्षा में सक्षम होने के साथ–साथ राष्ट्र रक्षा में भी पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर या उनसे एक कदम आगे बढ़कर दायित्व का निर्वाह करती थीं। अबला शब्द का सामान्य अर्थ साधारण दृष्टि से बलहीन ही समझा जाता है। ऐसी स्थिति तो तब आई जब हर ओर से नारी को प्रताड़ित या लांछित किया जाता था, अन्यथा जिन दिनों समाज में उन्हें पुरुषों के समान ही स्थान दिया जाता था और वैसे ही अधिकार प्राप्त थे तब प्रकृति प्रदत कमनीयता और कोमलता के उपरांत भी स्त्रियाँ शौर्य और वीरता के क्षेत्र में पुरुष से कदापि पीछे नहीं रही। वैदिक और उपनिषद काल में नारियाँ विद्या, कला, अध्यात्म, शूरवीरता आदि विशेषताओं से परिपूर्ण थीं। उनके प्रभाव से ही उनकी सन्ताने भी संसार में महान कार्य भी करने में समर्थ होती थीं जैसे– राम, कृष्ण, परशुराम, वशिष्ठ, विश्वामित्र आदि।

मध्यकाल में उनको ऐसे बन्धनों से जकड़ा कि वे योग्यता शून्य होकर मात्र घरेलू काम काज तथा सन्तानोत्पादन तक ही सीमित रह गई। समस्त कुरीतियों का कारण यही युग कहा गया है। बाल–विवाह अशिक्षा और पर्दा प्रथा का प्रचलन के कारण यह युग अवनति और पतन का युग था। इसी समय नारी अबला हो गई।

रामायण काल में राजा जनक के दरबार में याज्ञवल्क्य और गार्गी का शास्त्रार्थ स्त्रियों की उन्नति के सुवर्ण काल को दर्शाता है। महाभारत काल की द्रौपदी इतनी बहुमुखी प्रतिभा, शक्ति सम्पन्न और धनुर्विद्या में इतनी

अधिक निष्णात थी कि उसके लिए परछाई देखकर मत्स्य वेध की शर्त रखनी पड़ी।[1]

विश्व संतुलन आज नारी के पक्ष में जा रहा है। अमेरिका में प्रसार पाता हुआ नारी वर्चस्व उस प्रभात कालीन सूर्य सदृश है जिसका प्रकाश क्रमशः अधिक प्रखर अधिक व्यापक होने वाला है। समस्त विश्व में नारी पिछड़ेपन से पीछा छुड़ाकर प्रगतिशील बनती जा रही है। क्योंकि नर–नारी का संतुलित समन्वय ही मानव जाति का भविष्य उज्जवल करेगा। और स्त्री–पुरुष दोनों ही भगवान के दायीं–बायीं भुजा के रूप में पारस्परिक सहयोग और सद्भाव का परिचय देते हुए सुखी और समृद्ध समाज का सृजन कर सकेंगे।

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन महायज्ञ में जिन वीरांगनाओं ने स्वयं की आहुति दी वे अबला नहीं सबला थीं एनीबेसेंट ने सन् 1913 में 'कामन विल' साप्ताहिक पत्र निकालकर स्वतंत्रता संग्राम का शंखनाद किया। स्वर्ण कुमारी देवी (टैगोर की बड़ी बहन) का 1876 में प्रकाशित प्रथम उपन्यास ''दीप निर्वाह'' राष्ट्रीय चेतना की सर्वोकृष्ट कृति है। भगिनी निवेदिता स्वाधीनता सेवा, और साधना की त्रिवेणी थीं। श्री अरविन्द और रवीन्द्रनाथ टैगोर भगिनी निवेदिता को लोकमाता कहकर पुकारते थे। डॉ0 मुथुलक्ष्मी रेड्डी भारत की प्रथम महिला विधायिका वे लेखिका और 'स्वतंत्रता सेनानी थीं, सन् 1930 के नामक सत्याग्रह आंदोलन में गाँधी जी के साथ उन्होंने भी गिरफ्तारी दी थी। डॉ0 मुथुलक्ष्मी सन् 1813 ई0 में भारत की प्रथम महिला डाक्टर बनीं। मानवता की सेवा करने के कारण वे भारत का गौरव थीं।

भारत कोकिला सरोजनी नायडू, कमला देवी चट्टोपाध्याय, दुर्गाबाई देखमुख, सुभद्राकुमारी चौहान आदि क्रांतिकारी लेखन करने वाली महान महिलाएँ हैं। सुभद्राकुमारी चौहान राश्ट्र गौरव रत्न थीं। उन्होंने वीर रस से परिप्लावित गीतों की रचना करके क्रांतिकारियों को उत्प्रेरित किया। ''राखी की लाज'' जलियांवाला बाग में बसंत'' जैसी अमर और ओजस्वी कविताएँ ने असहयोग आंदोलन में पवित्र मंत्र सिद्ध हुईं। 'झाँसी की रानी' कविता ने क्राँति महायज्ञ में आहुति का कार्य किया। राश्ट्रीय–काव्यधारा प्रवाहित करने वाली तोरण शुक्ल, विद्यावती कोकिला, उर्मिला देवी शास्त्री, भारत रत्न अरूणा आसफ अली, केरल की राष्ट्रवादी साहित्यकार बालमणि अम्मा, हंसा मेहता, नयनतारा सहगल आदि अनेक वीरांगनाओं ने अपनी लेखनी के माध्यम से भारतीय जनमानस में स्वतंत्रता रूपी आशा का दीप प्रज्वलित किया। झाँसी की महारानी लक्ष्मी बाई ने देश के लिए वीरता के साथ अंग्रेजों से लोहा लिया। डॉ0 राजकिशोर सिंह ने अपने ग्रन्थ 'प्राचीन भारतीय कला एवं संस्कृति' में नारी की महता का शब्दांकन करते हुए कहा– ''ममता की मंजूशा स्नेह का सदन, दया का उद्गम, क्षमा की सुमेरू, विधाता की कला पूर्ण सृश्टि का श्रृंगार, पृथ्वी की कविता, देश–निर्माण की आधार शिला उमा–रमा–सरस्वती के समान नारी का इस भारत– वसुंधरा में सदा–सर्वदा से आदरणीय स्थान रहा।

यजुर्वेद में नारी की गरिमा को सम्बोधित करते हुए कहा गया है– 'हे नारी! तू स्तुति योगय उत्तमवाणी युक्ता, आदरणीय, पूजनीया कमनीया, चंद्र के समान आहलादकारिणी, श्रेष्ठ शील से प्रकाशमान अर्थात् ज्योति के समान गहन अज्ञानान्धकार को अपने दिव्य गुणों के प्रकाश से दूर करने वाली है। तू दीनता के भावों से रहित, परम्परा से पूर्ण, विविध गुणों से प्रसिद्ध अथवा विविध विद्याओं का जिसने श्रवण किया हुआ है तथा विविध विद्याओं में प्रवीण यह तेरे नाम है। तू उत्तम गुणों के लिए मुझे उपदेश दिया कर।

डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल के शब्दों में–''स्त्री और पुरुष नदी के दो तटों की भाँति संयुक्त हैं। दोनों के बीच में जीवन की धारा प्रवाहित होती है।

सन् 1974 ई0 का वर्ष अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष के रूप में विश्व भर में मनाया गया है। संसार भर के देशों की सरकारें उसके बाद से अपेक्षाकृत नारी समस्या पर अधिक ध्यान दे रही है।[2] अब इक्कीसवीं सदी को महिला

शताब्दी का नाम दिया गया है। इक्कीसवीं सदी नारी प्रधान है। अरविन्द ने इसे 'मदर्स सेंचुरी' के नाम से घोषित किया। किन्तु इस सदी में स्त्रियों को जो स्वतंत्रता प्राप्त हुई है उसे वह पश्चिमी स्त्रियों की भाँति विलास प्रियता की वृद्धि में ही लगा रही है। यह अशुभ लक्षण है, स्वतंत्रता का उद्देश्य आत्मसंयम, आत्मोन्नति, सद्गुणों की वृद्धि होनी चाहिए। तभी स्वतंत्रता का रूप कल्याणकारी हो सकता है। अन्यथा इसके प्रतिकूल विलास और वासना की वृद्धि भारतीय संस्कृति के सर्वथा विरूद्ध है। यह स्वतंत्रता का विकृत रूप उच्छृखलता है। इसका अंतिम परिणाम हानिकारक सिद्ध हो सकता है– – 'जिमि स्वतंत्र होहिं बिगरहिं नारी।' महादेवी वर्मा नारी की महत्ता का वर्णन करती हुई कहती है ''नारी केवल माँस पिण्ड की संज्ञा नहीं है, आदिम काल से आज तक विकास पथ पर पुरूश का साथ देकर, उसकी यात्रा को सफल बनाकर, उसके अभिशापों को स्वयं झेलकर और अपने वरदानों से जीवन में अक्षय शक्ति भर कर मानवी ने जिस व्यक्तित्व चेतना और हृदय का विकास किया है, उसी का पर्याय नारी है।''[3]

वस्तुतः नर और नारी के मध्यवर्ती अनुदान प्रतिदान है। न पुरुष वरिष्ठ है न स्त्री कनिष्ठ। नर–नारी के अप्रतिम सहयोग से ही विश्व में शांति सम्भव होगी।

उपन्यासकार प्रेमचंद ने लिखा – ''नारी पृथ्वी की भाँति धैर्यवान शान्त और सहिष्णु होती है''।

आज नारी के सौन्दर्य को स्तरहीन आकर्षण का आधार बनाकर विज्ञापनों में प्रदर्शित करके उसे मानवीय कुत्सा का केन्द्र बनाया जा रहा है। धन के प्रलोभन में सरस्वती पुत्र और कलाकार नारी के अस्मिता को विज्ञापित करके कलाहीनता का परिचय दे रहे हैं।

आधुनिकता के नाम पर सिनेमा के विज्ञापनों से लेकर कलैण्डर, साबुन, दन्तमंजन और बीड़ी, माचिसों तक में नारी को चित्रित किया जाता है। क्या नारी का सौन्दर्य इतना हेय और उपेक्षित है। यदि उन वस्तुओं का उपयोग नैतिक चेतना के फलस्वरूप बन्द कर दें कि नारी जाति का नग्न प्रदर्शन असहनीय हो गया है, तो धन के लोभी स्वयं ही उस कुत्सित आचरण का परित्याग कर दें। असहयोग आंदोलन ने जब ब्रिटिश सत्ता को जाने पर विवश कर दिया तो अश्लील विज्ञापनों वाली वस्तुओं का क्रय–विक्रय बन्द करने का लोग संकल्प लेने लगें तो इन तथा कथित प्रगतिशील और बुद्धिवादियों को शीघ्र ही चेतना आ जाएगी, अन्यथा अश्लील विज्ञापनों की लपटों से सारा समाज जलकर खाक हो सकता है।

नारी शक्ति मातृ रूप, भगिनी रूप, पुत्री रूप तथा सहधर्मिणी इन चार रूपों में पारिवारिक संस्था को सशक्त बनाने के साथ–साथ सामाजिक विकास में अहम् भूमिका निभाती रही है, किन्तु मध्यकाल में, सामन्तवादी अंधकार युग में नारी की मूल सत्ता आत्मा को विस्मृत करके उसे अबला समझा गया तथा कामिनी, रमणी, भोग्या क्रीतदासी जैसी घृणित संज्ञाओं से विभूषित किया गया। नारी की पूजा के स्थान पर उसे वासना की आग में झोंक कर उसे शापित कर दिया गया। जिसका परिणाम दीर्घकालीन परतंत्रता के रूप में भारत ने झेला। पराधीन भारत में नारी की दुर्दशा के विषय में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त लिखते है–

''भागे न क्यों हमसे भला फिर दूर सारी सिद्धियाँ।
पातीं स्त्रियाँ आदर जहाँ रहती वहीं सब सिद्धियाँ।।''

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने कहा ''स्त्री साक्षात् त्यागमूर्ति है वह अबला नहीं सबला है। जिस समय पाशुविक शक्ति के अंधयुग का अंत होगा और मनुष्य अपने आध्यात्मिक स्वरूप को अनुभव करके न्याय नीति के आधार पर नये संसार का निर्माण करेगा तब निश्चय ही नारी का स्थान प्रमुख रहेगा।''

राष्ट्र और समाज का दुर्भाग्य यह है कि पुरुष ने अनेकानेक प्रतिबन्ध लगाकर उसे बलरहित बना दिया।

स्वाभाविक भी है अबला स्त्री बलिष्ठ और पराक्रमी संतानों को जन्म कैसे दे सकती है अतः यह उचित भी है और आवश्यक भी कि इस स्थिति को उल्टा जाए तथा नारियों पर लगे अबला कलंक का प्रक्षालन करके उसे सबला बनाया जाए, तभी वह शारीरिक मानसिक तथा बौद्धिक दृष्टि से समर्थ होकर अपने नाम को चरितार्थ कर सकेंगी।

इक्कीसवीं सदी नारी शताब्दी है। नारी जागरण आज की अनिवार्य आवश्यकता है। नारी का विलुप्त वर्चस्व उसे लौटाना होगा। नारी की शक्ति और क्षमता को पहचानकर। उसके व्यक्तित्त्व को और अधिक निखारना नितान्त वान्छनीय है। उसकी महिमा और गरिमा के अनुरूप इसे सम्मान देना होगा। मैथलीशरण गुप्त की 'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी.....।'' जैसे द्विवेदी युगीन दुर्ग का ध्वंस करते हुए छयावादी कवि प्रसाद जी उसे श्रद्धा, आस्था और अमृत स्त्रोतस्विनी के उदात्त भाव भूमि पर प्रतिष्ठित करते हैं–

''नारी तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास–रजत–नग–पगतल में।
पीयूष स्त्रोत सी बहा करो जीवन के सुन्दर समतल में।।''

अस्तु नारी शक्ति पुरुष के लिए जीवन सुधा है। त्याग उसकी प्रवृत्ति है तो प्रतिदान उसका धर्म, सहिष्णुता ही उसकी उपासना और व्रत है प्रेम उसका जीवन है, उसके हास मं निश्छल निर्झर सा संगीत है। निःसन्देह वह सबला है। अजस्त्र शक्ति की प्रतिमूर्ति है।

संदर्भ संकेत

1. अखण्ड ज्योति – अक्टूबर – 1998, फरवरी– 2008
2. हंस पत्रिका – स्त्री विमर्श– नवम्बर – 2009
3. महादेवी वर्मा – ''श्रृंखला की कड़ियाँ''।

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

भारत में महिला सशक्तिकरण के विविध आयाम

डॉ0 वर्षा राहुल
असिस्टेंट प्रोफेसर–अर्थशास्त्र विभाग
डी0वी0 (पी0जी0) कालेज, उरई

संसद एवं राज्य विधान मंडलों में महिलाओं को एक तिहाई आरक्षण दिए जाने का मुददा पिछले लगभग डेढ़ दशक से हिचकोले खा रहा है। मई 2009 में गठित नई लोक सभा में राष्ट्रपति द्वारा दिए गए अभिभाषण में जिन 25 बिंदुओं को सरकार द्वारा अपनी प्राथमिकताओं में गिनाया गया था उसमें महिला आरक्षण भी शामिल है।इसे सरकार के पहले 100 दिन के अंदर पूरा करने को कहा गया था।किन्तु कुछ राजनीतिक दलों के साथ सहमति न बन पाने के कारण यह मुददा एक बार फिर पेंडुलम की भांति लटकता हुआ दिखाई दे रहा है। सत्तारूढ गठबंधन से विपरीत मत रखने वाले इन राजनीतिक दलों की मांग है कि 33 फीसदी आरक्षण में दलित , पिछड़ी जातियों तथा अल्पसंख्यकों को अलग से आरक्षण दिया जाय । जबकि कांग्रेस आरक्षण में आरक्षण के इस फार्मूले को सीधे तौर पर खारिज कर रही है।

महिलाओं के आरक्षण पर डॉ0 नलचिनपन की अध्यक्षता वाली संसद की स्थाई समिति ने इन्हीं अन्तःविरोध के चलते इस बात पर गंभीरता से सोचा था कि देश की उन ऐसी सींटों की पहचान की जानी चाहिए जहां महिलाओं की आबादी का औसत ज्यादा है ताकि उसी में से एक तिहाई सींटें दोहरी निर्वाचन प्रणाली के आधार पर छाँट ली जाएँ ।इस फार्मूलें का साफ आशय यही था कि लोक सभा व विधान मंडलों के मौजूदा स्वरूप में बदलाव किए बिना महिलाओं को राजनीतिक प्रतिनिधित्व दिया जा सकता है। लेकिन यह फार्मूला भी केवल कागजी कार्रवाई तक सीमित हो गया। जाने माने मानवाधिकार कार्यकर्ता व दिल्ली हाईकोर्ट के पूर्व न्यायाधीश राजेंद्र सच्चर का कहना है कि महिला संगठनों को दोहरी सदस्यता के विकल्प पर विचार करना चाहिए वरना उनके प्रतिनिधित्व का सपना पूरा होने में बेवजह लंबा वक्त खिंचेगा और महिलाएं अपने हक से वंचित रहेंगी ।

ठस मामले में यह सुझाव भी 13वीं लोकसभा में प्रमुखता से चर्चा में आया कि राजनीतिक पार्टियों के लिए संवैधानिक तौर पर अनिवार्य कर दिया जाए कि वे कम से कम 20 फीसदी सींटें महिलाओं को आवंटित करें लेकिन यह सुझाव कई पार्टियों व महिला संगठनों ने खारिज कर दिया क्योंकि उनका मानना था कि इसमें महिला आरक्षण विरोधी पार्टियों को बच निकलने का रास्ता मिल जाएगा। जिन सीटों पर उनका जनाधार नहीं हो या हारने वालीं सीटें हों वहां पर महिलाएं ढूंढ़कर खड़ीं कर दी जाएगीं।

उल्लेखनीय है कि महिला आरक्षण बिल संसद में पहली बार 12 सितंबर 1996 में एच डी देवगौड़ा द्वारा लाया गया था। उस दौरान यह बिल संसद में पास नहीं हो पाया । देवगौड़ा की सरकार अल्पमत में आ गई और 11वीं लोकसभा को भंग कर दिया गया । वर्ष 1998 में अटल बिहारी बाजपेई सरकार द्वारा महिला आरक्षण बिल लाया गया । लेकिन लोकसभा के समय से पहले भंग होने के कारण यह बिल पास नहीं हो सका । इसके बाद 23 दिसंबर 1999 को निचले सदन में बिल का मसौदा रखा गया था। लेकिन राजनीतिक सहमति न हो पाने के कारण यह बिल पास नहीं हो सका । मई 2008 में केन्द्र सरकार द्वारा महिला आरक्षण विधेयक राज्यसभा में प्रस्तुत किया गया । इसे 108वें संविधान संशोधन विधेयक के रूप में जाना जाता है। विधेयक में राज्यसभा, राज्य विधान परिशदों सहित सभी विधायी निकायों में महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण उपलब्ध कराने का प्रावधान है। इसके लिए संविधान के अनुच्छेद 239क, 331, 333 में संशोधन किया जाएगा तथा 330क, 332क, 334क नामक नए

अनुच्छेदों को संविधान में स्थान देकर महिलाओं के लिए सींटे आरक्षित करने का प्रावधान किया गया था किन्तु विपक्षी दलों द्वारा समर्थन न मिलने के कारण इसे डॉ0 नलचिनपन की अध्यक्षता वाली संसद की स्थायी समिति को सौंप दिया था।

उल्लेखनीय है कि संविधान के अनुच्छेद 40 में दिए गए निर्देशों के अनुपालन में संसद द्वारा 73वां एंव 74वां संविधान संशोधन अधिनियम 1992 में ही पारित किया गया था। इस संशोधन द्वारा ग्राम पंचायतों तथा नगर पालिकाओं में क्रमशः अनुच्छेद 243(घ) तथा अनुच्छेद 243(न) द्वारा आरक्षित तथा अनारक्षित वर्ग की महिलाओं हेतु 33 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था की गई है। लगभग 16 वर्षों से चल रहीं इस व्यवस्था का परिणाम अब देखने को मिल रहा है। ग्राम पंचायतों तथा जिला पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी में प्र्याप्त वृद्विहुई तथा इसके सकारात्मक संकेत दिखाई देने लगे है।

किसी भी देश के विकास संबंधी सूचकांक को निर्धारित करने के लिए उद्योग, व्यापार, खाद्यान्न उपलब्धता, शिक्षा इत्यादि के स्तर के साथ–साथ उस देश की महिलाओं की स्थिति का भी अध्ययन किया जाता है। नारी की सुदृढ़ व सम्मानजनक स्थिति एक उन्नत तथा मजबूत समाज का द्योतक है। जहाँ तक भारत देश का संबंध है यहाँ यत्र नार्यस्तु, पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता, का सूत्र वाक्य पौराणिक काल से मान्य रहा है। यह बात अलग है कि जहाँ एक ओर लक्ष्मी, सीता, दुर्गा, पार्वती के रूप में नारी को पूजनीय बताया गया है वहीं इसी देश में नारी को अबला बताकर परंपरा एंव रूढ़ियों की बेड़ी में जकड़ा गया है। हालाकि इसमें कोई मत वैभिन्य नहीं है कि स्वतंत्रता के बाद से संविधान के नारी समर्थन वाले प्रावधानों को पोषित करते हुए बनाए गए अनेक कानूनों तथा विभिन्न प्रकार के सरकारी प्रयासों के कारण आज भारत की महिलाओं की स्थिति में गुणात्मक सुधार हो रहा है। यही कारण है कि आज महिलायें देश की विभिन्न आर्थिक गतिविधियों में समानरूप से सहभागी बन रहीं है। शिक्षा, स्वास्थ्य, सुरक्षा सेवाओं, आर्किटेक्चर, इंजीनियरिंग जैसे अनेकों क्षेत्र में महिलाओं की सहभागिता में अप्रत्याशित वृद्वि परिलक्षित हो रहीं है। इतना ही नहीं कारपोरेट सेक्टर में जहाँ दो दशक पहले तक पुरुषों का ही वर्चस्व था वहाँ आज महिलाएँ न केवल अपने उच्च प्रबंधकीय क्षमता का प्रदर्शन कर रहीं हैं बल्कि नेतृत्व भी कर रहीं हैं। सशक्तिकरण की दिशा में भारतीय महिलाओं का कदम अब पुरुषों की बैसाखी का मोहताज नहीं रहा।

भारत में महिलाओं के अधिकार के लिए पहली लड़ाई राजा राममोहन राय ने लड़ी थी। सन् 1818 में उन्होंने पहली बार सती प्रथा के विरुद्ध एक जनमत खड़ा करने का प्रयास किया। प्रारभं में रूढ़ि वादियों ने उनका विरोध भी किया किन्तु लगभग 10 वर्षों तक अनवरत प्रयास करने के बाद 1829 में ब्रिटिश संसद द्वारा सती प्रथा पर रोक लगाने वाला अधिनियम पारित किया गया। भारत में महिलाओं के अधिकारों के संरक्षण की दिशा में यह पहला प्रयास था।

इसमें कोई दो राय नहीं कि महिलाएं देश के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। देश के समग्र आर्थिक विकास में ये निर्धारक तत्व की भाँति महत्वपूर्ण साबित हो सकती हैं। इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुए 1985 में नैरोबी में संपन्न अंतर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन में महिला अधिकारों के संरक्षण की वकालत करते हुए पहली बार महिला सशक्तिकरण शब्द का प्रयोग किया गया। इस सम्मेलन में भारतीय प्रतिनिधि मंडल का नेतृत्व सुश्री नजमा हेपतुल्ला ने किया था।

स्वतंत्रता आंदोलन के साथ ही देश में प्रगतिशील विचारों का प्रयास होने लगा था। देश को गुलामी की जंजीरों से मुक्त कराने के साथ–साथ भेदभाव रहित समाज की स्थापना पर भी जोर दिया जाने लगा। भारत के संविधान में इन विचारों को शामिल करते हुए महिला–पुरुष, अमीर–गरीब तथा साक्षर–निरक्षर सभी को समान रूप से सुरक्षा प्रदान की गयी है। पिधि के समक्ष समता तथा शोषण मुक्त समाज की स्थापना के लिए कटिबद्ध हमारे संविधान निर्माताओं ने सभी को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय देने का आश्वासन देते हुए संविधान

की प्रस्तावना में ही यह स्पष्ट कर दिया कि संविधान के समक्ष स्त्री एंव पुरूष का कोई भेद नहीं है। संविधान की प्रस्तावना में 'प्रतिष्ठा और अवसर की समता' तथा 'व्यक्ति की गरिमा' इत्यादि वाक्यांशों का प्रयोग कर यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि भारत में अब भेदभाव जैसी पुरानी मान्यताओं को कोई स्थान नहीं मिलेगी।

भारतीय संविधान में महिलाओं को पुरुषों के समान ही अधिकार दिया गया है। संविधान का अनुच्छेद 14–18 समता के अधिकार की व्याख्या करता है। इसी प्रकार अनुच्छेद 15 राज्य को धर्म, जाति, लिंग के आधार पर भेदभाव न करने का उपदेश देता है। संविधान का यह अनुच्छेद महिलाओं को पुरुषों के समान ही आजीविका का अवसर प्राप्त करने का अधिकार देता है। साथ ही समान कार्य के लिए पुरुषों के समान ही पारिश्रमिक देने की व्यवस्था करने का भी आदेश देता है। इस अनुच्छेद के अनुसार स्त्रियों एवं बच्चों के हित में राज्य विशेष उपबंधों का निर्माण भी कर सकता है। संविधान का अनुच्छेद 23 मानव के क्रय–विक्रय पर रोक लगाता है तथा महिलाओं तथा बच्चों से बलपूर्वक श्रम करवाने को दण्डनीय अपराध घोषित करता है। यह अनुच्छेद स्त्रियों, बच्चों तथा अन्य व्यक्तियों को क्रय–विक्रय, दास प्रथा तथा बलात् श्रम से संरक्षित करता है।

संविधान के भाग 4 में उल्लिखित नीति निर्देशक तत्वों में भी महिलाओं के हितों को संरक्षित करने का प्रयास किया गया है। अनुच्छेद 39 राज्य को अपनी नीतियाँ इस प्रकार से बनाने को निर्देशित करता है कि पुरुष और स्त्री दोनों को समान रूप से आजीविका का साधन उपलब्ध हो सके। अनुच्छेद 39(घ) पुरुषों और स्त्रियों दोनों को समान कार्य के लिए समान वेतन देने तथा अनुच्छेद 32 स्त्री कर्मियों के स्वास्थ्य की दशा एंव उनकी क्षमता के अनुरूप कार्य की दशाओं को तय करने का निर्देश सरकार को देता है। अनुच्छेद 40 में स्त्रियों के लिए कार्य की मानवोचित दशाओं तथा प्रसूति सहायता हेतु उपबंध करने का निर्देश देता है। संविधान के खण्ड 4(क) में भारतीय नागरिक के मौलिक कर्त्तव्यों का उल्लेख है। इस खण्ड के अनुच्छेद 51(क) (ड) में राज्य के नागरिकों से ऐसी प्रथाओं को त्यागने की अपेक्षा की गयी है जो स्त्रियों के सम्मान के विरूद्ध है।

स्वतंत्रता के बाद से देश में महिलाओं के सशक्तिकरण की दिश में केन्द्र सरकार द्वारा समय–समय पर प्रयास किए जाते रहे है। वर्ष 2001 की जनगणना के आंकड़ों के अनुसार देश की कुल आबादी में महिलाओं का प्रतिशत 48.3 है। लगभग आधी आबादी होने के बावजूद आज भी महिलाओं की राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक स्तर पर भागीदारी 10 प्रतिशत के आसपास ही है। देश की नवगठित पंद्रहवीं लोकसभा में पहली बार विजयी महिलाओं की संख्या पिछली लोकसभाओं की अपेक्षा सर्वाधिक है। उल्लेखनीय है कि चौदहवीं लोकसभा में विजयी महिलाओं की संख्या 45 थी जबकि नवगठित लोकसभा में महिलाओं की संख्या 59 है। पद्रंहवीं लोकसभा में पहली बार किसी महिला (मीरा कुमार) को स्पीकर पद हेतु चुना गया।

महिलाओं के सशक्तिकरण की दिशा में एक अभिनव प्रयास हिंदू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम 2005 पारित करके किया गया। इस संशोधन द्वारा हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 की धारा 4 की उपधारा 2 तथा धारा 23 एंव 24 का लोप कर धारा 6 को अंतःस्थापित किया गया है। इस संशोधन के द्वारा पिता की संपत्ति में पुत्रियों को वही अधिकार दिया गया है जो पुत्रों को प्राप्त है। इतना ही नहीं अधिनियम में पूर्व में मृत पुत्री की संतानों को वही अधिकार दिया गया है जो पूर्व में मृत पुत्र के संतानों को प्राप्त है। अधिनियम की धारा 24 का लोप कर दिया गया है। यह धारा पुनर्विवाह करने वाली स्त्री का पिता की संपत्ति पर से अधिकार को समाप्त करती थी । इसी प्रकार महिला को निवास गृह के संबंध में विभाजन की मांग करने से वंचित करने वाली धारा 23 का विलोपन कर दिया गया है।

घरेलू उत्पीड़न से सुरक्षा हेतु एक विधेयक संसद द्वारा वर्ष 2005 के मानसून सत्र में पारित किया गया। protection of women's from the domestic violence act 2005 नामक इस अधिनियम को राष्ट्रपति की स्वीकृति सितंबर 2005 में मिली। जम्मू कश्मीर को छोड़ कर शेष भारत में लागू इस अधिनियम के अंतर्गत महिलाओं

को शारीरिक, मानसिक, मौखिक, आर्थिक तथा यौन उत्पीड़न सहित सभी तरह की पारिवारिक हिंसा से संरक्षण प्रदान करने का प्रावधान किया गया है। अधिनियम में महिलाओं को निःशुल्क कानूनी सहायता भी उपलब्ध कराने का प्रावधान किया गया है। यह अधिनियम बिना विवाह के किसी पुरूश के साथ रह रहीं महिलाएँ, विधवाओं तथा अकेले जीवन व्यतीत कर रहीं महिलाओं को भी संरक्षण प्रदान करता है। अधिनियम में किसी महिला के उत्पीड़न के लिए दोषी व्यक्ति को एक वर्ष की सजा तथा 20,000 रूपये जुर्माने का प्रावधान है।इसके अतिरिक्त सरकार के पास परित्यकताओं हेतु गुजारा भत्ता (संशोधन) विधेयक, बालिका अनिवार्य शिक्षा एंव कल्याण विधेयक आदि विचाराधीन है।

केन्द्र सरकार द्वारा महिलाओं के अधिकारों की संरक्षा के लिए समय–समय पर कानूनों का प्रणयन किया गया है। समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976, प्रसूति प्रसुविधा अधिनियम, 1961, बाल–विवाह निषेध अधिनियम, 1976, वेश्यावृति निवारण अधिनियम, 1986, सती निषेध अधिनियम, 1987, प्रसव पूर्व निदान तकनीक अधिनियम 1984, अनैतिक व्यापार निरोधक अधिनियम 1959, स्त्री अशिष्ट निरूपण निषेध अधिनियम 1986, आदि अनेक अधिनियमों का महिला अधिकारों के संरक्षण हेतु प्रणयन किया गया है।

भारतीय दण्ड संहिता की धारा 354 में स्त्री की लज्जा भंग करने को अपराध घोषित किया गया है। इसके लिए 2 वर्ष के कारावास का प्रावधान है। इसी संहिता की धारा 509 में स्त्री की लज्जा का अनादर करने के आशय से शब्द ध्वनि अथवा अंग विक्षेप किए जाने को दण्डनीय अपराध घोषित किया गया है। इसी प्रकार धारा 376 के अंतर्गत बलात्कार को दण्डनीय अपराध घोषित किया गया है। अनैतिक व्यापार निवारण अधिनियम 1956 में वेश्यावृत्ति को दण्डनीय अपराध बताया गया है। स्त्री अशिष्ट निरूपण निषेध अधिनियम 1959 में महिलाओं के रूप और आकृति को अश्लील ढंग से प्रदर्शित किए जाने को दण्डनीय अपराध घोषित किया गया है।

महिलाओं के अधिकारों के संरक्षण हेतु कई अन्य विधेयक केन्द्र सरकार द्वारा प्रस्तावित है जिनमें प्रिवेंशन ऑफ आफेंसेज (बाई एसिड्स) विधेयक, 2008, अनिवार्य विवाह पंजीयन विधेयक 2005, बालिका अनिवार्य शिक्षा एंव कल्याण विधेयक, कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न से संरक्षण विधेयक, 2007, दण्ड प्रक्रिया संहिता संशोधन विधेयक 2005, अनैतिक व्यापार निरोधक संशोधन विधेयक 2006 परित्यक्ता हेतु गुजारा भत्ता विधेयक, 2005, प्रमुख है। प्रिवेंशन ऑफ आफेंसेज (बाई एसिड्स) विधेयक 2008 में महिलाओं पर एसिड फेंकने की घटनाओं पर रोक लगाने का किया गया है। इसी प्रकार सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्देश के अनुपालन में अनिवार्य विवाह पंजीयन विधेयक 2008 तैयार किया गया है। इसमें विवाह को अनिवार्य रूप से पंजीकृत कराने का प्रावधान है। कार्यस्थल पर सहकर्मियों द्वारा किए जाने वाले यौन उत्पीड़न पर रोक लगाने के लिए तैयार किए गए कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न से संरक्षण विधेयक संसद में प्रस्तुत किए जा चुके है।

साक्षरता किसी भी देश के विकास का न केवल महत्वपूर्ण पहलू है बल्कि यह समग्र सामाजिक विकास का पैरामीटर भी है। भारत में 1947 के पूर्व तक स्त्रियों की शिक्षा निजी प्रयास का विषय था किन्तु स्वतंत्रता के बाद यह जिम्मेदारी सरकार पर आ गई। इसका सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि स्त्री शिक्षा, जो अभी तक प्रायः शहरी क्षेत्र तक सीमित था, का विस्तार ग्रामीण क्षेत्रों तक हो गया। जनगणना 2001 के आंकड़े बताते हैं कि 1991 की जनगणना के बाद के एक दशक में स्त्री शिक्षा में प्रगति हुई है। इस अवधि में महिलाओं की साक्षरता दर में 14.4 प्रतिशत की वृद्वि हुई हैं 1991 में यह 39.3 प्रतिशत थी जो बढ़कर 53.7 प्रतिशत हो गयी हैं जबकि इसी अवधि में पुरुष साक्षरता में 11.13 प्रतिशत की ही वृद्वि हुई है। 7 वर्ष से अधिक आयु की कुल लगभग 86 करोड़ 84 लाख की जनसंखया में 56 करोड़ 7 लाख साक्षर है, जिनमें से 22 करोड़ 41 लाख 50 हजार महिलाएं है। पुरुषों में तीन चौथाई और महिलाओं में आधे से अधिक साक्षर हैं। आंकड़े बताते है कि 1991 में पुरुष – महिला साक्षर दर में अंतर 24.8 प्रतिशत था, जो 2001 में कम होकर 21.6 प्रतिशत हो गया। इसी अवधि में केरल में महिला

साक्षरता दर सबसे अधिक अर्थात् 87.72 प्रतिशत दर्ज की गयी जबकि बिहार में यह सबसे कम 33.12 प्रतिशत थी। इन आंकड़ों के बावजूद आजादी के 6 दशक बीत जाने पर भी हम महिला साक्षरता की दृष्टि से बहुत पीछे हैं। केन्द्र सरकार द्वारा इस दिशा में विशेष प्रयास करते हुए राष्ट्रीय साक्षरता मिशन, सर्वशिक्षा अभियान, कस्तूरबा गांधी बालिका छात्रावास योजना, एकमात्र कन्या योजना, बालिका छात्रवृत्ति योजना आदि शुरू की है और इसके कुछ सकारात्मक परिणाम भी दिखाई दे रहे हैं किन्तु बालिका शिक्षा के क्षेत्र में अभी बहुत कुछ किया जाना है।

किसी भी राष्ट्र की परंपरा और संस्कृति उस राष्ट्र की महिलाओं से परिलक्षित होती है। महिलाएँ समाज की रचनात्मक शक्ति होती हैं। आने वाले कल को सुधारने के लिए हमें आज की महिला की स्थिति में सुधार लाना होगा। इसके लिए हमें रूढ़िवादी दृष्टिकोण से उबर कर एक नया विकासवादी दृष्टिकोण अपनाना होगा। महिला अधिकारों के संरक्षण के लिए बनाए गए विभिन्न कानूनों को हमें पूरी ईमानदारी और सक्रियता से लागू करना होगा। इसके साथ–साथ हमें घरेलू तथा सामाजिक स्तर पर जागरूकता लाने का प्रयास करना होगा। शिक्षा के स्तर पर भी अभी बहुत कुछ किया जाना शेष है। शिक्षा एक ऐसा कारगर अस्त्र है जो संपूर्ण सामाजिक ढांचे को बदल सकता है। ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र में स्त्री शिक्षा के ढांचे में अभी भी कमियां है। ठोस तथा यथार्थ वादी पहल के द्वारा महिलाओं को एक उत्साहवर्द्धक सामाजिक वातावरण उपलब्ध कराया जा सकता है। हमें यह ध्यान रखना होगा कि महिलाओं में अपार क्षमता निहित है। इन्हें सबल और सशक्त बना कर हम दकश को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक रूप से सुदृढ़ बना सकते हैं। देश के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू जी का यह कथन आज भी प्रासंगिक हैं कि – ''जब महिलाएं आगे बढ़ती हैं, तो परिवार आगे बढ़ता है, समाज आगे बढ़ता है और राष्ट्र भी तेजी से आगे की ओर अग्रसर होता है।''

यदि देखा जाए तो आधुनिक काल की अपेक्षा प्राचीन भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति अधिक दृढ़ थी, उन्हें पुरुषों के समान अधिकार भी प्राप्त थे तथा समस्त सामाजिक – धार्मिक कार्यकलापों में उनकी सहभागिता अनिवार्य थी। गार्गी, अपाला, विद्योत्तमा जैसी विदुषी नारियां इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। कालांतर में भारत पर होने वाले लगातार विदेशी आक्रमणों के परिणामस्वरूप धीरे–धीरे महिलाओं की स्थिति में गिरावट आयी और वर्तमान में स्थिति यह है कि हम महिलाओं के सशक्तीकरण पर चर्चा कर रहें है, अर्थात जो नारी स्वंय में शक्ति स्वरूपा है, अन्नपूर्णा है, सृष्टि का प्रमुख आधार है, उसके सशक्तीकरण पर विचार–विमर्श किया जा रहा है। यही तथ्य स्वंय में उसकी ह्रासमान स्थिति का द्योतक है।

वस्तुतः भारत का सामाजिक ढ़ाचा ही महिलाओं और पुरुषों के लिए पृथक–पृथक भूमिकाओं का निर्धारण करता है, जिसके दुर्भाग्यपूर्ण परिणामस्वरूप वर्तमान में प्रत्येक स्तर पर महिलाओं के साथ भेदभाव किया जाता है। आज अमेरिका सहित विश्व का कोई भी राष्ट्र यह दावा कर पाने में सर्वथा असमर्थ है कि उसके यहाँ किसी भी रूप में महिलाओं का उत्पीड़न नहीं किया जाता। वर्तमान में महिलाएँ तृतीय विश्व की भाँति है, जहाँ उनके अधिकार सीमित और कर्तव्य असीमित है।

लम्बे संघर्ष के पश्चात भारतीय महिलाओं ने समाज में अपनी स्थिति में सुधार ला पाने और समाज में अपना कुछ स्थान बनाने में सफलता अर्जित की है। महिलाओं की स्थिति में सकारात्मक परिवर्तन दृष्टिगत हो रहे है, किन्तु इन परिवर्तनों की गति काफी धीमी है। महिलाओं के सशक्तीकरण का प्रश्न ही सामाजिक न्याय, लोकतंत्र एंव समेकित सामाजिक विकास के दर्शन पर आधारित है।

सशक्तीकरण वह बहु–आयामी प्रक्रिया है, जो कि महिलाओं में सामाजिक, आर्थिक संसाधनों पर नियंत्रण स्थापित करने की क्षमता का पर्याप्त विकास करने का प्रयत्न करती है। सशक्तीकरण से अभिप्राय शक्ति का अधिग्रहण मात्र नहीं है अपितु इसके द्वारा उनसें शक्ति के प्रयोग की क्षमता का समुचित विकास किया जाता है। महिलाओं को सामाजिक हाशिए से हटाकर समाज की मुख्य धारा में लाना, निर्णय लेने की क्षमता का विकास करना,

उनमें पराश्रितता की भावना और हीन भावना को समाप्त करना ही सशक्तीकरण है।

आंकड़े स्पष्ट करते हैं कि महिलाएं एक दिन में पुरुषों से छह घण्टे अधिक कार्य करती हैं। इसके पश्चात भी उन्हें महत्वहीन समझा जाता है तथा पचास प्रतिशत कामकाजी महिलाएं कार्यस्थल पर उत्पीड़न का शिकार होती हैं। देश में स्त्री–पुरुष साक्षरता एंव लिंग अनुपात पर दृष्टिपात करने पर यह ज्ञात होता है कि, देश में महिलाओं के प्रति बढ़ रहें अपराधों के कारणों में प्रमुख हैं–धर्म, जाति, वर्ग, पारिवारिक संरचना, विवाह पद्धति, नातेदारी, औद्योगीकरण, नगरीकरण, पाश्चात्य शिक्षा एंव संस्कृति, आधुनिकीकरण, बढ़ता उपभोक्तावाद आदि।

महिला सशक्तीकरण की दिशा में 31 जनवरी 1992 को राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना की गई। सन् 1992 ई0 से देश में अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस मनाया जाने लगा। भारत सरकार ने वर्ष 2001 को महिला सशक्तीकरण वर्ष घोषित किया। महिलाओं के कल्याण हेतु सरकार द्वारा अनेक योजनाओं एंव कार्यक्रमों का कार्याल्वयन किया गया है। सरकार द्वारा महिला उत्थान की दिशा में किए गए इतने प्रयासों के पश्चात भी भारतीय समाज में महिलाओं की दशा शोचनीय है। कन्या आज भी अधिकांश भारतीय घरों में अनचाही संतान है। यही पंसद–नापंसद लैंगिक भेदभाव का सर्वप्रमुख कारण है, जो कि परिवार के स्तर से आरम्भ होकर महिलाओं के प्रति हिंसा को प्रोत्साहित करते हैं। उन्हें समाज में पुरुषों के समान अधिकार एंव स्वतंत्रता का उपभोग करने से रोकती है।

इसके अतिरिक्त समाज में महिलाओं की दुर्दशा का एक अन्य प्रमुख कारण सरकारी योजनाओं का उचित क्रियान्वयन न होने के कारण अपेक्षित परिणामों की प्राप्ति न होना है। यह कहा जा सकता है कि महिलाओं की बदतर स्थिति के लिए अकुशल प्रबंधन के साथ–साथ समाज भी समान रूप से दोषी व उत्तरदायी है।

राष्ट्रीय एंव अंतर्राष्ट्रीय स्त्तर पर समय–समय पर आयोजित होने वाली संगोष्ठियों एंव सम्मेलनों में महिला सशक्तीकरण सम्बन्धी विचारों से इस तथ्य को बल प्राप्त होता है कि यह वर्तमान समाज की आवश्यकता है, किन्तु मात्र लम्बे–चौड़े भाषणों और वाद–विवादों मात्र से महिलाओं का उत्थान सम्भव नहीं है। इसके लिए समाज को महिला सशक्तीकरण के पौधे को अपने पंयासों रूपी जल से सींचना होगा, महिलाओं को उनकी खोई हुई प्रतिष्ठा एंव सम्मान पुनः लौटाना होगा, इन सबसे ऊपर नारी को अपने अस्तित्व, अपने स्व की पहचान बनानी होगी। जिस दिन ऐसा होगा उसी दिन महिला सशक्तीकरण का लक्ष्य भी प्राप्त हो जाएगा।

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

महिलाओं को प्रदत्त संवैधानिक अधिकार

डॉ0 ममता गंगवार
एसो0 प्रो0 एवं विभागाध्यक्ष (इतिहास विभाग)
महिला महाविद्यालय (पी.जी.) किदवई नगर, कानपुर

मैं यह शोध पत्र अपने पुत्र इंजी0 अंकुर सिंह को समर्पित करते हुये प्रस्तुत कर रही हूँ।

''महिलाओं को पुरुषों की तरह मुक्ति और स्वतंत्रता का अधिकार है। महिलाओं के अधिकार के मामले में मैं कोई समझौता करने को तैयार नहीं हूँ।'' – राश्ट्रपिता महात्मा गाँधी

भारत की आधी आबादी महिललाएं देश की विकास यात्रा में सशक्त भागीदारी दे सकती हैं, यदि लैगिक असमानता न हो। महिला समाज का अभिन्न अंग है। ऋग्वैदिक काल की पूज्या नारी उत्तरवैदिक काल से भोग्य बनने लगी और फिर उसे दोयम दर्जा दिया गया। उसकी गौरवशाली छवि धूमिल हो गई। भारतीय इतिहास में दिग्दर्शित होता है कि प्राचीन काल, मध्यकाल और आधुनिक काल में होने वाले पुनर्जागरण आन्दोलनों का उद्देश्य समाज और धर्म में आई कुरीतियां, आडम्बर, अंधविश्वास, कर्मकाण्ड, भेद–भाव आदि विसंगतियों को दूर करना तथा समाज में स्त्रियों की स्थिति में सुधार करना भी था। पितृ सत्रात्मक भारतीय समाज में महिला पर अन्याय, अत्याचार, शोषण, सामन्तवादी सोच से युक्त पुरूश वर्ग द्वारा किये जाते रहे हैं। आज भी स्त्री का दर्द/पीढ़ा सार्वभौम है, लैंगिक असमानता कायम है। आजाद भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र तथा यहां का संविधान विशिष्ट माना गया।

समाज में महिलाओं के साथ भेदभाव पूर्ण रवैय्या एवं शोशित, पीड़ित नारी स्थिति को ध्यान में रखते हुये संविधान समिति द्वारा ऐसे कानूनों को संविधान में शामिल किया गया जिससे नारी की स्थिति में सुधार आ सके। कानून पारित होने पर भी महिलाओं का शोशण, उत्पीड़न समाप्त नहीं हुआ, अतः सरकार को समय–समय पर कानूनों में संशोधन तथा नये कानून बनाने पड़ रहे है। नारी स्थिति को सशक्त बनाने तथा लिंगभेद को समाप्त करने के लिये बनाये गये कानूनों पर एक दृश्टि – भारतीय संविधान सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक न्याय प्रदान करने की मंशा की घोषणा करता है। हमारे देश के सभी कानून हमारे संविधान द्वारा अधिकृत होते है। भारतीय संविधान लागू करने के दो तरीके हैं –

(1) देश के सभी महिला–पुरुष को अधिकार प्रदान किये इन्हें नागरिकों के मूल अधिकार कहा गया ये हैं –
   (1) समानता का अधिकार
   (2) स्वतंत्रता का अधिकार
   (3) शोषण के विरोध का अधिकार
   (4) धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार
   (5) शिक्षा तथा संस्कृति का अधिकार
   (6) संवैधानिक संरक्षण का अधिकार।

   संविधान महिलाओं और पुरुषों में लैंगिक भेदभाव मिटाने की मंशा रखता है। संविधान, सरकार को महिलाओं के हित में विशेष प्रावधान बनाने की अनुमति देता है तथा संविधान उम्मीद रखता है कि सरकार सभी कमजोर वर्गो, जिसमें महिलाएं शामिल हैं की स्थिति सुधारने हेतु विशेश प्रयत्न करेगी।

(2) संविधान लागू करने का दूसरा तरीका सरकार का कुछ सिद्धान्तों को लागू करने के निर्देश देकर, इन्हें राज्य

के नीति निर्देशक तत्व कहा जाता है।[1]

मूल संवैधानिक अधिकारों में समानता के अधिकार का महिलाओं के लिये विशेश महत्व है। साथ ही महिलाओं के प्रति होने वाले अन्याय और शोशण के विरूद्ध भी कानून संविधान में समाहित हैं जिससे नारी की स्थिति मे ंसुधार हो सके, वह सक्षम बन सके। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 325, 326 के अनुसार प्रत्येक वयस्क नागरिक को मताधिकार प्राप्त है। किसी नागरिक को धर्म, जाति, वर्ण, सम्प्रदाय अथवा लिंग भेद के कारण मताधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता।

अनुच्छेद 14 यह उपबन्धित करता है ''भारत राज्यक्षेत्र में किसी भी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से अथवा विधियों के समान संरक्षण से राज्य के द्वारा वंचित नहीं किया जायेगा।''[2]

- ❖ संविधन के अनुच्छेद–14 में कानूनी समानता दी गई है।
- ❖ अनुच्छेद 15 (3) में धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर विभेद का प्रतिबन्ध नहीं करेगा।[3] इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य की स्त्रियों और बालकों के लिये कोई विशेश उपबन्ध करने से निवारित नहीं करेगी।
- ❖ अनुच्छेद –16(2) लोक नियोजन के विशय में अवसर की समता। राज्य के अधीन किसी नियोजन या पद के सम्बन्ध में है कोई नागरिक केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, उद्भव, जन्मस्थान, निवास या इनमें से किसी के आधार पर न तो कोई नागरिक अपात्र होगा और न इससे विभेद किया जायेगा।''[4]
- ❖ अनुच्छेद –19 में समान रूप से अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता दी गई है। सभी नागरिकों को 1. वाक्स्वातंत्रय और अभिव्यक्ति 2. सम्मेलन का स्वातंत्रय, 3. संगम का स्वातत्रंय, 4. संचरण का स्वातंत्रय, 5. निवास करने और बेस जाने का 6. वृत्ति उपजीविका, व्यापार एवं कारवाए करने का स्वातत्र्य[5]
- ❖ अनुच्छेद 21 में स्त्री पुरूश को प्राण एवं दैहिक स्वाधीनता से वंचित न करना। ''किसी व्यक्ति को उसके प्राण या दैहिक, स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जायेगा, अन्यथा नहीं।''[6]
- ❖ अनुच्छेद 23–24 शोशण के विरूद्ध समान रूप से स्त्री पुरूश दोनों को समान रूप से अधिकार प्रदान करता है। अनुच्छेद–23 में मानव के दुर्व्यापार और बलात् श्रम का प्रतिशेध है इस उपबन्ध का कोई भी उल्लंघन अपराध होगा जो विधि के अनुसार दण्डनीय होगा। इस अनुच्छेद की कोई भी बात राज्य को सार्वजनिक प्रयोजनों के लिये अनिवार्य सेवा अधिरोपित करने से निवारित नहीं करेगी। ऐसी सेवा अधिरोपित करने में राज्य केवल धर्म, मूलवंश, जाति या वर्ग या इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।
- ❖ अनुच्छेद–24 में कारखानों में 14 वर्श से कम आयु के बालकों के नियोजन नहीं किया जायेगा या किसी अन्य परिसंकटमय नियोजन में ही लगाया जायेगा।[7]
- ❖ अनुच्छेद–25 –28 में स्त्री–पुरूश दोनों को समान रूप से धार्मिक स्वतंत्रता दी गई है।
- ❖ अनुच्छेद 29–30 में सभी को शिक्षा एवं संस्कृति का अधिकार किया गया है। अनुच्छेद–29 में अल्पसंख्यक हितों का संरक्षण दिया गया है। कोई भी अल्पसंख्यक वर्ग अपनी भाशा, लिपि, और संस्कृति को सुरक्षित रख सकता है और केवल भाशा, जाति, धर्म और संस्कृति के आधार पर इसे किसी भी शैक्षिक संस्था मे ंप्रवेश से रोका नहीं जायेगा।[8] अनुच्छेद 30 (1) के अनुसार किसी भी धर्म या भाशा के अल्पसंख्यकों को शैक्षणिक संस्थान स्थापित करने और उन्हें प्रशासित करने का अधिकार है। आर्टिकल 30 (2) के अनुसार किसी भी शैक्षणिक संस्थान में किसी विशेष समुदाय, भाशा या धर्म के आधार पर किसी भी तरह का भेदभाव नहीं किया जा सकता।[9]
- ❖ अनुच्छेद–32 में सभी को संवैधानिक उपचारों का अधिकार प्रदान किया गया है।
- ❖ अनुच्छेद 39(क) समान न्याय और निःशुल्क विधिक सहायता से सम्बन्धित है इसमें राज्य यह सुनिश्चित

करेगा कि विधिक तन्त्र इस प्रकार काम करे कि समान अवसर के आधार पर न्याय सुलभ हो और वह विशिश्टतया, यह सुनिश्चित करने के लिये कि आर्थिक या किसी अन्य निर्योग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाये, उपयुक्त विधान या स्कीम द्वारा या किसी अन्य प्रकार से निःशुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था करेगा।

- ❖ भारतीय संविधान के भाग 9 व 9क में महिलाओं को राजनैतिक भागीदारी सुनिश्चित करने के लिये पंचायत तथा नगर निकायों में एक तिहाई आरक्षण दिया गया है। बालिंग मताधिकार समान रूप से पुरूशों की भांति ही है। इसी प्रकार भाशा सम्बन्धी अधिकार है। अनुच्छेद 39 (क) में स्त्री–पुरूश दोनों को समान रूप से जीविता के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार तथा अनुच्छेद 39 (घ) में पुरूशों और स्त्रियों दोनों को समान कार्य के लिये समान वेतन का प्रावधान बताया गया है। अनुच्छेद 39 (ड) में पुरूश, और स्त्री कर्मचारियों के स्वास्थ्य और शक्ति का तथा बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरूपयोग न हो और आर्थिक आवश्यकता से विवश होकर नागरिकों को ऐसे रोजगारों में न जाना पड़े जो उनकी आयु या शक्ति के अनुकूल न हो राज्य द्वारा अनुसंरणीय नीति तत्व बनाये हैं।[10]
- ❖ अनुच्छेद–40 में पंचायती राज संस्थाओं में 73वें, 74वें संविधान संशोधन के माध्यम से 1993 में महिलाओं हेतु 33ः आरक्षण की व्यवस्था, जिसके अन्तर्गत ग्राम पंचायतों, नगर पंचायतों आदि में राजनीति में सक्रिय सहभागिता के अवसर प्रदान हुये।
- ❖ अनुच्छेद 42 में काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं का तथा प्रसूति सहायता का उपबन्ध है। महिलाओं हेतु प्रसूति सहायता की प्राप्ति की व्यवस्था की गई है। मातृत्व लाभ अधिनियम (1961) बच्चे के जन्म् से 13 सप्ताह पहले और 13 सप्ताह बाद तक वैतनिक अवकाश का प्रावधान है। गर्भावस्था के दौरान महिला को रोजगार से निकालना कानून, अपराध होगा। लेकिन स्त्री ने इस लाभ के लिये कम से कम 80 दिन तक नियोक्ता के लिये काम किया हो। मातृत्व लाभ संशोधन अधिनियम 2017 के तहत मातृत्व अवकाश महिलाएं डिलीवरी की अनुमानित तारीख से आठ सप्ताह पहले और शेश प्रसव के बाद ले सकती है। यह संशोधन राज्यसभा में 11 अगस्त 2016 और लोकसभा में 09 मार्च 2017 में पारित किया गया था। गर्भवती महिला कर्मचारियों को इस बिल का लाभ पहुंचाने के लिये इसे अप्रैल 2017 में लागू किया गया। इस एक्ट के अन्तर्गत कारखानों, खानों, दुकानों, सरकारी–गैर सरकारी या अन्य सरकार द्वारा रजिस्टर्ड प्रतिश्ठानों में काम करने वाली महिला कर्मचारियों को शामिल किया गया है। 26 सप्ताह के मातृत्व अवकाश का प्रावधान है मातृत्व लाभ संशोधन अधिनियम के तहत एक फर्म महिला कर्मचारी की नियुक्ति के समय मातृत्व लाभ के बारे में लिखित या इलेक्ट्रॉनिक तरीके से सूचित करती है।[11]

मातृत्व अवकाश बच्चे के जन्म से पूर्व 12 सप्ताह का लिया जा सकता है जिन महिलाओं के 2 या 2 से अधिक बच्चे हैं, उनके लिये मैटरनिटीलीव की अवधि कम है इस स्थिति में महिला को 12 सप्ताह तक मैटरनिटी लीव दी जायेगी जिसमें बच्चे के जन्म से पूर्व अवकाश अधिकतम 6 सप्ताह हो सकता है।[12] जिस कम्पनी में 10 या इससे अधिक कर्मचारी है तो वहां काम करने वाली स्त्री को मातृत्व अवकाश मिलेगा। यदि किसी ने तीन माह या उससे छोटे शिशु को गोद लिया है या जिनके यहॉ सरोगेसी के जरिये बच्चा हुआ है। जिस क्षण से महिला को शिशु मिलता है, उसी वक्त से इस अवकाश की गणना होती है।

गर्भवती महिलाओं के लिये हर कम्पनी की मानव संसाधन समिति (एच0 आर0 पॉलिसी) अलग हो सकती है गर्भपात होने की स्थिति में छः सप्ताह का वेतन सहित अवकाश मान्य होगा।

संशोधन में यह भी कहा गया है कि अगर किसी नियोक्ता के पास 50 या इससे ज्यादा कर्मचारी है तो उसे आसपास कही क्रैश की व्यवस्था करनी होगी। कानून उस मॉ स्त्री को दिन में चार बार तक क्रैश में जाने को हक

देता है। सिर्फ गर्भवती होने की वजह से नौकरी से स्त्री को नहीं हटाया जा सकता।[13]

- ❖ अनुच्छेद–51 (क) (ड) में भारत के सभी लोग ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरूद्ध हो। भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो।
- ❖ अनुच्छेद 43 कर्मकारों के लिये निर्वाह मजदूरी आदि। राज्य को संविधान ने अनुच्छेद 43 के द्वारा मजदूरों को जीने के लिये अच्छा वेतन देने तथा अच्छत जीवन जीने के लिये व्यवस्था करने का निर्देश दिया है। 'मजदूर' शब्द पुरूश और महिलाओं को ही सम्बोधित करता है।
- ❖ अनुच्छेद 44–नागरिकों के लिये समान सिविल संहिता –राज्य, भारत के समस्त राज्य क्षेत्र में नागरिकों के लिये एक समान सिविल संहिता प्राप्त कराने का प्रयास करेगा। इसमें देश के समस्त नागरिकों (महिला और पुरूश) पर समान दीवानी कानून लागू होने की भावना व्यक्त की गई है।
- ❖ सन् 1952 का खान अधिनियम एवं सन् 1948 का कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत महिलाओं को सायः 7:00 बजे से प्रातः 6:00 बजे के बीच काम पर नहीं लगाया जा सकता। काम के दौरान उनकी सुरक्षा व कल्याण का ध्यान रखना भी अनिवार्य किया गया।
- ❖ सन् 1956 का अनैतिक देह व्यापार के विरूद्ध अधिनियम–यह कानून महिलाओं के यौन शोशण, तस्करी और वेश्यावृत्ति को रोकने के उद्देश्यों से बनाया गया था।
- ❖ सन् 1961 का दहेज निशेध अधिनियम भा0द0वि0 धारा 406–इस अधिनियम का विस्तार जम्मू–कश्मीर को छोड़कर सम्पूर्ण भारत पर है। यह अधिनियम विवाह के प्रतिफल के रूप में दहेज प्राप्त करने अथवा प्रदान करने को अपराधिक अपराध होना निरूपित करता है।[14]

दहेज के सम्बन्ध में जो विभिनन रूप अस्तित्व में आ गये थे उनको दृश्टिगत रखते हुये माननीय उच्च न्यायालय ने इस आशय का मत व्यक्त किया कि दहेज प्रतिशेध अधिनियम 1961 जो मूल में था वह अपर्याप्त होना महसूस किया जाने लगा। दहेज मांग व वसूली के सम्बन्ध में ऐसी युक्तियों को सृजित किया जाने लगा कि अपराध के सम्बन्ध में साक्ष्य का अभाव हो जाये। उच्चतम न्यायालय ने व्यक्त कि दहेज प्रतिशेध अधिनियम, 1961 के सम्बन्ध में उक्त अनुभव होने के आधार पर अन्य विभिन्न विधायिका उपचारों को सृजित करना पड़ा (1991 कि0 ला0 ज0 3135 सु0 को0 = 1991 (4) सु0 को0 के0 298 = 1991 (1) डी0एम0सी0 392 सु0 को0)[15]

दहेज बाबत अभिमत देते हुये उच्चतम न्यायालय ने व्यक्त किया कि वर्तमान में दहेज का जो आधुनिक रूप प्रचलन में है वह प्राचीन समय में देखने में नहीं आता था अपितु समाज में महिला को सम्मान दिया जाता था। (1985 (2) क्राइम्स 758 सु0 को0 = 1982 (2) डी0 एम0 सी0 451 सु0 को0)

- ❖ 1929 में बाल विवाह निरोधक अधिनियम पारित किया गया था जो साधारणतया शारदा एक्ट के नाम से जाना जाता है इसके अन्तर्गत लड़की की न्यूनतम आयु 14 वर्श तथा वर की न्यूनतम आयु 16 वर्श निर्धारित की गई थी।
- ❖ 1929 में सती प्रथा निशेध अधिनियम पारित हुआ।
- ❖ 1937 में महिलाओं का सम्पत्ति पर अधिकार अधिनियम पारित किया गया। इसके अनुसार दायभाग से निर्देशित परिवार में यदि कोई व्यक्ति अपनी सम्पत्ति के बारे में बिना तय किये मर जाता है तो उसकी विधवा को उसके पुत्र के बराबर हिस्सा मिलेगा। तथा अपने पुत्रों के समान भागीदार होंगी। इसी प्रकार कोई पुत्र पिता से पहले मर जाता है तो उसकी विधवा को अपने पति के हिस्से का अधिकार लड़कों और पौत्रों के समान प्राप्त हो जाता है। यदि व्यक्ति संयुक्त परिवार में अपना हिस्सा छोड़कर मर जाता है तो उसकी

विधवा को उसके हिस्से पर सीमित अधिकार प्राप्त हो जाता है अर्थात् वह उसका उपभोग कर सकती है किन्तु न तो किसी को दे सकती है और न ही किसी को बेंच सकती है फिर भी धार्मिक कार्यों के सम्पादन में वह उक्त दोनों कार्य कर सकती है।[16]

- 1956 के हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम के अनुसार महिलाओं को विभिन्न स्थितियों में (कन्या, पत्नी, माता, के रूप में) सम्पत्ति पर अधिकार प्रदान कर दिये गये। विधवा को अपने पति की सम्पत्ति पर पूर्ण अधिकार प्राप्त हो गया। यदि वह पुनर्विवाह कर लेती है तो उसका अधिकार समाप्त हो जायेगा। और वह सम्पत्ति पति के परिवार के लोगों को प्राप्त होगी।[17] माता–पिता की सम्पत्ति पर पुत्र–पुत्री का समान अधिकार भी 1956 के अधिनियम में दिया गया।
- धारा 312 में गर्भपात करवाना अपराध है।
- 1971 का गर्भावस्था अधिनियम – कुछ विशेश परिस्थितियों जैसे बलात्कार की पीड़िता महिला या किसी बीमार की हालत में मानवीय और चिकित्सकीय आधार पर 24 सप्ताह तक के गर्भ को समाप्त करने की अनुमति है। 1994 का कन्या भ्रूण हत्या के विरूद्ध अधिनियम प्रसव पूर्व जांच में कन्या भ्रूण का होना सुनिश्चित हो जाने के उपरान्त किसी भी तरह से करवाये गये गर्भपात को कन्या भ्रूण को समाप्त करना कहते हैं। कन्या भ्रूण समाप्ति की रोकथाम से सम्बन्धित कानून को पी0 पी0 एन0 डी0 टी0 एक्ट (गर्भधारण पूर्व एवं प्रसवपूर्ण निदान तकनीक ''लिंग चयन प्रतिशेध अधिनियम) कहते है। यह 01 जनवरी 1996 में पूरा देश में लागू हुआ। वर्श 2001 तथा वर्श 2003 में आंशिक संशोधन हुआ।[18]
- 1986 का महिलाओं के अश्लील प्रतिनिधित्व का प्रतिशेध अधिनियम – महिलाओं के विज्ञापन, प्रकाशन, लेखन, पेंटिंग या किसी अन्य तरीके से महिलाओं के अभद्र प्रदर्शन पर रोक के लिये पारित किया गया।
- सती प्रथा पर रोक अधिनियम (1987) – इससे पूर्व 1829 में समाज सुधारक राजाराम मोहन राय के प्रयासों से लॉर्ड विलियम बैंटिंक ने सती प्रथा समाप्त करने के लिये कानून बनाया गया था रेगुलेशन नं0 27 दिनांक 04 दिसम्बर 1829 की धारा 17 के अन्तर्गत फौजदारी अदालतों में सती प्रथा को गैर–कानूनी घोशित किया गया था। बंगाल में अनेक ब्राह्मणों ने संगठित होकर इस कानून के विरूद्ध प्रीवी कौंसिल में अपील की परन्तु वर्श 1993 में अपील निरस्त हो गई। भारत मे ंसती प्रथा का समाप्त करने में लॉर्ड डलहौजी द्वारा भी प्रभावी कार्यवाही की गई थी। किन्तु बंगाल प्रेसीडेन्सी तथा राजस्थान में इस कुप्रथा का प्रचलन था। राजस्थान के सीकर जिले के दिवराला में 04 सितम्बर 1987 को राजपूत महिला रूप फेवर के सती होने का मर्मान्तक समाचार सामने आया। स्वतंत्र भारत में संवैधानिक और कानूनी प्रावधानों के बावजूद हुये करीब 28 सती काण्डों से व्यापक प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक था। भारत सरकार के निर्देशों से राजस्थान सरकार ने 01 अक्टूबर 1987 सती विरोधी अध्यादेश लाकर कानून बनाया। इसके अन्तर्गत किसी विधवा को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सती होने के लिये उकसाने वालों को मृत्युदण्ड अथवा आजीवन कारावास की सजा देने .. ....का प्रावधान किया गया। अध्यादेश द्वारा न्यायालय का गठन और सती स्थल तथा मन्दिरों के विरूद्ध जिला–अधिकारियों को आदेश दिये गये। भारत सरकार द्वारा 1987 में सती प्रथा (निवारण) अधिनियम नामक एक विशेश कानून बनाया गया जो दिनांक 21 मार्च 1988 से पूरे देश में लागू है।[19]
- 1990 में राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम पारित किया गया जिसके अन्तर्गत महिलाओं के संवैधानिक और कानूनी अधिकारों और अन्य सुरक्षा उपायों से सम्बन्धित मामलों के अध्ययन और निगरानी का प्रावधान है।

''उत्तर प्रदेश राज्य में महिलाओं के संवैधानिक अधिकारों के संरक्षण और उनके समुचित विकास की योजना में भागीदारी तथा सलाह देने के उद्देश्य से उ0 प्र0 राज्य महिला आयोग अधिनियम 2004 (अधि0 सं0 7 वर्ष 2004) पारित किया गया। अधिनियम के प्रावधानों के अन्तर्गत 20 अगस्त 2004 को उ0 प्र0 में महिला आयोग का गठन

हुआ। आयोग में में एक अध्यक्ष, सात सदस्य तथा एक सदस्य सचिव की व्यवस्था है।''[20]

- ❖ 2005 घरेलू हिंसा अधिनियम (महिला संरक्षण हेतु) – भारतीय समाज के सभी वर्गों में महिलाएं शोशण व हिंसा की शिकार होती रही है। राश्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (2005–06) द्वारा भारत के 29 राज्यों में सर्वेक्षण किये गये, जिसके आंकड़े महिलाओं की दयनीय तथा चिन्ताजनक स्थिति की ओर संकेत कर रहे थे भारत सरकार ने घरेलू हिंसा से महिलाओं के संरक्षण अधिनियम 2005 (अधि0 सं0 43 सन् 2005) को भारत के राश्ट्रपति की स्वीकृत दिनांक 13 सितम्बर 2005 को प्राप्त हुई है। भारत का राजपत्र (असाधारण) भाग–2 खण्डन में दिनांक 14 सितम्बर 2005 बुधवार को प्रकाशित किया गया। भारत सरकार की अधिसूचना द्वारा पूरे देश में दिनांक 26 अक्टूबर 2006 को इस अधिनियम को लागू कर दिया गया। अधिनियम की ध ाारा 37 के प्रावधान के अनुसार घरेलू हिंसा से महिला का संरक्षण नियमावली 2006 बनाई गई। दिनांक 26 अक्टूबर 2006 से इसे लागू कर दिया गया। भारत का राजपत्र (असाधारण) भाग–2 सेक्शन–3 के सब सेक्शन दो में इसका प्रकाशन हुआ है। अधिनियम के प्रावधानों के लिये नियमावली में नियमों का उल्लेख किया गया है।[21]
- ❖ 2013 का कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न (रोकथाम, निशेध, निवारण) अधिनियम लागू किया गया।
- ❖ महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिये कुछ अन्य कानून भी पारित किये गये जो निम्नवत् है।

1. कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम – 1948
2. बगान श्रम अधिनियम – 1957
3. बंधुआ श्रम प्रणाली (उन्मूलन) अधिनियम – 1976
4. विशेष विवाह अधिनियम – 1954
5. हिन्दू विवाह अधिनियम – 1955 – वर की उम्र 21 वर्श से कम न हो तथा कन्या की 18 वर्श से कम न हो। समाज में प्रचलित रस्मो–रिवाजों से विवाह हो। कुछ कारणों से विवाह रद्द करने की भी अनुमति थी – पति यदि नामर्द हो, शादी धोखे या दबाव से की गई हो। पत्नी के जीवित रहते दूसरी शादी को भी कानूनी अपराध घोषित किया गया।
6. 1978 का बाल–विवाह (विरोधी) कानून – इस कानून के अन्तर्गत विवाह के लिये वर की न्यूनतम आयु 21 वर्श तथा वधु की आयु न्यूनतम 18 वर्श निर्धारित की गई।
7. विवाह विच्छेद सम्बन्धी कानून – हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 की धारा 13 के अन्तर्गत कोई भी जिसका विवाह अधिनियम से पूर्व या पश्चात् हुआ हो; न्यायालय में विवाह–विच्छेद के लिये प्रार्थना–पत्र दे सकता है।
8. हिन्दू दत्तक तथा भरण–पोषण अधिनियम 1956 –
   (A) बच्चों, बूढ़ो या दुर्बल माता–पिता का खर्च पाने के अधिकार के अन्तर्गत जायज या नाजायज नाबालिग (18 वर्श से कम आयु के) बच्चों को माता–पिता से खर्च मिलने का हक है। बूढ़े तथा शारीरिक रूप से दुबल मॉ–बाप को अपने बच्चों (बेटे, बेटियॉ) से खर्च मिलने का हक है। ये हक उन लोगों को है जो अपनी कमाई से अपना खर्च नहीं चला सके।[22]
   (B) विधवा को खर्च पाने का अधिकार भी 1956 के कानून में दिया गया है – हिन्दू विधवा यदि अपना खर्च अपनी कमाई से नहीं चला सकती है तो उसे हक है – पति की सम्पत्ति या माता–पिता की सम्पत्ति से, अपने बेटे या बेटी से उनकी सम्पत्ति से, यदि इन लोगों से विधवा महिला को खर्च न मिले तो उसके ससुर को उसका खर्च देना होगा।
   (C) महिला को वसीयत करने का अधिकार – 1956 का हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम पारित करने से पूर्व सम्पत्ति में महिलाओं के अधिकार अत्यन्त सीमित थे। अधिकारों के आधार पर सम्पत्ति के दो

भाग थे – स्त्रीधन एवं महिला सम्पदा। स्त्रीधन का वह मनचाहा उपयोग कर सकती थी, महिला सम्पदा का उपयोग वह जीवन पर्यन्त तो कर सकती थी, किन्तु उसका अन्तरण नहीं कर सकती थी। हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम के पारित होने के पश्चात् जो भी सम्पत्ति महिला के पास हैं, चाहे उसका उस पर भौतिक रूप से कब्जा है या नहीं, वह उसकी निरपेक्ष स्वामिनी है। उसी अधिकार के कारण वह अपनी सम्पत्ति की वसीयत भी कर सकती है।[23]

(D) बच्चा बोद लेने का कानूनी अधिकार भी हिन्दू दत्तक एवं भरण पोषण अधिनियम कानून में आमूल चूल परिवर्तन के बाद 1972 (कोलकाता उच्च न्यायालय) ने अविवाहित लड़की द्वारा गोद लिये बच्चे को धर्मज माना। हिन्दू दत्तक एवं भरण पोशण अधिनियम की धारा 8 के अन्तर्गत महिला के बच्चा गोद लेने की कुछ शर्ते रखी जैसे – जो स्वस्थचित्त, अविवाहिता लेकिन वयस्क, यदि वह विवाहित है लेकिन उसका विवाह भंग हो चुका हो या पति की मृत्यु हो गई हो या उसके पति ने धर्म परिवर्तन कर लिया हो या सक्षम क्षेत्रअधिकार वाले न्यायालय ने उसके पति को विकृत्तचित्त घोषित कर दिया हो।[24]

9. विदेशी विवाह अधिनियम (1969) – विदेश मे यदि कोई भारतीय शादी करता है तो उसे वहां स्थित भारतीय इतिहास में इसकी जानकारी देनी होती है। शादी के दस्तावेज को भी जमा किया जाता है।[25]

10. मानवधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 भारतीय संसद द्वारा पारित किया गया तथा 28 सितम्बर 1993 को पूरे भारत पर लागू किया गया। अधिनियम में कहा गया कि ''मानव अधिकारों से अभिप्राय संविधान द्वारा गारण्टीयुक्त तथा अन्तर्राश्ट्रीय प्रसंविदाओं में सम्मिलित एवं भारत में न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय व्यक्तियों के जीवन, स्वतंत्रता, समानता एवं गरिमा से है। अधिनियम का उद्देश्य मानवाधिकारों का संरक्षण तथा इससे सम्बन्धित आनुशंगिक मामलों में सम्बन्ध में प्राविधान करना है। इस अधिनियम के अन्तर्गत राश्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, राज्य मानव अधिकार आयोग व मानवाधिकार न्यायालयों के गठन की व्यवस्था धारा – 321 एवं 30 में की गई है।[26]

निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा विधेयक–2009 संविधान के अनुच्छेद 45 में 6 से 14 वर्श तक के सभी बच्चों के लिये अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की गई है तथा 86वें संशोधन द्वारा 21(क) में प्राथमिक शिक्षा को सब नागरिकों का मूल अधिकार बना किया गया है। 01 अप्रैल 2010 को जम्मू कश्मीर को छोड़कर सम्पूर्ण भारत में लागू हुआ।[27]

- ❖ बलात्कार के विरूद्ध धारा 375, 376 (क, ख, ग, घ) जब कोई पुरूश किसी महिला के साथ उसकी इच्छा के विरूद्ध सम्भोग करता है तो वह कानूनन बलात्कार है जिसके लिये सरकार ने कई धाराओं में श्रेणी के आधार पर विभाजित कर दिया
- ❖ 19 सितम्बर 2018 को राष्ट्रपति रामनाथ कोविद ने दी तीन तलाक बिल को मंजूरी दे दी इंस्टेंट तलाक देने पर 3 साल की कैद की सजा घोशित हुई। इस मंजूरी के साथ ही देश में तीन तलाक कानून 19 सितम्बर 2018 को लागू हो गया, मंगलवार को राज्यसभा में तीन तलाक बिल पास हुआ इसके बाद इसे राश्ट्पति के पास मंजूरी के लिये भेजा गया था।[28]

भारतीय संविधान में महिलाओं को सशक्त बनाने के लिये बहुत से अधिकार दिये गये हैं तदोपुरान्त में भारतीय महिलाओं की स्थिति विकसित देश की महिलाओं की तुलना में अत्यन्त दयनीय एवं शोचनीय है। समाज रूपी गाड़ी के लिये पुरूष और महिला दोनों की ही समान आवश्यकता है। भारत के ग्रामीण एवं शहरी सभी क्षेत्रों में आज भी अधिकांशतः महिलाओं का निम्नतर ही माना जाता है। इसका मुख्यकारण महिला अशिक्षा, महिलाओं की सहनशीलता, महिलाओं में लोकलाज की भावना, आर्थिक परतंत्रता, कानूनी अधिकारों की जानकारी का अभाव तथा सबसे बड़ा कारण पुरुष–प्रधान समाज की सामन्तवादी सोच है। लैगिक भेद भाव बनाये रखने से परिवार, समाज,

राज्य व राष्ट्र अपने सपनों में साकार व सफल नहीं हो सकता। केवल संविधान में दिये गये अधिकार ही काफी नहीं है वरन् महिला और पुरुष दोनों को ही परस्पर सम्मान देना होगा दोनो ही एक दूसरे के पूरक हैं। परिवार व समाज का वातावरण सामन्जस्यपूर्ण, सौहार्दपूर्ण, समतापूर्ण होना अति आवश्यक है। सह अस्तित्व और पारस्परिक विश्वास की जागृति ही समाज को दुराग्रहों से बचा सकती है। समाज के प्रत्येक वर्ग व वर्ण को अपेन मानसिक और आध्यात्मिक स्तर को विकसित करने से ही सकारात्मकता आयेगी और लैंगिक भेदभाव कम होते होते समाप्ति की ओर जायेगे उसी में व्यक्ति, समाज व राष्ट्र का कल्याण निहित है। स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा भी था – ''नारी रूपी शक्ति की अवमानना करने से ही आज हमारा अंधः पतन हुआ है। स्त्रियॉ माता की प्रतिमा हैं, जब तक उनका उद्वार न होगा, हमारे देश का उद्वार होना असम्भव है।'' एक बार उन्होंने यह भी कहा था कि ''पंछी एक पंख से नहीं उड़ सकता।''

संदर्भ संकेत

1. नारायण, प्रकाश– दहेज प्रथा और महिलाऍ, पृ0 167 बुक एन्क्लेव, जयपुर प्रथम संस्करण – 2009
2. बसु, आचार्य डॉ0 दुर्गादास – भारत का संविधान – एक परिचय पृ0 87, वाधवा खण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, आठवां संस्करण 2007
3. पूर्वोक्त, पृ0 92
4. पूर्वोक्त, पृ0 94
5. पूर्वोक्त, पृ0 99
6. पूर्वोक्त, पृ0 108
7. पूर्वोक्त, पृ0 115
8. पूर्वोक्त, पृ0 118
9. https://www.bhaskar.com>news
10. google
11. https://www.babycenter.in
12. 22 Nov. 2019, https://hindiparanting.Firstcry.com
13. https://www.babycenter.in
14. ए0आई0आर0 1982 पंजाब–हरियाणा –372
15. नारायण प्रकाश – दहेज प्रथा और महिलाऍ, पृ0 37, 38 बुक एनक्लेव जयपुर, 2009
16. पूर्वोक्त, पृ0 61
17. पूर्वोक्त, पृ0 61
18. अग्निहोत्री, डॉ0 ए0 एन0 – महिला सशक्तीकरण और कानून पृ0 100 सरस्वती प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2008
19. पूर्वोक्त, पृ0 94
20. पूर्वोक्त, पृ0 163
21. पूर्वोक्त, पृ0 129, 130
22. नारायण, प्रकाश – पूर्वोक्त, पृ0 184, 185
23. पूर्वोक्त, पृ0 191
24. पूर्वोक्त, पृ0 193
25. Chandigarh,deepi...amarujala.com-deliv
26. अग्निहोत्री, डॉ0 ए0 एन0, पृ0 184
27. https://hi.inwikipedia.org
28. aajtak.intoday.in-del

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

स्वयंप्रकाश की कहानियों का भाषा शिल्प

नीलम शुक्ला
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
नागपुर युनिवर्सिटी, नागपुर

संसार का प्रत्येक रचनाकार अनुभव को शिल्प के माध्यम से स्थापित करता है। शिल्प का प्रयोग रचना को सफलता प्रदान करता है। शिल्प के द्वारा कहानीकार अपने कहानीपन को बनाए रखने के लिए या अधिक से अधिक प्रभावी बनाता है। स्वयं प्रकाश की कहानी का शिल्प ऐसा शिल्प है जो अपनी कहने की सादगी में लगभग शिल्पहीन होने का भ्रम पैदा करता है। कह सकते है कि एक भुलावा–सा देता है। वह अपने शिल्प होने या कला होने की ओर आपका ध्यानही नहीं जाने देता। वह तो पीछा करते हुए अपने साथ दबे पॉव चलने और कभी दौड़ने में शामिल कर लेता है। कभी किसी किसी स्थिति का पीछा करते हुए, कभी किसी पात्र का या कभी किसी स्थिति का पीछा कारते हुए वह उसके अंतरर्लोक रही हलचल में ताक–झॉक करने लगता है। वह उसके भीतर के सच का पीछा करने लगता है। निर्मल वर्मा ने किसी के हवाले से इसे आत्मा को डिटेक्टिव कहा था।

स्वयं प्रकाश, वर्णन–शैली और भाषिक–संरचना, तड़क–भड़क से अपने को अलग रखते हुए निम्न मध्य वर्ग की उन समस्याओं को अपनी कहानियों का विषय बनाते है जिन्हें आजादी के पैंसठ वर्षों बाद भी हल नहीं किया गया। विषय– चयन और वर्णन की सहजता की दृष्टी से वे प्रेमचंद, अमरकांत, भीश्म साहनी और शेखर जोशी की कथा–परंपरा को विकसित करने वाले रचनाकार हैं। उन्होंने अमूर्तन और जटिल रचना विधान से कहानी को मुक्ति दिलाई है।

स्वंय प्रकाश की लगभग सभी कहानीयों में जीवनगत विडंबनाओं के महीन तार कहानी का मूल ढॉचा निर्मित करते है। स्वयं प्रकाश की काहानियों की शुरूवात संवादी स्वर से होती है। वे अपने और पाठक के बीच किसी तीसरे की उपस्थिति स्वीकार नहीं करते, यहॉ तक कि अपने पात्रों की भी नहीं। यह सजग आत्मीयता का कारण अनके जीवन की सहजता है। उनकी कहानियों का पहला वाक्य अक्सर बहुत सादा–सा होता है। वस्तुतः उन्हें किसी तरह के चमत्कार या सनसनी की जरूरत नही है। वे अपनी कहानी के पास आने के लिए किसी तरह का अतिरिक्त प्रलोभन नहीं देते है। वे एक, साधारण से वाक्य से पाठक सेबातचीत शुरू करते हैं। यह साधारण वाक्य ही कहानी की रोचकता का निर्माण करता है। 'सूरज कब निकलेगा' कहानी का पहला वाक्य है– 'भैयाराम झोपड़ी से बाहर आ गया।' 'नीलकांत का सफर' का पहला वाक्य है–'जुमैदीन आ रहे हैं।' 'पार्टीशन' कहानी का पहला वाक्य है – 'आप कुर्बान भाई को नहीं जानते?' इस तरह की लंबी सूची बन सकती है।

स्वयं प्रकाश की कहानियों का अंत कभी–कभी बहुत नाटकीय लगता है अथवा लगता है कि अधबीच में ही छोड़ दिया गया है। अभी कुछ और होना था जो छुट गया है। जैसे 'अशोक और रेनु की असली कहानी' में अंतिम वाक्य है –'यहीं से अशोक और रेनु की असली कहानी शुरू होगी।', अथवा कभी–कभी अंत कुछ इस प्रकार होता है। कि वह शब्दों में रचा हुआ या लिखित रूप में न होकर पाठकों के मन–मस्तिक में समा जाता है। रशीद का पजामा में अंतिम वाक्य कुछ इस प्रकार है –'लेकिन उसे आज तक समझ में नही आया कि पजामें के नफे में नाड़ा घुस जाने का उसके धर्म से क्या संबंध था?क्या आपको समझ में आया?'

स्वयं प्रकाश की लगभग सभी कहानियों की शुरूवात इसी तरह के किसी असरदार प्रसंग से होती है। ऐसी शुरूवात से पाठक उनकी कहानियों से मजबुती के साथ जुड़ जाता है। उनकी कहानियों की रोचकता के पीछे एक कारण उनका जीवंत माहौल भी है। उनकी कहानियॉ अखबारी नहीं है। उनकी पैनी और चौकन्नी नजर

विविरणों के भी विवरणों में चली जाती है और इससे माहौल जीवंत हो उठता है। जिस प्रकार उनकी कहानी 'परिधि' में विवरण ऐसे है कि आप विचलित हो जाएँ, लेकिन लेखक आपको उसमें इस तरह शामिल करता है कि आप कहानी खत्म करके ही उनसे बाहर आ पाते है।

रूप विधान की दृश्टी से स्वयं प्रकाश की कुछ कहानियॉ बीच–बीच के एकाध योजक वाक्यों को छोड़कर लगभग संवादों में ही आगे बढ़ती है। 'बिछुडने से पहले', 'ट्रफिक' जैसी कहानियों मे तो संवाद को बाकायदा प्रमुख शैल्पिक उपकरण की तरह प्रयुक्त किया गया है। ''हैलो! कौन शामलाल? कौन बोल रहा है? शामलाल?

– हॉ मैं शामलाल।

– तुम आ गए? अपने घर से ही बोल रहे हो? हलद्वानी से ही?

– तुमने कहॉ फोन किया है? कानपुर का नंबर मिलाया है क्या? घोंचू जोशी!''[1]

आकार की दृश्टी से बनी 'प्रतीक्षा' जैसी लंबी कहानियॉ भी लिखी है तो सिर्फ नौ पंक्तियों की छोटी सी कहानी 'संस्कार' भी लिखी। उनकी कहानियो को पढ़ते हुए यह लगता है कि वे कहानी लिखते नहीं, कहते हैं। एक आदमी होता है बातपोश। वह घुमाफिराकर, जोड़–तोड़कर, यहॉ–वहॉ की लगाकर बात इस तरह करता है कि यह सामनेवाले को जम जाती है। स्वयं प्रकाश भी बातपोश कहानीकार हैं। वे इस तरह कहते है कि सामने वाला लंबे समय तक उनके साथ उनके असर में रहता है। उनकी लोकप्रिय और चर्चित कहानी 'क्या तुमने कभी कोई सरदार भिखारी देखा?' में कथ्य बहुत सामान्य और संक्षिप्त है, लेकिन उनका बातपोश इसको सिलसिलेवार, धीरे–धीरे और पूरे धैर्य के साथ ऐसे कहता है कि इससे एक घटना भीशण विडंबना में तब्दील हो जाती है। वे स्वयं कहते है,''3 मैने चहल, चाशनी और बतकही से शुरू किया। मेरी नजर में कहानी का पहला और प्राथमिक गुण है रोचकता और उसका सबसे बड़ा दोश है रोचक न होना। आप लाख सुकरात हो जाइए, यदि आपकी कहानी पहली पंक्ति में ही रोचक नहीं है तो कोई उसे पढ़ेगा ही क्यों?''[2]

स्वयं प्रकाश अपनी कहानियों में न तो शिल्प के वितान तानते हैं न भाषा की पच्चीकारी करते है। वे जैसा देखते हैं, जैसा सोचते हैं और जैसा बोलते है वैसा लिख देते हैं। कुछ लोग यह वकालत करते हैं कि कहानी में कहानीपन की रक्षा होनी जरूरी है। यदि कहानीपन की सादगीभरी और सहज रक्षा होनी जरूरी है। यदि कहानी पन की और सहज रक्षा देखनी हो तो स्वयं प्रकाश की कहानियों में देखी जा सकती हैं। स्वयं प्रकाश ने अपने जीवन में जो अनुभव किया वहीं उनकी रचाधर्मिता का अविभाज्य अंग है। चाहे वह उत्पादन वितरण की ग्रंथियॉ हो या श्रमिकों की दिशाहीनता हो, चाहे श्रमिकों में शिक्षा का शोचनीय अभाव हो या श्रमिक नेताओं का श्रमिकों के प्रशिक्षण के प्रति उदासीन होना। इन सभी राजनैतिक, सामाजिक दायित्वों के प्रति सचेत करते हुए उन्होंने अपनी लेखनी का दिशा दी हैं।

स्वयं प्रकाश की कहानियों की भाषा के बारे में एक बात बिल्कुल साफ–साफ कहीं जा सकती है, की स्वयं प्रकाश के रचना–संसार में भाशा की अपरिमित संभावनाएँ नहीं के बराबर हैं। स्वयं प्रकाश स्थानीय भाषा का प्रयोग अवश्य करते हैं और बड़ी कुशलता से करते हैं। परंतु उनकी कहानियों में बहुत से अन्य कथाकारों की तरह भाषा का खेल नहीं दिखाई देगा। उनकी कहानियों की भाशा सहज होते हुए भी असाधारण बनती चली जाती है।

स्वयं प्रकाश की भाषा सहज बोलचाल की भाशा है। यही कारण है कि यह पाठकों को शुरू से अंत तक बॉधे रहती है।

''तो मैं गया था। बाप आदतानुसार प्रोल में बैठे किसी आदमी से बात कर रहे थे। मुझे देखकर अदबकाकर खड़े हुए और हाथों से नमस्ते, ऑखों से 'कई हैं?' की मुद्रा में फ्रिज हो गय। मूलचंद ने कहा – ये स्वयं प्रकाशजी हैं माय फ्रेंड, जिनके बारे में आइ वाज टेलिंग यू।''[3]

कोई भी साहित्यकार भाषा की परीधी से बॅधा रहीं होता। भाषा तो उसके लिए रंगों के समान है, जब जैसे

रंगों की जरूरत हुई उसे अपने चित्रों में लगा लिया। स्वयं प्रकाश ने अपने चित्रों में हिंदी के साथ–साथ उर्दू तथा राजस्थानी के रंगों का भी बखूबी इस्तेमाल किया है – 'जमाना कितना बदल गया','बावजूद', 'असमॉ कैसे–कैसे', 'रशीद का पाजामा', 'नन्हा कासिद', 'तलबी', 'चौथा हादसा', 'गुमशुदा' तथा 'बेमकान' जैसी कहानियों के शीर्शक तो उर्दू में ही रखे गए हैं। यहॉ तक कि पूरी कहानी में उन्होंने उर्दू शब्दों का खुलकर प्रयोग किया है। नीचे लिए गए अंश भाषा प्रयोग की सच्चाई पर मुहर लगाते हैं –

''खा–पीकर सब जाने को हुए तब श्रीमती बैजल को पता चला कि उनका अंदाजा कितना गलत था। इस बार पिछले साल की बनिस्वत मेहमान कम थे, पर सारा खाना सफाचट हो गया था। नदीदों–मुरमुक्खों को जैसे घर पर कभी देखने की नहीं मिलता हो ऐसा खाना वे खाते –पीते लोब थे जो अब तक उनके स्वीटू की बर्थडे पार्टी में आते रहे और ये! ..... छोटे–छोटे बच्चों की खुराक तो देखा''[4]

स्वयं प्रकाश ने अपनी कहानियों में न केवल उर्दू शब्दों प्रयोग किया है बल्कि उर्दू शेरों का भी बखुबी प्रयोग किया है –

''फकत पासे–वफादारी है, वरना कुछ नहीं मुश्किल।
बुझा सकता हूॅ अंगारे, अभी ऑखों के पानी है।''[5]

स्वयं प्रकाश बखूबी यह जानते हैं कि हिंदी को यदी राश्ट्रभाशा के रूप में प्रतिश्ठित होना है तो उसे प्रांतीय भाशाओं के शब्दों को यथा संभव अपनाना पड़ेगा। इससे राश्ट्रीय एकता भी मजबूत होगी और राष्ट्र–राज्य की दूसरी छोटी–बड़ी समस्याओं को सुलझाने में मदद मिलेगी। वे अरबी–फारसी के भी ऐसे शब्दों का प्रयोग करते है जो हिंदी में घूल मिल गए हैं। शैदाई, तवील, तमाजी, हम्माली, खडीन, टाबर, घोंचा, झूॅपा, दागीना, डंगाल, डोफा, सोगरा जैसे दर्जनों शब्द जो अरबी, फारसी और राजस्थानी के हैं, जो उनकी कहानियों में सहज रूप में मिल जाऍगें साथ ही विशेशणों के भी दिलचस्प प्रयोग मिलते है जिनके अर्थ तथा वर्णन कीआवश्यकता नहीं होती है। पहलवानी हॅसी, डराउ, ठहाके, पेड हिलाउ पंछी, कंजुस छाया, उफनता उन्माद जैसे प्रयोग प्रभावशाली है।

स्वयं प्रकाश सदैव रोचक और सहज शैली में कहानियॉ लिखते हैं। न कि किसी दुर्बोध तर्कजाल से ग्रस्त। निर्मल वर्मा की कहानियों की तरह अभिजात्य और बौद्धिक तर्कों या दार्शनिकता की महीन बुनावट, उनकी कहानियों में नहीं रहीं है। सरबजीत ने लिखा है – ''स्वयं प्रकाश मध्यवर्गीय जनसामान्य की आदतों, स्वभाव व संस्कारों, जो कि उसकी मानसिकता को अभिव्यक्त करता है, से अपनी कहानियों का माहौल निर्मित करते हैं। अंततः वह इस बुर्जुआ किस्म के मध्यवर्गीय चेतना से ग्रस्त व्यक्ति की मानसिकता पर महसूस करवाने की हद तक चोट करता है। ये साधारण और बारीक बुनावट, केंद्रीय कथ्य के समानांतर चलती है, इसी कारण एक प्रकार की सरलता व सहजता स्वयं प्रकाश की कहानियों मे फैली हैं।''[6]

'नीलकांत का सफर', 'बस', और अशोक रेनु की असली कहानी, इन तीन कहानियों का उदाहरण पर्याप्त होगा। इनमें सरलता और सहजता तो है कि जो उनकी अन्य सभी कहानियों में भी है। इसमें मध्यवर्ग का वह चेहरा है, जिसमें पाठक भी अपनी प्रतिच्छाया देखता है।

स्वयं प्रकाश के लेखन–शैली की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे घनघोर निराशा की घड़ियों में भी पस्तहिम्मती नहीं दिखलाते। कहानी के पात्र विशमताओं से जूझते हैं, विडम्बनाओं में जीते हैं, तरह–तरह के शारीरिक, मानसिक, घात–प्रतिघातों से टुटते, छिन्न–भिन्न होते हैं पर हिम्मत बटोर कर फिर से कोई नई राह तलाश लेते हैं। गिर–गिर कर उठते हैं। फिर चल पड़ते हैं।

शैली की दृष्टी से विचार करने पर हम 'संहारकर्ता' कहानी को ले सकते हैं। स्वयं प्रकाश की शैली की विशेशता है कि उन्होंने संहारक को ही संहारकर्ता की संज्ञा दी है, क्योंकि इस व्यवस्था के तहत नायक स्वयं अपना तथा अपने साथियों के सपनों का संहार कर डालता है–

''सत्यकांत कचरे का ढेर हो चुका था। एक नेता का सारा दर्प, एक बुद्धिमान का सारा वैभव पिचका हुआ कनस्तर हो चुका था। ..... कितना सुखी था वह डेढ़ साल पहले और कितना मूर्ख। सिर्फ डेढ़ साल ने उस बात–बाहादुर की सारी कलई खोल दी। आज वह, जिसे गुरूजी कहा जाता है और दल्ला समझा जाता है, मेहनतकशों की चौपाल में नंगा खडा है और हर दिशा से उसके अंतर्विरोध एक भुतहा अट्टाहास कर रहे हैं। साला सेवाराम। मिनी शास्त्री।''[7]

'ची–घोड़ी कहानी में लेखक ने आत्मकथात्मक शैली में जिस छटपटाहट को व्यक्त किया है वह कही दूसरी जगह से उधार नहीं ली जा सकती। पार्टीशन, आदमी जात का आदमी, 'रशीद का पाजामा' में विभाजन का दुख तथा समस्या है तो 'वलि' और 'संधान' में औद्योगिक उपनिवेशवाद सांस्कृतिक पहचान निगल रहा है। आधनिक तकनीक–संपन्न औद्योगिक विस्तार बड़ी सरलता से सांस्कृतिक विश्वासों, परंपराओं को हरा देता है। जब किसी व्यक्ति की सांस्कृतिक पहचान छिन जाती है तब उसकी दरिद्रता भयावह होती है। मृत्यु ही एकमात्र विकल्प सूझता है। इस परिस्थिति के ठीक विपरीत 'संधान' है गॉव तथा कस्बों की क्षिप्र गति, सहज जीवन और मुक्त हवा–पानी–मिट्टी महानगरीय संत्रास झेलते व्यक्तियों को आकर्शित करती है। सुख–शांति का उत्स आपके ही अंदर है, बाहर कही उसका संधान व्यर्थ है।

स्वयं प्रकाश ने अपनी कहानियों में कहानी कहने की निजी शैली विकसित की है। उनके यहॉ कहानी लिखी नहीं जाती, सुनाई जाती है। 'पार्टीशन' और 'बलि' के उदाहरण द्रश्टव्य है –

''आप कुर्बान भाई को नहीं जानते?कुर्बान भाई इस कस्बे के सबसे शानदार शख्स हैं। (पार्टीशन)

''प्रिय पाठक! मैं अगर भगवती चरण वर्मा टाइप लेखक होता तो कितनी आसनी से अभी कह देता कि इस तरह धीरे–धीरे लड़की को बच्चे से सचमुच प्यार हो गया और वह हृदय से इन लोगों की शुभाकांक्षी हो गई। ... पर ऐसा कुछ नहीं हुआ।'' (बलि)

यह शैली किस्सागोई की वह शैली है जिसमें कहानी सुनाने का रस विद्मान है। इन कहानियों ने पाश्चात्य पद्धति की शॉर्ट स्टोरी के ढॉचे में भारतीय कथा परंपरा को जीवित किया है। स्वयं प्रकाश की कहानी 'चौथा हादसा' में 'मैं' की शेली में चार हादसे अपने मित्रों को बताए जाते है।

'बाबुलाल तेली की नाक' में जाति विभक्त समाज की विडंबना को दर्शाने के लिए देशज शैली का इस्तेमाल किया गया है।' स्वयं प्रकाश की कहानियों की कोई सीमा नहीं हैं। गिनती के हिसाब से भले ही कदम उनकी सीमा तय कर दें लेकिन वैचारिकता एवं शैली की दृश्टी से उन्हें सीमित कर पाना संभव नही है स्वयं प्रकाश की प्रत्येक कहानी अपने आप में एक अलग शैली के लिए हुए है। कहानियों की शुरूआत जिस शैली से होती है, उनके अंत का पता लगाना मुश्किल है।

स्वयं प्रकाश की लंबी सृजन यात्रा में उन्होंने जीवन के कडवे–मीठे अनुभवों को पाठकों से सॉझा किया परंतु उनमें कभी निराशावादी भावना नहीं रही। विगत कुछ दशकों में हमारे देश में और तमाम दुनिया में ऐसा बहुत कुछ हुआ जिससे संवेदनशील मनुष्य को झकझोर कर रख दिया है। फिर भी आशावादी दृश्टिकोण बनाए रखना स्वयं में विशेश है। सोवियत सत्ता का पतन, वैश्वीकरण तथा उत्तर आधुनिकता की ऑधी आदि के प्रभाव से स्वंय प्रकाश भी अछुते नहीं रहे। पहले परंपरागत शिल्प में 'कहॉ जाओगे बाबा', 'ताजा खबर', 'संधान', 'चौराहा'। फिर उत्तर आधुनिकता के मुकाबले लोककथा की परंपरागत कथन को खड़ा करने के प्रयास में 'गौरी का गुस्सा', 'बाबुराम तेली की नाक', 'जंगल का दाह', 'कानदॉव' जैसी कहानियॉ लिखीं।

स्वयं प्रकाश की अनेक कहानियॉ इस तथ्य की गवाह है कि उनकी रचनाओं में जिंदगी पहले है, विचारधारा बाद में। वे कहानियों में घटनाओं को इस सरलता से बुनते हैं कि उनकी कहानियॉ जिंदगी के वैविध्य से आपूरित

लगती है। यह कला प्रेमचंद, भीश्म साहनी तथा अमरकांत में भी है। स्वयं प्रकाश की कहानियॉ दृष्टि आलोक से उद्‌भासित होती है किसी कलात्मक विचारधारा या चतुराई के आग्रह से नहीं। स्वयं प्रकाश की कहानियॉ किसी विशिष्ट प्रकार के पाठक को स्पर्श करती हैं जिसके पास जिंदगी है और जो जिंदगी की अपराजेयता में विश्वास करता है। यहीं स्वयं प्रकाश का अपना है जो उनकी कहानियों को रचनात्मक दृश्टी से उॅचाई प्रदान करता है।

संदर्भ संकेत

1. स्वयं प्रकाश –आधी सदी का सफरनामा, ट्रैफिक – पृ.स.64
2. स्वयं प्रकाश – चर्चित कहानियॉ, भूमिका – पृ.स. 7
3. स्वयं प्रकाश – इंक्यावन कहानियॉ, मूलचंद, बाप तथा अन्य – पृ.स.224
4. स्वयं प्रकाश – इंक्यावन कहानियॉ, बर्डे – पृ.स. 180 –181
5. स्वयं प्रकाश – इंक्यावन कहानियॉ, अविनाश मोटू उर्फ एक आम आदमी – पृ.स. 326
6. सरबजीत –हिंदी कहानी : ऑठवा दशक– पृ.स. 58
7. स्वयं प्रकाश – इंक्यावन कहानियॉ, संहारकर्ता – पृ.स. 326

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

प्रेमचंद के उपन्यास निर्मला में वर्णित नारी जीवन

डा० संगीता परेशान्ति संगा
पूर्व शोधकर्त्ता, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग
राँची विश्वविद्यालय, राँची

निर्मला उपन्यास प्रेमचंद के समस्यामूलक उपन्यासों में प्रमुख है, जिसमें नारी से संबंधित समस्या है। यों कहा जाय तो नारी जीवन की सबसे बड़ी दुःखद स्थिति वैधव्य, अनमेल विवाह एवं पुत्र शोक दहेज प्रथा आदि सभी मार्मिक चित्र देखने को मिलता है। मध्य वर्गीय परिवार में दहेज समस्या किस तरह परिवार के ऊपर कहर ढाता है। यह उपन्यास को पढ़कर स्पष्ट हो जाता है। निर्मला की हतभागिता यह है कि उसके पिता की असमय मृत्यु, दहेज के लिए आर्थिक तंगी होने के कारण दुहाजू की पत्नी और उसकी तीन बच्चों की माँ होना और फिर पति के दृष्टि में पुत्र के प्रति ही शंकालु दृष्टि से देखा जाना।

निर्मला को कन्या के रूप में, पत्नी के रूप में और माता तीनों ही रूप में दुःख झेलना पड़ता है। जो तत्कालीन समाज का एक यथार्थ सच है। नारी जीवन सामाजिक, पारिवारिक और आर्थिक समस्याओं में जैसे उलझकर रह गया है। नारी मन सरल स्निग्ध और कोमल भावनाओं से युक्त है, इसलिए वह शीघ्र ही आहत हो जाता है। कल्याणी हो या निर्मला, सुधा हो या कृष्णा ऐसे ही क्षणों में भाव विहव्ल होकर कुछ नादानी कर बैठती है। जो उनसे बाद में पश्चाताप करवाता है।

भारतीय मनीषियों ने आदिकाल से लेकर आज तक माता को देवी के ऊँचे सिंहासन पर विराजमान किया है। माता हमेशा अपने बच्चों को खुश देखना चाहती है और उनके कल्याण के लिए दुःख सहने के लिए तत्पर रहती है। वैसी ही माता कल्याणी है जो अपने बच्चों की सुख–समृद्धि चाहती है। जब निर्मला के विवाह का प्रस्ताव बाबू भालचन्द सिन्हा के ज्येष्ठ पुत्र भुवनमोहन सिन्हा से होती है, इस प्रस्ताव को पाकर वह फूली नहीं समाती है कि अब उसकी बेटी बड़े घर में जायेगी। वह कहती है– "दस दिन में पाँच हजार से दस हजार हुए। एक महीने में तो शायद एक लाख की नौबत आ जाए।"[1] पति से कल्याणी की बहस इस हद तक आ गई कि वह अपने पति से क्रोधित हो गई और मन में सोचने लगी कि क्या मैं इसके बिना जी नहीं सकती। सूर्यभान माता को देखते ही कहा– "तुम तली दई मुधे अतेले डर लगता है..... कल्याणी अब अपने को न रोक सकी। मातृस्नेह के सुधा प्रवाह से उठी। हृदय के कोमल पौधे जो क्रोध के ताप से मुरझा गये थे, फिर हरे हो गए। आँखें सजह हो गई। उसने बच्चों को गोद में उठा लिया और छाती से लगा कर बोली तुमने पुकार क्यों न लिया बेटा?"[2]

मध्यवर्गीय परिवार में दहेज की समस्या उग्र धारण किया हुआ है। जिनसे कल्याणी का परिवार भी नहीं बच पाता है क्योंकि आधी तैयारियाँ तो हो चुकी है अब सिर्फ विवाह करना है, लेकिन वह चाहती है कि कम से कम खर्च और बिना दहेज के यह सब कार्य निबट जाना चाहिए। अब लड़के वालों ने विवाह करने से इंकार कर दिया है क्योंकि उन्हें दहेज मिलने की आशा नहीं है। निर्मला के पिता की अचानक मृत्यु हो गई है। इस स्थिति को देखते हुए भी माता चाहती है कि विवाह हो जाये और वह एक दो, तीन, चार तस्वीर देखने के बाद कल्याणी तय करती है कि अपनी पन्द्रह वर्षीय बालिका निर्मला के लिए पैंतीस वर्षीय दुहाजू लड़का वकील तोताराम को पसंद करती है। "लड़के हल के बैल हैं भूसे खली पर पहला हक उनका है। उनके खाने से जो बचे वह गायों का। मकान था, कुछ नगद था। कई हजार के गहने थे। उन्हें लिखाना–पढ़ाना था। एक कन्या और भी चार–पाँच साल में विवाह करने के योग्य हो जायेगी इसलिए वह कोई बड़ी रकम दहेज में न दे सकती थी। आखिर लड़कों को भी कुछ

चाहिए? वे क्या समझेंगे कि हमारा भी कोई बाप था।"[3] लड़की तो वह गाय है, जहाँ चाहे जिस खूँटे में बांध दो वह चूँ तक न कर पायेगी। कल्याणी की दृष्टि में लड़के और लड़कियों में फर्क करना खूब जानती है।

कल्याणी उदयभानु की पत्नी है, जिसके चरित्र में स्वाभिमान, अहंकार, पश्चाताप, कर्त्तव्यपरायण आदि का भी सुंदर समावेश लेखक ने किया है। कल्याणी और उदयभानु में निर्मला की दहेज को लेकर बात आगे बढ़ती है। दोनो पति–पत्नी में झगड़ा हो जाता है।

"उदयभानु – तो मैं तुम्हारा गुलाम हूँ?

कल्याणी – तो क्या मैं तुम्हारी हूँ?

उदयभानु – ऐसे मर्द और होंगे, जो औरतों के इशारे पर नाचते हैं।

कल्याणी – तो ऐसी स्त्रियाँ और होंगी, जो मर्दों की जूतियाँ सहा करती है।

उदयभानु – मैं कमा कर लाता हूँ, जैसे चाहूँ खर्च कर सकता हूँ। किसी को बोलने का अधिकार नहीं है।"[4]

मैं कमा कर लाता हूँ। इन वाक्यों ने कल्याणी के आत्मगौरव और स्वाभिमान को और भी जागृत कर दिया। दहेज की समस्या का समाधान पति पत्नी हल करने के बजाय यह और अधिक गंभीर हो गयी। वे अब एक–दूसरे के मुँह को देखना भी पसंद नहीं करने लगे। कल्याणी ने पति को प्रेम के बदले मरने का अभिशाप दे डाला और उदयभानु मन में सबसे दूर मिर्जापुर चले जाने का निश्चय किये और जाते समय रास्ते में उनकी हत्या हो गई। कल्याणी तो अपनी मानसिक स्थिति को संतुलित न करने की वजह से ऐसा कहा था क्या जानती थी कि उसके इस अभिशाप से वह विधवा हो जायेगी। वह सोचने लगी– "अगर पति ने उसकी गोद में कराह–कराहकर प्राण त्याग किये होते तो उसे संतोष होता कि मैने अपने कर्त्तव्य का पालन किया .... हाँ, मेरी पच्चीस वर्ष की तपस्या निष्फल हो गयी। मैं अंत समय अपने प्राण पति के प्रेम से वंचित हो गई। अगर मैंने उन्हें ऐसे कठोर शब्द न कहे होते तो वह कदापि रात को घर से न जाते।"[5] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कल्याणी की मानसिकता दुर्बलता उसे कहलवा तो देती है परंतु वह अपनी गलती का पश्चताप कर रही है।

जिस विधवा ने उस घर को अपना समझा अब उसे लगने लगा है कि वह अब परायी हो गयी, इसलिए रूक्मिणी अपने मानसिक संतुलन नहीं बना पाती और वह घर के प्रत्येक निर्जीव सजीव पर निर्मला का अधिकार हो गया है, ऐसा समझ कर वह विशेष रूप से निर्मला को कोसती रहती है। लेकिन निर्मला की बीमारी को देखते हुए वह कोमल और मधुर भाव से सांत्वना देती हुई कहती कि– "बहू तुम इतनी निराश क्यों होती हो? भगवान चाहेंगे तो तुम दो चार दिन में अच्छी हो जाओगी।"[6] बाद में घर की आर्थिक स्थिति को देखकर कल्याणी पिघल जाती और अपनी गलती को मानकर निर्मला से क्षमा माँगती हुई कहती– "बहू तुम्हारा कोई अपराध नहीं। ईश्वर से कहती हूँ तुम्हारी ओर से मेरे मन में जरा भी मैल नहीं है। हाँ, मैंने सदैव तुम्हारे साथ कपट किया। इसका मुझे मरते दम तक दुःख रहेगा।"[7] भारतीय समाज में कन्या के पैदा होते ही उसे 'लक्ष्मी' आदि उपनाम से संबोधित किया जाता है। उसे कुल की देवी मानी जाती है। उसे बचपन से घर के छोटे–छोटे कामों को करने, गुरूजनों, माता–पिता तथा बड़ों का आदर करना, सिखाया जाता है। वे परिवार में रहकर धर्म, पूजा–पाठ, रीति–रिवाज, आचार–विचार, आदि का अनुकरण करना सीखती है। जब निर्मला के कानों में विवाह की बात पड़ती है तब निर्मला अपनी छोटी बहन कृष्णा से उदास होकर कहती है– "निर्मला– तू जा मैं न जाऊँगी।

कृष्णा – नहीं मेरी अच्छी दीदी, आज जरूर चलो। देखो, कैसी ठंडी–ठंडी हवा चल रही है।

निर्मला – नहीं, मेरा होता तो कोई जबरदस्ती निकाल देता?

कृष्णा – तो लड़कियाँ बहुत खराब होती होगी?

निर्मला – मेरा मन नहीं चाहता, तू चली जा।"[8]

इसके कथन से उन्हें तत्कालीन व्यवस्था को मुखरित किया गया है। छोटी बालिका निर्मला और कृष्णा की सरल मनोवृत्ति पर अच्छे और बुरे में फर्क को समझने की शक्ति आ जाती है। निर्मला की सरलता छिन जाती है। जिस उम्र में बालिका को पढ़ा–लिखाकर प्रौढ़ बनाना है। उस छोटे से उम्र में उसे विवाह के बंधन में बाँध दिया जाता है, जबकि उसे यह भी मालूम नहीं है कि विवाह क्या होता है। आर्थिक तंगी निर्मला की पुत्री आशा को भी प्रभावित करती है। इस तरह हम देखते हैं कि प्रेमचंद ने अपने उपन्यास में निर्मला में नारी के माता, पत्नी, विधवा, कन्या आदि रूपों को वहने करने में पूर्णता प्राप्त की है क्योंकि इसमें अनमेल विवाह, आर्थिक तंगी की मार्मिक गाथा को नारी पात्रों में लागू किया गया है जिसमें नारी को पूर्णतः सफलता मिली है।

संदर्भ संकेत

1. प्रेमचंद, निर्मला, हंसराज प्रकाशन, इलाहाबाद, 1975 पृष्ठ 122
2. वही, पृष्ठ 123
3. वही, पृष्ठ 124
4. वही, पृष्ठ 131
5. वही, पृष्ठ 132
6. वही, पृष्ठ 141
7. वही, पृष्ठ 142
8. वही, पृष्ठ 143

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

समसामयिक हिंदी कविता एवं समकालीन हिंदी कविता – एक दृष्टिकोण

डॉ. सुरेश कानडे
एसोसिएट प्रोफेसर एवं हिंदी विभागाध्यक्ष
एस.एम.आर.के.–बी.के.–ए.के. महिला महाविद्यालय नाशिक, महाराष्ट्र (भारत)

आधुनिक युग गद्य का युग है,लेकिन कविता मनुष्य के अन्तस्तल का भाव है। गद्य रचनाएँ भी वही महत्वपूर्ण बनती जिनके अन्तस्तल में काव्यात्मकता होती है। इसीलिए तमाम प्रतिकूल परिस्थितियों में भी नए–नये कवि उभरकर आते हैं। क्योंकि कविता का मुख्य आकार भाव होता है। इस भाव की अभिव्यक्ति भाषा द्वारा होती है। हिंदी कविता भी इस बात से अछूती नहीं है। आधुनिक कालीन हिंदी साहित्य में जिस विधा में मानवीय विचारों की स्वतन्त्रता का प्रतिफलन हुआ है वह है स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता यद्यपि यह स्वतंत्र काव्य के शिल्प के स्तर पर अधिक प्रतिफलित हुई है। यह भी कहा जा सकता ही कि वर्ण्य विषय उसके प्रभाव से नितांत अछूती रही है। स्वतंत्रता से हमें अनेक आशा आकांक्षाएं थी हमने अनेक स्वप्न संजोये थे। वे सब टूट गये थे। हमें मोहभंग का सामना करना पड़ा। समाज में आर्थिक विषमता कम होने के बजाय बढ़ने लगी और समाज में विसंगति के स्वर सुनाई देने लगे। यही स्वर स्वातन्त्र्योत्तर कविता में भी सुनाई देने लगे। जिसमें अनास्था, विघटन, विडम्बना, विदेशी साहित्य का प्रभाव, क्षणवाद, अस्तित्ववाद, निराशा, कुंठा आदि प्रमुख थे। इन सब को गहराई से समझने के लिए समसामयिकता और समकालीनता को समझ लेना उचित होगा। वास्तव में समसामयिकता का सम्बन्ध एक निश्चित कालावधि से होता है। अगर स्पष्ट शब्दों में कहा जाय तो समसामयिकता वर्तमान से और वर्तमान परिवेशीय समस्याओं से उलझना ही है। चूँकि कवि की अति सम्वेदनशीलता के कारण वह इन समस्याओं से सहज जुड़ जाता है। वह पूरी प्रामाणिकता के साथ युगीन समस्याओं को कविता में रूपांतरित करता है।

समकालीन हिंदी कविता पर विचार करने से पहले प्रश्न यह उठता है कि हम समकालीन कविता की शुरुआत कहाँ से माने? इसी प्रकार समकालीनता से क्या तात्पर्य है? इस सन्दर्भ में विद्वानों में अलग–अलग मत हैं। समकालीन शब्द अंग्रेजी के कांटम्प्रेरेरी के पर्यायवाची के रूप में हिंदी में प्रचलित है। इसका कोशीय अर्थ "एक ही समय का'' है। इस सन्दर्भ में डॉ. विश्वम्भर नाथ उपाध्याय लिखते हैं – "समकाल शब्द यह बताता है कि काल के इस प्रचलित खण्ड या प्रवाह में मनुष्य की स्थिति क्या है? इसे उलटकर कहें तो मनुष्य की वास्तविक स्थिति देखकर या उसे अंकित–चित्रित करके ही हमें समकालीनता की अवधारणा को समझ सकते हैं" अर्थात उसके चित्रण की विधि कोई भी हो लेकिन उससे जो मानव का बिम्ब उभरता है, वह वास्तविक जीवन के निकट हो। समकालीनता की स्वचेतना किसी काल की स्थिति विशेष की चेतना बनकर परिवेश के विविध पहलुओं को निश्चयात्मक ढंग से प्रस्तुत करता है। प्रत्येक वर्तमान चिंतक समकालीनता को ग्रहण करता है। परिवेश की परिवर्तनशीलता के कारण समकालीनता का स्वरूप देशकाल की विभिन्नता में विविध हो सकता है। स्थिति विशेष के प्रति जागरूकता समकालीनता के दायित्व से भी अभिव्यंजित होती है। समकालीनता बोध अक्सर पारम्परिक मूल्यों को नकार देता है। नए मूल्यों की तलाश में वह जिस प्रकार का अनुभव प्राप्त करता है, जिन समस्याओं से उसे गुजरना पड़ता है, इन सबमें उसे जो सही एवं सार्थक लगता है उसे प्रतिमानों के रूप में व्यक्त करता है। विशेषकर हिंदी कविता के सन्दर्भ में अगर समकालीनता की चर्चा की जाय तो यह पता चलता है कि स्वतंत्रता पूर्व का भारतीय चिन्तन पूर्णतः राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिए था। स्वतन्त्रता के बाद असमानता और राजकीय अस्थिरता

का जो दौर आया उसके समकालीन बौद्धिक चिन्तन में काफी तीखापन आ गया था। स्वतन्त्र भारत में एक आम आदमी घुटन, गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा, अलगाव और विवशता में जीने के लिए मजबूर था। सरकार की योजनायें तो बनीं लेकिन फाइलों में दबकर रह गयीं। जिनके लिये योजनायें थीं उन तक नहीं पहुँच पायी। परिणाम स्वरूप आम आदमी स्वतन्त्रता पूर्व जिस स्थिति में था स्वतन्त्रता के बाद भी उसी स्थिति में रहा। इसके विपरीत किसी भी चुनाव को जीतकर जो जन प्रतिनिधि जनता के कल्याण के लिए चुनाव जीते वे पद और निहित स्वार्थ के लिए लड़ते रहे। राजनीति सिद्धांतहीन और नैतिक मूल्यों से बहुत दूर चली गयी और सदाचार की जगह भ्रष्टाचार को सम्मान मिलने लगा। सन 1960 के बाद तो यह स्थिति हो गयी कि समकालीन चिंतक, कवि, रचनाकार भारतीय राजनैतिक व्यवस्था के प्रति विद्रोही हो गया। परिणाम स्वरूप देश की सारी परिस्थितियाँ समकालीन हिंदी कविता और साहित्य में दृष्टिगोचर होने लगी।

समसामयिक चिन्तन स्वतन्त्रता के बाद राजनीति से सम्पृक्त होता गया। वह राजनीतिक व्यवस्था के प्रति नाराज दिखाई देने लगा। समाज में बढ़ती वर्ग चेतना, असमानता, साधनहीनता और सामाजिक अन्याय से समसामयिक हिंदी कविता जुडती गयी और सन 1960 तक आते–आते व्यवस्था विद्रोह के रूप में चर्चित होने लगी। व्यवस्था, परम्परा, मान्यता और मूल्यों के प्रति नकार और अस्वीकार का भाव प्रमुख रूप से उभर कर सामने आया। यह एक ऐसा दौर था कि सन 1960 से आज तक आजादी की सही पहचान कराते समय राजनितिक मूल्यहीनता की सपाट अभिव्यक्ति करने में कवि कभी नहीं हिचकता। साठोत्तरी कवि धुमिल और नौवें दशक के कवि भावुक जी की कविताओं का उदाहरण स्वरूप देखा जा सकता है–

धूमिल– "मुझे अपनी कविताओं के लिए
दूसरे जनतंत्र की तलाश है।"

भावुक जी– "लोकतंत्र ..... नीचे से उपर तक ..... लूटतन्त्र,
जैसे वेश्याओं का घर,
कोई आये ..... कोई जाए,
कोई लुटे ..... कोई खाए,
जनता से बीएस जनता का मिलन,
वोटों का चलता रहा चलन।"

इन दोनों उदाहरणों से यह ज्ञात होता है कि समकालीनता एक कालखंड की समस्याओं से परिचित कराती है साथ ही परिवेश के विविध आयामों को भी प्रभावित करती है। लेकिन वह किसी परम्परा को फैशन के रूप में स्वीकार नहीं करती। वह उसकी समाजोपयोगी धारणा देखती है। समकालीन कविता में खुले सम्बन्धों कि खुलकर चर्चा हुई है। यह राजनितिक सन्दर्भों में भी हुई है। इसी प्रकार समसामयिक कवि आम आदमी के घृणित यथार्थ का उद्घाटन करता है। जो उसकी विषम परिस्थितियों से सम्बन्धित था। इसमें एक जड़ परम्परा और एक जड़ व्यवस्था के प्रति विद्रोह का भाव भी पाया जाता है।

समकालीनता देश की अनिश्चयात्मक स्थितियों को एक चुनौती के रूप में स्वीकार करती है और उससे लड़ने के लिए वैचारिक आधार पर विरोध और विद्रोह का सहारा लेती है। वह देशकाल के सामाजिक बदलाव को मानवीय संदर्भ में देखने की पक्षपाती है। जिससे आम आदमी भी खास आदमी की तरह अपना जीवन जी सके। समसमायिक और समकालीन हिंदी कविता साथ आधुनिकता भी जुड़ी हुई है। यद्यपि आधुनिकता एक दृष्टिकोण है। गतिशील बौद्धिक परम्परा है, प्रक्रिया है। जो हर युग को प्रभावित करती है। किन्तु समकालीनता पूरे युग से नहीं जुडी होती है। वह अपने समय कि एक खास पहचान के रूप में याद की जाती है। जबकि आधुनिकता एक दृष्टिबोध है। हर अगला काल अपने पूर्ववर्ती काल की अपेक्षा आधुनिक होता है। इसीलिए समकालीनता और आधुनिकता दोनों

का सम्बन्ध सामजिक व्यवस्थाओं के रूढ़ और जर्जर हो चुकी मान्यताओं के परिवर्तन से है। आधुनिकता जहाँ मानसिक रूप से परिवेश की गम्भीर समस्याओं से उद्भूत होती है और समकालीन जीवन को संस्कार देती है।वैसे ही समकालीनता भी अविराम रूप से काल या समय चक्र से सम्बन्ध रखती हुई समाज के भीतरी द्वंद को उद्घाटित करती है।

"हो गयी है पीर पर्वत सी पिघलनी चाहिए,
हर हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए,
सिर्फ हंगामा करना मेरा मकसद नहीं,
मेरा मकसद है कि, ये सूरत बदलनी चाहिए,
मेरे सीने में नहीं तो,तेरे सीने में सही,
हो कहीं भी आग, लेकिन आग निकलनी चाहिये।"

(साये में धूप– दुष्यंत कुमार)

समकालीन हिंदी कविता का कथ्य और धरातल विस्तृत है। इसके आयाम बहु पक्षीय हैं। यही कारण है कि इस दौर के अनेक काव्य आन्दोंलनों से जुड़े कवि आज स्वयं को समकालीन कवि मानते हैं। राजनीतिक निकटता इस दौर के हर कवि की जैसे एक मजबूरी थी। कहीं–कहीं तो नेताओं की तरह से कविता भी नारे बाजी की तरह लिखी गयी है। रघुवीर सहाय, केदारनाथ सिंह, श्रीकांत वर्मा, धूमिल आदि की कविताओं में सहज देखा जा सकता है। अतः यह कहा जा सकता है कि समकालीन हिंदी कविता और समसामयिक हिंदी कविता वास्तुतरू नयी कविता के आगे की कविता है। जो 'अनुभूति की प्रामाणिकता' और 'भोगा हुआ यथार्थ' को रचना में प्रमाण मानती है। साहित्य में समकालीनता को समझने के लिए एक ही उपाय है कि समकालीन मनुष्य एवं समाज को उसके वास्तविक जीवन के साथ परखना, उसके साथ तादात्म्य स्थापित करना अथवा उसके साथ होना। इस दृष्टि से हिंदी कविता को अपने काल से जोड़ने के लिए 'समकालीन हिंदी कविता और समसामयिक हिंदी कविता' का नाम दिया गया है।

सन्दर्भ संकेत

1. हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. नगेन्द्र और डॉ. हरदयाल
2. हिदी साहित्य का इतिहास – आ. रामचन्द्र शुक्ल
3. हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. बच्चन सिंह
4. हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ – डॉ. जय किशन प्रसाद खंडेलवाल

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

शास्त्रीय भाषा ओड़िआ तथा पश्चिम ओड़िशा की बोली कोशली

डॉ. राकेश शर्मा
हिंदी अधिकारी एवं संपादक "सागरबोध" सी.एस.आई.आर.
सीएसआईआर – राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान, डोना पौला, गोवा – 403004

ओड़िया भाषा और संस्कृति अत्यंत समृद्ध होते हुए भी भारतवर्ष में वर्षों से अनजान और उपेक्षित सी रही है। यह प्रदेश का अपना प्राचीन इतिहास है और अपने देश की आर्यभाषा संस्कृति और विरासत का एक सशक्त वाहक रहा है अतः इस भाषा और संस्कृति को नए सिरे से जानने और समझने की जरुरत है। ओड़िआ (ଓଡ଼ିଆ, ओड़िआ) भारत के ओड़िशा प्रान्त में बोली जाने वाली भाषा है। यह यहाँ के राज्य सरकार की राजभाषा भी है। भाषाई परिवार के तौर पर ओड़िआ एक आर्य भाषा है और नेपाली, बांग्ला, असमिया और मैथिली से इसका निकट संबंध है। भारतीयों की इस प्रदेश और भाषा के प्रति उपेक्षा और अल्पज्ञान का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि आजादी के छह दशक बाद तक भी इस प्रदेश को अंग्रेजी में ओरिस्सा और हिंदी में उड़ीसा, तथा इसकी भाषा को अंग्रेजी में ओरिया और हिंदी में उड़िया कहा जाता रहा है। ओड़िसा की भाषा और जाति दोनों ही अर्थों में उड़िया शब्द का प्रयोग होता रहा है, किंतु वास्तव में ठीक रूप ''ओड़िया'' है और इस बाबत संविधान में प्रस्ताव भी पारित हो चुका है।

अंग्रेजी रूप 'उड़िया' का अशुद्ध उच्चारण है – जिसका मूल शब्द है 'ओड्र देश' अथवा ओड़ों का देश। 'ओड्र' आदिम जनजाति भी जो पौराणिक शब्दों के साथ अतीत में इस राज्य में बसने वाले पहले लोग थे। यह जातियाँ अभी भी खेतिहर के रूप में उड़ीसा के केन्द्रीय इलाके में निवास करती हैं। पिछली छह – सात शताब्दियों में इस प्रदेश को ओड्रा देश या उड़ीसा ही कहा जाता है। भरत मुनि के नाट्य – शास्त्र में ओड्र भाषा का विकास के रूप में उल्लेख है। ओडिया इण्डो – जर्मन परिवार की पूर्वी या मागधी अपभ्रंश से उत्पन्न है । इसके उत्तर में भोजपुरी भाषा का क्षेत्र है और दक्षिण में द्रविड़ परिवार की तेलगू का। पश्चिम की और मध्य प्रदेश में हालवी मत्री और छतीसगढ़ी बोलियां है। उड़ीसा का सीमाओं के बाहर भी जैसे बिहार के सिंहभूमि जिले में ओड़िया भाषी लोग रहते हैं। उड़िया भाषा पर फारसी – अरबी का प्रभाव बहुत कम पड़ा है। सभी भाषाओं की अपेक्षा यह संस्कृत स्रोत के अधिक निकट है। ध्वनि की दृष्टि से भी यह संस्कृत के अधिक निकट है । संस्कृत का 'राम' शब्द उड़िया में भी राम ही हैं। इसके कुछ क्रिया पदों में भी प्राचीन संस्कृत अथवा वैदिक संस्कृत के ये रूप बराबर मिलते हैं।[1]

कलिंगभूमि और उड्रभाषा की प्राचीनता और ऐतिहासिक महत्व के संबंध में व्यापक जानकारी हमें अनेक देश और विदेश के प्राचीन धार्मिक एवं अन्य ग्रंथों जैसे बौद्धायन के धर्म सूत्र (6ठी सदी ई.पू), पाणिनी की अष्टाध्यायी (4थी सदी ई.पू), भरत का नाट्यशास्त्र (4थी सदी ई.पू), कौटिल्य का अर्थशास्त्र (तीसवीं सदी ई.पू), बौद्धशास्त्र, अगुंतर निकाय, दीर्घ निकाय, ललित विस्तार, चुलनिदेश, महाभारत, रामायण, कपिल संहिता, स्कंद पुराण, ब्रह्मांड पुराण, मार्कैडय पुराण, प्लिनी की Natural history, टलेमी का भूगोल, मेगस्थनीज की इंडिका, ह्वेंगसांग के विवरण, ताकाकुसु के विवरण, भूगोलविद इबन खुर्दादविन, अलबरुनी, लामा तारकनाथ के विवरण में मिल जाती है । समय समय पर विशिष्ट भाषा विदों ने ओड़िया भाषा की प्राचीनता, भौगोलिकता और उसके वैशिष्ट्य पर चर्चा की है । जॉन बीम्स की पुस्तक Comparative grammer of modern Aryan Languages of India में, सर जॉर्ज गिर्यर्सन ने Linguistic survey of India, LSS Mally द्वारा रचित Bihar and Odisha District Gajetteers में, दृर्मन ओल्डबर्ग की बनम्बपिटक में, तारापोरवाला के Elements of the Science of languages में, विजय चंद्र मजूमदार के Typical selections from Odiya literature की भूमिका में, सुनीति कुमार चटर्जी के The people,

language and culture of Odisha में ओड़िया भाषा की प्राचीनता और मौलिकता के संदर्भ में अनुसंधान परक मत प्रस्तुत किए गए हैं।[2]

ओडिया भाषा की साहित्यिक परंपरा संस्कृत से ही विकसित हुई है । ओडिशा में संस्कृत के अनेक कवि और विद्वानों का जन्म हआ है । मध्यकाल के अनेक ओड़िया कवि संस्कृत के जानकार ही नहीं, प्रख्यात ग्रंथकार भी थे । अथर्ववेद की पप्पलाद शाखा की संहिता, ब्राह्मण एवं उपनिषद् और यजर्वेदीय काण्व शाखा के कई ब्राह्मण ग्रंथ ओडिशा में ही मिले हैं । गीतिकाव्य के क्षेत्र में जयदेव का 'गीतगोविन्द' और गोवर्धन की 'आर्यासप्तशती', नाटककार मुरारि मित्र का 'अनर्थरापव', काव्यशास्त्र के आचार्य विश्वनाथ का 'साहित्यदर्पण ओडिशा – भूमि की ही उपज हैं । परिनिष्ठित संस्कृत भाषा की तरह प्राकृत भाषा की भी धारा ओडिशा में प्रवाहित रही है जिसका प्रमाण अशोक और खारवेल के शिलालेखों में मिलता है । प्राकृत और अपभ्रंश के कई ग्रंथ भी ओडिआ कवियों द्वारा रचित हुए हैं । ओडिशा में अपभ्रंश साहित्य का प्राचीनतम रूप सिद्धाचायों के पदों में मिलता है । सातवीं शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी तक के चौरासी सिद्धों में से शवरपा, नुदपा, कण्हपा, सरहपा, दारिकपा, कम्बलपा आदि के पदों में बहुत – से ओड़िआ शब्द मिलते हैं । अतः अपभ्रंशमिश्रित इस ओडिआ – साहित्य को ही प्रारंभिक ओड़िआ – साहित्य माना जाता है । इसके आधार पर ओड़िआ – साहित्य का उद्‌भव सातवीं शताब्दी के मध्य भाग से माना जा सकता है । तब से आज तक यह धारा अखंड रूप में प्रवहमान रही है।[3]

ओड़िया भाषा की व्युत्पत्ति एवं परिवार :

इसकी व्युत्पत्ति का विकासक्रम कुछ विद्वान् इस प्रकार मानते हैं – ओड्रविषय, ओड्रविष, ओडिष, आड़िषा या ओड़िशा। सबसे पहले भरत के नाट्यशास्त्र में उड्रविभाषा का उल्लेख मिलता है । भाषातात्विक दृष्टि से ओड़िया भाषा में आर्य, द्राविड़ और मुंडारी भाषाओं के संमिश्रित रूपों का पता चलता है, किंतु आज की ओड़िया भाषा का मुख्य आधार भारतीय आर्यभाषा है। साथ ही साथ इसमें संथाली, मुंडारी, शबरी, आदि मुंडारी वर्ग की भाषाओं के और औराँव, कुई (कंधी) तेलुगु आदि द्राविड़ वर्ग की भाषाओं के लक्षण भी पाए जाते हैं।

लिपि – इसकी लिपी का विकास भी नागरी लिपि के समान ही ब्राह्मी लिपि से हुआ है। अंतर केवल इतना है कि नागरी लिपि की ऊपर की सीधी रेखा ओड़िया लिपि में वर्तुल हो जाती है और लिपि के मुख्य अंश की अपेक्षा अधिक जगह घेर लेती है। विद्वानों का कहना है कि ओड़िया में पहले तालपत्र पर लौह लेखनी से लिखने की रीति प्रचलित थी और सीधी रेखा खींचने में तालपत्र के कट जाने का डर था। अतः सीधी रेखा के बदले वर्तुल रेखा दी जाने लगी और ओड़िया लिपि का क्रमशः आधुनिक रूप आने लगा। यहां यह ध्यान रखना जरुरी है कि जिस प्रकार हिंदी की लिपि हिंदी ना होकर देवनागरी है उसी प्रकार ओड़िया भाषा की लिपि का ओड़िया लिपि न होकर कोशलोत्कल (कोशल़उत्कल) कुटिल लिपि है। इस लिपि का जन्म कोशल प्रदेश के राजा जन्मेजय महागुप्त के समय, अर्थात दशवी या ग्यारहवीं सदी के लगभग हुआ था। यही लिपि प्राचीन कोशल, कंगोद, तोषाली, कलिंग और उत्कल में प्रचलित थी और अब पूरे ओड़िशा में ओड़िया भाषा की आधिकारिक लिपि के रुप में मान्य है। आज हम जिस प्रदेश को ओड़िशा के नाम से जानते हैं वो उपरोक्त इन पांच ऐतिहासिक प्रदेशों का ही समाहार था। इनमें से उत्कल राज्य की सत्ता और अस्तित्व पर कई विद्वानों में मतभेद है क्योंकि कुछ विद्वानों का मानना है कि ईसा पूर्व तीसरी सदी में अशोक ने जिस प्रदेश पर आक्रमण किया था तब तक उत्कल नामक प्रदेश तत्कालीन कलिंग में विलुप्त हो चुका था।

कोशल प्रदेश का भूगोल व इतिहास –

हिंदु पुराणों में उत्तर कोशल, दक्षिण कोशल, चेदी कोशल, काशी कोशल, महाकोशल आदि नौ कोशल प्रदेशों का उल्लेख है । पर यहां जिस कोशलोत्कल लिपि की चर्चा की जा रही है वो कोशल प्रदेश सिद्धमुनी 'कपिल' के द्वारा रचित 'कपिल संहिता' में वर्णित "कोशल देश" से संबंधित है । उन्होंने लिखा था – "कोशलेषु त्रया पुण्याः – पुण्याः चित्रोत्पला नदीय...पुण्या स्वर्णपुरी प्रोक्ता, पुण्याः मार्जारकेशरी..... ।" अर्थात जिस प्रदेश में चित्रोत्पला

(महानदी), स्वर्णपुरी (आज का सोनपुर जिला), मार्जार केशरी (बलांगिर जिला स्थित तीर्थस्थल नृसिंहनाथ) स्थित है वो ही कोशल है । अगर अपना भौगोलिक नजरिया जरा ओर विस्तृत करें तो पाएंगें कि चर्चित भूप्रदेश के अंतर्गत आधुनिक ओड़िशा के कालाहांडी, नुआपाड़ा, बलांगिर, बरगड़, संबलपुर, सोनपुर, झारसुगुड़ा, सुंदरगढ़, देवगड़, बौद जिलों के साथ छत्तीसगढ़ के विन्द्रा नुआगढ़, रायगढ़, शक्ति, चंद्रपुर, सारंगगढ़ और फुलझर आदि क्षेत्र आते हैं। ओडिशा में आनेवाले इन जिलों के लिए पश्चिम ओडिशा का नाम लोकप्रिय है।

संबलपुर पश्चिम ओडिशा का प्रमुख शहर है और इस प्रांत का केंद्र है। इसका नाम 'समलेश्वरी देवी' के नाम पर पड़ा है जो शक्तिरूपा हैं और इस क्षेत्र में पूज्य देवी हैं। संबलपुर, भुवनेश्वर से 280 किमी की दूरी पर है। इतिहास में इसे 'संबलक', 'हीराखण्ड', 'ओडियान' (उड्डियान), 'ओद्र देश', 'दक्षिण कोशल' और 'कोशल' आदि नामों से संबोधित किया गया है। महानदी इस जिले को विभक्त करती है। यह जिला तरंगित समतल है, जिसमें कई पहाड़ियाँ हैं। इनमें से सबसे बड़ी पहाड़ी 300 वर्ग मील में फैली हुई है। जिले में महानदी के पश्चिमी भाग में सघन खेती होती है और पूर्वी भाग के अधिकांश में जंगल हैं। जिले में हीराकुड पर बाँध बनाकर सिंचाई के लिए जल एवं उद्योगों के लिए विद्युत् प्राप्त की जा रही है। महानदी और इब नदी के संगमस्थल के समीप हीराकुड में स्वर्णबालू एवं हीरा पाया गया है। यह अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त सूती और रेशमी बुनावट (टशर रेशम) की वस्त्र–कारीगरी (इकत), आदिवासी समृद्ध विरासत और प्रचुर जंगल भूमि के लिए प्रसिद्ध है।

संबलपुरी या कोशली भाषा – इस प्रदेश की भाषा संबलपुरी है जिसे कोशली भी कहा जाता है जो पूरे पश्चिम ओडिशा में बोली जाती है । यह ओडिया भाषा से समानता रखते हुए भी कई मायनों में अलग है ।

पश्चिमी ओडिआ संबलपुर, सुंदरगढ़, बरगढ़, कलाहांडी, बलांगीर, बौद्ध आदि जिलों में बोली जाती है। इसे संबलपुरी कहा जाता है। इस पर छत्तीसगढ़ी का प्रभाव दिखाई पड़ता है। यह बोली शब्दावली, ध्वनि – रूप और व्याकरण की दृष्टि से पूर्वी ओड़िआ या मानक ओड़िया से कुछ भिन्न है। इसमें 'ळ' के बदले 'ल' का प्रयोग होता है और 'ण' के बदले 'न' का प्रयोग होता है। द्वितीया विभक्ति में 'कु' के स्थान पर 'के' का, पंचमी विभक्ति में 'रु' के बदले 'मु', षष्ठी विभक्ति में 'र' के स्थान पर कहीं–कहीं 'ए' एवं सप्तमी विभक्ति में 'रे' के स्थान पर 'थे' का प्रयोग होता है। कहीं कहीं इस बोली की ध्वन्यात्मकता ओड़िया से अधिक हिंदी के समीप नजर आती है। ओड़िया की 'ओ'कार प्रधानता इसमें कुछ शिथिल हो जाती है। भाषा और ध्वनि का ही प्रभाव है जिससे पश्चिम ओड़िशा के निवासी तटीय ओड़िशा के निवासियों की तुलना में हिंदी में स्वयं को अधिक सहज पाते हैं। वाक्य में नास्तिवाचक का प्रयोग क्रिया के बाद में न होकर क्रिया के पहले होता है। संबलपुरी लोकगीत और लोकनृत्य बहुत ही आकर्षणीय होने के कारण इस बोली को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा है। इसमें काव्य–कविता, नाटक, कहानी आदि भी लिखे जाने लगे हैं एवं पत्रिकाएं भी प्रकाशित होने लगी हैं । संबलपुरी संगीत का अपना विशाल बाजार है जिसकी सीमा इस भौगोलिक क्षेत्र से बाहर तक फैला हुआ है।[4]

एक बोली के रुप में कोशली जिसे स्थानभेद में संबलपुरी भी कहा जाता है का पर्याप्त विकास हुआ है परंतु व्याकरण और लिखित साहित्य के अभाव में एक भाषा के रुप में यह विकासशील भाषा है। इस विकास संस्कृत–अवधि–मागधी से होते हुए कोशली के रुप में हुआ है। तटीय ओड़िशा के द्वारा इस प्रदेश और भाषा की उपेक्षा के कारण इस भाषा को बोलने वालों के मन में एक तरह की हीन–भावना पनप गई है। ओड़िया भाषा–साहित्य की संगोष्ठी आदि में कोशली या संबलपुरी के प्रयोग को हेय दृष्टि से देखा जाता रहा है। परंतु धीरे–धीरे इस प्रदेश के लोगों में इस सुमधुर भाषा के प्रति आत्म–गौरव का भाव जागृत हो रहा है। पश्चिम ओडिशा की सीमाएं पश्चिम में छत्तीसगढ़ और उत्तर में झारखंड से लगने के कारण संबलपुरी भाषा पर हिंदी तथा छत्तीसगढ़ी का भी प्रभाव देखा जा सकता है। ओडिया, कोशली और हिंदी की भाषागत समानताओं और विषमताओं के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

हिंदी : राम आज घर जाकर अपने खेतों का काम देखेगा।

कोशली : राम आएज घर जाइ करी तार खेत र काम देखबा।

ओडिया : राम आजी घरकु जाई करी ता खेतर काम देखिब।

हिंदी : नुआखाई पश्चिम ओडिशा का नई फसल आने पर किसानों के द्वारा मनाए जाने वाला त्यौहार है।
कोशली : नुआखाई पश्चिम ओडिशा र नुआ फसल आएले किसान मानकर द्वारा मना जाउ थिवा तिहार आए।
ओडिया : नुआखाई पश्चिम ओडिशा र नुआ फसल उलपक्षे कृषक मानंक द्वारा मना जाउ थिवा पर्व अटे।

कोशली में साहित्य – कोशली भाषा लंबे समय से उपेक्षित रही है और इतनी सुमधुर होने बावजूद इसमें साहित्य बहुत ज्यादा नहीं है। इस प्रदेश के कवि तथा साहित्यकार ओड़िया भाषा में ही अपनी रचनाएं लिखते रहे जिनमें कोशल अंचल में जन्मे ओडिआ के महान कवि गंगाधर मेहेर भी शामिल है। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक संबलपुरी में कोई विशेष लिखित साहित्य उपलब्ध नहीं था। परंतु अब इस बोली में साहित्य रचा जाने लगा है और अब यह बोली विभाषा बनने की प्रक्रिया में है।

प्राचीन प्रस्तर शिलालेख, तांबे की प्लेटों, ताड़पत्र आदि में इस भाषा के साक्ष्य उपलब्ध नहीं हैं। पहला संबलपुरी लेखन वर्ष 1891 में देबगढ़ से प्रकाशित साप्ताहिक पत्रिका 'संबलपुर हितेईसानी' में प्रकाशित हुआ था। इसे 'मधुसूदन' द्वारा लिखित 'संबलपुर अंचलर प्रचार कविता' शीर्षक दिया गया था। कविता से एक अंश निम्नलिखित है –

"कह गो दूती मुंई केन्ता करसी गो,
नंदपुअ कान्हा देखले बड़ा कावा लागसी
दिशु थिसि कालिया तरतर
पिंधि थिसि हल्दिया झरझर"

(अरे, दूती मुझे समझ में नहीं आता कि मैं क्या करूं, नंद के बेटे कान्हा को देखकर मुझे बड़ा अचंभा होता है, उसकी काली चिकनी देह पर पीला वस्त्र बहुत सुंदर दिखता है)

इस तरह, 1891 और 1947 के बीच, कुल 35 कवियों ने केवल 64 कोशली कविताओं की रचना की थी । 1891 ईस्वी तक की अवधि को संबलपुरी साहित्य के इतिहास में अंधेरे युग के रूप में जाना जा सकता है। 1891 से 1970 तक संबलपुरी साहित्य के शैशवावस्था के रूप में जाना जा सकता है क्योंकि इस अवधि के दौरान संबलपुरी साहित्य में बहुत कम लेखन का कार्य हुआ था। केवल 1970 के बाद ही इस भाषा के साहित्य को विकसित करने के लिए उचित पहल हुई । श्री सत्यनारायण बोहिदार पहले व्यक्ति थे जिन्होंने न केवल बड़ी मात्रा में संबलपुरी साहित्य का सृजन किया बल्कि दूसरों को संबलपुरी में लिखने के लिए भी प्रोत्साहित किया।[5]

लिखित साहित्य का अभाव होने के बावजूद इस भाषा के लोकगीतों और गानों की लोकप्रियता निर्विवाद है। पद्मश्री जितेंद्र हरिपाल द्वारा इस भाषा में लिखे और संगीतवद्ध गीत "रंगोबती रे रंगोबती" ने लोकप्रियता के कीर्तिमान स्थापित किए हैं और अपने जादुई आकर्षण के कारण यह गीत ओडिशा के बाहर भी बेहद लोकप्रिय हुआ है । श्री हलधर नाग कोशली भाषा के आधुनिक युग के लोककवि हैं जिन्हें वर्ष 2017 में पद्मश्री से सम्मानित किया गया है । इसके अतिरिक्त यह क्षेत्र ओड़िया के विख्यात भक्त कवि भीम भोई का जन्म एवं कर्मस्थल रहा है । संबलपुर विश्वविद्यालय में अब उनके लेखन संग्रह 'हलधर ग्रंथावली–2' को पाठ्यक्रम में शामिल कर लिया गया है। अब कोशली भाषा को संविधान की आठवीं अनुसूची में भी सम्मिलित करने की मांग भी की ज रही है।[6]

संदर्भ संकेत

1. हिन्दी और क्षेत्रीय भाषाओं का परस्परिक सम्बन्ध, सं. डॉ. विनोद कुमार, श्री कृष्ण साहित्य सदन, दिल्ली, पृष्ठ – 33,
2. विश्वमुक्ति, नवम्बर–दिसंबर–2014, शास्त्रीय मान्यता प्राप्त भाषा ओड़िआ, डॉ. बसंत कुमार पंडा, पृष्ठ – 41
3. भारतीय साहित्य की पहचान रू सियाराम तिवारी, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ – 92–118
4. पूर्वी अपभ्रंश भाषा : डॉ. राधाकांत मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ – 76–83
5. भारतीय भाषाओं की पहचान, डॉ. सियाराम तिवारी, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ – 56–61
6. साहित्यिक सफर का एक दशक, दिनेश कुमार माली, Online Gatha, the endless tale, पृष्ठ – 422–427

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

'छप्पर' उपन्यास में निहित सामाजिक चेतना और समस्याएँ

डॉ. हरिजन गोपाल यामनप्पा
शोध छात्र, हिन्दी विभाग
मैसूर विश्वविद्यालय, मानसगंगोत्री, मैसूर–570002

भूमिका : 1994 में 'छप्पर' उपन्यास जयप्रकाश कर्दम द्वारा लिखा गया है। यह उपन्यास हिंदी दलित साहित्य में उत्कृष्ट है और इस कृति की उपलब्धि पर और कोई कृति की उपलब्धि नहीं हुई है। जयप्रकश कर्दम को छप्पर उपन्यास लिखने की प्रेरणा वह स्वयं दलित है। इसलिए यह उपन्यास एक दलित ही अपने संघर्ष को व्यवस्थित डंग से प्रमाणिकता से स्पष्ट कर सकता है। लेखक एक संवेदनशील प्राणी होता है। समाज में जो कुछ भी विशिष्ट या उल्लेखनीय होता है या असामान्य या अप्रिय घटना घटित होती है। सब की प्रतिक्रिया भी किसी न किसी रूप में उसके मानस में होती है। जिसको वह अपने लेखनी के द्वारा अभिव्यक्त करते है। जयप्रकाश कर्दम जी ने अपने उपन्यास में समाज में फैली ऊँचा –नीचा तथा जाति या धर्म के आधार पर लोगों का जो शोषण हो रहा है। उसके खिलाफ अपनी आवाज बुलंद करने का प्रयास अथवा उन कुरीतियों के खिलाफ अपना विरोधभास अभिव्यक्त किया है। ' छप्पर ' उपन्यास में लेखक ने एक गरीब दलित का बेटा जब शहर में अपनी पढ़ाई पूरी करने जाता है, तब उनके घरवालों पर सवर्ण लोगों द्वारा किए जानेवाले अत्याचारों का उल्लेख किया गया है। एक प्रकार से समाज में जातिया भेदभाव तथा इससे दलितों का किस तरह से शोषण होता है, लेखक ने यह संक्षिप्त दर्शाने की कोशिश की है।

छप्पर की कथावस्तु : 'छप्पर' उपन्यास के प्रमुख पात्र सुक्खा और रमिया। जो की दलित दम्पति है। उनका बेटा चन्दन जो की पढ़ाई करने के लिए शहर चला जाता है। इसलिए गाँव के ठाकुर, काणपंडित, सेठ साहूकार को यह नागवार गुजरती है और सुक्खा को गाँव से बहिष्कार किया जाता है। उसके मकान पर लाला आवेद कब्जा कर लेता है। सुक्खा गाँव छोड़कर गाँव के पास एक कस्बे में बस जाता है। उस पर सभी प्रकार के प्रतिबंद लगाकर जीवन यापन के सारे साधन खत्म कर दिया जाते है। तभी भी वह नहीं मानता । तो सुक्खा को खाना पंडित ध र्म के नाम पर डराने की कोशिश करता है। पंडितजी कहते है कि यह सबसे बड़ा अनर्थ हो गया है। और इसका परिणाम तुम लोगों को भुगतना पड़ेगा। वह दूसरी तरफ चन्दन अपनी पढ़ाई के लिए शहर बस गया होता है। वह भी झोपड़ पट्टी में रहकर वहाँ की अंध विश्वासी व्यसन धीन अशिक्षित ,पीड़ित, शोषित लोगों के उत्थान और विकास का प्रयास करता है। वह दलित युवकों का संगठन कर स्वयं संतनगर में स्कूल खोलता है। वही पर उसकी बेटी कमला जो की एक दलित अत्याचारी युवती से होती है। कमला और चन्दन सामाजिक आंदोलन में सक्रिय रहता है। पर दूसरी तरफ रंजिनी जो की सवर्ण समाज का प्रतिनिधि पात्र है। जो अपने समाज के लोगों तथा उनकी मानसिकता को परिवर्तन लाने का प्रयास करती है और इसके विचार से दलित लोग भी मनुष्य है, उन्हें भी सम्मान से जीने का संविधानिक अधिकार है और अपने पिता ठाकुर साहब और संबंधित अन्य उच्च वर्णियों को समझाने का हर प्रयास करती है। अंत में हम कर सकते है कि जयप्रकाश कर्दम जी ने महात्मा फुले, महात्मा बुद्ध, डॉ. बाबा साहेब अंबेडकर इन महापुरुषों के विचारों को प्रस्तुत किया है तथा शिक्षित बनों, संगठित बनों, संघर्ष करों । इस विचार को पूर्णत्व देने का प्रयास किया है।

इस उपन्यास में चित्रित मुख्य समस्याएँ :

1.ग्रामीण जीवन का चित्रण : छप्पर उपन्यास को दलित उपन्यास के रूप में मन जाता है। इस उपन्यास में कर्दम जी ने दलितों के दयनीय स्थिति तथा संघर्ष को उजागर करने का प्रयास किया है। इस उपन्यास में माँतापुर नामक गाँव का चित्रण तथा दलितों का जीवन कैसा होता है? उनकी अवस्था क्या है ? इसका चित्रण मिलता है तथा अनेक बुनियादी समस्याएँ उभरती हुई दिखाई देती है।

2. विषमता का चित्रण : जयप्रकाश कर्दम जी छप्पर में किस तरह वर्ग विषमता को पालन किया जाता था वह दर्शाया गया है। उदहारण के लिए गाँव माँतापुर दो वर्गों में विभाजित था। पहला वर्ग संपन्न लोगों में सवर्ण कहलाने वाले ब्राह्मण पुरोहित, ठाकुर, जमींदार तथा लाला साहूकार है। दूसरा गाँव की तरह सवर्ण लोग ऊपर की और असवर्ण दलित वर्ग गंगा के बहाव की और निचले स्थान पर रहते थे।

3. अभावग्रस्त जीवन का चित्रण : इस उपन्यास में सुक्खा दलित समुदाय का प्रतिनिधित्व करता है। गाँव से बहिष्कार होने पर किस तरह अभावग्रस्त जीवन जिया तथा वह अपना संघर्ष किस तरह नहीं छोड़ता है। लेखक ने इसके माध्यम दलितों के अभावग्रस्त जीवन का चित्रण किया है।

4. अंधश्रद्धा का चित्रण : कर्दम जी ने छप्पर में अंधविश्वास एवं रूढ़ियों का खुलकर विरोध किया है। इसका उदहारण हमें खाना पंडित की जरिए दिखाई देता है। खाना पंडित अपने ज्योतिषशास्त्र का प्रख्यात पंडित तथा लोगों को धर्म के नाम पर डर दिखाकर लोगों की भावनाओं से खेलता था। लेकिन चन्दन पढ़ा–लिखा होने के कारण उसका विरोध करता था इतना ही नहीं वह जिस बस्ती में रहता था वहाँ के लोगों के अंधविश्वास, कुरीतियो के खिलाफ आवाज उठाने के लिए जागृत करता है।

5. आर्थिक विषमता : जयप्रकाश कर्दम जी ने छप्पर उपन्यास में दलितों के आर्थिक स्थिति का चित्रण किया है। जहाँ गाँव के सवर्ण का घर पक्के और प्लास्टर युक्त है। दुमंजिले और तीनमंजिले उठ–बैठने के लिए बड़े–चौड़े आहाते में बैठक या चौपाल और एकाद कोठों में भूंसा, अनाज और खेती–बाड़ी सामग्री भरा रहता है। वही दूसरी तर दलितों का घर टूटा–पुटा तथा कच्चे मिट्टी के या घास–पूस के बने होते हैं। तथा उनके घर के बाहर बैठने के लिए आहाते काफी छोटे और कच्चे मिट्टी के बने होते हैं। इस तरह जयप्रकाश कर्दम जी ने दलितों के आर्थिक स्थिति का चित्रण किया है।

निष्कर्ष : जयप्रकाश कर्दम जी ने छप्पर उपन्यास के माध्यम से दलितों के शोषण को दर्शाया है। यह पर शिक्षित होने संगठित होकर संघर्ष करने की प्रेरणा दलित समुदाय को कहने का प्रयास कर रहे हैं तथा महात्मा पुले, बुद्ध डॉ. बाबा साहेब आंबेडकर उनके विचारों को ग्रहण करके उनके दिखाए पथ पर चलने को कर रहें हैं। तथा अंधविश्वास और कुरीतियों पर अपनी लेखन के माध्यम से प्रहार करते हैं तथा लोगों को जागृत करने का प्रयास करते हैं।

संदर्भ संकेत

1. बौद्ध धर्म के आधार स्तम्भ – जयप्रकाश कर्दम।
2. तलाश कहानी संग्रह – जयप्रकाश कर्दम।
3. जाति एक विमर्ष – जयप्रकाश कर्दम।
4. दलित साहित्य और चिंतन – समकालीन परिदृश्य।
5. आलोचना की तीसरी परंपरा – जयप्रकाश कर्दम।
6. छप्पर – एक अनुशीलन – गयस मुद्रे।

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

हिन्दी आत्मकथाओं में किन्नर जीवन का यथार्थ

(विशेष – सन्दर्भ 'पुरुष तन में फंसा मेरा नारी मन')

लक्ष्मी गोंड
(शोधार्थी)
इ0गा0रा0ज0वि0वि0, अमरकंटक (म0प्र0)

प्रत्येक व्यक्ति को समाज में समान अधिकार से जीने का हक होता है, स्त्री, पुरुष, दलित, आदिवासी आदि। लेकिन हमारा यह समाज सामन्ती विचारों से परिपूर्ण है। जो अपने स्वार्थ के लिये हमेशा कोई न कोई उपाय ढूढ़ता रहता है, और उस स्वार्थ में कितने गरीब, शोषित, लाचार कुचले जाते है, जिसका अन्दाजा लगाना अत्यधिक क्लीष्ट है। यह समाज लिंगाधारित है। लिंग के आधार पर जेण्डर को बाँटा जाता है। स्त्री–पुरुष के बाद तृतीय लिंग जिसे हम थर्ड जेण्डर कहते है। आज यह जेण्डर अपने वजूद अस्मिता के लिये लड़ रहा है। उच्चतम न्यायालय द्वारा मान्यता प्राप्त होते हुये भी यह समाज किन्नर समुदाय को अपनाने में संकोच कर रहा है, उन्हें समझने की कोशिश ठीक ढंग से नही कर पा रहा है। देश की आजादी में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हुये भी आजादी के बाद इस समुदाय के साथ इतना अत्याचार हुआ कि इन्हें समाज से अलग कर दिया गया। जो आज दर–दर भटक कर अभिशप्त जीने के लिये मजबूर है।

आज आधुनिक काल के युग में जिस प्रकार स्त्री विमर्श, दलित विमर्श तथा आदिवासी विमर्श उभर कर सामने आया है और बड़े–बड़े साहित्यकारों ने अपने लेखनी के माध्यम से इन सभी विमर्शो के समस्या का समाधान खोज रहा है, ठीक उसी प्रकार आज किन्नर समाज पर भी रचनाकारों ने अपने लेखनी के माध्यम से इनके समस्याओं को उठाकर समाज के सामने रखकर समाधान करने की कोशिश कर रहा है। यह अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है। जैसे नीरजा माधव का उपन्यास 'यमदीप', मृदुला गर्ग का उपन्यास 'नाला सोपारा' 'पोस्ट बाक्स नं0 203', महेन्द्र भीष्म का 'किन्नर कथा', 'मैं पायल' तथा सुभाष अखिल जी का 'दरमियाँ' अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसके बाद अगर कुछ आत्मकथाओं की अगर हम बात करे तो 'मैं लक्ष्मी .... मै हिजड़ा' और 'पुरुष तन में फंसा मेरा नारी' मन अधिक से अधिक महत्वपूर्ण साबित होता है। यह आत्मकथा पूरे किन्नर समाज के 'प्रतिरोध का दस्तावेज' है। जो किन्नर समाज के छोटे से छोटे पीड़ा को उजागर करता है।

'पुरुष तन में फंसा मेरा नारी मन' एक ऐसे किन्नर की बेबाक आत्मकथा है जो आर्थिक रूप से अधिक सक्षम नही थे, पर परिवार का साथ हमेशा रहने के बाद भी यह समाज उन्हें प्रताड़ित करने या कोसने में पीछे नही है। जिनका जन्म 23 सितम्बर 1964 को नाना के घर पुरुष तन में जन्में सोमनाथ जो मन से स्त्री रूप में पैदा हुए। लेकिन इससे पहले सोमनाथ जी ने यह बताने की कोशिश की है कि किस प्रकार यह समाज बेटा–बेटी में भी फर्क रखता है जो बहुत ही कश्ट देने वाली बात है।

सोमनाथ जी से पहले दो बहनों के जन्म के बाद परिवार में उदासी छा गयी थी। जैसे ही घर में लड़का का जन्म हुआ परिवार में खुशियों का महौल छा गया। इनकी माँ ससुराल के बजाय मायके में रहना पसंद करती थी, क्योंकि उनको अपने पति के घर कई समस्याओं का सामना करना पड़ता था। घर का पुरा काम संभालना पड़ता जिसके कारण बच्चों का देखभाल ठीक ढंग से नही हो पाता। पर यह समाज जो सदियों से लड़का–लड़की में फर्क करता आया है। लड़की पैदा होती है तब ताना सुनो, जब जवान होती है तब ताना सुनों, और अगर ब्याह के बाद किसी कारण बस ससुराल न जाये तब ताना सुनो अर्थात हर तरह से स्त्री जाति को प्रताड़ित किया जाता। जिसको मानोबी जी अपने माता रेखा जी के माध्यम से बताने की कोशिश की है। ब्याही हुयी बेटी को लम्बे समय तक अपने घर रखना शुभ नही होता। इसे इसके ससुराल वापस भेजें। क्या तुम्हारे दामाद को लज्जा नही आती?

ऐसा कौन सा पति है जो अपनी पत्नी को इतने समय तक मायके में रहने की अनुमति देता है? (पृष्ठ संख्या 13)

मेरे पिता को भी लोगो से इसी तरह के कटाक्ष सुनने को मिलते। ''तुम्हारी पत्नी तो तुम्हारे साथ रहती नही है। तुम वहीं जाकर घरजवाई क्यों नही बन जाते? (पृष्ठ संख्या 13) इनके पिता छोटी छोटी बातों में गुस्सा किया करते थे। पूरा परिवार भय के मारे कांपता रहता था। बहनें सोनाली और रूपाली आवाज सुनकर काँप जाती थी। लेकिन सोमनाथ जी अपने पिता से उतना नही डरते जैसे परिवार के अन्य लोग अर्थात हमारे भारतीय समाज में पुत्र को अत्याधिक स्नेह और दुलार किया जाता है पर पुत्री हो तो ऐसा नही आखिर क्यों ? लेकिन यह खुशी कुछ दिनों बाद बदलने लगी क्योंकि सोमनाथ जी धीरे–धीरे स्त्री जैसे भावनाओं में परिवर्तित हो रहे थे। जो उनके लिये बेचैनी एवं छटपटाहट का मार्ग बन रहा था। वह समझ नही पा रहे थे की मेरे साथ क्या हो रहा है?परिवार, समाज तथा स्कूल सभी जगह कानाफूसी शुरू हो गयी। लेकिन बहुत जल्दी इनको समझ में आ गयी कि मै एक लड़की हूँ और सोमनाथ बंद्योपाध्याय से मनोबी बंद्योपाध्याय बन गये। अब उनकी जिन्दगी का संघर्ष शुरू हो गया। छः वर्ष के उम्र में स्कूल जाने के बाद वहाँ सारे बच्चे इन्हे एक खिलौना बनाकर उछालने लगे। समाज द्वारा ताना सुनने लगे। जिसके कारण मन को बहुत ठेस पहुँचा। धीरे–धीरे कुंठित होने लगे। अधिक त्रीव बुद्धि होने के कारण हमेशा नम्बर अच्छा लाते थे। जिससे खुशियों का ठिकाना नही रहता था और उनके पिता का गर्व करने का बहाना भी मिल जाता था। लेकिन जिस प्रकार उनका शारीरिक रूप रेखा एवं भावनाएँ स्त्री जैसा समाज के सामने प्रतीत होता है, तो यह समाज उन्हें अपने हवश का शिकार बनाने के लिये मौका ढूढ़ता है। जो हमारे समाज में सदियों –सदियों से स्त्री के साथ होता आया है। जैसे ही मालूम होता है कि कोई वस्तु स्त्री जैसा प्रतीत हो रहा है तो यह भेड़िया समाज जो इसी सभ्य समाज में छिपा हुआ है। वह भोगने के लिये तत्पर हो जाता है। जो हमारे भारतीय संस्कृति को कमजोर करता जा रहा है और एक कज़िन नौजवान लड़का मौका पाकर इन्हें अपने हवस का शिकार बना ही लेता है। मानोबी जी इस छोटी उम्र में जो मात्र छः–सात साल की होगी जिनको नही पता की सेक्स होता क्या है, उन्हे दर्दनाक पीड़ा से गुजरना पड़ा और यह कष्ट इनको छठी उम्र में ही बड़ा होने का एहसास करा दिया। जो हम मासूम बच्चे के लिये अत्यन्त पीड़ादायक है।

सातवीं कक्षा तक आते–आते पूरी तरह लड़कियों जैसा हरकत करने लगे। साथ के कुछ बच्चे इनके साथ अच्छा व्यवहार करते तो कुछ इनके भावनाओं को ठेस पहुँचाते । परन्तु मानोबी जी अपने कर्तव्यों के प्रति संघर्षशील रहती है और इनके अन्दर आत्मविश्वास ठूँस–ठूँस कर भर जाता है, पर लड़की जैसा व्यवहार पूरे खानदान को गले नही उतरता। पूरे खानदान को यह प्रतीत होता है कि मान मर्यादा मिट्टी में मिल जाएगा। लेकिन वे अपने भावनाओं को साबित करने के लिये कहती है। ''परन्तु माँ! मै एक स्त्री हूँ .....क्या आपको विश्वास नही आता? क्या मुझे आप लोगों से बेहतर तरीके से कपड़े पहनने नही आते?आप मुझे एक लड़की बनने दो .....।'' (पृष्ठ संख्या 17) पर यह समाज स्वीकारने की तो बात दूर इनके माँ बाप को ताना मारने लगे। ये सब सुनकर इनकी माँ स्वयं को दोषी मानने लगी। मैने एक किन्नर बच्चे को जन्म दिया। पिता को यह भी सुनने को मिलता। '' तुम अपनी आँखों के आगे अपने बेटे को हिंजड़ा बनते हुये कैसे देख सकते हो?'' (पृष्ठ संख्या 17)। इस बात को सुनकर पिता जी उदासी से भर जाते। सारा क्रोध परिवार पर निकालते। पर सबको खुश रखने के लिये इनके पास एक ही उपाय था। कड़ा परिश्रम करके स्कूल में प्रथम स्थान लाना जो इनके लक्ष्यों तक ले जाने की एक यही मात्र जरिया था। जिसके लिये वह खूब परिश्रम करती है।

शादी विवाह के अवसर पर मानोबी जी जाती है तो वधू के स्थान पर अपने आपको मानती है जिसका असर इनके ऊपर काफी दिन तक हावी रहता है। पूँजा पाठ में जहाँ लड़कियों की पूँजा होती है, उसे देखकर वह तरसती है। इनके शब्दों में ''अगर मुझे भी इसी तरह सजा–सवांरकर साड़ी पहना दी जाती तो क्या मैं उनसे सुन्दर न

लगती?'' (पृष्ठ संख्या 19) लेकिन इन भावनाओं को समझने के लिये कोई तैयार नही होता। जिसके लिये वह अन्दर से छटपटा रहीं थी। अगर स्कूल में कार्यक्रम के समय स्त्री का रोल करना हो तो इन्हें ही चुना जाता जिन्हें यह बखूबी निभाते और सराहे जाने के पात्र बन जाते जिसके लिये वह तरसते रहते है। और इनके टीचर ने एक मिसाल के रूप में पेश करते हुये कहा ''जब सोमनाथ लड़का होकर, लड़कियों वाले स्टेप्स इतनी अच्छी तरह कर सकता है तो तुम यह सब यह क्यों नहीं कर सकतीं ?'' (पृष्ठ संख्या 20) जिसे सुनकर लज्जाशील होकर इस प्रशंसा को ग्रहण करती। अन्दर से बेचैन हो उठती। यह बताने के लिये मै एक लड़की ही हूँ। नृत्य कला किन्नर समाज के प्रति जन्मजात होती है इस बात को उन्होंने साबित कर दिया था। मानोबी जी 'मंजूश्री चकी सरकार' के डांस ग्रुप से जुड़ने के साथ–साथ 'एम टू एफ' ग्रुप से भी थे। डांस ग्रुप में इन्होनें देखा की वहाँ इनके जैसे बहुत थे। लेकिन उनका कोई उद्देश्य नही था। पुरुष तन में स्त्री भावनाएं कैद थी, जिसे उजागर करने मे असफल थे। लेकिन किन्नर समाज में समानता, एकता की भावना गजब भरा हुआ यहाँ दिखाई देता है। आपस में एक दूसरे को 'मीठा चावल' 'मामा' कहकर संबोधित करते थे इससे आपसी एकता बढ़ती थी।

नवीं कक्षा तक पहुँचते ही प्रेम का असली रूप समझ गये। इनके जिन्दगी में ऐसा तुफान कई बार आया जिसके कारण इनके हृदय को ठेस पहुँचा। लेकिन कही न कही इसके वजह से उनके अन्दर आत्मविश्वास ठूँस ठूँस कर भर गया। इस आत्मकथा से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस समाज में स्त्री को या स्त्री जैसा प्रतीत होने वाले शरीर को अपने हवस का शिकार बनाने में कोइ कसर नही छोड़ते, फिर एक सड़े हुये वस्तु के जैसा फेंक दिया जाता है। इस गंदे विचार को खत्म करने के लिये आज स्त्रियाँ, किन्नर समाज हर मुकाबला करने के लिये तत्पर है। पर आधे से अधिक स्त्रियाँ आज भी पुरानी बेड़ियों में जकड़ी हुयी है। जिसको यह सभ्य समाज अपने स्वार्थ के लिये इस पीड़ा से उबरने नही देता। आज हर कोई अपने स्वार्थ के पीछे भाग रहा है वह चाहे समाज हो, परिवार हो या व्यक्ति, परिवार में बच्चे के जन्म के बाद उसके आजादी को ऐसे थोप दिया जाता है । और थोपे हुये बोझ के नीचे बच्चा दब जाता है । और वह अपनी आजादी को जी नही पाता है, इस मानसिकता का भी पर्दाफाश हुआ है मानोबी जी के साथ स्कूली जीवन में दुखों का अन्त नही रहा। प्रेम के वास्ते उनके हृदय को बार –2 गहरी चोट मिलने के बावजूद कभी अपने लक्ष्य से नही भटके। लेकिन उनके सामने अपने आप से प्रश्नों की लड़ी लगी रहती थी। जिसके कारण गहरे अवसाद से ग्रंसित होते जा रहे थे। उतने जिन्दगी को मजाक बना कर उड़ाई जा रही थी। उनके जिन्दगी में जितने लोग आये उनके जीवन को बद से बदतर बनाते जा रहे थे। एक सच्चे जीवन साथी के लिये तरस रहे थे। वह अपना जीवन पति–पत्नी जैसा बिताना चाहते थे। पुरुष तन में स्त्री जैसी भावनाओं को लेकर छटपटा रहे थे। उन्हें अपने पुरुष रूपी तन से घृणा होता जा रहा था, स्त्री जैसी योनि, वक्ष के लिये तरस रहे थे। तत्पश्चात लोगों के माध्यम से इन्द्र दा के बारे में जानकारी मिली जो आर0जी0कर0 मेडिकल कॉलेज में चिकित्सा अनुसंधान में लगे थे, इन्होनें मानोबी जी का बहुत मदद किया। मनोबी जी को आर0जी0कर0 मेडिकल के मनोचिकित्सक के साथ उनकी मुलाकात इन्द्र दा ने करवा दिया। इनकी पूरी बात को सुनकर डॉक्टर भी आश्चर्य चकित हो उठ। मानोबी जी साहस और आत्म विश्वास से परिपूर्ण थे जिसका अन्दाजा लगाना कठिन था। साहस और आत्मविश्ववास के बल पर इन्होनें अपने गुप्तांग के सर्जरी में सफल भी हो गये। लेकिन एक सच्चे पुरुष पति के तलाश में अभी भी भटक रहे थे। एक दिन इन्हें जगदीश नामक लड़का से मुलाकात हुई जो अपने क्षेत्र का नामी था। नाम लेते ही सब समझ जाते। जब इनसे मुलाकात हुआ तो समझ में आया कि वह भी सोमनाथ जैसा ही है। लेकिन जगदीश एकदम विन्दास, बेहिचक और निःसकोंच जिन्दगी जीने वाला ट्रांसजेण्डर था। जगदीश के माध्यम से मानोबी जी खुद किन्नर समाज में कुछ ट्रांसजेण्डर जो अपने पेट भरने के लिये कितने कष्टों एवं दुखो का सामना करना पड़ता है। जो किसी भी तरह सही नही है। उसका भी पर्दाफाश

किया है। उन्होनें यह भी बताने की कोशिश किया है कि किन्नर समाज में खड़े होकर मूत्र त्याग नही किया जाता है। लेकिन जगदीश ऐसा बार बार करता है पर जगदीश किन्नर समाज से अलग रहता है। अगर किन्नर समुदाय में होता तो उसे कड़ी से कड़ी सजा दी जाती। सजा यह होता है कोड़े की मार से लेकर सिगरेट से दागने, मानोबी जी ने यह भी बताने की कोशिश की है कि किस प्रकार यह किन्नर समाज जिसे कही स्थान नही दिया जाता। वह अपना पेट भरने के लिये दर–दर भटकता है और अलग अलग पुरुषों के साथ शारीरिक सम्बन्ध बनाने के लिये मजबूर रहता है। जिसे एक गम्भीर बीमारी से गुजरना पड़ता है और धीमी मौत मरता रहता है। उदाहरण – जगदीश ठीक उसी प्रकार कही आर्मी छावनी में ं जाता तो कहीं अलग पुरुष के साथ सम्बन्ध बनाता जिसके कारण जल्दी ही एड्स जैसे जानलेवा बीमारी से ग्रसित हो गया, और अपना दम तोड़ दिया। हमारा किन्नर समाज न चाहते हुये भी इस समस्या से जूझ रहा है।

कालेज में प्रिंसिपल के पद पर तैनात होते हुये भी दुःखों का पहाड़ नही टला था। शारीरिक एवं मानसिक रूप से प्रताड़ित होना पड़ा। लेक्चरर के पद पर तैनात होने की बात सुनकर कुछ लोगों को जिनका नाम यहाँ नही लिया गया है, उन लोगों को यह बात गले नही उतरती । महाविद्यालय से बाहर करने के लिये वे लोग कोई कसर नही छोड़ी थी।

आत्मविश्वास और साहस ने उन्हें इस ऊँचाई पर पहुँचा दिया और साबित कर दिया की लक्ष्य चाहे जितना कठिन हो उसे पाने के लिये साहस और आत्मविश्वास की जरूरत है। यह आत्मकथा सोये हुये इन्सान को जगा देने वाला है, इस आत्मकथा का अध्ययन करने पर साहस, ऊर्जा एवं आत्म विश्वास से भर देता है। लेखिका को प्रिंसिपल के पद पर नियुक्त हो जाने बाद भी उनके दैनिक जीवन समस्याओं से भरा हुआ था। एक सच्चे पुरुष की तलाश में दर दर भटकती तथा छटपटाती है, पर ऐसा मिलना असम्भव ही नही नामुमकिन था, उनके कष्टों को देखते हुये ऐसा प्रतीत होता है कि वह इससे उबर नही पायेगी। उनके जिन्दगी में जो भी आता अपने हवस का शिकार बनाकर, ऐसा बर्ताव करता, जिससे वह पुरुष उनको जानता भी न हो। जिसे देखकर लेखिका स्तब्ध रह जाती और उनके हृदय को गहरा ठेस पहुँचता। जिसका अंदाजा लगाना समुद्र के गहराई जैसा है। वह हर बार एक ही मोड़ पर आ जाती । सारा संसार अंधेरा ही अंधेरा प्रतीत होता है इनके आँखों के सामने।

जितना उन्हें प्रकृति ने नही मारा, उतन समाज ने उनके साथ दुर्व्यवहार किया। ऐसे–ऐसे दुःखों का सामना करना पड़ा कि कई–कई बार बिखर बिखर गयी । फिर भी अपने आपको सम्भालते हुये उठ कर खड़ी हो जाती है, ऐसा साहस, ऐसा आत्मविश्वास भरा था उनमें जिसका साक्ष्य इस आत्मकथा में हमे आसानी से प्राप्त हो जाता है हम हमेशा देखते है कि जब परिवार में कोई व्यक्ति किसी समस्या से ग्रसित हो जाता है या कोई घटना घट जाती है तो उसके साथ परिवार के साथ साथ लगभग समाज भी सहयोग एवं साथ देने में कोई कोर कसर नही छोड़ता और कम से कम वह अकेला तो नही रहता। लेकिन एक ऐसा व्यक्ति जिसे परिवार और समाज दोनो नकार देता है, और उसकी जिन्दगी घनघोर पीड़ा, दुःखों, समस्याओं से धिरा रहता है, जिसको लड़खड़ाने के बाद कोई सम्बल देने वाला न हो, गिरते हुये खाई से बचाने वाला कोई न हो उसके साथ उसकी दुःखों को सुनने वाला कोई न हो तो आप जरा कल्पना तो करिये। अपने आपको उस जगह पर खड़ा करके कितने अवसादो से धिरा होगा वह व्यक्ति, जो अकेला इस पितृसत्तामक समाज से लड़ते हुय अपने वजूद की तलाश में छटपटा रहा है। जो पूरे किन्नर समुदाय के लिये एक मिसाल के रूप में सामने आयी हैं।

इस आत्मकथा से यह भी साबित हो गया है कि समाज पूरी तरह निर्दयी नही है। हाँ कुछ ऐसे लोग थे जिन्होनें बहुत दर्दनाक तरीके से सताया। लेकिन आत्मविश्वास के ताकत ने उन्हें कमजोर नही होने दिया। और उसी ताकत के माध्यम से सभी कष्टों का सामना करती गयी। समस्या कोई भी हो, शारीरिक, सामाजिक, राजनैतिक

आदि, जो भी हो, पर अधिक से अधिक लोगों ने भरपूर सहयोग दिया। अगर देखा जाये तो इनके जिन्दगी में वास्तविक सुख प्रदान करने वाले डॉ0 खन्ना थे। जिन्होने उन्हे सर्जरी के माध्यम से एक पूर्ण ट्रांसवूमन बनाने में सफल रहे। और इस प्रकार पुरुष शरीर में जो स्त्री छटपटा रही थी, उसे पूर्ण आकार मिल गया। दूसरा कालेज में प्रिसिपल के नौकरी प्राप्त करने के बाद जिन्दगी में खुशियों का बहार आ गया। तीसरा खुशी ने भी जिन्दगी में दस्तक दिया। और वह यह था, कि एक स्त्री जब माँ बनती है तो दुनियाँ का अनमोल खुशी वह पल होता है, जिससे माँ का हृदय प्रफुल्लित हो उठता है। वह खुशी भी उनके दत्तक पुत्र देवाशीश के माध्यम से प्राप्त हो गया। जिन्दगी में दुःखों का सहन करते करते मन विचलित हो ही रहा था, माँ बाप का कहना था कि इतना दुख सहन करने के बाद तुम फिर से जिन्दगी क्यों उलझा रहे हो? वह भी तुम्हे छोड़ कर चला जायेगा। लेकिन उन्होनें इतना सुन्दर तर्क दिया है कि – बेटा–बेटी के शादी के बाद लगभग माँ –बाप अकेले हो ही जाते है । इसके बारे में सोचने की जरूरत नही है और उन्होनें माँ का फर्ज निभाते हुये उसके हर जरूरतो का ध्यान रखा, जो एक माँ अपने बेटे के लिये करती है। इस प्रकार माँ और बेटा दोनों बहुत खुश है।

तात्पर्य यह है कि आत्मविश्वास, साहस एवं शक्ति से बड़ा कुछ नही होता। जब मनुष्य सच्चे मन से कुछ करने के लिये ठान ले तो वह अवश्य कर सकता है। रास्ता चाहे जितना कठिन हो। अपने उद्देश्य को हासिल कर सकता है, और इस आत्मविश्वास का प्रमाण हमें सहज ही इस आत्मकथा के माध्यम से मिल जाता है।

❑❑

51

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

प्रियप्रवास में चित्रित युगीन परिदृश्य

डॉ. ममता गंगवार
हिन्दी विभागाध्यक्ष
आचार्य नरेन्द्र देव नगर निगम, महिला महाविद्यालय, कानपुर

अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध ने जिस समय 'प्रिय प्रवास' की रचना की उस समय भारत में सुधारवादी आन्दोलन चल रहा था। भारत की जनता अशिक्षा छुआछूत, परस्पर ईर्ष्या द्वेष, स्वार्थ, सामाजिक भेद भाव, ऊँच–नीच धार्मिक संकीर्णता आदि कुरीतियों से बुरी तरह पीड़ित थी ऐसे नाजुक समय में ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज एवं थियोसोफिकल सोसाइटी जैसी समाज सुधारक संस्थाओं नें समाज में व्याप्त कुरीतियों बाल–विवाह, बहु–विवाह, सती प्रथा, अस्पृश्यता, पर्दा प्रथा, बालहत्या एवं मूर्ति पूजा का विरोध करके वेदों के अनुसार स्त्री स्वातंत्र्य अस्पृश्यता निवारण, विशुद्ध मानव प्रेम विश्वबंधुत्व की भावना, ऊँच–नीच का भेद मिटाकर सर्वधर्म समन्वय पर बल दिया। रामकृष्ण मिशन–प्राचीनता एवं नवीनता का समन्वय करके इस मिशन ने उस समय धार्मिक विश्वास, आध्यात्मिकता, लोक सेवा, मानव प्रेम, धार्मिक सहिष्णुता आदि को जाग्रत करने में बड़ा ही सराहनीय कार्य किया था।[1]

उस समय तक अंग्रेजों ने भी सामाजिक सुधार के प्रयत्न किये यथा– कानून बनाकर जन्मजात लड़की को मारने पर प्रतिबन्ध सती प्रथा एवं बाल–विवाह पर प्रतिबन्ध लगाया था। इतना ही नहीं उन्होने छुआछूत, ऊँच–नीच, पर्दा प्रथा आदि का निवारण करके स्त्री शिक्षा, स्त्री पुरुष की समानता, अछूतों को भी मतदान का अधिकार, सामाजिक एकता आदि सराहनीय कार्यों पर बल दिया था। इन्ही सब कारणों से उस समय देश में सर्वत्र सामाजिक सुधार, मानव प्रेम, विश्व बन्धुत्व, लोकोपचार, नारी की स्थिति में सुधार, लोक सेवा, धार्मिक सहिष्णुता, भेद–भाव, का परित्याग आदि का वातावरण सर्वत्र फैल गया था।[2]

प्रिय प्रवास की रचना के समय स्वामी रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ आदि ने हिन्दू धर्म की संकीर्णता को दूरकर उसकी सहृदयता एवं विशालता को जन सामान्य तक पहुँचाने का महत्कार्य किया और उसे विश्व का सर्वश्रेष्ठ धर्म सिद्ध कर दिया था। इस प्रकार के प्रयासों के फलस्वरूप धीरे–धीरे धार्मिक कट्टरता का स्थान ईश्वर की सर्वव्यापकता प्राणिमात्र में एकता, विश्व बन्धुत्व की भावना लोक हित ने ले लिया था। और जनता के मन में अवतारों के (दैविय) विचारों का स्थान तर्क सम्मत बुद्धि ग्राह्य विचार पनपने लगे जैसे– कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत उँगली पर कैसे उठाया होगा? भयानक नाग को कैसे पकड़ कर नाथा होगा? राम ने समुद्र में पत्थर कैसे तैराये होंगे? वाराह अवतार लेकर भगवान ने कैसे सम्पूर्ण पृथ्वी को समुद्र से निकालकर अपनी दाढ़ों में रखा होगा।[3] इन सभी प्रश्नों का हल हरिऔध जी ने प्रिय प्रवास में ज्यों का त्यों लिख दिया।

अयोध्या सिंह के युग तक देश में सुधारवादी दृष्टिकोण प्रचलित हो गया था। इसीलिये भागवत के दशम स्कन्ध की राक्षस तृणावर्त की कथा को उसके दैवीय गुणों को हटाकर सामान्य बवंडर के रूप में प्रियप्रवास में चित्रित किया गया है।[4]

कालिया नाग की कथा श्रीमद् भागवत के दशम स्कन्ध के अध्याय 16–17 में वर्णित है उसे हरिऔध जी ने तार्किक रूप से सामान्य जनता के समक्ष प्रस्तुत किया है इसमें उन्होंने बताया कि कृष्ण ने वंशी की मधुर धुन द्वारा नाग को वश में करके युक्ति पूर्वक वहाँ से निकाल दिया था। इससे समाज में अनेक धारणायें फैल गयीं यथा–

अनेक यो कहते हैं फणीश को, सर्वश मारा वन में मुकुन्द नें।
कई मनीषी यह है विचारते, छिपा पड़ा है वह गर्त में किसी।
सुनाया गया है यह भी अनेक से, पवित्र भूता–ब्रज भूमि त्याग के।
चला गया है वह और ही कहीं जनोघाती विषदन्त हीन हो।[5]

प्रिय प्रवासकार ने गोवर्धन धारण की कथा भी मानवीय रूप में चित्रित की है उन्होने कृष्ण के गोवर्धनधारी रूप का परिष्कार कर उन्हें महामानव के रूप में चित्रित किया है। श्रीमद् भागवत के दशम स्कन्ध के अध्याय 25 में कृष्ण ने इन्द्र के प्रकोप से बचने और जनता को बचाने के लिये गोवर्धन पर्वत को उंगली पर उठा लिया था और इन्द्र का प्रकोप शान्त होते ही उसे पहले की तरह रख देते हैं। इस अस्वाभाविक घटना को भी स्वाभाविक घटना के रूप में चित्रित किया है। यथा–

''जिस प्रकार घिरे घन व्योम में प्रकृति है जितनी कुपित हुई।
प्रकट यह उससे हो रहा विपद का टलना बहुत दूर है।
इसलिये तज के गिरि कन्दरा अपर यत्न न है अब त्राण का।
उचित है इस काल सयत्न हो शरण में चलना गिरिराज की।
बहुत सी दरिया अति दिव्य है..... गमन स्थल है वही।[6]''

इस प्रकार कृष्ण के कहने पर समस्त ब्रज के लोग सुरक्षित रूप से गिरिराज की कन्दराओं में चले गये। कृष्ण की मित्र मण्डली ने सभी को सुख सुविधाएँ प्रदान की उनके इस कार्य की सभी ने भूरि–भूरि प्रशंसा की। देश में अतिवृष्टि के कारण अनेक बार बहुत विकराल रूप में बाढ़ आयी। सामान्य जनता के सुधारवादी संस्थाओं ने बाढ़ग्रस्त इलाकों में जा–जा कर उन्हें बचाया। यहाँ कृष्ण भी बाढ़ पीड़ितों की सहायता अपनी मित्र मण्डली के सहयोग से करते हैं उसका सटीक प्रतिबिम्ब कृष्ण के माध्यम से बाढ़ पीड़ितों को बचाने वाले समाज सेवी दल का है। यथा–

बहु चुने दृढ़–वीर सु साहसी सब गोप लिये बलवीर भी।
समुचित स्थल में करने लगे सकल की उपयुक्त सहायता।
सलिल प्लादन से अब थे बचे लघु बड़े उन्नत पथ जो।
सब उन्हीं पर हो स–सतर्कता गमन थे करते गिरि अंक में।
–––––––––––––––––– बहु अकिंचन थे रहते जहाँ।[7]

प्रिय प्रवास में कृष्ण अपने अस्त्र शस्त्रों से अजगर को मार देते हैं। श्रीमद् भागवत पुराण में व्योमासुर दैत्य खेलते हुए गोपों को उठाकर गिरि की कन्दरा में छिपा देता है तो कृष्ण उसके कपट का पता लगाकर उसका गला घोंटकर सभी गोपों को सुरक्षित वापस ले आते है।[8]

श्रीमद् भागवत पुराण के अनुसार अघासुर के पेट में जाकर कृष्ण ने अपने शरीर को विस्तृत कर लिया और अजगर का शरीर फट गया सभी गोप एवं गायों को कृष्ण ने उस अजगर से बचा लिया।[9]

प्रिय प्रवास में कृष्ण ने लम्बी सी छड़ी लेकर उसका वध किया है।[10]

प्रिय प्रवास की रचना के समय कवि के मन में यह बात विद्यमान थी कि समाज एवं राष्ट्र की भलाई के लिये एक ऐसे आदर्श पुरुष का निर्माण किया जाये हित की बात सोंचता हो। अतः इसी दृष्टिकोण का प्रतिबिम्ब कृष्ण का चरित्र है प्रिय प्रवास का कृष्ण ऐसा रत्न है जिसके गुणों का अनुसरण करके न केवल भारत के प्राणी ही सुखी और समृद्ध हो सकते हैं, अपितु विश्व भर के प्राणी कल्याण मार्ग पर अग्रसर होकर समस्त विश्व का कल्याण कर सकते हैं। नारी उद्धार का आन्दोलन प्रियप्रवास की रचना के समय समाज सुधारक चाहते थे कि आधुनिक युग की नारी उन्नति के पथ पर आगे बढ़कर पुरुष के कन्धे से कन्धा मिलाकर सामाजिक कार्यों में हिस्सा ले। वह घर की चहार दीवारों में बन्द रहने वाली नारी न रहे। भक्ति काल एवं रीति काल में जिस नारी की परिकल्पना कवियों ने की वह अयोध्या सिंह जी को रूचिकर नहीं थीं। इसीलिये उन्होंने नारी को मात्र प्रेम प्रणय और भोग की वस्तु न मानकर लोक सेविका, सात्विक प्रेम से परिपूर्ण, जन कल्याण की भावना से ओत–प्रोत माना हैं। उन्हें यह भी

स्वीकार नहीं था कि भारतीय नारी पाश्चात्य सभ्यता के रंग में रंगी नारी भारतीय जीवन को विषाक्त बनायें समाज सुधारक संस्थाओं ने जो आन्दोलन चलाया उसका प्रतिबिम्ब राधा का चरित्र है। हरिऔध जी ने राधा का त्याग तपस्या पूर्ण जीवन अंकित किया है जो भारतीय नारी के गौरव का प्रतीक है तथा जिसमें आजीवन कौमार्य व्रत धारण करके लोक सेवा का पुनीत भाव भरा हुआ है। ऐसी ही नारी भारतीय संस्कृति की साकार प्रतिमा है और ऐसी नारी जगत का कल्याण कर सकती है। अतः अपने इन्हीं विचारों को साकार रूप प्रदान करने के लिये आधुनिक भ्रमित नारी के सम्मुख आदर्श उपस्थित करने के लिये हरिऔध जी ने राधा की कल्पना की है।[11]

अछूतोद्धार की भावना – प्रिय प्रवास की रचना के समय भारत में समाज सुधार विशेषकर अछूतोद्धार की भावना का बोलबाला था। प्रत्येक समाज सुधारक संस्था विशेष रूप से आर्य समाज आदि ने अछूतोद्धार पर विशेष बल दिया था। क्योंकि हमारी भारतीय संकृति में कालान्तर में यह दोष आ गया था। हमनें शूद्र वर्ण को अस्पृश्य कहकर, ठुकराना प्रारम्भ कर दिया था। फलतः जातियों में आपसी वैमनस्य एवं ईर्ष्या घर करने लग गयी। यहाँ तक धर्म ग्रन्थों में भी इन्हें हेय दृष्टि से देखा गया। आधुनिक काल में रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, महात्मा गाँधी ने छुआछूत दूर करने के लिये भरसक प्रयास किया यहाँ तक कि गाँधी जी ने इन्हें हरिजन नाम से सम्बोधित किया है। गाँधी जी ने हरिजनों के मोहल्ले में जाकर उनमें शुद्धता सात्विकता, सौजन्य एवं सहृदयता जैसे गुण विकसित करने का प्रयास किया। प्रिय प्रवास में भी इसी अछूतोद्धार का स्पष्ट प्रतिबिम्ब परिलक्षित्र होता है हरिऔध जी कहते हैं कि हमें सदैव गिरी हुई जातियों का उत्थान करना चाहिए जो लोग हमारी सेवा करते हैं उसके उस भाव के लिये हमें सर्वस्व उन पर न्यौछावर कर देना चाहिए, हमारी यही उत्सर्ग की भावना दासता नाम की भक्ति है–

जैसे ''जो बातें हैं भव हितकारी सर्व भूतोपकारी।
जो चेष्टाएँ मलिन गिरती जातियाँ हैं उठाती।
हो सेवा में निरत उनके अर्थ उत्सर्ग होना।
विश्वात्मा भक्ति भव सुखद–संज्ञका है।[12]''

जाति पाँति की प्रथा को समाप्त करने के लिये सदैव ऊँच–नीच के भेद को नष्ट करने के लिये महात्मा गाँधी प्रत्येक गरीब के झोंपड़े में जाते थे उनकी हर प्रकार से सेवा शुश्रुषा करते थे। अकाल पीडितों, रोगियों, अछूत हरिजनों की सेवा में प्रतिरूप मानकर मानव मात्र की सेवा पर बल देते थे। इनके इसी चरित्र का प्रतिबिम्ब प्रिय प्रवास के कृष्ण में देखा जा सकता है। डॉ. द्वारका प्रसाद लिखते है 'श्री कृष्ण के द्वारा समस्त प्राणियों की अपने हाथ से ही सेवा करके कवि ने यह संकेत दिया है कि समाज में कोई छोटा या कोई बड़ा, कोई स्पृश्य या कोई अस्पृश्य नहीं। सभी समान हैं सभी के प्रति प्रेम सहानुभूति उदारता होनी चाहिये और किसी को भी तुच्छ समझकर ठुकराना नहीं चाहिए।[13] इस प्रकार श्रीकृष्ण का चरित्र परिकल्पित कर महात्मा गाँधी के चारित्रिक स्वरूप का प्रतिबिम्ब है।'

रोगी दुःखी विपद आपदा में पड़ी थी।
सेवा सदैव करते निज हस्त से थे।
ऐसा निकेतन ब्रज में न मुझे दिखाया।
कोई जहाँ दुःखित हो पर वे ना होवे।[14]

धर्म एवं सदाचार भी सामाजिक नियन्त्रण का महत्वपूर्ण अंग है क्योंकि यदि किसी बात को रोकना है तो उसका धार्मिक निषेध करने पर वह रूक जाती है और यदि उसका प्रसार करना है तो धार्मिक अनिवार्यता दे दो तो वह शीघ्र ही प्रसारित हो जाती हैं ''धर्म के अन्तर्गत सभी कल्याणकारी विश्वास, विचार, कार्य व्यापार एवं भावनाएँ

आती हैं जिन्हें व्यक्ति अपने भौतिक एवं आध्यात्मिक मंगल की कामना से करता है।''

प्रियप्रवास की रचना भी कृष्ण के चरित्र पर आधारित है इसलिये उनका अवतार वाला रूप बरबस सामने आ जाता है। क्योंकि अवतार वाद की कल्पना भारत की एक अनूठी कल्पना है, विशेष हिन्दू धर्म की। यहाँ पर हरिऔध जी ने श्री कृष्ण के अलौकिक और अमानवीय कार्यों को लौकिक एवं मानवीय बनाने की चेष्टा की है तथा उन्हें एक महान पुरुष एवं लोक प्रिय नेता बनाने की चेष्टा की है फिर भी वे श्री कृष्ण के प्रति अगाध श्रद्धा अटूट प्रेम एवं अनन्त विश्वास को किसी प्रकार भी कम नहीं कर सके हैं। कालिया नाग नाथने का जो चित्रण प्रिय प्रवास में आया है उससे उनका विष्णु अवतार होना स्पष्ट हो जाता है।

फणीश शीशों पर राजती रही सुमूर्ति शोभा मय मुकुन्द की.....।
बज रहे मुरली मुहुर्भहु प्रबोधिनी–मुग्ध कारी विमोहिनी।[15]

यही नहीं प्रियप्रवासकार की निष्ठा व्रत उपवास में भी है इसलिये उनकी राधा भी मनवांछित फल प्राप्ति हेतु देवी देवताओं की पूजा करती है यथा–

सविधि भगवती का आज पूजती हूँ।
बहु व्रत रखती हूँ देवता हूँ मनाती।[16]

सगुण भक्ति का अमर ग्रन्थ श्रीमद् भागवत पुराण में भी नवधा भक्ति का उल्लेख मिलता है। हरिऔध जी ने भी अपने महा–काव्य में नवधा भक्ति का वर्णन किया है।

जगत जीवन प्राण स्वरूप का। निज पिता जननी गुरू आदि का।
स्वप्रिय का प्रिय साधन भक्ति है। वह अकास महा कमनीय है।
श्रवण, कीर्तन, वन्दन, दासता। आत्म निवेदन अर्चना।
सहित संख्या तथा पद रोवना। निमदिता नवद्या प्रभु भक्ति है।[17]

इस प्रकार प्रिय प्रवास में सामाजिक संगठन हेतु जो धर्म एवं सदाचार आवश्यक था। उस पर विशेष बल दिया है। श्रीमद् भागवत पुराण की राधा कृष्ण की अनन्य प्रेमिका है। और मुरली की तान सुनकर सब कुछ भुला उनके पास दौड़ पड़ती है इतना ही नहीं कृष्ण के दूर जाने पर व्याकुल हो उठती है। परन्तु हरिऔध की राधा विरहाकुल कृष्ण के लिय यहाँ वहाँ डोलने वाले राधा न होकर परोपकारी लोक सेविका, विश्व प्रेम से परिपूर्ण वह दीनों हीनों की, रोगियों की सेवा शुश्रुषा करने वाली बन गयी है।[18] राधा कृष्ण के वियोग में व्याकुल न होकर स्वयं कृष्ण के लिये कामना करती है कि वे जहाँ भी रहें सकुशल रहकर राष्ट्र का कल्याण करते रहें।

हरिऔध जी ने अपने महाकाव्य में राष्ट्रीय भावना का समावेश किया क्योंकि देशवासियों को राष्ट्रीयता का पाठ पढ़ाना कवि अपना ध्येय मानता है। महाकाव्य में कवि ने कृष्ण को ऐसे सर्व जनहितकारी एवं लोक कल्याणकारी कार्य करते हुए अंकित किया है जहाँ हम उन्हें विश्व बन्धुत्व की साकार प्रतिमा के रूप में देख सकते हैं। सम्पूर्ण विश्व का दुःख दूर करने का प्रण लेते हैं।

कविवर ने प्रियप्रवास में आदर्श परिवार व समाज की परिकल्पना साकार की है। इस प्रकार कह सकते हैं कि कवि ने एक आदर्श महाकाव्य की रचना की है जिसमें सारे मूल्य भली प्रकार समाहित हैं।

शोध सन्दर्भ

1. इण्डियन कल्चर थ्रू दी एसेज, पृ0 362
2. डॉ द्वारका प्रसाद सक्सेना : प्रियप्रवास काव्य संस्कृति और दर्शन, पृ. 26
3. डॉ द्वारका प्रसाद सक्सेना प्रियप्रवास काव्य संस्कृति और दर्शन। पृ. 27
4. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' : प्रिय प्रवास, सर्ग–2 छन्दः 36–45

5. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' : प्रिय प्रवास, सर्ग–11 छन्दः 49–50
6. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' : प्रिय प्रवास, सर्ग–12 छन्दः 38–40
7. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' : प्रिय प्रवास, सर्ग–12 छन्दः 38–40
8. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' : प्रिय प्रवास, सर्ग–11 छन्दः 56–96
9. श्रीमद् भागवत पुराण दशम् स्कन्ध, अध्याय–12
10. प्रिय प्रवास सर्ग–13, छन्द–68–84
11. डॉ. द्वारका प्रसाद सक्सेना : प्रियप्रवास में काव्य संस्कृति और दर्शन, पृ. 122
12. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' : प्रियप्रवास, सर्ग–16–छन्द – 121
13. डॉ. द्वारका प्रसाद सक्सेना : प्रियप्रवास में काव्य संस्कृति और दर्शन पृ. 302
14. डॉ0 लालता प्रसाद सक्सेना : हिन्दी महाकाव्यों में मनोवैज्ञानिक तत्व भाग–1 पृ.: 374
15. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' : प्रिय प्रवास : सर्ग : 11, छन्द : 39–41
16. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' : प्रिय प्रवास : सर्ग : 3, छन्द 84–85
17. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' : प्रिय प्रवास : सर्ग : 3, छन्द 114–115
18. डॉ. द्वारका प्रसाद सक्सेना : प्रियप्रवास काव्य संस्कृति और दर्शन। पृ. 74

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

भोजपुरी, भाषा वैभव एवं साहित्य का अनुशीलन

डॉ0 रवीन्द्रनाथ यादव
कार्यवाहक प्राचार्य एवं प्रवक्ता हिन्दी
दयानन्द दनकू परागा ज्ञान उदय महाविद्यालय, मुरलीपुर, घाटमपुर, कानपुर

भोजपुरी मुख्यतः पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं बिहार के भोजपुर क्षेत्र के आस–पास बोली जाने वाली भाषा है। वर्तमान काल में इसका स्वरूप पूर्ण विस्तृत है। अनेक बार यह भी प्रश्न उठता है कि भोजपुरी भाषा है या बोली? विद्वानों के मतानुसार जिसके माध्यम से मनुष्य अपने विचारों का आदान प्रदान करता है उसे भाषा कहते है। भोजपुरी किसी छोटे से स्थान विशेष या जिला विशेष की बोली नही है, बल्कि अनेक प्रान्तों में बॅटे अनेक जिलों की लगभग अरबो जनता द्वारा बोली जाने वाली भाषा है। इसमें समृद्ध लोक–साहित्य के साथ ही साथ सांस्कृतिक साहित्य भी है, भोजपुरी मे भी व्याकरण के स्वाभाविक नियम है। उसकी लोकोक्तियॉ, शब्द–वैभव, मुहावरे, आदर सूचक एवं पारिभाषिक शब्द, अभिव्यक्तियों के तरीके आदि ऐसे अनोखे एवं शक्तिशाली शब्द है कि उनकी उपेक्षा नही की जा सकती है। इस दिशा मे वह अपनी अन्य भगिनी–भाषाओ से अनूठी है। उसके बोलने वालो की सांस्कृतिक एकता, पौरूष, वीर–प्रकृति, आयुधजीवी स्वभाव की विशेषता आदि, आज से ही नही पच्चीस सौ वर्षों के ऐतिहासिक प्रमाणों द्वारा सिद्ध है। ऐसी दशा में भोजपुरी के गुणों को न जानने के कारण यदि उसे कोई बोली कहे तो यह सर्वथा अनुचित है।

वर्तमान काल में भोजपुरी साहित्य तेजी से सर्जन की दिशा में आगे बढ़ रहा है। इस भाषा को बोलने वालो के हृदय में इसके प्रति इतना अधिक प्रेम है कि उसके साहित्यिक विकास में किसी प्रकार का सन्देह नही किया जा सकता है। भोजपुरी भाषा का क्षेत्र पचास हजार वर्ग मील में फैला हुआ है।

भोजपुरी को भाषा न मानने वाले उसके विपक्ष में यही तर्क देते हैं कि उसमें साहित्य का अभाव है और इसमे व्याकरण नही है। यह कहना गलत है कि भोजपुरी मे साहित्य का अभाव है। भोजपुरी का साहित्य आज से ही नही प्राचीन काल के सिद्ध–काल से ही निर्मित होता आ रहा है। सिद्ध साहित्य की भाषा में भोजपुरी के अंश मिले हुए है। यह बात अवश्य है कि इनके कंठ निहित साहित्य को लिखित रूप देकर विद्वानों के समक्ष लाने का प्रयास नही किया गया। बहुत पहले से ही भोजपुरी की छोटी–छोटी पुस्तको की रचनाएं होती रही है। कोलकाता और बनारस मे अनेक ऐसे ही प्रेस है जो इन्ही पुस्तकों को प्रकाशित कर समृद्ध हुए। व्याकरण के अभाव के कारण किसी भाषा के सत्ता पर सन्देह नही किया जा सकता। वस्तुतः भाषा पहले है व्याकरण बाद में आता है। व्याकरण के न होने से किसी भी भाषा के अस्तित्व में कोई प्रभाव नही पड़ता है।

भोजपुरी भाषा बोलने वाले लोगों के हृदय में भोजपुरी के साथ–साथ हिन्दी के प्रति भी अधिक अनुराग है। हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करने के लिए वे बहुत पहले से ही तैयार है। हिन्दी के विकास के लिए वे तन, मन, धन से तत्पर रहते हैं। लेकिन अन्य क्षेत्रीय भाषियों की भॉति वे राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास मार्ग पर कॉटे नही बिछाते हैं। वे हृदय से भारतीयता और राष्ट्रीयता के समर्थक है। किसी दूसरी भगिनी भाषा से उनको किसी प्रकार का द्वेष या विरोध नही हैं।

भोजपुरी भाषा का शब्द भण्डार बहुत व्यापक है। भोजपुरी भाषी को किसी भी विषय पर अपना विचार व्यक्त करते समय शब्दकोश का अभाव समझ में नही आता। भोजपुरी में किसी अन्य भाषा के शब्दों को ग्रहण कर उसका उच्चारण भोजपुरी ध्वनियों के अनुसार ही होता है। शिकार, लडाई, कुश्ती, अस्त्र शस्त्र कला कौशल, व्यवसाय,

यात्रा, गृहस्थी एवं पशु–पक्षी आदि के जीवन से सम्बन्ध रखने वाले अनेक विषयों के शब्दों से भोजपुरी का शब्द कोष परिपूर्ण है। पक्षियों एवं जानवरों के नाम, उनकी प्रत्येक भावभंगिमाओं एवं वस्तु विशेष के अनेक नाम भोजपुरी में है। यदि भोजपुरी का शब्द कोष तैयार किया जाय तो इससे हिन्दी के शब्दकोश की भी वृद्धि होगी। भोजपुरी में शब्दों की बहुलता बिहार के सन्त कवि बाबा धरनी दास की एक कविता में आये हुए शब्दों में भिन्न–2 अवस्था एवं रूप की गायों के लिए अलग–अलग नामों से देखा जा सकता है। गाय के विभिन्न रंग–रूप के लिए उनकी कविता में निम्नलिखित शब्द मिलते है– "बहिला" "बाछी" "बछरू" "गाभिन" "लाली" "गोली" "धबरी" "पिअरी" "कजरी" "सॅवरी" "कबरी" "टिकरी" "सिंगहरी" आदि। इसके अतिरिक्त अवस्था के अनुरूप भी गाय के अनेक नाम है–जैसे बिना व्याई गाय जो सॉड़ के पास ले जाने योग्य हो गयी हो उसे "कलोर" कहते है। गर्भाधान के तुरन्त बाद की गाय "बरदाई" कहलाती हैं। जो गाय समय पर बच्चा देने के पूर्व ही बच्चा गिरा देती है, उसे "लड़ाइल" कहते है, जो गाय दूध देती रहती है उसे धेनु कहते है। जो बहुत दिन की व्याई हो और बच्चे को बड़े होने तक दूध देती रहें उसे "बकेन" कहते है। चरते समय चरवाहे को परेशान करने वाली गाय को "हरही" कहते हैं।

संज्ञा के लिए भोजपुरी में थोडे–थोडे भेदो के साथ कई शब्द प्रचलित है। जैसे एक लाठी के अनेक प्रकार होते है और उनके लिए अनेक शब्द व्यवहार में लाये जाते है। उदाहरण के रूप में "लऊर" "लऊरि" "पटकन" "बोग" "गोजी" "बासमती" "लोहबाना" आदि । छोटी किन्तु मोटी आकार की लाठी के जिए "सोंटा" "ठेगा", "दुखहरन", "दुखभंजन" आदि शब्दो का प्रयोग किया जाता है।

भोजपुरी में एक ही क्रियापद के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग किया जाता है। जैसे कपडे धोने के लिए– "फीचना" "कचारना" खँघारना", "धोना", "मिचकारना" आदि। बर्तनों को साफ करने के लिए भी "माँजना", "खँघारना", "अमनिया करना", "धोना" आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार अन्न साफ करने के लिए "फटकना" "पँइचना" "हलोरना", "अँइटना" "झटकारना" आदि शब्द मिलते हैं पशु पक्षियो की बोली, भोजन, चाल, रहन–सहन, मैथुन–कर्म आदि के लिए भी अलग–अलग शब्दों का प्रयोग किया जाता है। भोजपुरी भाषा के शब्द कोश से हिन्दी और अधिक समृद्व होगी।

भोजपुरी भाषा की क्षमता मुहावरों के निर्माण और प्रयोग में विलक्षण है। डॉ0 उदय नारायण तिवारी द्वारा संगृहीत पाँच हजार भोजपुरी मुहावरो का प्रकाशन हो चुका हैं। इसके अतिरिक्त अनेक ऐसे मुहावरे है जिनका संग्रह एंव प्रकाशन होना अभी शेष है। भोजपुरी में अनेक ऐसे मुहाबरे है जिनके जोड के मुहावरे हिन्दी में नहीं है। भोजपुरी मुहावरों में दो–टूक बात व्यक्त करने की अद्भुत शक्ति है। भोजपुरियों के अक्खड स्वाभाव के कारण उनके अनेक मुहावरे कुछ अश्लील भी होते हैं, पर वे इतने ठेठ एवं ठोस होते है कि उनकी टक्कर का शिष्ट मुहावरा खोजना बहुत जटिल है। इनमें व्यंग की चुभन बड़ी तीखी होती है और हृदय पर गहरी चोट करती है। भोजपुरी के मुहावरा कोश से हिन्दी को भी बहुत सारे नये–नये मुहावरे मिल जायेगें।

वर्तमान काल में भोजपुरी कहावतों की निधि से पूर्णतः समृद्ध है। हिन्दी की समान्यतः सभी लोकोक्तियों के भोजपुरी रूप भी मिलतें है। इसके अतिरिक्त अन्य निकटवर्ती भाषाओं में कई कहावतों के भोजपुरी रूप भी पाये जाते है। भोजपुरी की एक विशेषता यह भी है कि यह अपनी इन पुरानी निधियों के अतिरिक्त युगधर्म परिस्थिति तथा सामयिक घटनाओं के आधार पर भी नित्य नई–नई कहावतों का निर्माण करती जाती है जिसका व्यापक प्रयोग भोजपुरी भाषा–क्षेत्र में सामूहिक रूप से होने लगता है।

भोजपुरी कहावतों के संग्रह की ओर उचित प्रयास नही हुआ है। सन् 1886 ई0 में, "हिन्दुस्तानी लोकोविक्त–कोष" नामक पुस्तक में, जिसे बनारस के लाला फकीरचन्द आदि ने निकाला था, उसके पृष्ठ दो सौ चौहत्तर से आगे भोजपुरी कहावतों का संग्रह है। डॉ0 उदय नारायण जी ने भी दो हजार भोजपुरी लोकोक्तियों को हिन्दुस्तान एकाडमी की "हिन्दुस्तानी" नामक पत्रिका में छपवाया था। भोजपुरी क्षेत्र में अनेक ऐसे व्यक्ति है जो प्रत्येक वाक्य

में एक न एक कहावत कहने की क्षमता रखते है। खेती, उत्सव, आनन्द, शोक, दवा–दारू, व्यवसाय, जानवरों की पहचान, लड़ाई, अध्यात्म, प्रेम, नीति आदि जितने लौकिक–अलौकिक व्यवहारिक विषय है, सबके सम्बन्ध में भोजपुरी कहावते प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। कहावतों के कुछ उदाहरण यहाँ दृष्टव्य हैं–

1. "गहि के धरी हर, ना ता आरी बइठी"

(स्वयं खेत जोतो, नही तो मेड़ पर भी बैठकर जोतवाओ, तभी अच्छी खेती होगी।)

2. "कइल के दाम गइल"

(पीत रंगमिश्रित धवल रंग के बैल शिथिल एवं आलसी होते है, इसलिए उनके खरीदने में खर्च की गई रकम बेकार जाती है।)

3. "सइ पूरा चरन नु एक हूरा चरन"

(सौ बार निहोरा–बिनती करने से जो है या नही भी हो सकता है, वह एक ही बार के लाठी के प्रभाव से हो जाता है।)

(लाठी का जो भाग जमीन में रखा जाता है उसे भोजपुरी में दूरा कहते है।)

4. "जो न दे सोना, से दे खेत के कोना"

(जो धन सोने से भी नही मिलता है, वह खेत के एक कोने से मिलता है।)

भोजपुरी कहावतों की भाँति पहेलियों के लिए भी बहुत प्रसिद्ध है। पहेलियों को भोजपुरी में "बुझौवल" कहते है संस्कृत भाषा में पहेली का जो भेद–निरूपण आचार्यों ने किया है, उसके अनुसार यदि भोजपुरी बुझौवलों की परीक्षा की जाय तो सभी भेदों के उदाहरण उसमें मिल जायेगें। बिहार के सन्त कवि धरनी दास के "शब्द प्रकाश" में भी "पेहानी–प्रसंग" शीर्षक के अन्तर्गत अध्यात्म–पक्ष सम्बन्धी भोजपुरी पहेलियाँ मिलती है। डॉ0 उदय नारायण तिवारी ने अक्टूबर, दिसम्बर 1942 ई0 की हिन्दुस्तानी पत्रिका (अंक चार और बारह) में प्रचुर संख्या में भोजपुरी पहेलियों का संग्रह प्रकाशित कराया था। भोजपुरी में पहेली की निधियाँ छिपी हुई हैं। इनके कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं –

एक ब्राह्मण राही कुएँ के पास बैठकर सत्तू खा रहा था। गाँव की एक पनिहारिन पानी भर कर घड़ा उठाने लगी। इतने में ब्राह्मण ने कहा–

(क) जेकर सोरि पताले खीले, आसमान में पारे अंडा।
ई बुझौलिया बूझि के, तअ गोरी उठावअ हंडा।।

अर्थात– जिसकी जड़ पाताल में पैठी हो और जो आसमान में अण्डे देता है। वह क्या है। हे गोरी इसका उत्तर देकर घड़ा उठाओं।

इस पर पनिहारिन ने प्रश्न के रूप में उत्तर देकर दूसरी पहेली की सुनाई।

(ख) बाप के नाँव से पूत के नाँव, नाती के नाँव किछु अवर।
ई बुझौवल बूझि के तअ, पाँडे उठावअ कवर।।

इस पहेली को सुनकर पास खड़ा तीसरा व्यक्ति पहेली के द्वारा दोनों का उत्तर इस प्रकार देता है–

(ग) जे के खाइ के हाथी माते तेली लगावे घानी ।
ऐ पाँडे तू कवर उठावअ गोरी उठावसु पानी ।।

इन तीनो पहेलियों का अर्थ महुआ है। पेड़ और फूल दोनो का नाम एक ही है किन्तु फल का नाम भोजपुरी में कोइन है जिसको पेर कर तेली तेल निकालता है, और फूल को खाकर हाथी मतवाला हो जाता है। महुएँ के फल की शराब भी बनती है।

भोजपुरी में कहानी साहित्य का बहुत प्रचलन है। इसको हम दो कोटियो में बांट सकते है – (1) लोक कहानी और (2) सांस्कृतिक कहानी लोक कहानियों में भी सांस्कृतिक कहानियों का समावेश हुआ है। वे जन कण्ठों में बसकर इतना घुल–मिल गयी है। कि वे अपने मूलरूप के ढाँचे को बनाये रखने पर शैली की दृष्टि से काफी परिवर्तन हो गया है। जो सांस्कृतिक कहानियाँ धर्म–ग्रन्थों, संस्कृत के कथा ग्रन्थों एवं पाली के जातकों पर आधारित होकर जनकण्ठों में व्याप्त हो गयी है, उनका वर्गीकरण करना एवं इतिहास ढूँढना यद्यपि बहुत कठिन काम है, फिर भी यदि प्रयत्न किया जाय तो बहुत कुछ सफलता इस दिशा में मिल सकती है। जनकंठों में बसी कुछ कहानियाँ इतनी प्राचीन हैं कि उनकी किसी अन्य भाषा की कहानियों से तुलना करने पर उनमें केन्द्रीय एकता मिलती है, जिसके कारण स्पष्टतः उन्हें दो नही बल्कि किसी एक ही मूल कहानी के रूपान्तर मात्र कहना उचित होता।

वृद्ध लोगो के द्वारा "मित्रलाभ", "काक", श्रृगाल और मृग नामक कहानियाँ सुनने को मिलती है, जो भोजपुरी भाषा में है, तथा इनके अन्त में भोजपुरी का यह पद्य था –

सिअरा सिवराति करें, काटे ना पारही।
इअरन में छल करे, बाजे कुल्हारी।।

"सिद्ध जातक" की कहानी जो पाली भाषा की है, वह भोजपुरी में "ठठपाल" की कहानी के नाम से मिलती है। उस कहानी के अन्त में यह पद्य है–

बिनिया करत लछिमिनियाँ के देखली, हर जोतत धनपाल।
खटिया चढ़ल हम अम्मर के देखलीं, सभसे नीमन ठठपाल।।

कहानी का सारांश यह है कि "ठठपाल" ने अपने गुरू से अपना नाम बदलने को कहा था। गुरू ने उससे कहा कि व्यक्ति के गुण और भाग्य अच्छा होना चाहिए नाम से कुछ नही होता। ठठपाल के हठ करने पर गुरू ने कहा जाओ कुछ लोगो के नाम पूँछ कर आओ। ठठपाल आगे बढा तो गोबर के कंडे बिनने वाली का नाम "लछिमिनिया" और हल जोतने वाले का नाम "धनपाल" तथा मरे हुए आदमी का नाम "अमर" सुना। इसी पर "ठठपाल" ने आग्रह छोड़कर गुरू से जाकर उपर्युक्त पद्य कहा।

मैना पक्षी की कहानी भोजपुरी की पद्यमय कहानी है। इसके अतिरिक्त भोजपुरी में अनके गद्य–पद्यमय कहानियाँ है। भोजपुरी कहानियों की सबसे बडी विशेषता यह है कि वह गद्य एवं पद्य दोनों विद्याओं में है। भोजपुरी कहानियों में प्रेम, करुणा, व्यापार, युद्ध, बुद्धि–चातुर्य, साहस, देश विदेश यात्रा और बहादुरी की अधिकता मिलती हैं किन्तु भोजपुरी का यह लोक–कथा साहित्य केवल जन–कंठ में ही बसा है। यदि वह मुद्रित रूप में होती तो किसी भी भाषा के कथा साहित्य से कम आकर्षक एवं समृद्ध न होती।

भोजपुरी के गद्य का इतिहास पद्य से प्राचीन है। किसी भी भाषा में पहले गद्य का ही जन्म होता है। जब गद्य प्रौढ़ हो जाता है, तब पद्य चलता है। यह बात दूसरी है कि गद्य में साहित्य लिखने की परम्परा कम थी। इसलिए उसका सांस्कृतिक विकास पद्य के समान समझ में नही आता हैं भोजपुरी गद्य का सबसे प्रचीन एवं अकाट्य प्रमाण वाला लिखित रूप "भारतीय विद्या मन्दिर" (मुम्बई) के संचालक श्री जिन विजय जी के यहाँ प्राप्त बारहवी सदी के लिखे हुए व्याकरण – ग्रन्थ "युक्ति – व्यक्ति – प्रकरण" में मिलता है।

सन् 1620 ई0 के बाद भोजपुरी के गद्य रूप लिखित रूप में मिलने लगे। शाहाबाद के "परमार उज्जैन" राजाओ द्वारा विभिन्न अवसरों पर निकाली गई राजाज्ञाओं सनदों, पत्रो और दस्तावेजो में सदा भोजपुरी व्यवहार में लायी गयी है। इन सबके वैज्ञानिक अध्ययन से भोजपुरी गद्य का इतिहास उसके विविध समय के प्रयोगो के साथ सुन्दर रूप में लिखा जा सकता है। उस समय का कोई भी राजकीय अभिलेख ऐसा नही प्राप्त हुआ है, जिसमें भोजपुरी का विशुद्ध प्रयोग न किया गया हो।

भोजपुंरी काव्य साहित्य का भण्डार भी बहुत बड़ा हैं जिस भाषा को अरबों स्त्री – पुरुष तेरह–चौदह सौ

वर्षों से भी अधिक समय से अपनी मातृभाषा के रूप में बोलते आ रहे हों, उस भाषा का अपना साहित्य न हो यह कल्पना करना ही भ्रान्तिमूलक है। भोजपुरी साहित्य का जैस–जैसे खोज होता जाता है, वैसे–वैसे उसकी निधियाँ आम जनता के समक्ष आती जा रही है। सर्व प्रथम अंग्रेजी वैज्ञानिको का ध्यान भोजपुरी भाषा एवं उसके साहित्यिक खोज की ओर गया। उन्होने लोक गीत तथा वीर गाथा गीतों का संचित संकलन कभी–कभी पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित किया। ग्रियर्सन साहब ने अपनी गहरी खोज के फलस्वरूप भोजपुरी साहित्य का विवरण प्रकाशित किया। इसके पश्चात् कुछ भारतीय अन्वेषकों की रूचि अंग्रेजों द्वारा दिखाये गये मार्ग पर बढ़ी। कुछ विशेषताओ के साथ ग्राम–गीतों का पुस्तकाकार संकलन आरम्भ किया। इस दिशा में दो प्रामाणिक पुस्तके हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से सन् 1944 ई0 में "भोजपुरी लोक गीत में करुण रस" तथा उसके बाद "भोजपुरी ग्राम–गीत" (भाग 1 और 2) नाम से प्रकाशित हुई। पं0 राम नरेश त्रिपाठी ने भी भोजपुरी ग्राम–गीतो का संग्रह और प्रकाशन करने में अभिनन्दनीय प्रयत्न किया है।

भोजपुरी भाषा एवं भाषियों की उपयोगिता के सम्बन्ध में सर जी0ए0 ग्रियर्सन द्वारा अपनी पुस्तक "लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया" में कहा गया हैं– "भोजपुरी उस शक्तिशाली स्फूर्तिपूर्ण और उत्साही जाति की व्यवहारिक भाषा है, जो परिस्थिति और समय के अनुकूल अपने को बनाने के लिए सदा प्रस्तुत रहती है और जिसका प्रभाव हिन्दुस्तान के हर भाग पर पडा है। हिन्दुस्तान में सभ्यता फैलाने का श्रेय बंगालियों और भोजपुरियों को ही प्राप्त है। इस काम में बंगालियों ने अपनी कलम से काम लिया और भोजपुरियों ने अपनी लाठी से।"

अतः हम कह सकते है कि भोजपुरी अपनी प्रासांगिकता एवं भाषा वैभव के कारण आज अपना स्थान स्थापित करने में पूर्ण रूप से सफल है। इसमें छोटे बडे लोगों के लिए स्नेह और आदर के अनेक सम्बोधन है। इसके अतिरिक्त संज्ञा एवं विशेषण के शब्दों को क्रिया के रूप में परिवर्तित करने की पूर्ण सुगमता है। भोजपुरी भाषा की सरसता एवं सहजता उसको न बोलने वाले लोगों को भी अपनी ओर आकर्षित करती रहती है। भोजपुरी भाषियों की संख्या में दिन प्रतिदिन वृद्धि के साथ ही भोजपुरी के साहित्य भी अपने भाषा वैभव के आकर्षण के बल पर साहित्य जगत में दस्तक दे रहें है।

संदर्भ सूची

1. आधुनिक भोजपुरी लोकगीत एंव परम्परा – राहगीर
2. भोजपुरी लोकगीत भाग– 2 – डा0 कृष्णदेव उपाध्याय
3. भोजपुरी के कवि एवं काव्य – दुर्गा प्रसाद सिह
4. लोक साहित्य – द्विजराम यादव

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कविता और भाषा–कुँवर नारायण

डॉ0 आराधना सारवान
व्याख्याता हिन्दी
राज0 शा0 संस्कृत महाविद्यालय, अलवर (राजस्थान)

हिन्दी के अग्रणी कवि कुँवर नारायण अपनी कविताओं में भाव–संवेदन और विचार के बीच एक अद्भुत सन्तुलन साधते दिखते हैं, जिसमें उनकी भाषा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अर्थात भाषा और भाव दोंनों स्तरों पर कवि की कविताएँ पाठकों को एक नवीन दृष्टि और भाव लोक से परिचित करवाती है। कुँवर नारायण अपनी आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति में पाठक को कभी विस्मृत नहीं करते। वह उसे सम्बोधित करते चलते हैं, जो उनकी कविता को पाठक से न केवल जोड़ती है बल्कि उसके सामने एक विमर्श रखती है। कुँवर नारायण की कविता में इतिहास और सांस्कृतिक चेतना, नवीन अर्थों और रूपकों में प्रयुक्त हो जीवन को अधिक समृद्ध बनाने के रूप में दिखती है। यहाँ व्यष्टि और समिष्टि एक दूसरे के पूर्वक के रूप में आते है विरोधी के रूप में नहीं।

इन कुछ तथ्यों के आधार पर यदि हम चक्रव्यूह संकलन में संकलित कुँवर नारायण की कविताओं का अनुशीलन करें जो कि इनका पहला काव्य संग्रह है, चक्रव्यूह में कवि की व्यापक एवं गहन जीवन दृष्टि का परिचय मिलता है। वहाँ जीवन में व्याप्त प्रेम, गहन वेदना, शून्यता, जीवन के प्रति विश्वास, मानव–मानव के बीच शोषण से उत्पन्न हुई खाई, जीवन संघर्ष के लिये तत्परता और कटिबद्धता इन कविताओं में देखी जा सकती है। तमाम विडम्बनाओं के बावजूद कवि नवीनता की आशा रखता है वह जीवन की निरन्तरता और मानवीय स्वतंत्रता का पक्षधर है। पग–पग पर संघर्षरत जीवन में भी वह बुद्धि–ज्ञान, धैर्य–प्यार की आशा से युक्त है।

इसी संग्रह की कविता ''माध्यम'' पर एक दृष्टि डाले तो हम पायेंगें कि यहॉ भाषा और भावों को अलग करके नहीं देखा जा सकता जबकि कवि बात ही भाषा की करता है, कविता के माध्यम से। यहाँ कवि भाषा के माध्यम से व्यष्टि को समष्टि से तथा अतीत से वर्तमान को जोड़कर, नवीन सम्भावनाओं की ओर अग्रसर होने का एक विमर्श सामने रखता है। इस क्रम को आगे बढ़ाने का कार्य अपने पाठको के हाथों में सौंप देता है। इन अर्थो में यह कविता, भाषा और जीवन तथा दोनों के ही संदर्भ में एक व्यापक बिम्ब रचती नजर आती है। कविता की पहली पंक्ति ही विचार की एक व्यापक एवं शाश्वत दृष्टि हमें प्रदान करती हैः–

''वस्तु और वस्तु के बीच भाषा है
जो हमें अलग करती है''

भाषा ही जीवन के तमाम संदर्भो, विचारों और भावों के स्तर पर व्यक्ति को व्यक्ति से अलग करती है। या कहें कि बिना भाषा के हम सब एक से ही प्रतीत होगें। भाषा के द्वारा ही एक व्यक्ति के वैचारिक संसार और उसके जीवन दर्शन को समझा जा सकता है। इसी आधार पर वह दूसरे से भिन्नता भी रखता है। वहीं मौन अथवा भाषा के अभाव में किसी भी प्रकार के भाव और विचारों की अभिव्यिक्ति सम्भव नहीं है। यही नहीं, भाषा के आधार पर सम्पूर्ण संसार अनेकानेक टुकड़ो में बँटा हुआ है। निश्चित रूप से भाषा के छूटते ही व्यष्टि एक समष्टि चेतना में परिवर्वित हो जाती है। अर्थात वह भाषा ही है जो मनुष्य को मनुष्य से विचार के स्तर पर भिन्नता प्रदान करती है। भाषा के अभाव में सभी मनुष्य एक अखण्ड सत्ता के अंश बन जाते है।

अंसख्य सपनों का भार ढोने वाली दृष्टि भी कवि भाषा के माध्यम से ही पाता है। कई बार कवि अपनी असन्तुष्ट चेतना की अभिव्यक्ति में भाषा से संघर्षरत और विद्रोह करता दिखाई देता है। इसके उपरान्त अपने

छिन्न–भिन्न हुए मन से पुनः भाषा को नये संस्कार देकर, जीवन को नवीन अर्थ देता है।

स्पष्ट है कि अनुभूति से अभिव्यक्ति के बीच कवि संघर्ष की स्थिति से गुजरता है लेकिन संघर्ष शक्ति से चूकता नही है। जीवन में पुनरावृति, ठहराव एवं एकरसता जीवन को ऊबाउ और मलिन करती इसलिए लेखक इनका पक्षधर नहीं है।

'चाँद और सूनी.....सीमा रेखाऐं हैं।' पंक्तियों के माध्यम से कवि उन तमाम परम्परागत उपमानों और प्रतीकों की ओर संकेत करता है जो समय के साथ जर्जर, प्रभाहीन और अर्थहीन हो गये हैं। उन सीमा रेखाओं के बावजूद कवि पाठक का ध्यान उस आन्तरिक प्रकाश की ओर ले जाता है जो कविता को नये अर्थों से भरती है। कवि आश्वस्त करता है कि मैं न केवल अपने आवेश में संसार के कटु यथार्थ को दिखाता हूँ अपितु मानव अस्तित्व को नये अर्थ में भी प्रकाशित कर सकने की क्षमता से युक्त हूँ।

कवि अपने काव्य में निहित अप्रत्यक्ष भावों और विचारों से पाठक को अपना नया संसार रचने के लिए प्रेरित करता है। कला में निहित पूर्वाग्रहों से ऊपर उठकर कवि, कला को नया आकार देने की बात करता है। वह संसार से नए सृजन की आशा रखता है अपितु कवि की कुछ नया रचने की पीड़ा भी यहाँ दिखाई पड़ती है।

'क्यों कि यही एक माध्यम है जो सदा अक्षुण है'

इस पंक्ति के माध्यम से कवि कला की सार्थकता भी रचता है। भाषा के द्वारा कविता प्रकाशित होती है और कविता ही, वह माध्यम है, जो सदैव अक्षुण है। एवं निरन्तर प्रवाहमान है, क्यों कि कविता के माध्यम से ही उन तमाम सूक्ष्म और विरल भावानुभूतियों को आगे बढाया जा सकता है, जो अन्य माध्यमों द्वारा सम्भव नहीं है। अतः जहां कवि को, भाषा को संस्कारित और समृद्ध करने की आवश्यकता है। वहीं पाठक को भी भाषा की समझ को बढ़ाना होगा।

इस प्रकार भाषा और कविता मनुष्य को सम्पूर्ण जीवन और जगत से जोड़ने का माध्यम है। और इसी कविता के माध्यम से मनुष्य उन तमाम सम्भावनाओं तक पहुँच सकता है जहाँ वह अब तक नहीं पहुँच पाया है।

कुँवर नारायण को लेकर आलोचकों और पाठकों में जो पूर्वाग्रह देखा जाता है कि उनकी कविता क्लिष्ठ और दुरूह है कदाचित इसका उत्तर कवि यहां देता नजर आता है कि शब्दों से घनिष्ठता बढ़ा कर हम शब्दों के अस्पष्ट अर्थों को छू सकते है तभी पाठक उस अदेय को समझ पायेगा जिसे वो अब तक नहीं प्राप्त कर सका है।

कवि कला के माध्यम से शाश्वत आनन्द की तरफ बढ़ने की बात करता है तथा इस मानव सृष्टि को अपने विकास के प्रारम्भिक चरण में मानते हुए मानव सृष्टि को उसके स्वप्नों तक पहुचाने की इच्छा व्यक्त करता है। मानवता की अवधारणा को कवि उसके बालरूप में देखता है। इस प्रकार कवि मानवता, सौन्दर्य, सहज, औदात्य, मधुरता और शान्ति की स्थापना की इच्छा प्रकट करता है। कवि पाठक को सम्बोधित करते हुए न केवल अपनी समावेशी दृष्टि का परिचय देता है बल्कि वह अपनी कविता को पूरी ही तब मानता है जब पाठक उसे पूरी तरह अपना ले तब ही पाठक कविता में निहित स्वयं की कल्पनाओं से साक्षात्कार कर सकेगा और जीवन की अनेकानेक सम्भावनों के संकेत ग्रहण कर पायेगा।

इस अर्थ में कोई कविता तभी पूर्ण हो सकती है जबकि वह कवि की अभिव्यक्ति से गुजर कर पाठक की अनुभूति का उन्हीं अर्थो में अंग ना हो जाए जिन अर्थो में लेखक उन्हें कहना चाहता है निश्चित रूप से कविता कवि और पाठक के बीच वह कड़ी है। जो विचारों, भावों, संवेदनाओं, सपनों और भावोद्वेलनों को पाठक तक पहुँचाता है।

इस प्रकार यह कविता न केवल भाव और विचारों के आधार पर एक व्यापक फलक रचती है। अपितु अपनी भाषा और शिल्प में भी अद्भुत है। कवि का शब्द–चयन सार्थक और नवीन अर्थों को संप्रेषित करता हैं। हिन्दी भाषा का अद्भुत सामर्थ्य यहां पाठक को चमत्कृत करता है। जो उनके भाषा पर अधिकार को दर्शाता है। ''संदर्भ,

मिथकों, किंवदन्तियों या ऐतिहासिक व्यक्तियों का हो चाहे आस–पास के पर्यवेक्षण का कुँवर नारायण भाषा के संतुलन को हाथ से छूटने नहीं देते'' पुरुषोत्तम अग्रवाल का यह कथन उनकी भाषा के महत्व को रेखांकित करता है।

समष्टि और व्यष्टि बिम्बों की व्यापक श्रृंखला उनकी कविता की विशेषता है। व्यापक संदर्भो के कारण कहीं–कहीं बिम्ब संश्लिष्ट हो जाते हैं।

''चांद और सूनी रातों का बूढ़ा कंकाल,
कुछ मुर्दा लकीरें
कुछ गिनी चुनी तस्वीरे''

के माध्यम से परम्परागत, प्रभावहीन उपमान और प्रतीकों के लिए सार्थक और नवीन उपमान चुनते है। नवीन और गहन अर्थाभिव्यक्ति में सहायक इन उपमानों और प्रतीकों को सर्वत्र देखा जा सकता है–

''दुध मुँही नई–नई संस्कृति
बाल–मानवता,
पूजा की दूब–सी''

'माध्यम' चक्रव्यूह काव्य संग्रह की प्रथम कविता है। जिसे चक्रव्यूह काव्य संग्रह में निहित कवि दृष्टि के रूप में भी निश्चित रूप से देखा जा सकता है। जहॉ कवि अपनी कविता की सीमाओं और साम्यर्थ को इंगित करता है। वहीं इस माध्यम द्वारा मानव, मानवता की जिस अवधारणा तक पहुंच सकता है, उसकी ओर भी संकेत करता है किन्तु उसके लिए कवि पाठक से भी कुछ अपेक्षाऐ रखता है। उन्हें पूरा करके ही सुधी पाठक सम्भावनाओं के उस संसार को प्राप्त कर सकता है।

निःसंदेह कुँवर नारायण की कविता गहन, व्यापक जीवन संदर्भो को रेखांकित करने के कारण कई–कई पाठों की मांग करती है जो कि कविता के सामर्थ्य को दर्शाता है न की दुरूहता को। साथ ही एक विशिष्ट और व्यापक दृष्टि की मांग भी करती है। जो सतत अध्ययन और साहित्य के अनुशीलन से प्राप्त होती है। जो अभी के पाठकों में कम होती जा रही है। कुँवर नारायण की कविता अद्‌भुत भाव लोक का साक्षात्कार करवाती है। वह वर्तमान से मुटभेड़ की शक्ति देने के साथ ही पाठकों को अपने सपनों से भी मिलवाती है।

❑❑

प्रेम और कर्त्तव्यबोध की समरगाथा : 'उसने कहा था'

प्रो. हितेंद्र मिश्र
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलंगा, मेघालय

'उसने कहा था' हिंदी की एक महत्त्वपूर्ण कहानी है। हिंदी कहानी के विकासयात्रा में कहानी जब अपने पैरों पर खड़ी हो रही थी, ऐसे समय में इस कहानी के मजबूत और महत्त्वपूर्ण कथ्य और स्थापत्य ने हिंदी पाठकों और लेखकों को अपनी ओर आकृष्ट किया। बल्कि यह भी कह सकते हैं कि अंग्रेजी कहानी के सम्मुख हिंदी कहानी को जबाबी रूप में तैयार किया। 'उसने कहा था' कहानी का प्रकाशन 'सरस्वती' पत्रिका में जून, 1915 ई. में हुआ था। निश्चित रूप से कहानी का लेखन उसके पूर्व सन् 1914 ई. के अंत या 1915 ई. के प्रारंभ में अनुमानित किया जा सकता है। कहानी के विकास के वैश्विक संदर्भ को देखा जाय तो इस कहानी के अधिक नहीं लगभग दस से बीस वर्ष पूर्व ही अंग्रेजी की महत्त्वपूर्ण कहानियॉ प्रकाश में आयी थीं। यह वह समय है जब हिंदी में कहानियॉ अभी निर्माण की प्रक्रिया से गुजर रहीं थीं। हिंदी कहानी के सिरमौर लेखक प्रेमचंद और प्रसाद की कोई इस स्तर की कहानी अभी सामने नहीं आई थी। इस समय की कहानियॉ अभी ग्राम, सौत और पंचपरमेश्वर के पड़ाव पर पहुॅची हुई थीं। 'उसने कहा था' कहानी के पूर्व स्वयं अभी गुलेरी जी ने भी सुखमय जीवन (1911) और बुद्धू का कांटा (1914) जैसी कहानियॉ ही लिखी थी जो आलोच्य कहानी से काफी पीछे थी। इसलिए कहानी के ऐसे दौर में 'उसने कहा था' जैसी कहानी एक सुखद आश्चर्य को जन्म देती है। मधुकरी की भूमिका में पं. विनोद शंकर व्यास लिखते हैं कि ''...1915 ई. में उसने कहा था कहानी विद्वानों को चकित कर दिया ... हिंदी कहानी में आजतक इसके जोड़ की दूसरी कहानी नहीं निकली... इस कहानी का शीर्षक ही बहुत आकर्षक है। हिंदी में पहली वास्तविक कहानी है। इस कहानी के सब अंग वर्तमान में हैं जो इस कहानी को पढ़ेगा वह जीवनभर इसे भूल नहीं पाएगा।''

हिंदी कहानी के विकास के इतिहास पक्ष को दृष्टिगत रखते हुए कह सकते हैं कि 'उसने कहा था' हिंदी कहानी कावह प्रवेश द्वार है जहॉ से हिंदी कहानी में सशक्त कहानियॉ प्रस्तुत होती हैं। इस कहानी ने हिंदी कहानी को एक मजबूत नींव प्रदान की जिस पर आगे चलकर हिंदी कहानी का मजबूत महल खड़ा हो सका। कथ्य एवं शिल्प दोनों ही स्तर पर यह कहानी हिंदी साहित्य जगत को चौंकाती है। हिंदी के प्रमुख आलोचक डॉ. नगेंद्र इसे अपने समय से पैंतीस–छत्तीस वर्ष आगे की कहानी कहते हैं। अर्थात् नगेन्द्र जी अनुसार सन् 1940 ई. के आस–पास के हिंदी कहानी के स्तर की कहानी 1915 में प्रकाश में आई। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो इसे प्रेमचंद के श्रेष्ठतम् के आगे की कहानी कहना चाहते हैं नगेन्द्र जी। प्रेमचंद हिंदी कहानी के अगली पंक्ति के रचनाकार हैं। कौन आगे या कौन पीछे के विवाद से आगे बढ़कर 'उसने कहा था' कहानी पर विचार किया जाय तो किसी अध्येता को इस पर कोई ऐतराज नहीं होना चाहिए कि 'उसने कहा था' हिंदी की श्रेष्ठतम् कहानियों में से एक है। कतिपय अध्येताओं की नजर में यह हिंदी की पहली आधुनिक कहानी भी है।

इस प्रकार देखा जाय तो इन तमाम विशेषताओं के साथ यह कहानी सर्वप्रथम तो अपने शीर्षक से ही लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती है। डॉ. नामवर सिंह ने 'पक्षधर' पत्रिका में अपने 'सौ साल की एक कहानी' शीर्षक लेख में लिखा है कि ''मैंने हिंदी कहानियों का ऐसा चुम्बकीय शीर्षक बहुत कम देखा है।'' 'उसने कहा था' कहानी का शीर्षक पाठक को अपनी ओर आकृष्ट करता है। आकर्षण के क्रम में प्रारंभ में यह शीर्षक पाठक के मन में तीन प्रश्न खड़ा करता है कि 'उसने कहा था' कहानी में किसने कहा था, क्या कहा था और कब कहा था? कहानी का विकास हमारे जीवन के जिन मार्गों से हुआ उसमें औत्सुक्य सबसे महत्त्वपूर्ण है। यहॉ कहानी के क्षेत्र

में औत्सुक्य से तात्पर्य कहानी सुनने की उत्सुकता से है। कहानी निबंध नहीं है जो लिखा और पढ़ा जाय। मैं अगर अपनी पीढ़ी तक कहूँ तो प्रत्येक व्यक्ति का बचपन टेलीविजन के धारावाहिक देखकर नहीं बल्कि किस्से–कहानी सुनकर ही विकसित हुआ है। यद्यपि प्रस्तुत कहानी किस्से–कहानी के परंपरा की कहानी नहीं है तथापि कहानी के विकास में इस सुनने और सुनाने की परंपरा का महत्त्वपूर्ण योगदान है। कहानी के सुनने और सुनाने की परंपरा में औत्सुक्य ही वह तत्त्व है जो कहानी सुनने वाले को बाँधे रखता है और यदि उसमें यह औत्सुक्य नहीं हैं तो कहानी का जीवट ही कमजोर हो जाता है। प्रस्तुत कहानी में कथात्मकता का गुण विद्यमान है। कहानी का संबंध सर्वदा जीवन के अतीत और वर्तमान से होता है। जो अपने गुण–धर्म के कारण प्रत्येक समय में प्रासंगिक होता है। 'उसने कहा था' कहानी के इस गुण–धर्म को अपने भीतर समोये हुए है। कहानी का वर्तमान युद्ध का मैदान है जहाँ लहना सिंह के कर्त्तव्यबोध की परीक्षा है तो उसके संस्कार अतीत में जो उसे उसके कर्त्तव्यबोध से डिगने नहीं देते।

कहानी प्रारंभ होती है परिचयात्मक रूप से और जिज्ञासा शांति तथा समर क्षेत्र में कर्त्तव्य के संपूर्ण निर्वाह के साथ संपन्न होती है। अमृतसर के एक बाजार से जहाँ के लोगो का परिचय वहाँ की बोली–बानी से कराता हुआ कहानीकार एक दुकान पर बारह वर्ष के एक लड़के को आठ वर्ष की एक लड़की से मिलाता है। दोनो पंजाब के अलग–अलग गाँवों के हैं लेकिन छुट्टियों में अपने मामा के घर आए हुए हैं और बम्बू कार्ट की मीठी बोली के मरहम के बीच पलने वाले शहर के एक दूकान पर मिलते हैं। हमारे समाज में छुट्टियों में मामा और फूफा के घर जाने की प्रचलन कोई नई बात नहीं है, यह हमारी परंपरा में सदियों से मिलता रहा है। इसी क्रम में वह लड़का और लड़की दोनों अपने–अपने मामा के घर आये हुए हैं और अपने–अपने घरों के लिए जरूरी सामान लेने दूकान पर गये हुए हैं। कहानी की स्वाभाविकता देखिए, लड़का है तो मामा के बाल धोने के लिए दही लेने गया है और लड़की है तो रसोई के लिए बड़ी लेने। पहली ही मुलाकात में इनका परिचय हो जाता है। आये दिन कुछ न कुछ खरीदने के लिए दुकान पर मिलते रहते हैं। इसी मिलने–जुलने के क्रम में दोनों का परिचय आकर्षण में बदल जाता है। आकर्षण के बढ़ते क्रम में लड़का प्रायः लड़की से एक प्रश्न करता है कि 'तेरी कुड़ीमाई हो गई'। और लड़की का एक ही उत्तर कि नहीं। प्रश्न और उत्तर का सिलसिला तब थमता है जब एक दिन लड़की यह कहती है ''हॉ, हो गई। ''कब ?'' ''कल, देखते नहीं यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू।'' लड़के के लिए यह उत्तर अप्रत्याशित है। कहानी के दूसरे हिस्से में कहानीकार कुछ सूत्र देता है। ''सुनते ही लहना सिंह को दुःख हुआ। क्रोध हुआ। क्यों हुआ ?'' कहकर कहानीकार पाठक को समझने के लिए छोड़ देता है। यह सब कुछ प्रेम के कारण हुआ कहकर कहानीकार प्रेम के भारतीय औदार्य को हीन करना नहीं चाहता।

कहानी में पात्र परिचय के क्रम के बाद कथा युद्ध के मैदान में पहुँच जाती है। जहाँ लहनासिंह नाम का एक पात्र अपने सूबेदार और उसके लड़के बोधासिंह की रक्षा में अपने जान की बाजी लगा देता है। और कहता है मैने वह कर दिया जो ''उसने कहा था''। अपने जीवन के अंतिम समय में लहना का यह कथन और मृत्यु की दहलीज पर लहना के स्वप्न पाठक के औत्सुक्य को संतुष्ट करता है। लहना के स्वप्न कहानी के इस रहस्य को खोलते हैं कि किसने, क्या और कब कहा था। लहना अपने जान की बाजी लगाकर सूबेदार और बोधा की रक्षा करता है तो पता चलता है कि उससूबेदार की सूबेदारनी और बोधा की माँ वही है जो कभी छुटपन में अमृतसर में मिलती थी। और अब स्पष्ट होता है कि अमृतसर में मिलने वाला लड़का और लड़की ही लहनासिंह और सूबेदारनी है। अमृतसर से कोई पच्चीस वर्ष बाद लाम पर आते हुए लहनासिंह से सूबेदारनी उससे अपने आंचल फैलाकर भिक्षा मांगती है कि अब दोनों जाते हैं ! मेरे भाग ? तुम्हे याद है, एक दिन टांगे वाले का घोड़ा दही–वाले की दुकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे। आप घोड़े की लातों में चले गये थे और मुझे उठाकर दुकान के तख्त पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना, यही मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आंचल पसारती हूँ।'' कहानी शीर्षक में जो प्रश्न पाठक के सामने प्रारंभ में ही खड़ा करती है उसका समाधान अंत में करती

है। कहानी में प्रारंभ से अंत तक पाठक को बांधने की यह कला अद्‌भुत है।

'उसने कहा था' कहानी मुख्यतः तीन भागों में लिखी गई है। कहानी का पहला हिस्सा कहानी के कहन (कथन) की शुरूआत है। इसी अंश में प्रेम का अंकुरण पुष्ट होता है। दूसरा हिस्सा ही कहानी का वास्तविक कार्य क्षेत्र है। जिसमें कहानी के प्रारंभ का लड़का युद्ध के क्षेत्र का लहना सिंह है जो अपने कर्त्तव्य का निर्वाह अपनी जान को जोखिम में डालकर करता है। अपने सूबेदार हजारा सिंह और उसके पुत्र बोधा सिंह के जान की रक्षा अपनी जान की परवाह किए बिना करता है। बोधा के बीमार रहने पर वह उसका अपने पुत्र की भॉति खयाल रखता है। आप कड़ाके की ठण्ड सहते हुए उसे अपना कम्बल और जरसी ओढ़ा देता है। दुश्मन लपटन के साथ संघर्ष में लगे हुए अपने गंभीर चोट का अहसास वह अपने रेजिमेंट के किसी सिपाही को नहीं होने देता। लहनासिंह के जंधे में एक सामान्य किंतु पसली में गंभीर चोट है। वह अपने पसली के गंभीर चोट को छुपाकर बोधा और हजारा सिंह को अस्पताल भेज देता है और आप अपनी ड्‌यूटी पर जमा रहता है।ऐसा वह क्यों कर रहा है इसकी इस कर्त्तव्य निर्वाह का वह पहली बार वह रहस्योद्‌घाटन करता है जब कहता है कि ''सूबेदारनी को चिट्‌ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख देना। और जब घर जाओ, तो कह देना कि उन्होंने मुझसे जो कहा था, वह मैने कर दिया।'' पाठक को पहले प्रश्न का उत्तर मिल जाता है कि किसने कहा था ?

''गाड़ियाँ चल पड़ी थीं। सूबेदार ने चढ़ते–चढ़ते लहना का हाथ पकड़ कर कहा––''तेंने मेरे और बोधा के प्राण बचाये हैं। लिखना कैसा ? साथ ही घर चलेंगे। अपनी सूबेदारनी से तुम कह देना, उसने क्या कहा था।'' कहानी के दूसरा प्रश्न कि क्या कहा था, बिलकुल स्पश्ट हो जाता है। कहानी में पाठक का औत्सुक्य पूर्ण रूप से संतुष्ट नहीं होता सूबेदारनी ने कब कहा था, इस प्रश्न का उत्तर और पाठक के औत्सुक्य की संपूर्ण पुष्टि कहानी के तीसरे हिस्से में होती है। पूरी कहानी में कहानीकार पाठक को उसके प्रश्नों के साथ बांधे रखता है।

इस कहानी में कहानीकार केवल पाठक के औत्सुक्य को ही शांत नहीं करता बल्कि वह उसकी सहानुभूति को भी प्राप्त करने की कोशिश करता है। कहानी में पाठक के औत्सुक्य को कहनीकार ने वजीरा सिंह के गोंद में पड़े लहना के अंतिम वाक्यों से शांत करता है। निश्चित रूप में कहानीकार का निहितार्थ एक गंभीर परिणति की ओर संकेत करता है। मृत्यु के अंतिम समय की स्मृतियों के माध्यम से गुलेरी जी कहते हैं कोई पच्चीस साल पहले की बात। बारह वर्ष के लड़के और आठ वर्ष की लड़की का आये दिन मिलना और तेरी कुड़माई हो गई से अलग होना। लेकिन एक दिन लड़के की मनोवांछा के विपरीत हॉ, कल हो गई। देखते नहीं, यह रेशम के फूलों वाला सालू ?' सुनते ही लहना सिंह को दुख हुआ। क्रोध हुआ। क्यों हुआ ?'' इस प्रसंग के माध्यम से उस रिश्ते को प्रत्यक्ष कराने का प्रयास कहानीकार करता है जिसके लिए वह आज इस हालात में है। कहानी में कहीं भी कहानीकार ने यह नहीं लिखा है कि दोनों में प्रेम है। किंतु पाठक को अब यह समझने में देर नहीं लगती कि दोनों के बीच का रिश्ता क्या है ? और पच्चीस वर्ष बाद मिलने पर वह लड़की (सूबेदारनी) उससे उस प्रसंग का वास्ता दिलाते हुए कि ''तुम्हें याद है, एक दिन टांगेवाले का घोड़ा दही–वाले के दुकान के पार बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे। आप घोड़े की लातों में चले गए थे और मुझे उठाकर दुकान के तख्त पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना, यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं ऑचल पसारती हूँ।'' लहनासिंह ने वह कर दिया जो उसने कहा था। अपने जान को जोखिम में डालकर सूबेदारनी के कहे को पूरा कर दिया। पाठक को अपने सारे प्रश्नों के उत्तर मिल जाता हैं किंतु कहानी समाप्त नहीं होती। कहानी में केवल प्रेम का कर्त्तव्यबोध ही नहीं पूरा करना है। कहानी का लहना घरबारी है वह मृत्यु पूर्व की स्मृतियों में अपने भाई कीरत सिंह की गोंद में पहुँचता है। उसका एक बेटा है और जितना बड़ा वह बेटा है उतना ही बड़ा वह आम का पेंड़ है जिसे उसने लगाया है। वह जाते हुए अपने भाई कीरत सिंह से कहता है कि ''बस, अब के हाड़ में यह आम खूब फलेगा। चाचा–भतीजा यहीं बैठकर आम खाना।'' वह अपने दायित्त्वबोध को समझता है और सबका हिसाब करके अपना

अंतिम सफर करता है। अपने लरिकाई के प्रेम और पारिवारिक दायित्त्वबोध के साथ ही साथ वह दुश्मन की फौज के लपटन और उसके सत्तर सिपाहियों को मारते हुए जख्मी होता है। अकालिया सिख है लहनासिंह। ''एक–एक अकालिया सिख सवा लाख के बराबर होता है।''वह सिखों की बहादुरी का मिशाल बनाता है। इस रूप में प्रस्तुत कहानी मात्र किशोर जीवन के रोमांटिक भावबोध को ही नहीं अपितु एक व्यक्ति के सम्पूर्ण कर्त्तव्यबोध को समरक्षेत्र में पूरा कर संपन्न होती है।

इस प्रकार विचार किया जाय तो ''उसने कहा था'' कहानी के इस कर्त्तव्यबोध के तीन आयाम स्पष्ट हैं। पहला किशोरावस्था की अनुरक्ति का कर्त्तव्यबोध है जो कहानी में सर्वाधिक मुखर और प्रत्यक्ष है तो दूसरा एक गृहस्थ जीवन का कर्त्तव्यबोध। अपने जीवन के अंतिम समय में लहनासिंह इसी कर्त्तव्यबोध से मोहाविष्ट है और भाई कीरत सिंह की गोंद में इसे अपने पुत्र को सौंपता है। कहानी में कर्त्तव्यबोध का तीसरा आयाम व्यापक है और वह है और तीसरा एक फौजी का कर्त्तव्यबोध। कहानी में यह थोड़ा छुपा हुआ या अप्रत्यक्ष है लेकिन वह भाव प्रकाश के बाद सर्वोपरि हो जाता है क्योंकि उसका संबंध राष्ट्रप्रेम से है। यह इतिहास का तथ्य है कि प्रथम विश्वयुद्ध के अवसर पर भारत की ओर से सिख बटालियन ही भेजी गई थी। कहानी युद्ध के वातावरण में भारत की ओर से लड़ते हुए वीरगति के प्राप्त होने की कहानी है। द्वितीय विश्वयुद्ध में सिख रेजिमेंट का सिपाही है लहनासिंह; जो अपने सूबेदार हजारा सिंह और वजीरा सिंह के साथ–साथ दुश्मन फौज का सफाया करते हुए वीरगति को प्राप्त करता है। यद्यपि इस युद्ध में लहना अंग्रेजों के लिए जर्मनी के खिलाफ लड़ रहा है। उसकी जीत और हार से अंग्रेजों के साथ भारत का नाम भी जुड़ा हुआ है। इसलिए प्रत्यक्ष रूप से भले ही यह कहानी राजप्रेम कही जाय किंतु उसमें राष्ट्रप्रेम भी मिला हुआ है। यह दूसरी बात है कि इस युद्ध से भारत को कोई लाभ नहीं मिला और इस युद्ध में भारतीय सेना एक हथियार मात्र है। गांधी जी ने भी माना था कि भारत के साथ धोखा हुआ। लेकिन मिलने और न मिलने के प्रश्न से अलग जरा विचार कीजिए कि अगर इस युद्ध में हार होती तो क्या हम यह कह कर बहादुरी का खिताब पा सकते थे कि यह मेरा युद्ध नहीं था। युद्ध में शामिल होने तक बेशक यह हमारा युद्ध नहीं था किंतु उसमें शामिल होने के बाद इसे हमारा युद्ध ही कहा जाना चाहिए। इस तर्क से भलेही इसे राजभक्ति कह दिया जाय किंतु राष्ट्रभक्ति से अलग नहीं है। इस युद्ध में भारतीय सिख रेजिमेंट के अनेक बहादुर सिपाही शहीद होते हैं और कुछ दिनों बाद 68वीं सूची–मैदान में घावों से मरा–नं. 77 सिख राइफल्स जमादार लहनासिंह।

निजी और राष्ट्रप्रेम के अपने इस स्वरूप में कहानी प्रसाद जी के पुरष्कार कहानी की याद दिलाती है। जहाँ मधूलिका अपने राष्ट्र की रक्षा में अपने लिए अपने प्रेमी अरुण के साथ ही मृत्युदण्ड का पुरष्कार मांगती है। उसे याद आता है कि वह वीर सिंह मित्र की कन्या है। राष्ट्र के लिए जो वीरगति को प्राप्त हुए। वह राष्ट्र के साथ छल नहीं कर सकती। उसे राष्ट्र की रक्षा का मौका मिला है। 'उसने कहा था' कहानी में सूबेदारनी कहती है ''सरकार ने बहादुर का खिताब दिया है, लायलपुर में जमीन दी है, आज नमक–हलाली का मौका आया है।'' कहानी में राष्ट्रप्रेम से उत्पन्न यह कर्त्तव्यबोध भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

हिंदी कहानियों में प्रचलित प्रेम की परंपरा से अलग प्रकार का प्रेम 'उसने कहा था' कहानी में प्रस्तुत हुआ है। परंपरित रूप से प्रेम का परिपाक विवाह में होता है। इसके अलावा हमारी परंपरा में जो प्रेम मिलता है उसमें प्रेमिका का विवाह दूसरे से हो जाता है और प्रेमी अपनी प्रेमिका को पाने के लिए संघर्ष करता है। हमारी परंपरा में एक और प्रेम भी है जो पर–स्त्री के प्रति उत्पन्न होता है। किंतु प्रेम के चाहे जितने भी रूप हों प्रेमी सर्वदा और सर्वथा अपनी प्रेमिका को पाने का ही प्रयत्न करता है। उसपर अधिकार चाहता है और उसका समर्पण चाहता है। किंतु 'उसने कहा था' का प्रेम ऐसा प्रेम नहीं हैं। नायक लहनासिंह घरबारी सैनिक है। वह तो भूल चुका है कि अमृतसर में किसी लड़की से वह मिला करता था और उससे एक सवाल प्रायः कि तेरी कुड़माई हो गई पूछा करता

था। कोई पच्चीस साल पीछे की घटना है इस प्रश्न पर उसे हमेशा एक ही उत्तर मिलता है नहीं। किंतु जब उसे यह उत्तर मिलता है कि हॉ? कल, देखते नहीं यह रेशम से कढ़ा सालू। तो उसे क्रोध हुआ...। इसे पाठक ठीक से समझता है। किंतु लहनासिंह तो भूल ही चुका है। अब वह फौज में नौकरी करता है विवाहित है और लरिकाई के इस प्रेम को सूबेदारनी याद दिलाती है। सामान्यतः प्रेमिका से कितने ही वर्षो बाद मिलें प्रेमी के मन में उसके लिए तड़प जाग ही उठती है। और फिर पंजाब में ऐसी प्रेम कहानियों की गंभीर और लंबी परंपरा रही है। पंजाब की प्रेम कहानियाँ हीर–रांझा, सोनी–महिवाल जैसी प्रेम की मजबूत कथाओं की लीक से अलग लहनासिंह की कहानी में बाहरी तड़प या आंसू की जगह आंतरिक आकर्षण और कर्तव्य की भावना है जिसका निर्वाह लहना अपने जान को न्योंछावर कर पूरा करता है। 'उसने कहा था' कहानी में प्रेम एक ऐसे वचन के रूप में परिणत हो जाता है जिसका निर्वाह लहनासिंह करता है। लहनासिंह की यह वचनबद्धता उसे भारतीय पौराणिक मानक भीष्म के करीब खड़ा कर देती है जिन्होंने अपने पिता महराज शांतनु की खुशी के लिए निशाद राज को आजीवन अविवाहित रहने का वचन देकर सत्यवती से पिता के विवाह को सुनिश्चित करता है और हस्तिनापुर के सुरक्षित होने तक हस्तिनापुर के लिए जीवन जीकर पूरा करता है। लहना भी वचनबद्ध है। सूबेदारनी ने कहा था तुझे याद है एक दिन....। 'उसने कहा था' कहानी का प्रेम सामान्य प्रेम न होकर उसे समर में कर्त्तव्य भाव के रूप में परिणत करता है।

'उसने कहा था' कहानी के कथ्य पर सन् 1960 ई. में मोनी भट्टाचार्य जी ने एक फिल्म भी बनाई थी जिसमें मुख्य किरदार सुनीलदत्त और नंदा का था। फिल्म में राजेंद्रनाथ, दुर्गा खोटे और लीला मिश्र ने काम किया है। किंतु फिल्म की कथा में थोड़ा बदलाव है। फिल्म में लहनासिंह की जगह नंदू और सूबेदारनी की जगह कमली नामक चरित्र मुख्य भूमिका में हैं। यहाँ नंदू अत्यंत गरीब है और अपनी अपनी विधवा माँ के साथ पंजाब के एक छोटे से कस्बे में रहता है। कमली के पिता की बीमारी से मृत्यु हो जाती है और वह भी अपनी माँ के साथ उसी कस्बे में आ जाती है। कमली और नंदू का एक दूसरे से दोस्ताना है। नंदू यह सोचकर की नौकरी पाने के बाद उसका विवाह कमली से हो सकेगा, वह फौज में भर्ती हो जाता है। किंतु जब फौज में भर्ती होकर घर लौटता है तो पता चलता है कि कमली का विवाह हो गया है और आगे चलकर यह भी भेद खुल जाता है कि उसके रेजिमेंट का अधिकारी कोई और नहीं बल्कि कमली का पति ही है। फिल्म में भी युद्ध पर जाते हुए नंदू से कमली अपने पति की रक्षा का वचन लेती है। फिल्म की कमली हो या कहानी की सूबेदारनी का यह कृत्य कभी–कभी चौंकाता भी है कि बचपन की सामान्य या विशेष सी जान–पहचान ने नंदू या लहना को इस मुकाम पर लाकर खड़ा कर देती है जहाँ वह वचनबद्ध हो जाता है। लहनासिंह घरबारी है और सूबेदारनी को यह अधिकार किसने दिया कि उसके प्राण संकट में डाले। सूबेदारनी यह भी कर सकती थी कि सूबेदार से लहना की हिफाजत का वचन लेती। कहानी के विचार का यह पक्ष हो सकता है लेकिन कहानी में जो कुछ प्रस्तुत है वह कहीं से भी अस्वाभाविक नहीं है।

भाषा के स्तर पर यह समय खड़ीबोली के परिमार्जन का है। यह परिमार्जन केवल व्याकरिणक शुद्धता के स्तर पर ही नहीं बल्कि भाषा के विविध अंगों यथा शब्द और पद के स्तर पर भी दिखाई देता है। गुलेरी जी की इस कहानी में भाषा परिमार्जित रूप से एक प्रवाह में बह निकलती है। कहानी कहने–सुनने की शैली में विकसित होने के कारण इसमें अंग्रेजी, उर्दू और स्थानीय शब्दों के साथ–साथ मुहावरों और लोकोक्तियों का भी सटीक प्रयोग मिलता हैं। नामवर सिंह ने लिखा है कि ''गुलेरी जी हिंदी में सिर्फ एक नया गद्य या नई शैली नहीं गढ़ रहे थे बल्कि वे वस्तुतः एक नई चेतना का निर्माण कर रहे थे, और यह नया गद्य नई चेतना का सर्जनात्मक माध्यम है।'' कहानी का 'धत्' तीसरी कसम का 'इस्स' है जो अपनी व्यंजना में बहुत कुछ कह जाता है।

कहानी को बड़ा बनाने में गुलेरी जी कि युद्ध के प्रति दृष्टिकोंण भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो जाता है। प्रस्तुत

कहानी युद्ध के परिवेश में लिखी गई कहानी होने के बावजूद युद्ध विरोधी मंशा को अभिव्यक्त करती है। गुलेरी जी ने युद्ध के जिस परिवेश को अभिव्यक्त किया है वह उनके कहानी कला की प्रमुख विशेषता है। युद्ध अत्यंत भयावह है लहनासिंह की बातचीत से स्पष्ट होता है कि खंदक से जरा–सा भी बाहर होने पर वह दुश्मन की गोली का निशाना बन जाता है। खंदक भी पानी और कींचड़ से भरी हुई है। ठंढक के समय में पानी और कींच से भरे हुए सैनिक जीवन और ऊपर से दुश्मन की गोलियों की स्थिति उसी भयावहता को संकेत करती है। सप्ताह भर से पहले रिलीफ नहीं दिखती। मनफेरवट के लिए झटका करने और गीत गाये जाने का बंदोबस्त गुलेरी जी की दृष्टि को संकेत करता है। सीधे और स्पष्ट तौर पर कहें तो कहानी में ये परिवेश युद्ध के प्रति असंतोष पैदा करते हैं।

वस्तुतः किसी भी देश या समाज में युद्ध कोई विकल्प भी नहीं है। जीवन में संधि युद्ध से अधिक महत्त्वपूर्ण है। युद्ध तो जीवन का अंतिम विकल्प है। युद्ध का एक प्रत्यक्ष दृश्य यह है कि युद्ध करने वाली ताकतों की जगह मरती है युद्ध करने वाली जनता। 'उसने कहा था' कहानी में सूबेदारनी जीवन की भीख मांगती है। अपने पति और पुत्र, दोनो उसके भाग्य; और इसी भाग्य के रक्षा की भीख सूबेदारनी लहना से मांगती है। कहानी का यह भीख केवल सूबेदारनी का नहीं बल्कि युद्ध में जाने वाले लाखों–करोड़ों माताओं–बहनों की भीख है।

'उसने कहा था' कहानी की एक प्रमुख विशेषता यह है कि यह कहानी कहने–सुनने की विशेषता से युक्त है। साहित्य के क्षेत्र में कविता और कहानी में यदि यह गुण आ जाय तो रचना द्विगुणित हो ताजी है। और फिर कहानी के विकास में कहनी की भूमिका को शून्य नहीं किया जा सकता। कहनी की शैली में आने पर शब्द चाहे किसी भी भाषा के हों उनके अर्थ प्रकटन की समस्या नहीं होती। 'उसने कहा था' कहानी इस विशेषता से युक्त है तभी तों प्रत्येक भाषा–भाषी तेरी कुड़माई हो गई के अर्थ को सहज ही समझ जाता है। प्रस्तुत कहानी में संस्कृत और पंजाबी के भी अनेक शब्द हैं जिनका अर्थ सामान्य पाठक नहीं जानता किंतु कहानी में असके भाव आसानी से समझ जाता है।

कहानी में कथा के क्रम को गुलेरी जी ने अपने समय के किस्सागोई के रूप में न प्रस्तुत करके आगे–पीछे प्रस्तुत किया है। कहानी एक भीड़ भरे बाजार से शुरू होती है किंतु उसका अंत युद्ध के मैदान में होता है। कहानी का प्रारंभ अमृतसर के उस बोली से होता है जो शब्दों के घाव से जख्मी पीठ पर मरहम का काम करती है किंतु अंत नायक के मृत्यु की सूचना से रचनाकार कह नहीं पाता बल्कि अखबार की इस खबर से करता है कि '' फ्रांस और बेलजियम–68वीं सूची–मैदान में घावों से मरा–नं. 77 सिख राइफल्स जमादार लहनासिंह।'' कहानी के प्रारंभ में रचनाकार के आगे के रणनीति का पता ही नहीं चलता। मध्य ऐसा कि युद्ध ही युद्ध। पाठक सोचता रह जाता है कि आखिर 'उसने कहा था' कहानी में किसने, क्या और कब कहा था। रचनाकार अपने कहानी कहने की शैली में पाठक को बांधे रखता है। सब कुछ अंत में स्पष्ट होता है। स्वप्न चित्र के माध्यम से। मृत्यु की दहलीज पर खड़ा लहना अपने कर्त्तव्यबोध को स्पष्ट करता है। कहानी लेखन के समय सन् 1915 तक हिंदी में तो यह शैली थी ही नहीं। यह गुलेरी जी के कहनी लेखन का एक प्रयोग है जो आगे चलकर एक शैली बन जाता है ठीक उसी तरह कि 'हम जहाँ खड़े होते है लाईन वहीं से शुरू होती है।'

कहानी में कुछ विरोधी संदर्भों को भी कहानी के मूल्यांकन में देखना चाहिए। कहानी का नायक लहना सूबेदारनी से दो ऐसे जगहों पर मिलता है एक अमृतसर का भीड़भाड़ वाली जगह है तो दूसरा सूबेदारनी के घर अकेले कमरे में। इसी प्रकार कहानी में हंसोड़ वजीरा अंत में रोने लगता है। कहानी में जिस फौज का जिक्र है उसका संबंध सिख होने के कारण पंजाब से है और जिस प्रकार यह है कि क्या तुमने कभी सरदार भिखारी देखा है, ठीक उसी प्रकार मैं भी यह कहूँ कि क्या कभी रूंआसा सरदार देखा है तो मैंने तो कभी नहीं देखा। देश की सर्वाधिक हंसोड़ जातियों में से एक का यह रेजिमेंट है। खंदक से पानी निकालते मुश्किल जीवन जीते युद्ध के भीषड़ मोर्चे पर ये सैनिक खूब मनोरंजन करते है। गीत गाते हैं वह भी ऐसा जिसे उस समय के साहित्य शिरोमणि

'लुच्चों का गीत' कहते हैं। ऐसे रेजिमेंट का सबसे हंसोड़ पात्र वजीरा लहना को गोंद में लिए उसके स्वप्न चित्रों को सुन और सामने खड़ी मौत को देखकर रोता है।

'उसने कहा था' पूरी कहानी अधिकांशतः संवाद शैली में लिखी गई है। संवाद पात्रों और देशकाल के अनुरूप है। पात्रों के प्रसंग को देखें तो कहानी का मुख्य पात्र लहनासिंह है। कहानी में वह बारह वर्ष का उम्र में आता है। बीच में लगभग पच्चीस वर्ष अनुपस्थित रहकर वह पुनः युद्ध के प्रसंग के साथ अवतरित होता है। युद्ध के मैदान में उसके वास्तविक स्वरूप का परिचय होता है। वह हंसोड़ और साफ मन का संयत पात्र है। नायक के चरित्र के अनुरूप उसमें सहयोग, सद्भाव, वीरता एवं राष्ट्रप्रेम के भाव दिखाई देते हैं। युद्ध के क्षेत्र में उसका विवेक देखने योग्य है। कहानी की नायिका सूबेदारनी एक इंस्ट्रूमेंट के रूप में आती है और केंद्र में स्थापित हो जाती है। वह नायक के चरित्र को और प्रकाशित करती है। उससे लहना का मर्यादित प्रेम उसके चरित्र का औदार्य द्विगुणित हो जाता है। सूबेदारनी एक आदर्श पत्नी, एक आदर्श माँ और एक आदर्श प्रेमी के रूप में कहानी में मूल्य को स्थापित करती है। लपटन साहब कहानी में खलनायक तो वजीरा सिंह विदूषक के रूप में प्रस्तुत है। वजीरा सिंह लहना के प्रति प्रेम और सम्मान का भाव रखता है। जीवन में खिलंदड़ स्वभाव वजीरा लहना को जाते हुए देख अपने को रोक नहीं पाता। उसके आंसू रुकते ही नहीं हैं।

इसप्रकार समग्रतः देखा जाय तो यह कहानी कहानी के प्रत्येक पैमाने पर एक श्रेष्ठ कहानी है। अपने व्यापक फलक पर यह कहानी नवीनता, संवेदनशीलता और औत्सुक्य, चरित्रांकन आदि के कारण हिंदी पहली मजबूत कहानी के रूप में स्थान निर्मित करती है। डॉ. रामदरश मिश्र इस कहानी के संबंध में लिखते हैं कि ''चंद्रधर शर्मा गुलेरी की उसने कहा था हिंदी की पहली कहानी है जो प्रकृति से बड़ी ही सशक्त कहानी है और इतनी सशक्त कहानी है कि हिंदी में कितने वादों, प्रयोगों, इतनी यथार्थवादी सघनता आने के बावजूद वह अपनी जगह, अपनी ऊँचाई के साथ खड़ी है। उसकी विशेषता है कि वह आदर्श के एक बिंदु से परिचालित होकर भी यथार्थ के एक विस्तार में फैली है और यथार्थ का विस्तार अपने महत्त्व में छोटा नहीं हुआ है।'' कहानी के कथानक का विस्तृत फलक अपने समय और अतीत के संदर्भों के साथ काल की सीमा को अतिक्रमित करते हुए प्रेम और कर्त्तव्यबोध के समरगाथा के रूप में अपने महत्त्व को स्थापित करती है।

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

शिवप्रसाद सिंह कृत ''शैलूष'' में अभिव्यक्त सामाजिक यथार्थ

निशी राघव
शोधकर्त्री
वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

प्रख्यात कथाकार और विचारक डॉ. शिवप्रसाद सिंह का जन्म 19 अगस्त 1928 को उत्तर प्रदेश के वाराणसी जनपद में जलालपुर (जमानियाँ) ग्राम के एक सम्भ्रान्त, मध्यवर्गीय कृषक परिवार में हुआ। डॉ. शिवप्रसाद सिंह के व्यक्तित्व–विकास में भी काल एवं स्थान दोनों का योगदान है। यद्यपि वे न तो किसी 'बड़े' बाप के बेटे ही हैं और न परिवार से किसी भी प्रकार का साहित्यिक आध्यात्मिक और कलात्मक संस्कार ही उन्हें दया के रूप में मिला है।

"डॉ. शिवप्रसाद सिंह" आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य के लब्ध प्रतिष्ठित साहित्यकार थे 1 उन्होंने भारत की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक संवेदना भूमि को सामयिक संदर्भों में नवीन मूल्य चेतना से जोड़ा है।

"डॉ. शिवप्रसाद सिंह" हिन्दी जगत के प्रख्यात कहानीकार, उपन्यासकार, ललित निबन्धकार तथा समीक्षक थे। इन्हें विद्यापति तथा प्राकृत अपभ्रंश भाषा के साहित्य के विशेषज्ञ के रूप में कीर्ति मिली तथा इन कृतियों से ही इन्हें आलोचक का गौरव प्राप्त हुआ था।

साहित्य समसामयिक समाज का सबसे सशक्त माध्यम है जिसमें सामाजिक जीवन की यथार्थ तस्वीर को देख सकते हैं। साहित्य और समाज एक दूसरे के परिपूरक हैं। साहित्य और समाज एक दूसरे को परस्पर सामग्री आदान–प्रदान करके आगे बढ़ते हैं। कभी साहित्य समाज से सामग्री ग्रहण कर हमारा मार्गदर्शन करता है तो कभी समाज साहित्य को निर्देशित करता है। जो साहित्य सामाजिक धरातल या जीवन से जुड़ा हुआ नहीं होता है, उसको श्रेष्ठ या उत्तम नहीं मानते हैं, इसीलिए साहित्यकार का कर्त्तव्य है कि वह समाज को उसकी वास्तविक स्थिति की सही–सही तस्वीर दिखाये।

साहित्यकार अपने गहन विश्लेषण, चिन्तन एवं कलाओं का रंग भरकर उसे एक रचना के रूप में प्रस्तुत करता है। इसमें लेखक का सूक्ष्मदर्शी एवं गहन चिन्तन होता है। वह समाज को गहनता के साथ देखकर अपनी आलोचनात्मक दृष्टि से उसका स्वरूप प्रस्तुत करता है, इसी कारण साहित्य को उस युग का फोटो फ्रेम कहते हैं लेखक जो समाज में देखते एवं अनुभव करते हैं उसी को यर्थाथता के साथ प्रस्तुत करते हैं। इसलिए साहित्यकार का कर्त्तव्य है कि उसे अपने साहित्य को सामाजिक जीवन के साथ जोड़ना चाहिए न कि उसमें कल्पना की ऊँची उड़ान हो।

शिवप्रसाद सिंह के साहित्य में तत्कालीन समय की परिस्थितियों के चित्र मिलते हैं। उन्होंने अपनी कथावस्तु को सामाजिक जीवन से उठाया है। इसको कारण 'शैलूष' उपन्यास में सामाजिक जीवन की यथार्थ तस्वीर दिखाई देती है। उन्होंने अपने सूक्ष्म एवं गहन विश्लेषण की दृष्टि से समाज के निम्न वर्ग की विभिन्न समस्याओं को इस उपन्यास में चित्रित किया है। उपन्यास में अभिव्यक्त सामाजिक यथार्थ को हम निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत देख सकते हैं –

राजनीतिक शोषण : स्वाधीनता के बाद राजनीति से गाँव–गाँव परिचित हो गया था। देश का कोई भी हिस्सा

ऐसा नहीं रहा है, जिसे राजनीति ने पछाड़ा न हो, गाँव की गली–गली में राजनीति ने अपना विकृत रूप बिखेर दिया।

''भारतीय गाँव जहाँ देश की अधिकांश जनसंख्या निवास करती है, देश की राजनीति एवं शासन तंत्र को प्रभावित करने वाली एक महत्त्वपूर्ण इकाई बन गई है। राजनीति में गाँव की भूमिका महत्त्वपूर्ण रहती है।'' वर्तमान राजनीति की लगभग सभी गलियाँ विकृत तथा भयावह बन चुकी है। इस यंत्रणा ने नगरों व गाँवों पर इस तरह आघात किया है। 'शैलूष' उपन्यास में लेखक ने राजनीति शोषण का भयावह चित्रण किया है।

'शैलूष' उपन्यास में जनक यादव असंतोष व्यक्त करते हुए कहता है –"क्या मैं पूछ सकता हूँ सरकार के जमींदारी खत्म कराने से किसान और मजदूर को क्या मिला?क्या यह सच नहीं है कि असली और ताकतवर जमींदारों ने जब सुना कि जमींदारी खत्म होने जा रही है तो वे अपनी सारी पूँजी होटल बनवाने, सिनेमा हॉल बनवाने, उद्योग धन्धों को लगवाने यहाँ तक कि सरकार से मिलकर कारखाने बनाने में लगा दी।"

'शैलूष' में पुलिस व्यवस्था के भ्रष्ट तथा न्यायपूर्ण दोनों रूपों का चित्रण किया गया है। न्यायपक्ष में कमिश्नर सारस्वत, इंस्पेक्टर प्रतापसिंह नासिर आदि हैं तो भ्रष्ट पक्ष में कुबेर सुभग मौर्य, सूरजभान, कोमल यादव आदि। उपन्यास का विकृत पात्र थानेदार सूरजभानसिंह, कुटिल, अन्यायी और भ्रष्ट है जबकि जुड़ावन कबीले के नट बड़े साहसी हैं। वे हिम्मत से डाकू झूरी को मौत के घाट उतार देते हैं। किन्तु इस घटना का सारा श्रेय कुटिल सूरजभान स्वयं ले जाता है। डी. आई. जी. द्वारा अभिनन्दन होने के बाद वह कोई कारण न होते हुए भी नट युवकों को गिरफ्तार करता है। नटों की रिहाई हेतु थाना जाने वाली "सावित्री" को थानेदार सूरजभान से अपमानित होना पड़ता है तथा वह सावित्री को गालियाँ देता है और कहता है ''जुर्म करने से ही जुर्म नहीं बनता। मैं निर्दोष को इतना बड़ा जुर्म कारदा साबित कर सकता हूँ कि फाँसी के अलावा उसके लिए कोई और राह बचेगी ही नहीं।''

आज देश में कदम–कदम पर पैसों का बोलबाला है किसी भी काम को करवाने के लिए हमें रिश्वत देनी पड़ती है और और आज लोग रिश्वत को ऊपरी आमदनी समझते हैं। यहाँ पर डॉक्टर जिसे लोग भगवान का रूप समझते हैं, वे भी बिकाऊ हो गये हैं और बिना रिश्वत को काम नहीं करते है।

उच्च वर्ग का 'घुरफेंकन तिवारी' कुछ ब्राह्मण लड़कों को पैसे देकर आदिवासी नटों की झोपड़ियों को जलवा देता है। नट कहते हैं – ''रावटियाँ जला दीं, हम लपटों में झुलस गये, पर असली चुभन तो उन दुर्गन्ध भरे जानवरों के व्यवहार से हुई।''

आर्थिक अभाव – 'शैलूष' उपन्यास में लेखक ने करनट जनजाति के खानाबदोश नटों के दर्द भरे जीवन का चित्रण किया है। लेखक आदिवासी जनजातियों की बंजर कृषि, प्राकृतिक विपदा और अखण्ड गरीबी का भयावह रूप समाज के सामने प्रस्तुत किया है। नटों के जीवन में गरीबी और धन के अभाव का अखण्ड साम्राज्य मिलता है। गरीबी के कारण तीन दिन तक बेला भूख से व्याकुल रहती है–''आज तीन दिन से बेला ने कुछ नहीं खाया–पिया। जुड़ावन रोज निर्जला एकादशी का व्रत कर रहा है।''

दलित वर्ग के आदिवासी नटों को अपनी भूख मिटाने के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकना पड़ता है। फिर भी भोजन नहीं मिलता।

''नट जाति के लोग भूख मिटाने के लिए गिलहरी, चूहे, उद्विलाब, मेंढ़क आदि खाकर दिन गुजारते रहते हैं, तो कोई निर्जला एकादशी का व्रत करता है। नटों के कबीले के सरदार के घर बाजरे का आधा टुकड़ा भी नहीं मिलता। मुकुल रोटी के लिए रोते–रोते सो जाता है।''

इस प्रकार पिछडापन, गरीबी, भुखमरी आदि के कारण नटों की दयनीय स्थिति में विसंगतियाँ पाई जाती है।

अंधविश्वास की समस्या – शिक्षा की कमी के कारण अनेक प्रकार के अंधविश्वास समाज में व्याप्त हैं। नट

किसी प्रकार की बीमारी एवं प्राकृतिक विपदा को देवी–देवताओं या भूत–प्रेत का प्रकोप मानते हैं और इलाज के रूप में मंत्र–तंत्र या झाड़–फूंक को प्रमुख आधार मानते हैं किन्तु विज्ञान के प्रभाव के कारण कुछ मात्रा में अंध ाविश्वास का विरोध हुआ लेकिन पिछड़ी जनजातियों में इसकी गति मंद दिखाई देती है।

'शैलूष' उपन्यास में अंधविश्वास का बोलबाला है। उपन्यास में गोवर्धन अपने बीमार पुत्र सुरजीत का इलाज अस्पताल में न कराके किसी ओझा को सौ रूपये देकर इलाज कराता है, तब सुरजीत पिता का विरोध करते हुए कहता है ''बब्ब् तुमने मेरे सौ रूपये बिगाड़ दिये। यह सफेद सुअर तो ब्लाक से पालने के लिए खरीदा था मैंने। तुमसे किसने कहा कि इन मूर्खों और धोखेबाजों से पूजा कराओ व तीस चालीस की शराब बीस रुपये का मुर्गा, यानि कुल पौने दो सौ रुपये तूने इन गधों के आगे डाल दिया।''[7] धर्म का ही एक रूप बलि के रूप में भी देखा गया है। इस उपन्यास में करनट जनजाति के लोग बलि में अधिक विश्वास करते पाये जाते हैं। गोवर्धन नट का बेटा सुरजीत बीमार पड़ता है तब ओझा उसे भूत की बाधा का निर्णय देकर मुर्गे की बलि देने को कहता है।

''गौरया के चौरे पर टीका लगाया गया। एक कागज पर गरीब ओझा पंद्रह चक्र बनाकर लाया था मुर्गे कि गर्दन उडा दी गई। खून की पतली धार से गौरया का चबूतरा भींज गया। उन्होने आग में लोहबान डाला। जाग रे बीर, कब तक सूतल रहवे, इच्छा कर, ले अपन–अपन पूजा, दिल खोल के, सरेशाम को लील ले रे महावीर चबा जा रसाली मरी को, खबरदार, ई लौट के आबे न पावे .....''[8]

इस उपन्यास में रेवतीपुर की परती धार्मिक आडम्बर तो पूरे गाँव पर छाये हैं। वहाँ की दतौन तक कोई नहीं तोडता, धान कोई नहीं काटता। सावित्री सारस्वत के कल्याण के लिए काले धागे में लटकती सोने की ताबीज देती है जो नथिया बंजारिन के नाम की हैं। सुरेन्द्र शुक्ल के कहने पर वह पूरा विश्वास करती हुई समझती हैं कि इस बिजली गिरे पडे को छूने से ही बकुल की मृत्यु हुई है। इस तरह से उपन्यास में धार्मिक आडम्बरों का एक जखीरा हैं।

वर्ग–भेद की समस्या – सन् 1950 के बाद बहुत से लेखकों का अचानक गाँव की ओर मोह बढ़ा है। उनकी रचनाएँ गाँवों के फूलों कछारों और वहाँ के तत्कालीन, सामाजिक, राजनैतिक परिवर्तन तथा मनुष्य के नये तेवरों को उजागर करने के लिए प्रस्तुत हुई है। प्राचीनकाल में वर्गों का आधार मानकर बनाई गई वर्ण व्यवस्था अब जातीयता पर टिक गई है। इसका वर्णन 'शैलूष' में किया गया है। गाँवों के स्थान तथा जाति से अलग आदमी का अस्तित्व नहीं होता है। वहीं सामाजिक संरचना का प्रधान अंग ही जाति है। इन्होंने नट जातियों जैसे सांसिया हो, कबीलों की उत्पत्ति, विकास को इतिहास से जोडा है। शैलूष का अर्थ ही 'नट' होता है। इसमें हिन्दू धर्म एवं हिन्दू जनता को लेकर कुछ सच बातें कहीं गई है। महंत और पंडे कहते है–

''हिन्दू के लिए कोई देश नहीं मिला। सारा संसार ईसाई, मुसलमान, साम्यवाद का लेबल चिपकाये हिन्दुओं को लूटता है। हमारे सामने भविष्य क्या है? अगले बीस वर्षों में हम सरकार के षड्यन्त्र के कारण अल्पमत की सीमा पर खड़े होंगे।''[9]

'शैलूष' उपन्यास में लेखक ने उच्च जातियों द्वारा हो रहे शोषण की समस्या को चित्रित किया हैं। इस उपन्यास में किस प्रकार नटों का शोषण होता है इसकी तो पूरा उपन्यास ही गवाही देता है। रूपा इस वर्ग–भेद को समझाती हुयी कहती है–''देख भाई, जो अखबार निकालने वाला है, वह छोटकी बिरादरी का है। और जो बेच रहा है, गाँव–गाँव घूमकर वह छोटकी बिरादरी का है। समझा?नहीं न! सुन, जिन्हें खाने पीने के लिए जांगरतोड़ मेंहनत करनी पड़ती है, वे सब छोटकी बिरादरी के हैं यानी किसान बड़े–बड़े होते है उन लोगों के घर! अनेक चमचम करते महलों को देखकर लगता है जैसे– स्वर्ग में आ गये, ये साले तेरे खून को चूस–चूसकर बने हैं। समझा।''[10]

उपसंहार – शिवप्रसाद सिंह जी ने "शैलूष" में सामाजिक जीवन की विसंगतियों को दिखाया है, जो चिरन्तन काल से समाज में व्याप्त है। उन्होंने उच्च वर्ग के द्वारा किये जा रहे शोषण की समस्या को हमारे सामने प्रस्तुत

किया है। वे भारत के शोषित एवं अभावग्रस्त इंसानों के जीवन को सुधारने के लिए कृत संकल्प थे। उपन्यास में व्यथार्थ से संबंध सामाजिक समस्याओं को उठाया है। शिवप्रसाद सिंह ने उच्च वर्ग द्वारा निरन्तर शोषण के हथकंडों से पद्दलित निम्न वर्ग के सामाजिक जीवन को प्रस्तुत किया है, तथा उन्हें अपने अधिकारों के प्रति जागरूक किया है। आदिवासी नटों के दैनिक जीवन की समस्याओं के साथ जूझने का और उनमें हो रहे परिवर्तन का प्रामाणिकता से चित्रण किया है। इसमें व्यक्त उनकी सृजनशीलता, प्रगतिशीलता, जागरूकता, प्रमाणिकता, सहजता, जीवन को देखने की विशाल दृष्टि तथा मानवतावादी दृष्टिकोण आदि से यह उपन्यास अपना अलग और विशिष्ट स्थान रखता है।

संदर्भ संकेत

1. डॉ. ईश्वर पवार : उत्तरकाशी उपन्यासों में नगेरत्तर जीवन, पृष्ठ सं. 29
2. शिवप्रसाद सिंह : शैलूष पृष्ठ सं. 32
3. शिवप्रसाद सिंह : शैलूष पृष्ठ सं. 52
4. शिवप्रसाद सिंह : शैलूष पृष्ठ सं. 117
5. शिवप्रसाद सिंह : शैलूष पृष्ठ सं. 71
6. शिवप्रसाद सिंह : शैलूष पृष्ठ सं. 28

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

गोपाल सिंह 'नेपाली' एवं रामधारी सिंह 'दिनकर' के काव्य में राष्ट्रीय भावना का तुलनात्मक अध्ययन

विनय कुमार झा
+2 शिक्षक
श्री लीलाधर उच्च विद्यालय, जिला–मधुबनी, बिहार

उत्तर छायावादी युग में राष्ट्रीय चेतना जागृत करने वाले कवियों में गोपाल सिंह 'नेपाली' और रामधारी सिंह 'दिनकर' का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। यहाँ यह कहना अप्रासांगिक नहीं होगा कि दोनों की राष्ट्रीय चेतना को तुलनात्मक रूप से रेखांकित करना बड़ा श्रम साध्य कार्य है। रामधारी सिंह 'दिनकर' और गोपाल सिंह 'नेपाली' दोनों उत्तर छायावाद काव्य के महत्वपूर्ण कवि है। दोनों का सम्बन्ध उत्तर भारत से रहा है। दोनों ने अपनी रचनाओं के द्वारा राष्ट्रीय चेतना को अभिव्यक्त किया है। हिमालय दोनो ही कवियों का प्रिय प्रतीक है। महात्मा गाँधी के प्रति दोनों हीं कवियों की अटूट आस्था रही है। दोनों ने नेहरू पर लिखा है। और चीनी आक्रमण के समय देश को जगाने का काम भी दोनों कवियों ने किया है। दोनों की काव्य यात्र भी लगभग साथ ही शुरू हुई थी। दोनों कवियों में समानता के कई बिन्दु है। दोनों की शैली अलग–अलग हैं, किन्तु अन्तर्वस्तु की दृष्टि से ये एक दूसरे से मिलते भी हैं। और टकराते भी हैं।

कवि 'दिनकर' और 'नेपाली' की राष्ट्रीय चेतना मे साम्य के कई बिन्दु हैं। दोनों कवियों ने सांस्कृतिक प्रतीकों का प्रयोग किया है। दिनकर युगचारण कवि हैं, किन्तु वे सरकारी सेवा में थे। जिस सरकार की हुकूमत से देश को आजाद कराने का लक्ष्य उनके सामने था, उसी की चाकरी करने की मजबूरी भी थी। हलाकि यह सत्य है कि कवि दिनकर अपने समय के सबसे ओजस्वी राष्ट्रीय कवि के रूप में जाने जाते हैं, किन्तु गोपाल सिंह नेपाली भी उस युग के महत्वपुर्ण गीतकार हैं। अपने राष्ट्रीय गीतों के कारण हीं इन्हे उस युग मे 'गीतों के राजकुमार' के रूप में जाना जाता था। वास्तव में गोपाल सिंह 'नेपाली' के गीतों का फलक और परिदृश्य तथा अनुभूति की सरंचना दिनकर के गीतों की तुलना में अत्यधिक व्यापक तथा गहरी है। 'दिनकर' और 'नेपाली' दोनों के गीतों मे तत्कालीन राज–सत्ता और वर्ग विभाजन पर आधारित समाज व्यवस्था के अन्तर्विरोधों शोषण, दमन और उत्पीड़न के खिलाफ तीव्र प्रतिरोध का स्वर है। दिनकर जहाँ घोषित करते हैं कि–

''हटो व्योम के मेघ पथ से स्वर्ग लूटने हम आते हैं।
दूध–दूध ओ वत्स तुम्हारा दूध खोजने हम आते हैं।।''

तो वहीं नेपाली का उदघोष था कि–

''जब–जब मानव पर दुःख की बदली छाई है,
तब–तब हमने विप्लव बिजली चमकाई है।
मानवता का परिहास बदलने वाले हैं,
हम तो कवि हैं, इतिहास बदलने वाले हैं।''[1]

राष्ट्रीयता के अंतर्गत इतिहास की गौरव गाथ एवं पुनराख्यान भी आता है। इतिहास और साहित्य में गहरा सम्बन्ध है। ऐतिहासिक घटनाएं साहित्य मे संदर्भ बन कर आती है, और साहित्य के कथ्य को अधिक प्रमाणिक और अधिक व्यापक बना जाती है। साहित्यकार अतीत में जाकर वर्तमान को जागृत करने का सूत्र पाता है। दिनकर

ने भी लिखा है–

''जब भी अतीत मे जाता हूँ, मुर्दों को नहीं जिलाता हूँ
पीछे हटकर फेंकता वाण, जिससे कम्पित हो वर्त्तमान।।''

नेपाली जिस दौर के कवि है, वह इतिहास की पुनर्सृष्टि का दौर है। साहित्यक कृत्तियाँ भारतीय इतिहास के उन सूत्रों को तलाशती रही है, जिनमें संघर्षों के बीच हमारे धैर्य की अक्षुणता और विजय गाथाएँ पिरोई हुई है। 'नेपाली' ने स्वयं को इतिहास बदलने वाला कवि माना है–

''हम धरती का निन्यास बदलने वाले हैं,
हम तो कवि है इतिहास बदलने वाले है।''[2]

'नेपाली' अपने इतिहास से परिचित कवि है। वे जानते हैं कि इतिहास के गौरवशाली प्रसंग वर्तमान को दिशा दे सकते हैं। इतिहास के साथ उन्होंने पौराणिक प्रसगों का भी आश्रय लिया है।

''यह राम–कृष्ण की जन्म–भूमि, पावन धरती सीताओं की,
फिर कमी रही कब भारत में सभ्यता, शांति, सद्भावों की,
पर नये पड़ोसी कुछ ऐसे पागल हो रहे सिमाओं पर.....
..... ओ राही दिल्ली जाना तो कहना अपनी सरकार से।।''[3]

नेपाली की तरह दिनकर ने भी इतिहास के गौरवशाली अध्यायों का गायन किया है, अपने इसी प्रवृत्ति के कारण उनको 'युग का चारण' और 'वर्त्तमान का वैताली' कहा गया है। इनमे जलन है, प्यास है, युग की कसक है किन्तु वे नेपाली की तरह स्वच्छन्द नहीं हो सके हैं। उनकी लेखनी बँधी है। वे स्वयं उद्घोष करते है–''बँधी है लेखनी, लाचार हूँ मैं।'' यह लाचारी स्वभाविक भी था। कारण दिनकर को जिनका विरोध करना था, उसी की वे चाकरी भी करते थे। 1962 में भारत–चीन युद्ध के बाद देश में जो हालात बने उसमें शासन के प्रति जनता में घोर विरोध था। दिनकर और नेपाली दोनों इस विरोध से प्रभावित न होते यह सम्भव न था। चीनी हमले के परिप्रेक्ष्य में नेपाली ने जहाँ 'हिमालय ने पुकारा' के माध्यम से अपने मंतव्य को रखने का कार्य किया, वहीं 'परशुराम की प्रतीक्षा' के माध्यम से दिनकर ने चीनी हमले से उत्पन्न देश की इस विकट संकटकालीन स्थिति के बीच नये मानव को परशुराम के रूप मे अवतरित होते देखा–

''मुख में वेद, पीठ पर तरकश कर में कठिन कुठार विमल,
शाप और शर दोनों ही थे, जिस महान ऋषि के संबल।''[4]

तो राष्ट्रहीत मे नेपाली का स्वर है–

''तू बन जा लहराती गंगा, मैं झेलम बेहाल बनू,
आज बसंती चोला तेरा, मैं भी सज लूँ लाल बनू।''

किन्तु देश में पनप रही चापलूसी को देखकर जहाँ नेपाली का दुःख इन स्वरों में फूट पड़ता है।

''तुम सा लहरों में बह लेता तो, मैं भी सत्ता गहलेता
ईमान बेचता चलता तो मैं भी महलों में रह लेता।''

वहीं दिनकर का आक्रोश है–

''जिनके प्रताप से पलते पाप सकल है;
जो छल–प्रपंच, सबको प्रश्रय देते हैं
या चाटुकार जन से सेवा लेते हैं।''

इसी तरह नेता एवं उनके भ्रष्ट तंत्र का विरोध करते हुए जहाँ नेपाली लिखते है–

''सरकार तुम्हारी देशी है

फिर क्यों दरबार विदेशी है।''[5]

तो दिनकर कवि लिखते हैं।

''नेता निमग्न दिन–रात शान्ति–चिंतन में, कवि कलाकार उपर उड़ रहे गंगन मे।

यज्ञाग्नि हिन्द मे संमिधा नहीं पाती है, पौरूष की ज्वाला रोज बुझी जाती है।।''[6]

अन्ततः संक्षेप में हम यह कह सकते है कि गोपाल सिंह नेपाली तथा रामधारी सिंह दिनकर दोनों उत्तर छायावादी राष्ट्रीय कवियों में, अंग्रेजी सत्ता के प्रति विद्रोह, आजादी की ललक, 1962 के भारत–चीन युद्ध से उत्पन्न हालात का वर्णन, देश में फैले भ्रष्टाचार चापलुशी तथा सरकार के गलत नीतियों का विरोध प्रायः कमो–वेश एक समान देखने को मिलते हैं दोनों की शैली अलग भले हो किन्तु अन्तर्वस्तु एक जैसी हीं है। किन्तु युग चारण और राष्ट्रकवि होते हुए भी दिनकर के लेखनी की तुलना में नेपाली के गीतों की व्यापकता तथा गहराई अधिक व्यापक है। और यही व्यापकता नेपाली जी को जहाँ 'वन मैन आर्मी' बनाता है, वहीं दिनकर की प्रोढ़ता उन्हे राष्ट्रकवि 'युग चारण' और वर्तमान का वैताली'' बनाता है।

संदर्भ संकेत

1. परिषद पत्रिका मार्च 2011, नचिकेता, पृ0 139
2. हिमालय ने पुकारा, गोपाल सिंह नेपाली, पृ0 92
3. वही, पृ0 91
4. रश्मिरथी, रामधारी सिंह 'दिनकर', पृ0 12
5. हिमालय ने पुकारा, गोपाल सिंह 'नेपाली', पृ0 92
6. परशुराम की प्रतीक्षा, रामधारी सिंह दिनकर, पृ0 04

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

छायावादी कवियों का बालसाहित्य सृजन

डॉ० सुरेन्द्र विक्रम
एसो० प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग
क्रिश्चियन कॉलेज, लखनऊ – 226018 (उ०प्र०)

हिंदी में छायावाद का प्रारंभ एक महत्त्वपूर्ण घटना है। वस्तुतः द्विवेदी युगीन सुधारवादी काव्य की प्रतिक्रिया स्वरूप छायावाद का आगमन हुआ। आलोचकों ने इस काल को अपने–अपने ढंग से पारिभाषित किया है। छायावाद की सर्वमान्य परिभाषा स्थूल के प्रति विद्रोह है। छायावादी कवियों ने अपनी रचनाओं में सूक्ष्म से सूक्ष्म भावनाओं को महत्त्व प्रदान किया किया है। प्रसिद्ध समालोचक प्रो0 रामस्वरूप चतुर्वेदी का कहना है कि– ''इन कवियों (छायावाद के कवियों) की मनःस्थिति कई प्रकार के तत्त्वों से बनी थी। एक ओर लंबी पराधीनता की निराशा, दूसरी ओर जवानी का अधीरज, बीच में प्रणय–स्वाधीनता और मानव मुक्ति के सपने। इन सब ने मिलकर छायावादी कवियों में एक खास तरह का नियतिवाद विकसित कर दिया था।''[1]

छायावाद के काव्य चतुष्टय – जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' और महादेवी वर्मा ने जहाँ भारी–भरकम शब्दावली में बड़ों के लिए विपुल साहित्य का सृजन किया, वहीं बच्चों के लिए मधुर और हितकारी बालसाहित्य को भी अपेक्षित महत्त्व प्रदान किया। इन सभी कवियों ने कमोवेश बालसाहित्य का सृजन किया तथा उसकी रचना प्रक्रिया के प्रति अपनी चिंता भी व्यक्त की। गवर्नमेंट सेंट्रल पेडागॉजिकल इंस्टिट्यूट, इलाहाबाद द्वारा सन् 1962 में आयोजित बालसाहित्य रचनालय का उद्घाटन करते हुए श्रीमती महादेवी वर्मा ने अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में कहा था– ''वस्तुतः बालक तो विश्व का सबसे व्यापक बुद्धिवाला, विशाल हृदयवाला नागरिक है। सच्चे अर्थों में हम उसी को विश्व का नागरिक कह सकते हैं। बालक हमसे अनेक दृष्टियों से अच्छा है। विश्व नागरिक वह रहे परंतु उसे प्रौढ़ तो होना है। विशेष देश का नागरिक भी उसे होना है और विशेष समाज का सदस्य भी उसे होना है। इस दृष्टि से हम उसके लिए साहित्य की रचना करते हैं। वैसे वह स्वयं एक काव्य है, स्वयं ही साहित्य है। हम उस साहित्य को एक दिशा देते हैं और सीमाएँ बाँधते हैं, और इसे हम बालसाहित्य कहते हैं।''[2]

महादेवी वर्मा ने स्वीकार किया है कि बच्चों के लिए साहित्य सृजन आसान नहीं है, उन्हें बहकाया नहीं जा सकता है। बच्चों की जिज्ञासाएँ अनंत हैं, उन्हें संतुष्ट करना हँसी–खेल नहीं है। इसीलिए बालसाहित्य लेखकों से महादेवी वर्मा का कहना था कि – ''जो बालसाहित्य की रचना करते हैं, उन्हें अपने सामने यह लक्ष्य रखना चाहिए कि जीवन की दृष्टि से हम बालक को इस प्रकार ले चलें कि कहीं से वह कुंठित न हो। हममें उसमें इतना अंतर है कि हम यथार्थ में जीते हैं, यथार्थ को सही बनाने के लिए, यथार्थ के कष्ट को कुछ सहने योग्य बनाने के लिए हम कल्पना का सहारा लेते हैं, पर बालक कल्पना में ही जीता है। उसके निकट सत्य और असत्य में कोई अंतर नहीं है। यदि आप उसे साहित्य देते हैं साहित्य निश्चित रूप से किस प्रकार का होना चाहिए जो उसका रागात्मक संबंध सृष्टि के साथ, प्रकृति के साथ, पशु–पक्षियों के साथ, नक्षत्रों के साथ, फूलों के साथ कर दे और वह एक बौद्धिक आकाश पा सके, जीवन का आलोक पा सके क्योंकि प्रत्येक काव्य यही करता है। प्रत्येक कवि यही करता है। मेरे विचार में तो बड़े से बड़ा कवि बालक के अतिरिक्त कुछ नहीं है।''[3]

बालसाहित्य में भी उत्कृष्टता की झलक उतनी ही आवश्यक है जितनी अन्य साहित्य में होती है। उसमें भाषा, संवेदना और संप्रेषणीयता का भी होना अत्यंत आवश्यक है। बालसाहित्य को पारिभाषित करते हुए महादेवी वर्मा जी का साफ–साफ कहना है कि – ''मैं समझती हूँ कि उत्कृष्ट साहित्य की जो परिभाषा है, बालसाहित्य की

परिभाषा उससे भिन्न नहीं होती, क्योंकि मनुष्य की पूरी पीढ़ी बनाने का कार्य वह करती है। जो स्वयं निर्मित है उसमें भावना जगा देना, उसकी चेतना में कुछ ऐसे सत्य को पहुँचा देना आसान होता है, परंतु जो अभी बढ़ने के क्रम में है उसको ऐसे तट देना है जिनसे उसकी धारा रूद्ध न हो, बंधन का वह अनुभव न करे, और तो भी जिस दिशा में हम ले जा रहे हैं उसमें चला जाए। इस तथ्य पर भी हमें विचार करना होगा। हमें भाषा का भी विचार करना होगा और अपनी जो मानसिक पहुँच है, संवेदना है, संप्रेषणीयता है उसका भी ध्यान रखना होगा। यदि इन सबका ध्यान रखकर हम बालसाहित्य की रचना करें तो संभवतः इस युग के बालकों को हम बहुत कुछ दे सकेंगे।''[4]

महादेवी वर्मा के मत में बालसाहित्य की भाषा गूढ़ नहीं होनी चाहिए तथा शब्दावली ऐसी होनी चाहिए जो बच्चों को स्वयमेव अर्थ देती चले। इसके अतिरिक्त बालसाहित्य में नई प्रवृत्तियों का भी होना आवश्यक है क्योंकि आज का बालक अणुयुग का बालक है और वह हमसे अधिक जीवन की कठिनाइयों को आरंभ से देख चुका है। आज इक्कीसवीं सदी में जीवनयापन कर रहे बच्चे अपनी उम्र से आगे की कल्पना आसानी से कर लेते हैं। ऐसे बालकों के लिए साहित्य निश्चय ही चुनौती भरा है। स्वयं महादेवी वर्मा के शब्दों में– ''बाल साहित्य की रचना यदि इतनी सहज होती तो सभी उसे कर सकते। फिर भी प्रत्येक देश में बालसाहित्य लिखा गया है किंतु उन्हीं व्यक्तियों ने लिखा है जो अंत तक बालक का सा हृदय लिए रहे हमारे। हमारे कवि रवींद्रनाथ ने बहुत कुछ बालकों के लिए लिखा है क्योंकि वे अंत तक वह बालक के से हृदय के रहे। जिज्ञासा वैसी ही रही, कल्पना वैसे ही रही और जिन्हें छोटी वस्तुएँ कहते हैं, तृण कहते हैं, उनमें भी उनकी रसमयता वैसी ही रही। जिस लिखने वाले में निरीक्षण के साथ यह रसमयता रहती है कि वह छोटी से छोटी, क्षूद्र से क्षुद्र वस्तु से भी रस का संचय कर सके वह अच्छा साहित्य देता है।''[5]

श्रीमती वर्मा का उपर्युक्त कथन जहाँ बालसाहित्य के महत्त्व को प्रतिपादित करता है वहीं उसमें नवीन संभावनाओं की तलाश भी करता है। स्वयं महादेवी वर्मा जी ने बच्चों के लिए अनेक कविताएँ लिखी हैं। उनकी अनेक कविताएँ विभिन्न हिंदी भाषी प्रदेशों के पाठ्यक्रमों में भी पढ़ाई जाती रही हैं। पशु–पक्षी, फल–फूल, तीज–त्योहार तथा जानवरों के रहन–सहन पर लिखी गई उनकी बालोपयोगी कविताएँ लंबे समय तक पाठ्यक्रम में निर्धारित रही हैं। उ0प्र0 के शिक्षा विभाग से प्रकाशित बेसिक रीडर भाग–5 में ये निम्नलिखित कविताएँ पढ़कर ही एक पीढ़ी बड़ी हुई है–

फूल

फूल हैं हम सरस कोमल
आँसुओं में खिल रहे हम।
कंटकों से मिल रहे हम
विश्व में हमने बिखेरा
चाँदनी सा हास निर्मल
फूल हैं हम सरस कोमल।

मलय समीर

मैं मलय समीर निराला
सर सर मर मर
नभ जल थल में दे दे फेरी
रवि से कहती है गति मेरी।

अब मधु दिन है आने वाला
मैं मलय समीर निराला।

अपना बचपन सभी को प्यारा होता है। बचपन की मधुर स्मृतियाँ जब युवावस्था या प्रौढ़ावस्था में याद आती हैं तो मन बचपन में पुनः लौट जाने को अधीर हो उठता है। बचपन तो बस बचपन है, वह बचपना से भरा होता है। उसमें किसी प्रकार का न तो राग–द्वेष होता है और न ही कोई छल–कपट की भावना होती है। महादेवी वर्मा की 'प्यारा बचपन' कविता जीवन का मोहक रूप प्रस्तुत करती है –

हमारे नवजीवन का प्रात,
निराला वह उषा का हार।
नया वह सोने का साम्राज्य
मधुर वह वीणा की झंकार।
धरा तब थी क्रीड़ा की कुंज
हास्य–रोदन के सहचर पास।
नेत्र में थे मुक्ता के हार
खेलता था अधरों में हास।
मचल जाना माता के अंक
खेलना रजनीकर के साथ।
समझ कर क्रीड़ा–कंदूक लाल
बढ़ा देना सविता को हाथ।

महादेवी वर्मा को पशु–पक्षियों से विशेष प्रेम था। उनके बंगले में भाँति–भाँति के पशु–पक्षी निर्भय विचरण किया करते थे। इन पशु–पक्षियों का विस्तृत वर्णन उन्होंने अपनी पुस्तक 'मेरा परिवार' में किया है। उनकी बच्चों के लिए लिखी 'बया चिड़िया' शीर्षक कविता में बालमनोविज्ञान की सूक्ष्म पकड़ है –

बया हमारी चिड़िया रानी
तिनके लाकर महल बनाती
ऊँची डालों पर लटकाती
खेतों से फिर दाना लाती

नदियों से भर लाती पानी।
बया हमारी चिड़िया रानी।

तुझको दूर न जाने देंगे
दानों से आँगन भर देंगे
और हौज में भर देंगे हम
मीठा – मीठा ठंडा पानी
बया हमारी चिड़िया रानी।

फिर अंडे सेयेगी तू जब
निकलेंगे नन्हें बच्चे तब
हम आकर बारी–बारी से
कर लेंगे उनकी निगरानी
बया हमारी चिड़िया रानी

फिर जब उनके पर निकलेंगे
उड़ जाएंगे बया बनेंगे।
तब हम तेरे पास रहेंगे
तू रोना मत चिड़िया रानी
बया हमारी चिड़िया रानी।

महादेवी वर्मा के साथ ही छायावाद के एक और अप्रतिम हस्ताक्षर सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने भी बच्चों के लिए साहित्य का सृजन किया है। राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली से आठ खंडों में प्रकाशित निराला रचनावली का पूरा सातवाँ खंड उनके बालसाहित्य सृजन पर केन्द्रित है। निराला रचनावली के संपादक डॉ0 नंदकिशोर नवल इस खंड की भूमिका में लिखते हैं कि –

''यह खंड निराला के बालसाहित्य का है। इसमें उनकी ये पुस्तकें संकलित की गई हैं – भक्त ध्रुव, भक्त प्रह्लाद, भीष्म, महाराणा प्रताप और सीख भरी कहानियाँ। 'उक्त छह में से आरंभिक तीन पुस्तकें निश्चित रूप से बच्चों के लिए लिखी गई हैं, क्योंकि इनकी भूमिका में निराला ने इस तरह के संकेत दिए हैं।''[6]

डॉ0 नंदकिशोर नवल निराला की लेखन शैली के बारे में लिखते हैं कि – ''निराला का कहानी कहने का ढंग बहुत ही सजीव और लुभावना है। संवाद अत्यंत सटीक और वर्णन अत्यंत सरस हैं। भाषा में जो निखार है वह देखते ही बनता है। लगता है, वह मूलतरू बालसाहित्य के ही लेखक थे।''[7]

हिंदी बालसाहित्य के इतिहास में यह निश्चय ही बहुत बड़ी घटना है कि निराला जैसे बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार ने बच्चों को ध्यान में रखकर उनके लिए रुचिकर और उपयोगी साहित्य का सृजन किया। निराला का बच्चों के लिए लेखन उनकी स्वस्थ सोच को उजागर करता है। उनके बालसाहित्य सृजन को देखते हुए हमें बांग्ला के साहित्यकारों का स्मरण हो आता है। बांग्ला में कोई भी रचनाकार तब तक बड़ा साहित्यकार कहलाने का अधिकारी नहीं है जब तक वह प्रभूत मात्रा में बच्चों के लिए साहित्य का सृजन नहीं कर लेता है। ऊपर इसी आलेख में महादेवी वर्मा ने भी स्वीकार किया है की नोबेल पुरस्कार विजेता रवीन्द्र बाबू ने भी बच्चों के लिए खूब लिखा है। निराला का संबंध पश्चिम बंगाल से काफी समय तक रहा है। उनके पिता पश्चिम बंगाल में सेवारत थे इसलिए बहुत संभव है कि निराला इस तथ्य से भलीभाँति परिचित रहे हो। उन्होंने 'सीख भरी कहानियाँ' शीर्षक से अपनी बच्चों की कथाओं की पांडुलिपि प्रकाशक को सौंपते हुए कहा था कि – ''मैं कितना भी बड़ा साहित्यकार क्यों न माना जाऊँ पर मेरी लेखनी तभी सार्थक होगी जब इस देश के बाल– गोपाल मेरी कोई कृति पढ़कर आनंदविभोर होंगे। इन कथाओं को सुनाने का ढंग केवल मेरा है। बाकी सब कुछ हमारे पूर्वजों का है। नन्हें –मुन्ने इन कहानियों में जितना अधिक रस पाएंगे, उतना ही मेरी कहानी गोई की सफलता होगी।''[8]

आज जो तथाकथित साहित्यकार बालसाहित्य लेखन से कतराते हैं, तथा बच्चों के साहित्य के नाम पर नाक–भौं सिकोड़ते हैं, उन्हें निराला के उपर्युक्त कथन से शिक्षा लेनी चाहिए। निराला कोई मामूली नाम नहीं है। निराला नाम है– एक क्रांति का, एक ज्योति का, एक मशाल का, जो पूरे हिंदी साहित्य जगत को अपने प्रकाश

से आलोकित किए हुए है।

निराला ने सबसे पहले कविता को छंद के बंधन से मुक्त करके नई शैली का प्रारंभ किया था। हिन्दी साहित्य में इस प्रकार की कविता को स्वच्छंद कहा जाता है। निराला ने बच्चों के लिए छिटपुट ही सही लेकिन कविताएँ भी लिखी हैं मगर गद्य साहित्य में उनकी पाँच बालोपयोगी कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं जिन्हें निराला रचनावली में संकलित किया गया है। ये कृतियाँ इस प्रकार हैं –

1. भक्त ध्रुव 2. भीष्म 3. भक्त प्रह्लाद 4. महाराणा प्रताप, और 5. सीखभरी कहानियाँ।

निराला ने सन् 1926 में बालक ध्रुव के जीवन को आधार बनाकर 'भक्त ध्रुव' शीर्षक से एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक की रचना की थी। ध्रुव का महान चरित्र बालकों के लिए सर्वथा अनुकरणीय रहा है। इस चरित्र के बारे में विस्तार से हर बालक को जानना चाहिए, इसी उद्देश्य से निराला ने उक्त पुस्तक का सृजन किया। अपनी लगन, निष्ठा और भक्ति से ध्रुव ने जो स्थान बनाया उससे बालकों को निरंतर गतिशील रहने तथा प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहने की प्रेरणा मिलती है। ध्रुव की इस कथा को निराला ने बड़ी परिष्कृत किंतु सरल भाषा में प्रस्तुत किया है, इसमें उनका कवि रूप भी उभरकर सामने आया है।

इसी वर्ष प्रकाशित 'भीष्म' नामक पुस्तक में निराला ने महाभारत की विस्तृत घटना को संक्षेप में कहने का प्रयास किया है। महाभारत एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ ही नहीं, हमारी सभ्यता–संस्कृति, मान–मर्यादा तथा आचार–विचार का विस्तृत लेखा–जोखा है। भीष्म का चरित्र प्रेरक होने के साथ–साथ उद्‌बोधक भी है। स्वयं निराला के शब्दों में – ''भीष्म के चरित्र से सब प्रकार की शिक्षाएँ एक साथ मिल जाती हैं। पिता के प्रति पुत्र की कैसी भक्ति होनी चाहिए, माता और विमाता के प्रति उसके क्या कर्त्तव्य हैं, मनुष्यता का आदर्श क्या हो, शास्त्र–अध्ययन, ब्रह्मचर्य और सरल भाव से जीवन के निर्वाह का फल क्या है, समर–क्षेत्र में क्षत्रिय का क्या आदर्श है, यथार्थ वीरता किसे कहते हैं, इस तरह से मनुष्यों के मस्तिष्क में मनुष्यता से संबंध रखने वाले जितने प्रश्न आ सकते हैं, उन सबका उत्तर भीष्म के जीवन से मिल जाता है।''[9]

'भक्त ध्रुव' और 'भीष्म' के बाद निराला ने प्रह्लाद को केंद्र में रखकर 'भक्त प्रह्लाद' शीर्षक से अत्यंत सरल भाषा में एक और पुस्तक का प्रणयन किया। इसका प्रकाशन सन् 1930 में हुआ। बकौल निराला– ''प्रह्लाद भक्तों के अग्रगण्य हैं। उनकी ईश्वर–निर्भरता भारत प्रसिद्ध है। दैत्यों के वंश में जन्म लेकर भी उन्होंने सद्‌गुणी वृत्ति का आश्रय लिया था। ईश्वर–प्रेम, भक्ति, शांति, क्षमा, दया, धृति तथा सरलता आदि जितने सद्‌गुण हैं, प्रहलाद में वे सब थे। उनकी दृढ़ता भी हद दर्जे की थी। कठोर से कठोर परीक्षाएँ आईं, परंतु वे अपने पथ से विचलित नहीं हुए। ऐसे धर्मनिष्ठ, सरल और दृढ़व्रत बालक के चरित्र का प्रचार–– स्खलितमति, निर्वीर्य, निरुत्साह और पथभ्रष्ट कर देने वाली कुशिक्षा से बचाने के लिए देश के बालकों में अवश्य होना चाहिए।''[10]

प्रह्लाद का जीवन ऊँची–नीची पगडंडियों पर चलता रहा। वे अनेक झंझावातों को झेलते रहे, परंतु अपने पथ से विचलित नहीं हुए। किशोरवर्ग के बच्चों को ध्यान में रखकर लिखी गई यह कृति छोटे–छोटे 14 परिच्छेदों में विभक्त है, जिसमें एक–एक कर प्रह्लाद की संपूर्ण गाथा मालाबद्ध रुप में पिरोई गई है। इसको पढ़ते हुए इतिहास की जानकारी तो होती ही है, इसमें उपन्यास जैसा आनंद भी मिलता है।

महाराणा प्रताप का चरित्र पाठकों में ओज का संचार कर देता है। इस ऐतिहासिक आख्यान को निराला ने बालकों के लिए छोटे–छोटे अठारह परिच्छेदों में विभक्त किया है। स्वाभिमान की रोटी खाना और सत्य का अनुसरण करना महाराणा प्रताप के जीवन का ध्येय था। इसके लिए उन्हें जंगल–जंगल भटकना पड़ा लेकिन उन्होंने कभी हार नहीं मानी। महाराणा प्रताप का यह चरित्र बालकों को दृढ़ता, वीरता और स्वतंत्रता का पाठ पढ़ाता है। निराला ने इसे बड़े ही कौशल से बालपाठकों तक पहुँचाने का प्रयास किया है। पुस्तक के बीच में महाराणा प्रताप के सच्चरित्र को उजागर करने वाली राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त द्वारा लिखित कविता देखकर निराला ने और उपयोगी

बना दिया है।

पंचतंत्र, हितोपदेश तथा ईसप की नीति–कथाएँ बालकों को हमेशा से प्रेरणा प्रदान करती रही हैं। निराला ने बच्चों की रुचि को ध्यान में रखते हुए ईसप की कथाओं को आधार बनाकर 'सीखभरी कहानियाँ' शीर्षक से छोटी–छोटी कहानियों का संकलन किया। उनका यह कार्य बाल साहित्य की रचना के प्रति उनकी रूचि का भी संकेत देता है। निराला ने इसका प्रणयन स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व किया था, परंतु इसका प्रकाशन उनकी मृत्यु के बाद सन् 1969 में इलाहाबाद से हुआ।

इस पुस्तक में बालोपयोगी छोटी–छोटी 42 कहानियाँ संकलित की गई हैं। इनसे बालकों का भरपूर मनोरंजन तो होता ही है, उन्हें अप्रत्यक्ष रूप से सीख भी मिलती है। हर कहानी के अंत में निराला ने उसमें मिलने वाली सीख का संकेत जरूर किया है। शायद इसी कारण इस संकलन का नाम ही श्सीख भरी कहानियाँश रखा गया है। उदाहरण के लिए इस संग्रह की की एक कथा 'मुर्गे और लोमड़ी' प्रस्तुत है –

''एक चालाक लोमड़ी ने एक रोज एक मुर्गे को पेड़ की डाल पर बैठा हुआ देखा। उसने पूछा––'वहाँ क्या कर रहे हो? मुर्गे को जमीन पर चलते– फिरते रहना चाहिए, न कि डाल पर बैठे रहना। पेड़ उसके रहने का असली मुकाम नहीं। जान पड़ता है कि वह सबसे बड़ी खबर तुम्हारे कानों तक नहीं पहुँची? आज वह हर एक की जुबान पर है। वह यह है कि जितने पशु–पक्षी हैं उनमें सुलह हो गई है। एक दूसरे पर वार न करें, इसके लिए मजबूर हो चुका है।''

'मुर्गे ने कहा – 'यह जरूर दुनिया की सबसे अच्छी खबर है। कहते वक्त उसने गरदन बढ़ाकर देखा जैसे दूर की कोई चीज देख रहा हो।'

'लोमड़ी ने पूछा – 'तुम क्या देख रहे हो?''

'मुर्गे ने जवाब दिया – 'कुछ नहीं। वह कुछ नहीं, सिर्फ भयंकर शिकारी कुत्तों का एक जोड़ा है। मुँह खोले इसी रास्ते से आ रहा है, चाल बड़ी तेज है।'

'घबराकर लोमड़ी ने कहा – 'ऐसी बात है? अच्छा, क्षमा करना दोस्त, मैं अब तुमसे बिदा चाहती हूँ।'

'आह, तुम इतनी घबराई हुई क्यों हो?'

'मुर्गे ने पूछा – 'तुम्हें किस बात का कौन–सा डर है? तुमने तो अभी–अभी कहा कि पशु–पक्षियों में सुलह हो गई है।'

'लोमड़ी ने कहा – 'सच है, लेकिन अगर कुत्तों ने भी यह खबर नहीं सुनी तो वे मेरे बदन में अपने तेज दाँत चुभा देंगे और मुझे यह मालूम भी न होगा कि मैं कहाँ हूँ।' यह कहकर वह चंपत हो गई।'

'चालाक आदमी बात बना लेते हैं।'[11]

महादेवी वर्मा और निराला के साथ–साथ सुमित्रानंदन पंत ने भी बच्चों के लिए उद्बोधक, प्रेरक और ज्ञानवर्धक साहित्य लिखा। यह अलग बात है कि छायावाद की भारी–भरकम शब्दावली का प्रभाव उनकी बच्चों के लिए लिखी गई रचनाओं में भी देखा जा सकता है। पंत जी ने बचपन से ही छोटी–छोटी तुकबंदियाँ करना प्रारंभ कर दिया था। उनकी पहली कविता हुक्के का धुँआ उनके बचपन में ही 'अल्मोड़ा अखबार' में प्रकाशित हो चुकी थी। इसके अतिरिक्त बालकवि पंत ने आरंभ में जो भी लिखा उसका प्रकाशन चंद्रकुटीर और ज्योतिकुटीर नामक संस्थाओं से प्रकाशित होने वाली हस्तलिखित पत्रिकाओं में हुआ।

पंत जी के बचपन में एक बार स्वामी विवेकानंद अल्मोड़ा आए थे। उनका बालमन स्वामी जी के आगमन की तैयारी से विशेष रूप से प्रभावित हुआ। इस घटना को पंत जी ने वार्तालाप शैली में इस प्रकार व्यक्त किया है–

माँ अल्मोड़े में आए थे, जब राजर्षि विवेकानंद।
तब मग में मखमल बिछाया, दीपावलि की विपुल अमंद।

बिना पाँवड़े पथ में क्या वे, जननि नहीं चल सकते हैं?
दीपावलि क्यों की, क्या माँ वे, मंद दृष्टि कुछ रखते हैं?
कृष्णा, स्वामी जी तो दुर्गम, मग में चलते हैं निर्भय।
दिव्य दृष्टि है, कितने ही पथ, पार कर चुके कंटकमय।
वह मखमल तो भक्तिभाव थे, फैले जनता के मन में।
स्वामी जी तो प्रभावान हैं, वे प्रदीप थे पूजन के।

बालसाहित्य पर शोध करने वाले डॉ0 श्रीप्रसाद ने इस कविता के संबंध में लिखा है कि–

''पंत जी की कविताओं में वस्तु–तत्व कम और कल्पना विस्तार अधिक है। यह विशेषता उनकी बालकविताओं में भी है। ''अल्मोड़े में विवेकानंद'' कविता में एक बालक की सहज जिज्ञासा की अभिव्यक्ति हुई है। अनंत संसार में आया बालक अपने को जिज्ञासाओं से भरा पाता है। उसके लिए सब कुछ अज्ञात रहता है। यही कारण है कि बच्चा सदा प्रश्नों की झड़ी लगाए रहता है। अल्मोड़े में स्वामी विवेकानंद के पहुँचने पर उनका स्वागत किया गया था, मार्ग में मखमल बिछाया गया था और दिए जलाए गए थे।''[12]

पंत जी सन् 1931 से सन् 1940 तक प्रसिद्ध साहित्यसेवी कुँवर सुरेश सिंह के आग्रह पर उनके पैतृक निवास कालाकांकर में रहे। कालाकांकर की धरती, वहाँ का शांत वातावरण और एकांतवास पंत को खूब रास आया। यहाँ रहते हुए पंत जी ने हिंदी साहित्य को अनेक अमूल्य ग्रंथ भेंट किए। पल्लव, गुंजन और ग्राम्या ऐसी ही कृतियाँ हैं। सन् 1932 में कुँवर सुरेश सिंह ने कालाकांकर से कुमार नामक बच्चों की मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया। उन्हीं के आग्रह पर पंत जी ने बच्चों के लिए कुछ कविताएँ लिखी, जिनका प्रकाशन कुमार में हुआ। पंत जी की बहुचर्चित कविता कलरव पहली बार कुमार में ही प्रकाशित हुई थी–

कलरव किसको नहीं सुहाता
कौन नहीं इसको अपनाता
यह शैशव का सरस हाथ है
सहसा उर से है आ जाता।
कलरव किसको नहीं सुहाता
कौन नहीं इसको अपनाता।

यह उषा का नव विकास है
जो रज को है रजत बनाता।
कलरव किसको नहीं सुहाता
कौन नहीं इसको अपनाता।

'कुमार' के अतिरिक्त पंत जी की अनेक बालोपयोगी कविताएँ 'बानर' पत्रिका में भी समय–समय पर प्रकाशित होती थीं। बानर उस समय प्रयाग से प्रकाशित बच्चों की महत्त्वपूर्ण पत्रिका थी जिसका संपादन सुप्रसिद्ध साहित्यकार पं० रामनरेश त्रिपाठी करते थे। सुमित्रानंदन पंत की कविता ''घंटा'' बानर (जनवरी सन् 1932) में ही प्रकाशित हुई थी । इस महत्त्वपूर्ण कविता की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

उस आसमान की चुप्पी पर, घंटा है एक टँगा सुंदर।
जो घड़ी–घड़ी मन के भीतर, कुछ कहता रहता है बजकर।
परियों के बच्चों से सुंदर, कानों के भीतर उसके स्वर।

घोंसला बनाते उतर–उतर, फैला कोमल ध्वनियों के पर।
भरते वे मन में मधुर रोर, जागो रे जागो कामचोर।
डूबे प्रकाश में दिशा छोर, अब हुआ भोर अब हुआ भोर।
आई सोने की नई प्रात, कुछ नया काम हो नई बात।
तुम रहो स्वच्छ, मन स्वच्छ गीत, निद्रा छोड़ो रे गई रात।

हालाँकि कुछ समीक्षकों ने पंत की उपर्युक्त कविता को बाल रचना न मानकर गूढ़ रहस्यवादी कविता माना है। इस संबंध में बालसाहित्य के सुधी समीक्षक डॉ0 श्रीप्रसाद का कहना है– ''पूर्णतः बालकाव्य कृति 'घंटा' छायावादी धारा की रहस्यवादी कविता मानी गई और जागो रे जागो कामचोर में जीव को मायामुक्त होकर ब्रह्म में लीन होने का संदेश दिया गया। इस भ्रम का का कारण कविता का छायावादी बंध है। पंत जी ने इसे इसे अपनी अन्य कविताओं के साथ ही संकलित किया है। इससे भी किशोरों की कविता गूढ़ रहस्यवादी हो गई। बच्चा दो और दो जोड़कर चार बताएगा, पर यदि किसी विद्वान से दो और दो जोड़ने को कहा जाए, तो वह गूढ़ तात्पर्य ही लगाएगा, वह सहज योग की बात सोचेगा ही नहीं। यह स्थिति अनर्थकारी भी होती है। कवि ने स्वयं भी सरल और कठिन का संयोग किया है। वह घंटे की ध्वनि की कल्पना परियों के बच्चों के परों से करता है और अंत में स्वर्णिम भोर में नींद त्यागने तथा स्वच्छ मन और स्वस्थ शरीर रहने का सरल सा संदेश भी दे देता है।''[13]

बानर, और कुमार बालपत्रिकाओं के अतिरिक्त बालसखा में भी पंत जी की कुछ बालोपयोगी कविताएँ प्रकाशित हुई हैं। हालाँकि बच्चों की कविताओं का उनका कोई संकलन स्वतंत्र रूप से प्रकाशित नहीं हुआ है, परंतु अगर वानर, बालसखा, कुमार तथा अन्य बालपत्रिकाओं की पुरानी फाइलों का अध्ययन कर उनकी बालोपयोगी कविताएँ इकट्ठी की जाएँ तो उनका एक सुंदर संकलन आसानी से तैयार किया जा सकता है।

पंत जी की विशेष प्रसिद्ध प्रकृति के सुकुमार कवि के रूप में रही है। उन्होंने प्रकृति ऐसे चित्र उकेरे हैं जो अपने आप में में मिसाल हैं। प्रकृति के वास्तविक सौंदर्य से पंत इतना प्रभावित थे कि उसके आगे उन्हें अन्य सौंदर्य फीका लगता था। ''ग्रामशोभा'' नामक कविता में उन्होंने फलों और सब्जियों का बड़ा मनोहरी चित्रण किया है–

महुवे, कटहल, मुकुलित जामुन, जंगल में झरबेरी फूली।
फूले आड़ू, नींबू, दाड़िम, आलू, गोभी, बैगन, मूली।
पीले–मीठे अमरूदों में, अब लाल–लाल चित्तियाँ पड़ी।
पक गए सुनहरे मधुर बेल, अवली से तरु की डाल जड़ी।
लहलह पालक, महमह धनियाँ, लौकी और सेम फली फैली।
मखमली टमाटर हुए लाल, मिर्चों की बड़ी हरी थैली।
बगिया के छोटे पेड़ों पर, सुंदर लगते छोटे छाजन।
सुंदर गेहूँ की बाली पर मोती के दाँतों से हिमकन।

इसके अतिरिक्त पंत जी की कविता ''यह धरती कितना देती है'' भी बच्चों का का भरपूर मनोरंजन करती है। डॉ0 श्री प्रसाद का कहना है कि इस कविता का पाठ पंत जी ने बच्चों के बीच में किया था, तथा इस पर बालकाव्य की मुहर लगाई थी। वे लिखते हैं कि–

''इसमें कल्पना भी बच्चों की है। जो बोया जाएगा, वही काटा जाएगा, की व्यंजना बालकल्पना में अभिधा बनती रही है, और बच्चे जमीन में खिलौना और पैसा गाड़कर पैसा पाने की चेष्टा करते रहे हैं। पर रत्नगर्भा धरती में अनुकूल बुवाई ही फल देती है । कविता द्विअर्थी भी है और एकार्थी भी। बच्चे कविता में अपना अर्थ खोज ही लेते हैं। कवि ने बचपन में पैसे बोए पर पैसे नहीं मिले। लेकिन जब आँगन में सेम के बीज बो दिए तो आँगन सेम

की फलियों से लदी हरी–भरी बेलों से भर गया।''[14]

पंत जी की यह पंक्तियाँ कितनी उद्‌बोधक हैं–

ओह, समय पर उनमें कितनी फलियाँ फूटीं
कितनी सारी फलियाँ, कितनी प्यारी फलियाँ।
पतली–चौड़ी फलियाँ, उफ, उनकी गिनती क्या?

आह, इतनी फलियाँ टूटीं, जाड़ों भर खाई
सुबह शाम वे घर–घर पकीं पड़ोस पास के
जाने–अनजाने सब लोगों में बँटवाई।

चींटी कविता में बच्चों के मन में उठने वाली जिज्ञासाओं का समाधान बड़े रोचक ढंग से किया गया है। सावन कविता में वर्षा ऋतु का बड़ा मनोहारी चित्र खींचा गया है। कविता के अंत में पंत जी की अनूठी कल्पना बरबस ही हमारा ध्यान खींच लेती है। यह पंक्तियाँ हैं–

पकड़ वारि की धार झूलता है मेरा मन
आओ रे सब मुझे घेरकर गाओ सावन।
इंद्रधनुष के झूले में झूलें सब मिल जन
फिर–फिर आए जीवन में सावन मनभावन।

छायावाद के एक और प्रतिष्ठित कवि जयशंकर प्रसाद ने वैसे तो बच्चों के लिए विशेष रुप से कुछ नहीं लिखा है, परंतु उनकी कुछ कहानियाँ अवश्य बालोपयोगी हैं। उनकी कहानियाँ बच्चों के पाठ्यक्रमों में कई वर्षों से पढ़ाई जा रही हैं । विशेष रुप से विभिन्न राज्यों के पाठ्यक्रमों में कक्षा 6 से लेकर कक्षा 8 के पाठ्यक्रमों में उनकी कुछ कहानियाँ देखी जा सकती हैं । जयशंकर प्रसाद की एक प्रसिद्ध कहानी ''छोटा जादूगर'' में बाल मनोविज्ञान की बहुत अच्छी पकड़ है। उनकी एक अन्य कहानी बालक चंद्रगुप्त में ऐतिहासिकता का पुट है। वैसे भी प्रसाद जी ऐतिहासिक कहानियों के जादूगर हैं। ऐतिहासिकता का जितना अच्छा निर्वाह प्रसाद जी अपनी कहानियों में करते हैं, वैसा अन्यत्र देखने को नहीं मिलता है। बालक चंद्रगुप्त कथा के अंत में कथाकार का यह कथन द्रष्टव्य है– ''आगे चलकर यही बालक उसी ब्राह्मण चाणक्य की सहायता से चक्रवर्ती सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य हुआ, जो ईसा के 321 वर्ष पहले, मगध में पाटलिपुत्र के राजसिंहासन पर बैठा और अपने बाहुबल से सिकंदर के यूनानी साम्राज्य के आतंक से भारत को स्वतंत्र किया।''

इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावादी कवियों ने बालसाहित्य को अपनी रचनाओं से सजाया और सँवारा है। कविता, कहानी तथा नाटक सहित अलग–अलग दिशाओं में विपुल बालसाहित्य बिखरा पड़ा है परंतु विडंबना यह है कि इन रचनाकारों के जो समग्र संकलन प्रकाशित किए जाते हैं उनमें इनके बालसाहित्य सृजन की चर्चा तक नहीं की जाती है। आज आवश्यकता इस बात की है कि यत्र–तत्र बिखरा हुआ छायावादी कवियों का बालसाहित्य संग्रह करके उनका एक संकलन तैयार किया जाए जिससे लोगों का भ्रम तो टूटे कि हिंदी में विशेष रुप से छायावाद के कवियों ने बाल साहित्य का सृजन नहीं किया है।

महादेवी वर्मा की मृत्यु के बाद उनकी बालकविताओं के दो संकलन– 'माँ के ठाकुर जी भोले हैं' तथा ''बया हमारी चिड़िया रानी'' प्रकाशित हुए थे। सात खण्डों में प्रकाशित सुमित्रानंदन पंत ग्रंथावली की तरह अलग से एक खण्ड उनकी बालकविताओं का भी प्रकाशित होना चाहिए। राजपाल एण्ड संस दिल्ली से बारह खण्डों में प्रकाशित अमृतलाल नागर रचनावली में उनके बालसाहित्य सृजन की कहीं कोई चर्चा नहीं की गई थी मगर पाठकों की

जबर्दस्त माँग पर सन् 2011 में नागर जी के सुपुत्र शरद नागर के संपादन में 'संपूर्ण बालरचनाएँ : अमृतलाल नागर', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ। यह एक स्वागतयोग्य कदम था।

पिछले तीन–चार दशकों में बड़ो के लिए लिखने वाले जिन साहित्यकारों ने बालसाहित्य भी लिखा है, उनके समग्र रचनावली ग्रंथावली में उनका बालसाहित्य अवश्य संकलित किया गया है। ऐसे ग्रंथों में – भारतभूषण अग्रवाल रचनावली, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावली, बच्चन रचनावली, निराला रचनावली, रामवृक्ष बेनीपुरी रचना संचयन आदि में उनके बालसाहित्य सृजन का भी प्रतिनिधित्त्व हुआ है।

अंत में डॉ0 श्रीप्रसाद के इस महत्त्वपूर्ण विचार से इस आलेख का समापन करना चाहेंगे कि – 'बालसाहित्य संपूर्ण बालपीढ़ी का प्रतिनिधित्त्व करता है तथा उसका उपभोक्ता भी बाल–समाज है। जैसे बड़ों के साहित्य का उपभोक्ता बड़ों का समाज है। इसीलिए भारत ही नहीं विश्व के महान साहित्यकारों ने बालसाहित्य रचना में रुचि ली है।'

संदर्भ ग्रंथ

1. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास : पृष्ठ 218
2. बालसाहित्य की मान्यताएँ एवं आदर्श : संपादक – डॉ0 देवेन्द्र दत्त तिवारी, अगस्त 1962, पृष्ठ 11
3. बालसाहित्य की मान्यताएँ एवं आदर्श : संपादक – डॉ0 देवेन्द्र दत्त तिवारी : अगस्त 1962, पृष्ठ 12, 13
4. बालसाहित्य की मान्यताएँ एवं आदर्श : संपादक – डॉ0 देवेन्द्र दत्त तिवारी : अगस्त 1962, पृष्ठ 14
5. बाल की मान्यताएँ एवं आदर्श : संपादक – डॉ0 देवेन्द्र दत्त तिवारी : अगस्त 1962, पृष्ठ 16
6. निराला रचनावली रूसातवाँ खंड, पृष्ठ 9
7. निराला रचनावली रूभाग 7, पृष्ठ 14
8. निराला रचनावली – भाग 7 : पृष्ठ 14
9. निराला रचनावली : भाग 7 : पृष्ठ 133
10. निराला रचनावली : भाग 7, पृष्ठ 71
11. निराला रचनावली : भाग 7 : पृष्ठ 295
12. उत्तर प्रदेश (मासिक पत्रिका) : नवंबर 1989 : पृष्ठ 26
13. उत्तर प्रदेश (मासिक पत्रिका) : नवंबर 1989 : पृष्ठ 27
14. उत्तर प्रदेश (मासिक पत्रिका) : नवंबर 1989 : पृष्ठ 27

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

संस्मरण विधा की उत्कृष्ट कृति : 'स्मृति के वातायन'

डॉ0 आशा वर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग
डी0बी0एस0 कालेज, कानपुर

डॉ0 सुरेश चन्द्र गुप्त एक बहुआयामी प्रतिभा के धनी हैं। कवि, समीक्षक, सम्पादक, निबन्धकार आदि के रूप में तो वे विख्यात हैं ही अपने संस्मरण संग्रह 'स्मृति के वातायन' से वे एक उत्कृष्ट संस्मरणकार के रूप में भी पाठकों पर अपनी अमिट छाप छोड़ने में सफल रहे हैं। स्मृतियों के झरोखों से अपने पात्रों के जीवन, परिवेश और घटनाओं की जो सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक अनुरंजक एवं मनोहारी परिचय स्मृतिकार करते हैं, वह प्रशंसनीय है। पात्रों सहित संस्मरणकार का जो अन्तर्वाह्य खुलता है, पाठक उससे पूरी तरह तादात्म्य स्थापित कर लेता है। उनके संस्मरणों में विचित्र पात्र पाठकों के इर्द–गिर्द घूमते, बातचीत करते, हाथों में हाथ डाले टहलते दिखाई देते हैं। पाठक को इस बात का पता ही नहीं चलता कि वह आभासित सत्य को पढ़ रहा है, अपितु उसे सर्वत्र यही लगता है कि वह संदेह संस्मरणकार की अँगुली पकड़े उसकी रचना–यात्रा की वीथियों में उसके साथ सहज भ्रमण कर रहा है।

संस्मरण की परिभाषा देते हुए डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा कहते हैं, ''संस्मरण में लेखक जो स्वयं देखता है, जिसका वह स्वयं अनुभव करता है, उसी का वर्णन मिलता है। उसके वर्णन में उसकी अपनी अनुभूतियाँ और संवेदना भी रहती हैं।''[1] डॉ0 रामचन्द्र तिवारी के अनुसार, ''संस्मरण किसी स्मर्यमाण की स्मृति का शब्दांकन है। स्मर्यमाण के जीवन के वे पहलू, वे सन्दर्भ और वे चारित्रिक वैशिष्ट्य जो स्मरणकर्ता को स्मृत रह जाते हैं, उन्हें वह शब्दांकित करता है। स्मरण वही रह जाता है, जो महत् विशिष्ट, विचित्र और प्रिय हो। स्मर्यमाण को अंकित करते हुए लेखक स्वयं भी अंकित होता चलता है।''[2] ऐसा ही डॉ0 गुप्त के संस्मरणों में हुआ है। यदि यह कहा जाए कि 'स्मृति के वातायन' में संस्मरण, रेखाचित्र और आत्मकथा की अद्भुत त्रिवेणी बहती है, तो अतिशयोक्ति न होगी। यही कारण है कि डॉ0 गुप्त किसी विधा विशेष के लेखक नहीं है, बल्कि सच्चे अर्थों में एक ऐसे रचनाकार हैं, जिनकी हर रचना अद्भुत होती है, विशिष्ट होती है और मन को आन्दोलित करने वाली होती है।

विशिष्ट व्यक्तियों को केन्द्र में रखकर संस्मरण को रचने का मिथक डॉ0 गुप्त तोड़ते हैं। उन्होंने अपने जीवन के अभिन्न अंग अपनी माँ, बड़े भाई, चाचा आदि के साथ–साथ अपने मोहल्ले, कार्यक्षेत्र से जुड़े लोग और सम्पर्क में आने वाले लोगों में भी विशिष्टता देखी और अपने कृति में एक अनुपम रूप दे दिया। 'स्मृति के वातायन' में आये संस्मरणों की विशेषता है कि इसमें युगीन परिवेश और समय की भीषणता को चित्रित करने वाले कुछेक संस्मरण भी हैं। 'ईश्वर! मुझे परीक्षा में मत डाल', 'पुरस्कार भगवान् दिलाए नहीं किसी को' एवं 'जातस्य ही ध्रुवं मृत्युः' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

'ईश्वर! मुझे परीक्षा में मत डाल', संज्ञक संस्मरण यथार्थ के धरातल पर चित्रित एक ऐसा युगीन सत्य है, जो वर्तमान में व्याप्त शिक्षा–परीक्षा प्रणाली की पूरी खोखली एवं विध्वंसकारी व्यवस्था को उजागर करता है। यह संस्मरण, संस्मरण कम आज की परीक्षा व्यवस्था पर व्यंग्य अधिक जान पड़ता है।

22 सितम्बर 1975 की अपनी डायरी में डॉ0 गुप्त अपनी पीड़ा को व्यक्त करते हुए लिखते हैं, ''आज से पुनर्परीक्षा प्रारम्भ हो गयी। मई–जून की परीक्षाएँ जितने गलत ढंग से चली थीं, ये परीक्षाएँ उतने ही सही ढंग से प्रारम्भ हुईं और लगता है कि अन्त तक इसी प्रकार भलीभाँति चलती रहेंगी।''[3] संस्मरण में बहुत स्वाभाविक और आम बोलचाल का भाषा का प्रयोग किया गया है। जिससे यह सर्वसुलभ और समय–सापेक्ष बन पड़ा है। यद्यपि

इसमें कहीं–कहीं पर गालियों और अभद्र शब्दों का प्रयोग है, जो संकीर्ण मानसिकता वाले लोगों की आँखों में खटक सकते हैं, लेकिन इसके लेखक की स्पष्टवादिता, निर्भीकता और 'बोल्डनेस' का प्रमाण मिलता है।

'तान के सीना चली हसीना' डॉ0 गुप्त का एक उत्कृष्ट संस्मरण हैं उक्त संस्मरण को पढ़ना एक सुखद अनुभूति प्रदान करने जैसा है।

भरी वासना सरिता का वह, कैसा था मतमत्त प्रवाह।
प्रलय–जलधि में संगम जिसका, देख हृदय था उठा कराह।।[4]

हसीना को देखकर जिनका हृदय उसे पाने की पीड़ा से कराह उठे ऐसे अनेकानेक मनु उपलब्ध थे, यह वर्णन पढ़कर बेहद रोमांच होता है। डॉ0 गुप्त द्वारा हसीना की सुन्दरता का ही नहीं उसके सौन्दर्यहीन होने का वर्णन भी डॉ0 गुप्त ने किया है, ''...देखते ही देखते हसीना का सौन्दर्य ढल गया –– हिमालय के उत्तुंग शिखर धराशायी, लुढ़कते–पुढ़कते। साज–श्रृंगार भी नहीं।''[5] आशय स्पष्ट है कि डॉ0 गुप्ता हसीना की तरुणाई से लेकर उसकी ढलाई तक के सहज साक्षी हैं, अच्छे द्रष्टा हैं और समग्रतः प्रस्तोता हैं।

'बिछुरत एक प्रान हरि लेंही' एक उत्कृष्ट कोटि का संस्मरण है, जिसमें कानपुर विश्वविद्यालय से सम्बद्ध 'ब्रह्मावर्त डिग्री कॉलेज, मंधना' में अपने प्राध्यापकीय जीवन की शुरुआत और मात्र वहाँ की दो महीने की नौकरी के बाद कालेज छोड़ने की घटना, कॉलेज छोड़ते समय का सम्मान–समारोह आदि को अत्यन्त भावुकता के साथ प्रस्तुत किया गया है। बरेली कॉलेज, बरेली में सत्ताईस वर्ष बिताने के बाद 30 जून 2000 को आयोजित डॉ0 गुप्त के विदाई समारोह पर भारी पड़ी मंधना कॉलेज की मात्र दो माह की नौकरी, केवल एक घण्टे की तैयारी में आयोजित विदाई समारोह की अविस्मरणीय यादें, ब्रह्मावर्त डिग्री कॉलेज के छात्र, शिक्षक, प्राचार्य और प्रबन्धक के प्रति अभिभूत होकर लिखा गया संस्मरण डॉ0 गुप्त के अच्छे, ईमानदार, अनुशासन प्रिय अध्यापक होने के साथ–साथ ईमानदार और सहृदय लेखक होने का प्रमाण है।

'पुरस्कार भगवान दिलाए....' संज्ञक संस्मरण में डॉ0 गुप्त लिखते हैं, सच तो यह है कि हमारे अधिकांश विभागीय बन्धु ईर्श्यादग्ध हैं। कुछ ने प्राचार्य जी को अनुचित रूप से प्रभावित कर रखा है, पर इससे मेरा कुछ नहीं बिगड़ता। स्वाभाविक है कि सहयोगियों और समकालीनों में ईर्ष्या–द्वेष रहता ही है। अब निराला, महादेवी, बच्चन आदि समकालीनों को न मिलकर ज्ञानपीठ पुरस्कार कविवर सुमित्रानन्दन पन्त को मिला, तो निकटवर्ती सहित्यकारों ने भी ईर्ष्या भाव ही व्यक्त किया था। उन दिनों पंत जी ने बहुत व्यथित होकर किंचित व्यंग्य के रूप में लिखा था –

पुरस्कार भगवान् दिलाये नहीं किसी को
मित्र शत्रु, हो जाते इससे, और प्रशंसक
कटु आलोचक बन, कृतित्व के साथ अपने
लघु चरित्र को बना दूषणों को पहाड़ पृथु
आत्मतुष्टि पाते हैं, तिल का ताड़ बनाकर।
कौन न्याय कर सकता, कौन बड़ा सर्जक है?
पुरस्कार पा क्या लेखक महान् हो जाता?
मैं उसका अनुमोदन करता–पुरस्कार से
लेखक कभी महान नहीं हो सकता निश्चित,
वर कृतियाँ ही शाश्वत कीर्ति स्तम्भ स्रष्टा का।
पुरस्कार से इनको भी भगवान बचाये
इनको भी सुनना न पड़े यह सब औरों से।[6]

गुप्त जी ने लिखा है, ''माना कि पुरस्कारों की अपनी राजनीति है, यशलिप्सु रचनाकार पुरस्कार खरीदते हैं, संस्थाएँ खड़ी करके पुरस्कारों का आदान–प्रदान करते हैं, और भी नाना प्रकार के दाँव–पेंच चलते हैं। मुझे संतोष है कि मेरा पुरस्कार ही मेरे श्रम का प्रतिफल है, ईश्वरीय अनुकम्पा का वरदान है। यशलिप्सा मुझमें हैं। पुरस्कार प्राप्ति हेतु समय–समय पर आवेदन भी करता रहता हूँ। पर विकार की राजनीति से बचता हूँ।''[7]

'जातस्य कि ध्रुवं मृत्युः' एक लम्बा संस्मरण है, जिसमें कुल जमा पाँच लोगों को अत्यन्त भावुक क्षणों में याद किया गया है। पिता की मृत्यु, सहपाठी श्याम की मृत्यु, ककुआ अर्थात् काका (चाचा) की मृत्यु, बुलाकी धोवी की पत्नी विमला का आत्महत्या का असफल प्रयास एवं दादा अर्थात् बड़े भाई की महाप्रयाण यात्रा के बाद लिखे गये संस्मरणों को इस शीर्षक के अन्तर्गत संकलित किया गया है।

पिता की मृत्यु के बारे में डॉ0 गुप्त लिखते हैं, ''वह पहली मृत्यु थी, जिसका साक्षात्कार मैंने किया था। उस समय नहीं समझ सका था, पर बाद में पग–पग पर अनुभव हुआ कि पिता क्या होता है, पिता के अभाव में विधवा माँ को किन–किन परिस्थितियों से गुजरना पड़ता है? अबोध बच्चों को पालना, उनकी शिक्षा, संरक्षण आदि कितना दुश्कर है?.... भगवान किसी बच्चे के सिर से उसके माता–पिता का साया न हटाएँ।''[8]

श्यामजी डॉ0 गुप्त का सहपाठी था, की ठोकर लगकर गिरने के बाद हुई मृत्यु की घटना को याद करते हुए डॉ0 गुप्त लिखते हैं, ''मैं, तब कक्षा–आठ का छात्र था।... आज याद करता हूँ तो दुखी होता हूँ कि साथ वाला लड़का गिर गया, मैंने उठाया भी नहीं। इतना संवेदनहीन हो गया था कि दिन भर कक्षा में आये, न उसे देखने गया, न घर वालों से जाकर मिला, जबकि यह मेरे ही मुहल्ले का था, सहपाठी था। सच तो यह है कि तब तो उसके बारे में कोई भी विचार नहीं आया था, पर आज मृत्यु का वह रूप मुझसे भुलाए नहीं भूलता।''[9] डॉ0 गुप्त की यह स्पष्टवादिता और रचनात्मक ईमानदारी मन मोह लेती है। ककुआ की मृत्यु के बारे में डॉ0 गुप्त लिखते हैं, ''वह पहली मौत थी जो मैंने समझदार होने पर अपनी आँखों के सामने घटित देखी थी। यह मृत्यु अप्रत्याशित थी। ...वह दिन और आज का दिन। उन पलों का स्मरण मात्र दिल को हिला देता है।''[10] जीवन सभी को प्रिय है, कोई भी मरना नहीं चाहता। बूढ़ा हो जाना मंजूर, बीमार–परेशान रहना स्वीकार पर मरना नहीं। लेकिन, कभी–कभी परिस्थितियाँ ऐसी हो जाती हैं कि जीवन दुर्वह हो जाता है, संत्रास, कुंठा आदि ऐसे अनेक कारण हैं, जो जीवन के प्रति मोह समाप्त कर देते हैं। अवसाद, बेचैनी और हताशा से ग्रस्त हाकर व्यक्ति मानसिक संतुलन खो बैठता है, और अचानक ही आत्महत्या कर बैठता है। कुछ ऐसी ही परिस्थिति में बलाकी धोबी की 22–23 वर्षीया पत्नी विमला, जो तीन माह के पेट से थी, आत्महत्या करने की गरज से कुएँ में छलांग लगा लेती है। पर, ईश्वर की लीला। न उसे कुछ हुआ, न गर्भस्थ शिशु को। कुछ ऐसी ही हसरत अवसाद के क्षणों में कभी स्वयं लेखक ने भी पाल रखी थी, जब उसने अपनी लम्बी बीमारी से घबराकर 1954 में 'मरण का वरण' शीर्षक कविता लिखी। कविता की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं ––

अब बहुत ऊब चुका जग से
प्रिय! तेरा साथ चाहता हूँ
शीघ्र भव–बंधन से कर दूर
मरण का वरण चाहता हूँ।।[11]

लेकिन कर्मयोगी डॉ0 गुप्त ने परिस्थितियों से हार नहीं मानी और 'चरैवेति, चरैवेति' को अपने जीवन का मूलमंत्र बनाया तथा जीवेम शरदः शतम् की भावना में विश्वास रखने लगे। डॉ0 गुप्त स्वयं लिखते हैं, ''दुख, पीड़ा, विशाद, अवसाद, कुंठा, संत्रास आदि मेरे प्रिय सहचर रहे हैं। प्रायः सात वर्ष तक रोगाक्रान्त होने के कारण शय्यासीन रहा, इतना भी नहीं कि अपने पैरों पर खड़ा ही हो सकूँ।[12]... मुझमें अनेक बार टूट–फूट हुई। दोनों घुटनों का आपरेशन सन् 1965 में हो चुका था। सन् 1993 में पथरी निकालने के लिए पेट का आपरेशन हुआ। मोतियाबिन्द

के सन्दर्भ में दोनों आँखों का आपरेशन हो चुका है और अभी दो–तीन वर्ष पूर्व 25 मई 2007 को (अब नौ वर्ष पूर्व) स्नानगृह में गिर जाने से जाँघ की हड्डी टूट गयी। अब वाकर की सहायता से चलता हूँ। नेत्र ज्योति क्षीण हो गयी है, पर कर्मशीलता उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। सामान्य स्वास्थ्य अच्छा है, यद्यपि मधुमेह, सोराइसिस संधिवात् जैसे अनेक रोगों ने आक्रान्त कर रखा है, पर तन–मन से मैं अत्यन्त स्वस्थ और सबल हूँ। कभी सोचता था कि 70–72 तक जी सकूँगा –– आर्थिक––पारिवारिक विषयों से सम्बन्धित योजनाएँ 70 तक की ही बनाई थीं। पर, अब विश्वास है कि 85 वर्श तक जीऊँगा ही, 90–92 तक भी जी सकता हूँ।[13]

जब तक मृत्यु को पराभूत रख सकूँगा, तभी तक तो पत्नी सुहागवती रह सकेगी। उसे दुख क्यों दूँ? पुत्रों को संरक्षण–रहित क्यों छोड़ूँ? मुझे जीना है, जब तक सम्भव है, खुशी–खुशी जीना है। हे प्रभु! भय से अभय की ओर, और मृत्यु से अमृत की ओर ले जाओ––मृत्योऽमृतम और शत वर्ष तक जीने की सामर्थ्य दो––'जीवेम् शरदः शतम्।''[14]

'सुन्दर' और 'ठाकुर' संस्मरण गुप्त जी के उनके सहपाठियों से सम्बन्धित हैं।

'सुन्दर' संस्मरण में गुप्त जी के बचपन के सहपाठी सुन्दर के विषय में है जो उनके साथ कक्षा–3 में पाठशाला में पढ़ा करता था। सुन्दर बारी जाति का था उसके परिवार में पत्तल, सकोरे, दोने आदि बनाये जाते थे। सुन्दर को याद करते हुए गुप्त जी लिखते हैं –

धरती सुन्दर, अम्बर सुन्दर
मानव सबसे सुन्दरत्तर
मेरा सुन्दर, सबसे सुन्दर।[15]

'ठाकुर' शीर्षक संस्मरण उन्होंने अपने सहपाठी ठाकुर, पूरा नाम रामचन्द्र सिंह, एम0ए0, एल0एल0बी का चित्रण किया है, जो लखनऊ विश्वविद्यालय के हबीबुल्ला छात्रावास में उनके साथ एक ही कमरे में रहता था और एम0ए0 अंग्रेजी का छात्र था। ठाकुर सम्पन्न परिवार का होने के बावजूद मनोविकृति का शिकार था और साथियों को अपने से अच्छा जीवनयापन करते देख हीनता बोध से ग्रसित था। गुप्त जी ने लिखा है – ''जीवन पथ में कुछ व्यक्ति ऐसे मिल जाते हें, जो भुलाए नहीं भूलते। वे अच्छे थे या बुरे, प्रिय थे या अप्रिय – इस तर्क में पड़ना उचित नहीं लगता, क्योंकि गुण–दोष सभी में होते हैं। कुछ चतुर लोग अवगुण छिपा लेते थे और कुछ ऐसे होते हैं जो अवगुणों की नुमाइश लगाते प्रतीत होते हैं – ऐसे ही एक व्यक्ति हैं – ठाकुर।''[16]

पुस्तक का सबसे महत्वपूर्ण और श्रेष्ठ संस्मरण है, 'माता बिनु आदर कौन करे', जो लेखक की पूजनीया माँ पर केन्द्रित है। अम्मा अर्थात् माँ को याद करते समय उसके विभिन्न रूप, संघर्ष, त्याग, तपस्या, ममत्व आदि को स्मरण करते हुए लेखक भावुक हो उठता है। कबीर आदि को उद्धृत करने के साथ ही माँ द्वारा बार–बार कही जाने वाली बात, 'माता बिनु आदर कौन करे, धरती बिनु धीरज कौन धरे'[17] की याद आती है और अचानक लेखकर का चिन्तन उस समय उत्कर्ष को प्राप्त करता है। जब वह पत्नी इन्दु के त्याग, तपस्या व लगन को माँ का त्याग, तपस्या और लगन के समतुल्य आँकने लगता है। उसे लगता है कि उसकी पत्नी उसके लिए उसकी अम्मा ही है।

निष्कर्षतः, कहा जा सकता है कि पुस्तक में संग्रहीत सभी संस्मरण अपनी भाषिक क्षमता और शिल्प–विधान के बल पर जादुई संस्पर्श का अहसास कराते हैं। इन संस्मरणों को एक बार पढ़ लेने के बाद बार–बार पढ़ने का मन करता है। जैसे डॉ0 गुप्त अपने संस्मरणों के विषय में लिखते हैं कि, 'मन उड़ि जात अजौ'। वहाँ वैसे ही पुस्तक पढ़ने के बाद मुझे कहने का जी करता है कि 'मेरो मन अनत कहाँ सुख पावे।'

सन्दर्भ संकेत

1. संस्मरण : एक परिचायात्मक अध्ययन – डॉ0 रामदरश मिश्र, भावना प्रकाशन, सोनीपत, 2007, पृ0–80
2. संस्मरण : एक परिचायात्मक अध्ययन – डॉ0 रामदरश मिश्र, भावना प्रकाशन, सोनीपत, 2007, पृ0–80

3. स्मृति के वातायन, डॉ0 सुरेश चन्द्र गुप्त, अभिलेख प्रकाशन, बरेली, 2010, पृ0–58
4. स्मृति के वातायन, डॉ0 सुरेश चन्द्र गुप्त, अभिलेख प्रकाशन, बरेली, 2010, पृ0–34
5. स्मृति के वातायन, डॉ0 सुरेश चन्द्र गुप्त, अभिलेख प्रकाशन, बरेली, 2010, पृ0–36
6. स्मृति के वातायन, डॉ0 सुरेश चन्द्र गुप्त, अभिलेख प्रकाशन, बरेली, 2010, पृ0–67
7. स्मृति के वातायन, डॉ0 सुरेश चन्द्र गुप्त, अभिलेख प्रकाशन, बरेली, 2010, पृ0–67
8. स्मृति के वातायन, डॉ0 सुरेश चन्द्र गुप्त, अभिलेख प्रकाशन, बरेली, 2010, पृ0–71
9. स्मृति के वातायन, डॉ0 सुरेश चन्द्र गुप्त, अभिलेख प्रकाशन, बरेली, 2010, पृ0–72
10. स्मृति के वातायन, डॉ0 सुरेश चन्द्र गुप्त, अभिलेख प्रकाशन, बरेली, 2010, पृ0–75
11. स्मृति के वातायन, डॉ0 सुरेश चन्द्र गुप्त, अभिलेख प्रकाशन, बरेली, 2010, पृ0–77
12. स्मृति के वातायन, डॉ0 सुरेश चन्द्र गुप्त, अभिलेख प्रकाशन, बरेली, 2010, पृ0–77
13. स्मृति के वातायन, डॉ0 सुरेश चन्द्र गुप्त, अभिलेख प्रकाशन, बरेली, 2010, पृ0–80
14. स्मृति के वातायन, डॉ0 सुरेश चन्द्र गुप्त, अभिलेख प्रकाशन, बरेली, 2010, पृ0–80
15. स्मृति के वातायन, डॉ0 सुरेश चन्द्र गुप्त, अभिलेख प्रकाशन, बरेली, 2010, पृ0–81
16. स्मृति के वातायन, डॉ0 सुरेश चन्द्र गुप्त, अभिलेख प्रकाशन, बरेली, 2010, पृ0–87
17. स्मृति के वातायन, डॉ0 सुरेश चन्द्र गुप्त, अभिलेख प्रकाशन, बरेली, 2010, पृ0–20

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

नागार्जुन के काव्य में लोक चेतना

अनिरूद्ध गोयल
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, हिन्दी
बुन्देलखण्ड कॉलेज, झाँसी

प्रगतिशील कवि नागार्जुन आधुनिक हिन्दी काव्य के सर्वाधिक लोकचेतना के कवि हैं। मिथिलांचल के इस साहित्य साधक ने अपनी काव्य प्रतिभा से देश की माटी का न केवल संस्पर्श किया, उसे अपने माथे पर अर्पित किया, प्रत्युत उन्होंने भावों के विराट दिशा–दिशान्तरों को भी उजागर किया। नागार्जुन धरती के सच्चे सपूत हैं, उन्होंने पीड़ित शोषित जन समूह के लिये अपने को सम्पूर्णतः सौंप दिया है, भूख और गरीबी की मार से चीखते बिलबिलाते लोगों की वेदना को गहराई से अनुभव कर इस जन कवि ने वर्ग संघर्ष का विगुल बजाया है। उन्होंने दुःख के कारक तत्वों की बारीकी से पड़ताल की तथा पूरी सहानुभूति के साथ दुखी जनों को जोड़ने का जोखिम भी उठाया है वस्तुतः बाबा नागार्जुन जनता के कवि हैं, उनका समूचा साहित्य लोक चेतना से आपूरित है। यह उनके काव्य व्यक्तित्व का सर्वाधिक सबल पक्ष है।

21 सितम्बर 1959 ई0 को डा0 रामविलास शर्मा के नाम एक पत्र में बाबा नागार्जुन ने लिखा था – ''मैं कवि तो नहीं, मामूली साहित्यकार भी नहीं। हाँ आदमी बनने की कोशिश जरूर है....।'' नागार्जुन के साहित्य की प्रत्येक विधा और प्रत्येक रचना में यह आदमी बनने की सम्भावना स्पष्ट दिखाई देती हे। विद्यापति, कबीर, रवीन्द्र और निराला की समृद्ध परम्परा को अपने में संजोये, नागार्जुन के व्यक्तित्व को समझना आसान नहीं है। आपके मूल्यांकन के लिये कई–कई भाषाओं, संस्कृतियों के साथ–साथ कलकत्ता–दरभंगा–पटना–बनारस–इलाहाबाद–दिल्ली–विदिशा आदि की यायावरी भी करनी होगी, वह भी स्वयं नागार्जुन जैसी। पूरे क्षेत्र को आत्मसात करते हुये पैनी निगाह, विशाल हृदय, संवेदनशीलता से गुजरना होगा तभी बाबा नागार्जुन के साहित्य को समझा जा सकता है।

बाबा नागार्जुन की काव्ययात्रा उनकी जीवन यात्रा से अलग नहीं है। इसलिये आप जहाँ जाते हैं, वहाँ की प्रकृति और जिन्दगी के अनुभवों में कविता की तलाश करते हैं। बाबा नागार्जुन देश–काल की ठोस वास्तविकताओं में अपनी कविता की अन्तरवस्तु की तलाश करते हैं। आपकी कविताओं का स्त्रोत अवचेतन नहीं है। आप चुनाव अनुभव से करते हैं और अनुभव यात्राओं से बना है। आपके साहित्य की व्यापकता केवल विषय वस्तु के आधार पर ही नहीं है बल्कि भाषाओं के आधार पर भी है। यह भाषिक विविधता संवेदना और अनुभव के धरातल पर आपके साहित्य की दुनिया को व्यापक बनाती है। आपके साहित्य की दुनिया में आत्मस्वीकार के क्षण है।

मनुष्य से लेकर पशु–पक्षी तक पहुँचने की करुणा है। दलित, पीड़ित, उत्पीड़ित व्यक्ति की चिंता है, प्रखर राजनीतिक चेतना है, जनसंघर्षों की सच्ची सहानुभूति है, नई पीढ़ी से उनका लगाव है, तीखा व्यंग्य है, प्रकृति है। यह कहा जा सकता है कि आपने हिन्दी में साहित्य को भूमि का विस्तार किया है। आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी ने कहा है – ''हिन्दी उपन्यास को नई दिशा देने में नागार्जुन उल्लेखनीय व्यक्ति है।''[1]

आधुनिक हिन्दी के इतिहास में और विशेषतौर पर छायावादोत्तर कविता में नागार्जुन सर्वाधिक चर्चित कवि हैं। आपकी राजनैतिक चेतना दोनों स्तर पर व्याप्त है – एक तो जन आन्दोलन के आधार पर दूसरा–आन्दोलनों में सक्रिय भागीदारी के रूप में। आपकी रचनाओं में क्रांति का समूचा चरित्र राजनीतिक है। समाज व्यवस्था, सत्ता का संगठन और उसके विरूद्ध संघर्ष इन सभी की प्रकृति राजनीतिक है। यही कारण है कि आपकी कविता यथार्थ को राजनीति के अनुशासन से सम्बद्ध करती है। इसी कारण आपकी रचना में सत्ता के आताताई पक्ष का उद्घाटन है–

''सत्य सवयं घायल हुआ, गई अहिंसा चूक
जहाँ तहाँ दगने लगी, शासन की बंदूक।''

बाबा नागार्जुन की रचनाओं का मूल साधारण के सम्मान में सम्बन्धित है और जहाँ कहीं भी समाज में असमानता के बीज है उनको नागार्जुन ने अपनी रचनाओं में स्पष्ट रूप से उद्घाटित किया है। विषमता का अर्थ है – सुविधाओं का मानवीय आवंटन। जो धरती समृद्धि का आधार है इसमें किसी भी प्रकार की मानवीय तर्क की अनुपस्थिति विषमता को जन्म देती है। बाबा नागार्जुन की कविता स्पष्ट करती है कि इसके केन्द्र में साधारण मनुष्य है, जिन्हें इतिहास तथा सत्ता दर्ज नहीं करती, लेकिन उनके श्रम के कारण यह पूरी व्यवस्था चल नहीं सकती। इसलिये बाबा नागार्जुन उनको प्रणाम करते हुये लिखते है –

''मैं उनको करता हूँ प्रणाम,
जो नहीं हो सके पूर्ण काम,
जिनकी सेवायें अतुलनीय,
पर विज्ञापन से रहे दूर,
प्रतिकूल परिस्थिति ने जिनके,
कर दिए मनोरथ चूर–चूर
उनको प्रणाम !''[2]

बाबा नागार्जुन की कवितायें एक बड़ी मानवीय भूमिका रेखांकित करती है। इसलिये आपकी कविता का एक प्रमुख उद्देश्य है जो है – शोषितों का पक्ष लेना। इसी कारण नागार्जुन अपने को जनकवि घोषित करते हैं –

''जनता मुझसे पूछ रही है, क्या बतलाऊँ,
जनकवि हूँ मैं आज कहूँगा, क्या हकलाऊँ।''

आजादी के बाद की हिन्दी कविता में अंतिम आदमी के सम्पूर्ण जर्जर दशा का नागार्जुन ने जो वर्णन किया है, जो सहानुभूति दिखाई है उनकी चेतना को जाग्रत करने का जो प्रयत्न किया है – वह अन्यत्र दुर्लभ है। गाँव शहर से लेकर महानगरों तक का वर्णन उन्होंने चित्रात्मक रूप से किया है। कहीं वह मजदूरी करता हुआ दिखता है, कहीं रेलगाड़ी खींचते हुए, कहीं पोखर तालाब में धंसते हुए मछली पकड़ रहा होता है। कवि उनका यथार्थ चित्रण तो करता ही है उनके साथ खड़े होकर उनकी दुर्दशा करने वालों की भी खबर लेता है। बाबा नागार्जुन की कविता में 'भूख' के अनगिनत वर्णन किये गये हैं। कवि की संवेदना भूखे–नंगों के प्रति है इसलिये आपके अन्दर व्यवस्था के प्रति तीव्र विद्रोह है। भारतेन्दु कविता में इसी कारण आप पूछ बैठते हैं –

''मूर्च्छित हैं हल–बैल और भूखी धरती है,
इस आजादी का क्या करें बिना भूमि के खेतिहर ?
हो असर भला किस बात का बिन बोनस मजदूर पर ?''[3]

बाबा नागार्जुन की राजभाषा पर विश्वनाथ त्रिपाठी जी ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है –

''जिसे हम काव्यभाषा कहते हैं, वह चाहे जितनी भी सामान्य हो, दैनंदिन भाषा से अलग होती है उसका तेवर अलग होता है, लेकिन नागार्जुन की अधिकांश और कई उत्कृष्ट से उत्कृष्ट कवितायें भी सहभाषा में लिखी गयी मालूम पड़ती है। नागार्जुन ऐसे कवि हैं, जिनको देखकर ऐसा लगता है कि वे काव्य भाषा में कविता नहीं कर रहे हैं बल्कि जिस भाषा में बात कर रहे हैं, उसी सामान्य भाषा में कविता कर रहे हैं। यह बहुत बड़ी विशेषता है। इस तरह जहाँ तक भाषा का वर्णन है तो हम चाहें तो एक कवि का नाम ले सकते हैं – भवानी प्रसाद मिश्र। लेकिन भवानी प्रसाद मिश्र की कविता में नागार्जुन जैसा प्रसार नहीं है।''[4]

जब भाषा जनमानस और लोक से सम्पृक्त होती है तो उसमें व्यंग्यरूपी एक महत्वपूर्ण विधा समाहित होती है। बाबा नागार्जुन सामाजिक जड़ता, शोषण, दमन आदि राजनीतिक दुर्व्यवस्था की गम्भीर आलोचना के लिए व्यंग्य का प्रयोग करते हैं। आपके व्यंग्य का लक्ष्य है वर्तमान समाज व्यवस्था को बदलकर शोषण और दमन से मुक्त एक नयी समाज व्यवस्था की रचना है। वास्तव में व्यंग्य कविताओं का मूल आधार मानवीय करूणा है।

'अकाल और उसके बाद' नामक आपकी कविता में यह दृश्य दिखता है –

''कई दिनों तक चूल्हा रोया चक्की रही उदास,
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उसके पास,
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त,
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिफ्ट।''[5]

भारतीय समाज में विशेष रूप से हिन्दी क्षेत्र में दलितों की स्थिति उनके शोषण, दमन, उत्पीड़न का बेहद प्रभावशाली और प्रामाणिक चित्रण बाबा नागार्जुन ने किया है। बाबा नागार्जुन को एक कविता ही हरिजन गाथा के नाम से है। इस कविता में आप यथार्थ बोध से भविष्य की सम्भावना का उद्‌घाटन करते हैं, उस सम्भावना को वे नयी पीढ़ी में देखते हैं। हरिजन गाथा केवल नरसंहार की कविता नहीं है, केवल क्रांति की कविता भी नहीं है बल्कि इस कविता का एक पक्ष भारत के सामंतों के द्वारा खेतिहर, मजदूरों के क्रूरतम शोषण और बर्बर दमन का भी चित्रण करती है। यह कविता यथार्थ के सबसे आतंकवादी चरित्र का वर्णन करती है। इस कविता में बाबा नागार्जुन कहते हैं –

''दिल ने कहा दलित माँओं के सब बच्चे अब साथी होंगे,
अग्निपुत्र होंगे वे, अन्तिम विप्लव के सहभागी होंगे।''[6]

साधारण सौंदर्य बोध नागार्जुन की कविताओं का सबसे मजबूत पक्ष है और यह सच भी है कि साधारण की गरिमा की प्रतिष्ठा इनके लिये सबसे बड़ा मूल्य है। तभी आपने जब देश स्वाधीन होता है उसी दिन 15 अगस्त 1947 को लिखी गई कविता 'वंदना' में अपनी मातृभूमि मिथिला के उपेक्षित जनों का स्मरण करते हैं और कहते है –

''जय लाख–लाख मिथिलाक पुत्र,
अपनहि हाथों हम सोझराएब,
अपने देशक शासन का सूत्र''

मनोज कुमार झॉ बाबा नागार्जुन की भाषा व बिम्बों के बारे में कहा है –

''यह कहना उचित होगा कि नागार्जुन के यहाँ श्रवण बिम्बों की प्रचुरता है। कुछ तो यह पारम्परिक शब्दों, मुहावरों के द्वारा निर्मित करते है, कुछ रोजमर्रा की बोलचाल के शब्दों से। प्रसिद्ध फ्रेंच दार्शनिक द सरर्यू ने कहा है कि जब बोलचाल की भाषा लिखित भाषा के साथ अंर्तक्रिया करती है तो ध्वनियों का एक नया संसार खुलता है और नागार्जुन के यहाँ तो श्रवण–बिम्बों का जगमग–चकमग संसार है।''[7]

जन तथा धरती की महिमा का गान करते हुए नागार्जुन केवल मनुष्य की बात करते हैं। मानवीयता का होना आवश्यक लक्षण है मनुष्य होने के लिये। इसी कारण आप पहले मानव है इसके बाद रचनाकर – ''कवि हूँ पीछे, पहले तो मैं मानव ही हूँ।'' निश्चित ही जब व्यक्ति का बोध ही पूरा मनुष्यता पर टिका है तो वह अमानवीयता – अत्याचार के विरूद्ध अपनी आवाज बुलन्द करेगा ही। कवि समाज में समता का अमृत्व चाहता है। गिरे हुए को उठाना चाहता है। प्रताड़ित पर करूणा बरसाना चाहता है। अपमान में जलने वालों को सम्मान दिलाना चाहता है। व्यास मणि त्रिपाठी जी ने नागार्जुन के लोकचेतना पर अपनी बात इस प्रकार कही है –

''समाज के अंतस की अभिव्यक्ति का कौशल जानने वाले नागार्जुन ने शोषितों, दलितों, उपेक्षितों के पक्ष में खड़े होकर मठाधीशों, सत्ताधीशों, सामंतों, पूंजीपतियों, पंडा–पुरोहितों को डाँटा, फटकारा और कोसा–गरिमाया है। इसी भूमिका में वे 'आधुनिक कबीर' हैं। उनका व्यंग्य भी तिलमिलाने वाला है। अपने इसी धारदार हथियार से वे अज्ञान, अशिक्षा, अंधकार, दुःख दरिद्रय का विनाश चाहते हैं।''[8]

संदर्भ संकेत

1. नागार्जुन सं. – 'प्रभाकर माचवे, सुरेश सविता–, शीर्षक – 'नागार्जुन और उनकी कविता'' सन् 1999, पृष्ठ–9, प्रकाशन–राजपाल प्रकाशन
2. नागार्जुन रचनावली – भाग–1, सं. – शोभाकान्त, शीर्षक – 'उनको प्रणाम', पृष्ठ–23, प्रकाशन–राजकमल
3. नागार्जुन रचनावली – भाग–1, सं. – शोभाकान्त, शीर्षक – 'भारतेन्दु', पृष्ठ–180, प्रकाशन–राजकमल
4. पुस्तक वार्ता (द्विमासिक पत्रिका) सं0 विमल झॉ, शीर्षक – 'बिल्कुल आज, अभी के कवि हैं' नागार्जुन, (लेखक–विश्वनाथ त्रिपाठी), पृष्ठ–4, अंक नवम्बर–दिसम्बर 2015
5. नागार्जुन – सं. प्रभाकर माचवे, सुरेश सलिल, शीर्षक – 'अकाल और उसके बाद'
6. आज कल (साहित्य और संस्कृति का मासिक), सं. – सीमा ओझा, शीर्षक – 'चंदू मैंने सपना देखा' (लेखक–अमिताभ शंकर राय चौधरी), पृष्ठ–26, सन् जून 2011
7. आज कल (साहित्य और संस्कृति का मासिक), सं. – सीमा ओझा, शीर्षक – 'समता के सौन्दर्य की तरफ यात्रा', (लेखक–मनोज कुमार झॉ), पृष्ठ–28, वर्ष–जून 2011
8. आज कल (साहित्य और संस्कृति का मासिक), सं. – सीमा ओझा, शीर्षक – 'जनकवि–नागार्जुन', (लेखक–व्यास मणि त्रिपाठी), पृष्ठ–33, वर्ष–जून 2011

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

मुक्तिबोध का दलित चिन्तन

डॉ. दिलीप कुमार अवस्थी
प्रधानाचार्य
इण्टर कालेज, सरसेना, मऊ

साहित्य अर्थात् 'हितेन सहितम्' इस व्युत्पत्ति से लोक मंगल की भावना साहित्य की सुदृढ़ आधार बनती है। सच्चा साहित्य न केवल लोक–कल्याण की भावना से स्पन्दित होता रहता है, अपितु उसके भीतर से सत्यम्–शिवम्–सुन्दरम् का समन्वित आलोक भी उद्‌भूत होता रहता है। विशाल मानव जाति की आत्मा का स्पन्दन ध्वनित करने वाला साहित्य समाज की चेना में ही साँस लेता है। जनता के सुख–दुःख, हर्ष–विषाद आदि का चित्रण करते हुए वह जीवन की व्याख्या करता है। साहित्य मानव–समाज के इतने निकट पहुँचता है कि मानव के हर सुख में दुःख में, शोक–विषाद में साथ रहकर वह मानव की सहायता करता है। "चातुर्वर्ण्य व्यवस्था" भारतीय संस्कृति की अपनी एक विशेषता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों पर आधारित चातुर्वर्ण्य व्यवस्था वैदिक काल से लेकर आज तक, अपने किसी न किसी रूप में विद्यमान रही है। समाज में बढ़ती ध्रुवीकरण की प्रवृत्ति ने समाज को खण्ड–खण्ड में विभक्त कर दिया है। जातीय आधार पर भारतीय समाज आज जितना विखण्डित है, उतना हजारों वर्षों के इतिहास में कभी नहीं हुआ। परिणाम सामने है हम निरन्तर अभिजात्य और दलित–वर्ग में बँटते जा रहे हैं। इस दलित वर्ग को समाज की मुख्य धारा में शामिल करने के लिए गौतम बुद्ध से लेकर गाँधी और अम्बेडकर तक अनेक स्तर पर संघर्ष और आन्दोलन हयुए हैं। जनान्दोलन साहित्य को सदैव ही प्रभावित करते रहे हैं। अतः यह प्रवृत्ति विगत एक दशक से साहित्य में भी परिलक्षित हो रही है।

भारतीय जनमानस के भीतर संघर्षों की अनेकशः अन्तर्धाराएँ मौजूद हैं, जो निरन्तर शोध के लिए प्रेषित करती रही है। आज कल हर क्षेत्र में 'दलित–विमर्श' चर्चा–परिचर्चा का केन्द्र है। विमर्श चाहे जिस क्षेत्र में हो, प्रयोग का ही प्रखण्ड होता है। साहित्य में दलित– विमर्श भी इसका अपवाद नहीं है। वर्तमान में दलित साहित्य भी प्रयोग धर्मिता से जूझ रहा है। दलित साहित्य के प्रतिमान तय नहीं हो पाये हैं, साथ ही दलित–विमर्श के अनेक प्रश्न अभी भी अनसुलझे हैं। सुप्रसिद्ध दलित कवि, लेखक और चिन्तन ओम प्रकाश वाल्मीकि जब यह कहते हैं कि–"हिन्दी साहित्य में ढूँढ़ने पर भी हमें अपना चेहरा दिखायी नहीं देता।" तो निश्चित तौर पर हिन्दी साहितय में 'दलित–विमर्श' जैसे विषय शोध के लिए प्रेरित करते हैं।

हिन्दी साहित्य में दलित चिन्तन को अगर सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो सन्त कबीर, लोक नायक तुलसी ने दलित वर्ग की करुणा एवं वेतना को साहित्यिक रूप दिया। आधुनिक काल में दलित–वर्ग का हृदय द्रावक वर्णन करने वालों में मुंशी प्रेमचन्द, निराला जैसे मूर्धन्य साहित्यकारों ने दलितों का जीता जागता चित्र अंकित कर उनके मुक्ति संघर्ष के लिए नया मार्ग प्रशस्त किये। परम्परागत साहित्यिक मान्यताओं को ठुकराकर आधुनिक साहित्यकारों ने मानव महत्ता से प्रेरित होकर साहित्य के क्षेत्र में नये आयाम स्थापित किये। प्रगतिवादी साहित्यकारों ने मार्क्सवाद से प्रेरित होकर दलित वर्ग की पीड़ा को अपने साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त किये। दलितों के प्रति प्रगतिवादी काव्य में जो सहानुभूति व्यक्त की गई, उसने सहृदयों के मन को प्रभावित किया। नया काव्य जीवन के बौद्धिक आन्दोलन को वाणी दे रहा है यथार्थ जीवन का चित्रण करने में नयी कविता दृढ़ संकल्प है। दलित चेतना जो दलित आन्दोलन के एक लम्बे इतिहास की देन है। हिन्दी साहित्य में अलग–अलग कालखण्डों में यह अलग–अलग रूपों में दिखाई देती है। मुक्ति संघर्ष की यह चेतना साहित्य की प्रेरणा बनकर दिखायी देती है, जिसमें मुक्ति व स्वतन्त्रता

के गम्भीर सरोकार विद्यमान है। अनीश्वरवाद, अनात्मवाद, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, पाखण्ड व कर्मकाण्ड का विरोध सामाजिक न्याय की पक्षधरता, वर्ण व्यवस्था का विरोध, सामन्तवाद का विरोध पूँजीवाद व बाजारवाद का विरोध, साम्प्रदायिकता का विरोध जैसे अनेकों महत्त्वपूर्ण तथ्य दलित संघर्ष एवं चेतना के सरोकारों से जुड़े हुए हिन्दी साहित्य में मौजूद है। बस जरूरत है तो उन्हें ढूँढ़ने की। मुक्तिबोध युग प्रवर्तक, क्रान्ति द्रष्टा प्रगतिशील विचारधारा के उन्नायकों में से एक है, जो दलित वर्ग के पक्ष में खड़े दिखाई देते हैं।

गजानन माधव मुक्तिबोध साहित्यिक परम्परा की वह कड़ी है, जो अपने अन्दर तीन वाद युगीन परिवर्तनों को समेटे हुए है। वे जनवादी, समाजवादी और प्रगतिशील साहित्यकार है। मुक्तिबोध का साहित्य समाज की प्रतिबिम्ब ही नहीं सामाजिक संरचना की प्रक्रिया भी है। यह प्रक्रिया सामाजिक व्यवस्था, विघटित मूल्यों, भ्रामक अवस्थाओं और पतनोन्मुख राजनीति के प्रति है। जब समाज संघर्ष, घुटन, रूढ़ि और आत्मपरायेपन में आबद्ध होता है तब साहित्यकार ही उसे नयी दिशा देता है। मुक्तिबोध अपने साहित्य में दलित वर्ग के जीवन का करुण यथार्थ, वर्गीय द्वन्द्व, विघटित होते मानवीय मूल्य को उद्‌घाटित कर एक स्वस्थ समाज का निर्माण करना चाहते थे। यही नहीं वे वर्ग संघर्ष एवं वर्गहीन समाज की स्थापना की बात बार–बार करते हैं। उनकी रचनाओं में शोषक वर्ग के प्रति घृणा, शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति, जनक्रान्ति की भावना, समाज में फैले अनाचार अवसरवाद की भर्त्सना दुःख एवं दारिद्रय के प्रति क्षोभ दलित चेतना के विकास के सन्दर्भ में दर्शाता है।

वर्तमान समाज जिस आधुनिकता के दौर से गुजर रहा है, जहाँ सामाजिक विसंगतियाँ बढ़ती ही जा रही हैं मुक्तिबोध ने ऐसी विसंगतियों को देखा और जिया है। फलस्वरूप उन्होंने अपने युग की मुख्य समस्या वर्ण–व्यवस्था एवं शोषण को प्रचुर मात्रा में अपनी कविता का विषय बनाया। शोषण तथा पूँजीवादी समाज व्यवस्था को नष्ट कर एक नए समाज की स्थापना करना ही उनका लक्ष्य रहा है। तभी तो सामाजिक विसंगति को उजागर करते हुए दिखलाते हैं कि जिस समाज में धनपति अपने भोग में लीन रहते हैं, उसी समाज में शोषित की बच्ची मुनिया भूख के कारण भूखे पेट मर जाती है– "रेफ्रिजरेटरों, बिटैमिनों, रेडियोग्रैमों के बाहर की"

गतियों की दुनियाँ में
मरी वह भूखी बच्ची मुनिया है शून्यों में
पेरों की आँतों में न्यूनों की पीड़ा है।
छाती की कोषों में रहितों की बीड़ा है।"

मुक्तिबोध शोषितों के भाष्यकार दिखाई देते हैं। उनकी कविता सामाजिक विषमता के दुश्चक्र और दृःस्वप्न के बीच मनुष्य के संघर्ष को दर्शाती है। बहिष्कार से पीड़ित दलित शोषित मानव की व्यथा का चित्रण करते हुए मुक्तिबोध लिखिते हैं–

"भीमाकार पुलों के बहुत नीचे, भयभीत
मनुष्य बस्ती के बियावान तटों पर
* * * * * *
चुनरी में अटकी है कंजी आँख गँजे सिर
टेढ़े–मुँह चाँद की।"

चाँदनी भी जिस दुनियाँ में मर जाती है, वह दुनिया भी क्या कहलाने के काबिल है? इसीलिए तो मुक्तिबोध हर मानव को शोषण मुक्त करना चाहते हैं। जब तक एक भी व्यक्ति शोषण के चक्र में पिस रहा हो, तब तक किसी एक दलित की भी मुक्ति की कल्पना व्यर्थ है। अतः मुक्ति की कल्पना यदि सम्भव बनानी है दलित मानव को यदि शोषण से मुक्त करना है तो व्यक्ति मानव के लिए नहीं, समूह मानव के लिए उसे अर्जित करने का प्रयत्न करना होगा।

आधुनिक की आर्थिक विषमता मनुष्य की कोमल भावनाओं को कुचल देती है। अभावग्रस्त निम्न वर्ग अपनी कुण्ठित वृत्तियों एवं विवश जीवन की व्यथा भोग रहा है और आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक आदि दृष्टियों से अग्रसर होने में कमजोर जान पड़ता है। शोषक वर्ग दानव के रूप में हमेशा शोषितों का गला घोटने के लिए तत्पर रहा है–शोषण के चक्रव्यूह में फँसे शोषित के आर्तनाद तथा मर्माहत कातर पुकार मुक्तिबोध को सुनाई पड़ती है। मानवीयता से जुड़ने का यह तथ्य मुक्तिबोध के रचना संसार को सार्थक तथा आत्मीय तो बनाता ही है, साथ ही तात्कालिक मनुष्य की असहाय मुद्रा भी प्रस्तुत करता है। कवि के हृदय में जन–सामान्य के प्रति गहरी करुणा का भाव है। इसी कारण वे 'सत–चित' वेदना के कवि कहलाने के अधिकारी हैं। यातना–पुत्र की भाँति वे जिये और यातनाओं में लिपटते चले गए। उनकी रचनाओं में एक ऐसे जागरूक, संवेदनशील भारतीय कलाकार का स्वर है जो भय, आतंक पीड़ा किसी के सामने नहीं झुकता। जन के दुःख–दर्द को अनुभव कर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं –

"उन जन–जन का दुर्दान्त रूधिर
मेरे भीतर मेरे भीतर
उनकी बाँहों को अपने उर पर
धारण कर बरमाला सी
उनकी हिम्मत, उनका धीरज, उनकी ताकत
पायी मैंने अपने भीतर।"

मुक्तिबोध दलित जीवन के पैरवीकार और दलित की आत्मा के शिल्पी हैं। उनका अवदान ही यह है कि उन्होंने जीवन को वाणी दी। उनके साहित्य में दलित नहीं बल्कि दलित समस्या है। वे जानते थे कि दलित सिर्फ अस्पृश्यता से ही ग्रस्त नहीं है वरन् उनकी समस्या ज्यादा बड़ी है। आर्थिक शोषण, अत्याचार, विषमतामूलक व्यवस्था, गरीबी, समता, स्वतन्त्रता और प्रतिरोध दलित समस्या के सभी रूपों से वे परिचित थे। तभी तो उनके साहित्य में जन सामान्य के सुख–दुःखय, पीड़ा, वेदना, कुण्ठा, असन्तोष विवशता शोषण उपेक्षा व संघर्ष को वाणी मिली है। गरीब निःसहाय जनता शोषण से मुक्त होने के लिए भगीरथ प्रयत्न करने चली है। डॉ0 जनक शर्मा के अनुसार, "मुक्तिबोध का साहित्य मानवमात्र के दुःख का करुण चित्रण करता है। उसमें शोषक वर्ग के वैभव–विलास, अत्याचार की दारूण कथा और शोषित वर्ग की मार्मिक व्यथा है। समाज में फैली अव्यवस्था का 'भर्त्सनापूर्वक' चित्रण है, वहीं एक शोषक रहित, वर्ग रहित, समाजवादी व्यवस्था का उज्ज्वल स्थान भी है।

आजसस की परिस्थितियाँ, आपत्तियाँ, संकट और दुःख आदि से मुक्तिबोध की आत्मा प्रभावित होकर चेतना के रूप में उनके कविता में प्रवाहित होती है। जग की समस्याओं के प्रति उनके चिन्तन की अधिकता बढ़ती जा रही है। वे इस दुष्ट व्यवस्था से शोषितों के उद्धार हेतु उन्हें प्रेरणा एवं मार्गदर्शन करते हैं वह बतलाते हैं कि इन सबकी मुक्ति के लिये एक ही मार्ग वह है क्रान्ति। वोल्गा के वीर सैनिकों का उदाहरण देते हुए वे दलितों को अपने हक के लिये जाग्रत करते हैं–

"पीछे न हटो तुम। अरे, एक कदम भी।
वोल्गा के सैनिकों ओ। भाईयों।
भड़कती अग्नि में फैलो और डरो नहीं
माँओं के बच्चों को पिताओं की आत्माएँ
देखती है, देती रहती है दुआएँ।
हटो न पीछे तुम। अरे, एक कदम भी।"

घोर शोषण से ग्रस्त श्रमिक वर्ग शोषण से मुक्त होना चाहते हैं। इसीलिए वे पहले पत्थरी ढाँचों से छुटकारा पाना चाहते हैं। क्योंकि यह पत्थरी ढाँचा, पूँजीवादी शोषण नीति का प्रतीक है जिसमें सब कैद हैं। यहाँ मुक्तिबोध शोषितों से यह अपेक्षा करते हैं कि शोषण से मुक्त होकर स्वतन्त्र जीवन बितायें।

"पहले। पत्थरी ढाँचे से छुटकारा मिल जाय। पत्थरी ढाँचे में कैदी हैं हम सब।"

मुक्तिबोध के रचना संसार पर गहराई से नजर डालें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि वे एक वर्ग रहित या शोषण रहित समाज की स्थापना के लिए तत्पर हैं। जहाँ कहीं उनका 'मैं' प्रकट हुआ है वह आत्मसंशोधन, आत्मसंघर्ष समाज के लिए है। वे जानते थे कि जब तक मानवीय समाज, संस्कृति और जीवन दृष्टि स्वस्थ जीवन मूल्यों से नहीं जोड़ी जायेगी तब तक शोषणहीन समाज काढ़ाँचा खड़ा नहीं हो सकता। व्यक्ति सच्ची स्वतंत्रता पाकर ही सच्ची मुक्ति पा सकता है और इसके लिए महान उद्देश्य के साथ संगठित होकर समाज को नवीन रूप देने के लिए सक्रिय होना होगा। वे शोषित के मन में इसी चेतना को जगाने का प्रयास बार–बार करते हैं–

"अरे! जन संग ऊष्मा के? बिना, व्यक्तित्व के स्तर, जुड़ नहीं सकते। कि अपने मुक्ति के रास्ते अकेले में नहीं मिलते।"

वर्ग रहित समाज का मूल ध्येय सर्वमुख सर्वजन कल्याण, व्यक्ति नगण्य और समूह प्रमुख हो जाती है। समाज के प्रत्येक व्यक्ति में सामूहिक भावनायें उजागर होकर पनपती है, और स्वार्थ का भूत भाग जाता है। वर्गरहित समाज के सम्बन्ध में मुक्तिबोध ने अपनी कविताओं के माध्यम से उल्लेख किया है। वे समाजवाद को स्वर्ण खग कहकर सम्बोधित किये हैं। उनके साहित्य दृष्टि का मूल प्रेक्ष्य एक वर्ग विहीन शोषण रहित समाज की महान आकांक्षा है। जहाँ ऊँच–नीच का भेदभाव मिटकर भाई–चारे का नाता हो जाये–

"सभी सम्बन्ध हटकर दूर।
केवल एक पृथ्वी पुत्र का नाता
व उस एकान्त नाते में
गहन विश्वास दूर–दूर।"

मुक्तिबोध शोषितों एवं पीड़ितों के शब्द शिल्पी थे। उनकी रचनाएँ सामाजिक विषमता के दुश्चक्र और दुःस्वप्न के बीच मनुष्य जीवन के संघर्ष का चित्रण करती है। उन्होंने निम्न वर्ग (दलित वर्ग) के सभी पहलुओं को सूक्ष्मता से देखा और उसे विस्तृत पैमाने पर चित्रित किया। मुक्तिबोध ऐसे साहित्यकार हैं जो मानव के भविष्य के प्रति चिन्तित होकर उसके सर्वगामी विकास की दिशा खोजने का प्रयास करते हैं। भविष्य के प्रति आस्थावान तथा समर्पित मुक्तिबोध "नई कविता का आत्मसंघर्ष" में आज के कवियों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि "वास्तविक जीवन में अपनी कायरता साहसहीनता, अकर्मण्यता त्यागकर समाज में फैले अवसरवाद से मोर्चा लेते हुए मानवीय समस्याओं से दुःखाभिभूत और करुणापन्न होकर उसे वास्तविक मानवीय जीवन के मूल्यों और आदर्शों के मार्ग पर चलना ही होगा, हो सकता है कि इस स्थिति में वह मर जाए और उनके नाम से रोने वाला भी कोई न हो। लेकिन कुछ लोगों को इस तरह जमीन में गड़ना ही होगा। इस तैयारी के साथ इस दम के साथ यदि हमारा नया कवि मूल्य व्यवस्था विकसित करते हुए मानव–समस्या चित्रित करता है, तो निस्संदेह वह युग–परिवर्तन करने के श्रेय का भागी होगा, भले ही उसे श्रेय मिले या न मिले।" अतः हम कह सकते हैं कि आजीवन संघर्ष का जहर पीकर अमृत बरसाने वाले गजानन माधव मुक्तिबोध के साहित्य में दलित चेतना एवं संघर्ष की अभिव्यक्ति सर्वत्र दिखाई देती है। अपनी कविताओं में ही नहीं गद्य रचनाओं में भी दलितों की दुर्दशा को और उससे उभरने के लिए विद्रोह की भावना को मुखर करते हैं। उनकी रचनाओं में शोषित, वंचित समाज के असन्तोष, उनकी संघर्षेच्छा तथा विद्रोह की भावना को प्रमुख स्थान मिला है। उनका दलित चिन्तन मार्क्स की तरह दलितों की सामाजिक, आर्थिक स्थितियों के उन्नयन की एक ईमानदार कोशिश है। भारतीय समाज–व्यवस्था की अनेक विसंगतियों को शब्द देने का कार्य

मुक्तिबोध ने अपने साहित्य के माध्यम से किया। वर्तमान समय में ऐसे साहित्य कम आ रहे हैं, जिनमें जीवन संघर्षों, वर्तमान व्यवस्था में मनुष्य की त्रासदी और यंत्रणा से निकलने का प्रयास दिखाई दे। मुक्तिबोध का साहित्य ऐसे मशल की तरह है जो समय की जटिलताओं को सफल अभिव्यक्ति देकर जीवन के कटु यथार्थ से साक्षात्कार कराकर जनता को निरन्तर आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करती है। जिसमें सत्–चित् वेदना से उत्पन्न प्रखर आलोक है जो गहन से गहन अंधेरे को काट देता है। मुक्तिबोध ने पूँजीवाद एवं साम्राज्यवाद के विरूद्ध अपनी लेखनी चलाकर दलित–वर्ग को जगाकर उनको एक सूत्र में बाँधने तथा क्रान्ति के माध्यम से अन्याय, अत्याचार एवं शोषण को मिटाकर दलित–वर्ग के लिए एक नूतन साम्यवादी समाज प्रस्थापित करना चाहते थे। मुक्तिबोध अपने साहित्य द्वारा समाज व देश को मजबूती के साथ नयी दिशा देने का पूरा प्रयास किया। ऐसे साहित्यकार का हमारा समाज सदैव ऋणी रहेगा।

सन्दर्भ संकेत

1. मुक्तिबोध रचनावली – प्रथम खण्ड, सं0 नेमिचन्द्र जैन, पृ0 310–311.
2. मुक्तिबोध रचनावली – द्वितीय खण्ड, सं0 नेमिचन्द्र जैन, पृ0 233.
3. नया हिन्दी काव्य – डॉ0 शिव कुमार मिश्र, भूमिका से।
4. कल के लिए (त्रैमासिक पत्रिका) एक साक्षात्कार से उद्धृत, दिसम्बर, 1998, पृ0 17

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

लोक चेतना और हिन्दी साहित्य

अविनाश कुमार सिंह
सहायक अध्यापक
इण्टर कालेज, सरसेना, मऊ

लोक चेतना और हिन्दी साहित्य पर विचार–विश्लेषण से पूर्व 'लोक–चेतना' का अर्थ जान लेना आवश्यक है। लोक चेतना लोक संस्कृति, लोकवार्ता, लोक साहित्य, लोकगीत आदि की भाँति यौगिक शब्द है। जो 'लोक' और 'चेतना' के सहचर्य से निर्मित है। अतः इन युग्म शब्दों के स्वरूप एवं प्रकति का विश्लेषण अनिवार्य हैं। शब्दकोशों में 'लोक' शब्द के दो अर्थ विशेष प्रचलित हैं– एक, त्रिलोक अथवा चतुर्लोक तथा दूसरा, जन सामान्य। हिन्दी शब्दसागर, व्यावहारिक पर्यायवाची कोश, हिन्दीकोश, वृहत् हिन्दी शब्दकोश आदि के 'लोक' सम्बन्धी अर्थों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि 'लोक' शब्द एकार्थक नहीं है वरन् यह अनेकार्थी है समय, परिस्थिति, परिवेश, मनोवृत्ति और प्रयोगानुसार इसके भिन्न–भिन्न अर्थ किये जा सकते हैं।

पं0 राम नरेश त्रिपाठी, डॉ0 कृष्ण देव उपाध्याय, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पं0 राहुल सांकृत्सायन. डॉ० सत्येन्द्र, श्री देवेन्द्र सत्यार्थी, डॉ० रवीन्द्र भ्रमर आदि मनीषियों ने 'लोक' शब्द का विस्तृत विवेचन किया है। साहित्य में 'लोक' शब्द संकुचित अर्थ में अनपढ़, असभ्य या अल्पशिक्षित, अर्द्ध–शिक्षित उस ग्राम्य मानव समाज के लिए प्रयुक्त हुआ है, जो अपनी परम्परा प्रथित रीति–रिवाजों से संचालित होता है। स्पष्ट है कि अद्यावधि 'लोक' का यह अर्थ असंगत है। अपने व्यापक अर्थ में 'लोक' शब्द समस्त मानव समुदाय तथा उसके विविध क्रिया–कलापों हेतु व्यवहृत होता है। श्री कन्हैया लाल मिश्र 'प्रभाकर' ने 'लोक' शब्द की महत्त्वपूर्ण एवं निर्विवाद परिभाषा दी है, जिससे 'लोक' को स्पष्टतः समझा जा सकता है– "मूक सामूहिक मानवता ही लोक है, देश की जनता का एक छोटा सा भाग जिसे धन, साधन, शिक्षा और पद प्राप्त हैं, वह वाचाल है, अधिकार सम्पन्न है, ऊपर से देखने में लगता है मानो यही देश है, सब कुछ है। यह तो बहुत छोटा अंश है, रुके हए बरसाती पानी पर फैली काई जो पानी को ढकती है, पानी का शोषण करती है और वह महत्त्वपूर्ण न होकर भी महत्त्वपूर्ण बनी रहती है। लोक का प्रशिक्षण पुस्तकों से नहीं, परम्परा और संस्कारों से होता है, और उसकी विभूति उसका अक्षर ज्ञान नहीं, सहज ज्ञान है। लोक इस सहज ज्ञान से ही विवाद के समय निष्कर्ष पर पहुँचता है। यह स्पष्ट है कि लोक शब्द एक अनुभव जगत है। इसका भूत, भविष्य और वर्तमान से घनिष्ठ सम्बन्ध है। लोक एक अमूर्त संवेदना है, जिसमें संसार की समस्त वस्तुएँ समाहित हैं। यह गतिशील हैं, संघर्षशील हैं, परिवर्तनशील है। अपने युग की वास्तविकता, प्रतिकूलता और अनुकूलता से साक्षात्कार करना और मानव विरोधी सत्ता से निस्तार हेतु कार्मोन्मुखी बनना लोक से सम्बद्ध होना है।

'चेतना' शब्द भी कोशकारों द्वारा विभिन्न रूपों में पारिभाषित किया गया है। इसके संस्कृत–हिन्दी शब्द कोश मे – (1) ज्ञान, संज्ञा प्रतिबोध (2) समझ, प्रज्ञा (3) जीवन, प्राण, सजीवता (4) बुद्धिमत्ता विचार विमर्श तथा हिन्दी शब्द कोश में – (1) ज्ञान मूलक मनोवृत्ति (2) समझ, प्रज्ञा (3) होश–हवाश (4) स्मृति, याद आदि अर्थ दिये गये हैं। इनके अनुसार मानव जीवन अर्थात् उसका प्राणतत्व या सजीवता ही 'चेतना' है। अचैतन्य संसार में मानव अस्तित्व की कल्पना असम्भव है। 'चेतना' द्वारा व्यक्ति में संवेदना एवं प्रतिबोध का उदय होता है। संवेदनाजन्य अनुभूति के स्मरण एवं संरक्षण से मानव भौतिक जगत के विशिष्ट ज्ञान को प्राप्त करता है। मानवीय बुद्धि तर्क, परम्परागत ज्ञान, अनुभव, समझ और सम्भावनाओं के साथ विकसित होती है। मानवेतर प्राणियों में चेतन तत्त्व के

विद्यमान रहने पर भी उनमें मानव सदृश विराट सम्भावनाओं और समझ का अभाव हैं। मनुष्य में चेतना का अभ्युदय उसकी सामाजिकता से होता है। वह ऐसे संसार में जन्म लेता है, जहाँ वह अपने पूर्वजों द्वारा निर्मित विभिन्न वस्तुओं का विशिष्ट उद्देश्य हेतु उपयोग करता है। इसी के साथ उसकी चेतना भी विकसित होती है। अर्थात् 'चेतना' व्यक्ति का विशिष्ट गुण एवं भाषा की अविभाज्य इकाई है। 'चेतना' को जागृति, जागरण और उद्‌बोधन भी कहा गया है। इस अर्थ से 'चेतना' तथा 'जागृति' या ''जागरूकता' कही जा सकती है। 'चेतना' मानव के अन्तरतम में स्थित होकर उसके जीवन का मौलिक विकास करती है और अपने समाज सापेक्ष गुण के कारण यह व्यक्ति को वाह्य–जगत का भी बोध कराती है।

अन्ततः निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि 'चेतना' यह अनुभव जन्य बोध है जो मनुष्य को ज्ञान, बुद्धि, होश और निर्णय लेने की शक्ति प्रदान करता है। यह सामूहिक अनुभव बोध की भावना से निर्मित होती है। जो चेतना मानव को उसकी सुख–दुःखात्मक अनुभूतियों से एकाकी होने पर अकर्मण्य बना देती है, यही सामूहिकता में मानव जीवन को सार्थकता प्रदान करती है। मानव को कर्मठ, समाज के प्रति उत्तरदायी बनाना, अन्याय और अमानवीय कृत्यों को अनावृत्त करना, वर्तमान की असंगतियों से संघर्ष तथा भविष्य के सुखी जीवन एवं मानव मुक्ति की भावना का प्रतिपादन चेतना का अनिवार्य गुण है। 'चेतना' हर सम्भव जगत में कल्याण एवं मंगल की कामना करती है। इस प्रकार 'लोक चेतना' एक सामाजिक लोक कल्याणकारी जीवन दृष्टि है, जिसके द्वारा मानव को भूत के अनुभवों, वर्तमान की गतिविधियों और भविष्य की कल्याणमयी सम्भावनाओं का ज्ञान होता है। यह क्रान्ति की उपयुक्त पृष्ठभूमि तैयार करने वाली एक संयुक्त वैचारिक अनुभूति है। यदि 'लोक' शरीर है तो 'चेतना' उसका प्राण है। 'लोक' का ज्ञान मानव को अपने परिवेश से जोड़ता है जबकि चेतना उस परिवेश की मानसिक क्रियाशीलता को प्रकट करती है। युगीन परिवेश के आन्तरिक क्रिया–कलापों से संचालित हो 'लोक–चेतना' परिवर्तन का कारण बनती है, जागरण लाती है।

'लोक चेतना' और 'साहित्य' का सम्बन्ध अनन्य है। साहित्य का उत्स जनजीवन है। 'लोक' साहित्य की प्रेरक शक्ति, प्रेरणाभूमि और सामग्री है। इसी भाव का पोषण करते हुए डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि 'भारत के हजारों गाँवों में और शहरों में फैली हुई सैकड़ों जातियों और उपजातियों में विभक्त सभ्यता की नाना सीढ़ियों पर खड़ी हुई यह जनता ही हमारे समस्त वक्तव्यों का लक्ष्यीभूत श्रोता है। उसका कल्याण ही साध्य है। बाकी सब कुछ साधन है। संस्कृत भी और फारसी भी, व्याकरण भी और छन्द भी, साहित्य भी और विज्ञान भी, धर्म भी और ईमान भी, हमारे समस्त प्रयत्नों का लक्ष्य यही एक मात्र मनुष्य है। उसे वर्तमान दुर्गति से बचाकर भविष्य में अत्यधिक कल्याण की ओर उन्मुख करना ही हमारा परम लक्ष्य है। यही सत्य है, यही धर्म है। साहित्य लोक चेतना शून्य होकर निष्प्राण हो जायेगा। लोक चेतना के साथ–साथ साहित्य में सौन्दर्य पक्ष का भी उद्‌घाटन होता है। यह सौन्दर्य पक्ष असुन्दर असंस्कृत, असभ्य तथा आदिम कहे जाने वाले लोक जीवन से ही जन्मता है। जनजीवन साहित्यकार के रचना कर्म की ऊर्जा का स्रोत है। डॉ0 राम विलास शर्मा ने साहित्यकार को समाज का पथ–प्रदर्शक माना है, उनके अनुसार– वह सारथी होता है, जो आलोक देता हुआ साहित्य की बागडोर संभाले उचित मार्ग पर चलता है। वह सामाजिक जीवन में युगानुरूप परिवर्तनों के प्रति जागरूक तथा आस्थावान होता है। साहित्यकार का कार्य मनोरंजन मात्र नहीं है। वह युगीन परिस्थितियों से प्रभावित होते हुए स्वयं अपने युग को भी प्रभावित करता है। वह युगीन सामाजिक विषमताओं, विद्रूपताओं एवं आर्थिक विसंगतियों आदि से आहत हो उनके यथार्थ चित्रण से समाज एवं राजनीति में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित करता है। लोक साहित्य, लोक मंगल, लोक–कल्याण तथा अन्याय, अत्याचार, शोषण आदि का विरोध लोक चेतना का ही अंग है।

अतः लोक चेतना साहित्य में प्रकट हो पूर्णता को प्राप्त करती है। इस प्रकार लोक चेतना और साहित्य से मेरा अभिप्राय है, ऐसा साहित्य जो समाज सापेक्ष हो और जिसमें मानव की ऐतिहासिक स्थिति, सामयिक

गतिविधि एवं भविष्योन्मुखी सम्भावनायें निहित होती है। लोक चेतना साहित्य की ऊर्जा का स्रोत होती है, इसका एक मात्र लक्ष्य मानव कल्याण है। साहित्यकार देशकाल परिस्थितियों के प्रस्तुतीकरण के साथ लोक पक्षधरता, सामाजिक प्रतिबद्धता, राजनीतिक समझदारी, रूढ़ियों एवं विसंगतियों का चित्रण करते हुए लोक मंगल एवं लोक जागरण को उद्‌बुद्ध करता है।

हिन्दी साहित्य का आदिकाल हिन्दू सत्ता के पतन और इस्लाम सत्ता के उदय की करुण कहानी है। इसी के परिणाम स्वरूप इस काल के साहित्य में किसी प्रवृत्ति विशेष की प्रधानता का अभाव है। चूँकि पश्चिम और मध्य क्षेत्र में ही मुसलमानों के आक्रमणों का प्रभाव रहा और यही वह क्षेत्र है जहाँ हिन्दी का विकास हो रहा था। अतः तत्कालीन हिन्दी साहित्य में उन युद्धों का स्पष्ट प्रभाव पड़ा। अराजकत्ता, गृह–कलह, विद्रोह आक्रमण के वातावरण में कविता के कई वर्ग बन गये। एक वर्ग ऐसे कवियों का बना जो सांसारिक त्याग की मनोवृत्ति का पोषक था, दूसरे वर्ग के कवि तलवार के साथ जीकर गौर व गीत गाते थे।

आदि कालीन धार्मिक परिस्थितियाँ अत्यन्त विषम थी। लोक मानस गहन असंतोष, क्षोभ और प्रेम से भरा था। अतः इस काल के कवियों ने भी तदनुरूप खंडन–मंडन, हठयोग, वीरता और श्रृंगार युक्त साहित्य रचा। हिन्दी के प्रथम एवं प्रसिद्ध कवि सरहपा ने स्वाभाविक भोगों, सहज–संयम, सदाचार आदि पर बल देते हुए तद्‌युगीन सामाजिक विसंगतियों एवं धार्मिक पाखण्ड का भी चित्रण किया है जो उनकी लोक चेतना को प्रकट करता है। इस युग में मुसलमानों का अत्याचार चरम पर था। सम्पूर्ण देश में हिंसा की लहर व्याप्त थी। जैन कवियों ने ऐसे ही वातावरण में करुणा, अहिंसा, दया और त्याग पर सर्वाधिक बल देते हुए उपवास और कुछ साधनाओं पर बल दिया क्योंकि कर्मकाण्ड की जटिलता त्यागकर उच्च एवं निम्नवर्गीय समाज को मुक्ति का समान अधिकारी घोषित करना समय की माँग थी। इसी समय बौद्ध धर्म की वज्रयानी शाखा की भोगलिप्सा के प्रतिक्रिया स्वरूप नाथों की हठयोग साधना विकसित हुई। सिद्धों के नारी प्रधान वासनात्मक दृष्टिकोण का विरोध करना, इस युग में एक क्रान्तिकारी कदम था क्योंकि सिद्धों के चमत्कारों से जन समुदाय अत्यन्त भयभीत रहता था। नाथपंथ के प्रवर्तक गुरु गोरखनाथ एक सच्चे लोक कवि थे। उनके साहित्य में उलटवासियाँ तथा दूसरी ओर साधारण जनता की बोली में पंडितों का ढोंग, पाखण्ड, रूढ़िवादिता के प्रति कठोर व्यंग्य प्राप्त होता है। उनका पक्ष लोकमत का प्रतिपादन करना था।

हिन्दी साहित्य का मध्यकाल, पूर्व मध्यकाल तथा उत्तर मध्यकाल के रूप में वर्गीकृत है। पूर्व मध्यकाल हिन्दी साहित्य में भागवत धर्म के प्रचार–प्रसार एवं भक्ति साहित्य की रचना का युग है। इसका आरम्भ सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक (सं01325–1351) के अदूरदर्शी निर्णयों से होता है। मुगलों का आक्रमण एवं भारत में उनके प्रभुत्त्व की स्थापना इस काल की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना है, जिसका लोक चेतना पर व्यापक प्रभाव पड़ा। इस काल में हिन्दी के चार प्रमुख कवियों कबीर, जायसी, तुलसी, सूर ने भक्ति की चार धाराओं का प्रवर्तन किया, इन समस्त कवियों में लोक चिन्ता की स्वाभाविक अभिव्यक्ति विद्यमान है। यहाँ चारों धाराओं का संक्षिप्त विवेचन अपेक्षित है। निर्गुण भक्तिधारा की ज्ञानमार्गी शाखा के प्रवर्तक संत कबीर भाषा, संवेदना, विचार प्रणाली आदि सभी दृष्टियों से खांटी लोक कवि हैं। वे 'संसकीरित' के कूप जल से लोक को विलग कर 'भाखा' के प्रवाहित स्वच्छ नीर में अवगाहन कराते हैं और स्वयं भी करते हैं। संस्कृत–मुक्त स्वच्छन्द लोक संस्कृति की निर्मित में उनका अपरिमित योग है। वे शास्त्र के स्थान पर अनुभव को महत्व देते हैं तथा पंडित और मुल्ला दोनों को अप्रासंगिक मानते हैं। कबीर दास जन्मतः विद्रोही, स्वभावतः समाज सुधारक, प्रेरणतः से धर्म सुधारक, प्रचेष्टतः दार्शनिक कवि थे। उनका सम्पूर्ण काव्य 'कागद की लेखी' नहीं वरन् आँखिनि की देखी है। उस युग की महत्त्वपूर्ण आवश्यकता हिन्दू मुस्लिम एकता को इनके साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है, अन्य निर्गुणिया संतों ने लोक चेतना हेतु संतों ने लोक चेतना हेतु इन्हीं का अनुसरण किया है।

मलिक मुहम्मद जायसी प्रेम मार्गी सूफी काव्य के प्रवर्तक हैं। उनका पद्मावत हिन्दू–मुस्लिम द्वन्द्व की कथा है। जायसी ने एक मुसलमान कवि होते हुए भी हिन्दू शौर्य गाथा, जिसमें दिल्ली सुल्तान का विरोध है, गायी शासकों की अत्याचारी, अन्यायी और असहिष्णु प्रवृत्ति के कारण जायसी की आत्मीयता दिल्ली से नहीं अपितु चित्तौड़ से, अलाउद्दीन नहीं वरन् रत्नसेन से अधिक है। भाषा के अल्प सर्जनात्मक रूप के कारण 'पद्मावत' लोक कृति सिद्ध होता है। जायसी ने लोकवृत्त एवं ऐतिहासिक वृत्त का अत्यन्त मनोहारी वर्णन किया है जो सर्वथा नव्य है। महात्मा सूरदास हिन्दी कृष्ण भक्ति की निर्मल–अजस्र धारा के प्रवाहकों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। सूर ने कृष्ण चरित्र के ऐसे स्थलों का चयन किया जिसमें उनकी अन्तरात्मा की अनुभूति हैं। कृष्ण के बालरूप एवं कैशोर्य वय की बहु–विधि लीलाओं का गान उनका इष्ट था। हिन्दी साहित्य में सूरदास ने सर्वप्रथम परिवार एवं गार्हस्थ जीवन को केन्द्र बनाया जो लोक का इष्ट है। वे पूर्णतया गृहस्थ चित्रण के कवि हैं। उनका वर्णन नन्द, यशोदा, कृष्ण, बलराम, देवकी, वसुदेव पर केन्द्रित है। कृष्ण का व्यक्तित्व नन्द–यशोदा और वसुदेव–देवकी के इर्द–गिर्द फिरता है। पारिवारिक जीवन तक सीमित रहने के कारण वाह्य जीवन में संघर्षों के स्थान पर सूर में पारिवारिक मनः संघर्षो का आधिक्य है।

युग स्रष्टा एवं दृष्टा महाकवि गोस्वामी तुलसीदास सच्चे लोक नायक थे। उन्होंने सामाजिक मनोविज्ञान को हृदयंगम करके प्राचीन संस्कारों को युगानुरूप नवीन दृष्टिकोण से समन्वित कर प्रस्तुत किया। उन्हें लोक एवं वेद का व्यापक ज्ञान था। अपने समय पूर्व तक की समस्त विषमताओं के मध्य सफल समन्वय उनके लोक चेता हृदय का ही परिणाम है। क्या धर्म, क्या दर्शन, क्या साहित्य, क्या समाज प्रत्येक में समन्यव कर गोस्वामी जी ने उनमें प्राप्त वैषम्य का परिहार किया। मानव प्रकृति का जितना गहरा ज्ञान गोस्वामी जी को है उतना शायद ही किसी कवि को हो। मानव जीवन के जितने भी सम्बन्ध हो सकते हैं–पिता–पुत्र, भाई–भाई, राजा–प्रजा, सास–बहू, पति–पत्नी, इन सभी में लोक मर्यादा की स्थापना गोस्वामी जी ने की है। उन्होंने तद्युगीन राजनीति की कलुषता को दूर करने का प्रयत्न किया। राजा का आदर्श प्रजा पालन, दुष्टों का विनाश एवं शान्ति की स्थापना है।

उत्तर मध्यकालीन कविता सीमित विषयवस्तु के कारण शिल्प विधान पर ही केन्द्रित रही। इस युग के कवियों ने भाषा का परिष्कार किया, साथ ही साथ कविता का धर्म से लगभग मुक्त कर लिया। इस युग के कवियों का एक वर्ग लक्षण ग्रन्थों के घेरे में ही कैद रहा। कविता विलासी वर्ग के चतुर्दिक घूमती रही, उसमें नवीन उद्भावनाओं और सामान्य जन–जीवन के लिए कोई अवकाश, नहीं रहा। राजनैतिक दृष्टि से यह काल मुगल शासन के वैभव के चरमोत्कर्ष के बाद उतरोत्तर ह्रास, पतन और विनाश का युग कहा जा सकता है। बादशाह शाहजहाँ के पश्चात् शासकों में धार्मिक असहिष्णुता एवं अहमन्यता की प्रवृत्ति प्रधान रही। परिणाम स्वरूप देश में विद्रोह, असंतोष, विलासिता अपने चरम पर पहुँच गयी। इस काल का अधिकांश साहित्य विभिन्न राजदरबारों में पल्लवित एवं विकसित हुआ। अतः उसमें लोक चेतना की अपेक्षा राज चेतना अधिक है।

रीति–कालीन साहित्य अपनी कतिपय सीमाओं के पश्चात् भी लोक चेतना से सर्वथा शून्य नहीं है। इस काल के साहित्य का। स्वरूप सर्वथा गार्हस्थिक है जो भक्ति कालीन साहित्य से इतर है। तत्कालीन साहित्य ऐहिक–प्रेरणा प्रसूत है। इस युग में साहित्य, साहित्य के लिए लिखा जाने लगा जहाँ साहित्यकार फल की अपेक्षा कर्म में स्पृहणीय है। दर्शन और धर्म से स्वयं को मुक्त कर इस युग के साहित्यकारों ने आधुनिक काल के मानवीय साहित्य सृजन का मार्ग उन्मुक्त किया। भूपण, बिहारी, दीनदयाल, गिरि, गुरु गोविन्द सिंह आदि बहुतेरे कवियों ने विलासी राजाओं के अन्याय, अत्याचार एवं दमन के विरुद्ध अपनी आवाज बुलन्द की। यह घोर पराभव का युग था, जिसमें अभिसप्त लोक–जीवन में तत्कालीन साहित्य ने सरसता का संचार किया। यद्यपि तद्युगीन साहित्य उदात्त मूल्यों से दूर रहा तथापि लोक जीवन में समाहित निराशा को उच्छिन्न करने में उसने स्तुत्य योग दिया। हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल अंग्रेजी उपनिवेशवाद, स्वतंत्रता–संग्राम, स्वतंत्रता प्राप्ति, सामाजिक विघटन,

वैयक्तिकता, सफेदपोशी, मनुष्य की कुण्ठा, निराशा आदि का काल है। इसे भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावाद, प्रगतिवाद प्रयोगवाद एवं प्रयोगवादोत्तर युग में विभाजित किया गया है।

भारतेन्दु युग हिन्दी साहित्य में लोक जागरण के संदेशवाहक के रूप में उदित हुआ। इस युग में लोक चेतना पुनर्जागरण की भावना से अनुप्राणित थी। रीतिकालीन प्रवृत्तियों के समर्थन से अलग भारतेन्दु जी ने लोक चेतना के उद्‌बोधनार्थ जातीय संगीत अर्थात् लोकगीतों की शैली पर काव्य–लेखन की प्रेरणा दी। फलरवरूप मातृभूमि प्रेम, स्वदेशी प्रेम, गोवंश–रक्षा, बाल–विवाह निषेध, शिक्षा का प्रचार–प्रसार, मद्य–निषेध, भ्रूण हत्या का विरोध साहित्य का विषय बने। भारतेन्दु युग में साहित्यकारों ने सर्वप्रथम क्षेत्रीयता से ऊपर उठकर सम्पूर्ण राष्ट्रीय चेतना को स्वर दिया। कवि राधाचरण गोस्वामी की 'हमारे उत्तम भारत देश' प्रेमघन की 'धन्य भूमि भारत सद रतननि कै उपजाविन' सदृश उक्तियाँ लोक की इसी चेतना को प्रकट करती है। इस युग के साहित्यकारों ने जन समस्याओं की ओर व्यापक स्तर पर ध्यान दिया। फलतः नारी शिक्षा, विधवा–दुर्दशा और अस्पृश्यता आदि से सम्बन्धित कविताओं की सर्जना हई, जिससे इन समस्याओं पर लोक का ध्यानाकर्षण हुआ। भारतेन्दु जी ने धार्मिक संकीर्णता का उल्लेख 'भारत दुर्दशा' में तथा प्रताप नारायण मिश्र ने 'मन की लहर' में बालविधवाओं की कारूणिक परिस्थिति का अंकन किया। यही नहीं, देश की आर्थिक दुर्दशा को देखकर इन कवियों ने स्वदेशी का प्रचार एवं विदेशी के बहिष्कार की चेतना विकसित की।

द्विवेदी युगीन कथा साहित्य में सुधार वादिता की प्रधानता है तथा निबन्धों में समाज की हीनावस्था, आर्थिक विषमता, धार्मिक पतन और राष्ट्रीय समस्याओं की प्रधानता है। इस प्रकार इस युग का गद्य साहित्य भी लोक चेतना संपृक्त है। छायावाद युग में जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पंत, महादेवी वर्मा आदि साहित्यकारों का काव्य साहित्य उनके पलायनवादी दृष्टिकोण के कारण लोक जीवन से विमुख है–'छायावादी प्रतिनिधि कवियों में जयशंकर प्रसाद की लहर' अतीत गौरव से परिपूर्ण हो, प्रेमपथिक के प्रेमतत्त्व, महाराणा के महत्त्व तथा मनु के दर्शन से विकसित हो लोक जीवन से पृथक होकर रह गयी। महादेवी के जीवन की शुष्कता ने उन्हें लोकविमुख वैराग्य देकर लोकोत्तर आलम्बन की ओर प्रेरित किया किन्तु इसके विपरीत इनका गद्य साहित्य लोक चेतना से भरपूर है। प्रसाद के नाटकों में सामाजिक चेतना के साथ–साथ राष्ट्रीय एवं धार्मिक चेतना स्पष्ट परिलक्षित होती है।

छायावादी श्रेष्ठकवि निराला का साहित्य आम आदमी के जीवन संघर्ष, संवेदना और उसके उत्थान से सम्बन्धित है। निराला लोक जीवन की प्रत्येक परिस्थिति से घनिष्ठता से सम्बद्ध है और उन्होंने किसी वाद की चिन्ता न करते हुए लोक चेतना के विकास का सत्संकल्प साधा। उनका साहित्य एक प्रतिबद्ध साहित्यकार का साहित्य है। निराला लोक जागरण की स्पष्ट घोषणा करते हुए कहते है कि 'अब जिस जागरण की आशा से पूर्वाकाश अरुण हो रहा है, उसमें सबसे पहले वे ही जागेंगी जो पहले ही सोई हुई अन्त्यज जातियाँ हैं।' महाप्राण निराला वर्ण एवं जाति आधृत समाज को अप्रासंगिक मानते हैं क्योंकि इनके कारण ही समाज के प्रत्येक व्यक्ति को प्रगति के समान अवसर नहीं मिलते। सामाजिक सामंजस्य, बंधुत्व, प्रेम आदि उदात्त भावनायें निराला की जीवनादर्श हैं। लोक जीवन का यथार्थ परक चित्रण करते हुए निराला ने सामाजिक कुरूपताओं और विद्रूपताओं का प्रबल विरोध किया क्योंकि इन्हीं के कारण लोक जीवन अस्थिर रहता है। कवि ने समाज प्रदत्त समग्र यातनाओं की असह्य पीड़ा को स्वयं सहा था। अतः मानव–मानव में भिन्नता, जाति, सम्प्रदाय, धर्म, क्षेत्रीयता, नारी के प्रति हीन दृष्टि के दुष्परिणामों से यह लोक को सतत् आगाह करते रहे।

समाज के इसी मनोविज्ञान को दूर करने के लिए निराला ने ऐसी सामाजिक व्यवस्था के निर्माण का यत्न किया जिसमें सभी जाति, वर्ण, सम्प्रदाय, धर्म के लोग समानता और स्वच्छन्दतापूर्वक जीवन– यापन कर सकें। मानववादी लोक दृष्टि का विकास करने में निराला बेजोड़ हैं। वे धर्मों, जातियों और सम्प्रदायों से ऊपर उठते हुए कल्याणमयी व्यवस्था के निर्माण के पक्षधर हैं, इसीलिए वे सामाजिक मतभेदों को अस्वीकार करते हैं।

निराला आम आदमी की पीड़ा के कवि हैं। उपेक्षित, पीड़ित, शोषित, मानव के प्रति उनमें अपार वेदना भरी थी। समाज का एक बड़ा वर्ग अभावों में रहते हुए भी सर्वदा निर्माण कार्य में लगा रहता है। अथक श्रम करने के पश्चात् भी वह अन्याय, अत्याचार और शोषण का शिकार होता है। मानव द्वारा मानव का उत्पीड़न हमारी अभिशप्त समाज व्यवस्था का प्रतिफल है। अमीर–गरीब, ऊँच–नीच के भेद को बढ़ावा देने के कारण ही भूख, गरीबी, बेकारी की समस्याएँ प्रबल होती जा रही हैं। निराला ने अपनी 'भिक्षक' और 'दीन' कविता में समाज की इसी मनोवृत्ति का अंकन किया है। लोक जीवन की विविध रूपों में व्याप्त आर्थिक वैषम्य तदयुगीन शोषण व्यवस्था का परिणाम है। अर्थाभाव में कैसे एक पिता अपनी संतति को उचित चिकित्सा नहीं प्रदान कर पाता, किस प्रकार उनकी उचित व्यवस्था नहीं कर पाता है?इसे निराला से अधिक भला और कौन जान सकता है?उनकी 'सरोज स्मृति' कविता लोक चेतना के इसी स्तर को रूपायित करती है।

समाज में धर्म के कथित ठेकेदारों द्वारा आम जनता का शोषण प्राचीन काल से होता आ रहा है। एक लोक चेता कवि समकालीन सामाजिक समस्याओं यथा–रूढ़ियों, अंध–विश्वासों आदि का डटकर विरोध करता है। कविवर निराला ने देखा लोग गंगास्नान और दान के नाम पर बन्दरों और चींटी जैसे तुच्छ जीवों को तो लाखों का अन्न खिला देते हैं किन्तु क्षुधा पीड़ित मानव के प्रति उनमें किंचित करुणा का संचार नहीं होता। प्रगतिवादी साहित्य का उद्देश्य लोक मंगल से परिपूर्ण है। रायकृष्ण दास ने प्रगतिवादी साहित्याकारों का उद्देश्य स्पष्ट करते हए कहा है कि–'प्रगतिवादी साहित्य का उद्देश्य सारे लोक में व्याप्त होना है। लोक का कल्याण करना है। मानवता को उस गर्त से निकाल कर जिसमें यह नर्क भोग रही है, ऐसी समतल भूमि पर चलाना है, जहाँ से वह आगे बढ़ सके।

कवि, साहित्य, संस्कृति तथा सभ्यता के सरकारीकरण को लोक चेतना सम्पन्न साहित्यकार घृणित मानता है क्योंकि ये लोक के विकास में बाधक है। इसीलिए कविवर मुक्ति बोध ने लोकतंत्र के आसन पर आसीन साहित्य संस्कृत के मसीहा बने लोगों के छदम रूप को अनावृत्त करते हुए कहा है 'राजनीति साहित्य और कला के प्रतिष्ठित महासूर्य बड़े–बड़े मसीहा सरकस के जोकर से रिझाते हैं निरन्तर नाचते है, कूदते हैं शोषण के सिद्धहस्त स्वामियों के सामने चुपचाप आदर्शों को बाजू पर रख या भूलकर अवसरवादी बुद्धिमत्ता ग्रहण करते और जिन्दगी को भूलकर बिलकुल बिक जाते हैं। शोषण एवं उत्पीड़न के सहने की सीमा के अतिक्रमण के फलस्वरूप यह अनिवार्य हो जाता है कि यह संघर्ष करे क्योंकि भावुकता और नपुंसकता में स्वाधीनता संरक्षित नहीं रह सकती। कवि कुमार विकल को शब्दों की शक्ति पर हथियारों की शक्ति से अधिक भरोसा है किन्तु उसका प्रयोग तो लोक द्वारा ही सम्भव है। अतः वे कहते हैं– 'शब्द और हथियार का इस्तेमाल हजारो कण्ठों लाखों हाथों की माँग करता है।' इसी प्रकार प्रगतिवादोत्तर काल के साहित्यकारों ने सत्ता, सुख, सम्पन्नता युक्त पूँजीपति वर्ग की अपेक्षा पीडित, प्रताड़ित, उपेक्षित, शोषित जनता को अपने साहित्य में स्थान दिया है। नरेन्द्र शर्मा, शिवमंगल सिंह सुमन, रामविलास शर्मा, नागार्जुन, रघुवीर, सहाय, केदारनाथ सिंह, त्रिलोचन, शमशेर बहादुर सिंह सदृश कवियों ने लोक चेतना को प्रशस्त किया और लोक विरोधी काव्यान्दोलनों से डटकर मुकाबला किया।

सन्दर्भ संकेत

1. डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी : अशोक के फूल, पृ0 181.
2. डॉ0 राम विलास शर्मा : आस्था और सौन्दर्य, पृ0 33.
3. पं0 राहुल संकृत्यायन : आदिकालीन काक धारा, सरहया।
4. डॉ0 पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल : गोरखवाणी, भूमिका भाग

❑❑

पंडित महेन्द्र मिश्रजी का भोजपुरी साहित्य में योगदान

डॉ. अमित शुक्ल
सहायक – प्राध्यापक हिन्दी
टी. आर. एस. कालेज रीवा (म.प्र.)

लोकभाषा भोजपुरी के सबसे पहले महाकाव्य 'अपूर्व रामायण' सहित डेढ दर्जन से अधिक उत्कृष्ट और अत्यन्त लोकप्रिय काव्य कृतियों एवं लोक नाट्यों के यशस्वी रचनाकार तथा संगीत जगत की जगव्यापी लोकधुन पूरबी के कालजयी जनक पं. महेन्द्र मिश्र जी ने भोजपुरी भाषा के उन्न्यन तथा इसे लोकप्रिय बनाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। साहित्य अकादमी द्वारा भोजपुरी सेवा के लिए समादृत प्रख्यात गीतकार मोती बी.ए. ने कहा है कि भोजपुरी भाषा और संगीत को बनाने में जितना बडा योगदान कविवर महेन्द्र मिश्र जी का हैं उतना किसी दूसरे का नही। अगर उनके साहित्य को भुला भी दिया जाए तो भी सिर्फ उनकी पूरबी संगीत शैली उन्हें युगों–युगों तक अमर बनाए रखेगी। पूरबी–सृजन के माध्यम से जनकंठ में बसने वाले महेन्द्र मिश्र जी विहार के छपरा जिले के समीप काही मिसिरौलियां गांव के रहने वाले थे। उनका जन्म 1986 ई. में हुआ था। पिता शिवशंकर मिश्र बाबू हलिबंत सहाय (जमीदार) के मंदिर में पुजारी थे। उस समय जमीदार के दरबार में रोज गाने बजाने का आयोजन होता था जिसमें शामिल हाने अनेक नामी–गिरामी गायक– गायिकाओं का आना–जाना लगा रहता था। पिता जी के साथ हलिबंत सहाय के दरबार में आने– जाने के क्रम में उनका बालमन पर गाने–बजाने का अत्यधिक प्रभाव पड़ा और उनके बडे होने के साथ–साथ उनके भीतर की कला भी समृद्ध होती गई। प्रतिभाशाली महेन्द्र जी का मन पढ़ने में कम तथा पहलवानी, घुड़सवारी, गायकी, तबला, ढोलक हारमोनियम आदि को बजाने मे अधिक लगता वे इन्हें बजाने मे अत्यन्त कुशल थें एक बार दरबार में गाने बजाने का आयोजन था जिसमे बजाने वाला नही आया इस मौके पर महेन्द्र जी ने इस कदर तबला बजाया कि उपस्थित सभी संगीत प्रेमी मुग्ध हो गए। उसके बाद हर आयेाजन में उनकी उपस्थित अनिवार्य हो गई। उसी समय उनके द्वारा रचित पूरबी गीतों का प्रभाव बढ़ता गया और उन्हें अच्छी–अच्छी नाच मंडलिया आमंत्रित करने लगी। वे जगह–जगह गीत गाने लगे उनके गीत सभी के जुबान पर छा गये। महेन्द्र जी के गीत भोजपुरी अंचल के जनमानस में ऐसे घुल मिल गए कि वे जीवन का एक हिस्सा बन गए है। औरतों का विरह, हो ऋतु वर्णन हो आध्यात्म हो या श्रृंगार हो सबका अपना महत्वपूर्ण स्थान है। महेन्द्र जी का आयन्त लोकप्रिय गीत दृष्टव्य है–

''अंगूरी में ड़सले बिना निगिनिया रे,
ननदी दियरा जरा दे,
दियरा जरा दे अपना भइया के जगा दे,
पोरे–पोरे उठेला लहारिया रे,
ननदी सैंया के बोला दें''।

महेन्द्र जी भोजपुरी अंचल ये रहते हुए लोकभाषा भोजपुरी में असंख्य गीतो का सृजन तो किया ही साथ ही देश की स्वतंत्रता की लड़ाई लडते हुए क्रांतिकारियों को विभिन्न रूपों में मदद भी की है। वे राष्ट्रीयता सम्बन्धी गीत सुनाकर लोगों को आजादी की लड़ाई के लिए प्रेरित करते रहे। वे अंग्रेजों के सख्त खिलाफ थे।

''उनका यह गीत अत्यन्त चर्चित रहा–
हमरा नीको लागे रामा गोरन के करनी,

रूपया ले गइले, पइसा ले गइले,
आकर बदला में दे गइले''
दल्ली के दुअन्नी.....हमरा.....

पं. मिश्र जी के लोकगीतों की लोकप्रियता इतनी अधिक हुई कि अंग्रेज भी उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके वे उनके गीतों का आनन्द लेते और प्रसन्न होकर अपने घर आमंत्रित करते थे। और उन्हें भेट स्वरूप नोट छापने की मशीन भी दी। एक बार अंग्रेजों के कहने पर जासूसी करने हेतु जटाधारी नाम के व्यक्ति को महेन्द्र जी के घर नौकर बनाकर भेजवाया जहॉ उसने अपना नाम बदलकर गोपीचन्द रख लिया और इस मशीन की वास्तविकता जानने के लिए रहने लगा, जब वास्तविकता उजागर हुई कि मशीन क्रांतिकारियों अर्थात राष्ट्रहित में प्रयोग की जा रही है तब उस गोपीचन्द ने छपरा के कलेक्टर को सूचित कर उन्हें पकड़वा दिया। जेल जाते वक्त महेन्द्र मिश्र जी ने अपना यह गीत गाया –

''पाकल पाकल पानवॉ खिअबले गोपीचनवां,
पिरितियॉ लगाके ते भेजले जेह लखानवॉ''

जेल जाने की सूचना पाकर जनमानस नें उन्हें छुड़ाने के लिए अथक प्रयास किया। तबायफों ने एकत्र होकर अदालत से अनुरोध किया कि तराजू में एक ओर मिश्र जी को बैठा दो और दूसरी ओर सोने गहने जिनका वजन उनका है उतना गहना हम लोग देगें– लेकिन मिश्र जी को छोड दों। ऐसा सम्भव नहीं हुआ। उनकी तत्कालीन लोकप्रियता से आंतकित होकर अंग्रेजों ने उनकी धवल कीर्ति को दागदार बनाने की भरपूर कोशिश की और उन्हें बक्सर जेल भेजा गया। जहॉ उन्हें सात वर्षों की सजा हुई। जेल में रहकर भी भोजपुरी साहित्य के प्रति समर्पित आध्यात्मिक गीतों की उन्होंने रचना की। महेन्द्र मिश्र जी ने अपनी जाति की आशा, निराशा, हास्य, रूदन, इच्छा, आकांक्ष,ा सुख–दुख और सपनों को अपनी कलात्मक प्रतिभा का देवी स्पर्श देकर न सिर्फ भोजपुरी भाषा को अपार लोकप्रियता दिलाई बल्कि उसे अन्य भारतीय भाषाओं को समान समृद्ध करने में अग्रणी भूमिका भी निभाई। सामंतकालीन संगीत को महलों और कोठों से निकालकर गॉवों की गलियों तक पहुचाने वाले महेन्द्र मिश्र द्वारा रचित पूरबी गीत अपनी सोंधी सुगन्ध फैलाते रहे है। उनके गीतों में श्रृगांर रस का भी भरपूर आनन्द मिलता है। श्रृंगार रस में दो पक्ष होते है संयोग और वियोग। वियोग श्रृंगार के अंतर्गत रूप वर्णन तथा मनोवृत्तियों का चित्रण होता है, जो मिलन हेतु पृष्ठभूमि तैयार करते है। उनके गीतों में इसका भरपूर प्रयोग हुआ। राम घोडे पे सवार होकर अयोध्या आए है। वहां की औरतें उनकी सुंदरता देखकर मुग्ध हो जाती है। वे अपना होश खो बैठती है। ऐसे में उनके आंचल की बात कौन कहे कंगन स्वयं खुल–खुल जाते है सोने की थाली लिये औरते पहुचती है तो मन ही मन उनके रूप में खो जाने की इच्छा रखती है महेन्द्र जी का यह गीत दृष्टव्य है–

''घोडवा चढ़ल अइले राम जी पहुनवॉ,
अंतरवा उड़ि–उड़ि जाला हो लाल,
कइसे के आइ सखी रामजी अंगनवा,
कंगनवा खुलि–खुलि जाला हो लाल,
सोने के थारी मे जेवना परोसलो से,
जेई नाही राजा के कंवरवा हो लाल,,
एक मन करे सखी गलवा लगइती,
दूसरे लोग कुलवा के लाजवा हैं लाला।।

इसी तरह एक दूसरे गीत में जीवन में व्याप्त श्रृंगारिकता की अभिव्यक्ति लोक उपमाओं रूपकों के माध्यम से हुई है। नारी सौंदर्य की चर्चा करते हुए उन्होंने अपने गीत मे कहा है–

''पातर–पातर गोरिया के पतरी कमरिया''
मोर संवरिया रे पतरी डगरिया घइले जाय,
पातर लप–लप गोर पतरी अंगुरिया,
मोर संवरिया रे लवकत पनिया के जाय,
सडिया के आरी–आरी गोटवा के जारी,
मोर संवरिया रे, देखत में जिया न अघाय....

श्रृंगारिकता के साथ–साथ पं. महेन्द्र जी ने विरह सम्बन्धी गीत भी लिखे जो अत्यन्त चर्चित रहे, राधा, कृष्ण को सम्बोधित करते हुए उनका यह गीत अत्यन्त मार्मिक है–

'अइसन करेजऊ के कइसे के बिसारी हो दरदिया देके ना।।
श्याम मथुरा परइले हो दर दिया देके ना
रहि–रहि उठे मनवा में होला रवीस,
अइसन सुरतिया लेके कहॉ चलि गइल हो दरदिया,

कृष्ण, राधा, उधौ और गोपियों को केन्द्र में रखकर मिश्र जी ने संपूर्ण विरह व्यथा का चित्रण किया, उनका यह गीत भी चर्चित रहा–

'खेलत रहनी बाबा के दुअरिया, बंसुरिया बजवल ऐं माधो
माधो छूटल घर परिवार कि नामवा सुख के सेजरिया,
सपनवा देखवल ऐ माधो माधो जागला पर सगरो अन्हार,
खबरिया ना मिलता ए माधो'।।

कभी–कभी विरह में पत्नी को अच्छा न लगने वाला पति भी अच्छा लगता है चाहे उसका पति कैसा भी हो महेन्द्र जी का एक ऐसा गीत जिसमें औरत की उस व्यथा को बताया गया है जिसमें उसका पति देखने में अच्छा नही है और वह हंसकर बाते भी नही करता पर उसका यह कहना उसका भोलापन दर्शाता है कि यह सब सहा भी जा सकता है अगर वो ऑखों के सामने होता पर वह कही चला गया एक तो पति के जाने की पीड़ा दूसरा घर में सास की धौंस से तंग आ चुकी वह औरत अब पति के बिना जी नहीं सकती औरत की इस व्यथा को महेन्द्र जी अपने इस गीत के माध्यम से व्यक्त किया है–

''सासु मोरा मारे राम बांस के छिअकिया,
मोर ननदिया रे सुसुकत पनिया के जाय,
छोटे मोटे, पातर पियवा हसि के ना बोले,
मोर नरदिया रे से हू पियवा कहीं चलि जाय,
गंगा रे जमुनवा के चिकुनी डगरिया,
मोर ननदियां रे पइयॉ धरत विछलाय,
कहत महेन्दर श्याम टूटों रे पुरूबिया,
मोर ननदिया रे पिया बिनु रहलोना जाय।।

महेन्द्र जी ने विरह व्यथा के साथ ही अपने भोजपुरी गीतों में औरत की पीड़ा, समाज में व्याप्त विभिन्न कुरीतियां, अनमेल विवाह आदि पर भी अपनी लेखनी चलाकर समाज के सामने लाकर जनमानस के लिए सोचने पर मजबूर किया उनका यह गीत समाज की कुरीतियों पर तीखा प्रहार करता है–

''सबके देले रामजी अन, धन सोनवा, बनवारी हो हमरा के लरिका भतार,
लरिका भतार लेके सुतली अंगनवा, बनवारी हो रहरी में बोलेला सियार,
खोले के चोली बंध खोलेला के वाडी बनवारी हो जरि जइले एडी के कपार,
कहत महेन्दर हम पुरूष के चुकनी, बनवारी हो टूटे विधि लिखले लिलार''

इस प्रकार महेन्द्र जी की लोकभाषा में गहरी पकड़ थी वे कथ्य और परिवेश से सम्बन्धित शब्दों का चयन और ताल–मेल कर भोजपुरी के ठेठ शब्दों को प्रस्तुत करते हैं, वह उनकी सूक्ष्म दृष्टि का परिचायक हैं। इससे उनकी गहरी दृष्टि और अनुभव दृष्टिगोचर होते हैं। भोजपुरी के साथ–साथ महेन्द्र जी ने खडी हिन्दी का प्रयोग भी अपने गीतों में किया है इस प्रकार वे हिन्दी में भी गीत लिखते थे। आज भोजपुरी अंचल में पं. महेन्द्र मिश्र जी के पूरबी गीत जन–जन में समाहित हो चुके है।

इस प्रकार जनमानस के मन में समाये हुये भोजपुरी भाषा साहित्य के महान रचनाकार के भोजपुरी अंचल के जनमानस के लिए 25 अक्टूबर 1946 का दिन हमेशा–हमेशा स्मरणीय रहेगा जब वे इस दिन पूजा पाठ करके उठे इसके बाद उन्होंने अपना आखिरी गीतें लिखा। भगवान शिव की अभ्यर्थना में लिखा गया अपना यह गीत लेकर बरसों बाद वह फिर लौटकर उसी शिवमंदिर में आए जो ढेलाबाई ने उनके लिए बनवाया था। मंदिर की पूरी साफ–सफाई कराई और रात उसी मे ंगुजारी जो ढेलाबाई ने उनके रहने की खातिर बनवाया था। बाबा महेन्द्र के लौटने की खबर सारे मुहल्ले में रातों रात फैल गई। सुबह होते ही बडी संख्या में भक्त मन्दिर में आ पहुंचे और दंडवत करने लगे। बाबा ने सबकों आर्शीवाद दिया और कहा कि आज आखिरी महफिल जमेंगी अपने चेलों को भेजकर उन्होने शहर के तमाम संगीत प्रेमियों एवं पदाधिकारियों के पास न्योता भिजवाया कि आज की शाम ढेलाजी के मन्दिर में पं. महेन्द्र मिश्र की ऐसी महफिल जमेंगी जैसे कभी नही ंजमी थी। यह अद्‌भुत न्यौता किसी के समझ में न आया शांम को ढेला जी के मंदिर में उत्सुक भक्तों की भारी भीड़ उमड़ पड़ी। पं. महेन्द्र मिश्र जी महफिल में आए और हारमोनियम लेकर उस शिवलिंग के सामने बैठ गए जिसकी कभी स्वयं प्राण प्रतिष्ठा की थी, जिसे ढेलाबाई स्वयं अपने हाथों से रोज गंगाजल और दूध से नहलाती थी, आज वह ठीक उसी स्थान पर बैठे थे जहॉ बैठकर ढेलाबाई उनके रचित गीत और भंजन सुनाती थी। मिश्र जी ने जैसे ही हारमोनियम की धुन बजाई वैसे ही सारा कोलाहल एकदम शांत हो गया। मिश्र जी जी करूण स्वर में जब अपना शिवजी का गीत गाना शुरू किया तो सभी इतने विरह–विदग्ध हो गए कि सभी अपनी सुध–बुध खो बैठे। जैसे ही भजन समाप्त हुआ, पं. महेन्द्र मिश्र अपने हारमेानियम पर लुढक गए और उनका माथा जाकर सीधे शिवलिंग पर टिक गया। यह देखते ही सारी महफिल में कोहराम मच गया मगर अब कुछ हो नहीं सकता था बत्ती बुझ गई थी। पं. भोजपुरी के पुरोधा पं. महेन्द्र मिश्र इस धरा–धाम पर नहीं है, पर अपने असंख्य कालन की गीतों के कारण वह जनकंठ में आज भी बसे हुए है उनसे ज्यादा लोकप्रिय गीतकार अथवा गायक सम्पूर्ण भोजपुरी भाषी क्षेत्र में पिछले एक सौ साल में पैदा नहीं हुआ।

उनकी अपार लोकप्रियता से आतंकित होकर अंग्रेजों ने इनकी धवल कीर्ति को दागदार बनाने का प्रयास किया जिस प्रकार अन्य क्रांतिकारियों का करते रहे। जिस प्रकार अमर शहीद रामप्रसाद विस्मिल को डकैत अथवा अन्य क्रांतिकारियों को खूनी हत्यारों आदि की उपमाएं दी, उसी प्रकार कोटि–कोटि भोजपुरियों के हृदय सम्राट को जालसाज के रूप में प्रचारित कर उनकी जन छवि को धूमिल करने के उन लोगों ने हर संभव प्रयास किए, पर लोगों के हृदय से उनकी आदरणीय छवि को स्थानापन्न कर पाने में कभी कामयाब नही हो सके। आजादी के बाद भारतीय इतिहहासकारों एवं शोधकर्ताओं ने यह साबित कर दिया कि पं. मिश्र का नोट छापने का उद्देश्य राष्ट्रीय था खानादानी तौर पर धनी, हाथी घोड़ो के मालिक पं. महेन्द्र मिश्र को व्यक्तिगत जरूरतों की खातिर जाली नोट छापने की जरूरत नही थी। उनका गायन सुनने के लिए राजे–राजवाड़े तरसते थे और वह चाहते तो सिर्फ

गायकी से ही उस जमाने में भी लाखों पैदा कर सकते थे।

इस प्रकार भोजपुरी साहित्य के पुरोधा लोकलय, लोकरागिनी, और लोक काव्य के अद्‌भुंत समन्वयक पं. महेन्द्र मिश्र ने सात खण्डो में लिखे अपूर्व रामायण के अलावा जिन ग्रन्थों की रचना की उनमें ''महेन्द्र मंजरी–दस खण्ड महेन्द्र मयंक'' महेन्द्र दिवाकर, महेन्द्र प्रभाकर, महेन्द्र चंन्द्रिका, महेन्द्र कुसुमावली, 'कजरी संग्रह', कृष्णा गीतावली, मेधनाथ बध, नाटक भागवत दशम स्कंध, भोजपुरी काव्यातरण आदि प्रमुख है। वह वहॉ लगभग दो दर्जन के अधिक शास्त्रीय और लोक रागिनियों के अपूर्व ज्ञाता थे वही उनके समाज लोक अथवा शास्त्रीय वाधों को किसी भी वादक की तुलना में ज्यादा कुशलता और मोहकता से बजा सकता था। पहलवानी के अखाडे में उनके गदहालोट और धोबिया पछाड़ दांव के आगे उस जमाने का कोई सूरमा नहीं टिक सकता था वह निःसंदेह भोजपुरिया समाज, भोजपुरिया संस्कृति और भोजपुरी अस्मिता के साथ भोजपुरियों की अद्‌भुत रागात्मक संवेदना और अनूठी कलात्मक अभिव्यंजना के शलाका पुरुष थे, जिन्होनें अपनी जाति की आशा–निराशा हास्य, रूदन, इच्छा आकांक्षा सुख–दुख, आंसू–मुस्कान और सपनों को अपनी कलात्मक प्रतिभा का दैवी स्पर्श देकर न सिर्फ भोजपुरी भाषा को अपार लोकप्रियता दिलाई अपितु उसे अन्य भारतीय भाषाओं के समान समृद्ध करने में भी ऐतिहासिक भूमिका निभाई। महेन्द्र मिश्र जी तब तक अमर रहेगे जब तक गंगा सरयू सोन और शलिग्रामी सदृश स्वच्छ, शीतल जीवनदायिनी नदियों में पानी रहेगा और उसके कलो–कगारों में बसे कोटि–कोटि भारतवंशी अपनी मातृभाषा भोजपुरी बोलते रहेंगें।

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

रागदरबारी की प्रासंगिकता

अर्चना
शोध छात्रा
डा0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ–उ0प्र0

साहित्य समाज का दर्पण है, अर्थात साहित्य में साहित्यकार समाज में विद्यमान सभी विद्रूपताएँ, अनुकूलताएँ, समानताएँ, प्रतिकूलताओं आदि का चित्रण करता है।

साहित्यकार श्रीलाल शुक्ल अपने उपन्यास 'रागदरबारी' में उक्त उक्ति का पूर्णतः पालन करते है, 'रागदरबारी' एक काल्पनिक उपन्यास न होकर देश की सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षिक विसंगतियों पर प्रहार का उपन्यास है। प्रेमचंद के उपन्यासों में जहाँ स्वतंत्रतापूर्व देश के यथार्थ का वर्णन मिलता है, वहीं रागदरबारी में स्वतंत्र भारत का चित्रण है।

साहित्यकार ने उपन्यासमें गंभीर मुद्दों को व्यंग्यात्मक शैली में वर्णित किया है। संपूर्ण उपन्यास को कई दृश्यों में बाँटा गया है। प्रत्येक दृश्य समाज, राजनीति, शिक्षा आदि के स्तर पर कड़ा प्रहार करते हुए उनकी पोल खोलते है और प्रत्येक दृश्य 'साहित्य समाज का दर्पण है' की उक्ति को चरितार्थ करते है।

श्रीलाल शुक्ल हिन्दी के प्रमुख एवं उद्देश्यपूर्ण व्यंग्य लेखन के लिए विख्यात साहित्यकार थे, उन्होनें अनेक उपन्यास, कहानी संग्रह, व्यंग्य संग्रह, निबंध आदि लिखे।

सूनी घाटी का सूरज (1957), अंगद का पाँव (1958), रागदरबारी (1968), आदमी का जहर (1972), विश्रामपुर का संत (1998), राग–विराग (2001), जहालत के पचास साल (2003) आदि उनकी प्रमुख कृतियाँ है''। किन्तु 'राग–दरबारी' उपन्यास अपने प्रकाशन के 50 वर्ष बाद की आज भी उतना ही प्रासंगिक है।जितना कि 50 वर्ष पूर्व। इसको पढ़कर आश्चर्य होता है कि जिस समाज का वर्णन श्री लाल शुक्ल ने आज से 50 वर्ष पूर्व रागदरबारी में किया था, वही देश की सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षिक, विसंगतियाँ, जस की तस आज भी देश में विद्यमान है। इन्ही विसंगतियों को आधार बनाकर उपन्यास की रचना हुई है।

'रागदरबारी' एक ऐसा उपन्यास है जो एक गाँव (शिवपालगंज) की कथा के माध्यम से पूरे देश से परिचय कराता है, यह एक सिर्फ गाँव की कथा नही है, अपितु शिवपालगंज पूरे देश का प्रतिनिधित्व करता है। कथा के माध्यम से आधुनिक भारतीय जीवन की मूल्यहीनता को बड़ी ही सहजता से उजागर करता है। पूरे उपन्यास में शुक्ल जी ने घटनाओं की गंभीरता तथा परिस्थितियों को व्यंग्यात्मक शैली में वर्णित किया है। जो न सिर्फ हमारे मन मस्तिष्क को झकझोर कर रख देती है अपितु देश की सत्ता, लोकतंत्र तथा शिक्षा का वास्तविक चेहरा भी उजागर करती है, कि किस तरह सत्ता पर बैठे नामचीन लोग देश के लोकतंत्र के साथ खिलवाड़ करते है जहॉ लोक भावनाओं को सत्ता के हथियारों से कुचला जाता है, और इस सत्ता की लालसा से विद्या का मंदिर भी अछूता नही रह गया है।

कथानक – उपन्यास की पृष्ठभूमि में एक गाँव शिवपालगंज है जो पूरे देश का रूपक है। जहॉ की राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, शैक्षिक सभी गतिविधियाँ पूरे देश की गतिविधियों का प्रतीक है, तथा सभी पात्र पूरे समाज का प्रतिनिधित्व करते है।

वैध जी का घर राजनीतिक अखाड़ा है जहाँ से पूरे गाँव की राजनीति का संचालन होता है तथा जिसके

संचालक वैध जी है। राजनीति का प्रमुख केन्द्र गॉव का 'छंगामल विद्यालय इंटर कॉलेज' है। जो देश के शिक्षा–स्तर तथा विद्यालयों में व्याप्त राजनीति तथा गुटबाजी को उजागर करता है,कि किस तरह हाकिम और नेता देश को चला रहे है या डुबा रहे है, यह कह पाना कठिन है। किस तरह गाँव के विकास के लिए बड़ी–बडी सरकारी योजनाएँ लागू की जाती है पर उन योजनाओं का अमलीकरण पूरे गाँव पर लागू न होकर केवल गाँव के कुछ तथाकथित इज्जतदार, रूतबेदार लोगों तक ही सीमित रह जाता है और गाँव का आम इंसान जीतोड़ मेहनत के बाद भी दो जून की रोटी को तरसता है और किस तरह सहकारी समीतियाँ कुछ स्वार्थी लोगों के लाभ का साध ान बन गई है।

पात्र – इसके विभिन्न पात्र वैधजी, रंगनाथ, रूप्पन, बद्री पहलवान, सनीचर, छोटे पहलवान, जोगनाथ, लंगड, प्रिंसपल, खन्ना आदि हमारे आस–पास के लोगों का प्रतिनिधित्व करते है।

वैधजी, जिन्होने शराफत का चोला ओढ़कर गाँव का मसीहा बनने का ढोंग रचकर सदैव अपना स्वार्थ सिद्ध किया है, गाँव की समस्त गतिविधियों पर उनका नियंत्रण रहता है, किस योजना का कितना पैसा कहाँ लगना है, प्रधान के चुनाव में किसे खड़ा करना है, सहकारी समिति का अध्यक्ष तथा कॉलेज का प्रिंसपल कौन बनेगा यह सभी बैध जी के द्वारा ही तय होता है। बाकी सभी पात्र उनकी शतरंज की मोहरें हैं। जिसका जैसा चाहें वैध जी इस्तेमाल करते है और ये सभी मोहरे अपने स्वार्थ को पूरा करने या उनके डर से उनके सभी आदेशों का पालन करते है।

रंगनाथ जो कि इस गाँव में बाहरी व्यक्ति है और वैध जी का भाँजा है, वह इस गाँव के हालात देखकर विचलित होता है, किन्तु मैं क्या कर सकता हूँ वाली सोच को तवज्जो देता है और कुछ ही दिनों में वह भी गाँव के हालात से समझौता कर ही लेता है। देश के अन्य युवाओं की तरह जिनके अन्दर देश की व्यवस्था के प्रति आक्रोश तो है पर उसके विरोध में करते कुछ नही तथा मूक दर्शक की भाँति सिर्फ आलोचक बन कर ही रह जाते है और हालात से समझौता कर लेते है कि देश की यही नियति है।

शुक्ल जी ने इस उपन्यास में कई दृश्यों के माध्यम से शिवपालागंज की राजनीति, समाज और शिक्षा के स्तर की दशा तथा जाति–पाति पर कटाक्ष किया है।

शुक्ल जी ने अनेक वाक्यों में व्यंग्यात्मक लहजे में बात की है जो आज भी उतने ही प्रासंगिक है। चाहे वह राजनीति के घटिया दाँव पेच हों सरकारी दफ्तरों तथा सरकारी एवं हाकिमों का रवैया, अदालत, कचहरी से त्रस्त आम आदमी, पुलिस का कमजोरों के प्रति रवैया या फिर देश में ईमानदार व्यक्ति का हाल हो सब कुछ इतना सटीक लगता है जैसे हम कोई उपन्यास न पढ़ रहे हो बल्कि यह सब हमारे सामने आस–पास घटित हो रहा हो आश्यचर्य की बात यह है कि आज से 50 वर्ष पूर्व उन्होने जो भी लिखा। वह आज भी प्रासंगिक है।

असली शिवपालगंज बैध जी की बैठक में था जहॉ पर बड़ी–बड़ी बैठक तथा मंत्रणा होती थी, और देश की राजनीति पर चर्चा होती थी।

'' वोट की भिक्षा बड़े–बड़े नेताओं तक को विनम्र बना देती है।''[1]

राजनीति में स्वार्थ की पराकाष्ठा ही है कि कोई भी नेता किस तरह चुनाव के समय मतदाताओं के आगे एक याचक की तरह पेश आता है, और सत्ता मिलते ही नेता अपनी सत्ता के मद में चूर हो जाते है। जहाँ नेता चुनाव के समय मतदाताओं के घरों के चक्कर लगाते है और उनसे वादा करते है कि अगर उनको जीत मिलती है तो वह उनके क्षेत्र तथा उनके विकास के लिए कार्य करेगें, अपितु होता इसके विपरीत है। मतदाताओं यानि आम इंसान को अपने जायज कार्यो के लिए भी नेताओं के आगे याचक की भाँति याचना करनी पडती है फिर भी आश्वासन के सिवाय उन्हें कुछ नहीं मिलता है।

''देखो दादा, यह तो पॉलिटिक्स है, इसमें बड़ा–बड़ा कमीनापन चलता है, यह तो कुछ भी नहीं हुआ।''[2]

राजनीति में सब जायज है अर्थात यहाँ अपने प्रतिद्वंद्वी को हराने या फिर सत्ता हथियाने के लिए हर तरीका जायज है, चाहे फिर इन राजनेताओं को कितने ही निम्न स्तर पर क्यों न गिर जाना पड़े। किस तरह राजनीति में आज अपराधी, बाहुबली किस्म के लोग अपनी पैठ जमाए हुए हैं, जो साम–दाम–दंड–भेद की नीति अपनाकर चुनाव में जीत हासिल करते है, कॉलेज कमेटी की सलाना बैठक में जिस तरह वैध जी को दुबारा मैनेजर चुन लिया गया, क्योंकि वैध जी के विरोधियों को तंमचे के बल पर बैठक में सम्मिलित ही नहीं होने दिया गया और दोबारा वैध जी को ही मैनेजर की कुर्सी दे दी गई।

''चुनाव कानून में लिखा है पता नहीं क्यों सभी बडे नेता चुनाव के कुछ महिने पहले अपने–अपने चुनाव क्षेत्र का सुधार करते है कोई नए पुल बनवाता है कोई सड़के बिछवाता है कोई गरीबों को अन्न और कंबलों का दान देता है।''[3]

जिस तरह चुनावी मौसम में यकायक नेताओं को इस बेचारी जनता की याद आ ही जाती है फिर उनका सारा समर्पण जनता के प्रति हो जाता है उन्ही दिनों जनता की भलाई के लिए सारे कार्य होते है वोट का लालच ही उन्हें मात्र जनता के साथ जोड़ता है अन्यथा शेष समय वह अपने वातानुकूलित कार्योलयों तथा घरों या विदेशी दौरे से उन्हें फुर्सत ही नहीं मिलती कि वे जनता जनार्दन के लिए कुछ कार्य करें या उनकी भलाई के लिए कुछ सोचे।

''प्रधान यानि पूरे गाँव की जायदाद का मालिक, चाहे तो एक दिन में लाखों के व्यारा–न्यारा कर दे। बड़े–बड़े अफसर आकर उसके दरवाजे बैठते हैं।''[4]

भले ही देश के नेता अपना पद संभालते ही देश की सेवा तथा देशहित में सभी कार्यो को करने की शपथ क्यों न लेते हो पर वास्तविकता मे न तो उनके अंदर देश सेवा और न ही देश हित की भावना होती है उनके अंदर अपने स्वार्थ तथा भाई –भतीजावाद के अतिरिक्त और कुछ नही होता है वह अपने पद का प्रयोग देशकी सेवा या जनता की सेवा में न कर अपने तथा अपने परिवार की सेवा में लगाते है। संविधान के 73वें व 74वें संशोधन में भले ही देश के गाँवों के विकास को ध्यान में रखते हुए ग्राम पंचायत चुनावों का प्रावधान किया गया था, ताकि गाँव का समुचित विकास हो सकें। किन्तु नेताओं तथा हाकिमों ने मिलकर इस चुनावों का गाँव के विकास में न प्रयोग करके अपने विकास में किया। गाँव का प्रधान गाँव का मुखिया होता है, गाँव के विकास संबंधी योजनाएँ उसके द्वारा क्रियान्वित होती है, अब वह इन योजनाओं का लाभ गाँव के विकास में लगाता है, या फिर अपने तथा सभी बड़े अफसरों को खुश करने में यह उसकी ईमानदारी पर निर्भर करता है। भले ही सनीचर उन आम नेताओं में नही शुमार है जो अच्छे नेता होने के बड़े–बड़े दावे करते है, वह नेताओं की इन हरकतों से कितना ही अनजान क्यों न हो पर वो है तो वैध जी का मोहरा ही बैध जी ने अपने लाभ के लिए ही उसे प्रधान के चुनाव में खड़ा करवा करके अपना ही हित साधा है। सनीचर तो एक रबर– स्टैम्प की भाँति कार्य करता है, असली प्रधान तो वैध जी है। क्योंकि उनकी नजर गाँव के विकास में आने वाले लाखों रूपयों पर है। वह जैसा चाहगें वैसा ही इन योजनाओं, तथा फंड का प्रयोग करेंगे। भले ही 73वें तथा 74वें संशोधन में ग्राम तथा नगर पंचायतों के चुनावों में महिलाओं का 33 प्रतिशत आरक्षण हो यह बिल महिला शक्तिकरण की दिशा में कम ही कार्य करता है, अपितु महिलाओं तथा गाँव के शोषण में अधिक। भले ही आरक्षण के बल पर प्रधान के पद पर अनेक महिलाएँ है पर कितनी ऐसी महिलाएँ है जो गाँव के लिए स्वयं निर्णय लेती है। उनके घर का पुरूष मुखिया ही वह सारे निर्णय लेता है, जो प्रधान को लेने चाहिए और उसके लिए वह महिला प्रधान पर दबाव बनाता है और महिला प्रधान को कभी मजबूरीवश या कभी तो दबाव में या फिर अज्ञानता के कारण असंवैधानिक कार्य करने पड़ते है। ''प्रसिद्ध

साहित्यकार मैत्रेयी पुष्पा की प्रसिद्ध कहानी ''फैसला'' इसका उदाहरण है कि किस तरह बसुमती पर गलत–गलत फैसले लेने तथा सरकारी धन का दुरूप्रयोग करने तथा प्रधान के अधिकारों का गलत लाभ उठाने के लिए उसका पति दबाव बनाना है।''[5]

शुक्ल जी ने उपन्यास में राजनीति में व्याप्त भृष्टाचार, भाई–भतीजावाद, सरकारी धन का दुरूप्रयोग आदि का बड़े ही सटीक तथा व्यंगात्मक लहजे में चित्रण किया है कि पाठकों की आँख खुली–खुली रह जाती है।

शिक्षा – कॉलेज प्रायः स्थानीय जननायक की प्रेरणा से शिक्षा प्रसार के लिए और वास्तव में उसके लिए विधानसभा या लोकसभा के चुनावों की जमीन तैयार करने के उद्देश्य से खोले जाते थे और उनका मुख्य कार्य कुछ मास्टरों या सरकारी अनुदानों का शोषण करना था।''[6]

आज चाहे दफ्तर हो कॉलेज हो या विश्वविद्यालय सभी जगह राजनीति ने अपनी पैठ जमा ली है, कॉलेज और विश्वविद्यालयों में आए दिन विधार्थी पढ़ने के स्थान पर नारेबाजी, अनशन, विरोध प्रदर्शन ही करते रहते है और यही हाल सरकारी दफ्तरों का भी है, कोई भी अपना कार्य ईमानदारी से करना ही नहीं चाहता है। कड़ी कार्यवाही होने या असंतुष्ट होने पर धरना तथा विरोध–प्रदर्शन पर उतर आते है। आखिर हमारे प्रजातंत्र की यही वास्तविकता है यहाँ हर कोई अपने अधिकारों को लेकर बहुत सजग है किन्तु कर्तव्यों के प्रति उदासीन चाहे वे हाकिम हो, कर्मचारी या विधार्थी। देश के कुछ नामी–गिरामी विद्यालय तथा विश्वविद्यालय हैं जो विद्या का मंदिर कम राजनीति का अखाड़ा ज्यादा नजर आते है। उपन्यास में वर्णित 'छंगामल कॉलेज' विद्या का मन्दिर न होकर सबकी राजनीतिक तथा आर्थिक आकांक्षा की पूर्ति का एक माध्यम था, वहाँ पर हर एक व्यक्ति चाहे वह विधार्थी हो, शिक्षक हो या प्रिंसपल सभी के अपने गुट थे, सभी ने गुटबंदी कर रखी थी। जिनका उद्देश्य सिर्फ अपना स्वार्थ सिद्ध करना था न कि शिक्षा गृहण करना या शिक्षा देना। इन सबका उद्देश्य किसी तरह अपने विरोधियों को पटखनी देना है इसी पर केन्द्रित था। आऐ दिन कॉलेज में धोबी–पछाड़ होती रहती थी। पूरा कॉलेज गुटबंदी का अड्डा, जहॉ पर सभी अपना–अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहे थे। कॉलेज के फंड का बंदरबॉट होता उसका कॉलेज के विकास में कोई योगदान नहीं वह केवल जरिया है प्रिंसपल, वैध तथा समितियों के सदस्यों के लिए अपनी आर्थिक महत्वकांक्षा की पूर्ति करने का।

''प्रिंसिपल साहब विख्यात थे। खर्च का फर्जी नक्शा बनाकर कॉलेज के लिए ज्यादा से ज्यादा सरकारी पैसा खींचने के लिए।''[7]

किस तरह सरकारी अनुदानों द्वारा चलाए गए विद्यालयों में अनुदानों का प्रयोग शिक्षा के स्तर का सुधार के लिए न होकर विद्यालयों के प्रमुखों की आर्थिक संपन्नता के लिए होता है। अनुदानों का कुछ प्रतिशत विद्यालयों के विकास तथा उनके स्तरीय सुधार पर खर्च किया जाता है, शेष विद्यालयों से संबंधित अधिकारियों की जेब में जाता है, जहाँ एक ओर शिक्षकों का ध्यान विधार्थियों को शिक्षा देने में कम, विद्यालयों की राजनीति तथा अपने निजि कार्यो को पूरा करने में अधिक लगता है, और विधार्थियों का मन शिक्षा गृहण से अधिक गुटबाजी नारेबाजी तथा राजनीति में अधिक लगता है। छात्र संघ के चुनाव भले ही छात्रों में एक राजनीतिक समझ विकसित करने तथा विद्यार्थियों की समस्याओं का समाधान हेतु किए जाते हो किन्तु यहाँ भी वही राजनीति देखी जा सकती है जो समाज तथा देश को धर्म, सम्प्रदाय, जाति, लिंग के आधार पर बाँटती है, यह विडंबना ही है कि देश के युवा भी राजनीति के इस दलदल से अपने को सुरक्षित नही रख पा रहे है। वह अपने मुख्य मकसद से भटक रहे है।

जाति प्रथा – ''छुआछूत प्रथा भले ही संविधान के अनुच्छेद 17 में समाप्त कर दी हो लेकिन वह आज भी व्याप्त है। क्योंकि छुआछुत इस देश का धर्म है जो धर्म के सहारे चलती है न कि किसी संविधान जैसी किताबों के सहारे।''[8]

यह पंक्तियॉ कडवी है परन्तु वास्तविकता यही है, कि आज भी देश में जाति–पाति, छुआ–छूत जैसी बिमारियों पनप तथा फैल रही है। आज भी देश में ध्रुवीकरण की राजनीति होती है, नेता जाति के आधार पर देश को बॉटते है। भले ही संविधान में जातिप्रथा को समाप्त कर समानता की बात कही हो, देश में धर्म, जाति,लिंग के आधार पर नही अपितु मनुष्य होने के आधार पर सभी को सामान दर्जा दिया हो पर लोगों के मन मास्तिष्क से इस व्यवस्था को दूर करने में हम विफल हुएं है। आए दिन अखबारों में दलित पुरूषों या महिलाओं पर शोषण, हत्या, बालात्कार आदि की धनटनाएँ पढ़ने को अवश्य मिल ही जाती है। आज भी देश की उच्च जातियाँ उसी मनुवादी या ब्राह्मणवादी मानसिकता से ग्रस्त है, जो समानता जैसे संवैधानिक शब्द पर विश्वास न करके धार्मिक ग्रंथों में वर्णित वर्ण व्यवस्था को ही प्राथमिकता देते हैं। आज भी निम्न तथा दलित जातियों के साथ उच्च जाति के लोग उठना–बैठना, खाना–पीना, पंसद नहीं करते और यदि वह करते भी है, तो मजबूरीवश।

सरकारी अफसर तथा कर्मचारी – इस्पेक्टर साहब सोचते है कि सरकारी नौकरी करके भी अगर काम करना पड़े तो ऐसी जिंदगी पर लानत है।''[9]

कितना सटीक व्यंग्य है और वास्तव में यही सोच है हमारे देश के अधिकांश सरकारी अफसरों तथा कर्मचारियों की हर व्यक्ति एक सरकारी नौकरी पाने के खातिर बड़ी–बडी रिश्वत देने से भी नही हिचकता, आए दिन सरकारी भर्तियों की परीक्षाओं में गड़बडियॉ नकल, रिश्वत आदि की धटनाएँ हमें सुनने पढ़ने को मिलती है, क्योंकि उनको पता है कि एक बार सरकारी नौकरी पा जाओ तो जिंदगी की सारी मुसीबतो का समाधान हो सकता है। सेवा निवृत्त तक न कोई नौकरी से हटा सकता है और चाहे भले ही आप अपना कार्य ईमानदारी से करे या न करें।

''उत्तम कोटि का सरकारी आदमी कार्य के अधीन दौरा नहीं करता वह जिधर निकल जाता है उधर ही उसका दौरा हो जाता है।''[10]

नेताओं तथा सरकारी अफसरों के दौरे वहाँ की समस्या के आधार पर तय नही किए जाते अपितु उनके अपने व्यक्तिगत कार्यो तथा धूमने के उद्देश्य को पूरा करने के लिए किए जाते है। सरकारी खर्चे पर सरकारी कार्यो का दौरा दिखाकर अपने कार्यो को अंजाम दिया जाता है भले ही देश की जनता का इससे कोई लाभ न हो इससे क्या फर्क पड़ता है देश की जनता की पड़ी ही किसको है। नेता और अफसरो का परिवार छुट्टियाँ मनाता है और जनता अपने दुर्दशा के लिए अपने भाग्य को कोसती रहती है, यही इस देश की सच्चाई है।

ईमानदारी का फल – इस पूरे उपन्यास में एक व्यक्ति है लँगड़ा जो अपनी ईमानदारी के लिए पूरे गाँव में प्रसिद्ध है। उसकी ईमानदारी सभी के लिए हास्यापद है। सभी को पता है कि लँगड़ा की ईमानदारी किसी काम की नहीं है वह अपनी ईमानदारी के चलते कई वर्षो से ठोकरें खा रहा है। जो अपने कागजों की नकल पाने के लिए अदालत कचहरी के न जाने कितने चक्कर काट चुका है, उसे वहाँ से आश्वासन के सिवाय कुछ नही मिलता है।

प्रिंसपल साहब रंगनाथ से लँगड़े का परिचय कराते हुए कहते है कि इसे तहसील से एक दस्तावेज की नकल लेनी है। इसने कसम खाई है कि मैं रिश्वत न दूँगा और कायदे से ही नकल लूँगा इसी की लड़ाई चल रही है।''[11]

लँगड़ा पात्र के जरिए शुक्ल जी ने देश की उस व्यवस्था पर चोट की है, जिस व्यवस्था में ईमानदार इंसान दर–दर की ठोकरे खाने को विवश है जहॉ ईमानदार आदमी हास्य का पात्र बनता है, उसकी ईमानदारी उसके लिए आदर्श या सम्मान की बात न होकर उसके पागलपन या सनकीपन की निशानी होती है। लोगों को अब पूर्णतः यह विश्वास हो चुका है कि ईमानदारी या ईमानदार व्यक्ति जैसे शब्द पुस्तकों में ही होते है, या वही शोभा देते है, असल के जीवन में ईमानदार जैसा कोई मनुष्य नहीं होता या तो वह ईमानदारी का ढ़ोग रचता है या वह तभी तक ईमानदार है जब तक उसे बेईमानी करने का अवसर प्राप्त न हुआ हो। शिवपालगंज में लंगड़े को हास्यास्पद

या संदेह की दृष्टि से देखा जाता था उसकी ईमानदारी को मात्र उसका सनकीपन समझा जाता था, लोगों का मानना था कि वह फालतू की जिद्द पकड़कर बैठा है, वह बाबू को 50–100रू0 रिश्वत देकर अपना कार्य आसानी से करवा सकता है और यह सत्य है, आज हर इंसान जाने–अनजाने कहीं न कहीं भ्रष्टाचार में लिप्त है। कभी बेवसी में तो कभी मजबूरी में वह रिश्वत जैसे अपराध में भागीदारी बनता है। और यह सब इतना सहजता और सरलता से हमारे जीवन का हिस्सा बना चुका है जिसने हमें कोई बुराई नजर नहीं आती।

व्यंग्यात्म्क कटाक्ष – शुक्ल जी ने अनेक जगहों पर ऐसे वाक्य लिखे है, जो सीधे तौर पर समाजिक व्यवस्था, शिक्षा व्यवस्था, राज्य व्यवस्था पर कटाक्ष करते है।

''आदमी का सम्मान उसकी अच्छाई के कारण नही अपितु उसकी उपयोगिता के कारण होता है।''[12]

यही हमारी सामाजिक व्यवस्था है कि जो व्यक्ति उच्च पद पर है, या ऊँचे और बड़े लोगों से उसके तालुक्कात है तो सभी उसको सम्मान की दृष्टि से देखते है भले ही वह इंसान कितना ही बुरा क्यों न हो बैध जी इसका सटीक उदाहरण है, बैध जी की बैठक उनके चमचों से घिरी रहती है, क्योंकि उन सभी को बैध जी से अपना कोई न कोई स्वार्थ सिद्ध करना ही होता है।

''घास खोद रहा हूँ, इसी को अँग्रेजी में रिसर्च करते है।''[13]

यह सीधे– सीधे हमारी शिक्षा व्यवस्था पर कटाक्ष है जहाँ उच्च शिक्षा के नाम पर मात्र डिग्री लेना या एक अच्छी नौकरी पाना माना जाता है। हमारी रूचि या अभिरूचि से इसका कोई वास्ता नहीं होता।

ड्राइवर साहब तुम्हारा गियर तो बिल्कुल अपने देश की हुकूमत जैसा है, उसे चाहे जितनी बार टॉप गियर में डालो, दो गज चलते ही फिसल जाती है, और लौटकर अपने खॉचे में आ जाती है।''[14]

हुकूमत यानि देश को चलाने वाली सरकार, जहाँ आए दिन उठा पटक चलती है देश को चलाने वाली सरकार के सदस्य कभी नाखुश होकर विरोधी दलों से मिल जाते है, तो कभी विरोधी दल के लोग सरकार में ऐसा लगता है, कि वे संसद न चलने देने के लिए मानो कसम खाकर बैठे है कि वे देश हित में न कोई कार्य करेंगे और न ही करने देगें भले ही इससे देश का या देश की जनता का कितना ही नुकसान क्यों न हो जाए।

'रागदरबारी' उपन्यास आज तक इस देश की सामाजिक राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक विसंगतियों को जानने का सबसे अच्छा स्रोत मालूम पड़ता है, भले ही इस उपन्यास को प्रकाशित हुए 50 वर्ष हो गए हो पर उसकी प्रासंगिकता आज भी उतनी ही है, जितनी की 50 वर्ष पूर्व।

शिवपालगंज गाँव हमें देश के वास्तविक गाँवों से परिचय कराता है, जिन आदर्श गाँवों की हम बड़ी–बडी बाते करते है वह गाँव सिर्फ पुस्तकों या सिनेमा में देखने को मिलता है। जबकि वास्तविकता यह है, शिवपालगंज जैसे ही हमारे देश के गाँवों की दशा है। जहाँ न जाने कितने युवा नशे–जुए में तल्लीन रहकर अपनी युवावस्था तथा समय को बर्बाद कर रहे है। पहली बार किसी उपन्यास में किसी ग्राम की इतनी सटीक तस्वीर देखने को मिली है, जो काल्पनिक गाँवों की छवि से परे है।

रागदरबारी का नाम सुनते ही श्रीलाल शुक्ल और शुक्ल जी का नाम सुनते ही रागदरबारी ही जेहन में उतर जाता है दोनों ही एक दूसरे के पूरक है दोनों का ही जिक्र किए बिना एक दूसरे का जिक्र अधूरा लगता है।

रचना और साहित्यकार का यह अद्वैत बहुत कम देखने को मिलता है, जैसे रामचरितमानस और तुलसीदास, प्रेमचन्द्र और गोदान।

संदर्भ संकेत

रागदरबारी– श्रीलाल शुक्ल–1968– राजकमल पेपर वैक्स।

1. पृष्ठ–200
2. पृष्ठ–200
3. पृष्ठ–148
4. पृष्ठ–202
5. पृष्ठ–102
6. पृष्ठ–23
7. पृष्ठ–144
8. पृष्ठ–237
9. पृष्ठ–81
10. पृष्ठ–36
11. फैसला कहानी– मैत्रेयी पुष्पा– 'लालमनियाँ कहानी, संग्रहवाणी प्रकाशन।
12. दैनिक जागरण पत्र' 'समीक्षा रागदरबारी–2018।

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कॉरपोरेट जगत का सच : एक ब्रेक के बाद

डॉ0 बीना गुप्ता
एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्षा –हिन्दी विभाग
भगवानदीन आर्यकन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, लखीमपुर–खीरी

इक्कीसवीं सदी की महिला लेखिकाओं में अलका सरावगी की पहचान भूमण्डलीकरण, बाजारीकरण एवं उपभोक्तावादी संस्कृति से प्रभावित भारतीय समाज का यथार्थ परक चित्रण करने के रूप में है। भूमण्डलीकरण की तेज आंधी विकसित पश्चिमी देशों से अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगमों, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के बूते अपने साजो समान के साथ बड़ी तेजी से भारत जैसे विकासशील और अविकसित देशों की ओर बह चली है। जिसका प्रमुख लक्ष्य है – कम्प्यूटर, इण्टरनेट, बेबसाइट, मीडिया, विज्ञापन, क्रेडिट कार्ड, मोबाइल आदि नई प्रौद्योगिकी के साधनों के जरिये बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के सामान को खपाने के लिए विकासशील देशों में बाजार खोजना और वहॉ क्रयशक्ति रखने वाले उपभोक्ताओं को अपनी वस्तुओं की ओर लुभाना एवं धन कमाना। धन न होने पर भी बैंक से ऋण लेकर खरीदने के लिए तैयार करना। नीड और ग्रीड का अन्तर कम होता जा रहा है। उपभोक्तावाद उसी प्रकार हकीकत है जिस प्रकार बाजारवाद। प्रसिद्ध लेखिका अरूधती राय का मानना है कि ''मुक्त बाजार में बोलने की स्वतंत्रता, न्याय, मानवाधिकार, पीने का पानी, साफ हवा की तरह बिकने वाला माल बना दी गयी है, उन्हें ही उपलब्ध हो जो उन्हें खरीद सकते हैं। जाहिर है जो ऐसा कर सकते हैं वे इस स्वतंत्रता का इस्तेमाल वैसी ही खबर और जनमत बनाने में करते हैं जो उनके हित में हो।''[1]

अलका सरावगी ने 'ब्रेक के बाद' उपन्यास के माध्यम से कॉरपोरेट जगत के सच को बड़ी बेबाकी से प्रस्तुत किया है। उपन्यास के तीनों प्रमुख पात्र कॉरपोरेट जगत से जुड़े हैं। के0 पी0 शंकर अय्यर ने अपनी जिन्दगी का अधिकांश समय बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में व्यतीत किया है। मार्केटिंग से जुड़ा व्यक्ति हर समय चौकन्ना रहता है जरा चूका नहीं बस उसकी प्रोग्रेस का ग्राफ कम हुआ। के0 पी0 कहता है ''हम मार्केटिंग के आदमियों का एक पॉव इधर तो दूसरा पॉव नारद मुनि की तरह कही और रहता है। नारद मुनि की तरह हम कहीं टिकते नहीं और उन्हीं की तरह थोड़ी सी बात इधर की उधर और उधर की इधर तो हो ही जाती है।''[2]

कॉरपोरेट जगत में कुछ भी स्थायी नहीं है। प्रतिभाशाली प्रोफेशनल्स को जैसे ही दूसरा बेहतर अवसर मिलता है वे तुरन्त अपनी जॉब छोड़ देते हैं। डॉट काम या जॉब डॉटकाम नौकरी बदलने के कारण बताते हैं :–

'क्या आप अपने काम से ऊब गए हैं ?

क्या आपको लगता है कि आपकी तनख्वाह योग्यता से कम है ?

क्या आपको काम में कोई नई चुनौती नहीं मिल रही ?

क्या आपका बॉस आपका अपमान करता है ?

क्या आपसे गधाखटनी करवाकर शोषण किया जा रहा है ?

के0 वी0 का मित्र रंगनाथन छोटी–मोटी बातों से परेशान होकर नौकरियॉ बदलता रहता है। इस बात से चिंतित के0 वी0 कहता है– ''यह बड़ी समस्या है कि एक कम्पनी दो साल की तनख्वाह खर्च कर एक आदमी को काम करना सिखाती है और आदमी मौका पाते ही उड़नछू हो लेता है।''[3]

आज की पीढ़ी अपने काम से जल्दी ही बोर हो जाती है रंगनाथन अपने अहं के कारण कहीं टिक नहीं पाता तो भट्ट भी नित नई नौकरी की तलाश में जूझता रहता है। काम ऐसा हो जो उसे आत्मसंतोश दे। साथ ही उसकी

स्वतंत्रता को भंग भी न करे। के0 वी0 की चिन्ता है कि 'ये बहुत जल्दी किसी भी काम से 'बोर' हो जाते हैं। पहले कोई आदमी बरसो तक एक ही कम्पनी में काम करता, तो वह वफादार और भरोसेमन्द समझा जाता था। अब वह 'डल' बोरिंग या बुद्धू समझा जाता है।'[4]

भट्ट 'एम.आई.डेयरीज' में सी.ई.ओ. के पद पर नौकरी करता है। कम्पनी को अपनी बौद्धिक क्षमता से ऊँचाइयों तक पहुँचता है। परन्तु इसका लाभ कम्पनी के डायरेक्टर उठाते हैं वे अपने व्यक्तिगत खर्चो पर अंधाधुंध व्यय करते हैं जिसका परिणाम कम्पनी को घाटा। भट्ट का दिमाग ठनक गया। प्रोम्योरिंग, परेचेजिंग, प्रॉडक्शन, मार्केटिंग में कहीं कोई चूक नहीं थी। प्रॉफिट का तो लम्बा हिसाब बनना चाहिए। उसने बैलेंस शीट मंगवाकर तहकीकात की। खर्चो के हिसाब से डायरेक्टरों की सपरिवार विदेश यात्राओं का बजट ही सबसे भारी खर्च था जिसे कम्पनी के खाते डाल दिया गया था। धीरे–धीरे एम.आर. डेयरीज के दूध की जगह हर नुक्कड़ पर 'अमूल' कम्पनी के पैकेट दिखने और बिकने लगे। कम्पनी ने शेयर बाजार के किसी बड़े खबरिए को पटाकर उससे टी. वी. पर कहलवा दिया था कि एम.आर. डेयरीज के शेयर के दाम दुगुने होने वाले हैं। शेयरों की खरीद बढ़ने से शेयर के दाम बढ़ते ही सुयश के परिवार ने अपने ज्यादातर शेयर बेंचकर कम्पनी में लगाया हुआ अपना पैसा लगभग पूरा उठा लिया। अब कम्पनी में अधिकांश पैसा बैंक का लगा था जो कि भाड़ में जाए या भट्ठी में, किसी का सिरदर्द नहीं था। इस तरह कम्पनी को धोखा देने वाले स्वार्थी तथा चालाक व्यक्तियों की बजह से भट्ट जैसे ईमानदार, कर्मठ तथा प्रतिभावान लोगों का अहित होता है। भट्ट की नौकरी छूट जाती है। आये दिन कॉरपोरेट जगत में हो रहे घोटालों ने सरकारी अर्थतंत्र को भी खोखला कर दिया है। बैंकों की आर्थिक क्षति सरकार की आर्थिक क्षति है। कॉरपोरेट भ्रष्टाचार के विषय में वरिष्ठ पत्रकार अरविन्द मोहन ने लिखा है–''कॉरपोरेट जगत या पूंजीपति वर्ग की तरफ से काम निकलवाने, सौदे करने, बेलगाम मुनाफा कमाने और बाजार में दूसरों को पछाड़ने के लिए उल्टे सीधे तरीके अपनाने का चलन नया नहीं है, बी.एस.एन.एल. एम.टी.एन.एल. की हालत खस्ता है और प्राइवेट फोन ऑपरेटर विदेशों की कम्पनियाँ खरीद रहे हैं और करोड़ों का घोटाला कर रहे हैं।''[5]

कॉरपोरेट लगत में अंग्रेजी का वर्चस्व है। के0 वी0 का मानना है कि दक्षिण भारतीय होते हुए भी अच्छी अंग्रेजी बोलने के कारण ही वह साठ साल के होने के बावजूद अच्छे पद पर है। भारतीय अंग्रेजी बोलने में इतने माहिर हैं कि वे अमेरिकन–ब्रिटिश हर किस्म की अंग्रेजी बोल लेते हैं। के0 वी0 का मानना है कि गुरूचरण दुनिया की एक बड़ी मल्टीनेशनल कम्पनी में ऊपर से नम्बर तीन की पोजीशन में जिस आसानी से टिका हुआ है, वह किसी ऐरे–गेरे के बूते की बात नहीं है। क्योंकि ''के0 वी0 को इस बात में रत्ती भर भी शक नहीं है कि गोरा चिट्टा रंग, सुन्दर नाक–नक्शा, घने बाल, गठा हुआ शरीर और दोश रहित अंग्रेजी बोल पाना–इनमें से एक गुण भी कम मात्रा में होता, तो गुरूचरण का बावन तिरपन की उम्र में कॉरपोरेट कम्युनिकेशन के प्रेसिंडेंट के मुकाम पर पहुँचना कम से कम हिन्दुस्तान में तो असम्भव था। वह कम्पनी को सुदर्शन चेहरा है जिसका दुनिया के सामने अपनी इमेज बनाने के लिए कम्पनी इस्तेमाल करती है।''[6]

के0 वी0 ऐसा मानता है कि गुरचरण मल्टीनेशनल कम्पनी में काम करने के लिए सही आदमी है जहॉ हर काम का ढर्रा तय होता है। जो अपने से सीनियर को 'सर–सर' कहे तथा उसकी हर बात का समर्थन करते हुए 'आप ठीक कहते हैं' कहे। कॉरपोरेट दुनिया में व्यक्ति के निजी मामलो को जानना या सुनना सभ्य नहीं माना जाता है, के0 वी0 गुरूचरण के अनेक स्त्रियों से अन्तर्सम्बंध के बारे में जानना चाहता है, परन्तु गुरूचरण के निजी जीवन में झॉकना उस पर बात करना उसे असभ्य सिद्ध न कर दे। इसलिए वह चुप ही रहा है।

मार्केटिंग के क्षेत्र में समझने–समझाने का काम ही अब सारी दुनिया में सबसे बड़ा काम है। क्योंकि – 'दुनिया को समझाने का तरीका जिसके पास है, समझो कि दुनिया की चाभी उसी के पास है।'[7] के0 वी0 का मानना है कि कम्प्यूटर की 'वरचुअल रियेलिटी' ही जिन्दगी की सच्चाई है। ''किसे फुरसत है कि आदमियों को रखने के लिए

कोई शहर–शहर भटके कभी बम्बई दौड़े, तो कभी बंगलौर जाए। फील्ड सेल्स ऑफिसर की नौकरी के लिए एक दर्जन आदमियों का इंटरव्यू करना है। कम्प्यूटर पर वीडियो कान्फ्रेस से सबको देखे, सवाल जवाब करो, रखना है तो वहीं 'कन्फर्म' करो। नहीं तो मामला चलता करो।''[8] कम्पनी का मालिक चोरड़िया की ये बाते समझ में तो नहीं आती परन्तु के0 वी0 की समझाने की शैली उसे निरूत्तर कर देती है। बढ़ते बाजारवाद ने रिश्तो के बीच प्रेम के स्थायित्व को भी लगभग समाप्त कर दिया है। के0 वी0 को महसूस होता है कि 'जिन्दगी भर के लिए आपको एवं फैमिली डॉक्टर, एक वकील और एक नाई हुआ करता था ?वे दिन गए जब आपको पक्का पता रहता था कि आपका बीस साल पुराना रसोइया कल सुबह भी आपके नाश्ते के लिए इडली बना रहा होगा। ''अब तो रोज नया चेहरा दिखता है– घर हो या दफ्तर।''[9] वैश्वीकरण एवं उदारीकरण ने भारत की काया ही बदल दी है ऐसा मानना है के0 वी0 का। 2007 के साल की शुरूआत को ही ब्लूमबर्ग की रपट थी कि देश में औद्योगिक उत्पादन आशा से भी कहीं ज्यादा हुआ है। बैंको ने ब्याज पर धन देने का नया रिकार्ड बनाया है और तनख्वाहो के बढ़ने से देश में खरीददार बहुत बढ़ गये हैं। इंडिया के लोग दुनिया भर की फैक्टरियॉ खरीदते घूम रहे हैं। टाटा ने इंग्लैंड मे स्टील फैक्टरी खरीद ली और बिड़ला ने अमेरिका में अल्मूनियम की। के0 वी0 का मानना है कि दखिण भारत ने ही वैश्वीकरण की अलख जगायी। सात भाषाएँ जानने वाले प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव ने ही 1991 में देश को नया रास्ता दिया। आज बंग्लौर और हैदराबाद 'ब्रांड इंडिया' बन गए हैं। सी0 वी0 रमन, रामनुजम, राधाकृष्णन, कलाम सभी तो साउथ इंडियन थे। के0 वी0 को चिन्ता है कि गुड़गॉव में हॉंडा गाड़ी की फैक्टरी में जो हुआ वह कॉरपोरेट इंडिया के लिए उपयुक्त नहीं। क्योंकि 'अगर मजदूर यूनियनबाजी करेंगे, तो विदेशी पूंजी आने से रही। भाग जायेंगी सारी कम्पनियॉ इंडिया से।'[10]

दक्षिण भारत में मल्टीनेशनल कम्पनियॉ लाइन लगाकर खड़ी हैं, चाहे गाड़ियों की बी.एम.डब्लू. फोर्ड या हुन्डाई कम्पनियॉ हो या इलेक्ट्रानिंक की नोकिया, मोटरोला, सैमसंग। खरीददारों के पास में जैसा पैसा अब साउथ इंडिया में है, उसकी नॉर्थ वाले कल्पना भी नहीं कर सकते। इसका कारण है उत्तर भारत में साम्प्रदायिक झगड़े एवं राजनीति एवं गुटबाजी।

घर बैठे सामान खरीदने का चलन इंडियन स्काई शॉप ने किया। भारतीय मानसिकता में जहॉ लोगों को आलू भी खरीदना हो, तो हर आलू को घुमा–फिराकर देखकर खरीदते हैं, ऐसे लोग खाली टी.वी. पर भरोसा कर सामान आर्डर करेंगे, इसमें सबको शक था। आखिर मार्केट के खेल के नियम बदलना हर किसी के वश की बात नहीं है। लेकिन मार्केटिंग क्षेत्र के के0 वी0 जैसे अनुभवी तथा घाघ व्यक्ति इसको सच करके दिखा देते हैं। रंगनाथन जैसे सिद्धांतवादी व्यक्ति पीछे रह जाते हैं। अलका सरावगी का मानना है कि कॉरपोरेट जगत और विज्ञापन परस्पर एक दूसरे के पूरक हैं। भट्ट ने अपने आइडियाज से विज्ञापन एजेंसी को इतना ऊँचा उठा दिया कि वह कम्पनी 'मिरैकल एडवरटाइजिंग कम्पनी' के नाम से मशहूर हुई। भट्ट द्वारा बनाया विज्ञापन 'ओनली टीयर्स फ्रॉम एल्सवेयर' ने शहर के दो सबसे बड़े डिपार्टमेंटल स्टोर्स में से एक की बिक्री ने आज तक के सारे रिकार्ड तोड़ दिये थे। विज्ञापन में सजीला लोकप्रिय फिल्मी हीरो रविकान्त शानदार सूट पहने हुआ था और एक पीली साड़ी वाली सुन्दरी के ऑसूओं को, जो मोती में बदल रहे थे, एक पीले छींट के टिशू पेपर में इकट्ठे कर अपने सूट की जेब में डाल रहा था और उसी जेब से एक शानदार मोतियों की माला निकालकर सुन्दरी को पहना रहा था। विज्ञापन के अनुसार सभी चीजे मोतियों की माला, सूट, जूते–चप्पल, साड़ी और टिशू पेपर एक छत के नीचे 'एम्बर डिपार्टमेंटल स्टेर' में उपलब्ध थे, सिर्फ ऑसू कही और जाने पर ही आ सकते थे, 'ओनली टीयर्स फ्रॉम एल्सवेयर'। भट्ट सोच रहा था इसका सारा क्रेडिट उसे दिया जाऐगा। रपट में उसकी प्रशंसा होगी। उसका यह भ्रम टूट गया। कम्पनी के मालिक ने इस विज्ञापन को अपने दिमाग की उपज बताया। उसने सोचा शायद बॉस उससे अकेले में कहेगा कि तुम्हारे एक आइडिया ने कम्पनी को कहॉ से कहॉ पहुँचा दिया, पर ऐसा नहीं हुआ। कॉरपोरेट जगत में तो दूसरे

के टेलेन्ट की सीढ़ियों पर चढ़कर लोग आगे बढ़ जाते हैं। भट्ट जैसे लोग आहत होकर नौकरी छोड़ देते हैं। के0 वी0 का मानना है भट्ट को गलतफहमी हुई है कि उसके एक आइडिया से कम्पनी को इतना लाभ हुआ। के0 वी0 का मानना है– ''वह दक्षिण के लोगों को नहीं जानता। दक्षिण भारतीय के लिए उसका हीरो कोई इष्ट देवता से कम नहीं है। वोट उसी को देते आए हैं। बड़ी–बड़ी मालाएँ बनाकर उनके दस फुट ऊँचे कट आऊट को पहनाते आए हैं। रविकान्त यदि उस योजना में नहीं होता, तो क्या पॉच करोड़ का सेल हो सकता था ? इस विज्ञापन के पीछे लोगों के लालच, डर और ईर्श्या को भुनाने और साथ ही फिल्मस्टारों के प्रति उनके खिंचाव का फायदा उठाने की होशियारी जरूर है। क्षेत्र के आधार पर लोगों की मनोवृत्ति को समझकर लाभ उठाने की भावना से विज्ञापन तैयार किये जाते हैं। प्रसिद्ध आलोचक डॉ0 जगदीश्वर चतुर्वेदी का कथन है– ''बहुराष्ट्रीय माध्यम कम्पनियों की आय का प्रमुख स्रोत विज्ञापन है। विज्ञापन का पूंजीवाद बाजार के विकास से अविभाज्य सम्बन्ध है। विज्ञापन को पूंजीवाद की संजीवनी भी कह सकते हैं। विश्व की एक प्रमुख विज्ञापन कम्पनी ने 1995 में विश्वव्यापी विज्ञापन खर्च का अनुमान 261 विलियन डॉलर लगाया विश्व में सबसे ज्यादा विज्ञापनों पर खर्चा प्रोक्टर एण्ड गैम्बल एवं यूनी लीवर नामक कम्पनी करती है।''[11]

माँ यशोदा डेयरीज का सी.ई.ओ. भी भट्ट जब विज्ञापन का बजट दुगुना करता है तो दूर–दराज के गॉव–गॉव में हर परचून की दुकान पर भी माँ यशोदा डेयरीज के नीले पैकेट दिखाई पड़ने लगे। विज्ञापन के द्वारा ही उसने अपनी आर्ट गैलरी को एक बड़े व्यवसाय के रूप में परिवर्तित कर दिया। जैसा कि ''उसने अपनी आर्ट गैलरी के लिए एक विज्ञापन बनाया था–पैंतीस वर्ष का 'राहुल', इनफॉरमेशन टेक्नोलॉजी में लगातार ऊपर उठता हुआ, एक बड़ी कम्पनी का मुलाजिम, बिलकुल नए ढर्रे का एक फ्लैट खरीदता है। फ्लैट में सब कुछ सही है–मॉर्डन आरामदेह फर्नीचर, कुछ इधर–उधर लगाए हुए 'एथनिक' पैटर्न के कुशन, स्टडी एरिया, तरह–तरह की मशीनों से लैसे चकाचक रसोई। बस दीवालें सूनी हैं। राहुल रोज दफ्तर से लौटकर सूनी दीवारें देखता है और बुझ जाता है। फिर उसकी मित्र मंडली 'हाऊसवार्मिंग' पार्टी में आती है और उसके नए घर के लिए उपहार में तीन पेंटिंग ले आती है। अब जाकर राहुल का घर पूर्ण होता है। उसकी गर्लफ्रेंड बहुत आनाकानी करके पहली बार घर आती है, तो राहुल को शादी के लिए हाँ कर देती है। उस समय उसकी आँखे दीवार पर लगी पेंटिंग पर होती है।''[12]

कॉरपोरेट जगत का एक बहुत बड़ा सच है कि कब बॉस प्रसन्न हो जाए कब नाराज हो जाए। भट्ट जोकि जिप बनाने वाली कम्पनी में मेहनत और लगन से काम कर रहा था। विवेक देवराय जो उसे बहुत सम्मान देते थे। वे भी बोर्ड मीटिंग के बीच अचानक एक दिन भट्ट से कहते हैं ''आप दाहिने हाथ की कलाई में घड़ी बांधकर क्या अपने को औरो से अलग बताना चाहते हैं।''[13]

इस कथन का भाव भट्ट समझ गया और उसने घर आकर पत्नी से कहा सामान बांधो वापस कलकत्ता जाना है। इस तरह विवेक देवराय के परिवार से भट्ट के परिवार की निकटता मात्र व्यवसाय से जुड़ी निकटता थी। वह कड़ी टूटी तो प्रेम के रिश्ते भी क्षण भर में टूटकर बिखर गये। भट्ट सही कहता है –

'बॉस आखिर बॉस होता है जैसे कि सॉप पालतू हो या जंगल में, हमेशा सॉप ही होता है।'[14]

कम्पनियों में काम करने वाले लोग अत्यधिक तनाव में रहते हैं– ''लोग कहते हैं कि बड़ी कम्पनियों में काम करने वाले इतने तनाव में रहते हैं जैसे कि प्रेशर कुकर में बन्द हों। आफिस की पॉलिटिक्स, तो कभी, आफिस में बॉस से खटपट, कभी प्रोमोशन की चिन्ता हर आदमी जैसे फटने की कगार पर रहता है। बहुत सी कम्पनियों ने अपने दफ्तर में 'काउंसलिंग' करने को मनो चिकित्सक बिठा लिए हैं। कई कम्पनियॉ सुबह आधे घण्टे तक 'योगा' या कुछ और व्यायाम कराती हैं।''[15]

एक सर्वेक्षण से यह ज्ञात हुआ है कि काम के घण्टे अधिक होने के कारण कम्पनियों के कर्मियों को शारीरिंक एवं मानसिक रोग हो रहे हैं। स्पांडलाइसिस, पीठ का दर्द, मोटापा, मधुमेह तथा हृदय रोग तेजी से बढ़ रहे हैं।

प्रख्यात आलोचक नामवर सिंह का विचार है कि 'सच्चाई यह है कि इस बीच इस दौर में केवल मात्रा सूचक परिवर्तन नहीं हुआ है। नई उदारीकरण की नीति के कारण बाजार किस हद तक असरदार हुआ है– यह विचारणीय है। पहले तो उसका दायरा सीमित था अब आपके घर के अन्दर घुसकर ड्राइंगरूम, बेडरूम तक उस बाजार का प्रवेश होता हुआ दिखाई पड़ रहा है। वह सम्पूर्ण जीवन पद्धति को प्रभावित कर रहा है।'[16]

भारत में श्रम सस्ता है इसका लाभ पश्चिमी देश भरपूर उठा रहे हैं। के0 वी0 का मानना है कि ''विदेशी लोग बड़े जालिम हैं। ..... एक तरफ पश्चिम के बड़े–बड़े ब्रांड गैप, पोलो, टॉमीहिलफिगर, मार्क्स एण्ड स्पेंसर अपना सारा माल इंडिया की फैक्टरियों में सस्ते में बनवा रहे हैं तो दूसरी तरफ लेवी, सोनी, बासकिन, राबिंस जैसे ब्रांड जीन्स और टी.वी. से लेकर आइसक्रीम तक महानगरों के बड़े–बड़े शॉपिंग मालो से बेंच रहे हैं। पर बात जब करेंगे तो गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले लोगों की या फिर 'चाइल्ड लेवर' की।''[17] इस तरह बड़ी विदेशी कम्पनियॉ भारत की फैक्टरियों में सस्ते में बनवाकर महंगे दाम में भारतीय उपभोक्ता को बेंच रही हैं। कॉरपोरेट जगत का यह सच कितना भयावह है ? जिसमें कथनी और करनी में अंतर भी है। जो बाल श्रम का विरोध करता है लेकिन उनका उपयोग भी करता है।

कम्पनियों का कब्जा पहले थोक बाजार पर था परन्तु समय की मांग के कारण उन्होंने खुदरा बाजार पर भी कब्जा कर लिया है। पुश्तैनी व्यापार कर रहे दुकानदारों को बढ़ती मॉल संस्कृति से करारा झटका लग रहा है। 'दुनिया के सबसे बड़े रिटेल या खुदरा मार्केट को संगठित कर उसका रस खींचने के लिए टाटा, आई.टी.सी. और रिलायंस ही नहीं अमेरिका की बाल–मार्ट जैसे कम्पनियॉ तक कूद पड़ी हैं। कहते हैं कि दस साल के अन्दर–अन्दर भारत का यह रिटेल सेक्टर 650 करोड़ रूपये का हो जाएगा। खुद के0 वी0 की पत्नी अब आलू गोभी तक एयरकंडीशंड सुपर मार्केट से फोन पर मंगवा रही है और वह भी मोहल्ले के सब्जी वाले से सस्ती और ताजा। अभी यदि कोई इंडस्ट्री में उफान है तो वह रिटेल इंडस्ट्री है।'[18] इन कम्पनियों ने पहले तो छोटे–छोटे कुटीर उद्योग ध ांधों को निगलने की कोशिश की और अब बड़े एवं छोटे दुकानदारों को भी निगलने की फिराक में है। जब घर बैठे अच्छी सब्जी मिलेगी तो ठेले पर सब्जी बेंचने वालो का क्या होगा ?

कॉरपोरेट जगत में सामाजिक दायित्व पर बल दिया जा रहा है। प्रश्न उठता है कि कॉरपोरेट सोशल रिस पासिबिलिटी यानी कम्पनी का सामाजिक दायित्व क्या है ? गुरूचरण को कम्पनी के सामाजिक दायित्व पर रिपोर्ट तैयार करनी है तो यह केवल कागजी खाना पूरी है। वास्तविकता इससे काफी दूर है। इस पर व्यंग करते हुए के0 वी0 कहता है– 'अरे मेरे भाई मनमोहन सिंह ने बस कह दिया कि मैं कॉरपोरेट इंडिया को बुला रहा हूँ कि वह इस देश में मानवीय और न्याय पूर्ण समाज बनाने में हमारी पार्टनर हो। तो तुम चले सी.एस.आर. पर रिपोर्ट बनाने। अरे यार तुम्हारी मल्टीनेशनल कम्पनी इंडिया में क्या बेंचती है ? अरे क्या नाम है, भूल गया मैं–क्या नाम है तुम्हारे प्रोडक्ट का ? गुरूचरण ने धीरे से कहा – 'पावरिक्स' कितना बेंचते हो एक साल में ? दो सौ करोड़ का ? चार सौ करोड़ का ? और उसमें क्या है ? थोड़ी सी चीनी, थोड़ा सा आटा, थोड़ा सा दूध, थोड़ा फ्लेवर – यही तो ? उसे पिला–पिलाकर तुम इस देश का क्या भला कर लोगे ? बेचारा गरीब मर–मर कर खरीदेगा कि 'पावरिक्स' उसे पावरफुल बना देगा। वह सोचता रहता है कि सारे अमीर यही पी–पीकर ऐसे ताकतवर बने होंगे। अरे बेटा, दाल–भात, रवा, प्रभु के गुण गाा। ये पावरिक्स किसी को ताकत न देगा, न गरीब को, न अमीर को। यह तो खाली गुरूचरण की मल्टीनेशनल कम्पनी को ताकत देगा।'[19] सामाजिक दायित्व के पीछे भी पैसे अधिक कमाने की लालसा एवं गरीब जनता को मात्र झूठी दिलासा एवं छलावा ही निहित है। 18 अप्रैल 2000 के दैनिक जागरण में छपे लेख भूमंडलीकरण का मायाजाल में यह स्पश्ट कहा गया है– अमेरिकी पसंद दुनिया की पसंद, चालढाल, लेखन उच्चारण 'मानक' बनकर उभर रहे हैं, परन्तु भूमंडलीकरण के इस दौर में जो सबसे महत्वपूर्ण चीज पीछे छूट रही है वे हैं – संवेदनशीलता, मनुष्यता, नैतिकता तथा सामाजिकता।' कॉरपोरेट तंत्र एवं जनतंत्र के बीच का

रिश्ता मात्र धन है। मल्टीनेशनल कम्पनी धन कमाने के लिए किसी भी तरह के हथकंडे अपना सकती है। के0 वी0 जिस कॉरपोरेट कम्पनी की वार्षिक रपट तैयार कर रहे थे, उसके बोर्ड आफ डायरेक्टर्स को उन्होंने यही बात समझाने की कोशिश की थी। बजाए इसके कि हम दुनिया को समझाएँ की कोई कम्पनी सामाजिक दायित्व इसलिए उठा रही है क्योंकि उसका दिल अचानक अपनी बैलेंस शीट बढ़ाने की जगह देश में गरीबी, गैर बराबरी और प्रदूशण मिटाने पर आ गया है, बुद्धिमानी की बात यह है कि दुनिया को असलियत बताई जाए। पूरी नहीं, तो कम से कम इतनी असलियत कि वह बाकी के झूठ पर भी यकीन कर ले। वास्तव में हर कम्पनी हर आदमी के जेब तक पहुँचना चाहती है, बशर्ते कि उसमें कुछ पैसा हो और वह कम्पनी का सामान खरीद सके।

सूचना तकनीकी के क्षेत्र में भारत ने आशातीत सफलता प्राप्त की है। उसकी सस्ती सूचना तकनीक का प्रयोग दूसरे देश भी कर रहे हैं। जैसा कि गुरूचरण कहता है 'मैंने पढ़ा कि अमेरिका और कनाडा से कैथोलिक पादरी अपने चर्च में आई प्रार्थना की दरख्वास्तों को ऑन लाइन केरल के चर्च में भेज देते हैं। अमेरिका में एक 'थैंन्स गिविंग की प्रार्थना में पॉच डॉलर लगत हैं जबकि केरल के चर्च में एक डॉलर के खर्च में काम पट जाता है।'[20]

भारत की सूचना टेक्नीक का इस्तेमाल अमेरिका के लोगों के लिए बच्चों का सस्ता होमवर्क, सस्ती मजदूरी और अब सस्ती प्रार्थना के लिए भी किया जा रहा है। इस उपन्यास का प्रमुख पात्र के0 वी0 अय्यर का मानना है कि ''आज दुनिया चल रही है सूचना तकनीक से यानी इनफारमेशन टेक्नॉलाजी से। बस यही इंडिया के उठने का राज है। आखिर हमी लोगों ने कभी 'शून्य' या जीरो खोजा था। तीन हजार सालों से हम आध्यात्मिक आकाश की अमूर्त धारणाओं में उड़ते रहे हें। यह 'साइवर स्पेंस' भी वैसा ही तो आकाश है। इसमें हमें कौन टक्कर दे सकता है।''[21] अलका सरावगी इस उपन्यास के माध्यम से कॉरपोरेट जगत की खूबियों एवं खामियॉ दोनों ही उजागर करती है। इसमें कोई संदेह नहीं कि हमने सूचना तकनीक के क्षेत्र में आशातीत सफलता प्राप्त की है। कॉरपोरेट जगत पर पर्यावरण संरक्षण की जिम्मेदारी है, परन्तु वे इसका पालन नहीं करते। यूरोप–अमेरिका की फैक्टरियाँ कार्बनडाई ऑक्साइड या ग्रीन हाउस गैसे छोड़ रही हैं, जिससे ओजोन परत में छेद हो गये हैं। ग्लोबल वार्मिंग बढ़ गयी है, इसके लिए ये देश विश्व पर्यावरण संरक्षण सम्मेलन आयोजित करते हैं। पर्यावरण प्रदूशण को रोकने के लिए कानून बनाते हैं। कानूनों का पालन किस रूप में किया जाता है। इसका उल्लेख अलका सरावगी ने के0 वी0 शंकर अय्यर द्वारा कुछ इस तरह किया है–'यूरोप–अमेरिका में फैक्टरियों पर हवा में एक सीमा से ज्यादा कार्बनडाई–ऑक्साइड या ग्रीन हाऊस गैसे छोड़ने पर भारी सरकारी पेनल्टी थी। इस दण्ड से बचने के लिए उन कम्पनियों के लिए एक आसान रास्ता यह खोजा गया था कि वे भारत जेसे विकासशील देशों से 'कार्बन–क्रेडिट' खरीद लें। यह 'कार्बन क्रेडिट' किसी भी कम्पनी को या तो अपनी मशीनों में विकसित टेक्नोलोजी से कार्बन प्रदूषण कम करने पर मिल सकती थी या फिर पेड़ लगाकर कार्बन कम करने पर।'[22]

यह 'कार्बन क्रेडिट' का इंडिया से खरीदना और पर्यावरण संरक्षण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का बखान करना मात्र छलावा हैं के0 वी0 का व्यंगपूर्ण कथन दृष्टव्य है– ''देखो, मान लो कि तुमने यूरोप में एक पाप किया और इंडिया में आकर उसका प्रायश्चित कर डाला। नहीं समझी ? अरे बाबा, समझो कि तुमने यूरोप में जितनी जहरीली हवा छोड़ी, उतनी शुद्ध की हुई हवा तुमने इंडिया में खरीद ली।''[23]

'ग्लोबल वार्मिंग' से बचा जा सकता है इसके लिए हमें डेढ़ सौ साल पुराने 'लाइफ स्टाइल8 को लाना होगा, पर लाइफ स्टाइल नहीं हो तो लाइफ का मतलब भी क्या है ? के0 वी0 पत्नी से कहते हैं– 'अब तुम्हें कहा जाए कि हवाई जहाज में मत बैठो, गाड़ी बेंच दो क्योंकि इससे धरती का ताप बढ़ रहा है तो तुम क्या मान लोगी ? तुम्हें कोई कहे कि लिफ्ट में मत चलो, एयर कंडीशन, फ्रिज, वाटर हीटर, मिक्सर, माइक्रोटोव सब हटा दो, तो तुम धरती को बचाने के लिए यह त्याग करने को तैयार हो ? नहीं ना ? बस समझो कि मामला यही है। जैसे तुम यह सब करने को तैयार नहीं हो, यूरोप–अमेरिका के लोग भी यह करने को तैयार नहीं हैं।'[24] दुनिया के डेढ़ सौ से

ज्यादा देशों ने मिलकर 'क्योटो प्रोटोकॉल' बनाया है। आप फैक्टरियॉ बन्द मत कीजिए, बेशक हवा में कार्बन छोड़ते रहिए। बस जैसे आप स्टील फैक्ट्री के लिए लोहा खरीदते हैं वैसे ही कार्बन क्रेडिट खरीद लीजिए। पूरी धरती का आसमान तो एक ही है, आप कही हवा–पानी बिगाड़िए, पर कहीं और की हवा पानी सुधार दीजिए ?

कॉरपोरेट जगत पर्यावरण संरक्षण की दिशा में किये जा रहे कार्यो में भी अपना आर्थिक लाभ ढूँढ़ लेता है। के0 वी0 शंकर अय्यर जिस कॉरपोरेट फर्म के मार्केटिंग सलाहकार का काम कर रहे हैं, उसको उन्होंने हजार हेक्टेयर जमीन पर पेड़ लगाने की सलाह दी है। इससे जो पैसा आएगा, वह सिर्फ 'कार्बन क्रेडिट' के जरिए ही नहीं आएगा। उससे फर्म की पेपर मिल को लकड़ी की लुगदी मिलती रहेगी जिसे वह फिलहाल इंडेनेशिया से इम्पोर्ट कर रही है।[25]

के0 वी0 जिन–जिन फर्मो में सलाहकार बनेंगे। सबको भारत की बंजर भूमि को हरा बनाने के लिए प्रेरित करेंगे। उन्हें समझायेंगे कि पेड़ लगाकर आप किस तरह करोड़ो रूपये कमा सकते हैं। एक टन कार्बनडाई ऑक्साइड हवा में कम करने से एक 'कार्बन क्रेडिट' मिलता है, जिसे विदेशों में दस यूरो से तीस यूरो के दाम पर यानी साढ़े पॉच सौ से पन्द्रह सौ रूपये तक बेंचा जा सकता है। फिलहाल भारत के हाथ में दुनिया के कार्बन व्यापार का इक्तीस प्रतिशत बाजार है। इंडिया 'इको–फ्रैंडली' भी कहलाएगा क्योंकि वह हवा की पवित्रता का भारत संभालेगा और साथ ही उसे इसकी कीमत भी मिलेगी। भारत की सत्तर करोड़ जनता जो खेती–बारी करती है अब 'कार्बन क्रेडिट' के जरिए नया सपना देख सकती है। के0 वी0 शंकर अय्यर ने इंग्लैंड की 'क्लाइमेट कंसर्न नाम की एजेंसी के साथ एक एन.जी.ओ. संस्था 'ग्राम बंधु' का गठजोड़ करवा दिया था ताकि किसानों को ट्रेडल पंप चलाने के लिए प्रेरित किया जा सके। ये दोनों संस्थाएँ मिलकर इन पम्पों के व्यवहार से डीजल से निकलने वाली गैस में कटौती को मापती हैं और उस आधार पर 'कार्बन सर्टिफिकेट' निकालकर इंग्लैंड की कम्पनियों को बेंचती हैं 'ग्राम बन्धु अपनी कमाई का हिस्सा ट्रैडल पम्प को सस्ते में मुहैया कराने में लगाती हैं। इस तरह वायु एवं ध्वनि प्रदूशण से बचा जा सकता है। डीजल को भी बचाया जा सकता है।

दुनिया में सबसे ज्यादा कार्बन छोड़ने वाली फैक्टरियॉ सीमेंट, स्टील, कपड़े और खाद की हैं। हवा का ढाई प्रतिशत कार्बन तो हवाई जहाजों से है। विकास के नाम पर इंडिया में ही छोटे–छोटे शहरों में एयरपोर्ट बन रहे हैं और रोज नई एयर लाइनें खुल रही हैं। परन्तु यह कैसी बिडम्बना है कि भारत के बेचारे गरीब किसान कुए से पानी भी पम्प से न निकालकर शरीर के जोर से निकालें। इससे पर्यावरण प्रदूषण नियंत्रण से सम्बन्धी बनाये गये क्योटो प्रोटोकाल की पोल खुलती हैं।

कॉरपोरेट जगत का एक सच यह भी है कि नई कम्पनियॉ किसानों की जमीनें खरीद रही हैं 'स्पेशल इकोनॉमिक जोन' यानी कि 'सेज' बनाने के लिए दो–चार सौ किसानों को उजाड़ रही हैं। किसान उजड़ जाएंगे तो उस भारत देश का क्या होगा ? जिसका 70 प्रतिशत जनता खेती करती है, जिसका भारत की अर्थव्यवस्था का मजबूत बनाने में महत्वपूर्ण योगदान है जबकि के0 वी0 शंकर अय्यर का मानना है – 'अपनी दो कौड़ी की जमीन से चिपके रहेंगे। दो कौड़ी की फसल उगाएँगे। कर्ज हो जाएगा तो आत्महत्या कर लेंगे। पर देश का विकास नहीं होने देंगे। सुप्रीम कोर्ट ने फैसला दिया है कि सरकार कही पर भी देश के हित के लिए जमीन ले सकती है। इस तरह की जमीन सरकार की संपत्ति हो सकती है। उसका वह चाहे जैसे इस्तेमाल करें।[26]

कम्पनी और सरकार की आपसी सॉठ–गॉठ से आदिवासियों की जमीनों पर कब्जा कर उन्हें बेघर और भिखारी बनाया जा रहा हैं गुरूचरण की डायरी में लिखा यह निम्न अंश यह सच्चाई बया करता है– ''जहॉ वह रह रहा था, किसी बड़ी कम्पनी ने कुछ दूर के एक गॉव में पुलिस की मदद से रातोरात सोते हुए गॉव वालों को स्त्री पुरुष, बूढ़े बच्चे सबको भेड़ बकरियों की तरह उठाकर जेल भेज दिया था। उनके चूल्हे–चक्की, खेत–बाग, पशु–प्राणी सबको रौंदकर मिट्टी में मिला दिया। छह सौ से ज्यादा घर उजाड़ दिये और उनमें से सौ एक को

जमीन पैसा देकर छुट्टी पा ली। बाकी सब दिहाड़ी मजदूर बनकर या भिखारी बनकर हमारे शहरों की क्रासिंग पर भीख मांगते रहे या मर–खप गये।''[27]

मल्टीनेशनल कम्पनी खदानों पर कब्जा करके आदिवासियों को शोषण कर रही हैं। ये कम्पनियॉ अपने लाभ के लिए किसानों एवं आदिवासियों को अपने ही देश में बेघर बना रही हैं। यह देश का विकास न करके हमारी खनिज सम्पदा को कौड़ियों के मोल खरीद रही है। गुरूचरण जैसे संवदेनशील लोग आदिवासियों की अपनी जमीन बचाने की लड़ाई में कूद पड़ते हैं और वे सफल भी होते हैं। गुरूचरण की डायरी में लिखी निम्न पंक्तियॉ उसकी जीत को दर्शाती हैं –

लो सोन चिड़ी,
वायदा हुआ पूरा,
रहेगी जमीन,
रहेगा पानी,
आसमान आंगन।[28]

अलका सरावगी ने पर्यावरण संकट को किसानों एवं आदिवासियों की रोजी रोटी के साथ जोड़कर बिगड़ते आर्थिक समीकरण को भी उद्घाटित किया है।

'कृषि संकट और उपभोक्तावाद' नामक लेख में लेखक गुरूदयाल सिंह ने सत्य ही कहा है – 'सरकार तथा उद्योगपति यदि 10–15 प्रतिशत 'पैरासाइटस' (मध्य वर्ग) के लिए आधुनिक (अंतर्राष्ट्रीय मयार) कॉलोनियॉ आधुनिक अस्पताल, पब्लिक स्कूल, पार्क, बिजली, पेयजल पर देश का आधे से अधिक पैसा खर्च करती है तो ऐसी सुविधाओं के लिए लाखों एकड़ कृषि योग्य भूमि भी किसानों से छीन लेती है। यह भी कृषि संकट के बढ़ने का एक कारण है।'[29]

अलका सरावगी ने इस उपन्यास में कॉरपोरेट जगत की चकाचौंध कर देने वाली विकास की बाहरी तस्वीर को दिखाकर उसके अन्दर के घिनौने सच को भी उजागर किया है। आयातित पाश्चात्य संस्कृति ने हमारी सांस्कृतिक पहचान को विलुप्त करने के साथ ऐसे दोराहे पर खड़ा कर दिया है जहॉ हम अपनी भारतीयता को मात्र दिखावे के रूप में प्रदर्शित करते हैं, अन्दर से बाजारवाद एवं उपभोक्तावाद के शिकंजे में फॅसकर सामाजिक दायित्व निर्वहन का मात्र ढोंग करने लगे हैं। विज्ञापन की चकाचौंध ने पारिवारिक एवं सामाजिक रिश्तों को भौतिकता के दायरे में समेट लिया है। कम्पनियॉ संवदेनाओं को भुनाकर अधिक से अधिक पैसा उपभोक्ता की जेब से निकलवाना चाहती है। अभी तक बड़े नगर ही इसकी गिरफ्त में थे, अब शहर तथा कस्बे भी इसकी चपेट में आ चुके हैं। गलाकाट प्रतिस्पर्धा ने धनपतियों को भिखारी तो भिखारी को धनपति बना दिया है। धन कमाने की अति लालसा आज कि युवा वर्ग को कम्पनियों की ओर खींच रही है। वे कम्पनी में यंत्रवत काम कर अपनी जड़ो से पृथक होते हुए मानसिक रोगी हो रहे हैं। पर्यावरण चेतना के नाम पर सरकार और कम्पनियॉ काम कम दिखावा अधिक कर रही हैं। किसानों की समस्याओं को समझते हुए हम किस तरह भारत को खाद्यान्न सम्पन्न एवं विकसित राश्ट्र बना सकते हैं इसकी परिकल्पना अलका सरावगी ने की है।

डॉ0 रमेश कुतल मेघ ने लिखा है– ''यूँ तो फिलहाल 'उपभोक्ता क्रांति, संचार क्रांति, प्रबंधन क्रांति आदि के शेर–ए–कयामत गूंज रहे हैं तथापि दस लाख अशर्फियों वाला यही एक सवाल पुकारते हैं कि क्या इस भॉति आदिम और पिछड़े समाज भी समकाल में ग्लोबल बन सकते हैं ? क्या मार्केटिंग उतार–चढ़ाव वाले ज्वार–भाटो में संस्कृति की अमूल्य मणि चमचमाती संरक्षित रखी जा सकती है ? हम निश्चित उत्तर देने में असमर्थ हैं।''[30]

अलका सरावगी के उपन्यास के सशक्त पात्र के0 वी0 शंकर अय्यर, उपमन्यु भट्ट तथा गुरूचरण राय इन्हीं प्रश्नों के उत्तर खोजते हैं। गुरूचरण की अटूट प्रकृति को खोजने, पाने एवं उसी में मर जाने की अदम्य लालसा

जीवन जीने की जीवंतता एवं निरन्तरता का संदेश देती है। वास्तव में यह उपन्यास आज के युग का ही नहीं, भविष्य की गाथा कहने में समर्थ है। आज पुनः हमें उदारीकरण, भूमंडलीकरण, बाजारीकरण पर पुनः विचार करना ही होगा।

सन्दर्भ संकेत

1. कल के लिए (पत्रिका) मार्च–जून 2007, पृष्ठ–13
2. एक ब्रेक के बाद – अलका सरावगी, पृष्ठ–09
3. वही, पृष्ठ–55
4. वही, पृष्ठ–73
5. शुक्रवार पत्रिका – 02 से 08 सितम्बर, 2011, पृष्ठ–28
6. एक ब्रेक के बाद – अलका सरावगी, पृष्ठ–18
7. वही, पृष्ठ–15
8. वही, पृष्ठ–15
9. वही, पृष्ठ–15
10. वही, पृष्ठ–116
11. कल के लिए – मार्च–जून 2007, पृष्ठ–13
12. वही, पृष्ठ–179
13. वही, पृष्ठ–137
14. वही, पृष्ठ–77
15. वही, पृष्ठ–117
16. जमाने से दो–दो हाथ – नामवर सिंह, पृष्ठ–62
17. वही, पृष्ठ–51–52
18. वही, पृष्ठ–72
19. वही, पृष्ट–91 व 92
20. वही, पृष्ठ–115
21. वही, पृष्ठ–114
22. वही, पृष्ठ–144
23. वही, पृष्ठ–144
24. वही, पृष्ठ–145
25. वही, पृष्ठ–150
26. वही, पृष्ठ–170 व 171
27. वही, पृष्ठ–170
28. वही, पृष्ठ–172
29. कल के लिए – सितम्बर से दिसम्बर, 2009, पृष्ठ–42
30. कल के लिए – सितम्बर से दिसम्बर, 2009, पृष्ठ–64

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

आत्मिक पीड़ा की छटपटाहट व प्रताड़ना की आवाज तापसी

डॉ. हेमा देवरानी
हिन्दी विभाग
बाबू शोभाराम राज. कला महाविद्यालय, अलवर (राजस्थान)

श्रीमती कुसुम अंसल के 'तापसी' उपन्यास का प्रकाशन 9 नवम्बर 2006 ई0 को राजपाल एण्ड सन्स के द्वारा हुआ। यह उपन्यास 215 पृष्ठों में समायोजित है। कुसुम अंसल समकालीन स्थापित कथा लेखिका हैं।

'तापसी' उपन्यास के माध्यम से लेखिका जीवन के उस सत्य को बया करना चाहती हैं जहां पर तीर्थ के नाम पर विधवाओं को ढकेल दिया जाता है। 'समाज के सम्मुख उन विधवाओं को जो विशेष रूप से बंगाल से आई हैं या खदेड़ दी गई हैं, का दर्दीला यथार्थ, उन आश्रमों का कालकोठरी जैसा परिवेश, खरीद–फरोख़्त होते जिस्म, नैतिक–अनैतिक सभी कर्म, चोरी, वेश्यावृत्ति, बेबस हाथ, मंजीरा बजा कर 'हरिधुन' गाते मुखौटों का सच बयान करना चाहती हैं।

'तापसी' एक समाज–शास्त्र है जो हमें तमाम सामाजिक विषमताओं की ओर ले जाता है जिसमें धर्म ने हमें एक द्विविधा भरे चौराहे पर खड़ा कर दिया है। 'तापसी' बंगाल के गाँव की एक अभागिन लड़की है। वेश्यापुत्री होने के कारण माँ द्वारा उसे त्याग दिया जाता है। रिश्ते के एक तथाकथित चाचा उसका पालन करते हैं। उसका काका धन के लालच में उसका विवाह एक ऐसे बूढ़े व्यक्ति से कर देते हैं जिसमें पुंसत्व समाप्त हो चुका है। दो वर्ष के दौरान ही उसके पति की मृत्यु हो जाती है, उसकी धन सम्पदा पर दूर के रिश्तेदार कब्जा कर लेते हैं। विधवा जीवन जीने के लिए मजबूर कर दिया जाता है उसे और वृंदावन लाकर छोड़ दिया जाता है।

जीवन में पहली बार वृन्दावन की यात्रा के दौरान लेखिका ने उन तमाम विधवा स्त्रियों के शोषण को देखा जिन्हें धर्म के नाम पर छलावा करके लाया जाता है। बंगाल से लाकर झोंक दी ऐसी ही एक विधवा स्त्री तापसी की कहानी पर यह उपन्यास आधारित है।

'तापसी' में बृजभूमि में लाई गई विधवाओं का शारीरिक और मानसिक शोषण का भी लेखिका ने कुशलता से चित्रण किया है। इस भूमि में महंत हैं, पंडे–पुजारी हैं। स्थान–स्थान पर ब्रज में रमण करने वाले बांके बिहारी की लीलाओं की चर्चा है। कथाकार ने मंदिरों के बीहड़ में प्रेम, आस्था और धर्म के प्रतीक वृन्दावन को उजड़ते–बिखरते देखा है। ये तीर्थ सहज विश्वास करने वाली समय–समय पर ठगी का शिकार बनी तापसी जैसी अनेक विधवा स्त्रियों की कष्टभूमि बन गये हैं आज के ये तीर्थ। लेखिका ने स्वयं एक स्थल पर कहा भी है, ''पिछले छः वर्षों में मैंने वृन्दावन और गोवर्धन की गलियों, सड़कों, मंदिरों और आश्रमों के गलियारों में पैदल चल–चलकर वहाँ की वास्तविकता को निकट से जाना ही नहीं, अनुभव भी किया।'' लेखिका का मानना है कि आज के वैश्वीकरण के दौर में धर्म भी हमारी व्यवस्था का महत्वपूर्ण हिस्सा बन गया है। हमारे दूरदर्शन के अनेक चैनलों पर धर्म हमारी चेतना को आन्दोलित करने लगा है। लेखिका ने भूमिका के बहाने उपन्यास को परत दर परत खोलकर रख दिया है। कथ्य के प्रति जिज्ञासा स्वयं जाग्रत होती जाती है। ''हमारे यह तीर्थ भारत का कौनसा रूप, कैसा क्लासिक डिज़ाइन गढ़ने में जुटे हैं।'' (पृ. 6–7) यात्रा की यांत्रिकता में चलती मैं जिन पर नर–कंकाल जैसी भिखमंगी विधवाओं के बीच ठहर गई थी, वह माहौल मुझे बेहद परेशान कर रहा था ..... मैं तय नहीं कर

पा रही थी कि क्या करूँ ..... हम आकृतियों की दुनिया में जीने के लिए विवश हैं। हम भूल गए हैं कि कभी कोई वास्तविक आकाश भी था। वास्तविक आहार था। कोई वास्तविक वस्तु थी। कुसुम अंसल ने तीर्थ, धर्म और विध वाओं को 'तापसी' उपन्यास का कथ्य बनाया। वृन्दावन की विधवाओं के यथार्थ जीवन को सामने लाने के लिए यह उपन्यास लिखा गया है। बैकुंठधाम की सी मुक्ति देने वाला यह वृन्दावन इन विधवाओं के लिए कष्टभूमि बन गया है। ''मंदिरों के भीतर भगवान की प्रतिमाओं का सौन्दर्य, पण्डों की सुविधानुसार टुकड़े–टुकड़े विभाजित, सिकुड़ते दृश्यों में बंधा दर्शन, मन में किसी भक्तिभावना को नहीं उकसाता, मुझे लगता है आज के तीर्थ अपना गंतव्य, अपनी भव्यता, कलात्मकता यहाँ तक कि अपनी आत्मा भी खो चुके हैं। हमारे सबसे मूल्यवान शब्द ही नकारात्मक हैं जैसे हमारे तीर्थ।'' (पृ. 8–13) इतनी सशक्त भूमिका से उपन्यास जब हमारी संवेदना को छूता है तो हमें अनुभव होता है जैसे एक विधवा स्त्री तापसी बनकर हमारे समूचे धर्म, तीर्थ का मजाक उड़ा रही है। ''हम तीर्थों पर क्यों जाते हैं? शायद इसलिए कि तीर्थ पृथ्वी पर इमोशंस की डेन्सिटी का स्थल है, तीर्थ की धरती पर पैर रखते ही हमारी चेतना में एक अद्‌भुत–सी ऊर्जा का संचार होता है ..... परन्तु कहाँ है वैसा तीर्थ .....कहाँ? (पृ. 7–8) लेखिका ने माना जहाँ नूरा, मरियम, वृन्दा एवं तापसी जैसी विधवाओं को गलत काम करने के लिए मजबूर किया जाता है, वहीं अंबिका जैसी ऐसी स्त्रियाँ भी हैं जो आश्रम की दान की राशि को बेचकर धन कमाती हैं। स्त्री जीवन की विडम्बना को लेखिका ने रूपायित किया है। एक ओर ऐसे आश्रमों में दूध पीने वाले पण्डे जैसे संचालक हैं और दूसरी ओर दूध न मिलने के कारण मर जाने वाले बच्चे, ये किस धर्म का प्रतिशत है?विधवा वृन्दा की गोद में रखी मृत देह और क्रूर अंबिका की हंसी कितना आतंक रचता है। विधवाओं की समस्या में आज तक निजात नहीं पाया गया है।

लेखिका ने विधवाओं की स्थिति का ऐसा यथार्थ अंकन किया है कि यह हमें पूर्ण रूप से झकझोर देता है। आज जब हम इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर चुके हैं आधुनिकता और सामाजिक सुधार, कानून द्वारा विधवाओं को संरक्षण देने आदि के सभी दावों के बावजूद वृन्दावन में निवास करने वाली अगणित विधवाओं के जीवन में कुछ भी सुधार नहीं हुआ है। इनकी स्थिति और भी बदतर हो चली है। लेखिका ने तापसी के माध्यम से अनेक यक्ष प्रश्न उठाये हैं। धर्म के ठेकेदार, पंडे, पुरोहित, मठाधीशों के जीवन का पर्दाफाश भी किया है। विधवाओं पर अत्याचार भगवा वेशधारी साधु किस सीमा तक करते हैं, कैसे–कैसे कुकर्म यहाँ होते हैं इसका चिट्‌ठा खोलता है 'तापसी' उपन्यास। वृन्दावन में तापसी क्या अनुभव करती है एक स्थान पर अंबिका कहती है 'यहाँ मठों के महंत, साधू, बाबा लोग काइयां हैं। उनके नीचे उनके गुंडे हैं, शिष्यों के नाम पर एक जाल बना हुआ है। ये लोग क्या नहीं करते गांजा–चरस का धंधा, अफीम और हथियार कुछ भी, ये लोग जिसकी चाहें दिनदहाड़े हत्या कर देते हैं। कैसे–कैसे कुकर्म करते हैं, अपने भगवा कपड़ों के नीचे। बलात्कार तो च्यूंटी मसल देने जैसा है उनके लिए।'

'तापसी' का जीवन प्रारम्भ से लेकर अंत तक पीड़ितों से भरा हुआ है। लेखिका ने शांति–निकेतन के विलोम में वृन्दावन को चुना है। शांति–निकेतन में जतिनदा, मोशाद बाबू, राखाल और नंदिता जैसी स्त्रियां भी वैश्वीकरण के इस युग में भी भोग वस्तु के रूप में स्त्री को खरीदने और बेचने में सहायक बन रही हैं तो वृन्दावन के आश्रमों से संबंधित अंबिका या सेठानी ही क्यों दोषी करार दी जायें। आज भी सबसे निचली पायदान बनने और सब तरफ से तिरस्कार सहने का बोझ औरत पर ही आता है। विधवाओं को लुभाने, फंसाने के लिए जाल बिछाए जाते हैं ताकि जिंदा इंसानों की खरीद–फरोख्त का कारोबार बेटोक चलता रहे। इस पूरे तंत्र के तार इतने गहरे हैं कि उन्हें समूचा समेटकर खत्म करना टेढ़ी खीर है।

अंत में एक तिहाई भाग में कुसुम अंसल ने सारे कथानक को एक नई दिशा दी है। तापसी की भेंट जयमाला नाम की एक (भूतपूर्व) अभिनेत्री से होती है जो वृन्दावन में एक पाठशाला खोलना चाहती है। तापसी के जीवन में एक आशा का संचार होता है और वह जयमाला की ओर आकर्षित होती जाती है। जयमाला और उसके परिवार

द्वारा लगाये मानवता के मुखौटे को हटाकर जब वह अपने को हवाई जहाज में नहीं अपितु किसी अस्पताल के जनरल वार्ड में मूर्छित अवस्था में पड़ी पाती है। उसकी एक किडनी निकालकर जयमाला की भतीजी को लगा दी जाती है और उससे कहा जाता है कि उसका अपैंडिक्स का ऑपरेशन हुआ है। इस पूरे घटनाचक्र में अपनी सहभागिता निभाने वाली नंदिता तापसी को कुछ दिन बाद टिकट और एक हजार की धनराशि देकर कलकत्ते की गाड़ी में चढ़ा देती है – किडनी दिए जाने का पुरस्कार, जिसके लिए एक लाख रू0 की घोषणा आये दिन समाचार पत्रों में होती है।

उपन्यास का अंत बड़ा दुःखमय होता है। कच्चे घाव के कारण पेट फट जाने के कारण तापसी रेलवे स्टेशन में ही दम तोड़ देती है। इस प्रकार तापसी मनुष्य होने के दावों के विरूद्ध किसी घोर संदेह से उपजा एक जटिल प्रश्न है। तापसी जैसी स्त्रियों का अस्तित्व नकारा नहीं जा सकता। 'तापसी' उपन्यास विधवाओं की यथार्थ स्थिति को बड़े मार्मिक ढंग से उभारता है।

इस समाज में सिर्फ एक जाति या एक वर्ण पर ही अत्याचार नहीं हो रहा है। यह समस्या संपूर्ण स्त्री जाति की समस्या है। स्त्री पर अत्याचार होने की परम्परा सदियों से चली आ रही है। धर्म क्षेत्र में स्त्री पर अत्याचार होना एक आम बात हो गई है। आश्रमों में रहने वाली स्त्री की सुरक्षा पर भी कई सवाल उठने लगते हैं। भारतीय समाज में विधवा का जीवन अभिशप्त जीवन है। पुरूष सत्तात्मक परिवार एवं पुरूष के अलग होते ही स्त्री का जीवन यातनामय, कष्टमय हो उठता है। गहरी मानसिक पीड़ा में डूबकर अपना हरा–भरा चमन याद करते हुए जिन्दगी भर जलते रहना ही विधवा स्त्री की नियति है।

आज के मथुरा जैसे तीर्थ तापसी जैसी विधवाओं के शोषण के केन्द्र बन चुके हैं। स्वयं कुसुम अंसल जी का मानना है कि ''वृन्दावन के तीर्थ में कोई सुगंध, कोई सौन्दर्य, कोई ऊर्जा, कोई वाइब्रेशन नहीं था, कम से कम मुझे वैसा कोई अलौकिक अनुभव नहीं हुआ।'' शायद इसलिए तीर्थों की दर्दनाक कराह को मैंने अपने कानों से सुना है, हृदय में कंपकंपाने का अनुभव किया है। कोई आनन्द फलित नहीं होता वहां की धरती पर कुछ भी नहीं। उत्सव के स्थान पर सहस्त्र आंखों का रुदन, दुःखी, सताई हुई विधवाओं का हृदय विदारक क्रन्दन तीर्थों के भक्ति संगीत का लील गया है। यहाँ के विधवा आश्रमों में, जो बड़े–बड़े शहरों के रईसों, साहूकारों ने बनवाये हैं, बारह घंटे जाप चलता है। नरककाल जैसी भूखी, बीमार, बेसहारा वह विधवाएं जैसे अपने जन्म लेने की सजा भुगत रही हैं। कालकोठरी जैसे अंधेरे में डूबे उन आश्रमों में, उनकी चेतना का रूपान्तरण यांत्रिक या मैकेनिकल ढंग से किया जाता है। उन विधवाओं का जाप जैसे कील पर पड़ता हथौड़ा – जिसे आश्रम के नियम ठोंक–ठोंक कर बैठाना चाह रहे हैं। यह आश्रम विधवाओं को मनुष्यत्व की योनि, उसके प्राकृतिक स्वरूप से निकालकर उन्हें एक परतन्त्र इकाई में बदल रहे हैं। जहां वे अपनी सभी क्षमताएं संवेदनाएं खोकर एक अपाहित की तरह कोई भी काम करने के लिए मजबूर हैं। उन्हें कुछ भी करना पड़ता है। छः घंटों के जाप के अतिरिक्त वेश्यावृत्ति, भीख या उससे भी गिरे हुए कार्य जो आश्रम की अध्यक्षा की इच्छा या घृणा पर आधारित होते हैं। लेखिका ने धर्म के नाम पर पंडों और पुरोहितों के नकाब को उतारकर वास्तविकता से अवगत कराया है। लेखिका ने स्वयं इस तीर्थ में जाकर अनेक विधवाओं की दुखती रग पर हाथ रखा और उनके जीवन की त्रासदी को अनुभव किया। आज भी स्त्री के जीवन पर उसका पूर्ण अधिकार नहीं है। वह पुरूष सत्तात्मक समाज द्वारा थोपी पराधीनता को जाने अनजाने में स्वीकार भी कर रही है। धर्म का वास्तविक स्वरूप लुप्त होता जा रहा है। आज के ढोंगी साधुओं ने आम जनता के हृदय में अपने हृदय क्रिया कलापों से अनास्था उत्पन्न कर दी है।

'तापसी' उपन्यास में लेखिका ने तीर्थों में होने वाले अंधविश्वासों का उल्लेख भी किया है। पंडों की पापलीला ने धर्म को संकीर्ण बना दिया है। धर्म के नाम पर विधवाओं को जाने कितनी विभीषिकाएं झेलनी पड़ी हैं। आश्चर्य

है भारत को स्वतंत्र हुए 64 वर्ष गुजर जाने के बाद भी स्त्री दलन के प्रति हमारे उन्नतशील समाज का रवैया यथावत है। आधी दुनिया शोषण से तबाह है। पुरूष समाज में स्त्रियों की 'बेबस' तस्वीर का बयान करते हुए विद्रोही स्त्री की भूमिका में जर्मेन ग्रीयर लिखती हैं :

'संसार की ज्यादातर औरतें अब भी डरी हुई हैं, अब भी भूखी, अब भी गूंगी और धर्म द्वारा तमाम तरह की बेड़ियों से जकड़ी हैं, उनके चेहरे पर नकाबें हैं मुँह पर गुहारें। उनके अंग भंग हैं, वे पिटी हुई हैं।' नैतिकता का आवरण देकर पुरूष समाज सदियों से उन्हें छलता आया है। स्त्री की आत्मिक पीड़ा की छटपटाहट व प्रताड़ना की आवाज को लेखिका ने उठाने का प्रयास किया है।

मंदिर और धर्म को लेकर इस देश में जमकर राजनीति हुई है, जो स्त्री के शोषण के केन्द्र रहे हैं। मंदिर में पुजारी, साधु संत ठगाने के लिए बैठे दिखते हैं। आग तीर्थ और धर्म स्त्रियों के बल पर ही पनपते, फूलते–फलते दृष्टिगोचर हो रहे हैं। उन तीर्थों में जहाँ एक ओर ईश्वर की मूर्तियाँ स्थापित है। तो वहीं दूसरी ओर जेबकतरों को संरक्षण देने वाले महन्त भी हैं। यहाँ अनेक स्थानों से लाई गई स्त्रियों की लम्बी कतारें हैं जिनमें अधिकांश बंगाल से भेजी गई हैं। 'तापसी' भी उन्हीं में से है लेखिका का यह उपन्यास सामाजिक व्यवस्था को पूरी तरह झकझोर देता है। आज के इस इक्कीसवीं सदी में जहाँ हम पूरे विश्व से जुड़ चुके हैं वहाँ आज भी तीर्थों में विधवाओं की यह चिन्तनीय स्थिति है जिसे कुसुम अंसल जी ने अपने उपन्यास में दर्शाने का प्रयत्न किया है। उन्होंने वृन्दावन और गोवर्धन की गलियों, सड़कों, मंदिरों और आश्रमों के गलियारों में पैदल चल–चलकर वहाँ की वास्तविकता को जाना ही नहीं अपितु – अनुभव भी किया। उन्होंने मंदिर के किनारे जय करने वाली, भीख मांगने वाली स्त्रियों से साक्षात्कार करके अनेक गुत्थियों को समझने का प्रयास भी किया। आज 21वीं सदी में पहुँचने पर भी हमारे देश में आज भी स्त्री दूसरे दर्जे की जिन्दगी जीने को मजबूर है। स्त्री पर हो रहे जुल्मों का सिलसिला उसके परिवार से ही प्रारम्भ होता है। यौन उत्पीड़न के मामलों में समाज को भय से स्त्रियाँ खामोशी अख्तियार कर लेती हैं। इन सबका जीता उदाहरण कुसुम अंसल जी की तापसी पात्रा है। विधवा तापसी वृन्दावन पहुँचने पर अपने को तलाश रही है। उसे वहाँ पर स्त्री जाति का ही प्रतिनिधित्व करने वाली 'बरौता' नामक स्त्री के शोषण का शिकार बनना पड़ा। पग–पग में तापसी का जीवन बद से बदतर हो चला था। वह वेश्यापुत्री होने के कारण ही अपनी वेश्या मां के द्वारा त्याग दी जाती है। तापसी के जीवन की त्रासदी का प्रारम्भ वृन्दावन में होता है। जिस वृन्दावन को वहं बैकुण्ठ मान बैठी थी, यहीं से उसके नारकीय जीवन का प्रारम्भ होता है।

लेखिका के इस उपन्यास को पढ़ने के बाद ऐसा लगता है जैसे तापसी स्वयं अपने जीवन की कथा बया कर रही है, लेखिका ने तापसी के माध्यम से स्त्री के अस्तित्व, उसकी स्वाधीनता और अस्मिता क्या है? वह केवल पीड़ाओं की चीख बनकर रह गई है। घर में है तो अपनों के द्वारा ही छली और ठगी गई है। बैकुंठ के नाम पर पंडों द्वारा उनकी हवस का शिकार बनी है। धर्म एवं बैकुंठ के नाम पर, मंदिर के नाम पर जो पाखण्ड का खेल हो रहा है उसे बड़ी ही कुशलता के साथ कुसुम जी ने चित्रित किया है। वृन्दावन में झोंकी गई विधवा स्त्रियों में भारतीय नारीत्व की संपूर्ण सांस्कृतिक आभा को कलंकित होते हुए लेखिका ने देखा है। लेखिका स्त्री के चिरंतन अभिशाप से बंधे कुछ प्रश्न करते हुए कहती है – कौन मार रहा है औरत को? कौन गला घोंट रहा है जन्म लेती नन्हीं कलियों का? कौन कर रहा है बलात्कार छोटी बच्चियों के साथ कौन?'' यह सही भी है – समाज का सबसे उपेक्षित, प्रताड़ित और पददलित वर्ग स्त्री ही है जिसे आज तक घृणा, उपेक्षा तिरस्कार के अतिरिक्त कुछ भी नसीब नहीं हुआ है। स्त्री के शोषण को लेकर इधर अनेक उपन्यास रचे गये हैं। लेकिन तीर्थ भूमि वृन्दावन की विधवाओं के रूप में 'तापसी' की तापसी आ खड़ी हुई है जो एक प्रश्न बनी और मानवीय चेतना पर दस्तक दे रही है। एक क्षण ऐसा भी आता है जब तापसी विद्रोह करती है और उसमें मनुष्य होने की चेतना जागती है – ''बस अब मुझे हाथ मत लगाना, बहुत हो चुका, अब बर्दाश्त नहीं होता, अगर मुझे हुआ भी तो भी तो देखना मैं तेरी जान ले लूँगी।''

लेखिका ने स्वयं नंगे पैरों गोवर्धन की परिक्रमा करते हुए अनेक शोषित पंक्तिबद्ध महिलाओं की त्रासदी को सुनकर धर्म के नाम पर सौदा करने वाले, ढोंग की यथार्थता का अन्वेषण भी किया और तापसी जैसी विधवा को माध्यम बनाकर आश्रमों में होने वाले अत्याचारों की पोल भी खोली है। विधवा के रूप में स्त्री के तिरस्कार की कथा है। स्त्री की त्रासदी तो उसके जन्म के साथ से ही जुड़ी हुई है। शायद इसीलिए लड़की के सामाजीकरण की प्रक्रिया में दो दोयम दर्जे का नागरिक माना गया है। सीमोन का कथन सत्य प्रतीत होता है – ''औरत पैदा नहीं होती उसे बना दिया जाता है।'' जब हम 'तापसी' की नायिका की ओर दृष्टिपात करते हैं तो पाते हैं एक स्त्री विधवा होते ही अपने शील, सुख, सौंदर्य को खो देती है। उसकी अपनी अस्मिता नहीं है। वह पुरूष अनाचारों की कहानी बनकर रह जाती है। यह उपन्यास मानवीय चेतना पर तापसी की दस्तक देती एक दर्दनाक चीख है। तापसी के जीवन का अभिशाप पक्ष उजागर हुआ है। यह स्त्रीत्व की अस्मिता की स्थापना का उपन्यास है।

हमारी सामाजिक संरचना में कुछ मनुष्य–विरोधी तत्व हैं जिन्हें कुसुम जी ने सूक्ष्मता से पकड़ा है। 'तापसी' में धर्म के समूचे ऐश्वर्य के भीतर से गुजरते मानवीय तर्कों से परे जा चुके धर्म की भीतरी जटिलताओं को देखा गया है। आज की मांग के मध्य (तापसी) स्त्री चेतना एवं विमर्श का सशक्त हस्ताक्षर है।

एक समर्थ उपन्यास के रूप में 'तापसी' की गणना आज के 'स्त्री विमर्श' के गिने चुने उपन्यासों में निश्चित ही की जाएगी। यह 'स्त्री विमर्श' के लिए मील का पत्थर है। कुसुम अंसल ने अपनी विशिष्ट कथावस्तु, वर्णनशैली तथा तापसी के माध्यम से स्त्री जीवन की त्रासदी को शब्दों में उतार दिया, लेखनी पूर्णतः सफल है। यह यथार्थ, जीवन का यथार्थ है।

इस उपन्यास में स्त्री जीवन से जुड़े अनेक पक्ष अपनी सम्पूर्ण विद्रूप पीड़ाओं के साथ उकेरे गये हैं, पर उन्हें अभिव्यक्ति देने का तरीका कुसुम अंसल जी का इस तरह का है उसे भारतीय समाज पूरी तरह स्वीकार करता है। कुसुम जी ने अपने अनुभववृत्त की गहनता, तीव्रता और विस्तार को जिस जीवंत भाषा में ढालकर हमें उपलब्ध कराया है वही इस उपन्यास की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

भोजपुरी लोक साहित्य में श्रमगीतों का महत्व

डॉ० रामअवध सिंह यादव
प्राचार्य
श्री गाँधी पी०जी० कालेज, मालटारी–आजमगढ़

भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ के लोगों का प्रमुख पेशा खेती और पशुपालन है। दोनों ही कार्य श्रम साध्य हैं। भोजपुरी भाषी क्षेत्र में मुख्य रूप से बिहार प्रान्त का कुछ पश्चिमी हिस्सा और उत्तर–प्रदेश का पूर्वांचल सम्मिलित है। इस क्षेत्र के लोग विशेश रूप से कृषि और पशुपालन का कार्य करते हैं। कार्य करते–करते जब वे थक जाते हैं तो थकान को दूर करने के लिए लोग गीत की पंक्तियाँ गुनगुनाते हैं। काम करते समय अपनी थकान को दूर करने के लिए किसान और मजदूर जो गीत गाते हैं, उन्हें श्रमगीत कहते हैं। भोजपुरी क्षेत्र का किसान जहाँ हल चलाते समय गीत गाता है, गाय–भैंस चराते समय बिरहा गाता है, वहीं दूसरी ओर स्त्रियाँ रोपनी करते समय, सोहनी करते समय, जाँता चलाते समय विभिन्न प्रकार के श्रमगीत गाकर अपनी थकान कम करती हैं। लगभग 40–50 वर्ष पहले जाँते का प्रचलन बहुत था। स्त्रियाँ सूर्योदय से पहले ही उठकर अपने घर के उपयोग के लिए अनाज पीस लेती थीं, उसे जँतसार कहा जाता है। जँतसार में बाँझ स्त्री, विधवा स्त्री और जिसका पति विदेश (दूसरे शहर) कमाने गया होता था उनकी करुण गाथा सुनायी पड़ती है। जैसे–

सेर भरि गेहुँआरे सासु जोखि दीहली हो राम
अरे जँतवा गड़वली गज जोबरि हो राम
जँतवा धइले साँवरि झुराले हो राम
बाट बटोही आ तुँह मोरे भइया हो राम
पिया से कटिह सनेस धाई के राम
X X X
ए राम हरि मोरे गइले विदेशवा
सकल दुखवा देई गइले हो राम
ए राम सासु ननदिया बिरही बोलेली
केकर कमाइया खइबू हो राम।''[1]

भारतीय समाज में पुत्र को विशेश महत्व दिया जाता है। पुत्र वंश को आगे बढ़ाता है। पुत्र के अभाव के कारण स्त्रियाँ रात–दिन चिन्तित रहती हैं। पुत्र प्राप्त करने के लिए वे अनेक प्रकार के व्रत, पूजा–पाठ और विभिन्न देवी–देवताओं की मनौती करती हैं। जँतसार गीत में इसका वर्णन निम्नलिखित रूप में मिलता है।

ए राम मोरा पिछवरवा सिरिसिया, हहर हहर करे हो राम।
ए राम ताहि तरे सोवे पियवा पातर, निदियो ना आवेला हो राम।।
X X X X X
ए राम जरी कटइबो रे सिरिसिया, पलंग रे सलइबों हो राम
ए राम एक ओर सोवे राजा कुँवर, एक ओर रनियबा सोवे हो राम
राम तबहू ना सेजिया सोहाइल, एक रे बालक बिनु हो राम।

रोपनी के गीत – धान रोपने का कार्य सबसे कठिन होता है। पानी से भरे खेत में औरतें धान का बेहन रोपती हैं आधा झुककर धान रोपने का कार्य किया जाता है। इस मुद्रा में देर तक झुककर रोपनी करते समय कमर में दर्द होने लगता है। भोजपुरी क्षेत्र की औरतें रोपनी के गीत गाती हुई इस कठिन कार्य को पूरा कर लेती हैं। निम्नलिखित रोपनी गीत में एक स्त्री अपने प्रिय से उलाहन देती हुई – ससुराल के कष्टों का बयान करती है–

जहिया से अइलपिया तोहरी महलिया में,
राति दिन कइली टहलिया रे पियवा।।
घर के करत काम सुखल देहि के चाम,
सुखवा सपनवा होई गइले रे पियवा।।
हरवा जोत तोर गोड़वा पिरइले,
रुपवा के मुँह नाहिं देखली रे पियवा
X X X
बड़की गोतिनिया जे हई मलकिनिया से
भसुर से छयला चिकिनिया रे पियवा।।[2]

सेहनी के गीत – खरीफ की फसल की जब बुवाई समाप्त हो जाती है तो पौधों के साथ अनेक प्रकार की घासे उग आती हैं। इस कार्य को सोहनी कहते हैं। धान के खेतों में झुंड की झुंड स्त्रियाँ सोहनी का कार्य करती हैं। यह कार्य भी श्रम साध्य होता है। अपनी थकावट दूर करने के लिए स्त्रियाँ गीत गाती रहती हैं। सोहनी के गीतों में संक्षिप्त कथा भी रहती है जिसमें सास द्वारा बहू को सताने, पति–पत्नी के आचरण पर अविश्वास तथा सौतियाडाह का वर्णन मिलता है। निम्नलिखित गीत में कोई पति दूसरा विवाह करके घर के अन्दर पत्नी के साथ सो रहा है। तब उसकी पूर्व पत्नी सौतियाडाह के कारण दरवाजा नहीं खोलने पर टाँगे से काटने की बात कहती है–

अमवा महुअवा के लगली केवड़िया
लोहवा के लागल जंजीरिया ए बालम
खोलहु प्रभु रे बहरे केवरिआ
ओसिया भिंजेले लामी केसिया ए बालम
कइसे हम खोली धनि बजर केवरिया
मोरा गोदी सवती सँवरिया ऐ बालम
X X X
ओहि भोजपुरवा रे लोहवा मँगइबों
लोहवा के टँगवा गढ़इबों ए बालम
ओहि टँगवा गढ़इबों ए बालम
ओहि टँगवा पर सान चढ़इबों
ओहि से जंजीरिया कटइबों ए बालम
एक हाथे धरबों मों सामी के जुलुफिया
एक हाथे सवती के झोंटवा ए बालम[3]

कटाई के गीत – फसल पककर जब तैयार हो जाती है तो कटाई प्रारम्भ होती है। मार्च अप्रैल के महीने मे जौ, गेहूँ की कटाई तेजी से होने लगती है। दिन चढ़ते ही धूप तेज लगने लगती हैं। इससे बचने के लिए

किसान–मजदूर प्रायः भोर में ही कटाई का कार्य आरम्भ कर देते हैं। कटाई का कार्य अधिकतर औरतें ही करती हैं। उस समय वे अपनी थकान दूर करने और मनोरंज के लिए गीत गाती हैं। इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों को कटनी के गीत कहते हैं। यथा–

खेतवा में लागल कटियवा हो रामा
माथे क झूमर झलाझल झलके
खनके कलइया कँगनवाँ हो रामा।
हिलमिल सखिया सब लाही बँधावे
भरै चलै घर का बखरिया हो रामा।
ससु ननदिया बाट जोहत होइहैं,
सँखिया का साजी सेजरिया हो रामा।

इन गीतों के अलावा कृषि सम्बन्धी दूसरे कार्यों में भी पुरुश और स्त्रियाँ अपनी थकान दूर करने के लिए तरह–तरह के गीत गाते हैं। धन कूटते समय गेहूँ साफ करते समय भी स्त्रियाँ श्रमगीत गाती हैं। चरवाहे पशु चराते समय अपने मनोरंजन के लिए विभिन्न प्रकार के गीत गाते हैं। युग परिवर्तन के कारण आजकल पाश्चात्य रीति–रिवाजों के अंधानुकरण में नई पीढ़ी इन गीतों को गाने में हीनता का अनुभव करती है। इन गीतों का स्थान फिल्मी गीतों ने ले लिया है। इस प्रकार के गीत अब वृद्ध स्त्री–पुरुशों के ही कंठ में सुरक्षित हैं। भोजपुरी संस्कृति की इस अनमोल धरोहर को संरक्षित रखने के लिए भोजपुरी प्रेमियों को कठिन श्रम करने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ संकेत

1. भोजपुरी लोक साहित्य : डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय–पृष्ठ–187.
2. भोजपुरी लोक गीत : डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय– पृष्ठ–268.
3. भोजपुरी ग्राम गीत – भाग दो : डॉ० कृश्णदेव उपाध्याय – पृष्ठ 268

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

"पानी के प्राचीर" में अभिचित्रित आर्थिक मूल्य

डॉ. (श्रीमती) प्रतिमा यादव
प्राध्यापक, हिंदी एवं संचालक
पंडित कुँजीलाल दुबे राष्ट्रीय संसदीय विद्यापीठ,
भोपाल (म.प्र.)

निशा सिंह रघुवंशी
शोधार्थी एवं सहायक प्राध्यापक
कैरियर महाविद्यालय,
भोपाल (म.प्र.)

इस उपन्यास में मिश्रजी ने जमींदार गजेन्द्रसिंह एवं तहसीलदार मुंशी दुखीलाल के माध्यम से स्वतंत्रता पूर्व किसानों के आर्थिक शोषण को अभिव्यक्त किया है। जमींदार गजेन्द्रसिंह तहसीलदार मुंशी की सहायता से किसानों से लगान वसूल करते हैं। अकाल के कारण किसान दो साल से लगान नहीं दे पाये हैं। लेकिन जमींदार और तहसीलदार बर्बरता की सारी हदें पार कर किसानों के साथ अमानवीय व्यवहार करते हैं। मिश्रजी ने जमींदारी उन्मूलन से उत्पन्न गिरते आर्थिक मूल्यों को इस उपन्यास में उजागर किया है। किसान जमींदारों के द्वारा किए जा रहे अत्याचारों के कारण किसान की स्थिति हाथ में पड़ी हुई गाय के समान हो गयी है। लगान लेने के लिए जमींदार उनके साथ मारपीट करते हैं और गाली–गलौच करते हैं। इस संदर्भ में मिश्रजी ने लिखा है – "दरबार में बीसों किसान पकड़ कर लाये गये थे। सबके सब फटेहाल, नंगे बदन, धूल–धूसरित सर वाले। मुंशी जी सबको बारी–बारी से मुर्गा बनाकर पीट रहे थे, चिलचिलाती धूप चोट के ऊपर लेपन कर रही थी। मुंशी जी गरजते जा रहे थे। मैं सबकी नस पहचानता हूँ, तुम सब साले चोर हो। बिना मारे तो सुनते ही नहीं हो। लात के देवता हो बात से क्या मानोगे? दो–दो साल का लगान बाकी है। सिपाहियों के जाने पर घर छोड़कर भाग जाते हो।"

मिश्रजी ने उपन्यास में व्यापक अर्थाभाव के माध्यम से ही ग्राम जीवन में व्याप्त आर्थिक मूल्यों को अभिव्यक्त किया है। हमारे देश में अर्थाभाव का मुख्य कारण धन का असमान वितरण है। समाज में कुछ लोगों के पास आवश्यकता से अधिक धन है, जबकि कुछ लोगों के पास दो जून की रोटी खाने के लिए भी पर्याप्त धन नहीं है।

"पानी के प्राचीर" में मिश्रजी ने पाण्डेपुर गाँव आर्थिक मूल्यों को अभिव्यक्त करते हुए लिखा है कि, पाण्डेपुर गाँव में व्यापक रूप से अर्थाभाव फैला हुआ है। गाँव में होली का त्यौहार मनाया जा रहा है। लोगों के कपड़ों को देखकर उनकी बदहाली का पता चल रहा है। इस संदर्भ में उपन्यास में वर्णित है – "इन लोगों की संपत्ति क्या है ? देह पर कहने–सुनने को फटे–फटे, गंदे–गंदे अंगोछे लिपटे हुए है, जिन्हें शायद फटी धोतियों से फाड़–फाड़कर बनाया गया है। किसी की कमर में भगई लिपटी है। जिसका पछोटा बाहर निकल कर लुटुर–लुटुर हिल–डुल रहा है। किसी की कमर लंगोट से कसी है। जो कुछ छोटे है वे तो यों ही मस्त बिचर रहे है। जो कुछ बड़े है वे अलबत्ता अपनी लाज की गरदन छोटी–छोटी धोतियों या फटे–पुराने नेकरों में फाँसे हुए हैं।"

उपन्यास के नायक नीरु की आर्थिक स्थिति की अत्यंत दयनीय है। घर में धन कम है और जिम्मेदारियाँ बहुत सारी। गरीबी के कारण वह पढ़ायी छोड़ देता है। वह अपनी गरीबी से अत्यंत दुखी है। मिश्रजी ने नीरु के माध्यम से गाँव के आर्थिक मूल्यों को अभिव्यक्त किया है। नीरु अपनी बदतर आर्थिक स्थिति के कारण सोचता है। "न पढ़ने ही जा सका, न नौकरी ही कर सका। दोनों ओर से जिंदगी अकारण जा रही है। क्या करुँ, क्या न करुँ ? उपवास पर उपवास हो रहे हैं। गहने और बरतन–भाँडे पहले ही बनिया के पेट में जा चुके हैं। उधार कोई देता नहीं। पहले ही कई सौ रुपयों के कर्ज की काली छाया घर को दबोच रखे हैं। जिसने एक रुपया दिया उसने दस लिख लिए हैं। मुखिया खार खाए बैठा है, कभी भी अपने रुपये के लिए खुराफात कर सकता है। खेत रेहन पड़े हुए है। खेत में कुछ हो या न हो, मगर मालगुजारी तो देनी ही पड़ेगी। कई साल की मालगुजारी बाकी है।

अबकी कुर्की होकर रहेगी। लीला विवाह लायक हो रही है, केशव की पढ़ायी का सवाल है। मैं घर में सबसे जेठा लड़का हूँ। यह सब सोचते–सोचते नीरु का दिमाग चक्कर खाने लगता है।"

मिश्रजी ने आगे नीरु के माध्यम से जीवन में आ रहे आर्थिक मूल्यों की गिरावट को प्रदर्शित किया है। नीरु गरीबी से तंग आकर जमींदार गजेन्द्रसिंह के यहाँ बाबूगिरी करते लगता है। जमींदार गजेन्द्रसिंह नीच, क्रूर और बेईमान व्यक्ति हैं। नीरु उसे बिल्कुल पसंद नहीं करता। लेकिन पैसों के लिए उसे मजबूरन वहाँ काम करना पड़ता है। वहाँ काम करते–करते नीरु के आर्थिक मूल्यों में भी गिरावट आने लगती है। वह भी लगान वसूली के लिए गरीब किसानों पर अत्याचार करने लगता है।

मिश्रजी ने एक तरफ जहाँ आर्थिक तंगहाली के कारण नीरु के आर्थिक मूल्यों में आयी गिरावट को प्रदर्शित किया है। वहीं दूसरी तरफ नीरु के अंदर आर्थिक मूल्यों की उच्चता के विवेक को भी जागृत किया है। प्रारंभ में नीरु किसानों पर अत्याचार करने लगता है लेकिन जल्द ही उसे अपनी गलतियों का एहसास होता है और वह कई बारी किसानों को गजेन्द्रसिंह के अत्याचारों से बचाता है तथा अंत में उनकी नौकरी ही छोड़ देता है। इस प्रकार लेखक ने समाज के युवाओं के आर्थिक मूल्यों के प्रति संजीदगी को अत्यंत गहराई से प्रस्तुत किया है।

उपन्यास में वर्णित रामदीन सत्तर साल के वृद्ध हैं जो अति निर्धन है। होली के दिन भी उनके पास खाने के लिए चनों के अलावा कुछ नहीं है। जब नीरु रामदीन की इस दयनीय स्थिति को देखता है, तो अत्यंत दुखी मन से रामदीन से कहता है – "बाबा, आज सारा गाँव राग–रंग में डूबा है। सब लोग पूरी सौहारी खा–पी रहे हैं और तुम इस बरगद के नीचे बैठे चने के दाने निखोर–निखोर कर खा रहे हो।" नीरु के अंदर उपस्थित आर्थिक मूल्य उसे रामदीन काका के लिए भोजन लाने विवश करते है। वह घर जाता है, तो घर पर भी खाना खत्म हो चुका है तो फिर वह संध्या के घर से मिठाई लाकर रामदीन को खिलाता है। यहाँ मिश्रजी ने बेबसी के माध्यम से आर्थिक मूल्यों को अभिव्यक्त किया है।

रोजी–रोटी की खोज में संबंधित जीवन–मूल्यों को प्रदर्शित करते हुए मिश्रजी ने लिखा है – "पाण्डेपुर गाँव राप्ती और गोर्रा नदियों से घिरा हुआ है। बाढ़ के कारण फसल हर साल बरबाद हो जाती है। परिणामतः गाँव की आर्थिक स्थिति बदहाल है। जिसके कारण अनेक आर्थिक विसंगतियाँ उत्पन्न हो गई है। गाँव में जमींदारों के आर्थिक शोषण एवं रोजगार के अभाव में किसान शहरों की ओर पलायन करने लगे। पैसा कमाने के लिए कोई भिखारी बना, तो कोई महात्मा, कोई मुंशी बना तो कोई मजूदर। नीरु शिक्षित हो हुए भी सिफारिश न होने के कारण बेरोजगार है। इसलिए वह मिल में नौकरी करने लगता है।

डॉ. रामदरश जी ने अभिव्यक्त किया है कि आर्थिक तंगहाली एवं आर्थिक मूल्यों के पतन के कारण गाँव का जीवन सरल न होकर कठिन हो गया है। गाँव के लोग कठोर परिश्रम करके भी परिवार की बदहाली दूर नहीं कर पाते। नीरु मिल में काम करने लगा है। मिल में कठोर काम करने एवं पर्याप्त भोजन के अभाव में उसका शरीर से हड्डियाँ ही दिखायी देती है। नीरु जब गाँव आया तो उसने तीन रुपये हफ्ते भर की तन्ख्वाह माँ के हाथ पर रख दी। माँ पैसे देखकर पूछती है – "नीरु तुम्हें कितनी तन्ख्वाह मिलती है ? आठ आने रोज माँ।

तीन रुपये तो तुमने घर को दे दिए। आठ आने में हफ्ता भर कैसे काम चला होगा। गीले स्वर में माँ ने पूछा। चल जाता है माँ, चल जाता है। तुम काहे को चिंता करती हो। मिल में सामान सस्ते में मिल जाते है।"

वह अपनी तंगहाली छुपाता है लेकिन उसकी बदहाली उसकी आर्थिक स्थिति को बयाँ कर देती है। वह मिल के एक छोटे से गंदे कमरे में रहकर चने और राब से अपनी आजीविका निर्वाह करता है। यहाँ मिश्रजी ने नीरु के माध्यम से एक स्वाभिमानी एवं जिम्मेदार युवा के आर्थिक मूल्यों को स्पष्ट किया है कि नीरु इतनी कम उम्र में अपने परिवार के प्रति अपनी जिम्मेदारी को निभाता हैं। स्वयं कष्टों में रहकर भी परिवार पर आँच नहीं आने देता।

नीरु की माँ के माध्यम से मिश्रजी ने नीरु के अंदर छिपे आर्थिक मूल्यों पर दृष्टिपात करते हुए लिखा है –

"नीरु ने थोड़ा सा सत्तू लिया और दो सेर आटा। चल पड़ा शहर की ओर। माँ आँखों में आँसू भर कर उसे विदा दे रही थी। कितना सयाना है मेरा लाल। इतना छोटा होने पर भी घर की चिंताओं से बैचेन था। उस दिन कहने लगा माँ। मैं चाहूँ तो किसी तरह पढ़ सकता हूँ, लेकिन इस घर को क्या होगा ?

मिश्रजी ने इस उपन्यास में आर्थिक मूल्यों को प्रकट करते हुए अभिव्यक्त किया है कि कुछ लोग अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए दूसरे देश चले गये है। वहाँ से पैसे कमाकर अपने घर–परिवार को भेजते है। उपन्यास में धीमड़ पाण्डे के पिताजी आर्थिक बदहाली से तंग आकर पैसे कमाने रंगून चले जाते हैं। वहाँ से पैसे कमाकर अपने परिवार जनों को भेजते है। जिससे उनका परिवार आराम से अपना जीवन यापन करता है लेकिन जैसे ही उसके पिता की मृत्यु हो जाती है। धीमढ़ पाण्डे के परिवार की आर्थिक स्थिति नाजुक हो जाती है तो धीमढ़ पाण्डे भी शहर आकर नौकरी करने लगते हैं। इस संदर्भ में उपन्यास में वर्णित है – "क्या करें धीमढ़ पाण्डे ..... सो वे घर छोड़कर भाग गये लखनऊ। सुना है कि किसी मेस–महाराज के यहाँ नौकरी कर रहे हैं।"

डॉ. अर्जुन चव्हाण जी ने आर्थिक मूल्यों पर दृष्टिपात करते हुए लिखा है – "आधुनिक कालीन समाज में सबसे महत्त्वपूर्ण वस्तु हैं अर्थ। अर्थ जीवन को अर्थवान बनाता है और उसके अभाव से जीवन अर्थहीन हो जाता है। जिस व्यक्ति की आर्थिक स्थिति अच्छी हो, समाज में बहुत प्रतिष्ठित समझ लिया जाता है।"

मिश्रजी ने वर्ग संघर्ष के माध्यम से भी आर्थिक मूल्यों को अपने इस उपन्यास में प्रकट किया है। सामाजिक जगत में केवल तीन वर्ग है। (1) पूँजीपति, (2) मध्यम वर्ग एवं (3) निम्न वर्ग। विशुद्ध रूप से वर्ग चेतना अर्थ पर आधारित है। एक वर्ग जो पैसे वाला है, वह निम्न वर्ग और मध्यम वर्ग को काम दे रहा है लेकिन शोषण भी कर रहा है। जैसा कि डॉ. सुरेन्द्र तिवारी ने लिखा है – "आज के जीवन में अर्थ ही सामाजिक विषमता का मूल कारण है। अर्थ पर ही आधारित आधुनिक सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत नए वर्गों का प्रार्दुभाव भी हुआ है। फलतः वर्ग चेतना और वर्ग संघर्ष आधुनिक युग में ही विशेष रूप से प्रतिध्वनित हुआ है।"

मानव में आयी आर्थिक मूल्यों की निम्नता के कारण ही वर्ग शोषण और वर्ग संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हुई। गाँव हो या शहर हर जगह धन और परिश्रम का शोषण हो रहा है। स्वतंत्रता से पहले जो जमींदार थे। आजादी के बाद वे नए शासक बन गए और नए शोषक भी। जिसे मिश्रजी ने इस उपन्यास में यथार्थता के साथ अभिव्यक्त किया है।

"पानी के प्राचीर" में मिश्रजी अभिवर्णित किया है कि, पाण्डेपुरवा गाँव में तीन वर्ग (पूँजीपति, मध्यम वर्ग एवं निर्धन वर्ग) के लोग रहते हैं। मुखिया कुबेर पाण्डे के माध्यम से लेखक ने उच्च वर्ग का प्रतिनिधित्त्व किया है तथा रायसाहब और बाबू गजेन्द्रसिंह के माध्यम से उच्च वर्ग का प्रतिनिधित्त्व किया है। निरंजन पाण्डे (नीरु) के माध यम से लेखक ने मध्यम वर्ग का प्रतिनिधित्त्व किया है। नीरु रायसाहब के यहाँ काम करता है। उसका काम रायसाहब के लिए मजदूरों से काम करवाना है। रायसाहब कम तन्ख्वाह देकर न केवल नीरु का शोषण करते बल्कि वे गरीब मजदूरों का भी शोषण कर रहे हैं। वे नीरु से कहते हैं – "सख्ती से काम लो। ये सब नमक हराम हैं। इन्हें घंटे भर में दस बार प्यास लगती है। बीस बार बच्चा रोता है। चालीस बार काँटा गढ़ता है पैरों में। इनकी नस–नस पहचानों और इन हरामजादियों और हरामजादों को एक मिनट की भी छुट्टी न दो। पैसे लेते हैं कोई मजाक थोड़े न है। यहाँ एक तरफ तो मजदूरों के आर्थिक मूल्यों का दोहन हो रहा है और पूँजीपति वर्ग धन, स्वार्थ के लालच में खुद भी मूल्यविहीन हो गया है।

मिश्रजी ने आर्थिक मूल्यों की गिरावट को प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि जमींदारों के अंदर धन के लिए इतना नैतिक पतन हो गया है कि पैदावार न होने पर भी किसानों से जबरन लगान वसूली करते है और लगान वसूली के लिए निमर्मता की सारी हदें पर कर देते हैं। जमींदार के लिए काम करने वाले मुंशी तहसीलदार एवं सिपाही भी पैसों के लिए किसानों के साथ बर्बरता पूर्ण अत्याचार करते हैं, जबकि वे भी इसी वर्ग के हैं। मिश्रजी ने जमींदारों

द्वारा किसानों पर होने वाले अत्याचारों का अत्यंत मार्मिकता के साथ वर्णन किया है। किसानों पर पूँजीपतियों के अत्याचार का वर्णन करते हुए लिखा है – "मुंशी जी ने एक एड जमायी, सिपाही के लाठी के हूरे से ढकेल दिया। किसान मुर्गे की हालत में ही गिर पड़ा, उसका ललाट ठीकरे लग कर फूट गया।"

संदर्भ संदर्भ

1. डॉ. रामदरश मिश्र, पानी के प्राचीर, पृष्ठ–208
2. डॉ. रामदरश मिश्र, पानी के प्राचीर, पृष्ठ–15
3. डॉ. रामदरश मिश्र, पानी के प्राचीर, पृष्ठ–135
4. डॉ. रामदरश मिश्र, पानी के प्राचीर, पृष्ठ–22
5. डॉ. रामदरश मिश्र, पानी के प्राचीर, पृष्ठ–155
6. डॉ. रामदरश मिश्र, पानी के प्राचीर, पृष्ठ–39
7. डॉ. रामदरश मिश्र, पानी के प्राचीर, पृष्ठ–205
8. डॉ. अर्जुन चव्हाण, राजेन्द्र यादव के उपन्यासों में मध्यमवर्गीय जीवन, पृष्ठ–109
9. डॉ. सुरेन्द्र तिवारी, प्रेमचंद और शरतचंद के उपन्यास, पृष्ठ–29
10. डॉ. रामदरश मिश्र, पानी के प्राचीर, पृष्ठ–137

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

डॉ. उषा यादव के उपन्यास 'अमावस की रात' में अंध ाविश्वास की शिकार नारी

प्रो. दत्तात्रय महादेव सालवे
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
सहकार महर्षि शंकरराव मोहिते–पाटील महाविद्यालय, नातेपुते, ता. मालशिरस, जि. सोलापुर (महाराष्ट्र)

प्रस्तावना : आरंभिक से आदमी के जीवन में अनेक घटने वाली क्रियाएँ और प्रसंगों के कारणों को नहीं जानता था। वह अपने अज्ञान के कारण समझता था कि जीवन में घटने वाली क्रियाएँ और प्रसंगों के पीछे कोई न कोई अदृश्य शक्ति है। यह समझता है कि, बिजली, वर्षा, रोग, भूकंप, विपत्ति, देव, प्रेत, भूत, पिशाच यह सभी अज्ञान और अज्ञेय प्रकोप का परिणाम मानते हैं। आज इतने लोग शिक्षित हुये फिर भी ऐसे विचार नष्ट नहीं हुए। पहले पहल मनुष्य का क्रिया का क्षेत्र मर्यादित था। इसीलिये अंधविश्वास की संख्या भी मर्यादित थी। जब मनुष्य की क्रियाओं का अधिक विस्तार हुआ तभी इस अंधविश्वास का जाल भी अधिक फैलता गया। इसके अनेक भेद हो गये। यह अंधविश्वास विज्ञान के प्रखर प्रकार में भी छिप नहीं सकता। यह नष्ट नहीं हो सकता। अपने देश में इस अंधविश्वास की नींव बहुत गहराई तक पहुँच चुकी है।

निर्मिती : जब नया घर, नयी गाडी आदि खरीदने से इसे किसी की नजर बट्टू न लग जाये तभी 7 मिर्च और 1 नींबू इन दोनों की एक माला करके नये घर, नयी गाडी के दर्शनी भाग पर बांध दी जाती हैं। आज उत्तर भारत और पाकिस्तान में भी यह करते है। हमारे देश में अनुष्ठान अथवा शादी के समय एक रूपया देने की प्रथा है ताकि एक रूपया देने से किस्मत चमकती है। अथवा एक रूपया देने से घराने का विभाजन करना कठिन हो जाता है। कहा जाता है कि नदी के पानी में पैसा फेंकने से हमें सफलता मिलती है। लेकिन पुराने पैसे पीतले के थे और पीतल यह पानी स्वच्छ कर देता है। वही नदी का पानी लोग पीते हैं तो उन्हें स्वच्छ पानी पीने के लिये मिल जाये यह इनके पीछे की धारणा थी। घर से कोई बाहर जा रहा है तो उसके बाहर जाते वक्त पानी छिड़का जाता है, ताकि जाने वाले व्यक्ति की यात्रा अच्छी हो। छात्रों के परीक्षा के समय, नौकरी, ढूँढने के लिये जाने वाला व्यक्ति, शुभ यात्रा के लिये निकले हुए व्यक्ति ने अगर हाथी को देखा, अगर बाहर जाने वाले व्यक्ति ने अपने साथ गाय, बछडा लिया अथवा अपनी शक्ल पानी में देखना यह सभी शुभ माना जाता है। नये घर, नये गाडी के पूजा के समय नारियल तोड़ते हैं ताकि जब नारियल के टुकड़े–टुकड़े हो जाते है तभी माना जाता है कि, वह उस चीज को अपने मानने लगते है।

अंधविश्वास का अर्थ : हिन्दी में 'अंधविश्वास' इस शब्द का अर्थ ''बिना समझे–बूझे अथवा आँख बंद करे किसी बात पर किया गया विश्वास।'' 'अंधविश्वास' इस शब्द का अर्थ 'आँख मूंदकर विश्वास कर लेना अथवा बिना जाने समझे विश्वास करना आदि।' दूसरे अर्थों में –विषय को जाने समझे बिना, विश्वास कर लेना आदि। हिन्दी में इसे 'अंधविश्वास' अंग्रेजी में ब्लाइंड फेथ, तो मराठी में इसे 'अंधश्रद्धा' कहा जाता है। अर्थात विचारहीन विश्वास अंधविश्वास है।

परिभाषाएँ – अंधविश्वास उसे कहते है कि, ''बिना समझे–बूझे या आँखे बंद करके किसी बात पर किया जाने वाला विश्वास अंधविश्वास कहते हैं।''

अंधविश्वास उसे कहते है– जिस पर आँखे मूँदकर विश्वास करते हैं। अर्थात् किसी विषय को जाने पहचाने

बिना विश्वास कर लेना 'अंधविश्वास' कहते हैं।

मैं भगवान को मानता हूँ, यद्यपि मैंने आज तक उसे देखा नहीं। इस तरह बिना वैज्ञानिक प्रमाण के मेरे विश्वास को लोग अंधविश्वास कहते हैं।

अंधविश्वास क्या है? – जब हम किसी की बातों को सोचे समझे, बिना आधार पर हम किसी की बातों को मानते, स्वीकारते हैं। कभी–कभी हम ईश्वर, मनुष्य की भी भक्ति करते हैं। भगवान की भक्ति में हम इस तरह खो जाते हैं कि, कोई भी व्यक्ति ईश्वर के नाम पर कुछ भी करते हैं। अर्थात् यहाँ हमारा भगवान है या नहीं इस पर हम विश्वास नहीं रखते। ऐसा कहना ही अंधविश्वास है।

अंधविश्वास बनने का कारण – भारतीय लोगों अंधविश्वास बनने का मुख्य कारण है धर्म और ईश्वर। इसके बारे में डॉ. अब्राहम कोवूर कहते हैं कि, ''अंधविश्वास यह अधिकांशतः ईश्वर विषयक कल्पनाओं से संबंधित है।'' समाज धार्मिक और सांस्कृतिक कारणों से अंधविश्वास का शिकार बनता है। भारत एक ऐसा देश है जो धर्म को अधिक महत्व देता है। भारतीय लोगों के जीवन का धर्म अभिन्न अंग बन गया है। यहाँ समाज परंपरा से लेकर भगवान और धर्म पर विश्वास रखता जा रहा है। धर्म और भगवान ही उनकी अस्मिता बन गई है। इस देश का मनुष्य जन्म से लेकर मृत्यु तक धर्म से जुड़ता आ रहा है। यह मनुष्य अपने जीवन में सभी घटने वाली घटनाएँ, त्यौहार, सभी उत्सव इन सभी को धर्म के साथ जोड़ता है। धर्म ने ईश्वर निर्माण किया है ऐसा मानकर, समाज ने इसे स्वीकारने के कारण यहाँ के लोग ईश्वरवादी बन गये है। मनुष्य ने ईश्वर को दुनिया का कर्ता और सभी घटनाओं का संचालक ही माना है। इस देश के लोग ईश्वर को सगुण ही मानते हैं। वहीं ईश्वर का सगुण रूप मंदिर तथा मूर्ति में है। इस भाव से ही मनुष्य ऐसे ईश्वर की पूजा–अर्चना के लिये धूप, दीप, भोग, अगरबत्ती, तिलक, व्रत, भजन, जप तथा उपवास करता है। ईश्वर से मनौती माँगते हैं अपनी इच्छा से ईश्वर से कुछ माँगते है। ऐसे ईश्वर ने यदि मनुष्य की इच्छा पूरी नहीं की तो वही मनुष्य ईश्वर को कभी बकरी, मुर्गे की बलि चढ़ाता है। अर्थात् ईश्वर के नाम पर ऐसे बेचारे जीव को नष्ट करते हैं। अर्थात् भारत में रहने वाले लोग ज्यादा ईश्वरवादी बनने के कारण अंधविश्वास भी है।

समाज में ऐसे घटने वाली बातों को जानकर, देखकर साहित्यकारों ने अंधविश्वास पर अनेक रचनाएँ लिखकर समाज में लोगों को जागृत करने का प्रयास किया है। जैसे मध्यकालीन हिन्दी भक्तिकाव्य के सभी संत कवि उसका ही अनुकरण करके आधुनिक काल के अनेक साहित्यकारों ने ऐसा साहित्य लिखकर समाज को अंधेरे से प्रकाश में लाने का प्रयास कर रहे हैं। इसमें डॉ. उषा यादव जी का नाम उल्लेखनीय लिया जाता है।

डॉ. उषा यादव समकालीन विचारधाराओं की लेखिका हैं। इन्होंने एक से बढकर एक श्रेष्ठ उपन्यास लिखे हैं। मगर उनका 'अमावस की रात' यह अंधविश्वास पर आधारित एक उपन्यास है। इसमें एक लोभी तांत्रिक की कथा है। यह तांत्रिक अपनी संतानों को समय से पहले ही धनवान बनाना चाहता है। यह तांत्रिक हमेशा ऐसा सोंचता है कि, दूसरों का अनिष्ठ हो जाये और हमारे संतानों का भाग्य उज्ज्वल बन जाये। अपनी संतानों का भाग्य का उनके जीवन में सुख–शांति और अधिक जल्दी से जल्दी विकास होने के लिये छोटे पंडित श्यामसुंदर और उसकी पत्नी मन्नो अपने मांत्रिक, तांत्रिक के माध्यम से कुछ करने के लिये तैयार हो जाते हैं। ऐसा दुष्ट कार्य करते समय यह तांत्रिक मानव के साथ मानव की तरह नहीं रह सकते। ऐसे उपन्यास में 'अंधविश्वास की शिकार बनी हुई नारी का चित्रण' अमावस की रात इस उपन्यास में देखने को मिलता है।

'अमावस की रात' (डॉ. उषा यादव) में 'अंधविश्वास की शिकार नारीं– 'मन्नो' है। इस उपन्यास में माँ अम्मा, इनका शादी शुदा बेटा छोटे पंडित श्यामसुंदर, बहू, मन्नो, पोता जयंत और पोती सुगंधा आदि सदस्यों से युक्त इनका एक ब्राह्मण परिवार है। इस परिवार ने अपने ही ब्राह्मण परिवार कस्बे में एक नया घर खरीद लिया है। अपना किराये का घर छोड़कर वहाँ का सामान एक खटारा में भरकर नये खरीदे हुए घर आये हैं। इसी समय माँ 'अम्मा'

अपने बेटे छोटे पंडित श्यामसुंदर और बहू मन्नो से कहती है कि, नये घर में प्रवेश करते समय पूजा–अर्चना, होम हवन करेंगे। माँ 'अम्मा' के कहने पर बेटा छोटे पंडित श्यामसुंदर और इनकी पत्नी 'मन्नों' अमावस के दिन रात के ठीक बारह बजे नये घर में मांत्रिक, तांत्रिक के द्वारा घर में होम हवन करके पूजा अर्चना करते हैं। ताकि 'अम्मा' की धारणा है कि, तुम्हारे पिताजी ने भी तुम्हारे लिये ऐसा किया था। मगर आज वे अर्धांगवायु की बीमारी से बीमार है। अर्थात माँ अम्मा के कहने पर बेटा छोटे पंडित श्यामसुंदर और उनकी पत्नी मन्नो अपने संतानों का जीवन सुखमय, समय से पहले धनवान बनाने के लिये और अन्य किसी की संतानों का, परिवार का अनिष्ट हो जाये इसीलिये मांत्रिक–तांत्रिक से पूजा अर्चना करते हैं।

मन्नो एक ऐसी नारी है कि अपने पति छोटे पंडित श्यामसुंदर से मंत्र–तंत्र को जानती है। इसका प्रभाव मन्नो अपने आस–पास के सभी पडोसन, अनपढ लोगों पर डालने का प्रयास करती है। मन्नो अपने पति को साथ लेकर अंधविश्वास के कारण लोगों का शोषण, हत्या करने के लिये आगे–पीछे नहीं देखती। यह पति–पत्नी स्वार्थ से इतने घिरे हैं कि, वह अपने पुत्र के भाग्य को सुधारने के लिये खुद के पिता की भी हत्या करता है। साथ ही मन्नो और उनका पति अपने नये घर में पूजा–अर्चना करते समय पंडित के बाहों में लटकी हुई थैली में से एक कबूतर निकालकर उसकी गर्दन मरोड़कर उसकी भी बली चढ़ाता है। गरिमा के घर के सामने आयी हुई गाय को भी अपने तांत्रिक–मांत्रिक के बल पर मारने का प्रयास करते हैं।

इस उपन्यास में अम्मा (माँ) और मन्नो (बहू) दोनों का रिश्ता सास–बहू का होने से यह दोनों भी नारियाँ अंध ाविश्वास की शिकार बनी हुई हैं। अपने घर में होने वाली बत्ती बुझने से इन दोनों नारियों के मन में कोई न कोई शंका पैदा होती है। यह दोनों ही नारियाँ पुराने विचारों वाली है। अंधविश्वास के कारण ही इन्होंने अपने नये खरीदे हुए घर में प्रवेश करते समय अमावस की रात ठीक बारह बजे पंडित के पूजा अर्चना करके ही प्रवेश करते हैं। 'मन्नो' अपने पति छोटे पंडित के मांत्रिक–तांत्रिक का चक्कर बेवा की लड़की पर चलाती है। ताकि वह लड़की गर्भवती है, उनका कोक फुलेगी नहीं ऐसी ही भावना 'मन्नो' रखती है। 'मन्नो' की जयंत और सुगंधा यह दोनों संताने जन्म से ही अपाहिज पैदा हुये हैं। अपने संतानों को लगा हुआ शाप मिटाने के लिये मन्नो महादेव जी के मंदिर में जाकर एक साधना भी करती है। इनके पति छोटे पंडित अपने पिता जी के चमत्कारी अँगूठी के जाल में फँसे हुये है इसीलिये इनके पिताजी को लकवा मार गया। मन्नो तो मातृत्व की भूखी औरत है। अपने को संतान होने के लिये वह कुछ भी करने के लिये तैयार है। यह तो हमेशा दूसरों को फँसाती है। अपनी 'गरिमा' नामक पड़ोसन के घर में 'टॉमी' नामक कुत्ते पर मंत्र–तंत्र की चाल चलाकर उसे मारने की साजिश भी मन्नो रचाती है। गरिमा के बरामदे में बंधे हुए कुत्ते को मारने के लिये मन्नो अपने पति पंडित को कहती है कि, ''इस बरामदे का ताला तोड डालो पंडित! देखती हूँ, इसके बाद यह कुतवा कैसे जान बचाता है?'' अनेक कोशिशों के बाद भी यह कुत्ता इन दोनों के हाथ में नहीं आता इसीलिये मन्नो एक ब्राह्मण जाति की होकर भी अपने पति छोटे पंडित को कुत्ते को माँस खिलाने को कहती है ताकि कुत्ता हमें मारने के लिये मिल जायेगा। मन्नो अपने पति छोटे पंडित को कहती है की, ''शाकाहारी लोगों का कुत्ता है पंडित! मांसाहार कभी किया ही नहीं होगा, तो उसका स्वाद क्या जानता होगा?'' अंत में पति–पत्नी दोनों इस कुत्ते पर अपना मंत्र–तंत्र करके उसे घायल बनाते हैं। मन्नो अपने पति पर क्रोधित होकर कहती है कि, ''हरामी के फेर में बाकी पूजा–पाठ का भी सत्यानाश कर लोग क्या?..... भीतर चलो। अपनी साधना में जुटो। उनका जितना ज्यादा नुकसान कर सकते हो, करो।'' मन्नो अपने नये घर की जगह बनाने के लिये अपने मंत्र–तंत्र के द्वारा कुत्ते की बलि चढ़ाने के इरादे में है।

बाद में इसी उपन्यास मे होने वाली अंधविश्वास की शिकार नारी 'अम्मा' है। अम्मा यह छोटे पंडित श्यामसुंदर की 'माँ' और मन्नो की 'सास' है। यह सत्तर साल की हो गई है। फिर भी इनकी सज–धज निराली थी। लाल कलर की चूड़ियाँ, माँग में सिंदूर भरी हुई, पाँवों में मुँहावर, माथे पे बिंदियाँ आदि दुल्हन की तरह सज–धजकर

रहती थी। यह अपने बेटे पंडित श्यामसुंदर के वंश का नाश नहीं देखना चाहती। अम्मा अंधविश्वास के कारण से ही अपने घर में सात सुहागिनों को एक साथ, बिठाकर हर एक सुहागिन को एक–एक लाख की चूड़ियाँ सबको पहनने के लिये देती है। बाद में ऐसे सात सुहागिनिों के माँग में सिंदूर भरने का काम खुद अम्मा ही करती है।

निष्कर्ष – निष्कर्ष के रूप में हम कहते हैं कि, शिक्षा के माध्यम से मनुष्य का चाहे कितना भी विकास, परिवर्तन हो जाय, फिर भी ऐसे लोगों के दिल में होने वाली अंधविश्वास की भावना नष्ट नहीं होती। पढ़े–लिखे, अनपढ, पंडित, चाहे कौन भी हो अपने स्वार्थ के लिये दूसरों को नुकसान पहुँचाने का प्रयास करते हैं। अर्थात् अपने परिवार, संतान के सुख के लिये बड़े–बड़े लोग भी अंधविश्वास जैसे विचारों के सामने अपना माथा झुका देते है।

संदर्भ संकेत

1. अंधविश्वास – विकिपीडिया (hi.m.wikipedia.org) 2 मई, 2020 संपादित किया गया।
2. भारत में अंधविश्वास – विकिपीडिया (hi.m.wikipedia.org) by- wiki panti.
3. अंधविश्वास क्या है? -Navb- लेखक माडभूषि रंगराज अयंगर 'अंधविश्वास' यह शब्द संस्कृत का (पुल्लिंग) है। इसका अर्थ– परंपरागत रीति–रिवाज को बिना किसी आधार स्वीकारा गया। शकुन–अपशकुन पर विश्वास रखना, मंत्र–तंत्र पर विश्वास रखना, मंत्र–तंत्र पर विश्वास करना।
4. अंधविश्वास (bsarkari.com)
5. अंधविश्वास (bsarkari.com)
6. अंधविश्वास किसे कहते हैं?
7. अंधविश्वास क्या है? (What is blind Faith, https/hi.quora.com)
8. अंधविश्वास पर लेखक दोहे एवं कहानी। (deepawali.com.in)
9. बीसवी सदी के अंतिम दशक ही हिंदी कविता में चित्रित दलित जीवन की समस्याएँ–चतुर्थ अध्याय, 4.1.1 पृ. 261
10. डॉ. अब्राहम कोवूर, अंधश्रृद्धा व बुवाबाजी यांचा पंचनामा, अनु. प्रा. सी. भा. दातार (मुंबई), मनोविकास प्रकाशन, संस्करण, सन् 1997 ई. पृष्ठ 16
11. अमावस की रात– डॉ. उषा यादव, प्रकाशक–किताब घर, दरियागंज, नई दिल्ली–110002, प्रथम संस्करण, 2007।

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

जनजातीय महिलाओं की स्थिति वर्तमान परिवेश में

डॉ. सविता मसीह
सह. प्राध्यापक–हिन्दी
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सिवनी (म.प्र.)

विगत कई वर्षों से आदिवासी विमर्श पर प्रचुर मात्रा में पुस्तकें व शोध आलेख प्रकाशित हैं। किन्तु जनजातीय स्त्री विमर्श पर पर्याप्त साहित्य का अभाव सा दिखता है। समाजशास्त्रीय अध्ययन आदिवासी जनजातीय नारियों की स्थिति और प्रस्थिति को लेकर चिंतित व प्रयासरत रहा है। स्वतंत्रता के पश्चात् समाज में आधी आबादी की समस्या प्रश्नचिन्ह के रूप में विद्यमान रही है। साहित्य विमर्श और समाजशास्त्रीय अध्ययनों, शोधों के द्वारा जनजातीय नारी की स्थिति और प्रस्थिति पर निष्कर्ष निकलकर सामने आये हैं जो जनजातीय नारी की स्थिति की दिशा और दशा को निर्धारित करते हैं।

वैश्विक स्तर पर समाज वैज्ञानिक अनेक वर्षों से विभिन्न विषयों पर विचार–विमर्श कर रहे हैं। किन्तु स्त्रियों की स्थिति पर विचार करना तुलनात्मक दृष्टि से नई घटना है। सातवें दशक (बीसवीं सदी) तक समाजशास्त्र में भारतीय संदर्भों में धार्मिक, पौराणिक तथा प्राचीन में स्त्रियों की स्थिति के संदर्भ में विचार किए जाते रहें हैं। जो केवल हिन्दू धार्मिक ग्रंथों पर आधारित रहे। इनमें लैंगिक पक्ष भी यदा–कदा विमर्श में आता है। किन्तु आठवें दशक के प्रारम्भ 1970 के बाद से अनेक वैश्विक संगठनों, संस्थाओं और समितियों ने इस संदर्भ नवीन दृष्टि से सोचने का कार्य प्रारम्भ किया। प्रसिद्ध समाज वैज्ञानिक योगेश अटल (रीजनल एडवाइजर फॉर सोशल एण्ड ह्युमैन साइन्स इन एशिया) ने लिखा है कि ''प्रजातिशास्त्रियों ने 1970 के पूर्व तक स्त्रियों के संदर्भ में एक अध्याय भी नहीं लिखा गया। स्त्रियों पर एक भी समग्र मोनोग्राफ (एकल अध्ययन) प्रकाशित नहीं हुआ। 'डॉ. योगेश अटल' ने अपनी शिक्षक 'प्रोफेसर लीला दुबे' द्वारा किए गये 'गौंड स्त्रियों' के अध्ययन के अप्रकाशित होने पर भी दुख व्यक्त किया। 1970 के पश्चात् 1990 तक स्त्रियों की सामाजिक स्थिति पर लगभग 45 ग्रंथ प्रकाशित हुए जिनमें लगभग 25 एकल अध्ययन (Monographs) थे। इसी समय ग्रामीण जनजातीय स्त्रियों पर एक पुस्तक का प्रकाशन हुआ। "Women in Villages, Men in Town" शीर्षक से प्रकाशित इस पुस्तक में उन स्त्रियों की दशा की वृहद चर्चा की गई जिनके पति उन्हें ग्रामों में छोड़कर काम/रोजगार की तलाश में अस्थायी/स्थायी रूप से शहरों में निवास करने हेतु पलायन करते हैं। यूनेस्को ने इसी समय दक्षिण एशिया की स्त्रियों की दशाओं पर कार्य करने का प्रभार समाजशास्त्र एवं मानवशास्त्र विभाग सागर विश्वविद्यालय सागर की तत्कालीन अध्यक्ष डॉ. लीला दुबे को सौंपा।

भारत में जनजातीय स्त्रियों की दशाओं पर उपर्युक्त चिंतन के अतिरिक्त 1970 के पश्चात् अनेक कार्य हुए। इन अध्ययनों के आधार पर हम यहाँ जनजातीय स्त्रियों की स्थिति व प्रस्थिति के संदर्भ में भारतीय समाज के दृष्टिकोणों का विश्लेषण कर रहे हैं।

भारतीय समाज और जनजातीय स्त्रियाँ का शोध आधार क्षेत्र – भारतीय समाज और जनजातीय स्त्रियों के संदर्भ में किए गये विभिन्न अध्ययनों के आधार पर हम यहाँ कुछ विशेष स्तरों पर उनकी चर्चा कर रहे हैं। इस चर्चा में हम पातालकोट (तामिया–जिला छिंदवाड़ा) महिला श्रमिक (छिंदवाड़ा विकास खण्ड) तथा पहाड़ी कोरबा (सरगुजा म.प्र.) बालटी (कारगिल) कोया (खमास, आँध्रप्रदेश) गौंड तथा बैगा जनजाति पर किए अध्ययनों के आधार पर कर रहे हैं। जनजातीय स्त्रियों की दशाओं/स्थितियों से जुड़े कुछ आयाम निम्नानुसार हैं।

1. स्त्री सत्ता का परम्परागत ढाँचा–प्रत्येक जनजाति में सत्ता का कोई–न–कोई ढाँचा होता अवश्य है।

राजनीतिक सत्ता से लेकर पारिवारिक सत्ता तक प्रत्येक सत्ता संरचनानुसार ही बनी रहती है। भारतीय जनजातीय परिवार में दोनों प्रकार की सत्ता पाई जाती है। किन्तु एक तथ्य इस संदर्भ में यह है कि सभ्य समाजों में जिस तरह से बालिका की अपेक्षा बालकों को प्राथमिकता प्रदान की जाती है वैसा जनजातीय समाजों में नहीं होता। खासी जनजाति में स्त्रियों (बच्चियों) को ही गोद लेने की प्रथा है। (नटराजन) 1977 पातालकोट की भारिया एवं गौंड जनजाति की स्त्रियाँ तामिया (तहसील मुख्यालय) तक सामान लेने आती हैं और स्वेच्छा से रात्रि विश्राम हेतु रूक भी जाती हैं। (शारदा प्रसाद त्रिपाठी 2000) महिला श्रमिकों पर जास्मीन लॉरेन्स (1999) द्वारा किए गये अध्ययन यह दर्शाते हैं कि जनजातीय स्त्रियों का एक बड़ा प्रतिशत इस बात से चिंतित नहीं है कि यौन शुचिता के संदर्भ में उनके विषय में सभ्य समाज क्या सोच रहा है। कोरबा और पहाड़ी कोरबा लड़कियों को परिवार और परिवार के बाहर पूर्ण स्वतंत्रता है। (रिजवी 2002) बालटी स्त्रियों के संदर्भ में रिजवी उनकी घरेलू सत्ता को स्वीकार करते हैं। (1983) खासी स्त्रियों ने युद्ध और राजनीति का क्षेत्र पुरूषों के लिए छोड़ दिया है तथा आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं पारिवारिक सत्ता पर उनका कब्जा हैं। उपर्युक्त उदाहरणों में हमने मातृवंशी और पितृवंशी दोनों समाजों से संबंधित अध्ययनों में यह पाया है कि सत्ता की संरचना कैसी भी हो जनजातीय समाजों में स्त्री–सत्ता एक सीमा तक स्वतंत्र है और आधुनिकरण का प्रभाव भी लक्षित होने लगा है।

2. विवाह सम्बंधी नियम : प्रत्येक जनजाति में विवाह सम्बंधी नियम/निषेध आदि होते हैं। कोरबा जानजाति में वधू मूल्य (माँ–साड़ी) की माँग बधू–पक्ष की ओर से की जाती है। अनेक भारतीय जनजातियों में वधू मूल्य है, जिसका प्रमुख कारण स्त्रियों की आर्थिक गतिविधियों में संलग्नता है। विवाहोपरांत कन्या के ससुराल (पितृवंशी परिवार में) तथा मातृवंशी परिवारों में माँ के परिवार से अलग रहने पर आर्थिक क्षति की पूर्ति हेतु वधू–मूल्य की परम्परा को भारतीय समाज अलग दृष्टि से देखता है। जनजातीय समाज की पहाड़ी औरतों की चर्चा करते हुए अनेक लेखकों, कथाकारों ने आदिवासी और गैर आदिवासी स्त्रियों कं संदर्भ में उनके शारीरिक श्रम के विषय में लिखा है। इसे कम–से–कम इस आधार पर जनजातीय/गैर जनजातीय के नाम से अलग नहीं किया जा सकता। किन्तु यह सत्य हमें स्वीकार करना होगा कि पहाड़ी औरतों में घर/परिवार चलाने की क्षमता शारीरिक और बौद्धिक निपुणता के साथ है। रिजवी (1993) ने जम्मू की बाल्टी जनजाति की स्त्रियों के संदर्भ में लिखा ''जाड़े के दिनों में जब पति रोजगार हेतु शहर की ओर पलायन कर जाते हैं तब ये औरतें पूरी सर्दियों में ठिठुरते हुए अपने घर और परिवार की देखभाल करती हैं। ये दस पंद्रह किलोमीटर से बर्फ खोदकर पानी लाती हैं और आग जलाने के लिए यॉक के गोबर के कण्डे और लकड़ियाँ बटोरती हैं। इन पर विवाह के निषेध–नियमों को लागू करना जनजाति के अस्तित्व को समाप्त करने की भाँति है। गैर जनजातीय स्त्री–पुरूष इन स्त्रियों को किसी भी दृष्टि से देखें किन्तु समाजविज्ञानी इनके अदम्य साहस की प्रशंसा ही कर सकेंगे। पाताल–कोट की भारिया जनजाति में विवाह मामा–बुआ के बच्चों के बीच ही सम्भव है। ऐसी परिस्थिति न होने पर विवाह का निर्णय पंच लेता है। वर्तमान परिवेश में शिक्षित और सभ्य समाज में स्त्री विवाह को लेकर स्वतंत्र निर्णय लेने लगी हैं। फिल्मों मीडिया का प्रभाव इस ओर जागरूक कर रहा है। आर्थिक रूप से सक्षम महिला स्वतंत्र निर्णय को प्राथमिकता देने लगी है।

3. सम्पत्ति अधिकार : आंध्रप्रदेश की कोया जनजाति की स्त्रियों को पति की सम्पत्ति पर या पिता की सम्पत्ति पर विरासत का कोई अधिकार नहीं है। कोया कन्या एक संघर्षशील व्यक्ति की तरह घर में रहती है। वह अपने ऊपर जो खर्च होता है उसको कमाने के अतिरिक्त घर के लिए भी कमा कर देती है। यद्यपि कोया कन्या का पिता की सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं है किन्तु उसके विवाह के पूर्व यदि पिता की मृत्यु हो तो वह भाई से अपना खर्च माँगने की अधिकारिणी है। खासी वधुओं को अपने पूर्वजों और पिता की सम्पत्ति की अधिकारिणी माना जाता है। कोरबा जनजाति में स्त्रियों को पिता की सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं है। नारी सशक्तिकरण, शिक्षा जाग्रति के कारण जनजातीय महिलाएं कानून को लेकर सजक हो रही हैं व अधिकारों को पाने के लिये संघर्षरत हैं।

4. जन कार्यों में भूमिका : कुछ जनजातियों को छोड़ दे ंतो राजनीतिक अधिकारों के प्रति लगभग सभी जनजातियों में स्त्रियाँ मुखर होकर अपने विचार प्रकट करती हैं। किन्तु बाह्य समाजों के साथ राजनीतिक सम्पर्क में आने से ये कतराती हैं। अशिक्षा इसके पीछे एक बड़ा कारण है। वर्तमान परिवेश में पंचायतीराज व्यवस्था में आरक्षण व्यवस्था ने नारी के सशक्तिकरण में ठोस भूमिका अदा की है।

अन्य समाज एवं जनजातीय नारियों की स्थिति – अन्य समाज हमें किस तरह देखते हैं, हमारे विषय में क्या सोचते हैं यह कतई महत्वपूर्ण नहीं है। किन्तु वह जो कुछ हमारे विषय में सोचते हैं ऐसा वह क्यों सोचते हैं? आदिवासी औरतों के विषय में अन्य समाजों की सोच क्या है इस विषय में विभिन्न तथ्यों को कुछ बिन्दुओं में देखा जा सकता है। आदिवासी स्त्रियों के विषय में भारत एवं शेष विश्व में जो कुछ भी विचार किया जा रहा है वह एक चित्र है। वह चित्र एक 'कोलाज' की तरह है। कोलाज का अर्थ है अनेक छवियाँ का एक ऐसा संयोजन जिसके अर्थों में विभिन्नता है। जनजातीय समुदायों की स्त्रियों की भूमिका भारतीय संदर्भ में अनेक अर्थों को समेटे हुए है। यह एक ऐसा आढ़ा–टेढ़ा आईना है जिसमें हर व्यक्ति अपने मन के मुताबिक (अनुसार) आदिवासी स्त्रियों की छवि को देखता है और दुनिया को बतलाने की कोशिश करता है। यहाँ पर हम विविभन्न स्तरों पर इस दृष्टि का संक्षेप में विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

1. वैश्विक जगत में भारतीय आदिवासी स्त्री : विश्व ने भारत को सदैव एक गहरी रहस्यमयी निगाहों से देखा है। कभी उनके लिए यह एक साँपों की पूजा करने वाला सपेरों का देश है और कभी ओझा ताँत्रिकों का, कभी यह ओशो के नाम से जाना गया और कभी हॉकी के जादूगर के नाम से। शिकागो में युवा संत स्वामी विवेकानंद ने भारतीय चिंतन की गहनता को बौद्धिक विश्व के समक्ष रखा।

आठवें दशक (बीसवीं सदी) में एक घटना ने सम्पूर्ण भारत को झकझोर कर रख दिया। दुनिया के समक्ष एक फिल्म का प्रदर्शन हुआ। 'घोटुल' नामक इस फिल्म में बस्तर के मुरिया–मारिया आदिवासी बालिकाओंकी जो छवि प्रस्तुत की उसने समग्र भारत की अस्मिता को प्रश्नचिन्हित कर दिया। आदिवासी कन्याओं को मुण्डी बदल घोटुल में जिस रूप से दिखाने की चेष्टा की गई उसने पोर्नों और ब्लू फिल्म्स के नकली दृश्यों को वास्तविक बना दिया। इसके बाद अनेक देशी–विदेशी चित्रकारों छायाकर्मियों और रंगकर्मियों ने भारतीय जनजातीय स्त्री को कॅनवॉस से कागज और सिल्वर स्क्रीन तक उतारने के सफल असफल प्रयोग किये गये।

2. भारतीय मीडिया में जनजातीय स्त्री : बीसवीं सदी के मध्यकाल के पश्चात् फिल्म मीडिया में समानांतर सिनेमा, प्रगतिशील सिनेमा जैसे विचार उभर कर आये । इन विचारों को अमली जामा पहनाने के लिए, सत्यजित रे, विमल राय, श्याम बेनेगल जैसे निर्देशक, उत्पल दत्त, गिरीश कर्नाड जैसे निर्देशक एवं कलाकार उभरकर सामने आये। अनेक उपन्यासों, कहानियों के कथानकों का फिल्मांकन हुआ। समानांतर सिनेमा में वास्तविकता के नाम पर दरिद्रता और नग्नता का प्रदर्शन आदिवासी संदर्भों में नये संदर्श छोड़ता चला गया। व्यावसायिक सिनेमा ने भी आदिवासी संस्कृति की धरोहर की व्यवसायीकरण किया।

फिल्म मीडिया के अतिरिक्त समाचारपत्रों, कहानियों और उपन्यासों में भी आदिवासी स्त्री को अलग तरह से दर्शाया गया। मीडिया द्वारा जनजातीय स्त्री की जो छवि निर्मित की गई उसने बाह्य समाज के समक्ष, आदिवासी स्त्री के बिंदास, चरित्र को विज्ञापित किया। इससे आदिवासी स्त्री की रूढ़ छवि बनकर समाज के सामने आई। वर्तमान परिवेक्ष में फिल्मों के द्वारा ऐतिहासिक नारी के संदर्भ में कथानक प्रस्तुत किये गये हैं जो उसके सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक आयामों में परिवर्तन को प्रदर्शित करते हैं।

3. आदिवासी स्त्री की रूढ़ छवि के परिणाम : मीडिया द्वारा प्रस्तुत छवि ने बाह्य जगत को आकर्षित करना आरम्भ किया। इसके परिणाम बहुत खतरनाक तरीके से आदिवासी समूहों और भारतीय समाज को नुकसान पहुँचा रहे हैं और आगे भी इनके और अधिक खतरनाक होने की आशंका है। भारत की पर्वतीय श्रृंखलाओं से लेकर समुद्री

तटों तक आदिवासी और आज अपनी अस्मिता को ओढ़नी में लपेटकर जंगल, खेत–खलिहान, खदानों और बाजारों तक बंजारों के बिंदासपन के साथ घूमती हुई अनेक गलतफहमियों को पैदा कर रही है। किन्तु यह कोई सप्रयास पड़यंत्र नहीं है। यह जनजातीय स्त्री की लाचारी, बेचारिगी है। इसे रूढ़ छवि देकर बाह्य समाज आत्मसंतोष कर लेना चाहता है। स्त्री प्रत्येक समाज के सम्मान का प्रतीक होती है। इस प्रतीक होने के पीछे स्त्री ने बड़े जुल्म सहे हैं, उत्पीड़न की शिकार हुई हैं। वह हर ओर से प्रताड़ित हुई है। आज भारत में भी तमाम स्वच्छंदता के बाद स्त्री की रूढ़ छवि ने आदिवासियों और गैर आदिवासियों के बीच हम और वे का अंतर खड़ा कर दिया है।

हम और वे अर्थात् दो समाज, दो समुदाय और दो संस्कृतियाँ। इन हम और वे के बीच खड़ी है आदिवासी औरत। जब तक आदिवासी और के कारण हम/वे का सवाल बना रहेगा तब तक भारतीय समाज में खतरों की आशंका बनी रहेगी।

4. वर्तमान परिवेश में जनजातीय नारियों की प्रस्थिति : आधुनिकीकरण, पश्चिमीकरण, औद्योगिकीकरण और शिक्षा के प्रभाव से परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। राष्ट्र और समाज की प्रगति में सशक्त भूमिका निभाने का महत्वपूर्ण अवसर उन्हें पंचायतीराज व्यवस्था के द्वारा आरक्षण से प्राप्त भूमिका में प्राप्त हुआ है। ग्रामीण विकास एवं स्वरोजगार के द्वारा आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हुई है एवं उनका हस्तशिल्प दुनिया में प्रसिद्ध हो रहा है। जनजातीय नारी की प्रस्थिति में शिक्षा भी महत्त्वपूर्ण है जिसके कारण नारी साक्षरता का स्तर मजबूत है। भारत में स्वतंत्रता के पश्चात् संविधान द्वारा प्रदत्त समानता के अधिकारों ने राजनीति, अर्थव्यवस्था और समाज में बहुविध भूमिका निर्वाह करने के लिये महिलाओं का आवाहन करने एवं उनकी स्थिति सुधारने हेतु नये आयाम प्रस्तुत किये। आजादी के पूर्व एवं बाद में महिलाओं को अत्याचार, अनाचार उत्पीड़न एवं शोषण से मुक्ति दिलाने के लिए कई सशक्त कानून बनाये गये हैं। वर्तमान में जनजातीय नारियाँ कई महत्वपूर्ण पदों पर सुशोभित होकर समाज के लिए प्रेरक प्रेरणा का संचार कर रही हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1. जनजातीय समाजशास्त्र – डॉ. श्रीनाथ शर्मा, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी
2. मध्यप्रदेश की जनजातीय एवं संस्कृति – डॉ. शिव कुमार तिवारी, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी
3. जनजातीय भारत – डॉ. ए.आर.एन. श्रीवास्तव, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी
4. मीणा जनजाति एक परिचय – लक्ष्मी नारायण मीणा, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी
5. प्रकृति पुत्र बैगा – डॉ. विजय चौरसिया, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी
6. जनजातीय छात्र हिन्दी सीखने में समस्याएँ – शोध संगोष्ठी, पंडित शम्भुनाथ महाविद्यालय, शहडोल (09, 10 नबम्वर 2009)

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

ग्रामीण हरिजन महिलाओं की राजनैतिक स्थिति

(कौशाम्बी जनपद पर आधारित एक समाज वैज्ञानिक अध्ययन)

डॉ0 मृत्युंजय सिंह
ग्राम–केन, पोस्ट–कनवार, जिला–कौशाम्बी
पिन–212217, (उ0प्र0)

स्त्रियों की राजनैतिक स्थिति देश में राजनैतिक दशा एवं विद्यमान राजनैतिक प्रणाली पर निर्भर करती है। प्राचीन भारत में राजनैतिक प्रणाली राजतंत्र पर आधारित थी। इसलिए विधान सभा, राजनैतिक दल, कूटनीतिक सम्बन्ध तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन आदि नहीं थे। ऐसी परिस्थितियों में स्त्रियों को मताधिकार या चुनाव लड़ने की स्वतंत्रता का प्रश्न ही नहीं उठता था। स्त्रियों को सभाओं में प्रवेश की अनुमति नहीं थी क्योंकि इन स्थानों का प्रयोग राजनैतिक विचार–विमर्श के अलावा जुआ तथा मद्यपान आदि के लिए भी किया जाता था। कुछ उदाहरण ऐसे अवश्य हैं जबकि स्त्रियाँ अपने पति के साथ युद्ध स्थल में जाती थीं, जैसे रामायण में कैकेयी का युद्ध में जाना। मैगस्थनीज ने चन्द्रगुप्त मौर्य के महल में सशस्त्र महिला अंगरक्षकों का संदर्भ दिया है; कौटिल्य ने भी ''अर्थशास्त्र'' में सशस्त्र महिला अंगरक्षकों की बात कही है जो तीर कमान से सुसज्जित सैनिकों के रूप में होती थीं। अतः जब पुरूषों को ही राजनैतिक अधिकार प्राप्त नहीं थे तब स्त्रियों की अपनी अलग से राजनैतिक प्रस्थिति कैसे हो सकती थी।

अध्ययनों से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि पश्चिमी देशों विशेषकर ब्रिटेन में इस क्षेत्र में प्रथम बार आन्दोलन की शुरूआत हुई। 19वीं शताब्दी में चुनाव के समय महिलाओं के लिए मताधिकार की मांग की गई। एक लम्बे समय तक संघर्षरत रहने के पश्चात् प्रथम विश्व युद्ध के अन्तिम वर्षों में उनको मताधिकार का राजनीतिक हक प्राप्त हुआ।

भारत में पुरुषों के प्रतिनिधित्व की माँग ही सर्वप्रथम 19वीं शताब्दी के अन्त में की गई। इसलिए उस समय भारत में महिलाओं के राजनीतिक अधिकारों की माँग का प्रश्न ही नहीं उठता।

1918 में प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद से ही राजनीतिक गतिविधियों का स्वरूप बदलने लगा था। राजनीति में भी ऐसे क्रान्तिकारी आन्दोलनों की आवश्यकता महसूस की गई जो मध्यमवर्ग तक ही नहीं अपितु जनसाधारण को भी अपने में शामिल कर सकें। भारत में ऐसे स्वरूप का जन्म महात्मा गाँधी द्वारा किया गया। गाँधी जी द्वारा प्रस्तुत राजनीतिक संघर्ष अत्यन्त व्यावहारिक एवं जनसाधारण की ग्राह्यता की पहुँच के अन्दर था। गाँधी जी के इस आन्दोलन में महिलाओं ने भी सक्रिय भूमिका निभाई।

गाँधी जी ने रचनात्मक कार्यक्रमों में स्त्रियों और हरिजनों की समस्याओं का समावेश करके राजनीति एवं समाज सुधारकों को एक सूत्र में पिरोने का प्रयास किया, जिसमें वे बड़ी मात्रा में सफल भी हुए। 1920–21 के पश्चात से ही जन आन्दोलनों में महिलाओं की सहभागिता स्पष्ट दिखाई पड़ने लगी थी।

राजनीति में महिलाओं के प्रवेश से राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन को तो एक दिशा मिली ही, साथ ही महिलाओं की भूमिका के विषय में संदिग्धता भी बड़ी मात्रा में समाप्त हुई। ए0 ओ0 ह्यूम के विचार विशेष रूप से उल्लेखनीय है, उनका मानना था कि 'सभी कार्यकर्ताओं को चाहे वे किसी भी राजनीतिक विचारधारा के क्यों न हों यह स्मरण रखना चाहिए कि देश में स्त्रियों की प्रगति राष्ट्र की प्रगति के साथ–साथ समान स्तर पर यदि नहीं होगी तो

राजनीतिक मताधिकार के लिए किया गया श्रम व्यर्थ सिद्ध होगा।

वर्तमान समय में कुछ महिलाएँ राजनीति में सक्रिय भागीदारी निभाने की ओर अग्रसर नजर आती हैं, किन्तु अधिकाधिक महिलाएँ संवैधानिक अधिकार के बावजूद भी ऐसा नहीं कर पा रही हैं। जिसका प्रमुख कारण उनकी पुरुष पर आर्थिक आश्रितता ही है। इसी का परिणाम यह है कि वे सामाजिक क्षेत्र में भी स्वायत्त निर्णय लेने में अक्षम नजर आती है। दूसरा कारण यह है कि जो कानून महिला–पुरुष समानता को पुष्ट करते हैं वे सामाजिक परम्पराओं एवं रूढ़ियों से पिछड़ जाते हैं। आज भी समाज एवं संस्कृति की नीवं में पुरुष श्रेष्ठता अभिकेन्द्रित है। पुरुष प्रधान की मानसिकता सम्पूर्ण समाज पर हावी है। इसका परिदृश्य भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में स्पष्टतः देखा जा सकता है क्योंकि 21वीं सदी में प्रवेश के समय भी राजनीति में महिलाओं की संख्या गुणोत्तर रूप में आज भी कम है। राजनीति में जो महिलाएँ दिखलाई देती हैं उनमें से अधिकांश का सम्बन्ध ऐसे परिवारों से है जिनमें पुरुष राजनीति से सम्बद्धता रखे हुए हैं। आज राजनीति में महिलाएँ 33 प्रतिशत आरक्षण की माँग कर रही हैं, कई राजनीतिक दल चाहे आधे–अधूरे मन से ही सही या परिस्थिति से अनुकूलन के कारण ही सही, इसको अपनी सहमति दे चुके हैं और वे चाहते हैं कि महिलाओं के उत्थान एवं प्रगति के लिए उन्हें यह आरक्षण दिया जाए, किन्तु कुछ राजनीतिक दल उक्त आरक्षण के विरोध में हैं वे नहीं चाहते कि ऐसा किया जाय। इसी का परिणाम यह है कि आज भी यह विधेयक संसद में राजनीतिक समर्थन के लिए तरस रहा है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि राजनीतिक संघर्ष में महिलाओं ने असीमित सहयोग दिया तथा उन्हें अपने संघर्ष के कारण ही मताधिकार की स्वीकृति मिली, किन्तु इसे राजनीति में महिला सहयोग की स्वीकारोक्ति नहीं कहा जाना चाहिये महिला केवल चुनाव के समय याद किए जाने वाला वर्ग नहीं होना चाहिये, बल्कि उसकी क्षमता एवं बौद्धिक योग्यता का उपयोग राजनीति में भी पद निर्धारण कर करना चाहिये चाहे हम कितने ही आधुनिक एवं पश्चिमी क्यों न बन जायें, लेकिन ऐसा वातावरण आज भी नहीं बन पाया कि महिला स्वेच्छा से राजनीति में प्रवेश कर पाये, चाहे पद कोई भी हो किन्तु पुरुष से पूर्व स्वीकृति एवं सहमति अवश्य लेनी पड़ती है।

वर्तमान समय में पंचायतीराज के माध्यम से इस व्यवस्था में परिवर्तन लाने की कोशिश की गई है। प्रत्येक क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी को स्वीकार किया गया है तथा महिलाओं को समान अधिकार प्रदान किए जाएँ इस बात की पहल की जा रही है, जिससे वे एक व्यक्ति के रूप में अपनी पहचान बना सकें तथा अपनी समस्याओं का समाधान स्वयं ढूंढ़ सकें। अभी तक आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक मामलों में महिलाओं की भागीदारी पुरुषों की तुलना में नगण्य ही थी। पुरुषों का वर्चस्व शताब्दियों से प्रत्येक क्षेत्र में कायम रहा है और इसी के चलते, भारत में लगभग 25 करोड़ महिलाओं को गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने को बाध्य होना पड़ा रहा है।

पंचायती राज ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय स्वशासन की एक प्रणाली है। इस प्रणाली का मूल उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों की जनता को अपने सामाजिक आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास की जिम्मेदारी स्वतः पूरी करनी है। मूलतः यह सत्ता को ग्रामीण स्तर तक विकेन्द्रित करने की एक व्यवस्था है, जिससे स्थानीय मामलों के प्रशासन में लोकप्रिय भागीदारी को सुनिश्चित किया जा सके। भारत जैसे विख्यात देश में जहाँ लगभग छः लाख बसे हुए गाँव हैं, इस प्रणाली का अत्यंत महत्व है। स्थानीय समस्याओं को स्थानीय जनता स्वतः हल कर ले, इस प्रणाली का यह मूल मन्तव्य रहा है।

73वें संविधान संशोधन द्वारा पंचायती राज प्रणाली के बारे में विस्तार प्रावधान बनाया गया है।

1. पंचायतों का कार्यकाल पांच वर्ष रखा गया है, पांच वर्ष की अवधि समाप्त होने के पूर्व ही पंचायतों के चुनाव को अनिवार्य बनाया गया।
2. सम्पूर्ण भारत के लिए ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, खण्ड स्तर पर पंचायत समिति तथा जिला स्तर पर जिला

पंचायतों के संस्थाओं के गठन का प्रावधान बनाया गया।

3. पंचायतों के निर्वाचन में निष्पक्षता सुनिश्चित करने के लिए प्रत्येक राज्य के लिए एक स्वतंत्र चुनाव आयोग के गठन का प्रावधान किया गया जो राज्य सरकार की कार्यपालिका से स्वतंत्र रहते हुए पंचायतों के चुनावों को निर्देशित, नियोजित और संचालित करें।
4. प्रत्येक पांच वर्ष में एक बार प्रत्येक राज्य के लिए यह अनिवार्य किया गया है कि वह पंचायतों की वित्तीय स्थिति का पुनरीक्षण करने के लिए एक वित्त आयोग का गठन करे।
5. पंचायतों में प्रत्येक स्तर पर अनुसूचित जातियों/जनजातियों को उनकी जनसंख्या के अनुपात में आरक्षण का प्रावधान, महिलाओं के लिए प्रत्येक स्तर पर कुल सीटों का एक तिहाई आरक्षण तथा समाज व अन्य पिछड़े हुए वर्गों को उनकी जनसंख्या के अनुपात में आरक्षण देने की व्यवस्था है।
6. 11वीं अनुसूची नामक एक नयी अनुसूची संविधान में जोड़ी गयी है, जिनमें कुल 29 विषयों का उल्लेख है, इन विषयों पर, यदि विधानमंडल चाहे तो पंचायतें, कार्यक्रम एवं योजनाएँ बनाकर उन्हें लागू कर सकती हैं। इनमें स्थानीय महत्व के जैसे कृषि एवं इससे सम्बन्धित अनेक विषय हैं।

73वें संविधान संशोधन का अनुसरण करते हुए 1994 के उत्तर प्रदेश पंचायत अधिनियम ने दुर्बल वर्गों के पक्ष मे विस्तृत आरक्षण की व्यवस्था की है, जो निम्नवत है।

1. प्रत्येक ग्रामीण स्थानीय निकाय में निर्वाचन से भरे जाने वाले कुल स्थानों में से अनुपात में उतने स्थान अनुसूचित जाति तथा जनजातियों के लिए आरक्षित होंगे, जो अनुपात उस निकाय की कुल जनसंख्या से इन जातियों की जनसंख्या का है।
2. अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के समान अन्य पिछड़े वर्गों के लिए भी उनकी जनसंख्या के अनुपात में निर्वाचित स्थानों में से स्थान आरक्षित होंगे, केवल अपवाद यह है कि पिछड़े वर्गों के लिए यह आरक्षण 27 प्रतिशत से अधिक नहीं होगा।
3. अनुसूचित जाति, जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्गों के लिए किसी भी स्थानीय इकाई में जितने स्थान आरक्षित हैं, उनमें से एक तिहाई क्रमशः अनुसूचित जाति, जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्गों की महिलाओं के लिए आरक्षित होंगे। इसी प्रकार पंचायती राज्य इकाई में शेष बचे हुए स्थानों में से एक तिहाई स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित कर दिए जायेंगे। कुल मिलाकर प्रत्येक पंचायती राज संस्था में एक तिहाई स्थान महिलाओं के पक्ष में आरक्षित हो गये हैं।

इस नयी व्यवस्था ने क्रांतिकारी कदम उठाकर समाज के सभी वर्गों के लोगों को (स्त्री और पुरुषों दोनों को) स्थानीय व्यवस्था में भागीदारी का समान अवसर प्रदान किया गया है। अशिक्षा, आर्थिक दुर्बलता एवं परम्परागत सामाजिक मान्यताओं के कारण हरिजन एवं पिछड़ी जातियाँ एवं उनकी महिलाएँ भाग लेने से वंचित थी। त्रिस्तरीय पंचायतों में भाग लेने के लिए ही इन वर्गों की महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गयी है, जिससे पंचायत राज में इन वर्गों का प्रतिनिधित्व बना रहे। आरक्षण के इसी प्रावधान के कारण हरिजन महिलाओं को राजनीति में प्रवेश का सुअवसर प्राप्त हुआ है। यह सब नीति निर्धारकों द्वारा पंचायती राज व्यवस्था में सामाजिक परिवर्तन एवं सामाजिक समरसता की परिकल्पना के कारण संभव हो सका है। 73वें संविधान संशोधन द्वारा लोकतांत्रिक विकेन्दीकरण की इस व्यवस्था ने इन संस्थाओं को लोकतंत्र के तीसरे स्तम्भ के रूप में कार्य करने के लिए वैधानिकता प्रदान की है। इसके अतिरिक्त वित्तीय, प्रशासनिक एवं स्थानीय विकास का अधिकार प्रदान कर पंचायतों को सुदृढ़ बनाने की व्यवस्था की गयी है।

पंचायत राज व्यवस्था के अन्तर्गत सत्ता विकेन्द्रीकरण की इस प्रक्रिया में हरिजन महिलाओं को प्रभावशाली

भूमिका के लिए शिक्षित एवं प्रशिक्षित किए जाने की आवश्यकता है। सदियों से दबे हुए हरिजन समुदाय की महिलाओं को प्रतिनिधित्व प्रदान करने से लोकतांत्रिक व्यवस्था का सुदृढ़ीकरण संभव होगा। पंचायती राज्य व्यवस्था से हरिजन महिलाओं की भागीदारी आने वाले समय में सक्षम नेतृत्व देने में सफल होगी। हरिजन समुदाय के नेतृत्व के अभाव में पंचायत राज के माध्यम से ग्रामीण विकास का स्वप्न अधूरा ही रहेगा।

इसका परिणाम यह हुआ है कि आज महिलाएँ पुरुषों के कन्धे से कन्धा मिलाकर चल रही हैं। शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में हरिजन महिलाएँ बढ़ चढ़कर चुनावों में हिस्सा ले रही हैं और अब ग्राम प्रधान, पंचायत समिति प्रमुख, ब्लांक प्रमुख, जिला पंचायत सदस्य आदि महत्वपूर्ण पदों पर निर्वाचित होकर, अत्यंत कुशलतापूर्वक कामकाज चला रही हैं। यद्यपि यह सत्य है कि अधिकांश ग्रामीण महिलाओं को कानूनी दाँवपेंच नहीं आते। उन्हें तकनीकी रूप से बनाए गए नियमों के विषय में गंभीर जानकारियाँ नहीं हैं, लेकिन वे भली भाँति जानती हैं कि मितव्ययिता के साथ किस प्रकार धन खर्च किया जाय ग्रामीण समाज में किस किस तरह की समस्याओं से जूझना पड़ता है, गरीबी के कारण शिक्षा से वंचित महिलाओं का जीवन स्तर कितना कष्टमय है ? इन तमाम समस्याओं के स्थायी समाधान हेतु महिलाएँ बढ़ चढ़कर भाग ले रही हैं। महिलाओं में एक नई जागृति, अधिकारों के प्रति जागरूकता, शोषण के विरुद्ध आवाज उठाने की शक्ति एवं अत्याचार के विरोध में उठ खड़े रहने का साहस आया है। यद्यपि राजनीति में महिलाओं की भागीदारी तो सुनिश्चित हुई है, लेकिन अपेक्षित प्रभावशीलता और सशक्तिकरण की दिशा में परिणाम सकारात्मक नहीं है। पिछले चुनावों में एक तिहाई आरक्षण का एक नकारात्मक पक्ष यह रहा है कि हरिजन महिलाएँ अधिकांशतः आरक्षित स्थानों पर ही चुनाव मैदान में आई हैं तथा सामान्य वर्ग की सीटों को स्वतः ही पुरुषों के लिए आरक्षित मान लिया। त्रिस्तरीय पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी करना ही समय की मांग नहीं है, बल्कि सत्ता के सभी स्तरों पर आधा अधिकार उन्हें सौंपना होगा। यह देश के पुनर्निर्माण की दिशा में महत्वपूर्ण कदम होगा। ग्रामीण हरिजन महिलाएँ अवसर मिलने पर राजनीतिक गतिविधियों में भाग ले रही हैं।

परम्परागत रूप से राजनीतिक प्रधानतः पुरुष वर्ग का क्षेत्र रहा है। लेकिन वर्तमान में सामाजिक आर्थिक जागरूकता के साथ ही महिलाओं में राजनीतिक जागरूकता भी बढ़ी है। इस भागीदारी को बढ़ाने में पंचायती राजप्रणाली का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इस प्रणाली द्वारा समाज के सभी वर्गों के लिए स्थानीय व्यवस्था में भागीदारी का समान अवसर प्रदान किया गया है। संविधान के 73वें संशोधन के जरिये हरिजन वर्ग की महिलाओं के लिए सीटों की आरक्षण की व्यवस्था के कारण हरिजन महिलाओं को राजनीति में प्रवेश का सुअवसर प्राप्त हुआ है। ग्रामीण क्षेत्रों में हरिजन महिलाएँ चुनावों में हिस्सा ले रही हैं और ग्राम प्रधान, पंचायत सदस्य, ब्लॉक प्रमुख, जिला पंचायत सदस्य आदि महत्वपूर्ण पदों पर निर्वाचित होकर राजनीतिक गतिविधियों का संचालन कर रही हैं। यद्यपि राजनीति में महिलाओं की भागीदारी तो सुनिश्चित हुई है, लेकिन अपेक्षित परिणाम सकारात्मक नहीं रहा है। पिछले चुनावों में एक तिहाई आरक्षण का एक नकारात्मक पक्ष यह रहा है कि हरिजन महिलाएं अधिकांशतः आरक्षित स्थानों पर ही चुनाव मैदान में आई है तथा सामान्य वर्ग की सीटों को स्वतः ही पुरुषों के लिए आरक्षित मान लिया। यद्यपि पंचायत स्तर पर महिलायें चुनी तो गयी हैं लेकिन इनके कार्यों का निर्वहन इनके पतियों द्वारा किया जा रहा है। ये प्रधानपति औपचारिक रूप से बैठकों में नहीं रहते, परन्तु सभी कार्य करते हैं (सारणी संख्या 5.13)। अतः ग्रामीण क्षेत्रों में एक नयी शब्दावली प्रधानपति का प्रचलन हुआ है। इस तरह ग्रामीण क्षेत्रों में एक 'अतिरिक्त संवैधानिक शक्ति' उद्‌भूत हो रही है। यह अतिरिक्त संवैधानिक शक्ति प्रधान पति के हाथों में केन्द्रित होती है।

सन्दर्भ संकेत

- Altekar, A. -The Position of women in Hindu civilization, Banarsidas, Delhi, 1983.

- Atal, Yogesh - The changing frontier of caste, national Publishing House, 1968.
- Alvert, I.M. -Women and social change in India, Haritage, Delhi (1979).
- Ambedkar, B.R. - 'Mr. Gandhi and Emancipation of untouchables, Thacker and company, Bombay, 1943.The untouchables : who were they and why they become untouchables, Amrit Book company, 1948.Who are shudra ? How they come to be fourth varna in Indo- Aryan Society Thacker and Company, Bombay, 1970.
- Asthana, Pratima - (1974) Women's movement in India, Vikash Publishing House, New Delhi.
- Ambedkar, B. R. -The untouchables, shravasti, Balrampur, Jetavan Mahavihar, 1969.
- Baily, F. G. - Politics and Social change : Orissa in 1959 oxford university press, Bombay, 1963.
- Baily, F. G. - Caste and the economic frontier, oxford university press, Bombay, 1963.
- Bhaskaran, R. - Sociology of Politics : Tradition and Politics in India, Bombay, 1967.
- Beteille Andre - Caste, Class and Power, oxford University Press, Bombay, 1966.
- Bhatt, Anil - Caste, Class and politics, Manohar, Delhi,1975.
- Basin, K. - The Position of women in India, Sakuntals, Bombay, 1972.
- Boserup, E - Women's role in Economic development, George Allen and unwin London, 1970.
- Cormack, margarat - The Hindu woman, Asia Publishing House, Delhi, 1961.
- Chakravarti, A. - "Some Aspects of Inequality in Rural India : A Sociological Perspective", in Beteille, 1983, ed.
- Chalam, K.S. - Education and weaker sections, inter- India publications, New Delhi, 1988.
- Chandana, R.C. - Spatial dimensions of scheduled casted in Indian, New Delhi, Intellectual publishing House, 1989.
- Chaube, Ramesh and Kalpana saini - Status of women in rural societies (Ed), Aditya Publishers, Bina (Mp), 2002.
- सिंह, कृष्ण बल्लभ (सम्पादक) – मानवाधिकारों के आयाम, मानक पब्लिकेशन्स प्रा0 लि0, दिल्ली, 2006।
- शर्मा, सुभाष, – भारतीय महिलाओं की दशा, आधार प्रकाशन, हरियाणा, 2006।
- अहमद, अम्तियाज, – क्वॉटेड फ्राम गोविन्दराम वर्मा, भारतीय राजनीति और शासन, नई दिल्ली : दि मैकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड, 1978।
- जैन, एच0 सी0 – महिला विकास के आयाम, म0 प्र0 भारत ज्ञान विज्ञान समिति, भोपाल, 1993।
- शास्त्री, विजय सोनकर–दलित हिन्दू की अग्नि परीक्षा, श्री महाविद्यायोग पीठम्, चांदपुर, इण्डस्ट्रियल इस्टेट, वाराणसी, 2003।
- देशमुख, दुर्गाबाई – विकासोन्मुख समाज में महिलाओं की भूमिका, समाज कल्याण, फरवरी 1975।
- देसाई, नीरा – भारतीय समाज में नारी, मैकमिलन, नई दिल्ली, 1982।
- कपूर, प्रमिला, – कामकाजी भारतीय नारी, बदलते जीवन मूल्य और सामाजिक स्थिति, राजपाल एंड संस, दिल्ली, 1976।
- पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी, परियोजना रिपोर्ट, ग्रामीण महिलाओं में जागरूकता अभियान, राष्ट्रीय महिला आयोग।
- सिंह, रत्ना, – महिलाओं की पंचायती राज में भूमिका, विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर, दिल्ली, 2004।
- वोहरा, आशारानी, – भारतीय नारी दशा और दिशा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- आरजू मौजम्मिल हसन, – भारतीय महिला एवं आधुनिकीकरण, कॉमनवेल्थ पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1993।
- मोतायानी, पुष्पा, – महिला विकास की नई दिशाएं, कर्णावती पब्लिशर्स, अहमदाबाद, 1998।
- लारेन्स, जास्मिन, – महिला श्रमिक– सामाजिक स्थिति, समस्याएं संस्करण, आदित्य पब्लिशर्स, बीना, 1999।
- राजकिशोर – स्त्री के लिए जगह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994।
- दुबे, श्यामाचरण – विकास का समाजशास्त्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 1994।

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कोविड–19 : वैश्विक चुनौतियों में भारतीय दर्शन

डॉ0 ज्योति वर्मा
विभागाध्यक्ष /एसो0प्रो0 संस्कृत
बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झांसी

महान साहित्यकार प्रेमचंद ने कहा है, कि ''कहानिया तभी सर्वकालीन बनती हैं, जब वे अपने आस–पास के परिवेश और घटनाक्रम पर लिखी जाती हैं। चूंकि साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज में हो रही गतिविधियों , घटनाओं, दुर्घटनाओं का वास्तविक दस्तावेज होता है अतः वर्तमान परिदृश्य में की गई कोई भी चर्चा कोविड का उल्लेख किये बिना पूर्ण नहीं हो सकती। इसलिये इस काल में जो भी कहा – लिखा जायेगा वह कोरोना काल से प्रभावित हुये बिना नहीं कहा जा सकता।

आज सम्पूर्ण विश्व कोरोना वायरस से जूझ रहा है। एक नन्हें से अदृश्य विषाणु ने सारी दुनियां में खलबली मचा दी है। ज्ञान–विज्ञान से सम्पन्न बड़े–बड़े विकसित राष्ट्र भय और संत्रास से भरे हुये हैं। विश्व शक्ति अमेरिका, चीन, जर्मनी भी इस महामारी की मार से अपने नागरिकों को बचाने में सफल नहीं हैं। दो सौ से अधिक देशों में लॉकडाउन है। गति के सभी पहिये थमे हुये हैं। प्रत्येक व्यक्ति मृत्यु के इस भयानक विषाणु से भयभीत है। इस लाइलाज बीमारी के विस्तृत होते हुये रूप को देखकर विश्व स्वास्थ्य संगठन ने 11जी फरवरी 2020 को इसे वैश्विक महामारी घोषित कर दिया। वैज्ञानिक तन्त्र के समस्त आधार निराधार हो गये हैं। असुरक्षा की भावना ने मनुष्य को नये सिरे से सोचने के लिये मजबूर कर दिया है। निरन्तर हो रही अनगिनत मृत्यु के तांडव ने संसार का दृष्टिकोण बदल दिया है। जीवन आज कीमती हो गया है और पैसा जिंदगी की दौड़ में पीछे छूट गया है। कोविड 19 महामारी का यह काल हर किसी के लिये आत्मचिंतन का समय है। बुद्धि के रथ से उतर कर चेतना के धरातल पर जीवन की वास्तविक आवश्यकताओं को समझने का यह अवसर है। आज प्रत्येक व्यक्ति को यह सोचना ही होगा कि जिंदगी जीने के लिये जो वाकई जरूरी है, हम उसे समझें।

प्रत्येक आपदा चाहे वह भौतिक हो या दैविक, मानव निर्मित हो या प्रकृति की अपनी व्यवस्था के लिये ली गई करवट, परिणाम में जीवन की दिशा को बदलती ही है। प्रकृति के प्रत्येक कार्य के पीछे कोई न कोई कारण होता है, आवश्यकता तो बस उसे समझने की है। किंतु हम इतने हठी हैं कि सब कुछ जानते हुये भी नहीं समझना चाहते। अरबी कहावत है, नरक का रास्ता बुद्धिमान ज्ञानवान, लोगों से पटा है। चीन से निकले हुये इस विषाणु को पूरी दुनिया में फैलाने वाले लोग अत्यन्त शिक्षित, संभ्रान्त और बुद्धिजीवी चे दर्जे के लोग हैं। ये पूर्ण रूप से विकसित, जागरूक, सशक्त और सजग हैं। दुनिया के इतिहास में पहली बार हुआ है कि कोई महामारी धरती से नहीं हवाई जहाज से फैली है। इसको फैलाने वाले अनपढ़ गवांर अशिक्षित अज्ञानी लोग नहीं वरन पूर्ण मेधा सम्पन्न और ज्ञानवान लोग ही हैं। इतिहास साक्षी है। जब जब पृथ्वी अव्यवस्था दोष से ग्रस्त हुई है, उसमें रहने वालें प्राणियों ने उसका शोषण किया है, तब तब पृथ्वी ने स्वतः स्वयं को व्यवस्थित किया है। क्योंकि प्रकृति का एक व्यवस्थित क्रम है, उसमें अव्यवस्था के लिये कोई स्थान नहीं है। धरती हमारी माता की तरह है– माता भूमिः पुत्रोहम् पृथिव्याः[1]। समस्त जगत के चराचर प्राणियों का पृथ्वी सन्तान की तरह पोषण करती है। हमारे ऋशियों ने भूमि को माता कहकर उसकी वन्दना की है। उससे प्रचुर मात्रा में धन–धान्य, गौवें, स्वास्थ्य पौष्टिक पदार्थ, अन्नादि को प्रदान करने की कामना की है। और हम हैं कि उसकी स्तुति करना तो दूर की बात उसका निरन्तर दोहन नहीं शोषण कर रहे हैं। प्राचीन काल में जब ऋषि धरती पर कृषि के लिये फावड़ा चलाता था तो उससे विनम्रतापूर्वक

क्षमा प्रार्थना करता था, ''हे माता मैं। तुम्हारी छाती पर इस फावड़े से प्रहार कर हूँ, तुम्हारे गर्भ को खोद रहा हूँ, मुझे क्षमा करना।''

'यत् ते विखनामि दयं क्षमस्व मा विमृग्वरि।''[2]

किन्तु आज हम बिना किसी संकोच के धरती की छाती खोद–खोद कर तल, तलातल और रसातल के निर्माण में लगे हैं। वृक्षों को काट–काट कर चीं चीं अट्टालिकायें बना रहे हैं। विज्ञान के बल पर प्रकृति को जीतने का दंभ भरने वाले मानव ने प्रकृति की अनमोल सम्पदा को क्षति पहुंचाई है। उसके संपूर्ण आवरण को दूषित किया है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पतियों से लेकर आंतरिक्ष तक समस्त ब्रांड को मानव ने प्रदूषित किया है। कोरोना का यह संकट हमारी अदम्य जिजिविषा का ही परिणाम है। इस पर हमें सोचना ही होगा।

''सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग भवेत्।।''

समस्त जगत सुखी हो, सभी निरोग हों सभी कल्याणकारी वस्तुओं का दर्शन करें कोई दुःखी न हो। सम्पूर्ण विश्व के सुख और सौभाग्य की यह मंगल कामना ऋषियों ने तब की थी, जब इस धरा पर मनुष्य का प्रकृति के साथ एकात्मभाव था, पर्यावरण शुद्ध था, पृथ्वी, जल, वायु प्रदूषण से मुक्त थे। मनुष्य में विज्ञान के चमत्कारों की चकाचौध न थी न ही विलासता का घोर दंभ था। किंतु आज विकास और विलास के साधन जुटाते–जुटाते हम इतना आगे बढ़ गये हैं कि हमने अपने हाथों से अपने सुख और स्वास्थ्य पर कुठाराघात किया है। सर्वे भवन्तु सुखिनः की वैश्विक भावना को हमने नितान्त वैयक्तिक सुख के रूप में लिया है। संभवतः हमारी इसी भूल को सुधारने के लिए वर्तमान संकट ने हमें हमारी प्राचीन वैदिक संस्कृति का स्मरण कराया है। आज पूरा विश्व एक धरातल पर है। संपूर्ण विश्व की एक ही चिंता है कैसे इस विषाणु पर काबू हो सके।

दुःख की इस घड़ी मे भगवान बुद्ध का दर्शन याद आता है। दुःख की इस घड़ी में भगवान बुद्ध का दर्शन याद आता है। बुद्ध की वाणी ही है जो पूर्णतया आध्यात्मिक अधिकार से पूण है। जिसमें सम्पूर्ण मानवता के कल्याण का मार्ग निहित है। बुद्ध दर्शन के चार आर्य सत्य है[3]– 1. दुःखों की विद्यमानता 2. दुःखों का मूल 3. दुःखों का अन्त 4. दुःखों के नाश का उपाय एवं मार्ग। दुःख के अस्तित्व की स्वीकृति और दुःख के नाश करने का उपाय यही धम्म की आधारशिला है। उन्होनें माना है कि दुःख ही आर्य सत्य है। दुःख है, तो उसका कारण है। कारण है तो उसका निवारण भी है। और निवारण के लिये उन्होनें अष्टांगिक मार्ग बतलायें हैं। बुद्ध का अष्टांगिक मार्ग मध्यम मार्ग है।[4] मध्यम मार्ग ही ज्ञान मुक्ति और शांति का पथ है। यह पवित्र अष्टांगिक मार्ग हैः जिसके माध्यम से सम्यक ज्ञान, सम्यक विचार, सम्यक वाणी, सम्यक कर्म, सम्यक एकाग्रता संभव होती है। यह मार्ग सम्यक इसलिये है कि इसमें न तो कष्टों से बचा जाता है और न उसका अस्वीकार किया जाता है। बल्कि सीधा सामना किया जाता है ताकि उससे उबरा जा सके। यह मार्ग दो अन्तों से बचने का मार्ग है। एक छोर घोर तपश्चर्या का है जिसमें मनुष्य स्वयं को मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित कर शरीर को कष्ट देकर कठिन तप करने में ही कल्याण समझता है। दूसरा छोर विषय वासनाओं का है जिसमें व्यक्ति आकंठ डूब कर विलासता में ही जीवन को सार्थक समझता है। बुद्ध का अष्टांगिक मार्ग ही सम्यक मार्ग है। यह मार्ग सचेतन अवस्था में जीने का मार्ग है। सतत चेतना से चित्त में इतनी एकाग्रता आ जाती है कि इससे ज्ञान की प्राप्ति की जा सकती है। सम्यक एकाग्रता से चेतना, विचारों, वाणी, कर्म, जीवन यापन और प्रयास की सम्यक दृष्टि उपलब्ध हो जाती है। इस दृष्टि से ही मनुष्य अपने मूल स्वभाव को प्राप्त हो जाता है। उसे बोध हो जाता है ''यत् पिण्डे तत् ब्राण्डे'' जो पिण्ड में हैं वहीं ब्राण्ड में है। इस ज्ञान का उदय होते ही मनुष्य सम्यक शांति और आनंद को प्राप्त हो जाता है।

उपनिषद् में भी मानव के कल्याण के लिये श्रेय ओर प्रेय ये दो मार्ग बतलाये गये हैं[5] :–

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोभि प्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमात् वृणीते।।

कठो0 द्वितीयंवल्ली/2

इनमें जो श्रेष्ठ बुद्धि सम्पन्न होता है, वह तो दोनों के तत्व को पूर्णतया समझकर नीर क्षीर विवेकी हंस की तरह प्रेय की उपेक्षा कर श्रेय को ही ग्रहण करता है। किन्तु जो मनुष्य अल्पबुद्धि हैं, वे श्रेय के फल में अविश्वास करके प्रत्यक्ष दिखाई लेने वाले लौकिक वस्तुओं की प्राप्ति के लिये प्रेय को ही अपनाता है, तथा अप्राप्त की प्राप्ति और प्राप्त की सुरक्षा में लगा रहता है। वह इतना ही समझता है कि जो भी भोग पदार्थ हैं वह उसे प्राप्त कर ले, तथा जो पदार्थ अप्राप्त हैं, वे उसे प्रचुर मात्रा में मिल जायें तथा और अधिक मिले रहे। अल्पबुद्धि इसी लिप्सा में लिप्त रहता है। प्रकृति का यह वर्तमान संकट इसी मानवीय तृष्णा का परिणाम है।

कोरोना संकट ने बेतहाशा भागते हुये जीवन की गति को स्थिर किया है। हमे हमारी संस्कृति की याद दिलाई है। आज हमें उसी प्राचीन भारतीय संस्कृति की ओर वापस जाना होगा। नये सिरे से जीवन जीने की कला विकसित करनी होगी। इस त्रासदी ने हमें अन्तर्मुखी होने का संदेश दिया है। जीवन के आनंद की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है। आनन्द की जो परिकल्पना अभी गति से जुड़ी थी, मौज–मस्ती शोर–शराबे में निहित थी, अब वह अपने घर परिवार के बीच अपनों के साथ मिलने लगी है। अपने आपको दिये बिना, जीवन से अपने लिये कुछ भी पाना संभव नहीं है। उन क्षणों में, जब हम अपने जीवन में और अधिक पाने के लिये तरसते हैं, हमे उन चीजो पर भी ध्यान देना चाहिये जो हमारे पास हैं। ऐसा करने पर हम देखेंगे कि हमारे जीवन का पात्र पहले से ही वरदानों से छलक रहा है।

वैश्विक कल्याण में समर्थ भारतीय दर्शन की सार्वभौमिकता प्राचीन काल से लेकर आज तक अपनी विशेषताओं के कारण पौरस्त्य एवं पाश्चात्य विद्धानों के आकर्षण का केन्द्र रही है। योगदर्शन में वर्णित अष्टांयोग वर्तमान में विश्व कल्याण की क्षमता का प्रत्यक्ष मार्ग है। पतंजलि द्वारा निर्दिष्ट अष्टांयोग में वैश्विक कल्याण की क्षमता है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि ये आत्मदर्शन के मार्ग के वह सोपान हैं, जिस पर चलकर मनुष्य विश्वशक्ति, विश्वबन्धुत्व और विश्वनैरोग्य को स्थापित कर सकता है। यम नियम को महर्षि पतंजलि ने सार्वभौम व्रत कहा है।[6] ये शौच, संतोष, तपस्या, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान[7] तथा सत्य अहिंसा अस्तेय, ब्रचर्य और अपरिग्रह[8] की भावना से अनुप्राणित हैं।

शौच सन्तोश तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः। योग सूत्र 1/2/32
अहिंसा सत्यस्तेय ब्रचर्यापरिग्रहाः यमाः। योग सूत्र 2/30

योग में वर्णित ये नियम समाज को नियन्त्रित करने में अग्रणी भूमिका निभा सकते हैं। समाज मे व्याप्त भ्रष्टाचार, असंतोष, हिंसा, चोरी, लूट, संग्रह की प्रवृत्तियों पर ये नियम निश्चित अकुंश लगा सकते है। परमात्मा में सब कुछ अर्पित कर देना ईश्वर प्रणिधान का नियम है। इसके पालन से मनुष्य निरहंकार होता है। अपरिग्रह के पालन से व्यक्ति सांसारिक विषयो से हटता है। पतंजलि का मत है कि विषयों का अर्जन, रक्षण, क्षय, असंग एवं हिंसा दोष दर्शन ही अपरिग्रह है। इस गुण से युक्त व्यक्ति ही योग की और उन्मुख हो सकता है। संतोष वृत्ति इसकी पोषक है। शुचिता चित्त के मलों का प्रक्षालन करती है। शुचिता आभ्यन्तर बाह्य दो प्रकार की होती है। जो व्यक्ति कायिक, वाचिक और मानसिक दृष्टियों से पवित्र है वही आत्म दर्शन के योग्य है। चित्त मे स्थित राग, द्वेष, मोह, भय आदि सूक्ष्म मलों का निराकरण तप से होता है। तप से आन्तरिक मल नष्ट होते हैं। योगी का चित्त एकाग्र होता है और एकाग्र चित्त में ही समाधि घटती है। चित्त की एकाग्रता के लिये स्वाध्याय और जप का विधान है। ये क्रमशः मन को एकाग्र करके चित्त को स्थिर करते हैं, जिससे समाधि सिद्ध होती है।

योग के उपरोक्त दो अंग यम–नियम के सम्यक पालन से व्यक्ति आभ्यन्तर और बाह्य वृत्तियों का निरोध करने में सफल होता है। तथा स्थिर चित्त से तत्व चिन्तन कर सकता है।

आसन :–''स्थिरसुखमासनम्'' योग सूत्र 46 स्थिरता के सुख को प्रदान करने वाली स्थति को आसन कहते हैं9। योग भाष्यकार ने द्वादश आसनों की बात की है। किन्तु वर्तमान में अनेक आसन प्रचलित हैं। यम नियम की भांति आसन भी नाड़ी शोधन में सहायक माने गये हैं। पदमासन मे स्थित होकर प्राणायाम करने से रोगों एवं व्याधियों का नाश होता है।

प्राणायाम :– प्राणायाम को योग क्रिया का द्वार कहा जा सकता है। श्वास– प्रश्वास के ग्रहण करने और छोड़ने की क्रिया को प्राणायाम कहते हैं–

''तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः''[10]। योग सूत्र 2/49

''प्रच्छर्दन विधारणाभ्यां वा प्राणस्य''।[11] योग सूत्र 1–35

अर्थात आसन का अभ्यास हो जाने पर श्वास प्रश्वास की गति को विशेष प्रकार से रोकना प्राणायाम है। पेट की वायु को नासिका से निकालना प्रच्छर्दन है। और बाहर की वायु को भीतर ले जाकर वहीं रोके रखना विधारण है। प्राण वायु का रेचक, पूरक और कुम्भक रूप प्राणायाम होता है। उदरस्थ वायु को बाहर निकालना रेचक है। बाहय वायु को नासिका से भीतर ले जाना पूरक है तथा उदरस्थ वायु को भीतर रोक कर रखना कुम्भक होता है। वस्तुतः कुम्भक के द्वारा प्राणवायु विस्तार पाता है। शरीर में स्थित वायु को प्राण और कुम्भक को आयाम कहा गया है। प्राणवायु का आयाम जितना अधिक होगा, व्यक्ति उतना ही दीर्घजीवी और स्वस्थ होगा। प्राणायाम करने से उदर के रोग, कृमिरोग तथा धातुगत नाड़ी दोष दूर होते हैं। प्राणायाम वात, पित्त, कफ, जन्य विकारों को दूर करने मे समर्थ है। इससे जठराग्नि तीव्र होती है तथा प्राणायाम कुण्डलनी जागरण मे भी सहायक होता है।

प्रत्याहार :– जब इन्द्रिया विषयो की ओर न जाकर चित्त के स्वरूप का अनुकरण करने लगती हैं, उसे प्रत्याहार कहते है :– ''स्वविषयासंप्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः''।[12] योग सूत्र , 2/54। वस्तुतः इन्द्रियों का स्वभाव बहिर्मुख होता है, किन्तु विषयों से जब उन्हे लौटा लिया जाता है, तो वैसे चित्ताकार होने की कोशिश करती हैं। इस अवस्था मे इन्द्रिया प्राण के आश्रय में वे ही रहती हैः– जैसे रानी मक्खी के आश्रय में सभी मधुमक्खिया रहती हैं। प्रत्याहार की प्रक्रिया से इन्द्रियां मन के वशीभूत हो जाती है। व्यक्ति अनावश्यक क्रियाओं से विरत हो जाता है। सभी प्राणियों में एकात्म भाव उत्पन्न होने लगता है। सभी प्राणियों को आत्मवत देखने से वसुधैव कुटुम्बकम् का भाव फलित होने लगता है। यही आज की वैश्विक चुनौती है। जिसे हम योग के माध्यम से हल कर सकते है।

धारणा :– स्थान विशेष में चित्त को स्थिर करना धारणा है। ''देशबन्धः चित्तस्य धारणा''।[13] योग सूत्र 3/11। यह स्थिरता शरीर के विभिन्न चकों में संभव हैं जैसे मूलाधार चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र, नाभि चक्र, दयचक्र, आज्ञाचक्र, सहस्त्रसार चक्र में धारणा करता हुआ योगी अपने चित्त को साधने का प्रयत्न करता है। इस अभ्यास से मन की स्थिरता आती है। जैसे सुसारथी दुष्ट अश्व को वश में कर लेता है उसी प्रकार ज्ञानी व्यक्ति अपने मन को वश मे करता है।[14]

अस्तु विज्ञानवान भवति युक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः।। कठो0, 1/3/6

ध्यान :– ध्येय विषयों में ज्ञान की एकतानता या अभिन्न प्रवाह ध्यान[15] कहलाता है–

''तत्र प्रत्ययैक तानता ध्यानम्''। यो0 सू0 3/3

अर्थात जब धारणा विषय का ज्ञान अन्य ज्ञानों से स्पष्ट नहीं होता तब साधक की स्थिति को ध्यान की

अवस्था कहते है। इस स्थिति में चित्त की अन्य वृत्तिया निरूद्ध रहती हैं। ग्रहीता, ग्राह्य और ग्रहण की सूक्ष्म प्रतीत होती है। अन्य विषयों की प्रतीति नहीं होती, तभी ध्यान सधता है। ध्यान से व्यक्ति की मानसिक व्याधियों का शीघ्र निराकरण होता है। वर्तमान कोरोना काल में व्यक्ति भय और तनाव से ग्रस्त है। अवसाद को प्राप्त हो रहा है। आत्महत्या तक कर रहा है। यदि इस ध्यान क्रिया को किया जाय तो निश्चित रूप से समाज में सुख शान्ति उपलब्ध होगी। तथा निजी जीवन तनाव रहित हो जायगा ।

समाधि :– ध्येय पदार्थ को प्रतीत कराने वाला ध्यान ही परिपक्वावस्था में समाधि का रूप धारण करता है–

''तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूप शून्यमिव समाधिः'' योग सूत्र 3/3

वस्तुतः जब ध्यान ही ध्येय के स्वरूप का आवेश होने से अपने ज्ञानात्मक रूप से रहित सा हो जाता है, तो उसे समाधि की संज्ञा दी जाती है। पतंजलि का मत है कि धारणा ध्यान और समधि तीनो की एक साथ स्थिति संयम कहलाती है– त्रयमेकत्र संयमः। इस संयम के सिद्ध होने पर प्रज्ञा का प्रकाश होता है। जैसे–जैसे संयम स्थिर होता है, वैसे–वैसे समाधि प्रज्ञा निर्मल होती जाती है। और ध्येय का साक्षात्कार होता है। ये तीन समाधि के अन्तरंग साधन कहे गये हैं अन्य पांच– यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार बहिरंग साधन है। योग के ये अष्ट सोपान भारतीय मनीषियों के चिर कालिक चिन्तन का फल है। निश्चित रूप से ये वैश्विक कल्याण मे समर्थ है।

अभी भी समय है कि हम प्रकृति के संकेतों को समझें और भविष्य की दिशा तय करें। प्रकृति के नियमों से खिलवाड़ के लिये प्रकृति स्वयं दण्ड व्यवस्था सुनिश्चित कर चुकी है। वर्तमान में आये कोरोना संकट से यह सिद्ध हो चुका है कि भारतीय जीवन दर्शन ही धारण करने योग्य है। हमें यह आचरण हर हाल में अपनाना ही होगा। निश्चय ही इस युग में भारतीय दर्शन की यही एक ऐसी भूमिका नजर आ रही है, जिस पर मानव सभ्यता का भविष्य टिका है।

सन्दर्भ सूची

1. अथर्ववेद–पृथ्वी सूत्र
2. ऋग्वेद
3. भगवान बुद्ध और उनका धम्म – डॉ भीमराव अम्बेडकर, पे0 86
4. भगवान बुद्ध और उनका धम्म – डॉ भीमराव अम्बेडकर, पे0 87–88
5. कठो0 2/2
6. पतंजलि योग सूत्र–1/2/30
7. पतंजलि योग सूत्र–1/2/31
8. पतंजलि योग सूत्र–1/2/32
9. पतंजलि योग सूत्र–2/46
10. पतंजलि योग सूत्र–2/49
11. पतंजलि योग सूत्र–1–35
12. पतंजलि योग सूत्र–2/54
13. पतंजलि योग सूत्र–3/1
14. कठो0 1/3/6
15. पतंजलि योग सूत्र – 3/3
16. पतंजलि योग सूत्र–3/3

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

भारतीय जैव विविधता का भौगोलिक दृष्टिकोण

डॉ. आभा शुक्ला
भूगोल विभाग – असिस्टेंट प्रोफेसर
पी.पी.एन. कालेज, कानपुर

जैव विविधता शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम 1980 ई. में ई. एस. नोर्स तथा आर. ई. मैंस द्वारा किया गया। प्रसिद्ध वैज्ञानिक वाल्टर जीरॉसन ने प्रथम बार 1986 में जैव विविधता को परिभाषित किया। 'पादपों, प्राणियों, सूक्ष्म जीवों में पायी जाने वाली विभिन्न किस्में तथा विभिन्नतायें जैव विविधता कहलाती हैं।' हमारा जैवमण्डल विभिन्न प्रकार के जीवों का विशाल संग्रहण है। जन्तुओं में विशालकाय ह्वेल से लेकर अति सूक्ष्म जीवाणु तक सम्मिलित हैं एवं पौधों में 100 मीटर की ऊँचाई वाले रेडवुड से लेकर विशालकाय पीपल, बरगद एवं सूक्ष्म शैवाल भी हैं विभिन्न प्रकार के जीवों के बीच की यही विविधता, विभिन्नता एवं परिवर्तनशीलता जैव विविधता कहलाती है।

एशिया महाद्वीप में भारत की भौगोलिक स्थिति अत्यधिक महत्वपूर्ण है इसका विस्तार पूर्व–पश्चिम में 2933 कि.मी., उत्तर दक्षिण में 3214 किलोमीटर एवं स्थलीय सीमा 15,200 कि.मी. और समुद्री सीमा 7516.6 कि.मी. (लक्ष्यद्वीप, अण्डमान एवं निकोबार द्वीप सहित) इसका क्षेत्रफल 32,87,263 वर्ग कि.मी. है। यहाँ विश्व की समस्त प्रकार की जलवायु श्रेणियाँ, वनस्पति विद्यमान है। यह आर्द्र उष्ण कटिबन्धीय पश्चिमी घाट से राजस्थान के गर्म मरुस्थल तक, लद्दाख के शीत मरुस्थल एवं हिमालय के बर्फीले पहाड़ों से लेकर प्रायद्वीपीय गर्म तटों तक की स्थिति पायी जाती है। यहाँ न्यून वर्षा 25 सेन्टीमीटर थार रेगिस्तान एवं 1444 सेन्टीमीटर अधिकतम वर्षा भसीमराम गाँव (असम) में होती है। विश्व के 17 वृहत जैव विविधता वाले देशों में भारत अपनी समृद्धि (60 से 70% जैविक विविधता) के लिये विश्वविख्यात है, जो सम्पूर्ण विश्व के मात्र 2.4% क्षेत्रफल पर पौधों की लगभग 47000 प्रजातियाँ हैं जो सम्पूर्ण विश्व की 11% है। पादपों में आवृतबीजी, अनावृत्त बीजी, पर्णोद्भिद, हरितोद्भिद, शैवाल, कवक आदि है। वाहिनी वनस्पति के अन्तर्गत लगभग 15000 प्रजातियाँ हैं जो अनेक प्रकार की जड़ी–बूटियों के कारण चिकित्सा पद्धति में महत्वपूर्ण हैं इसमें से 35% के लगभग देशी प्रजातियाँ है जो कि विश्व में और कहीं नहीं मिलती। वनस्पति नृजाति विज्ञान की दृष्टि से महत्वपूर्ण पौधों की 800 प्रजातियों की पहचान की गई है।

जलवायु और प्राकृतिक पर्यावरण की विभिन्नता के कारण भारत में लगभग 89,451 किस्म के जीव–जन्तु जिसमें 2,577 प्रोटिस्टा (आद्य जीव), 5070 मोलस्क, 68,389 एन्थ्रोपोडा, 119 प्रोटोकॉडेटा, 2546 किस्म की मछलियाँ 209 किस्म के उभयचरी, 456 किस्म के सरीसृप, 1232 किस्म के पक्षी, 390 किस्म के स्तनधारी जीव और 8329 अन्य अकशेरूकी आदि सम्मिलित है। यहाँ लगभग 400 भेड़ों की, 27 मवेशियों की, 22 बकरियों, की प्रजातियाँ मिलती है।

भारत वर्ष में कुल क्षेत्रफल का 360 लाख हेक्टेअर क्षेत्र ही वनों से (11%) आच्छादित है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रति व्यक्ति वनों का क्षेत्रफल 1.08 हेक्टेअर है जो भारत में 0.11 हेक्टेअर ही है। सम्पूर्ण विश्व की तुलना में यहाँ केवल 1313 चिड़ियों की (13%), 1200 तितलियों की (6.9%) 6000 कीट प्रजाति (6%), 412 स्तनधारी प्रजाति (7.6%), 620 सरीसृप (6.2%), एवं 2420 किस्म की मछलियाँ (11%), एवं 50,000 प्रकार के पेड़–पौधे जो विश्व के (12.5%) है।

विश्व के 30 जैव विविधता हॉट–स्पॉट में से 4 भारत में स्थित है। 1951 में रूसी वैज्ञानिक एन. वाय. वैविलोन ने विश्व में फसल उत्पादित पौधों के उद्भव वाले विश्व के दस केन्द्रों में से एक भारत को रखा जिसको आठ उपवर्गों में विभाजित किया इसे ''हिन्दुस्तान सेन्टर ऑफ ओरिजन'' कहा। भारतीय जैव विविधता को चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है –

(अ) मलयालम जैव विविधता – जो पूर्वी हिमालय की घाटियों में यहाँ वनों का आवरण अत्यधिक घना है तथा समुद्र तटीय क्षेत्रों में।

(ब) इथोपियन जैव विविधता – राजस्थान में जहाँ शुष्क वातावरण पाया जाता है।

(स) यूरोपियन जैव विविधता – उच्च हिमालयी क्षेत्रों में जो वर्ष के अधिकांश समय हिमाच्छादित रहते हैं।

(द) स्थानीय जैव विविधता – प्रायद्वीपीय पठारी क्षेत्रों में जहाँ सघन वनस्पतिक आवरण है।

भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र की जैव विविधता – यह क्षेत्र जंगलों से आच्छादित है जिससे इसको हरित भूमि भी कहते हैं। भौगोलिक दृष्टि से यह क्षेत्र भूटान, चीन, म्यांमार एवं बांग्लादेश की सीमाओं से जुड़ा है यहाँ की भौतिक संरचना पूर्वी हिमालय, पटकोई नागा, लुसाई, मेघालय, मिजोरम, नागालैण्ड, त्रिपुरा एवं सिक्किम हैं विभिन्न, भौगोलिक विभिन्नताओं में असम बाढ़ के मैदान वाला, सिक्किम में कंचन जंघा 8586 मीटर सर्वाधिक ऊँची पर्वत शिखर, विश्व का सर्वाधिक वृष्टि क्षेत्र मोसिनराम तथा चेरापूंजी अतः यहाँ की जलवायु नम उप उष्ण कटिबन्धीय है। अतुलनीय जैव विविधता स्रोत में आर्किड की 1300 प्रजातियों में से 800 यहाँ मिलती है, आदिम फूलों के पौधे–मैगनोलिया, पिलियामा एवं कस्टावी मिरीका एस्कलेन्टा इत्यादि। माँसाहारी पौधे–नेपेन्थिस, ख्यासियाना, लिलिअम, मैकलिनिया इत्यादि। यहाँ कुल क्षेत्रफल के अनुपात में मिजोरम (86.27%), अरुणाचल प्रदेश (79.96%), मणिपुर (77.69%), मेघालय (76.45%), नागालैण्ड (75.33%) त्रिपुरा (73.68%)। यहाँ लगभग 8000 फूलों की प्रजातियों में सें लगभग 800 आंर्किड, 58 बांस, 64 साइट्रस, 28 कार्निफर, 500 मौंस, 700 फर्न और 728 लीकेन की प्रजातियाँ हैं। विश्व के सबसे विकसित अल्पाइन वनस्पतियों में से एक है विश्व में सर्वोच्च समुद्र प्रजाति सम शीतोष्ण वनों में से एक चौड़ी पत्ती वाले समशीतोष्ण वन पूर्वी हिमालय में दिखते हैं। भारत में पाये जाने वाले फूलों के पौधों का लगभग 50 प्रतिशत यहाँ मिलते हैं अतः इसे ''फूलों के पौधे का गढ़'' कहते हैं। विश्व के सबसे बड़े परजीवी में सप्रिया हिमालयी ग्रिफ दुर्लभ वनस्पति भी मिलती है। कीट भक्षी पौधों में– नेपेथिस खासियाना केवल (मेघालय) में मिलती है इसे साइट्स की अनुसूची (ए) के साथ–साथ वन्य–जीव संरक्षण अधिनियम 1972 की अनुसूची छः में सूचीबद्ध किया गया। खाद्य–पौधों की 800 प्रजातियों में से 300 यहीं मिलती है जिसमें ओर्चिडेसी सबसे आर्कषक एवं विकसित पौधा भी यहीं पाया जाता है। वन उत्पाद की सबसे महत्वपूर्ण बेंत भारत की 60 प्रजातियों में 26 प्रजातियाँ यहाँ मिलती हैं और बाँस की 150 प्रजातियों (भारत) मे 63 यही मिलती है। इसके अतिरिक्त 25 प्रजातियों को दुर्लभ माना जाता है।

जन्तु विविधता – यहाँ लगभग 3624 प्रकार के कीट पतंगे, 236 प्रकार की मछलियाँ, 64 प्रकार के उभयाचर, 137 प्रकार के सरीसृप, 600 प्रकार के पक्षी तथा 160 प्रकार के स्तनधारी जीव मिलते हैं। दुर्लभ प्रजातियों में हलक, गोल्डन लंगूर कई प्रकार के बन्दर, चितकबरे तेदुएं, बर्फ में रहने वाले तेदुएं चमगादड़ एवं अनेकों जीव–जन्तु एवं भारत की कुल हाथियों की आबादी का 33% यहीं पर है। ग्रेट इंडियन राइनोसेरस (राईने काइरस यूनिकॉर्निस) अर्थात् एक सींग वाला गैंडा विश्व के सभी स्थानों एवं किस्मों के गैंड़ों से पूर्वोत्तर भारत के असम में कांजीरंगा मानस, पविताड़ा और ओरंग तक ही सीमित है। विभिन्न प्रकार के दरियाई घोड़े, चीनी पंगोलिन एवं विभिन्न प्रकार के हिरण यहाँ पाये जाते हैं। ब्रो. स्टेलर्ड डियर सिर्फ मणिपुर राज्य में ही पाया जाता है। जिनकों संगाई भी कहते हैं यह विश्व की सबसे दुर्लभ स्थानीय उप प्रजातियों में से एक है। 1951 में इसे विलुप्त घोषित किया गया लेकिन 1974 में पुनः लोकतक झील में एक 'फामड़ी' के ऊपर देखा गया। प्रथम जनगणना में इन्हें 14–18 के बीच में माना गया इसके उपरान्त निरन्तर वृद्धि होती गई जो वर्तमान में 150–200 (संगाई) होने का अनुमान है। लोकतक झील रामसर स्थल में परिवर्तित हो गई यह विश्व का सबसे नाजुक स्थल है। यहाँ सेरोगोरल और लाल गोरल भी मिलते हैं जिनकी संख्या तेजी से घट रही है। इसके अतिरिक्त प्राइमेट्स की 11 प्रजातियाँ मिलती हैं। अरूणाचल प्रदेश में 545 प्रजातियों में (12 प्रजातियाँ लुप्तप्राय, 16 असुरक्षित और 31 संकट ग्रस्त) एक अद्वितीय स्थिति बनाता है।

अण्डमान निकोबार – 572 द्वीपों का समूह बंगाल की खाड़ी में स्थित है जो म्यांमार के निग्रीयास अन्तरीय से 193 कि.मी. दूर स्थित है यहाँ की जलवायु नम, ऊष्ण कटिबन्धीय एवं तटीय है। कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 8249

वर्ग कि.मी. का 7,171 वर्ग कि.मी. भाग वनों से आच्छादित है। इन द्वीपों में 96 वन्य जीव अभ्यारण्य, नौ राष्ट्रीय पार्क तथा एक जैव संरक्षित क्षेत्र (बायो रिजर्व) है। स्तन पायी प्रजातियों में से 32 क्षेत्र विशेष में पायी जाती है।

पक्षी – इन द्वीपों में पक्षियों की 246 प्रजातियाँ एवं उपप्रजातियाँ मिलती हैं जिनमें से 99 जातियाँ एवं उपप्रजातियाँ क्षेत्र विशेष में पायी जाती हैं। सरीसृप की 76 प्रजातियों में 24 क्षेत्र विशेष में मिलती हैं। समुद्री जीव 1200 से अधिक प्रजातियाँ इकाइनोडर्म की 350, घोंघा (मोलस्का) समूह की 1000 तथा अन्य सूक्ष्म प्रजातियाँ (कशेरूकी प्राणियों में) मुख्यतः डयूगांग, डाल्फिन, व्हेल, खारे पानी की घड़ियाल, समुद्री कछुए तथा समुद्री सर्प इत्यादि मिलते हैं अभी तक 61 वर्गों की प्रवालों की 179 प्राजातियाँ मिली।

पश्चिमी घाट की जैव विविधता – यहाँ की पहाड़ियों का कुल क्षेत्र 1,60,000 वर्ग किलीमीटर है जिसकी औसत ऊँचाई लगभग 1200 मीटर (13900 फीट) है। प. घाट की लम्बाई ताप्ती नदी के मुहाने से लेकर कुमारी अन्तरीप तक लगभग 1600 कि.मी. है चौड़ाई पूरब–पश्चिम लगभग 100 कि. मी. है। इस क्षेत्र में फूलों की 500 से ज्यादा प्रजातियाँ, 139 स्तनपायी, 508 चिड़ियों की और 179 उभयचर प्रजातियाँ मिलती है। इनमें 84 से उभयचर, 16 चिड़ियों की, 7 स्तनपायी और 1600 फूलों की प्रजातियाँ मिलती है। जो विश्व में और कहीं नहीं है। इस क्षेत्र में सरकार द्वारा दो जैव संरक्षित क्षेत्र और 13 राष्ट्रीय उद्यान हैं। नीलगिरि बायो स्फियर रिजर्व का क्षेत्र 5500 वर्ग कि. मी. सदा हरा–भरा रहने वाला मैदानी पेड़ों का वन है। केरल का साइलेन्ट वैली राष्ट्रीय पार्क भारत का उष्ण कटिबन्धीय हरित वन है जहाँ अभी तक किसी ने प्रवेश नहीं किया। अगस्त 2011 में पश्चिमी घाट पारिस्थितिकी विशेषज्ञ समूह ने पूरे पश्चिमी घाट को पारिस्थितिकीय रूप से संवेदनशील क्षेत्र घोषित किया। कर्नाटक के ''सिरसी होनावरा'' वनों की लुप्त हो रही प्रजाति लायन टेल्ड मुकाम (एल. टी. एम.) का सबसे बड़ा बसेरा बताया गया है विशेषज्ञों के अनुसार यहाँ 638 बन्दरों के पाये जाने का अनुमान मिला सम्पूर्णतः इनकी संख्या 3500–4000 के मध्य ज्ञात हुई। पूर्वी घाट– नर्मदा अंचल जैव विविधता के दृष्टिकोण से समृद्ध एवं अद्वितीय है यहाँ (छत्तीसगढ़) साल, सागौन के वन साथ–साथ हैं। अचानकमार से पेंच तक तथा सतपुड़ा बोरी से मेलघाट तक फैले बाँध के दो बड़े क्षेत्रों का गढ़ पड़ता है जिसमें अनेकों प्रकार के दुर्लभ प्राणी और वनस्पतियाँ मिलती हैं जिसमें अनेको औषधीय वन गांवों की परम्परागत चिकित्सा पद्धति का महत्वपूर्ण अंग है। नर्मदा नदी का उद्‌गम स्थल अमरकंटक अपनी प्रचुर जैव विविधता के लिये विख्यात है। नर्मदा बेसिन के मध्य में स्थित पंचमढ़ी का पठार व छिंदवाड़ा जिले की पातालकोट घाटी भी जैव विविधता के लिये समृद्ध मानी जाती है। अमरकंटक के वनों में अनेक प्रकार के औषधीय पौधों की प्रचुरता है जिसमें गुल–बकावली का पौधा भी मिलता है इसका अर्क आंखों के रोगों में विशेषकर मोतियाबिन्दु के इलाज में काफी प्रभावकारी है। पंचमंढी क्षेत्र में लगभग 1200 वनस्पति प्रजातियाँ हैं जिनमें से कुछ की प्रकृति हिमालय पर्वत की और कुछ की पश्चिमी घाट की तरह है। यहाँ कई प्रकार के टेरीजेफाइट्स तथा औषधीय पौधे भी मिलते हैं जीवित जीवाश्म पौधों में साइलोटम न्यूडम के प्राकृतिक अवस्था में (मध्य प्रदेश) मिलने का एक मात्र स्थान है। टी फर्न साइथिया जाइजेन्टिआ व अन्य कई दुर्लभ फर्न प्रजातियाँ भी मिलती है दुर्लभ बाँस प्रजाति बेम्बुसा पाँली मीफा भी बोरी के वनों में पायी जाने वाली विशेषता है। नर्मदा घाटी दूसरा अति समृद्ध क्षेत्र है पठारों की ऊँचाई 300–400 मीटर गइराई में बसी पाताल कोट घाटी से नर्मदा नदी की सहायक दूधी नदी निकलती हैं यहाँ साल, सागौन एवं मिश्रित तीनों प्रकार के वन पाये जाते हैं जिनमें 83 वनस्पति कुलों की 265 से अधिक औषधीय प्रजाति मिलती है। नर्मदा घाटी शुष्क पर्णपाती वन को एक विशिष्ट पहचान देते हुए इको रीजन कोड 0207 आवंटित किया गया यह क्षेत्र रोजर्स और पवार (1988) द्वारा दिये गये जैविक भूवर्गीकरण के जैवीय अंचल 6 ई–सेन्ट्रल हाईलैण्ड्स से मिलता जुलता है। उत्तर में विन्ध्य एवं दक्षिण में सतपुड़ा पर्वत श्रेणियों से घिर 500 वर्ग कि. मी. से भी अधिक क्षेत्र में फैले इस अंचल को बाघ संरक्षण की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण क्षेत्र माना गया। स्तनधारी वर्ग के अन्य प्राणियों की 76 प्रजातियाँ पायी जाती हैं जिनमें बाघ गौर (बॉयसन) जंगली कृष्ण मृग आदि। 276 किस्म के पक्षी मिलते हैं इसके अतिरिक्त सरीसृपों, कीटों व अन्य जलीय

व स्थलीय प्राणियों की प्रचुर विविधता है। सतपुड़ा श्रेणी के वनों में वन्य जीव, प्राकृतिक सौन्दर्य, वनस्पतियों, वन्य प्राणियों एवं खनिजों की अपार सम्पदा से परिपूर्ण है। छत्तीसगढ़ राज्य मध्य प्रदेश के दक्षिण–पूर्व में एवं भौगोलिक क्षेत्रफल लगभग 135194 वर्ग कि.मी. है बाघों का सबसे अधिक शिकार मध्यप्रदेश में ही होता है।

पश्चिमी भारतीय मरुस्थल – इसका विस्तार अरावली से राजस्थान के पश्चिमी भाग तथा गुजरात तक है बिना सिंचाई वाले क्षेत्र में वनस्पति बहुत छोटी एवं बिखरी झाड़ियों के रूप में मिलती है।

पश्चिम हिमालय – इसका विस्तार कुमायूँ से कश्मीर के उत्तरी–पश्चिमी क्षेत्रों तक है (अ) उप–पर्वतीय अथवा निम्न क्षेत्र में उष्ण कटिबन्धीय एवं उपोष्ण कटिबन्धीय क्षेत्र जिसका विस्तार हिमालय के पाद प्रदेश से 1524 मीटर की ऊँचाई तक है यहाँ आम, कचनार तथा अमलताश के वृक्ष अधिक मिलते हैं कम ऊँचाई पर आंवला, झीगल तथा अमलताश मिलते हैं (ब) शीतोष्ण कटिबन्धीय एवं पर्वतीय क्षेत्र जो 1524 से 3354 मीटर की ऊँचाई तक विस्तृत है। 1829 मीटर की ऊँचाई तक शंकुधारी वृक्ष फैले, 1524 से 1829, 2286 से 2896 मीटर की ऊँचाई पर देवदार के वृक्ष, 2439 से 2744 मीटर की ऊँचाई पर साइप्रस के वृक्ष मिलते हैं। (स) अल्पाइन क्षेत्र में 3811 मीटर की ऊँचाई वृक्ष सीमा कहलाती है इसके बाद वृक्ष रहित क्षेत्र हैं। यहाँ सिल्वर, फर्न, जूनीपर, मूतिलिस के वृक्ष मिलते हैं, उत्तरी अल्पाइन 4573 मीटर की ऊँचाई पर रंग–बिरंगे फूल, घास एवं छोटे–छोटे पौधे उगते हैं।

संकटापन्न प्रजातियाँ – हमारी जैव विविधता खतरे में है संकटापन्न प्रजातियों की सूची रेड डेटा बुक में दी जाती है। इसके अनुसार (सन् 2000) 11,046 जातियाँ संकटापन्न स्थिति में है इनमें भी 1939 क्रन्तिक संकटाग्रस्त के रूप में सूची बद्ध है। भारत में 44 पादप प्रजातियाँ पूर्णतः संकटापन्न है। जन्तुओं की 113 जातियाँ संकटग्रस्त तथा 87 जातियाँ संकटापन्न हैं। जन्तुओं में 18 प्रजातियाँ क्रान्तिक संकटापन्न एवं 143 अति नाजुक है। यहाँ 400 पादप प्रजातियों को संकटापन्न प्रजातियों की श्रेणी में रखा गया मुख्यतः एलियोकार्पस, प्रूनी फोलियर्स, पेलाक्विटियम पॉली एन्थम, पाइनस जिरार्डियाना, पॉपुलस गेम्बली, पॉपुलस युफ्रोटिका, पाइकिया ब्रेकिटिला, एट्रोपा एकुमिनेट बोकीटियर्स बर्जी नियेटम, बेलेनोफोरा, इन्बोलुक्रेटा केम्पटिस टीटा, कोल्चीकम लुटियम, कॉर्डम, म्यूर्टेन्स, बायोस्केरिया प्रेजरी, निम्फिया पिग्मेटिका महीनिया जॉन सेरेन्सिस, कार्डुन्स मुटेना तथा रियम इमोडो आदि मुख्य हैं। आई. यू. सी. एन. ने भारत में 137 प्रजातियों को संकट ग्रस्त बताया इनमें 81 प्रजातियाँ स्तनधारी 38 पक्षियों की तथा 18 उभयचरों तथा सरीसृपों की हैं। स्तनधारियों में भाराल, बिसन, काला हिरण टोपीधारी लंगूर कैराकल, चिंकारा चीतल, लमचिन्ता तेंदुआ, केकड़ा भक्षी मैकाक, बारह सिंगा, गंगा डाल्फिन, वृहत गिलहरियाँ, सुनहरी बिल्ली, सुनहरा लंगूर, हिमालयी, काला भालू, हिमालयी सेही, हिमालयी टैहर, दृढ लोभी खरगोश, गिब्बन, हाइना, भारतीय हाथी, भारतीय सिंह, भारतीय पैंगोलिन, जंगली गधा, भेड़िया, कश्मीरी मृग, तेंदुआ या पेन्थर, लाल पाण्डा, सिंह पुच्छी मैकाक, लोरिन्स, मालाबार सिवेत, कस्तूरी मृग, नीलगाय, नीलगिरी, लंगूर तथा टैहर ऊदबिलाव सुअर, पुच्छ मैकाक, क्षुद्र सुकर, लाल लोमड़ी, गैंडा, सांभर, स्लॉथ, हिम तेंदुआ, अनूप मृग, तिब्बती लोमड़ी तथा जंगली गधा, बाघ, जंगली भैंस, जंगली कुत्ता, जंगली सुअर तथा जंगली याक। उभयचरों में हिमालयी न्यूट तथा टोड। सरीसृप में ज्वारन दुमुखी, घड़ियाल, चर्मिल, कूर्म, कच्छ, मॉनीटर, छिपकलियाँ तथा अजगर। पक्षियों में चीयर फेजेण्ट, वृहद भारतीय हुकना तथा धनेश, जर्डन का क्षिप्रचला, बड़े बाज, पर्वतीय बटेर, मोर, गुलाबी सिर वाली बत्तख तथा साइबेरियाई सफेद सारस आदि है। एल. टी. एम. को इन्टरनेशनल यूनियन फॉर कंजरवेशन ऑफ नेचर एण्ड नेचुरल रिसोर्सेज (आइ. यू. सी. एन.) ने रेड डाटा लिस्ट में रखा जो लुप्त होने का द्योतक है। मकॉक को खाद्य सम्बन्धी आदतों में बहुत चुनिन्दा, देर से लैंगिक व्यस्कता और बच्चों को जन्म् देने के दौरान लम्बे अन्तराल के कारण लुप्त हो रही प्रजाति की श्रेणी में रखा।

वन्य जीव पादपों की लुप्त प्रायः प्रजातियों में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर समझौते के अनुबन्ध 1 में सूचीबद्ध है मार्च 2018 में नागालैण्ड के पेरेन जिले में नये जल स्ट्राइडर, टिल मोरा नागालैण्ड, जेहमलार एण्ड चन्द्रा की खोज हुई अब तक लगभग 1.5 लाख प्रजातियों की खोज हुई।

जैव विविधता संरक्षण – भारत वर्ष में प्रति वर्ष वनों की कटाई की दर 13000 वर्ग कि.मी. है। वनों की कटाई एवं पर्यावरण प्रदूषण के कुप्रभावों के कारण जैव विविधता में निरंतर कमी हो रही है। वनों एवं प्राकृतिक सम्पदा तथा उसकी जैविक परिपूर्णता को सुरक्षित रखने के लिये। वायु मण्डल में उपस्थित ओजोन स्तर के विघटन, अम्ल वर्षा एवं पृथ्वी के बढते हुए तापक्रम पर नियंत्रण करने हेतु। भोजन, रेशे, ईंधन, एवं अन्य आवश्यक सामग्रियों की पूर्ति हेतु एवं नई हर्बल औषधियों, पोषण सम्बन्धी आवश्यकताओं तथा पूरक भोजन प्राप्त करने हेतु।

उपाय – इन. सीटू संरक्षण का उपयोग संकटापन्न जातियों को संरक्षण इस पद्धति के द्वारा जैविक विविधता वाले क्षेत्रों एवं क्षेत्रफल की सुरक्षा की जाती है जो मानवीय हस्तक्षेप के बिना संरक्षण दिया इसके प्रयोग से भारत में 92 राष्ट्रीय पार्क तथा 500 वन्य जीवन के अभ्यारण्यों का निर्माण एवं विकास। एक्स सीटू संरक्षण – इसमें जीवों और पेड़ पौधों का संरक्षण उनके मूल निवास से दूर किया जाता है। भारत वर्ष में 33 वानस्पतिक उद्यान, 33 विश्वविद्यालय जैविक उद्यान, 107 चिड़ियाघर, 34 मृग उद्यान, 24 प्राकृतिक प्रजनन केन्द्र कार्यरत हैं। आनुवांशिक रूप से संशोधित उत्पादों के निर्यात व्यापार को नियमित करने के लिये 29 जनवरी 2000 को 86 देशों के हस्ताक्षर द्वारा इस जैव सुरक्षा समझौता को स्वीकृति मिली जिसे कार्टाजेना–प्रोटोकॉल के नाम से जाना जाता है।

भारत में वन्य जीव संरक्षण – इनमें मद्रास वाइल्ड एलीफैन्ट प्रिजर्वेशन एक्ट (1873), आल इण्डिया एलीफैन्ट प्रिजर्वेशन एक्ट (1899), द वाइल्ड बर्ड्स एण्ड एनीमल्स प्रोटेक्शन एक्ट (1912), बंगाल राइनोसर्स प्रिजर्वेशन एक्ट (1932) प्रमुख है।

केन्द्र सरकार ने वन्य जीवन संसाधनों के संरक्षण हेतु 1949 में वन्य जीवन केन्द्रीय परिषद का गठन किया है। बॉम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसाइटी की स्थापना 1883 में मुम्बई में हुई– भारत सरकार तथा श्रीलंका के पादप एवं प्राणिजात के संग्रह एवं अन्वेषण से सम्बन्धित कार्य करती है। यह राष्ट्रीय गैर सरकारी संस्था हैं। भारतीय वन्य जीव परीक्षण सोसाइटी की स्थापना 1958 में देहरादून में की गई जो राष्ट्रीय गैर–सरकारी संस्था है। जूलोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया की स्थापना 1961 में कोलकाता में की गयी। भारतीय वन्य जीवन बोर्ड 1972 में वन्य जीव संरक्षण अधिनियम। भारत का वन्य जीव संस्थान 1982 में देहरादून में की गई। मनुष्य की दखलन्दाजी एवं पर्यावरण के कारण सन् 2010 को जैव विविधता का अन्तर्राष्ट्रीय वर्ष घोषित किया गया। देश में (2009) 89 राष्ट्रीय उद्यान, 490 अभ्यारण तथा 13 जैव मण्डलीय आरक्षित क्षेत्रों की स्थापना की जा चुकी हैं।

संदर्भ संकेत

1. भारत का वृहत भूगोल – ''डॉ. चतुर्भुज मामोरिया और डॉ0 जे0पी0 मिश्रा
2. www Pib. nic. in
3. www tripurabiodiversity board.in
4. Chronicel July 2016 P.152
5. ENVIS Councits
6. State of Forest. Report 2017
7. Yojana April 2018 P.n. 51
8. Assam Tourism
9. www. moef.nic.in
10. Annual Reports of Goverment of India.
11. www. nbaindia.org.(GOI).
12. Civil Services Cronical August 2009 P.56
13. Geography Dr. Mamoriya & Dr. Sisodia.

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

वर्तमान सदी में अंतर्राष्ट्रीय राजनीति और भारत–एक मूल्यांकन

डॉ0 भावना यादव
सहायक प्राध्यापक–राजनीति विज्ञान विभाग
शासकीय स्वशासी कन्या स्नाताकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय,सागर (म.प्र.)

अंतर्राष्ट्रीय राजनीति की दृष्टि से वर्तमान सदी परिवर्तन की सदी मानी जा सकती है, क्योंकि इसके पहले शक्ति संतुलन, सामूहिक सुरक्षा, उपनिवेशवाद आदि सिद्धांतों की प्रमुखता थी। वहीं आज वैश्वीकरण, उदारीकरण, मुक्त पूँजी, आर्थिक विकास जैसे सिद्धांतों को महत्व दिया जा रहा है। फलस्वरूप अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में विभिन्न देशों के आपसी संबंधों का स्वरूप बदल रहा है। भारत भी इन परिवर्तनों से अछूता नहीं है। वास्तव में किसी देश के संबंध अनायास ही नहीं बनते, वरन् उन संबंधों के निर्माण में कुछ तत्व प्रभावशाली भूमिका का निर्वहन करते हैं। किसी भी देश के अन्य देशों से संबंधों का संचालन उस देश की विदेश नीति द्वारा किया जाता है जो उस देश का अन्य देशों के प्रति राजनीतिक व्यवहार है। इस व्यवहार का निर्धारण उस देश का इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीतिक विचारधारा, नेतृत्व या व्यक्तित्व, सैनिक शक्ति या सुरक्षा आदि मिलकर करते हैं। भारत की विदेश नीति भी इसका अपवाद नहीं है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत ने जो दृष्टिकोण अपनाया वह उसके अतीत के आदर्शों पर आधारित था। फलस्वरूप सहयोग शांति और मैत्री के लक्ष्यों को समाहित करती नीति पंचशील, गुटनिरपेक्षता और शांतिपूर्ण सहअस्तित्व के सिद्धांतों पर आधारित थी।

स्वतंत्र भारत ने उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद का विरोध तथा अपने पड़ोसी देशों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध निर्माण की घोषणा की, परंतु शीतयुद्ध के प्रारंभ, द्विध्रुवीय व्यवस्था के उद्‌भव व भारत से अलग हुए पाकिस्तान द्वारा पूँजीवादी गुट के समर्थन ने भारत के समक्ष नई चुनौतियों को जन्म दिया। परिणामस्वरूप गुटनिरपेक्षता की नई नीति का निर्माण हुआ। आज शीतयुद्ध समाप्त हो चुका है, जर्मनी के एकीकरण, सोवियत संघ के विघटन तथा विचारधाराओं के संघर्ष के अंत की घोषणा के साथ ही अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का एक अध्याय पूर्ण हो चुका है। फिर भी गुटनिरपेक्षता, पंचशील शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व और मैत्रीपूर्ण संबंधों की नीति अब भी भारतीय नीति का मूलाधार बनी हुई है और इसने अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में भारत की स्थिति को और अधिक मजबूत किया है।

किसी भी देश की विदेश नीति उसकी ऐतिहासिक परम्पराओं, दार्शनिक विरासतों, सांस्कृतिक विशिष्टताओं एवं भौगोलिक स्थिति से निर्धारित होती है। भारत भी इसका अपवाद नहीं है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत ने जो नीति अपनाई वह उसके अतीत के आदर्शों से निर्धारित हुई शांति, सहयोग और मैत्री के लक्ष्यों को समर्पित यह नीति गुटनिरपेक्षता पंचशील और शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व आदि सिद्धांतों पर आधारित थी। समयानुसार भारत की विदेश नीति ने अपना स्वरूप बदला और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत को प्रमाणित करते हुये भारत के विकास की दिशा का निर्धारण किया।

यह सच है कि समय–समय पर पड़ोसी देशों का आक्रमण हमारी विदेश नीति की प्रभावशीलता पर प्रश्नचिह्न लगाता है। साथ ही पिछले कुछ समय में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एक सुदृढ़ और सशक्त भारत की छवि का निर्माण करने में भी हम प्रायः सफल नहीं हो पाये हैं। ऐसे में सरकार और नेतृत्व परिवर्तन से अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में हमारी अपेक्षायें भारत के विकास के साथ विश्व गुरू प्रभावशाली सशक्त राष्ट्र की छवि निर्माण की हो जाती है।

वास्तव में विदेश नीति के निर्माण में कई तत्वों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, इन तत्वों में राजनैतिक व्यवस्था का विदेश नीति निर्धारण में प्रत्यक्ष प्रभाव होता है। प्रत्येक देश की तरह भारत में राजनीतिक व्यवस्था का एक सुनिश्चित स्वरूप और कार्यविधि रही है। भारत में संसदीय शासन प्रणाली है तथा लोकतंत्र में गहरी आस्था के कारण विदेश नीति के निर्धारण में लोकतांत्रिक व्यवहार का प्रभाव स्वाभाविक है। यही कारण है कि हमने स्थिरता के साथ–साथ आवश्यक लचीलेपन के साथ अपनी विदेश नीति के स्वरूप का निर्धारण किया। पं. जवाहरलाल नेहरू के अनुसार ''किसी भी देश की विदेश नीति की आधारशिला उसके अंतर्राष्ट्रीय हित की सुरक्षा होती है और भारत की विदेश नीति का भी ध्येय यही है।''

विदेश नीति को महत्वपूर्ण मानते हुये भारतीय संविधान में भारत की विदेश नीति के लक्ष्यों को बताया गया है। ''भारतीय संविधान की धारा 51 में विदेश नीति का निर्देशन करते हुय चार आदर्शों का वर्णन इस प्रकार किया गया है – (क) अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की अभिवृद्धि का। (ख) राज्यों के बीच न्यायसंगत और सम्मानपूर्ण संबंधों को बनाये रखने का। (ग) संगठित लोगों के एक–दूसरे व्यवहारों में अंतर्राष्ट्रीय विधि और संधि बाध्यताओं के प्रति आदर बढ़ाने का, और (घ) अंतर्राष्ट्रीय विवादों के मध्यस्थता द्वारा निपटारे के लिये प्रोत्साहन देने का प्रयास करेगा।''[1]

इन्हीं लक्ष्यों के साथ भारत की विदेश नीति पर पं. जवाहरलाल नेहरू, श्रीकृष्ण मेनन, राममनोहर लोहिया, श्रीमती गाँधी, राजीव गाँधी, इन्द्रकुमार गुजराल, अटल बिहारी वाजपेयी के व्यक्तिगत विचारों का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। जहाँ नेहरू एक भावुक राजनीतिक थे जो चीन के साथ व्यवहार में धोखे का शिकार हुये वहीं श्रीमती गाँधी अधिक व्यवहारिक थी इसीलिये सिक्किम के विलय, बांग्लादेश के निर्माण और पोखरण विस्फोट जैसे भारत में लोकप्रिय परंतु पड़ोसी व विदेशियों को शंकित करने वाले कदम उठा पायीं। लाल बहादुर शास्त्री, मोरारजी और वाजपेयी जी ने पड़ोसी के प्रति अधिक ध्यान देकर विदेश नीति को तत्थपरक और व्यवहारिक बनाया। वहीं राजीव गाँधी ने विदेश नीति को आर्थिक विचारों के अनुरूप मोड़कर पूँजीवादी के प्रति सहिष्णु बनाया, तो नरसिम्हा राव ने राजीव गाँधी की विदेश नीति को जारी रखा। अटल बिहारी वाजपेयी ने भारत को महाशक्ति बनने हेतु 1998 में पोखरण में आणविक विस्फोट को हरी झण्डी दिखाई। उन्होंने कारगिल युद्ध में विजय पायी, साथ ही लाहौर बस यात्रा व मुशर्रफ के साथ आगरा शिखरवार्ता में कूटनीति का परिचय देकर नेहरू, गाँधी के समान कुशल राजनीतिक होने का प्रमाण दिया। मनमोहन सिंह ने एल.पी.जी. के दौर में आर्थिक विचारों को बढ़ावा दिया। तो नरेन्द्र मोदी ने अपने कार्यकाल के शुरूआती दौर में ही भारत को उभरती शक्ति के रूप में विश्व में स्थापित करने हेतु अपनी विदेश यात्राओं से संकेत देने शुरू कर दिये हैं।

वास्तव में ''आज विश्व जिस ग्लोबल युग में है, वहाँ सम्बद्धता और प्रतियोगिता के साथ–साथ कुछ खास तरह की महान चालें भी काम करती रहतीं हैं, जो कि किसी देश की हैसियत और ताकत की परीक्षा के लिये जरूरी भी होती है। ऐसे में किसी देश के सफल होने के लिये यह जरूरी है कि नेतृत्व अपनी घरेलू नीतियों का निर्धारण व संचालन करने के साथ–साथ विदेश नीति के विषय पर भी बेहद गंभीर और प्रगतिशील हो। मगर पिछले कुछ वर्षों अथवा यूँ कहें कि दशको से विदेश नीति के मोर्चे पर भारत के नाम कोई भी खास उपलब्धि नहीं हैं। यही नहीं, भारत धीरे–धीरे सॉफ्ट स्टेट की स्थिति तक पहुँच गया। अगर भारत दुनिया में एक निर्णायक भूमिका निभाना चाहता है, तो उसे अपनी कूटनीतिक क्षमता और दुनिया के प्रति विजन का प्रदर्शन करना होगा।''[2]

उक्त संदर्भ में बात लक्ष्यों और व्यक्तित्व से आगे राष्ट्रीय विकास किसी भी राष्ट्र के वैश्विक पटल पर उत्थान और पतन का कारण उसकी विदेश नीति होती है। जहाँ राष्ट्रों के आपसी हितों में समानता होने पर मजबूत मैत्री संबंध बनते हैं वहीं हितों के टकराव संघर्ष का कारण भी बनते हैं। विदेश नीति का संचालन विभिन्न साधनों यथा युद्ध, संधि, बहिष्कार, प्रचार, यात्रा, चेतावनी, आर्थिक व्यापारिक संबंधों आदि आदि से किया जाता है। भारत के

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने अपने शपथ ग्रहण समारोह में पड़ोसी दक्षिण एशियाई देशों के प्रमुखों को आमंत्रित कर अपने कार्यकाल के प्रारंभ में ही यह संकेत दे दिया कि नई सरकार की विदेश नीति परस्पर सहयोग की भावना पर आधारित होगी। अपनी पहली विदेश यात्रा छोटे से पड़ोसी देश भूटान से प्रारंभ कर मोदी जी ने पड़ोसी देशों के प्रति भारत की मित्रता और घनिष्टतापूर्ण नीति का प्रारंभ किया।

मोदी जी की ''अमेरिका यात्रा और संयुक्त राष्ट्र संघ के उनकी उपस्थिति को मिलाकर, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि देश की विदेश नीति को उन्होंने एक नई धार दी है। यह धार इतनी स्पष्ट रही कि पूरी दुनिया समझ गई होगी कि नरेन्द्र मोदी की विदेश नीति किस दिशा में जा रही है। इसको ठीक से समझने के लिये हमें मोदी के अब तक के पूरे कार्यकाल की विदेश नीति को देखना होगा। भारत उपमहाद्वीप से बाहर उन्होंने अपनी पहली विदेश यात्रा के लिये जापान को चुना था। वह एशिया प्रशांत क्षेत्र में अमेरिका, चीन को घेरने की जो रणनीति बना रहा है, उसका खास अंग है। इसके बाद आस्ट्रेलिया के प्रधानमंत्री भारत आये। यह देश भी अमेरिका का साथी है। जापान में प्रधानमंत्री ने इशारों ही इशारों में चीन को कठघरे में खड़ा कर दिया था, यह भी साफ हुआ कि हम रूस का साथ नहीं छोड़ेगें ..... इतना ही नहीं उन्होंने इस्त्रायली प्रधानमंत्री बेजोमिन नेतन्याहू से मुलाकात भी की। यह वह काम है, जिसको करने की भारत के प्रधानमंत्री हिम्मत नहीं जुटा पाते हैं। ..... इन्हीं सब कारणों से भारतीय विदेश नीति की दिशा साफ होने लगी है।''[3] परंतु ''यदि प्रधानमंत्री मोदी चाहते हैं कि उनकी विदेश नीति मौलिक हो तो उसकी लगाम उन्हें खुद थामनी होगी। विदेश मंत्री वे चाहे जिसे बना दें, यह स्पष्ट है कि सत्तारूढ़ नेताओं में कोई भी उसका विशेषज्ञ नहीं है। अब तक जिन चार प्रधानमंत्रियों ने भारत की विदेश नीति को ढाला है – नेहरू, इंदिरा, नरसिंहराव और वाजपेयी उनके विदेश मंत्री चाहें जो भी रहे हों, विदेश नीति के मूलभूत सिद्धांतों का निर्धारण और संचालन उन्होंने स्वयं किया है।''[4] यहाँ यह भी महत्वपूर्ण है कि विदेश नीति के मोर्चे पर भारत से विगत में जो कुछ भी किया वह बहुत कम है।

''यदि कोई भारतीय विदेश नीति और सुरक्षा नीति को लेकर संपूर्ण सरकार के पिछले दस वर्षों के कार्यकाल पर विचार करेगा तो उसे हर तरफ टूटे और बिखरे हुये भग्नावशेष नजर आयेंगे। चीन ने जहाँ विवाद के मसलें पर दबाव बढ़ा दिया है तो वाशिंगटन के साथ गिरते हुए नजर आते हैं, रूस की नजरें कहीं और हैं तो यूरोपीय संघ हमसे निराश है। हमारी सशस्त्र सेनाओं का मनोबल गिरा हुआ है, दूसरे और माओवादी पूरे देश में जड़ें जमाने के साथ अपना विस्तार करने में सफल रहे हैं। पाकिस्तान के साथ शांति प्रक्रिया भी रूकी हुई है। वक्त का रूख बदला हुआ है और हर कही असुरक्षा का वातावारण है।''[5] इतना ही नहीं बदलते वैश्विक परिदृश्य के साथ इन चुनौतियों और समस्याओं के साथ और भी अंतर्राष्ट्रीय संबंध विदेश नीति को प्रभावित कर रहे हैं। यह सच है कि ''अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य ऊपर–नीचे होता रहता है, लेकिन क्षेत्रीय राजनय के मामले में नेपाल, पाकिस्तान व मालदीप से हमारे रिश्ते चिंता का विषय है। आज नेपाल, चीन की गोद में जाने को आतुर है। नए नेपाली प्रधानमंत्री खड्ग प्रसाद शर्मा ओली ने कहा है – छोटे देश की संप्रभुता छोटी नहीं होती। हमारे प्रधानमंत्री ने ओली को तत्काल न्यौता देकर दूरदर्शी राजनय का परिचय दिया है। हमारे तमाम सद्प्रयत्नों के बावजूद पाकिस्तान से हमारा अनबोला है। फिर भी हमारी विदेश नीति में इस झगड़ालू पड़ौसी से संबंध सुधारने के लिये काफी जगह बनी रहती है। इधर, अफगास्तिान में हम पाक को लेकर संतुलन नहीं बैठा पाए हैं। मालदीप के राष्ट्रपति अब्दुल्ला यमीन ने हमारी विदेश मंत्री से कहा कि उनकी सरकार घरेलू मामलों में विदेशी दखल बर्दाश्त नहीं करेगी। यह कहकर उन्होंने अपने नायाब को चीन भेज दिया। याद रहे कि मालदीप ने चीन को अपने यहाँ जमीन खरीदने की अनुमति दे दी है। ऐसा नहीं है कि भारत इस अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य से नावाकिफ है।''[6]

वर्तमान में विश्व राजनीति का नया युग प्रारंभ हुआ है जिसमें पूँजीवादी विचारधारा को सर्वोपरि माना जा रहा है। साम्यवादी चीन भी इससे अछूता नहीं रह सका और समय के साथ परिवर्तनों के द्वारा आज के वैश्विक

पटल पर विकसित राष्ट्र के रूप में उभरा है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का नया दौर प्रारंभ हुआ है। भारत के प्रधानमंत्री जी की विदेश यात्राओं ने भारत के अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की पुनर्स्थापना आरंभ की है। आज हर भारतीय की अपेक्षा इन विदेश यात्राओं से बने संबंधों के आगे भारत के विकास के उस मार्ग की ओर है जो भारत को संपूर्ण रूप से सशक्त कर विश्व परिदृश्य पर गौरवपूर्ण स्थान पर स्थापित कर सके।

सम्भवतः इसी कारण प्रधानमंत्री मोदी ने अपने शपथ ग्रहण में सारे देशों के प्रमुखों को आमंत्रित किया और मात्र सत्रह माह के शासन में दो दर्जन से ज्यादा विदेश यात्राएँ करके अंतर्राष्ट्रीय मंच पर भारत को पुनर्स्थापन की दिशा में कदम बढ़ा दिये हैं। परंतु हमें आवश्यकता है कि हम विश्व में अपनी भूमिका को जानें और उसके अनुरूप विदेश नीति के दृष्टिकोण को बनायें, जिससे हमारे हितों की पूर्ति सुरक्षात्मक तरीकों से संभव हो। आज मोदी जी की यात्राओं से जो अवसर हमें मिल रहे हैं इन्हें अपने पक्ष में उपयोग कर पाने की रणनीति तय करना होगी, तभी हमारे अंतर्राष्ट्रीय संबंध हमें लंबे समय तक विकास में सहयोग दे पायेंगे।

संदर्भ संकेत

1. डॉ. एस.पी. सिंहल – भारत की विदेश नीति, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, पृ. 54–55
2. राज एक्सप्रेस – संपादकीय, डॉ. रहीस सिंह, 22 अप्रैल, 2014, पृ. 4
3. राज एक्सप्रेस – डॉ. डी.बी. कुभंज, 3 अक्टूबर, 2014, पृ. 4
4. दैनिक भास्कर – वेदप्रताप वैदिक, 24 मई 2014, पृ. 8
5. दैनिक जागरण – हर्ष वी. पंत, 4 अप्रैल 2014, पृ. 6
6. राज एक्सप्रेस – घनश्याम सक्सेना, 19.10.2015, पृ. 4

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

चरणबद्ध आत्मनिर्भरता : चीन के संदर्भ में

डॉ. प्रतिमा गंगवार
एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्षा राजनीति विज्ञान विभाग
जे.डी.वी.एम. पी.जी. कॉलेज, कानपुर

आत्मनिर्भर राष्ट्र ही संप्रभुता, स्वाभिमान और स्वाधीनता का आनंद पाते हैं। चीन से सीमा–विवाद के बीच भारत में आत्मनिर्भरता का प्रश्न आज बहुचर्चित विषय है। हमारे वर्तमान प्रधानमंत्री ने विगत मई में ही देश को आत्मनिर्भर बनाने का अभियान आरंभ कर दिया था। फिर गलवान घटनाक्रम में चीनी धोखेबाजी के चलते भारतीय सैनिकों के शहीद होने और वास्तविक नियंत्रण रेखा पर चीनी धृष्टता के कारण सम्पूर्ण देश में इस पड़ोसी देश के प्रति आक्रोश की लहर के साथ चीनी वस्तुओं का बहिष्कार आरंभ हो गया। चीनी उत्पादों का बहिष्कार उन्माद के स्तर पर है। निःसंदेह राष्ट्र के सच्चे नागरिकों में यह भाव आना बहुत स्वाभाविक है किन्तु क्या चीन से सभी तरह के आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध तोड़ना बुद्धिमानी होगी? नहीं। वस्तुतः हमें चीन से चरणबद्ध आत्मनिर्भरता की आवश्यकता है। हमारे कुल आयात का 13 प्रतिशत चीन से ही आता है जबकि हम चीन को निर्यात करते हैं, मात्र 5 प्रतिशत। चीन के विश्व भर से कुल आयात में भारत की केवल 1 प्रतिशत भागीदारी है। अर्थात वह 99 प्रतिशत वस्तुएं अन्य देशों से लेता है। हम चीन को 1600 करोड़ अमेरिकी डॉलर का निर्यात करते हैं, जबकि आयात करते हैं, 6000 करोड़ अमेरिकी डॉलर का। भारत में ऑटोमोबाइल, फार्मेसी, फर्टिलाइजर, आइ.टी. व पावर सेक्टर का उत्पादन चीन के कच्चे माल पर टिका है। हमारे आइ.टी. और टेली कम्यूनिकेशन सर्विसेज में भी चीन की बड़ी भागीदारी है। यदि हम इन सेवाओं को अचानक बन्द कर देते हैं तो हम ही अधिक प्रभावित होंगे। ऐसे में उचित बात है–

'धीरे–धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आए फल होय।।'

अतः कुछ कार्य धीरे–धीरे चरणबद्ध तरीके से करने के बाद ही प्रभावी परिणाम देते हैं। द्विपक्षीय कारोबार में मिली चीनी बढ़त को हम ऐसे ही धीरे–धीरे घटाव में बदलकर विभिन्न क्षेत्रों में आत्मनिर्भर हो सकते हैं। इसके लिये आवश्यक है कि चौथी औद्योगिक क्रांति पर मजबूती से आगे बढ़ा जाये। इंटरनेट ऑफ थिंग्स, रोबोटिक्स, आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस, मशीन लर्निंग के क्षेत्र में शोध बढ़ाए जायें। इंटरनेट ऑफ थिंग्स का प्रयोग करके शोध को बढ़ावा दें। चीन को मात देने हेतु टेली कम्यूनिकेशन, बंदरगाह व सड़कों के ढांचों का सुधारीकरण आवश्यक है। ग्लोबल वैल्यू चेन और ग्रामीण क्षेत्रों में उद्यमिता के अवसरों को बढ़ाकर ही समृद्धि लाई जा सकती है। चीन ने यही मॉडल 1978 में अपनाया और ग्रामीण क्षेत्रों में उत्पादकता बढ़ानी शुरू कर दी। चीन ने 1980–90 के दौरान जी. डी. पी. पर मैन्युफैक्चरिंग सेक्टर का शेयर हमसे दोगुना कर लिया। हमारा शेयर बढ़ने के बजाय घटा। 1991 में हम विश्व व्यापार संगठन के सदस्य बने। थ्री–ई अर्थात् इलेक्ट्रानिक्स, इंजीनियरिंग और इलेक्ट्रिकल्स के बल पर ग्रामीण अर्थव्यवस्था खड़ी की। परिणाम यह हुआ कि वैश्विक बाजार में 1–2 प्रतिशत की कारोबारी में पार्टनर बनकर हमारे साथ खड़ा चीन 13 प्रतिशत शेयर पर पहुँच गया और हम 1–2.5 प्रतिशत पर ही रह गये। हमारी निर्भरता बढ़ती गई और चीन आत्मनिर्भर बनता गया।

अब भारत को भी ग्रामीण अर्थव्यवस्था मजबूत करनी होगी। हमारे देश में कोरोना से जितना शहरी क्षेत्र प्रभावित है, उतना ग्रामीण नहीं। हम यहां हैंडलूम, डेयरी, मोबाइल, रिपेयरिंग, रूरल बी वी ओ, जैसे उद्योगों को

बढ़ावा दें। अमेरिका, आस्ट्रेलिया, रूस, जापान, ब्रिटेन जैसे देशों के साथ मिलकर ग्लोबल एलायंस बनाएं। भारत के शीर्ष व्यापारिक देशों के साथ व्यापार समझौते नहीं हैं। ऐसे में वर्तमान व्यापार वार्ताओं पर फिर से विचार करने की आवश्यकता है, जिससे उन देशों के साथ व्यापार को बेहतर किया जा सके। हमें प्रत्येक परिस्थिति में डब्ल्यू. टी. ओ. और उससे जुड़ी संस्थाओं के साथ चलना होगा। इससे भयभीत होने की आवश्यकता नहीं कि टैरिफ घटा देंगे तो हानि होगी। मुक्त व्यापार आरंभ करते वक्त भी बाहरी कंपनियों का डर था लेकिन इसका हमारी अर्थव्यवस्था पर कोई नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ा। अतः नये शुल्क लगाने का शार्ट टर्म प्लान तो हो सकता है, लेकिन लंबे समय के लिए यह रणनीति उचित नहीं है।

चीन से आयात किये जाने वाले वर्तमान विश्लेषण से अध्ययन में सामने आया कि भारत के 40 उपक्षेत्र ऐसे हैं जिनमें चीनी आयात पर निर्भरता कम करने की अपार संभावनाएँ हैं। इन क्षेत्रों की चीनी आयात में भागीदारी 33.6 अरब डॉलर है। इन क्षेत्रों द्वारा किये जाने वाले आयात का एक चौथाई का घरेलू मैन्यूफैक्चरिंग में बिना निवेश के विकल्प तलाशा जा सकता है। यदि भारत इन चालीस उपक्षेत्रों के आयात का घरेलू विकल्प तलाशता है तो इससे चीन को जाने वाली धनराशि बचेगी जो देश की जी.डी.पी. का 0.3 प्रतिशत होगी। इसका हमारी अर्थव्यवस्था पर महत्वपूर्ण प्रभाव होगा। इससे न केवल घरेलू कम्पनियों के राजस्व में वृद्धि होगी, बल्कि इससे उद्योगों पर भी सकारात्मक प्रभाव दिखेगा तथा रोजगार की संभावनाएँ बढ़ेंगी। वित्तीय वर्ष 2020 में चीन से भारत का कुल आयात 65.1 अरब डालर रहा और निर्यात 16.6 अरब डॉलर किया गया। इसके चलते कारोबारी घाटा 48.5 अरब डॉलर है। भारत के कारोबारी घाटे में समग्र रूप से 30 प्रतिशत भागीदारी चीन से आयात की है। विगत तीन दशक के दौरान भारत के चीन निर्यात की वार्षिक वृद्धि 30 प्रतिशत रही जबकि आयात 47 प्रतिशत की दर से बढ़ा है।

वर्तमान स्वास्थ्य संकट ने भारत की आम जनता की क्रय शक्ति को घटा दिया है, क्योंकि उनकी दरें अपेक्षाकृत उच्च कीमतों के साथ अच्छी गुणवत्ता वाले उत्पादों को वहन करने के लिए आर्थिक स्थिति मजबूत नहीं है। भारतीय कंपनियाँ चीन के सस्ते उत्पादों के विकल्प के लिए तैयार नहीं है। वे कब तक गुणवत्ता के आवश्यक स्तर को प्राप्त करेगी। इसकी महामारी के बीच गणना करना मुश्किल है। महामारी के दौरान वैकल्पिक फंड जुटाने या महामारी के बाद की मंदी की स्थिति उनके लिए बेहद चुनौतीपूर्ण हो जाएगी।

वस्तुतः स्वास्थ्य और सुरक्षा जैसे दो संकटों ने वैकल्पिक मूल्य श्रृंखला और चीन पर निर्भरता धीरे–धीरे समाप्त करने की आवश्यकता को जन्म दिया है। घरेलू और निर्यातोन्मुख प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में रणनीतिक और व्यवस्थित निवेश के लिए प्रभावी माँग और रोजगार उत्पन्न करने के लिए तकनीक, बुनियादी ढाँचे आदि की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त एंटी–डंपिंग काउंटरवेलिंग ड्यूटी (सीवीडी), सेफगार्ड ड्यूटी और नॉन–टैरिंग उपायों जैसे उत्पत्ति के नियम सैनिटरी और फाइटोसैनेटिंग उपायों और व्यापार में तकनीकी बाधाओं को लगाना चीन के साथ व्यापार घाटे से निवृत्त होने के लिए अल्पमत में सहायक सिद्ध हो सकेंगे।

आज भी हमारी प्रति व्यक्ति वार्षिक आय 2500 अमेरिकी डॉलर ही है जबकि चीन में यही दर 10 हजार डॉलर है चीन का सकल घरेलू जी.डी.पी. 132 अरब अमेरिकी, डॉलर है, जबकि हमारा केवल 28 अरब डॉलर ही हैं। चीन को बिजली की बहुत अधिक आवश्यकता है। इसलिये हमें सरसों, जैट्रोफा व मक्के की खेती को बढ़ावा देने की जरूरत हैं, जो कि ईंधन के बड़े स्रोत हैं। इससे हम ऊर्जा के क्षेत्र में सशक्त हो जायेंगे। चीन से फ्री ट्रेड का घाटा रोकने के लिये भारत पहले ही रीजनल कांप्रिहेंसिव इकोनोमिक पार्टनरशिप रदद् कर चुका है। हमें चीनी उत्पादों पर अतिरिक्त शुल्क लगाने के बजाय संयुक्त राष्ट्रसंघ, विश्व व्यापार संगठन व विश्व स्वास्थ्य संगठन को मिलाकर एक नया वर्ल्ड ऑर्डर बनाने की आवश्यकता है, जिससे ट्रेड बढ़े। अवसर अच्छा है, चीन की स्थिति और साख ठीक नहीं है। यदि हम भावनात्मक रूप से नहीं, बल्कि धैर्यपूर्वक तकनीकी मजबूती और ग्रामीण क्षेत्रों में उद्यमिता बढ़ाकर आगे बढ़ें तो अवश्य ही आत्मनिर्भर बनने में सफल होंगे। भारत उस क्षेत्रों का आयात कम कर

सकता है, जिसका वह स्वयं मैन्यूफैक्चर है। जैसे रसायन के क्षेत्र में भारत विश्व का छठा सबसे बड़ा निर्माता देश है।

साथ ही चीनी चुनौती को देखते हुये हमें अपनी एकजुटता भी बढ़ानी होगी। हमारे राजनीतिक एवं सामाजिक संगठन मिलकर ऐसी ठोस नीतियाँ बनायें, जो भविष्य में भी प्रासंगिक रहें। राष्ट्रीय हितों के लिये राजनीतिक लाभ के आकर्षण का मोह त्यागना पड़ेगा। इस दिशा में सहमति के लिये राजनीतिक वर्ग के बीच व्यापक एवं विश्वसनीय विमर्श आवश्यक है। चूंकि देश नीतियां अपने हितों के आधार पर तैयार करते हैं तो हमें यह भी समझना होगा कि भारत और चीन के नेताओं के निजी रिश्तों का तानाबाना चीन को भारत के विरुद्ध कुटिलता करने से नहीं रोक सकेगा। अतः आज आवश्यक है, चीन से चरणबद्ध आत्मनिर्भरता की। भारतीय उद्योगपतियों को भी शोध और श्रमिक प्रशिक्षण पर जोर देना चाहिए।

शोध और अनुसंधान का कार्य निःसंदेह खर्चीला है समय भी लगता है, लेकिन आत्मनिर्भरता जरूरी है। वास्तव में आत्मनिर्भरता ही सुख, स्वाधीनता और संप्रभुता की गारंटी है। भारत को प्रत्येक दृष्टि से आत्मनिर्भर बनाना हम सबका राष्ट्रीय कर्तव्य है।

संदर्भ सूची

1. P. Chandra : 'Internationl Politics' Vikas Publishing House Pvt. Ltd., New Delhi.
2. डॉ. वी. एन. खन्ना : 'अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति' साहित्य भवन पब्लिशर्स, आगरा।
3. दैनिक जागरण, 5 जुलाई 2020, बुधवार।

❑❑

यह दौर तो परिवर्तन का है !

डॉ0 नगमा खानम
असिस्टेंट प्रोफेसर – राजनीति विज्ञान
डी0वी0 (पी0जी0) कालेज, उरई (जालौन)

आम तौर पर बजट सत्र के बाद दिल्ली के बाबू राहत की सांस लेते हैं और गर्मी शुरू होते ही मंत्री से संतरी तक, सब पहाड़ या विदेशी दौरे पर निकल जाते हैं। पर इस बार दिल्ली कुछ हिली हुई है। कनिमोझी से लेकर कलिमाड़ी और उद्योग जगत के सितारों तक, सबका तिहाड़ जाना सत्ता के गलियारों में कौतूहल और आशंका का विषय बना हुआ है। विकिलीक्स हो या सर्वोच्च न्यायालय में पी0आई0एल0 की सख्त सुनवाई टीवी शो में छीछालेदर हो या जगह–जगह होने वाली गोष्ठियां सब ओर भ्रष्टाचार का मुद्दा छाया हुआ है। भ्रष्टाचार का मुद्दा न तो बाबा रामदेव की अकेले की चिन्ता है, और न ही एक निष्पक्ष तथा शक्तिशाली लोकपाल से सिर्फ अन्ना हजारे और उनके साथियों के हित सधने है। इन दोनों मुददो का सीधा सम्बन्ध इस देश के करोड़ो लोगों से है, जिनके लिए रोजमर्रा की जिन्दगी मुश्किल होती जा रही है।

भ्रष्टाचार का शाब्दिक अर्थ है ''भ्रष्ट अथवा विगड़ा हुआ आचरण'' लोक प्रशासन में इसका तात्पर्य ऐसे आचरण से है जिसकी आशा लोक सेवकों से नहीं की जाती है। भारतीय दण्ड संहिता की धारा 161 के अनुसार जो व्यक्ति शासकीय कर्मचारी होते हुए या होने की आशा में अपने या किसी व्यक्ति के लिए कानूनी पारिश्रमिक से अधिक कोई घूस लेता है या स्वीकार करता है या किसी प्रकार का कार्य करने के लिए उपहार स्वरूप या अपने शासकीय कार्य करने में किसी व्यक्ति की सेवा या कुसेवा का प्रयास, केन्द्रीय या अन्य राज्य सरकार या संसद या विधान मण्डल या किसी लोकसेवक के संदर्भ में करता है तो उसे भ्रष्टाचार का आरोपी मानते हुए तीन वर्ष तक के कारावास या दण्ड या अर्थदण्ड या दोनों दिये जा सकते है।

लोक प्रशासन में भ्रष्टाचार की समस्या प्राचीन तथा मध्यकाल में बहुत कम थी, क्योंकि उस दौरान लोक प्रशासन का क्षेत्र सीमित था। जैसे–जैसे लोक प्रशासन का क्षेत्र विस्तृत होता गया, वैसे–वैसे प्रशासनिक भ्रष्टाचार भी तेजी के साथ फैलता गया। आजादी के बाद भारत ने जिस प्रशासनिक प्रतिरूप (मॉडल) को देश के जन कल्याणकारी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अपनाया था। वस्तुतः आज उसी प्रशासन को भ्रष्टाचार ने जकड़ लिया है। राजनीति सत्ता प्राप्त करने की होड़ ने भ्रष्टाचार को पनपने में और सहयोग दिया है सरकारी कर्मचारियों अथवा पदाधिकारियों के साथ अनेक राजनीतिक नेताओं और मंत्रियों के द्वारा जो धोटाले प्रकाश में आये हैं उनमें श्री कृष्ण मेनन का (जीप–काण्ड) उड़ीसा के मुख्यमंत्री बीजू पटनायक बिहार के मुख्यमंत्री कृष्ण बल्लभ सहाय, पंजाब के मुख्यमंत्री प्रताप सिंह कैरो, तमिलनाडू की वर्तमान मुख्यमंत्री जयललिता, हिमांचल प्रदेश के मुख्यमंत्री सुखराम इनके अलावा वोफोर्स घोटाला, प्रतिभूति घोटाला, तहलका काण्ड, हवाला काण्ड, टूजी स्पेक्ट्रम आदि भ्रष्टाचारिक मामले उल्लेखनीय है।

भारत में भ्रष्टाचार इस कदर बड़ा है कि विकास योजनाओं में कर्मचारियों अथवा अधिकारियों द्वारा खूब पैसा खाया जाता है लेकिन इससे भी ज्यादा हैरानी तब होती है जब सरकार द्वारा विदेशों में ऋण लेकर स्वास्थ्य, शिक्षा, भूमि सुधार, जनसंख्या नियंत्रण, कृषि विकास, सड़क पुल इत्यादि के नाम पर जो कार्यक्रम एवं परियोजनाए चलायी जाती है, उनमें भी खुलकर बड़े पैमाने पर लूट–खसोट की जाती है। जहां एक ओर आम जनता गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी, अनियन्त्रित सामाजिक आर्थिक विषमता हिंसा, आतंकवाद आदि विकराल समस्याओं का सामना कर

रही है, वही दूसरी ओर पानी, बिजली तेल यातायात, शिक्षा, गैस, पेट्रोल व गृहकर की दरें इतनी ज्यादा बढ़ा दी गई है, कि जिन्हे चुकाने में भी जनता वेबस दिखती है यह भी सच है कि भारत में सामाजिक आर्थिक विकास के लिए जो पैसा निर्गत किया जाता है। जिसका एक अच्छा खुलासा केरल की दो पंचायतों ने कर दिखाया है। केरल में दो पंचायतो ने पुल का निर्माण कार्य रिकार्ड समय में सिर्फ चार करोड़ में कर दिखाया, जबकि इसी निर्माण हेतु प्रशासन 30 करोड़ की मांग कर रहा था। इसी तरह की वृत्ति भारत के प्रायः सभी प्रशासनिक विभागों में बनी हुई है। इनसे सरकारी धन का खूब दुरूपयोग किया जाता है। जिसका कुप्रभाव देश की सामाजिक व्यवस्था पर पड़ता है। लेकिन जब समूचा प्रशासन ही भ्रष्टाचार में लिप्त हो तब देश के सामाजिक आर्थिक विकास की कल्पना नहीं की जा सकती।

जितनी तरह के भ्रष्टाचार है, उतनी तरह के भ्रष्टाचार विरोधी उपाय है, आन्दोलन है। कुछ समय पहले अन्ना हजारे जी का अनशन हुआ। सिविल सोसाइटी का जन्म हुआ। उसका आन्दोलन हुआ। सरकार संवेदनशील हो उठी। कमेटी बना दी। अब बाबा रामदेव की साधु सोसाइटी का काला धन विरोधी यानि भ्रष्टाचार विरोधी आन्दोलन दिल्ली से शुरू हो गया भ्रष्टाचार नामक तत्व इन दिनों बड़े मजे में है। इन्सान ईश्वर का नाम जानता हो या न जानता हो लेकिन भ्रष्टाचार का नाम जानता है, भ्रष्टाचार ऐसा परम तत्व है कि जानकर भी उसे पकड़ा नहीं जा सकता। रोका नहीं जा सकता। जिसने भी भ्रष्टाचार को रोकने की कोशिश की वही भ्रष्टाचारी हो गया। भारतीय सरकार द्वारा प्रशासनिक व्यवस्था को सुधारने के लिए समय–समय पर कई वार प्रयत्न किये गये। सर्वप्रथम प्रयास के तहत सरकार ने सन् 1948 ई0 में एक बचत समिति की स्थापना की। इस समिति के अध्यक्ष कस्तुरलाल भाई थे। इस समिति में व्यवस्थापिका व्यापारी वर्ग तथा अधिकारी वर्ग के कुछ लोग सदस्य थे। इस समिति ने सार्वजनिक सेवाओं में अत्यधिक खर्च को कम करने की मुख्य तौर पर सिफारिश की। दूसरे प्रयास के तहत सन् 1949 ई0 में आयंगर समिति का गठन किया गया। उसने सरकारी तंत्र के पुनर्गठन की सिफारिश की। भारतीय प्रशासन में गम्भीर अध्ययन का प्रयास सिविल सेवा के एक अधिकारी श्री ए0डी0 गोरवाला ने सन् 1951 ई0 में किया। गोरवाला ने प्रचलित लोक प्रशासन व्यवस्था व नौकरशाहों की मूल धारणाओं में बिना क्षति पहुँचाये उसमें व्याप्त बुराई को दूर करने का सुझाव दिया था, उसने लगभग 20 सुझाव दिये थे। किन्तु सरकार ने इन्हें लागू करने में कोई रूचि नहीं दिखाई। पुनः सन् 1952 ई0 में गोपाल स्वामी ने सरकारी तंत्र की कार्यकुशलता की अभिवृद्धि पर अपना प्रतिवदेन सरकार के सामने प्रस्तुत किया। इसमें सम्पूर्ण प्रशासनिक संगठन और कार्य प्रणाली की आलोचनात्मक समीक्षा की गई।

भारत सरकार ने इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण प्रयास तब किया जब सन् 1952 ई0 में लोक प्रशासन के अमेरिकी विद्वान पॉल एच0 एपिलवी को प्रशासन का अध्ययन करने हेतु भारत बुलाया गया। अपने सर्वेक्षण के बाद उसने सन् 1953 ई0 व सन् 1956 ई0 में क्रमशः प्रथम व द्वितीय रिपोर्ट भारत सरकार को सौंपी। इससे प्रशासनिक सुधारों में नया मोड़ आया। एपिलवी ने अपनी सिफारिश में भारत में एक लोक प्रशासन की संस्था (I.I.P.A.) की स्थापना करने, विभागों में परस्पर समन्वय करने, सभी राज्यों में कृषि आयकर लगाने, कर्मचारियों के प्रशिक्षण पर जोर देने, भारतीय प्रशासन में सूत्र तथा स्टाफ में स्पष्ट अन्तर करने तथा प्रत्येक विभागों में मध्यमवर्गीय अधिकारियों की बहाली करने इत्यादि बातों पर बल दिया।

प्रशासनिक सुधार की दिशा में एक और महत्वपूर्ण प्रयास सरकार ने तब किया जब 5 जनवरी सन् 1966 ई0 को भारत सरकार ने भारतीय प्रशासनिक आयोग का गठन किया। इस आयोग ने अनेक महत्वपूर्ण सिफारिशें सरकार के सामने प्रस्तुत की, जिनमें मुख्य सिफारिशें इस प्रकार है :–

लोक प्रशासकों के विरुद्ध जनता के अभियोगों के निराकरण के लिए दो संस्थाओं लोकपाल तथा लोक आयुक्त की रचना की जानी चाहिए। योजना आयोग का अध्यक्ष प्रधानमंत्री सहित अन्य मंत्रियों को भी इसका

सदस्य नहीं बनाया जाए। योजना आयोग के सदस्यों की संख्या 7 होनी चाहिए तथा इसके उपाध्यक्ष को कैबिनेट मंत्री का दर्जा दिया जाए, केन्द्र तथा राज्यों के सुदृढ़ सम्बन्धों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय परिषद की स्थापना की जाए, सरकारी कर्मचारियों की हड़ताल पर रोक लगाई जाए। विकास कार्यों से सम्बन्धित विभागों में निष्पादन बजट पद्धति अपनाई जाए। राज्यपाल की नियुक्ति निष्पक्ष आधार पर की जाए। राज्य में राष्ट्रपति शासन के समय संघ सरकार द्वारा अधिक हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए। जिला प्रशासन को दो भागों में विभाजित किया जाय, नियामकीय तथा विकासात्मक और सरकारी अधिकारियों को अस्थाई रूप से लोक उपक्रमों में भेजने की प्रथा समाप्त की जानी चाहिए। इस प्रकार प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा प्रस्तुत की गई अनेक महत्वपूर्ण सिफारिशें भारत सरकार ने स्वीकार की। सरकार ने लोकपाल, लोक आयुक्त के सम्बन्ध में आयोग की सिफारिश को माना, पदाधिकारियों के सम्बन्ध में पृथक कार्मिक विभाग स्थापित कर दिया है। आयोग की अनुशंसा के आधार पर ही सन् 1967 ई0 में योजना आयोग का पुर्नगठन किया गया और सन् 1967 ई0 में राष्ट्रीय विकास परिषद का गठन भी किया गया। हालांकि आयोग की सारी सिफारिशे सरकार ने भले ही स्वीकार न की हो, लेकिन भारतीय प्रशासन पर इसकी सिफारिशों का व्यापक प्रभाव अवश्य पड़ा।

सन् 1987 ई0 में गठित किया गया तीन सदस्यीय सरकारियां आयोग भी प्रशासकीय सुधार की दिशा में सरकार की ओर से महत्वपूर्ण प्रयास था। हालांकि इस आयोग का प्रशासनिक सुधार से विशेष सरोकार नहीं है, लेकिन इसका अप्रत्यक्ष सम्बन्ध जरूर है। आयोग ने अखिल भारतीय सेवाएं, राज्यों में केन्द्रीय सुरक्षा बलों को भेजना, तथा योजना आयोग को स्वायत्त संस्था बनाने तथा मुख्यमंत्री के पद के विरूद्ध पद के दुरूपयोग के आरोपों की जांच के लिए आयोग की नियुक्ति करने सम्बन्धी महत्वपूर्ण सिफारिशे की थी।

विभिन्न समितियों तथा आयोगों के अतिरिक्त पांच वेतन आयोगों की नियुक्ति क्रमशः सन् 1958, 1964, 1994 तथा 1997 में की गई। इन आयोगों ने योजना आयोग की विभिन्न पंचवर्षीय, योजनाओं के प्रलेखों में प्रशासनिक सुधार के लिए समय–समय पर महत्वपूर्ण सुझाव दिया है।

वस्तुतः भारत में इन सभी प्रशासनिक सुधार के प्रयासों की अपनी–अपनी सीमाएं रही है। फिर भी प्रशासनिक सुधार के सम्बन्ध में की गई विभिन्न समितियों तथा आयोगों की महत्वपूर्ण सिफारिशों को भारत सरकार ने स्वीकार भी किया है परन्तु अधिकतर सिफारिशों को छुआ तक भी नहीं गया। भारतीय प्रशासनिक सुधार वास्तव में रूढिवादी या परम्परागत रहे हैं, केवल एपिलवी को छोड़कर सभी समितियां अथवा आयोग प्रशासनिक सुधार के मार्ग में बाधक मूल समस्याओं को खोज नहीं पाये हैं।

- प्रशासनिक जटिलता भी अत्यधिक है, जिसके कारण प्रशासन में नये अनुसंधान करना बहुत कठिन है। यहां पर यह पहचान पाना बहुत मुश्किल है, कि कौन सा विभाग सूत्र है और कौन सा स्टाफ है। अतः इस सम्बन्ध में पॉल एपिलवी ने भी सूत्र व स्टाफ में स्पष्ट अन्तर करने की अनुशंसा भारत सरकार के समक्ष प्रकट की थी, जिस पर आज तक कोई विचार नहीं किया गया।
- अब तक की प्रायः सभी राजनीतिक सरकारों में इच्छा शक्ति की कमी भी रही है। इसके कारण सरकार कठोर कदम उठाने अथवा अनेक महत्वपूर्ण सिफारिशों को लागू करने का साहस नहीं जुटा पायी है।
- जनता में जागरूकता का अभाव भी मुख्य कारण रहा है।
- राजनीतिक सरकार की नौकरशाहों पर निर्भरता भी एक अहम कारण रहा है। जिन भ्रष्ट नौकरशाहों का सरकार के ऊपर अच्छा प्रभाव रहा है। वे सम्भवतः इस तरह के प्रयासों को विफल बनाने के लिए हरेक प्रकार की कोशिशे भी करते रहे है।

भारतीय लोक प्रशासन में भ्रष्टाचार को बढ़ाने के पीछे कई कारण रहे है।

- ब्रिटिशकालीन भारत में उच्च सरकारी कर्मचारियों में अत्यधिक भ्रष्टाचारिक प्रवृत्ति थी। उस दौरान

वायसराय या गर्वनर द्वारा अपने पद से अवकाश ग्रहण करने से पहले देशी रियासतों का दौरा, राजाओं से विदाई लेने के नाम पर किया जाता था, परन्तु इसका असली मकसद उनसे उपहार प्राप्त करना था। भारत में उस समय उच्च अधिकारियों को सरकारी धन का मनचाहे प्रयोग करने की पूर्ण स्वतंत्रता थी। अतः उस दौरान की भ्रष्ट प्रशासनिक प्रवृत्ति का प्रभाव आजादी के बाद भी भारतीय लोक सेवकों पर पड़ा।

- लालफीताशाही भारतीय प्रशासन में बुराई के रूप में फैली हुई है। प्रशासनिक विभागों में कार्य करने की प्रक्रिया काफी विलम्बकारी होती है। लोग अपना कार्य जल्दी कराने के लिए सरकारी कर्मचारियों को विभिन्न प्रकार से रिश्वत देने में जरा भी संकोंच नहीं करते, जिसके परणिामस्वरूप भ्रष्टाचार को निरन्तर बढ़ावा मिलता चला गया।
- भारत में राज्य, केन्द्रीय तथा स्थानीय कर्मचारियों के बीच वेतनों में काफी अन्तर है। उच्चतर तथा निम्न स्तर कर्मचारियों के बीच वेतनों में काफी अन्तर है। ऐसी स्थिति में जहां एक और उच्च अधिकारी अत्याधिक सुख सुविधा की पूर्ति के लिए अनुचित तरीके से पैसा कमाना चाहता है, वहीं दूसरी ओर निम्नस्तर कर्मचारी अपने कम वेतन की भरपाई के लिए अवैध तरीके से धन कमाने के लिए प्रयासरत रहते है।
- भारत में लोग जिस तरह से भौतिकवादी मूल्यों को अपनाते जा रहे है, उसी तरह लोगों में नैतिक मूल्यों का ह्रास होता जा रहा है। लोगों की भौतिकवादी आवश्यकता निरन्तर बढ़ी है, जिसके कारण लोगों की व्यवहारिकता में ईमानदारी लुप्त हो गई।
- भारत में लोकतांत्रिक चुनाव प्रणाली बहुत महंगी होती जा रही है और चुनाव जीतने के लिए राजनैतिक दलों को काले धन की जरूरत पड़ती है। अतः इसकी पूर्ति के लिए राजनेताओं में भ्रष्टाचार बढ़ना स्वाभाविक है।

पिछले कई वर्षों से भारत में प्रशासनिक भ्रष्टाचार इस कदर बढ़ा है कि जनता भी भ्रष्टाचार से दुखी होकर रिश्वत देने को अपना धर्म मानने लगी है। यदि अस्पताल में भर्ती होने के लिए भी गरीब व्यक्ति को रिश्वत का सहारा लेना पड़े तो यह कर्मचारी तथा राजव्यवस्था दोनों के लिए शर्मनाक बात है। किसी भी क्षेत्र में लाईसेंस लेने अथवा परमिट लेने, टेलीफोन व बिजली कनेक्शन लेने शैक्षिणिक संस्था में दाखिला लेने तथा जमीन जायदाद से जुड़े सभी मामलों में रिश्वतखोरी को ही महत्व दिया जाता है। यहां तक कि सरकारी नौकरियों में भी रिश्वतखोरी का प्रचलन तेजी से बढ़ा है। सन् 1982 ई0 में भारत सरकार के नेशनल इंस्टीटयूट ऑफ पब्लिक फाइनेंस एण्ड पॉलिसी द्वारा देश के काले धन की समस्या की अध्ययन रिपोर्ट के अनुसार मंत्रीगण, उच्च अफसरगण, अपने निजी लाभ के लिए इस तरह घूस वसूल करते है, मानों उनका यह निजी टैक्स है। वस्तुतः भारत में भ्रष्टाचार एक पर्यावरणिक समस्या बन चुकी है। जिसे आज हम प्रशासन में भ्रष्टाचार की व्यापकता भी कह सकते है।

- इसे रोकने के लिए भ्रष्टाचार के विरोध में जबरदस्त जनमत उत्पन्न किया जाए, जिससे कि भ्रष्टाचारियों का भण्डा फोड़ किया जा सके।
- भारत में ओम्बड़समैन जैसी स्वायत संस्था का निर्माण शीध्र किया जाय।
- केन्द्रीय सतर्कता आयोग (C.V.C.) को सशक्त बनाया जाय और उसे व्यापक शक्तियां भी दी जानी चाहिए।
- मंत्रियों व सरकारी कर्मचारियों के लिए निश्चित आचार संहिता बननी चाहिए।
- न्यायाधीशों द्वारा भ्रष्ट अधिकारियों के खिलाफ कड़ी कार्यवाही करने तथा संख्त से सख्त दण्ड देने की अलग व्यवस्था होनी चाहिए।
- केन्द्रीय अनवेषण व्यूरो के कार्यों में अनुचित राजनीतिक हस्तक्षेप पर रोक लगनी चाहिए।
- सरकारी योजनाओं व परियोजानाओं तथा विकास कार्यक्रमों का समय–समय पर सरकार द्वारा पुननिरीक्षण होते रहना चाहिए।

भ्रष्टाचार केवल प्रशासनिक सेवाओं में ही नहीं है वरन् समाज का प्रत्येक वर्ग इसमें शामिल है। काला धन अर्थात बिना लेखे–जोखे का धन भी भ्रष्टाचार का ही भाग है। ये तथ्य इस बात के सबूत है कि भारत में शिक्षा लोगों को ज्यादा प्रबुद्ध बनाये यह जरूरी नहीं है। यह लोगों को भ्रष्टाचार से विमुख भी नहीं करती। भ्रष्टाचार के आरोपों को झेलने वाले ज्यादातर लोग उच्च शिक्षित है। 2 जी, सी डब्लू जी या नकली पायलट सर्टिफिकेट जैसे घोटालों में शामिल शिक्षित लोगों को अवैध गतिविधि या भ्रष्टाचार में लिप्त होने का कोई मलाल नहीं है। भले ही हमारे राष्ट्रीय प्रतीक पर सत्यमेव जयते अंकित हो, लेकिन लगता है कि नीति और नैतिकता का हमारे राष्ट्रीय जीवन से लोप हो गया है। अभी आर्थिक भ्रष्टाचार चरम सीमा पर है और यह तब तक समाप्त नहीं हो सकता, जब तक बौद्धिक भ्रष्टाचार का खात्मा नहीं हो सकता भले ही इस समय अन्ना हजारे के नेतृत्व में आर्थिक भ्रष्टाचार की समाप्ति की मुहिम चल रही हो लेकिन उससे खास कुछ होने वाला नहीं है। जब तक लोगों की सोच नहीं बदलेगी, धन सम्पत्ति के लिए तृष्णा खत्म होने वाली नहीं है। हमारे देश में सबसे ज्यादा कानून है, फिर भी भ्रष्टाचार बढ़ता ही जा रहा है। जब सी0वी0आई0, सी0बी0सी0, सूचना का अधिकार, विभागीय भ्रष्टाचार निरोधी प्रकोष्ठ, आयकर विभाग आदि तमाम एजेंसिया होने के बाबजूद भ्रष्टाचार पर रोक नहीं लग रही है, तो जन लोकपाल बिल या कितना ही कठोर कानून क्यों न बन जाए क्या गारंटी है कि उनसे भ्रष्टाचार मिट जाएगा। सवाल उठता है कि क्या सरकार वाकई काला धन और लोकपाल बिल को लेकर गम्भीर है?काला धन सिर्फ विदेशों में नहीं है, वह तो अपने देश में भी है। उसे बाहर निकालना सरकार के हाथ में है। उसके लिए किसी भी देश से संधि की जरूरत नहीं है। इस सबके वाबजूद भ्रष्टाचार और काले धन के खिलाफ लड़ाई अभी खत्म नहीं हुई। जनशक्ति के जरिये ही इसे जीता जा सकता है। पक्ष और विपक्ष दोनों से बहुत उम्मीद नहीं की जा सकती, क्योंकि सरकार जहां इसमें ढुलमुल रवैया अपना रही है वहीं विपक्ष इसमें राजनीति की संभावनाएं देख रहा है। मगर भ्रष्टाचार और काले धन का मुद्दा पक्ष और विपक्ष के टकराव से कही अधिक बड़ा है।

जन लोकपाल बिल पर कानून का मसौदा बनाने वाली समिति में जब सरकार ने सिविल सोसाइटी के नाम पर अन्ना हजारे सहित उनके चार सहयोगियों को भी शामिल कर लिया, तब लोगों के मन में एक सवाल उठा था कि वह परम्पराओं और सांविधानिक मान्यताओं से हटकर भला एक व्यक्ति के अनशन के दबाव में ऐसा क्यों कर रही है। क्योंकि सरकार यदि कानून बनाना चाहे, तो उसकी विधायी शक्ति तो संसद या विधान मण्डल के पास ही होगी। लेकिन लगता यही है कि सरकार के कई सदस्य भ्रष्टाचार के आरोप में जेल पहुँच चुके हैं, इसलिए उसके लिए यह संदेश देना जरूरी था कि सरकार भी भ्रष्टाचार को स्वीकार नहीं करती है। हजारे के नेतृत्व वाली सिविल सोसाइटी ने सरकार की इस कार्यवाही के खिलाफ मसौदा समिति की बैठक का बहिष्कार कर दिया है। वैसे भी सिविल सोसाइटी के सदस्यों का कहना है कि जन लोकपाल सरकार, संसद सदस्यों और न्यायपालिका के विरूद्ध आने वाली शिकायतों की जांच पड़ताल के साथ प्रधानमंत्री और मुख्य न्यायाधीश को भी धेरे में लाएगा। साथ ही उसके निष्कर्षों पर कार्यवाही करना सरकार की मजबूरी होगी। इस प्रकार के अधिकार तो तभी दिए जा सकते हैं, जब संविधान में भी इसकी व्यवस्था हो और चूंकि इसमें मूल अधिकारों से जुड़े प्रश्नों का भी विस्तार होगा और कुछ नए शामिल किए जायेगें इसलिए संसद द्वारा ऐसे संशोधन स्वीकार किए जाय, तो मूल अधिकारों से जुड़े होने के कारण इनकी पुष्टि दो तिहाई विधान सभाओं से भी करानी पड़ेगी। इससे अच्छा तो यह विकल्प है कि एक नई संविधान सभा बनाई जाए, जो वर्तमान परिपेक्ष्य में उत्पन्न समस्त प्रश्नों पर विचार करके एक नया संविधान स्वीकार करें, जिसे बाद में वर्तमान संविधान के स्थान पर आत्मार्पित किया जा सके, क्योंकि आज की व्यवस्था और संविधान में स्पष्ट रूप से विसंगतियां दृष्टिगोचर हो रही हैं।

हमने भूमण्डलीकरण के नाम पर व्यक्ति के बजाय पूँजी के वर्चस्व की स्थापना की है। संविधान के निदेशात्मक सिद्धान्तों पर अमल करने की आवश्यकता से दूर हटते जा रहे है। उसमें निर्धारित लक्ष्यों को पाने का

कोई प्रयत्न नहीं हो रहा है। इसी के साथ व्यवस्था से ही जन्मा भ्रष्टाचार पूंजी के वर्चस्व के चलते और भी बेकाबू होता जा रहा है। हमने संविधान में भले ही समतावादी लोकतांत्रिक व्यवस्था को स्वीकार किया हो, लेकिन ऐसा अमल में दिखाई नहीं दे रहा है। लोकतंत्र का गुण तो बहुमत का समादर है, लेकिन निर्वाचन पद्धति संबंधी दोषों के कारण मतदाताओं का एक छोटा समूह ही लोकतंत्र के नाम पर निर्णायक भूमिका निभा रहा है। इसलिए जब पूरे समाज की दिशा तय करने का प्रश्न आये तो इस पर भी गंभीरतापूर्वक विचार करना ही पड़ेगा।

दूसरा प्रश्न यह है कि सरकार पर नियंत्रण किसका हो?मान्यता तो यह है कि संसद या विधानमण्डल जन प्रतिनिधियों से बनते है, इसलिए उन्हीं का नियंत्रण होना चाहिए। लेकिन लोकपाल की नियुक्ति या तो सरकार द्वारा होगी या राज्य के अंग के रूप में जो लोग इससे अलग माने जाते है उनके द्वारा, लेकिन क्या इससे व्यवस्था नियंत्रण के दोहरेपन से मुक्ति मिल पाएगी और यह दोहरापन क्या अनुकूल परिणाम दे पाएगा?जन लोकपाल भी तो संसद के बनाए कानूनों के तहत ही काम करेगा। लेकिन जन लोकपाल के नियमन के लिए जो प्रक्रिया अपनाने की बात हो रही है, उस पर नियंत्रण किसका होगा? हम एक नया आदर्श समाज बनाने की बात तो करते हैं लेकिन उसके लिए कल्पनाएं स्पष्ट नहीं है। इसलिए आवश्यकता तो इस बात की है कि पहले उद्देश्य स्पष्ट हो जाए, कमियों को दूर किया जाए, फिर उनका निवारण कैसे हो सकता है, यह तय करना सम्भव होगा। देश के सभी वर्ग में भ्रष्टाचार के खिलाफ आक्रोश है। निश्चय ही यह दौर तो परिवर्तन का है। केन्द्र में कोई भी सत्तारूढ़ दल क्यों न हो, बुनियादी समस्याओं का समाधान एवं कानूनों में सुधार तो उसे करना ही पड़ेगा। तभी भ्रष्टाचार पर कुछ हद तक अंकुश लगाया जा सकता है।

संदर्भ संकेत

1. डॉ0 नरेश कुमार त्यागी – प्रशासनिक भ्रष्टाचार और प्रशासनिक सुधार (क्रॉनिकल) पृ0 398–402 (2005) इंप्रेशन ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली
2. विनीत नारायण, बदलाव का दौर (परिदृश्य) अमर उजाला, 2 जून 2011
3. शीतला सिंह, जन लोकपाल का लेकर पेंच (सम्पादकीय) अमर उजाला 7 जून 2011
4. शीतला सिंह, काजल की कोठरी, अमर उजाला, 22 अप्रैल 2011
5. सुरेन्द्र कुमार, शिक्षा के नंबर शून्य (दो टूक) अमर उजाला, 25 मई 2011
6. सुधीश पचौरी, भ्रष्टाचार का सांस्कृतिक तत्व (देश और समाज) 05 जून 2011
7. स्वामी अग्निवेश, सत्ता का आग्रह (विचार) अमर उजाला, 07 जून 2011
8. आग का दरिया और डूब के जाना है (सम्पादकीय) अमर उजाला, 22 अप्रैल 2011
9. सुभाष कश्यप, मांग और मुश्किले (राजनीति) 08 जून 2011

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

भ्रष्टाचार का मनोविज्ञान एवं इसके बदलते प्रतिमान

डॉ0 गीता यादव
अध्यक्ष–राजनीति विज्ञान
टी0डी0पी0जी0 कालेज, जौनपुर

भारत में जिस तेजी से अनेक नेताओं के नाम भ्रष्टाचार से जुड़ने लगा है, लगता है कि इक्कीसवीं शताब्दी में भी भ्रष्टाचार को बढ़ने से रोकना कठिन कार्य है। लगातार भ्रष्टाचार की जड़ें गहरी होती जा रही है। भ्रष्टाचार को सरल शब्दों में 'रिश्वत का कार्य' कहा जा सकता है। भ्रष्टाचार निजी लाभ के लिए सार्वजनिक शक्ति का इस प्रकार प्रयोग करना जिसमें कानून तोड़ना शामिल हो या जिससे समाज के मानदण्डों का विचलन हुआ भी कहा जाता है। डी0एच0वेली ने भ्रष्टाचार को बताया है कि– ''निजी लाभ के विचार के परिणाम स्वरूप सत्ता का दुरूपयोग जो धन सम्बन्धित नहीं भी हो सकता है।'' जे0 नाय का कहना है कि – ''भ्रष्टाचार निजी लाभों के लिए सार्वजनिक पद का दुरूपयोग है।'' अर्थात भ्रष्टाचार आर्थिक या प्रतिष्ठा सम्बन्धी लाभों की प्राप्ति के लिए सार्वजनिक भूमिका के प्रति औपचारिक कर्तव्यो से विचलन है।

भ्रष्टाचार एक विश्वव्यापी समस्या है। यह अनन्त समय से प्रत्येक समाज में किसी न किसी रूप में पाया जाता है। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में 50 प्रकार के गबन और अन्य भ्रष्ट तरीकों का वर्णन किया है। वर्तमान समाज में भ्रष्टाचार अनेक स्वरूपों में फैला हुआ है– रिश्वत(धन देने वाले के पक्ष में अवैध/बेइमानी तरीकों से कार्य करना) भाई भतीजावाद, सम्बन्धियों को अनावश्यक पक्षपात द्वारा संरक्षण प्रदान करना) दुर्विनियोग (दूसरे के धन को अपने प्रयोग में लेना) संरक्षण (संरक्षक द्वारा गलत समर्थन/प्रोत्साहन दिया जाना और इस प्रकार पद का दुरूपयोग करना) पक्षपात (एक व्यक्ति को छोड़कर दूसरे को अनावश्यक वरीयता देना) इत्यादि भ्रष्टाचार ने देश के आर्थिक विकास को रोका है। समाज में हिंसा और अराजकता को जन्म दिया है। क्योंकि भ्रष्ट व्यक्ति के पास कानून लागू करने कराने वालो को अपने फायदे के लिए खरीदने की धन शक्ति है। इसनें जातिवाद, भाषावाद और सम्प्रदायवाद को जन्म दिया है। जिसके कारण नैतिकता और व्यक्तिगत चरित्र का ह्रास हो रहा है। भाई–भतीजावाद के कारण जनता की दृष्टि में अफसरों की विश्वनीयता कम हो रही है। काले धन की वृद्वि, खाने–पीने की चीजों में मिलावट दवाओं में मिलावट कर उपभोक्ता वस्तुओं में कमी सरकार को केन्द्र और राज्य दोनो स्तरों पर अस्थिर बना दिया हैं। इस प्रकार भ्रष्टाचार कानून व परम्पराओं द्वारा एक मान्यता प्राप्त आचरण से हटकर व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए कुछ करनें की प्रक्रिया है। भ्रष्टाचार कभी समाप्त नहीं किया जा सकता बल्कि यह जिसमें लग जाता है, उसे ही खत्म होना पड़ता है। जैसे कैंसर पीड़ित शरीर के भाग को शरीर से अलग कर देने पर मनुष्य के जीवन की सुरक्षा की जा सकती है। इस प्रकार शरीर के उस अंग को अलग किया गया न कि उस अंग के कैंसर (भ्रष्टाचार) को खत्म किया गया।

कानून और परम्पराओं को अगर समाज की दवा मानिये तो भ्रष्टाचार उसकी एक्सपायरी है। दवा की एक्पायरी आ गई तो उसे बचानें का कोई रास्ता नहीं। बल्कि दवा को नष्ट कर देना ही सर्वोत्तम उपाय है।

इसी तरह यदि देश के वर्तमान सामाजिक व कानूनी ढ़ांचे को आदमी मानिए तो भ्रष्टाचार उसका बुढ़ापा जिसे खत्म करना प्राकृतिक विधि है। अतः भ्रष्टाचार देश की व्यवस्था के जिस अंग में लगा है, उस अंग को भंग कर दिया जाय और उसका पुर्नजन्म किसी वैकल्पिक व्यवस्था के रूप में कराया जाये। देश में सुधार के वैकल्पिक

ढ़ांचे की कल्पना पहले की जाय, भ्रष्टाचार स्वयं मिट्टी में दब जाएगा। ठीक उसी प्रकार जैसे मनुष्य मृत्यु के साथ ही उसका बुढ़ापा भी मिट्टी में दब जाता है, एक्सपायर दवा को नष्ट कर देने से उसकी एक्सपायरी का स्वभाव नष्ट हो जाता है, कैंसर पीड़ित शरीर का अंग शरीर से अलग होते ही कैंसर रूपी भ्रष्टाचार के साथ सूख जाता है।

परम्परा और कानून की प्रासंगिकता पर जब सवाल उठ जाता है तो सामाजिक भ्रष्टाचार का जन्म होता है। कानूनी प्रावधान जब व्यक्ति के स्वाभाविक स्वभाव से दिन प्रतिदिन दूर होने लगता है तो कानूनी भ्रष्टाचार जन्म लेता है। अपने समुदाय की परम्परा को नजर अंदाज करके युवक और युवती का प्रेम विवाह सामाजिक भ्रष्टाचार का उदाहरण हैं वर्तमान व्यवस्था आधुनिक तकनीकी समाज में परिवर्तन करती रहती है, परिवर्तन वर्षों से आ रही परम्परा से प्रश्न करते हैं जब समाज के विचारक इस पर विचार नहीं करते तो पुरानी परम्परा में संशोधन के लिए व्यक्ति निजी स्तर पर परम्परा को तोड़ना शुरू कर देता है। इसे भ्रष्टाचार कहते हैं। जब परम्परा से व्यक्ति को मिलता कम है और उसके बदले एक भारी कीमत वसूलने को व्यवस्था तैयार दिखाई पड़ती है तो मनुष्य परम्परा छोड़ अपने हित/सुरक्षा का पक्ष लेता है। जो भ्रष्टाचार के रूप में दिखाई देता है।

रिश्वत मांगना कर्मचारियों का लोभ है जो भ्रष्टाचार को जन्म देता है। सरकारी कर्मचारी कोई महात्मा तो है नहीं है कि उसमें लोभ सूख चुका है। कर्मचारी भर्ती के समय किसी प्रकार के लोभमुक्ति की जाँच होती नहीं, और सरकारी कर्मचारी बनते ही सरकार का मुखिया कानूनों द्वारा कर्मचारियों पर ऐसा कोई शक्तिपात नही करता कि कर्मचारी की लोभ वासना तुरन्त उड़ जाती। उसके बाद भी वह लोभ करे तो गलत हो सकता है। चाहे सरकारी कर्मचारी हो चाहे व्यापारी, दोनो लोभ से संचालित होते हैं। इसीलिए सरकारी कर्मचारी नौकरी कर रहा है और व्यापारी व्यापार कर रहा है। लोभ इन दोनों वर्गों को काम करने के लिए आक्सीजन का कार्य करता है। क्या आक्सीजन बिना जीवन सम्भव है? इन दोनों में विरोध होने पर व्यापारी सोचता है सरकारी कर्मचारी वेतन में संतुष्ट होकर दिन–रात मेरी तरह काम करें, लोभ से कुछ न करें। सरकारी कर्मचारी सोचता है व्यापारी को अपनी जीवन भर की कमाई हो चुकी है आगे उसे लोभ का त्याग कर देना चाहिए । यदि कई पीढ़ियों का इंतजाम करने के बाद भी व्यापारी लालच नहीं छोड़ रहा है, तो इससे कुछ झटक लेना ही ठीक है। उधर व्यापारी अपनी अज्ञानता के कारण यह सोचता है कि सरकारी कर्मचारी को वह वेतन देता है इसलिए सरकारी कर्मचारी उसके सामने नौकर की तरह गर्दन झुकाकर आये। कर्मचारी सोचता है नोट सरकार छापती है, जिसका इस्तेमाल करके व्यापारी व्यापार बढ़ाता है। नोट छापने वाली मशीनरी का अंग होने के कारण सरकारी कर्मचारी व्यापारी को अपना शिकार समझता है और शेर की तरह शिकार करने को तैयार बैठा रहता है।

प्रत्यक्ष कर देने के कारण व्यापारी सरकारी कर्मचारी को अपना नौकर मानता है, नोट छापने के कारण सरकारी कर्मचारी व्यापारी को प्रजा समझता है भ्रष्टाचार इन दोनो वर्गों के संघर्ष से और बड़ी चीज है अतः सरकारी कर्मचारी के रिश्वत को ही भ्रष्टाचार कहना शेष को नजर अन्दाज कर देना हाथी की पूंछ को हाथी मानने जैसी गलती करना है।

सरकारी क्षेत्र का भ्रष्टाचार एक ऐसा बच्चा है जिसे व्यापारी और सरकारी कर्मचारी ने मां–बाप की तरह मिलकर पैदा किया है। सरकारी कर्मचारी इस बच्चे की मां और व्यापारी इस बच्चे का बाप। इन दो वर्गो के लोभ का जब संगम होता है तो भ्रष्टाचारी रूपी बच्चे का जन्म होता है। उदाहरण स्वरूप सिया सिंह एक सरकारी कर्मचारी हैं दीना सेठ एक व्यापारी। दीना सेठ 10 बजे कार्यालय पहुँचे और सिया सिंह से बोले प्रमाण पत्र बनाना है। कर्मचारी ने कहा– ठीक है आवेदन पत्र जमा कर दीजिए चार बजे प्रमाण पत्र मिल जायेगा' व्यापारी ने कर्मचारी के कान में कुछ कहा और दोनो चाय पान के लिए बाहर चले गये उसी समय व्यापारी ने लोगों की निगाह बचाकर

कर्मचारी की जेब में 1000 रूपये डाल दिये। यह कहकर की प्रमाण पत्र चार बजे नहीं अभी तुरन्त चाहिए। चार बजे तक यह प्रमाण पत्र लाखों रूपया हमारे घर तक पहुँचा जायेगा उसका एक हजार आपको देकर मैं एहसान नहीं कर रहा हूँ। हम व्यापारी वर्ग हर सरकारी अफसर का स्वागत समारोह इसी दिन के लिए तो करते है। आज ही आपके अफसर रात का खाना हमारे साथ खायेंगे। यदि आप काम नहीं करेंगे तो चार बजे फिर आना पड़ेगा और शाम तक लाखो का नुकसान, आना जाना अलग। इस नुकसान से बचने के लिए हमें आपके अफसर के पास जाना होगा वे आप का ट्रांसफर कर देंगे। मेरा तो फायदा होगा आपका नुकसान। 1000 रूपया लेकर काम कर देंगे तो आपका 1000 मेरा 99 हजार का फायदा होगा।

जैसा आप उचित समझिये मैं आधा घंटा इसी दुकान के सामने गाड़ी में बैठता हूँ। यदि प्रमाण पत्र न मिला तो सीधे उठकर आपके अफसर के पास जाऊंगा। सिया सिंह के मन में डर और लोभ दोनो समा गया और कानूनी दाव पेंच भूल गया। दफ्तर में पहुँचे दीना सेठ की फाइल नीचे से निकालकर फटाफट काम किया और करवाया। आधे घण्टे के अन्दर प्रमाण पत्र लेकर कार के पास पहुँच गये। प्रमाण पत्र एक हाथ से पकड़ते हुए व्यापारी ने दूसरे हाथ में एक हजार और रख दिये और कहा आपका फायदा दो हजार मेरा 98 हजार । इस अवैध सम्बन्ध से भ्रष्टाचारी रूपी बच्चे का जन्म हो गया इस बच्चे के पालन पोषण की जिम्मेदारी सिया सिंह और दीना सेठ की हो गयी।

एक दिन रामसेवक भी एक प्रमाण पत्र बनवाने के लिए साइकिल से आये सिया सिंह को आवेदन पत्र सौंपे। सिया सिंह ने कहा–चाय पीने चलें, रामसेवक ने सोचा सरकारी कर्मचारी लगता है भगवान है वे तुरन्त चाय पीने चल दिये चाय पीते समय सरकारी कर्मचारी ने कहा इस काम के लिए चार बचे आना होगा वैसे लोग हजार रूपये देते हैं आप 500 रूपये दे दें तो हाथ के हाथ बनाकर दे दूंगा। रामसेवक ने कहा – नहीं भाई साहब! आप चार बजे या कल, परसो जब बुलाये जितनी बार बुलायें आऊगाँ आराम से काम करिये। हमें आपके दर्शन हो जायें यही बहुत है हमारा यहां तक आने का खर्च ही क्या है साइकिल उठाई आ गये 500 रूपये तो हमारे लिए बहुत हैं। फिर क्या सिया सिंह उदास होकर दफ्तर में गये और रामसेवक की फाईल सबसे नीचे दबा दी, सिया सिंह और दीना सेठ के अवैध सम्बन्ध से पैदा हुआ भ्रष्टाचार का बच्चा रामसेवक के लिए दुःख दायी बन गया।

आर्थिक विषमता आर्थिक भ्रष्टाचार की जननी है। अमीर गरीब! दोनो को जब एक ही कार्यालय पर अपना काम कराना पड़ता है तो सरकारी कर्मचारी दोनो के साथ समान व्यवहार नही कर पाता। दोनो के साथ अलग–अलग व्यवहार करना सरकारी कर्मचारी का स्वभाव बन जाता है। अमीर अपनी दी गई रिश्वत को सुविधा शुल्क मानता है। लेकिन गरीब आर्थिक दण्ड के रूप में देखता है।

भगवान गौतम बुद्ध का उपदेश व्यक्तियो को दुःखो से मुक्ति दिलाता है और सामाजिक स्तर पर भेदभाव व असमानता पर हमला भी करता है। जातिवादी समाज या असमानता के आधार पर टिकी परम्परायें भी दुःख का कारण है। उन्होंने प्रत्येक इन्सान को बराबर समक्षा और कहा कि अपना दीपक खुद बनो अतः मानव जन्म से ही आजाद है और विभिन्न परम्पराओं/कानूनों ने उसकी आजादी छीन ली है। उपदेश/प्रवचन मानव के मूल स्वभाव को नही बदला करते बल्कि उपदेश मनुष्य को उसके अन्तनिर्हित स्वभाव की तरफ चलने को प्रेरित करते है। प्रत्येक मनुष्य का स्वभाव अलग–अलग होता है। एक आदमी एक क्षेत्र में चरित्रवान होता है। शेष क्षेत्रों में वही आदमी चरित्रहीन होता है। बाहरी काट–छाँट से आम के पेड़ को नारियल का पेड़ नही बनाया जा सकता। वैसे ही उपदेश देकर सभी लोगो का चरित्र बदलकर एकरूप नही बनाया जा सकता। यदि कुछ लोगो को बाहरी चोट(प्रवचन)से काट–छाँट कर ईमानदार बनाया गया बाकि बेईमान रह गये, तो उनकी भौतिक सफलता देखकर वे प्रवचन को सत्संग स्थल की धूल–मिट्टी की तरह वहीं झाड़कर घर पहुँच जायेगे।

इस समय आर्थिक भ्रष्टाचार चरम सीमा पर है और यह तब तक समाप्त नही हो सकता, जब तक भौतिक भ्रष्टाचार का खात्मा नही हो जाता। भले ही इस समय अन्ना हजारे के नेतृत्व में भ्रष्टाचार के विरूद्ध मुहिम चल रही हो, लेकिन उससे कुछ खास होने वाला नही है। जब तक लोगो की सोच नही बदलेगी, धन–सम्पत्ति के लिए लोभ खत्म होने वाली नही है। हमारे देश में सबसे ज्यादा कानून है फिर भी भ्रष्टाचार बढ़ता जा रहा है जैसे– सी0बी0आई, सी0वी0सी, सूचना का आधिकार, आयकर विभाग, विभागीय भ्रष्टाचार विरोधी प्रकोष्ठ, आयकर विभाग आदि विभिन्न एजेंसिया होने के बावजूद भ्रष्टाचार पर रोक नही लग रही है, तो जन लोकपाल बिल कितना ही कठोर कानून क्यों न बन जाए, क्या गारंटी है कि उनसे भ्रष्टाचार मिट जायेगा। यहाँ बुद्ध का उपदेश बहुत सार्थक है किसी भी प्रकार तृष्णा और अति से बचना'' ही बौद्विक और आर्थिक भ्रष्टाचार के विरूद्वसार्थक प्रक्रिया है। यह उपदेश लगभग एक हजार वर्षों से अधिक समय तक भारत की भूमि पर मजबूती से स्थित रहा। चूंकि यह धर्म बौद्विक है इसलिए वही सफल हो सकता है जहां लोग पढ़े–लिखे हो। कर्मकाण्ड एवं ईश्वरीय सत्ता आदि को इसमें स्थान न मिलना इसके ह्रास का कारण रहा। आम आदमी कर्मकाण्ड मोक्ष और अदृश्य सत्ता से ज्यादा प्रभावित होता है। इसलिए इसे व्यवस्था का एक अंग बनाकर भ्रष्टाचार में कमी की जा सकती है।

सभी लोग मिलकर सारा काम छोड़कर यदि अन्ना हजारे के मुहिम में शामिल हो गये तो क्या भ्रष्टाचार खत्म हो सकता है? सम्भव नहीं क्योंकि भ्रष्टाचार खत्म करना सभी के लिए लाभप्रद नहीं है। सरकारी कर्मचारी और व्यापारी को जिस भ्रष्टाचार के सहारे सम्पन्नता मिल रही है, वे इस विरोधी मुहिम में दिल से शामिल नहीं होंगे। जिन्हें भ्रष्टाचार से सरकारी काम कराने में सहूलियत मिल रही है, समय बच रहा है वे भ्रष्टाचार खत्म करनें में कैसे दिलचस्पी लेंगे। जिन्हें वर्तमान परम्पराओं एवं कानूनों ने दोयम दर्जे का नागरिक मान रखा है। वे भ्रष्टाचार को भोजन देंगे इसलिए कि यह भ्रष्टाचार रूपी दीमक जितनी जल्दी इस व्यवस्था को खाकर नष्ट कर दें उतनी जल्दी इस दुर्व्यवस्था से आजादी मिलेगी। जैसे– स्त्रियाँ सती प्रथा वाले आचार की रक्षा के लिए किए जाने वाले आन्दोलन का समर्थन क्यों करेंगी? जन्म आधारित ऊँच–नीच वाली सामाजिक वर्ण व्यवस्था की रक्षा में शुद्र समाज के लोग क्यों शामिल होंगे? जन्म से अमीरी–गरीबी देने वाले असीमित विरासती कानून (एक जन्म से अरबपति दूसरा जन्म से भिखारी) का असर समाज के लोगों पर समान रूप से नहीं पड़ता इसलिए जन्मना गरीबी की व्यवस्था की रक्षा में गरीब लोग क्यों कूदेंगे?

इसलिए भ्रष्टाचार को सबका आन्दोलन बनाने की बात छोड़िये, यह बहुमत का आंदोलन भी नहीं बन सकता। क्योंकि भ्रष्टाचार के समर्थक भ्रष्टाचार की ज्यादातर रकम खुद लेने की नियत रखते हैं सारे भ्रष्टाचार के विरोधी एक बैनर तले इसलिए भी नही आ सकते कि उनकी पीड़ा किसी एक केन्द्र से नहीं है। सभी अपनी–अपनी प्राथमिकता के केन्द्र पर हमला करनें के लिए आपस में ही लड़ जायेंगे। इसलिए एकता नहीं बनेगी, क्योंकि सबकी प्राथमिकता एक नहीं है अर्थात भ्रष्टाचार व्यक्तिगत लड़ाई नहीं है जो व्यवस्था के भ्रष्टाचार को मिटानें के लिए पूरा जीवन लगाये हैं वे व्यक्तिगत भ्रष्टाचार को नजर अन्दाज करते हैं। इन दो विरोधी गुटों में एकता होना कठिन है।

अब प्रश्न है सरकारी कर्मचारी को व्यापारियों ने भ्रष्ट किया या राजनेताओं ने?वास्तव में अमीरों ने सरकारी कर्मचारियों और राजनेताओं दोनों को भ्रष्ट किया। लेकिन उनमें उनका दोष नहीं है, क्योकि हमारी परम्पराएं और कानून उन्हे बिना मेहनत का अमीर बना देती है तो दोषी कानून हुए। जैसे राम और श्याम दोनो एक साथ पढ़ते है। राम गरीब परिवार का है और श्याम के पिता करोड़पति हैं। दोनो उच्च शिक्षा ग्रहण कर लिए राम श्याम से हमेशा ज्यादा अंक पाता है, लेकिन बड़े होकर दोनो बेरोजगार हो गये। श्याम अपने पिता के कारण दस ट्रकों का मालिक है और कार से घूमता है। राम के पास साईकिल भी नहीं लिहाजा सोचा क्यों न राजनीति की जाय किस्मत

रही तो मैं भी करोड़पति बन जाऊंगा। वह एक दिन अपने मित्र श्याम के पास गया और चंदा मांगा श्याम ने कुछ काम करने की सलाह दी। व्यंग किया –'तुम लोग बिना मेहनत के रोटी खाना चाहते हो कोई काम नहीं तो राजनीति ही करनें लगे'' इस प्रकार कुछ नसीहतों के बाद कुछ धन चन्दे के रूप में दे दिये। राम की किस्मत लौटी और इस बार वह चुनाव जीत गया। अगली बार फिर चुनाव के समय राम श्याम के पास गया। तब श्याम ने कहा ''तुम राजनेताओं की बेईमानी में जीने की आदत पड़ गई है। अब तक अपमान सहने वाले राम ने कहा–दस ट्रकें तुमने अपनी मेहनत से खरीदी थी क्या वह बेइमानी, हरामखोरी से नहीं मिली है। राम की बात सुनकर श्याम को लगा जैसे उसका नौकर उसे धमका रहा है, क्योंकि हर मालिक का स्वभाव होता है वह गलती करें लेकिन सजा नौकर को मिलें। इसीलिए सबक देने के उद्देश्य से अगले चुनाव में श्याम ने पानी की तरह पैसा बहाया और चुनाव जीत गया। और राम जैसे नेताओं को सबक मिल गया कि भ्रष्टाचार अमीरों का विशेष अधिकार है।

लोकतंत्र को दीर्घायु बनाने के लिए आर्थिक विषमता को एक सीमा के दायरे में बांधकर संविधान के उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है। भ्रष्टाचार के विषय में कई भ्रामक धारणाए है। जिन पर विचार करना चाहिए यदि इससे वास्तव में हम छुटकारा चाहते हैं, जैसे– भ्रष्टाचार जीवनशैली बन गया और अब इसकी जड़ें इतनी फैल चुकी है कि इसे समाप्त नहीं किया जा सकता या भ्रष्टाचार जनतंत्र में अत्यधिक आजादी देने का परिणाम है, या गरीब और पिछड़े देशों के लोग सामान्यतः बेईमान और अविश्वसनीय होते हैं। और आसानी से लोभवश भ्रष्टाचार कर बैठते हैं या भ्रष्टाचार प्रमुखतः राजनीतिज्ञों के कारण फैलता है। यह सभी भ्रामक तथ्य समाज को गुमराह करने वाले हैं, भ्रष्टाचार रोकने के प्रावधानों को बनाते समय इनसे सावधान रहना चाहिए।

भ्रष्टाचार कम करने के लिए हमें कानूनी कार्यविधि और प्रशासन पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए विशिष्ट स्तर, विशिष्ट व्यक्तियों के विशेष स्थितियों में काम करनें और व्यवहार करने के सम्बन्ध में परम्परा कानून और नियमों में परिवर्तन होना चाहिए। यदि कानून/नियम अत्यन्त कठोर, जटिल और द्विअर्थी है तो इससे भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन मिलता है कानून ऐसे न हो कि उनमें विवेक का अत्यधिक प्रयोग हो। चुनाव के खर्चों पर सख्ती से नियंत्रण लगाया जाये। भ्रष्टाचार को सफलता से रोकने के लिए समाज का सहयोग होना चाहिए। इसके अतिरिक्त लोकपालों की नियुक्तियां उच्चासीन लोगों के विरूद्वभ्रष्टाचार की जांच एक प्रभावी तरीका है लोकपाल के पास स्वतंत्र जांच तंत्र होना चाहिए। उनकी सिफरिशों को कानूनी दर्जा दिया जाना चाहिए और संसद पटल पर रखकर प्रचार माध्यमों द्वारा प्रकाशित किया जाना चाहिए।

अन्ततः कहा जा सकता है कि आजकल भ्रष्टाचार लोगों को कोई नुकसान नहीं पहुँचाता। यदि किसी प्रकार आरोपी पकड़ा भी गया तो मंत्री और बड़े अधिकारी आराम से समाज में खुला घूमते हैं यदि दण्डित किया भी गया तो स्थानान्तरण कर दिया जाता है। जब तक भ्रष्टाचार पर नैतिक, कानूनी और सामाजिक प्रतिबन्ध नहीं लगते तब तक इसको समाप्त करनें या कम करनें की सम्भावना नहीं है। वैसे भ्रष्टाचार को सभी स्तरों पर उखाड़ फेंकना सम्भव नहीं है। लेकिन इसे सहनशीलता की सीमा तक रोकना सम्भव है। भ्रष्टाचार एक कैंसर की तरह है इससे हर भारतीय को सावधान रहना है। सार्वजनिक जीवन में ईमानदार लोग, जो अपने चरित्र और ईमानदारी के लिए सुविख्यात हैं। आर्थिक क्षेत्र में सरकारी नियंत्रण की कमी उदारीकरण की नीति और चुनावी खर्चे में नियंत्रण भ्रष्टाचार को रोकने के महत्वपूर्ण नुस्खे हैं। लोगो ने भ्रष्ट व्यक्तियों को बहुत समय से सहन किया है। अब समय आ गया है राजनीतिक शासको द्वारा भ्रष्टाचार को रोकने पर विचार करने का। वास्तव में अधिकतर भ्रष्टाचार इसलिए बढ़ता जा रहा है कि लोग सहनशील होते हैं इसके विरूद्वहल्ला करना जहमत उठाने सादृश समझते हैं। अन्ना हजारे की तरह शक्तिशाली मंच की आवश्यकता है।

यद्यपि अनेक बुद्वजीवी, शिक्षित, सुपरिचित और स्पष्टवादी नागरिक देश की विकराल समस्या के प्रति चिन्तित हैं, लेकिन वे अपना विरोध शक्तिशाली जनमत बनाने में नहीं लगा पाते और असफल हो जाते हैं। जिम्मेदार और जागरूक नागरिकों का सम्मिलित प्रयास भ्रष्टाचार के स्तर को नीचे गिरा सकता है। हमारे विश्वविद्यालय के छात्र भी इस प्रकार की बुराई को समाप्त करने के लिए समाजोन्मुखी उद्देश्य को लेकर आन्दोलन प्रारम्भ कर सकते हैं। हाल ही में अन्ना हजारे ने एक ऐसा शक्तिशाली मंच दिया जहां से लगभग समाज को हर तबके द्वारा उनसे जुड़कर भ्रष्टाचार के विरूद्ध एक साथ खड़े होकर सामूहिक प्रयास से भ्रष्टाचार को पराजित करने की सफल कोशिश की गई है।

सन्दर्भ संकेत

1. Chaudhary P.C. Corruption inSeminar, No 421, September 1994.
2. Kohli Suresh Corruption in India, 1948.
3. Malhotra, K .L. Facets of Vigilance, Malhotra Publications, Delhi 1988 and 1992.
4. भरत गांधी, 'जनोपनिषद (देशप्रेम से वतन प्रेम तक) विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण 2006 पृ0 35–40।
5. Monterio, J.B. Corruption, Manaktalas Bombay 1966.
6. Sunday Calcutta, 27 November-3 December 1994.
7. आहूजा राम ''सामाजिक समस्याएं'' द्वितीय संस्करण रावत पब्लिकेशन्स, 2000 पृ0 433–450।
8. Write Panald and Simpkins Edgar Corruption in developing countreis, London 1963.
9. अमर उजाला, मंगलवार, 17 मई 2011

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

पर्यावरण समस्या एवं अर्थशास्त्र

प्रभाकर सिंह
प्रवक्ता, अर्थशास्त्र
पटेल विद्यापीठ महाविद्यालय, बरौर, कानपुर देहात

आधुनिक समय में सम्पूर्ण ग्लोब पर्यावरण संकट से ग्रसित है। यह संकट अब किसी एक विषय से न बंधकर अपितु अन्तर्विषयक बन चुका है। यही कारण है कि प्राथमिक से लेकर उच्चतर अध्ययनों, संगोष्ठियों और कार्यशालाओं में इस संकट की प्रकृति समझने एवं उसके समाधान के प्रयास किये जा रहे है। प्रयास की इस कड़ी में अर्थशास्त्र भी अपनी भूमिका की तलाश कर रहा है।

शोधपत्र पर्यावरण संकट एवं अर्थशास्त्र की विवेचना पर केन्द्रित है। अतः विषय का विवेचन करने के लिये पर्यावरण और अर्थशास्त्र को समझना होगा। वस्तुतः पर्यावरण एक कवच है और अर्थशास्त्र उस कवच में जीवन और विकास को गति देने वाला विषय है, अतः पर्यावरण और अर्थशास्त्र का गहरा सम्बन्ध है। परन्तु ग्लोबल स्तर पर जीवन और विकास पर मानव की आर्थिक जीवन दृष्टि ने पर्यावरण और अर्थशास्त्र के मधुर सम्बन्ध में परिवर्तित कर दिया है और ज्ञातव्य है कि ग्लोबल स्तर पर दो आर्थिक जीवन दृष्टि है– प्रथम पाश्चात्य आर्थिक जीवन दृष्टि और द्वितीय भारतीय आर्थिक जीवन दृष्टि।

पाश्चात्य आर्थिक जीवन दृष्टि जीवन और विकास पर यथार्थवादी अर्थशास्त्र की वकालत करता है और अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु स्वहित का सिद्धान्त, माँग और पूर्ति का सिद्धान्त, मुक्त व्यापार, पूर्ण प्रतियोगिता और अहस्तक्षेप की नीति को व्यावहारिक रूप देता है। वह वैश्वीकरण में निजी लाभ का भाव छिपाये हुए है। कार्ल मार्क्स जीवन और विकास पर भौतिकवादी चिन्तक है। वह अपने चिन्तन में विचार, भाव व आत्मा को स्थान ने देकर क्रिया और वास्तविकता को स्थान देते है। वह कहतें है कि अस्तित्व से चेतना का निर्धारण होता है, चेतना अस्तित्व का निर्धारण नही करती। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो0 जे0 एम0 कीन्स ने आय, उत्पादन व रोजगार को बढ़ाने के लिये प्रभावकारी मांग में वृद्धि की बात की है। इसके विपरीत भारतीय आर्थिक जीवन दृष्टि जीवन और विकास पर मूल्यपरक अर्थशास्त्र की वकालत करता है और बताता है कि जो अर्थशास्त्र नैतिक एवं भावात्मक मूल्यों की उपेक्षा करता है जिसमें जीवन होते हुये भी एक सजीव जीवन का अभाव रहता है। अतः भारतीय आर्थिक जीवन दृष्टि का अर्थशास्त्र श्रम की प्रतिष्ठा लघु उद्योग एवं विकेन्द्रीकरण, कृषि अर्थव्यवस्था प्रकृति संरक्षण, सादगी एवं समानता और सर्वोदय के विचार पर केन्द्रित है तथा यह वसुधैव कुटुम्बकम का संदेश देता है।

तीव्र आर्थिक विकास की प्रचलित धारणा उत्पादन वृद्धि एवं तीव्र आर्थिक वृद्धि दर को मानव विकास एवं राष्ट्र की उन्नति का आधार मानती है। इस धारणा को स्वीकार करने के बाद 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से अब तक हुई आर्थिक संवृद्धि एवं उसे प्राप्त करने के तौर तरीकों ने पर्यावरण प्रदूषण एवं परिस्थितिकी असन्तुलन को एसी दशा में ला दिया जिसने मानव एवं जीवधारियों के अस्तित्व को ही खतरा उत्पन्न की दिया। इस से मुकित पाने के लिये दीर्घकालिक विकास की अवधारणा ने जन्म लिया दीर्घ कालिक विकास की अवधारणा ऐसी प्रक्रिया को स्वीकार करती है जो मानव की वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति एवं श्रेष्ठ जीवन स्तर को बनाये रखते हुये भावी पीढ़ी के हितों को भी ध्यान में रखे। इसमें आर्थिक गतिविधियों के संचालन में पर्यावरणीय चिन्ताओं को ध्यान में रखा जाता है।

तीव्र आर्थिक विकास के संकट को खतरनाक बिन्दु तक पहुंचा दिया, जिसके अनेक दुष्परिणाम सामने आ

रहे है। इन दुष्प्रभावों से बचने के लिये दीर्घकालिक विकास की प्रक्रिया को अपनाने की आवश्यकता है। दीर्घकालिक विकास प्रक्रिया को अंगीकार करने में कुछ मुद्दे उत्पन्न होते है, जिन पर अध्ययन की आवश्यकता है। ये मुद्दे है– जनसंख्या को किस स्तर पर कायम रखा जाय और कैसे? अर्थात एक उपयुक्त जनसंख्या नीति पर विचार, खाद्यान्न एवं भोज्य पदार्थो की बढ़ती आवश्यकता की पूर्ति किस प्रकार की जायें ताकि पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव न पड़े अर्थात उपयुक्त कृषि नीति पर विचार, वर्तमान जनसंख्या की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु ऐसी औद्योगिक उत्पादन प्रणाली पर विचार जिसका पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव न पड़े। पर्यावरण सन्तुलन के अनुकूल उर्जा नीति, परिवहन प्रणाली एवं प्रौद्योगिकी पर विचार।

दीर्घकालिक विकास प्रक्रिया से जुड़े इन मुद्दों पर उपयुक्त विचार एवं विमर्श की आवश्यकता है।

परिस्थिति के अनुसार समृद्धि एवं सम्पन्नता का स्वरूप तथा सामाजिक स्वीकार्यता बदलती रही है। वर्तमान शोध–पत्र बदली हुई परिस्थिति में हरी समृद्धि के महत्व एवं आवश्यकता पर प्रकाश डालने का एक प्रयास है। एक समय था, जब कार्लमार्क्स ने अस्तित्व को चेतना से अधिक महत्व प्रदान किया। परिणामस्वरूप भौतिकवाद की ऐसी आंधी चली, जिसने सार्वजनिक को व्यक्तिगत बनाने के प्रयास में तथा अधिक को और अधिक बनाने के प्रयास में समाज, राष्ट्र एवे पर्यावरण के प्रति अनिवार्य रूप से पायी जाने वाली चेतना को जड़ मूल से उखाड़ कर फेंक दिया और हमने भौतिक सुख–सुविधाओ के नाम पर आत्मघाती स्पेसशिप का निर्माण कर लिया। वर्ल्ड वाइड फण्ड फार नेचर के अनुसार हमारी सभ्यता तथा परम्परा की वाहक गंगा नदी, जो विश्व की दस प्रमुख नदियों में से एक है, का अस्तित्व खतरें में है।

आर्थिक विकास का वर्तमान स्वरूप इस संकट के लिये जिम्मेदार है, इससे अनेक पर्यावरणीय असन्तुलन उत्पन्न होंगे, जो जीव मात्र के अस्तित्व के लिये खतरा बन जायेंगे। आर्थिक विकास को मापने का वर्तमान समय में, जो त्रुटिपूर्ण पैमाना प्रचलित है, वैश्विक पूंजीवाद की देन है, जिसके अन्तर्गत जंगल को काट कर बेची गयी लकड़ी से प्राप्त आय को आर्थिक विकास का मापक मानती है, परन्तु जंगल कटने के कारण कार्बन डाई आक्साइड (CO_2) सोखने की क्षमता में आयी कमी पर विचार नही करती। अर्थात् जी0डी0पी0 की बात तो करती है, किन्तु ग्रीन डी0जी0पी0 की उपेक्षा करती है।

यदि वास्तविक बैलेन्सशीट बनायी जाये और आर्थिक विकास में नष्ट होने वाली पर्यावरणीय सम्पत्ति का आंकलन किया जाये तो हम पायेंगे कि आने वाली पीढ़ी के लिये एक दिवालिया संसार छोड़ रहे है। एक ऐसा संसार जिसके प्राकृतिक संसाधनों के आखिरी बूंद तक निचोड़ ली गयी है। एक अध्ययन के अनुसार पचास वर्षो में धरती की एक चौथाई मिट्टी उधेड़ दी गयी, एक तिहाई जंगल साफ कर दिये गये, तथा प्रतिवर्ष पीने के पानी का छः प्रतिशत भण्डार कम होता जा रहा है।

टाटा एनर्जी एंण्ड रिसोर्स इन्स्टीच्युट के अध्ययन के अनुसार, आजादी के पहले पचास सालों के दौरान भारत अपने सकल घरेलू उत्पाद का दस प्रतिशत पर्यावरणीय लागतों तथा प्राकृतिक संसाधनों में हास की कीमत के रूप में गंवा चुका है। अमेरिका जीवाश्व ईधन के विकास पर बीस अरब डालर अनुदान प्रदान करता है। देखा जाये तो यह अनुदान एक प्रकार से वातावरण में कार्बन डाई आक्साइड घोलनें के लिये प्रदान किया जा रहा है। यह ग्लोबल वार्मिंग को तेजी से बढ़ा रहा है। मानव भौतिक सुख सुविधाओ में विस्तार के लिये पृथ्वी की क्षमता से अधिक प्राकृतिक संसाधनों का विदोहन कर रहा है। जितना पानी वर्षा एवं नदियो से मिल रहा है, मानव उससे अधिक का उपभोग कर रहा है। वह इतने पेड़ काट रहा है, जितना उगाना सम्भव नही है। वह इतना कार्बन डाई आक्साइड वातावरण में घोल रहा है, जितना कि पृथ्वी सोख नहीं सकती, तथा वह पृथ्वी की उर्वरता इतनी तीव्रता से कम रहा है कि जिसकी भरपाई करना सम्भव नही है।

प्राकृतिक पूंजी का यह अति दोहन शीघ्र ही वर्तमान व्यवस्था को समाप्त कर देगी। अतः यदि हमें अपना

तथा, पारिस्थितिकी के अस्तित्व को दीर्घ काल तक अक्षुण्ण बनाए रखना है, तो हरी समृद्धि को प्राथमिकता देनी चाहिये, जहां प्राकृतिक पूंजी का पूर्ण सम्मान एवं उचित मूल्यांकन हो।

यू0 एन0 आफिस फार द क्वार्डिनेशन ऑफ ह्यूमेनिटेरियन अफेयर ऐण्ड द केयर इण्टरनेशनल से संयुक्त तत्वाधान में किये गये अध्ययन से यह निष्कर्ष निकला कि ग्लोबल वार्मिंग की दृष्टि से आने वाले 20–30 वर्षो से भारत, पाकिस्तान, अफगानिस्तान तथा इण्डोंनेशिया सर्वाधिक संवेदनशली क्षेत्र है।

सन्दर्भित देश जो पहले से ही राजनैतिक, सामाजिक, प्रजातान्त्रिक और सुरक्षा संबंधी अनेक समस्याओ से ग्रस्त है, ऐसे में ग्लोबल वार्मिंग के कारण जलवायु में होने वाले परिवर्तन असहनीय परिणाम उत्पन्न करेंगे।

प्राकृतिक आपदाओं में वृद्धि जलवायु में होने वाले असमय परिवर्तन, पृथ्वी के तापमान में हो रही वृद्धि से समाज के सबसे उपेक्षित वर्ग महिला, बच्चे तथा सीमान्त वर्ग के लोगों के सामाजिक एवं आर्थिक अस्तित्व पर ही संकट उत्पन्न हो जायेगा।

अतः ग्लोबल स्तर पर जीवन और विकास दो आर्थिक जीवन दृष्टि का होना और उसमें समन्वय का अभाव चिन्तन का बिन्दु है और शोधपत्र में इन्हीं दोनों आर्थिक जीवन दृष्टियों की भूमिका को रेखांकित कर पर्यावरण संकट की प्रकृति को समझने एवं उसके समाधान हेतु समुचित ग्रीन जी0 डी0 पी0 एवं इको फ्रेंडली आधारित अर्थशास्त्रीय उपाय सुझाया जा सकता है।

सन्दर्भ संकेत

1. भारतीय अर्थव्यवस्था, रूद्र दत्त के0 पी0 एम0 सुन्दरम।
2. पर्यावरण अतिरिक्तांक (प्रतियोगिता दर्पण)।
3. साहित्य सीरिज।
4. योजना।

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

भारतीय सिनेमा की विकास यात्रा के सौ वर्ष : एक मूल्यांकन

डॉ० सीता जड़िया
प्रवक्ता –समाजशास्त्र
सेठ वीरेन्द्र कुमार महाविद्यालय, जिला जालौन (उ.प्र.)

आज दुनिया भर मनोरंजन का सबसे अच्छा और सबसे सस्ता माध्यम है। सिनेमा फ्रांस की देन है। भारत में सिनेमा का प्रवेश वर्ष 1896 ई0 में हुआ था। जब 7 जुलाई को बम्बई के बाटसन होटल सेल्युमिएट मूविंग पिक्चर्स का पहला सिनेमैट्रोग्राफ शो हुआ दिलचस्प बात यह है कि ल्युमिएट ब्रदर्स ने दुनिया में अपना पहला शो पेरिस में दिसम्बर सन् 1895 ई0 में किया था और महज छह माह बाद ही मनोरंजन की नई हवा भारत में आ गई।

शीघ्र ही मुम्बई के नॉवेल्टी थियेटर में ल्युमिएर मूविंग पिक्चर्स के नियमित शो प्रारम्भ हो गये। अग्रेजों के लिये बाट्सन होटल में टिकट दर एक रूपये तथा नॉबेल्टी में देशी दर्शकों के लिये टिकट का मूल्य चवन्नी था। तब भारतीय समाज सिनेमा को इतनी तेज दृष्टि से देखता था कि फिल्मों के शौकीनों को व्यंग्य में चवन्नी हाथ कहा जाने लगा।

भारत में लघु फिल्मों का श्रेय कोलकाता के हीरालाल सेठ को जाता है। उनकी पहली फिल्म थी 'फ्लावर आूफ पशिया' और वर्ष था 1898 उनके बाद स्टीवेशन आदि इस मैदान में उतरे। लघु फिल्मों की अवधि 2 से 3 मिनट और इनके विषय समाचारों पर आधारित होते थे।

भारत की पहली फीचर फिल्म राजा हरिश्चन्द्र थी जिसके बनने की शुरूआत सन् 1912 ई0 में हो गयी थी। इस प्रकार भारत में फिल्म बनाने की उम्र सौ साल होने को है। धुडिराज गोविन्द फाल्के ने इस फिल्म के लिये अपनी जी जान लगा दी। यहां तक की अपनी पत्नी के गहने एवं बीमा पालिसी को भी गिरवी रखना पड़ा और फिर सात समंदर पार जाने को पैसा जुटाया था। वहां दो महीनों से कुछ ज्यादा वक्त बिताकर जब वे भारत लोटे तो उनके पास सिनेमा के उपकरण और ब्रिटिश फिल्मकार सेसिल हैववर्थ की सरपरस्ती ही नहीं, खुली आंखों से देखे जाने वाले सपनों से भरी एक पोटली भी थी। वह सपने जो दुनिया की डिक्शनरी में हिन्दुस्तान का सिनेमा कहलाते हैं।

हिन्दुस्तान की पहली 'भारतीय फीचर फिल्म' राजा हरिश्चन्द्र बनाकर भारतीय सिनेमा के पितामह कहलाये दादा साहब फाल्के ने आज से 100 साल पहले जुनून की जिन लहरों पर सवारी की थी, वह आज सुनामी बन चुका है।

भारतीय सिनेमा जगत और इसका सबसे चमकदार चेहरा बॉलीबुड आज दुनिया भर के सबसे ज्यादा फीचर फिल्में बनाता है। हर साल औसत 1000 फीचर फिल्मों (वर्ष 2009 में तो यह 1982 का रिकार्ड तोड़ आंकड़ा था), के साथ भारत तकनीक और पैसे के कई गुना अब्बल हॉलीवुड से (जहां साल में औसत 600 फिल्में बनती हैं) भी बहुत आगे है। यह भी स्थापित तथ्य है कि बालीबुड की वर्तमान दशा और दिशा पर तमाम बहस मुवाहिसों के बावजूद हिन्दी फिल्में ब्रिटेन और अमेरिका की बाक्स आफिस ब्लैक वस्टर लिस्ट में जगह पाती है।

इसी के साथ अर्न्तराष्ट्रीय फिल्म समारोहों के भारतीय सिनेमा की संवेदनशील फिल्में क्लसिक पैनोरेमा में जगह पाती है। क्रैम्बिज से लेकर मैसाचुसेट्स ओर कोलंबिया यूनिवस्रिअी तक में सिनेमा गंभीर विद्यार्थियों के बीच 'पथेरपांचाली' से लेकर शोले तक पर शोध कार्य आम बात है।

भारतीय फिल्मों ने विदेशों में भी पैठ बनाई है। इसकी शुरूआत छठें दशक में हो चुकी थी। जब राजकूपर की आवारा तत्कालीन सेावियत संघ और चीन के आम दर्शकों को पसन्द आई थी। भारत सरकार ने विदेशों में फिल्मां के प्रचार–प्रसार में सक्रिय रूचि नहीं ली तो भी व्यक्तिगत और गैर सरकारी कोशिशों से भारतीय फिल्में विदेशों में जगह बनाती रही। अब हॉलीबुड की घोर कामर्शियल फिल्मों में भी भारतीय कलाकार आने लगे। जुलाई में रिलीज होने वाली ''द अमेजिंग स्पाइडर मैन'' इस फिल्म में भारतीय अभनेता इश्फाम खान का कुछ माह पहले आई ''मिशन इम्वासिवल'' में अनिल कपूर दिखे थे। विदेशी फिल्मों में भारतीय कलाकारों की मौजूदगी कोई नयी बात नहीं हे।

करीब एक दशक पहले शेखर कपूर ने कहा था ''भविष्य में स्पाईडर मैन अपना मास्क उतारेगा तो कोई एशियाई या भारतीय चेहरा नजर आ सकता है'' ग्लोबलाइजेशन के दौर में भारतीय फिल्में एवं कलाकार अपनी अलग ही छवि बनाये हैं। सामाजिक सच्चाईयों एवं विसंगतियों को उकेरती भारतीय फिल्में दो ढ़ाई दशकों तक इन्टरनेशनल फस्टिवल के दर्शकों एवं समीक्षकों की पसन्द बनी रही। विभिन्न देशों में निरन्तर चल रहे भारतीय फिल्म समारोहों और पुनरावलोकनों से साफ जाहिर होता है कि भारतीय फिल्मों में विदेशी दर्शकों की रूचि बढ़ी है।

'भव्य भारतीय सिनेमा' का यह शताब्दी वर्ष है और इसे यादगार बनाने के लिये देश भर में आयोजनों का सिलसिला शुरू हो रहा है। अतः भारतीय फीचर फिल्मों का इतिहास दादा साहब फाल्के से माना जाता है। उनकी सोच के मुताबिक भारतीय सिनेमा जगत एक ऐसे खूबसूरत बगीचे में तब्दील हुआ है। जहां न केवल मलयालम, बंगाली से लेकर पंजाबी और गुजराती से लेकर भोजपुरी सिनेमा तक के फूल खिलते हैं। बल्कि, देश की सभी भाषाओं और प्रान्तों की श्रेष्ठ प्रति भाषों से मिलकर बनता है। इस बगीचे का बॉलीबुड नामक ग्लैमर गुलदस्ता।

हिन्दी फिल्मों के अब तक के सौ सालों के सफर में फिल्में हिन्दुस्तान का शगल नहीं संस्कार बन चुकी हैं। जहां सुबह के भजन से लेकर रात की लोरी तक, जहां भक्ति से लेकर देशभक्ति और बारात से विदाई तक सब कुछ सिनेमा के हवाले है। मजहब, मुहम्मबत, सियासत ओर पीढ़ियों की सरहद भी यहां सिनेमा ही तोड़ ताड़ किसी नगमें पर प्रधानमंत्री तक की आंख में आंसू आ जाये और किसी कलाकार के घूसा लगने पर करोड़ों दुआ में उठ जायें, यह करिमश भी इस देश में सिनेमा ने ही किया है।

आज के बदलते दौर ने जहाँ एक ओर हॉलीबुड ने देश के कोने–कोने में अपनी पहचान बनायी है वहीं दूसरी ओर हॉलबुड पर हमार बॉलीबुड (भारतीय सिनेमा) भारी पड़ रहा है। हॉलीबुड के सिनेमा ने विश्व के सभी सिनेमा के विकास को बाधित किया है, लेकिन भारतीय सिनेमा स्थानीय विशेषताओं के साथ टिका रहा। भटकावो और विदेशी प्रभावों के बावजूद भारतीय सिनेमा मजबूती से हर मुकावले के लिये तैयार है। इस प्रकार आने वाले सालों में भारतीय सिनेमा हर चुनौती के लिये तत्पर है। हमारी कोशिश यही होनी चाहिये कि दुनिया हमें जाने। अतः आज से 100 साल पहले शुरू हुये एक सफर ने बोया भारतीय सिनेमा का वह बीज जिसकी जड़ें आज जमी हैं। हर हिन्दुस्तान एवं दुनिया के कोने–कोने में यह हमेशा इसी तरह बरकरार है।

सन्दर्भ संकेत

1. दैनिक जागरण – 5 फरवरी 2013, कानपुर
2. मनोरमा – 2008
3. दैनिक जागरण – अप्रैल 2013, कानपुर

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

आतंकवाद के विनाशकारी खतरे

डॉ0 भावना यादव•

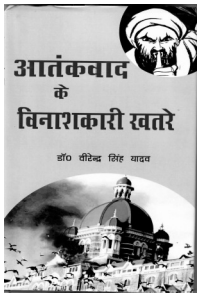

हाल के समय में बिट्रेन के सामने आये दो अध्ययन समुदाय विशेषों या विशिष्ट धार्मिक मान्यता वालों को निशाने पर रखने की नीति पर प्रश्न चिह्न लगाते हैं एक अध्ययन बिट्रेन की चर्चित खुफिया एम0 आई0 जी0 5 की ओर से सामने आया है और दूसरा अध्ययन बिट्रेन के पुलिस महकमें ने किया है। एम0 आई0 जी0 5 का अध्ययन कहता है कि त्वचा के रंग, नस्ल और राष्ट्रीयता के आधार पर आतंकी की रूपरेखा बनाना संभव नहीं है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उसने आतंकवाद तथा मजहबी कट्टरता के बीच भी किसी किस्म के रिश्ते को सिरे से खारिज किया। रिपोर्ट के मुताबिक वही आतंकी घटनाओं में शामिल अधिकतर लोग बिट्रेन के ही नागरिक थे और इनमें से आधे लोग वहीं जन्में थे। इन विभिन्न नस्लों में पाकिस्तानी, दक्षिण एशियायी और श्वेत पृष्ठभूमि के लोग शामिल थे।

वर्तमान आतंकवाद पर टिप्पड़ी करते हुए सम्पादकीय में डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव ने लिखा है कि इस समय भारत में आतंकवादियों का एक अन्य रूप भी उभरा है इसको देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि उनका कट्टरपंथी होना जरूरी नहीं है और न ही वे 'अंडरवर्ल्ड' से सम्बद्ध हैं। उन्होंने अपना हौसला जुटा लिया है कि वे लोगों को यह निर्देश दे सकते हैं कि वे किस तरह का जीवन जिएँ ?'' वे सर्वत्र हैं, किन्तु महाराष्ट्र में वे सबसे अधिक प्रखर हैं। वे अक्सर रचनाधर्मी लोगों, फिल्म स्टारों अथवा लेखकों, कलाकारों को इसलिए निशाना बनाते हें क्योंकि ऐसा करने से लोगों का ध्यान उनकी ओर जाता है। इससे उनमें मिथ्याभिमान की भी झलक मिलती है और उन्हें यह भ्रामक सन्तोष भी मिलता है कि उन्होंने ऐसे ख्याति नाम लोगों को झुका दिया है जिनके समतुल्य वे कहीं नहीं टिकते। हमें आज उनके मजहब से भ्रमित नहीं होना चाहिए, क्योंकि वे समाज के अभिशाप हैं। उनका मजबूत पक्ष यह है कि वे सरकार से साठगाँठ कर कारगुजारी करते हैं। उन्हें यह दिखा है कि समाज उनसे टकराने में सक्षम नहीं है। वे राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने के आकांक्षी हैं, मगर उनकी यह तमन्ना शायद ही कभी पूरी होने के समीप भी पहुँचे। मतदाता उनसे भय तो खाता है पर उन पर भरोसा नहीं करता।'' बड़ी विडम्बना यह है कि जब भी आतंकवाद से लड़ने की बात आती है, अधिक सक्रियता के बाद शुतुरमुर्गी रवैया ही अपना लिया जाता है। आखिर केन्द्रीय सत्ता कब तक संघीय पुलिस के गठन के सवाल पर राज्यों के समक्ष याचक की मुद्रा में खड़ी रहेगी ? क्या कोई बताएगा कि आतंकी घटनाओं के बाद मुख्यमंत्रियों अथवा राज्यों के पुलिस प्रमुखों की बैठक बुलाने की उठाबैठक से क्या हासिल होने वाला है ?ऐसी बैठकें तो आंतरिक सुरक्षा को मजबूत बनाने के उपायों पर आम असहमति का ही पर्याय बनकर रह गई हैं। आम लोगों में इस बात को लेकर असन्तोष होना स्वाभाविक है कि अभी तक हुए प्रमुख आतंकी हमलों में से एक भी मामला सुलझाया नहीं जा सका है।

पुस्तक की मान्यता साफ है कि आंतकियों का उद्देश्य हमारे सामाजिक सौहार्द को छिन्न–भिन्न करना, समाज को बाँटना, तनाव बढ़ाना और उन्नति को वांछित करना है। इसलिए वे अपनी गतिविधियों को बढ़ाएंगे आंतकवाद के खिलाफ संघर्ष लम्बा खिंचने के अवसर हैं। क्या हमारे राजनेता निहित स्वार्थों से ऊपर उठकर राष्ट्रीय हितों के लिए एकजुट होंगे।''अंत में यही कहा जा सकता है कि आतंकवाद के विरूद्ध लड़ाई ईमानदारी से होनी चाहिए और न्यायिक कसौटी पर खरे उतरने के लिए तथ्यात्मक आधार भी पुष्ट होने चाहिए।

हमें उम्मीद है कि शिक्षित युवा ही नहीं बल्कि शिक्षा जगत से सम्बद्ध ,विद्वतजनों व समाज के प्रबुद्ध नागरिकों को आतंकवाद जैसे ज्वलंत विषय पर इन उन्नीस विद्वानों के बहुमूल्य एवं सारगर्भित विचार पसंद आएगें ।

पुस्तक का नाम – आतंकवाद के विनाशकारी खतरे संपादक – डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
पेज – 12 + 148 = 160 ISBN&978-93-88249-48-5 संस्करण–प्रथम.2019, मूल्य–1100.00
एम्पायर बुक्स इण्टरनेशनल,4831/24, प्रहलाद गली,अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002

•सहायक प्राध्यापक–राजनीति विज्ञान विभाग–शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

आतंकवाद : कारण और निवारण

डॉ0 उत्तरा यादव•

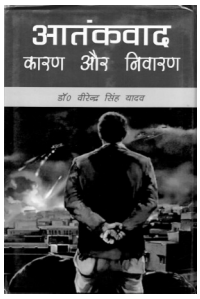

वर्तमान वैश्विक परिप्रेक्ष्य में आतंकवाद की जब हम बात करते हैं तो इसका ''सीधा सम्बन्ध साम्राज्यवाद से जुड़ा है, अमेरिका से जुड़ा है, न कि मुस्लिम समाज से। अमेरिका आतंक फैलाने का सबसे बड़ा केन्द्र है। वह आतंकवाद का इस्तेमाल कर अपना हित साध रहा है। वह समूची दुनिया को कमजोर कर रहा है। इसके साथ ही दुनिया को कमजोर कर वह स्वयं को महाशक्ति बनाए रखना चाहता है। इसी चाह में उसने सोवियत संघ को तोड़ा था। अब वह विकसित हो रहे चीन व भारत जैसे देशों को उलझाना चाहता है। हम जैसे–जैसे अमेरिका के करीब आएंगे, वैसे–वैसे आतंकवादियों के चंगुल में फंसते जाएंगे। जहाँ तक भारत में आतंकवाद की शुरूआत की बात है तो सर्वप्रथम भारत के पूर्वोत्तर राज्यों से इसकी शुरूआत हुई और वर्तमान में यह भारत के कोने–कोने पर इस आतंकवादियों के सने हुए पंजों से भारत बेहाल है। भारत में आतंकवाद के चार प्रकार जिनका हमारा देश सामना कर रहा है वे हैं – कश्मीर एवं पंजाब में उग्रवादी आतंकवाद प्रथक्तावाद द्वारा मजहबी राज्य की स्थापना के स्वप्न पर आधारित है। नागालैण्ड और मिजो आतंकवाद पहचान की संकट की स्थिति पर आधारित है। मणिपुर और त्रिपुरा का आतंकवाद 'परिवेदना' की स्थिति पर आधारित है। बंगाल, बिहार, उड़ीसा, आन्ध्र प्रदेश, झारखण्ड, छत्तीसगढ़, उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग में नक्सलवाद का आधार वर्ग विद्वेष है।

इस पुस्तक की मान्यता है कि भारत आज आतंकवाद, अलगाववाद के साथ–साथ नक्सलवादी आतंकवादी समस्या से भी जूझ रहा है। यह एक अलग तरह की समस्या है जो वामपंथी विचारधारा माओत्से तुंग के क्रांतिकारी दर्शन से अभिप्रेरित है जिसका प्रमुख लक्ष्य सामाजिक, आर्थिक न्याय पर आधारित व्यवस्था की स्थापना करना। ''माओ की इसी विचारधारा से प्रेरित होकर चारन मजूमदार एवं कनु सान्याल ने पश्चिमी बंगाल के दार्जिलिंग जिले के नक्सलवादी गाँव में क्रांतिकारी गतिविधियों की शुरूआत की इसलिए इन्हें नक्सलवादी कहा गया।'' नक्सलवाद का प्रमुख कार्य एवं उद्देश्य लोकतांत्रिक राजनीति का पूर्ण विरोध एवं जनक्रांति के द्वारा भूमिहीन किसानों को संगठित कर गुरिल्ला पद्धति द्वारा भूपतियों या जमींदारों के विरूद्ध खूनी संघर्ष का तरीका अपनाना है। वास्तव में नक्सलवाद को समाप्त करने के लिए इसके बीज को ही समाप्त करना होगा तथा इसके बाह्य तथा आतंरिक रूप से मिलने वाली उर्वरा शक्ति पर नियंत्रण करना होगा। सरकार को चाहिए कि तर्कसंगत रूप से भूमि सुधार को लागू करने के साथ ही इन क्षेत्रों में सामाजिक–आर्थिक परियोजनाओं का नियोजन इस प्रकार करें कि इन क्षेत्रों की बदहाली का आर्थिक निराकरण हो सके।

पुस्तक की मान्यता है कि विश्व सहित भारत में इधर दो दशक से इस्लामी आतंकवाद की समस्या एक चुनौती बनकर उभरी है। इस्लामी आतंकवाद की गतिविधियों से मध्य एशिया के साथ–साथ समूचा विश्व ग्रस्त होता दिखाई दे रहा है। इस्लामी आतंकवाद का मुख्य उद्देश्य धार्मिक उन्माद पैदाकर कथित मुस्लिम सिद्धान्तों को स्थापित करना है। कुछ लोगों का मानना है कि ये धर्म का सहारा लेकर आतंकवादी कैम्पों में प्रशिक्षण लेकर उन्माद फैलाते हैं। ऐसा माना जाता है कि इस्लामी आतंकवाद को हवा देने वाले देशों में प्रमुख रूप से पाकिस्तान और अफगानिस्तान है और सऊदी अरब से निष्कासित आतंकवादी ओसामा बिन लादेन इस इस्लामी आतंकवाद का सरगना (मसीहा) बना हुआ था। यहाँ पर एक बात स्पष्ट तौर पर कही ना जा सकती है कि आतंकी हिंसा में मरने वाले लोगों की लाशें, क्षतिग्रस्त इमारतें या जले हुए वाहन आतंकियों की सफलता का प्रमाण नहीं हैं, लेकिन अगर आतंकवाद ऐसी परिस्थिति पैदा कर दे कि हम राष्ट्रीय अखण्डता तथा अस्मिता के प्रश्नों पर अपनी मान्यताओं तथा आदर्शों की फिर से समीक्षा करने लगें या उनको संशोधित करने के लिए तैयार हो जाएँ तो यह निश्चित ही आतंकवाद की बड़ी सफलता है।

कुल मिलाकर पुस्तक अपने विजन को विषय वस्तु की दृष्टि से विल्कुल स्पष्ट करती है। प्राध्यापकों, शोध– छात्रों एवं जिज्ञासु पाठकों को यह पुस्तक उपयोगी होगी, ऐसी मेरी धारण है। डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव की प्रस्तुत सम्पादित पुस्तक आतंकवाद पर अंकुश एवं समाधान में आम–जन के मध्य जिज्ञासा एवं उत्सुकता पैदा करेगी, तो इसे लेखक अपनी मेहनत का प्रतिफल समझेगा।

पुस्तक का नाम – आतंकवाद : कारण और निवारण संपादक – डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
पेज – 12 + 156 = 168 ISBN : 978-93-88249-47-8 संस्करण – प्रथम, 2019, मूल्य – 1100.00
एम्पायर बुक्स इण्टरनेशनल, 4831/24, प्रहलाद गली, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002

• एसोसिएट प्रोफेसर–समाजशास्त्र विभाग – महिला महाविद्यालय, लखनऊ

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

आतंकवाद और भारत

डॉ. सुरेश कानडे•

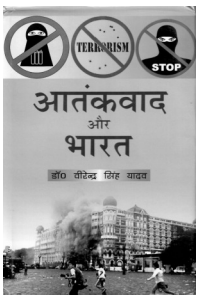

विश्व शान्ति, विश्व बंधुत्व एवं गुट निरपेक्षता का जनक भारत आज आंतकवाद, अलगाववाद एवं नक्सलवाद जैसी गम्भीर समस्याओं से जूझ रहा है। 'नक्सलवाद' एक ऐसी विचारधारा है जो चीनी क्रान्ति के नेता माओ–त्से–तुंग के दर्शन से प्रेरित है। इसका लक्ष्य सामाजिक, आर्थिक न्याय पर आधारित व्यवस्था का निर्माण तलवार के बल पर करना है। भारत में चारु माजूमदार एवं कानू सन्याल ने पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग जिले के 'नक्सलबाड़ी' गाँव से इसकी शुरूआत की। चूँकि क्रान्ति की यह चिंगारी 'नक्सलबाड़ी' से भड़की इसीलिए इसे 'नक्सलवाद' कहा जाता है। नक्सलवादी आन्दोलन का उद्देश्य वर्तमान लोकतांत्रिक राजनीति का विरोध, भूमिहीन किसानों को संगठित कर जमींदारों के विरुद्ध गुरिल्ला संघर्ष करना है। वर्तमान में पश्चिम बंगाल के अतिरिक्त आंध्रप्रदेश, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, बिहार, उत्तर प्रदेश, त्रिपुरा आदि राज्यों में नक्सलवादी क्रान्ति का प्रचार–प्रसार है। इन राज्यों में नक्सलवादी अपनी विध्वंसक कार्यवाही संचालित कर रहे हैं। इन्हें आई0 एस0 आई0 तथा नेपाल के आतंकी संगठनों से सहायता मिल रही है। भारत सरकार एवं राज्य सरकारों द्वारा नक्सलवाद को समाप्त करने के लिए बनाई गयी सुरक्षा नीतियों के बावजूद यह समस्या दिनों–दिन और उग्र होती जा रही है। इसके समाधान का कोई निश्चित उपाय नही है किन्तु यदि नक्सलवादियों को मिलने वाली विदेशी मदद को पूर्णरूपेण रोक दिया जाय तो सम्भव है इन पर नियंत्रण किया जा सके।

सम्पादकीय के माध्यम से डॉ. वीरेन्द्र का मानना है कि भारत एक ऐसे आंतकवादी राक्षस से निपट रहा है जो घृणा एवं अमानवीयता से आपाद मस्तक भरा हुआ है। इन परिस्थितियों में भारत का सामाजिक सौहार्द छिन्न–भिन्न हो रहा है, समाज विघटित होता है और तनाव अपनी पराकाष्ठा पर व्याप्त है। इसलिए भारतीय राजनेताओं को निहित स्वार्थों से ऊपर उठकर राश्ट्रहित एवं सर्वजन के हितों के लिए एकजुट होना होगा क्योंकि आतंकवाद के खिलाफ लड़ाई अधिक लम्बी खिंचने की गुंजाइश है। अमेरिका ने जिस तरह से आतंकवाद को युद्ध और हमला माना है, यही नीति भारत को भी अपनानी होगी। इधर के वर्शों में आतंकवादियों का दुस्साहस एवं पैठ बहुत बढ़ी हुई दिख रही है। आज सीमा पार के आतंकवादियों के साथ–साथ हमारे देश के विभिन्न राज्यों के नागरिकों के इसमें शामिल होने के प्रमाण मिले हैं। इससे स्पश्ट होता है कि जो काम पहले सीमा पार के आतंकी संगठन करते थे वही अब हमारे देशी आतंकी कर रहे हैं। यह बहुत ही खतरनाक स्थिति है। यदि समय रहते इस पर अंकुश लगाने के समुचित उपाय न किये गये तो परिस्थितियाँ अत्यन्त भयानक हो जायेंगी। जब आतंकवाद की चर्चा की जाती है तब यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि समाज के मानवीय पक्षों के प्रति भी ध्यानाकर्शण किया जाय।

कुल मिलाकर प्रस्तुत पुस्तक न केवल आतंकवाद को समाप्त करने पर बल देती है बल्कि आतंकवाद के सभी प्रारूपों को इंसानियत के खिलाफ भयानक गुनाह मानते हुए इससे लड़ने के लिए ऐसे कठोर अन्तरराष्ट्रीय कानून बनाये जाने को सरकार को प्रेरित करती है। जो आतंकवादियों के भीतर खौफ पैदा कर सकें। प्रत्येक देशों की खुफिया एजेंसियों में तारतम्य स्थापित किया जाय जिससे आतंकवादी गतिविधियों की पूर्व सूचना मिल सके। नागरिकों में राष्ट्रीय भावना का प्रसार, सभी धर्मों के अनुयायियों में आपसी भाई–चारा, न्यायपूर्ण–भेदभाव रहित शासन प्रणाली, पारदर्शी एवं सर्वजन हिताय नीतियाँ आतंकवाद को निर्मूल करने हेतु आवश्यक हैं। निर्दोश–निरपराध लोगों में दशहत पैदा करने वाले, इंसानियत की हत्या करने वालों का मकसद चाहे जो भी हो किन्तु उनकी ऐसी गतिविधियाँ बर्बरता के अतिरिक्त और कुछ नही कही जा सकतीं। भारत के लिए यह उचित समय है जब आतंकी बर्बरता के खिलाफ सम्पूर्ण राष्ट्र को एकजुट किया जाय। एकजुटता ऐसी हो जिससे आतंकवादियों को ही नही वरन् उनके समर्थकों एवं संरक्षणदाताओं को भी बेपर्दा किया जा सके।

पुस्तक का नाम – आतंकवाद और भारत संपादक – डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
पेज – 16 + 174 = 190 ISBN : 978-93-88249-46-1 संस्करण – प्रथम, 2019, मूल्य – 1100.00
एम्पायर बुक्स इण्टरनेशनल, 4831/24, प्रहलाद गली, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002

• एसोसिएट प्रोफेसर एवं हिंदी विभागाध्यक्ष्य–एस.एम.आर.के.–बी.के.–ए.के. महिला महाविद्यालय नाशिक, महाराष्ट्र (भारत)

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

आतंकवाद और समाज

प्रो0 दत्तात्रय मुरूमकर•

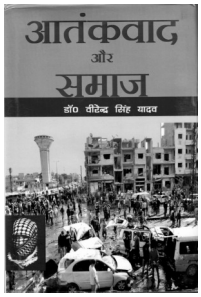

महाशक्ति बनने की राह में चलते हुए अमेरिका ने सम्पूर्ण विश्व में आतंक का प्रचार किया, खतरनाक अस्त्रों–शस्त्रों का व्यापक प्रचार–प्रसार किया। आज वह जिन देशों में शान्ति व्यवस्था बनाये रखने के नाम पर युद्ध जैसी स्थितियों को पैदा कर रहा है उनमें उसी के द्वारा पूर्व में आतंक के बीज बोये गये थे। उसकी हमेशा से यही नीति रही है कि कैसे भी विभिन्न देशों को शान्ति–अशान्ति के जाल में उलझाये रखा जाये और इसी के आधार पर अपनी विदेश नीति का संचालन किया जाये। अब देखने में आ रहा है कि हमारा देश विकसित देश होने की दिशा में अग्रसर है तो उसकी योजना है कि किसी न किसी रूप में हमारे देश में चीन से, पाकिस्तान की ओर से सम्बन्धों में खटास आ जाये। हम इस प्रकार के मंसूबों को समझे बिना ही अमेरिकी नीतियों का शिकार होते जाते हैं और अपने देश को आतंकवाद के दलदल में फंसते देख रहे हैं। यह तो सर्वविदित है कि अमेरिका की नीति हमेशा से साम्राज्यवादी, विस्तारवादी रही है और इस नीति के चलते उसने हमेशा अपना प्रभुत्व छोटे–बड़े देशों पर बनाये रखने का प्रयत्न किया है। एक समय जब उसे लगने लगा था कि सोवियत संघ उसके लिए खतरा बन सकता है तो उसने अपने कारनामों से सोवियत संघ का भी विभाजन करवा दिया।

सोवियत विभाजन के लिए वैसे भले ही प्रत्यक्ष रूप में अमेरिका के हाथ होने का प्रमाण न मिलता हो किन्तु विस्तारवाद की उसकी नीति तभी सफल हो सकती थी जबकि सोवियत संघ का विभाजन हो जाता। वर्तमान में भी अमेरिका दुनिया के अधिकतर इस्लामिक देशों में जेहाद के नाम पर, मजहब के नाम पर आतंकी कार्यवाहियों को संरक्षण प्रदान करता है। अमेरिका पाकिस्तान, अफगानिस्तान, इराक, इरान आदि देशों में वहां व्याप्त कठमुल्लापन को और हवा देता है। इन देशों की अवैज्ञानिकता, कम शिक्षा, गरीबी, भुखमरी, कमजोर अर्थव्यवस्था का लाभ उठाकर अपना उल्लू सीधा करता रहता है। अमेरिका ने ही इन देशों में शान्ति व्यवस्था बनाये रखने के नाम पर जबसे अपने गढ़ स्थापित किये हैं तभी से वहां आतंक का नया अध्याय लिखा जाना शुरू हो गया है। इन देशों में उसने संस्कृति का विनाश कर सिर्फ और सिर्फ बारूद के ढेर बिछा रखे हैं। मुस्लिम बिरादरी का ध्रुवीकरण वह मजहब के नाम पर, इस्लाम के नाम पर करके अन्य दूसरे देशों में आतंकी कार्यवाहियों को अंजाम दिलवाता है। इसके अलावा अमेरिका की आतंकवाद के सम्बन्ध में नीति भी बहुत ही भ्रामक रही है। इस पुस्तक में यह स्पश्ट करने की कोशिश की गयी कि विश्व स्तर पर आतंक का स्तर बहुत ही हाईटैक हो चुका है। अमेरिका में हुआ हमला और इसके अलावा अन्य दूसरे पश्चिमी देशों में बम धमाकों की घटनाओं ने साफ तौर पर बता दिया है कि आब आतंकवादी सिर्फ छोटे–मोटे हथियारों की मदद नहीं लेते हैं और न ही उनके पास आज सिर्फ भाड़े के व्यक्ति हैं, वे तो अब प्रोफेशनल लोगों की, इंजीनियर्स की मदद लेते हैं और बदले में उनको बहुत बड़ी धनराशि अदा भी की जाती है। इस बात के सबूत हमें मुम्बई के 26/11 के हमले, गुजरात के बम धमाकों के बाद से आसानी से मिले हैं।

इस सम्पादित पुस्तक की मान्यता एवे समाधान है कि इंसान किसी भी मामले को मुद्दा बनाकर आतंकवाद फैला सकता है तो फिर किसी भी मुद्दों को लेकर प्यार, मोहब्बत, भाईचारा क्यों नहीं फैला पाता ?वर्तमान की इन स्थितियों को देखते हुए एवं सम्पूर्ण विश्व की सम्प्रभुता को कायम रखने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक हो गया है कि पूरी दुनिया के सभ्रान्त लोग, शासक, राष्ट्राध्यक्ष प्रशासक, शिक्षाविद, राजनीतिज्ञ, साहित्यकार एवं विषय विशेषज्ञ इस गम्भीर समस्या को गम्भीरता से चिन्तन–मनन करें जिससे इस वैश्विक समस्या के कुछ सार्थक परिणाम सामने आयें।

पुस्तक का नाम – आतंकवाद और समाज संपादक – डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
पेज–188 ISBN : 978-93-88249-45-4 संस्करण – प्रथम, 2019, मूल्य – 1100.00
एम्पायर बुक्स इण्टरनेशनल, 4831/24, प्रहलाद गली, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002

• प्रोफेसर – हिन्दी विभाग, मुंबई विश्वविद्यालय, मुंबई

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

आतंकवाद और हिन्दी साहित्य

डॉ0 शिवशंकर यादव•

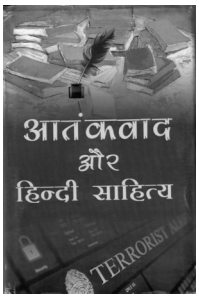

साहित्य समाज का दर्पण होता है। इसलिए साहित्य में सामयिक परिस्थितियाँ जाने–अनजाने साहित्य का विषय बन जाती हैं। साहित्य का सर्जक साहित्यकार का मन भी मानवीय विध्वंसात्मक प्रवृत्ति से उद्वेलित रहा है। यही साहित्य का उद्वेलन जब लेखन के रूप में प्रकट होता है जो सहृदय पाठक के हृदय को गहराई तक प्रभावित करता है। विध्वंसात्मक प्रवृत्ति ने सुरक्षा पर प्रश्न चिह्न लगा रखा है। भविष्य के प्रति आशंका सदैव उसके मन को दंशित करती है। काल का क्रूर मजाक उसके लिए असह्य हो उठता है। दुर्घटनाओं की विकरालता साहित्यकार के मन को सदैव मंथन करती रहती हैं। करालकाल की क्रूरता साहित्यकार के हृदय पर भी प्रभाव डालता है। इसलिए नयी रचना में मन और मस्तिष्क के कसावट सदैव व्यक्त होती है। नया साहित्यकार प्रकृति के रम्य दृश्य देखकर कम ही आनन्द का अनुभव करता है। उसका हृदय विध्वंसात्मक प्रवृत्ति से सदैव चिन्तित रहता है।

आमधारणा यही है कि खुफिया सूचनाएँ अपर्याप्त हैं राज्य और केन्द्रीय एजेंसियों में तालमेल नहीं है किन्तु यहाँ मैं एक बात और जोड़ना चाहूँगा जिसमें बहुत कम लोगों का ध्यान जाता है वह यह कि कानून व्यवस्था में भ्रष्टाचार की जड़ें पर्याप्त फैल चुकी हैं और भ्रष्टाचार को लेकर राजनेताओं और नौकरशाही में गठजोड़ हो गया है। इसके कारण ही देश आतंकी हमलों का आसान निशाना बन रहा है वहीं दूसरी ओर हम कुछ राजनीतिक एवं सामरिक परिस्थितियों के कारण लगातार आतंकी हमलों के निशाने पर हैं। ''हमारी सीमाओं में छिद्र हैं और आतंकवादियों के लिए सीमा पार कर भारत में प्रवेश करना बेहद आसान है। जब देश के सामने इतनी बड़ी चुनौती हो तो हर कोई यह उम्मीद करता है कि इससे निपटने के लिए तमाम पार्टियाँ एकजुट हों, किन्तु ऐसा नहीं हो रहा। यही नहीं, पार्टियाँ एक–दूसरे के खिलाफ दोषारोपण में लिप्त हैं भारत के दुश्मन देश राजनीतिक दलों की इस कमजोरी का फायदा उठाते हैं। हमारी राजनीति अति हिंसा का शिकार है। अक्सर बंद का आह्वान किया जाता है। जनता की सम्पत्ति पर हमला किया जाता है। पार्टियाँ राजनीतिक लाभ उठाने के लिए स्थानीय गुंडों का सहारा लेती हैं। इससे ऐसा वातावरण तैयार होता है जिसमें आतंकी आसानी से खुद को छिपाने में सफल हो जाते हैं।'' इस पर आश्चर्य नहीं कि पिछले दो वर्षों में जितनी भी आतंकी घटनाएँ हुई हैं उनमें से किसी का सुराग तक नहीं लग सका।

ऐसा नहीं है कि वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य में सब कुछ स्याह ही है। निस्संदेह भारत के समक्ष कुछ उजले पक्ष भी हैं। भारतीय मेधा से भयभीत होकर पूर्व राश्ट्रपति ओबामा का आउटसोर्सिंग पर प्रतिबन्ध, राष्ट्रमण्डल खेलों में मिली सफलता, सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भारत विश्व विजय, सूचना के अधिकार के अधिकाधिक उपयोग से भ्रष्टाचार और घोटालों का पर्दाफाश होना, पंचायत एवं आम चुनावों में महिलाओं की बढ़ती भागीदारी, दलित चेतना का निर्णायक उद्भव और बढ़ता मतदान प्रतिशत इनमें प्रमुख है। बालिका शिक्षा के प्रति बढ़ती जागरूकता और बिहार का सकारात्मक जनादेश बदले भारत का दृश्य उपस्थित करते हैं। शनैः शनैः ही सही सकारात्मक परिवर्तन हो रहे हैं। वस्तुतः गणतंत्र की सफलता की कुंजी तो जनगणमन के पास ही है। राजनीति लोक मंगलकारी हो और भारत को एक सम्पन्न, सम्प्रभु ही नहीं एक स्वाभिमानी राष्ट्र बनाने की हो, इस महत उद्देश्य के लिये तंत्र का परिमार्जन करते हुये उनका उपयोग हो, इसकी निगह बानी जनता जनार्दन को ही संभालनी होगी, उसे अपनी चुप्पी तोड़कर खड़ा होना होगा। जनता के सक्रिय सहभाग से ही भारतीय सांस्कृतिक अधिष्ठान से प्रेरित राजनीति राष्ट्र के उन्नयन का हेतु बनेगी।

मेरी मान्यता है कि आतंकवाद एवं सामाजिक विशमताओं की समस्याओं में रूचि रखने वाले विचारकों, नीति–निर्माताओं, समाज सुधारकों, शोधकर्ताओ एवं जनसामान्य के लिए यह पुस्तक बेहद उपयोगी होगी।

पुस्तक का नाम – आतंकवाद और हिन्दी साहित्य संपादक – डॉ.वीरेन्द्र सिंह यादव
पेज – 16 + 170 = 186 ISBN : 978-93-88249-44-7 संस्करण – प्रथम, 2019, मूल्य – 1100.00
एम्पायर बुक्स इण्टरनेशनल, 4831/24, प्रहलाद गली, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–11

•सहायक आचार्य – हिन्दी विभाग – बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, लखनऊ

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद

डॉ0 अनीता यादव•

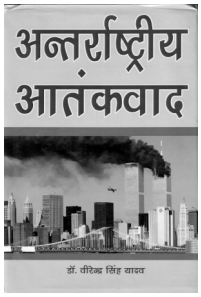

उद्देश्य की दृष्टि से देखा जाये तो आतंकवाद का उद्देश्य सभ्य समाज को नष्ट करना और राज्य की सुरक्षा व्यवस्था को ध्वस्त करना है। आतंकवाद दो तरह से अपनी नीतियों को केन्द्र में रखकर कार्यवाही करता है। प्रथम के तहत कौशल पूर्ण उपयोग जैसे कि एक बम विस्फोट हजारों भाषणों व प्रचार–प्रसार से अधिक प्रभाव उत्पन्न कर इस ओर अधिक से अधिक लोगों का ध्यान आकर्षित करता है। दूसरी तरह से ये आतंकवादी अपनी मांग या मांगों की मान्यता और वांछित लक्ष्य की पूर्ति पूर्ण, परिवर्तन, आजादी और स्वतन्त्रता या क्रान्ति हेतु प्रयास करते हैं। कभी आतंकवाद साम्प्रदायिकता, जातिवाद, क्षेत्रवाद व भाषावाद के रूप में वर्गीकृत होकर नस्लवाद का रूप धारण कर लेता है। राजनीति की अतिशयता एवं प्रश्रय के रूप में, भारत में कंधार विमान कांड व रूबाइया अपहरण इसके जीवित उदाहरण के रूप में सदैव जिम्मेदार हैं।

शीत युद्ध की समाप्ति के पश्चात अमेरिका द्वारा अमेरिकी वर्चस्व को बढ़ावा देने के उद्देश्य से खड़े किये ढ़ाँचे ने जिस तरह से सम्पूर्ण विश्व में हिंसा फैलाई है। वह निःसन्देह मानव सभ्यता के भावी अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न के रूप में अंकित है। जहाँ एक ओर एक मुठ्ठी में दुनिया को समेट कर मानव चांद एवं मंगल पर बसने की तैयारी में है वहीं दूसरी ओर पृथ्वी पर मानव सभ्यता के अस्तित्व को मिटाये जाने की तैयारी चल रही है। यह बड़े दुःख की बात है कि विश्व में पूंजीवाद एवं समाजवाद की तरह आतंकवाद भी एक नकारात्मक विधारधारा के रूप में प्रतिष्ठित हो गया है। विश्व के लगभग एक दशक के आतंकवादी हमले अमेरिका, भारत, पाकिस्तान इजरायल, फिलिस्तीन संघर्ष श्रीलंका का विद्रोह हो या चेचेन्या की उथल पुथल ये सभी घटनाएँ मानव के अमानवीय होने की कहानी बयाँ करती हैं।

आतंकी संगठन किसी भी सुरक्षा, शांति व अखण्डता के लिये खतरा उत्पन्न कर किसी भी राष्ट्र में भय, आतंक व असुरक्षा का वातावरण बनाने का प्रयास करते हैं। विशेषकर युवावर्ग को आकर्षित कर उनके दिल व दिमाग को प्रभावित कर मर मिटने के लिये प्रेरित करते हैं। कभी वो जेहाद के नाम पर तो कभी वह धर्म एवं संस्कृति के नाम पर लोगों को भड़काकर अपनी गतिविधियों को अंजाम देते हैं। इतिहास में शायद भारत ही पहला ऐसा देश होगा जहॉ आतंकी हमलों से त्रस्त लोग अपने ही देश में शरणार्थी के रूप मे जीवन काटने को मजबूर हैं।

सरकारी प्रयासों के साथ–साथ अब हमें अधिकारों की बात छोड़कर राष्ट्र के प्रति कर्तव्य की बात करनी होगी क्योंकि यदि हम अपने परिवार पर आये संकट का निवर्हन जब व्यक्तिगत स्तर पर करते हैं तो यही राष्ट्र के प्रति कर्तव्य बनता है कि हम उसे अपना कर्तव्य मानकर आतंकवाद के विरूद्ध एकजुट होकर क्यों न संघर्ष करें, क्योंकि व्यक्तिगत हित, स्वार्थ को स्थान न देकर सम्पूर्ण राष्ट्र के हित को ध्यान में रखकर ही कोई कार्यवाही करनी चाहिए तभी राष्ट्र का कल्याण होगा। अधिकतर आतंकवादियों की असली ताकत मजहबी विचारधारा पर उनका आंख बंद करके विश्वास करना है। उनके समर्थक लोग जो कहते हैं वो करते हैं। भले ही सरकारें अपने सरकारी बयानों में आतंकवाद के उन्मूलन के लिये आतंकवाद की साजिश रचने वाले देशद्रोहियों के विरूद्ध (विध्वंसक गतिविधियों में लिप्त होने वाले लोगों को) कठोर कार्यवाही करने के लिये कहे लेकिन यथार्थ के धरातल पर यह कितना हो पाता है। यह कहा नहीं जा सकता है।

इस पुस्तक के माध्यम से देश में लगातार बढ़ती आतंकी घटनाओं को देखते हुए आतंकवाद के विरुद्ध व्यापक रूप से जनआन्दोलन छेड़ने के साथ कड़े से कड़े कदम उठाये जाने बात कही गयी है। इसके माध्यम से यह भी अनुरोध करने कोशिश की गयी है कि अपनी सम्पूर्ण एकजुटता के द्वारा ऐसे लोगों को चिन्हित करके बाहर लाना होगा जो किसी भी रूप में आतंकवादियों को संरक्षण प्रदान करते हैं।

पुस्तक का नाम – अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद संपादक – डॉ.वीरेन्द्र सिंह यादव
पेज – 14 + 168 = 182 ISBN : 978-93-88249-43-0 संस्करण – प्रथम, 2019, मूल्य – 1100.00
एम्पायर बुक्स इण्टरनेशनल, 4831/24, प्रहलाद गली, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002

• प्रवक्ता–शिक्षा शास्त्र–महाराज सिंह स्मृति महाविद्यालय, इटैली, औरैया, उ0प्र0

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

PEER REVIEW BOARD KRATIKA

डॉ0 वाई0 पी0 सिंह
प्रोफेसर–अध्यक्ष हिन्दी विभाग
लखनऊ, विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)
दूरभाष न0–9415914942
E-mail - yp.hindi.indology @gmail.com

डॉ0 देवेनबरा
एसोसिएट प्रोफेसर–हिन्दी विभाग
गुवाहटी कालेज बमुनिमाईदम
(BAMUNIMAIDAM), गुवाहटी–781021
दूरभाष न0–9435046970
E-mail - debenbora@gmail.com

डॉ0 मुकेश कुमार मालवीय
असिस्टेंट प्रोफेसर–विधि विभाग
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)
दूरभाष न0–8004851126
E-mail - mukesh9424@gmail.com

डॉ0 किशन यादव
एसोसिएट प्रोफेसर–राजनीति विज्ञान विभाग
बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी (उ.प्र.)
दूरभाष न0–9454054899
E-mail - dr.kishanpolsc@yahoo.com

डॉ0 हरिशंकर सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग
बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर केन्द्रीय
विश्वविद्यालय, लखनऊ–226025

डॉ0 राजेश्वर यादव
असिस्टेंट प्रोफेसर–दर्शनशास्त्र विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)
दूरभाष न0–9415789303
E-mail - rpyadavlu@gmail.com

डॉ0 आशुतोष पाण्डेय
एसोसिएट प्रोफेसर–लोक प्रशासन एवं राजनीति विज्ञान विभाग
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)
दूरभाष न0–9411863763
E-mail - ashuparsiya@rediffmail.com

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कृतिका इंटरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एंड सोशल साइंसेज
ISSN : 0975-0002 वर्ष :13, अंक : 24–25–26 (संयुक्तांक), जुलाई–2019 से दिसम्बर–2020

रजिस्ट्रेशन ऑफ न्यूज पेपर्स रूल्स 1956 (सेन्ट्रल) के अन्तर्गत
'कृतिका' – हिन्दी अर्द्धवार्षिक के सम्बन्ध में स्वामित्व
तथा अन्य विवरण विषयक जानकारी

घोषणा–पत्र

(फार्म–4)

1.	प्रकाशन स्थल	:	1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
2.	प्रकाशन अवधि	:	अर्द्धवार्षिक
3.	मुद्रक का नाम	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
	नागरिकता		भारतीय
	पता		1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
4.	प्रकाशक का नाम	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
	नागरिकता		भारतीय
	पता		1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
5.	सम्पादक का नाम	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
	नागरिकता		भारतीय
	पता		1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
6.	उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव 1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.

मैं डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव एतद्द्वारा घोषित करता हूँ कि उपरोक्त विवरण मेरी अधिकतम जानकारी तथा विश्वास के अनुसार दिये गये विवरण सत्य हैं।

दिनांक : जुलाई, 2019

हस्ताक्षर
डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

मुद्रक : महक कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिण्टर्स,
15, आजाद नगर, उरई (जालौन)

☞सम्पादक : डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

सदस्यता पत्रक

देश–देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

कृतिका इंटरनेशनल रिसर्च जर्नल ऑफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एंड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वर्ष :13, अंक : 24–25–26 (संयुक्तांक), जुलाई–2019 से दिसम्बर–2020

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

प्रधान सम्पादकीय कार्यालय – 303 तीसरा तल, टाईप फाइव, विश्वविद्यालय परिसर,

डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास, विश्वविद्यालय, मोहान रोड, लखनऊ, उ.प्र. 226 017

पत्रांक– दिनाँक–

श्रीमान सम्पादक, कृतिका

303 तीसरा तल, टाईप फाइव, विश्वविद्यालय परिसर,

डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास, विश्वविद्यालय, मोहान रोड, लखनऊ, उ.प्र. 226 017

महोदय,

निवेदन है कि मैं या हमारा विश्वविद्यालय/महाविद्यालय कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल ऑफ हाफ इयरली "ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज, ISSN : 0975-0002, RNI: UPHIN/2008/30136 (साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका) की वार्षिक संस्थागत' सदस्य बनना चाहता है। मैं या हमारी संस्था सम्पादक कृतिका, के नाम व्यक्तिगत या संस्थागत सदस्यता शुल्क भारतीय स्टेट बैंक, मुख्य शाखा लखनऊ को ड्राप्ट या खाता सं. 30358537228, IFSC No. SBIN0000125 में नकद जमा कर रहा हूँ या रही हूँ।

नाम एवं पद का नाम .....

संस्था का नाम .....

पत्र व्यवहार का पूरा पता पिन कोड सहित .....

फोन/मो. नं. ..... EMAIL.....

स्थान एवं दिनांक .....

हस्ताक्षर

i/kku lEikndh; dk;kZy;

Mk- ohjUnz fl ag ;kno

303 तीसरा तल, टाईप 5, विश्वविद्यालय परिसर,

डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,

मोहान रोड, लखनऊ, 226017

दूरभाष–08052755512, 09415924888

Email : dr.virendrayadav@gmail.com

Email : kritika_orai@rediffmail.com

Webside :www.kritika.org.in

i:cU/ku

vkjk/kuk cnl

(प्रकाशक एवं वितरक)

124/152–सी ब्लाक, गोविन्दनगर, कानपुर–208006, उ.प्र.

दूरभाष – 09935007102

Email : aradhanabooks@rediffmail.com

Webside :www.kritika.org.in

कृतिका पत्रिका की वार्षिक संस्थागत सदस्यता से तात्पर्य प्रिन्टेड उतने मूल्य की प्रति या प्रतियाँ (किसी भी अंक की)

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अंतर्राष्ट्रीय रेफ्रीड शोध पत्रिका)

तीसरी सत्ता का विमर्श (किन्नर विमर्श)

अधूरी जिन्दगियाँ–सिसकती दास्तानें

प्रमुख बिन्दु–

- थर्ड जेंडर का इतिहास : व्यथा, यातना और संघर्ष का नग्न यथार्थ।
- थर्ड जेंडर : अतीत एवं वर्तमान।
- थर्ड जेंडर का समाजशास्त्रीय विमर्श।
- थर्ड जेंडर : साहित्यिक विमर्श।
- उपन्यासों में थर्ड जेंडर की जीवन गाथा
- साहित्य की अन्य विधाओं में थर्ड जेंडर के विभिन्न धरातल
- थर्ड जेंडर : अस्मिता और संघर्ष।
- थर्ड जेंडर : वैश्विक परिदृश्य में।
- थर्ड जेंडर : राजनीतिक विमर्श।
- आत्मकथाओं में थर्ड जेंडर का यथार्थ।
- कहानियों में थर्ड जेंडर का रहस्यलोक।
- थर्ड जेंडर का सिनेमाई विमर्श।
- थर्ड जेंडर के लिए सरकारी, गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा किए जा रहे प्रयासों का योगदान।
- वैश्विक धरातल पर थर्ड जेंडर : संघर्ष और मुक्ति के अभिनव क्षितिज।
- इक्कीसवीं सदी में थर्ड जेंडर : अपूर्णता से पूर्णता का सफलतम सफरनामा।

पौराणिक ग्रन्थों, वेदों–पुराणों और साहित्य में किन्नर हिमालय के क्षेत्रों में बसने वाली एक मनुष्य जाति के नाम के रूप में उल्लेख करते हैं, जिसके प्रधान केंद्र हिमवत् और हेमकूट थे। पुराणों और महाभारत की कथाओं एवं आख्यानों में तो उनकी चर्चाएँ प्राप्त होती ही हैं, कादंबरी जैसे कुछ साहित्यिक ग्रंथों में भी किन्नरों के स्वरूप निवास क्षेत्र और क्रियाकलापों के वर्णन मिलते हैं। जैसा उनके नाम 'किन्नर' से स्पष्ट है, उनकी योनि और आकृति पूर्णतः मनुष्य की नहीं मानी जाती। संभव है, किन्नरों से तात्पर्य उक्त प्रदेश में रहने वाले मंगोल रक्तप्रधान उन पीतवर्ण लोगों से हो, जिनमें स्त्री–पुरुष–भेद भौगोलिक और रक्तगत विशेषताओं के कारण आसानी से न किया जा सकता हो। किन्नरों की उत्पति के बारे में दो तरह के प्रमाण मिलतें हैं–एक तो यह कि वे ब्रह्मा की छाया अथवा उनके पैर के अँगूठे से उत्पन्न हुए और दूसरा यह कि अरिष्टा और कश्पय उनके आदिजनक थे। हिमालय का पवित्र शिखर कैलाश किन्नरों का प्रधान निवास स्थान था, जहाँ वे शंकर की सेवा किया करते थे। उन्हें देवताओं का गायक और भक्त समझा जाता है और यह विश्वास है कि यक्षों और गंधर्वों की तरह किन्नर नृत्य और गान में प्रवीण होते थे। विराट् पुरुष, इंद्र और हरि उनके पूज्य थे। पुराणों का कथन है कि कृष्ण का दर्शन करने किन्नर जन द्वारका तक गए थे। सप्तर्षियों से उनके धर्म जानने की कथाएँ प्राप्त होती हैं। उनके सैकड़ों गण थे और चित्ररथ किन्नरों के प्रधान अधिपति थे। इसके अतिरिक्त अनेक विद्वानों और साहित्यकारों ने अपने शोधग्रन्थों, यात्रा–पुस्तकों, आलेखों और कविताओं में किन्नर देश और किन्नौर में रहने वाली किन्नर जनजाति का उल्लेख किया है। इनमें न केवल हिमाचल के विद्वान–लेखक शामिल हैं बल्कि देश–विदेश के लेखक भी हैं।

किन्नर या हिजड़ों से अभिप्राय उन लोगों से है, जिनके जननांग पूरी तरह विकसित न हो पाए हों अथवा पुरुष होकर भी स्त्रैण स्वभाव के लोग, जिन्हें पुरुषों की जगह स्त्रियों के बीच रहने में सहजता महसूस होती है। जब कभी किसी के परिवार में कोई खुशी का अवसर होता है, तो अक्सर यह देखा जाता है कि ये किन्नर अब तृतीय जेण्डर शब्द में व्यवहृत किया जाने लगा है, बधाइयाँ गाकर, आशीर्वाद देकर कुछ रुपए लेकर विदा हो जाते हैं. इसके बाद हम भी अपनी सामान्य गतिविधियों में व्यस्त हो जाते हैं और दोबारा कभी इनके बारे में नहीं सोचते. हम कभी यह जानने का प्रयास नहीं करते कि ये किन्नर कौन हैं, कहाँ से आये हैं, इनकी समस्याएँ क्या हैं और वे कौन से कारण हैं, जिनकी वजह से इन्हें किन्नर बनकर एक प्रकार की भिक्षावृत्ति से जीवन–यापन करने को विवश होना पड़ता है। आज समाज की मानसिकता में किन्नर विमर्श बेहद अपरिपक्व तथा पूर्वाग्रहपूर्ण अवस्था में है, समाज की वैचारिकी अभी इन्हें स्वीकार करने में हिचक रही है फिर भी यह तो मानना ही होगा कि दिन प्रतिदिन खुल रहे और विकसित हो रहे समाज ने तीसरी सत्ता को थोड़ा सा ही सही (जिसमें सरकारी प्रयास भी शामिल हैं) स्पेस देना शुरू कर दिया है और शीघ्र ही हम वह दिन भी देखेंगे, जब ये भी समाज में सामान्य लोगों की भाँति अपने मानवाधिकारों के साथ जीवन–यापन कर सकेंगे।

◆ कृपया उपरोक्त विषयों पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख भेजकर रचनात्मक सहयोग देने का कष्ट करें।

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

आराधना ब्रदर्स कानपुर के उत्कृष्ठ प्रकाशन

पुस्तक	लेखक	मूल्य
Integral Humanism of Pt. Deendayal Upadhyay	Dr. Naveen Mohini Nigam	400/-
Achitect of Philosophy Pt. Deendayal Upadhyay	Dr. Preeti Trivedi	660/-
पं. दीनदयाल उपाध्याय स्मृति मंजूषा	डॉ. श्याम बाबू गुप्त	300/-
एकात्म मानव दर्शन	डॉ. श्यामबाबू गुप्त	300/-
पं. दीनदयाल उपाध्याय : व्यक्तित्व एवं विचार	डॉ. लक्ष्मीकांत पाण्डेय	500/-
पं. दीनदयाल उपाध्याय के एकात्ममानव दर्शन की प्रासंगिकता	डॉ. अलका द्विवेदी	500/-
पं. दीनदयाल उपाध्याय चिंतन दृष्टि	डॉ.नेहा जैन	400/-
दीनदयाल शोध संस्थान एवं गाँधी दर्शन : एक मूल्याँकन	डॉ. धीरज सिंह	750/-
चन्द्रगुप्त (पं. दीनदयाल उपाध्याय के उपन्यास पर आधारित नाटक)	एल.एन.सावित्री शुक्ला	250/-
तब भी और अब भी	एल.एन.सावित्री शुक्ला	200/-
भारत का समाजवाद : दशा एवं दिशा	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	500/-
डॉ. लोहिया का समाजवाद एवं वैचारिक विमर्श	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	600/-
डॉ. लोहिया का समाजवादी विमर्श	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	600/-
डॉ. लोहिया का समाजवाद एवं सामाजिक समरसता	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	600/-
डॉ. लोहिया का समाजवाद एवं अर्थ दर्शन	डॉ. यतीन्द्र नाथ शर्मा	500/-
डॉ. अंबेडकर : वैचारिकी एवं दलित विमर्श	डॉ. कालीचरण स्नेही	600/-
दलित दुनिया (दलित कहानियों का वृहद संकलन)	डॉ. कालीचरण 'स्नेही'	500/-
एवरेस्ट (दलित विमर्श मूलक कविताएँ)	प्रो. कालीचरण 'स्नेही'	300/-
दामोदर मोरे की कविताओं में आम्बेडकरवादी दृष्टि	डॉ. कालीचरण 'स्नेही'	600/-
हिन्दी का प्रवासी साहित्य	डॉ. कालीचरण स्नेही	400/-
मराठवाड़ा के आंबेडकरी जलसाकार	प्रो. डॉ. मुंजाजी धुराजी इंगोले	500/-
दलित साहित्य का सामाजिक सांस्कृतिक आधार	डॉ. यशवंत वीरोदय	300/-
सत्ता एवं हाशिए का विमर्श	डॉ. यशवंत वीरोदय	300/-
भारतीय प्रतिरोधी चेतना के प्रतीक प्रोफेसर तुलसीराम	धर्मेन्द्र कुमार वीरोदय	250/-
भारत में सामाजिक न्याय एवं नारीवादी चिन्तन	डॉ. बिपिन चन्द्र कौशिक	400/-
पुर्विया दोहावली	डॉ. रविकान्त पुर्विया	100/-

हिन्दी बाल साहित्य

धूप की छाँह	डॉ. परशुराम शुक्ल	200/-
प्रतिबिंब	डॉ. परशुराम शुक्ल	400/-
सुनो पथिक!	डॉ. परशुराम शुक्ल	150/-

इन्द्रधनुषी लघु कथाएँ और चुटकुले	डॉ. परशुराम शुक्ल	300/-
चीन की कला और संस्कृति	डॉ. परशुराम शुक्ल	200/-
स्वर्ग की अदालत	डॉ. परशुराम शुक्ल	300/-
चिकित्सा विज्ञान की खोंजे	डॉ. परशुराम शुक्ल	350/-
बुन्देलखण्ड का साहित्य, कला और संस्कृति	डॉ. परशुराम शुक्ल	350/-
हिन्दी बाल साहित्य का सैद्धांतिक विवेचन	डॉ. परशुराम शुक्ल	600/-
बाल साहित्यकारों की कहानी उन्हीं की जुबानी	डॉ. परशुराम शुक्ल	400/-
परशुराम शुक्ल के सूचनात्मक बाल साहित्य का अध्ययन	डॉ. माधव राजप्पा मुंडकर	500/-
परशुराम शुक्ल की बाल कविता में मूल्य	अनिता रानी	400/-
बाल सतसई मीमांसा (परशुराम शुक्ल कृत बाल सतसई की टीका)	श्याम बिहारी श्रीवास्तव	500/-
सतसई काव्य परम्परा और बाल सतसई	डॉ. संगीता जगताप	550/-
बाल सतसई प्रबोधिनी	स्वामी विजयानन्द	600/-
बाल धारावाहिक अनुभूति और अभिव्यंजना	स्वामी विजयानंद	650/-
डॉ. सुरेन्द्र विक्रम बालसाहित्य सृजन विमर्श	डॉ. दीपशिखा	950/-
हिन्दी बालकाव्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन	मनोज कुमार	400/-
हिन्दी बाल साहित्य का परिचयात्मक अध्ययन	प्रियंका गुप्ता	550/-
हिन्दी का बाल लोक साहित्य	डॉ. मीना सिंह गौर	400/-
हिन्दी और ओड़िया बाल कविता का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. निर्मला जेना	750/-
हिन्दी बाल साहित्य का अनुशीलन	डॉ. आनन्द बक्षी	850/-
हिन्दी बाल साहित्य में भाषा वैज्ञानिक अध्ययन	डॉ. प्रणोति पाटिल	650/-
स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी बाल कविता में वैज्ञानिक चेतना	डॉ. डी.आर. राहुल	300/-
स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी बाल कविता में युगबोध	डॉ. उमा सिरोनिया	600/-
बाल कविता में सामाजिक–सांस्कृतिक चेतना	डॉ. शिरोमणि सिंह 'पथ'	400/-
हिन्दी बाल साहित्य में मनोरंजन एवं नैतिकता	डॉ. रामशंकर आर्य	500/-
बाल समस्याएँ कारण और निदान	जयजयराम आनन्द	700/-
हिन्दी बाल कविता की प्रवृत्तियाँ	डॉ. उदय सिंह जाटव	500/-
मयंक का हिन्दी बाल साहित्य	डॉ. कंचनलता यादव	500/-
हिन्दी बाल साहित्य : डॉ. सुरेन्द्र विक्रम का योगदान	डॉ. स्वाति शर्मा	450/-
बाल साहित्य : समीक्षा के प्रतिमान और इतिहास लेखन	डॉ. सरोजिनी पाण्डेय	550/-
हिन्दी के बाल एकांकी साहित्य का नाट्यशास्त्रीय अनुशीलन	डॉ. लक्ष्मी शंकर कुशवाहा	500/-
बाल साहित्यकार : क्षमा शर्मा	डॉ. छाया माली	500/-
हिन्दी कहानियों में बाल पात्र – एक अध्ययन	डॉ. सूर्या बोस	350/-
आओ आलू आलू खेलें (आलू शतक)	डॉ. भगवत स्वरूप 'शुभम'	400/-

आजादी के दीवाने (नाटक संग्रह)	अवध किशोर सक्सेना	350/-
महान वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंसटीन	डॉ. जगदीश त्रिपाठी	250/-
महान वैज्ञानिक सर सी. वी. रामन	डॉ. जगदीश त्रिपाठी	250/-
महान वैज्ञानिक बैंजामिन फ्रैंकलिन	डॉ. जगदीश त्रिपाठी	250/-
महान वैज्ञानिक गेलीलियो गेलिली	डॉ. जगदीश त्रिपाठी	250/-
महान वैज्ञानिक आइजक न्यूटन	डॉ. जगदीश त्रिपाठी	250/-
प्रकाश संश्लेषण	डॉ. चन्द्र प्रकाश शुक्ल	350/-
वनस्पति जगत	डॉ. चन्द्र प्रकाश शुक्ल	350/-
जैव विविधता	डॉ. चन्द्र प्रकाश शुक्ल	350/-
मृदा, जल संरक्षण एवं सिंचाई	डॉ. चन्द्र प्रकाश शुक्ल	350/-
विज्ञान पहेलियाँ	चन्द्र प्रकाश शर्मा	200/-
मानव शरीर	चन्द्र प्रकाश शर्मा	300/-
भारत के अमर वीर	डॉ. सुखदेव सिंह सेंगर	375/-
प्रेरणा के स्रोत माता–पिता	डॉ. सुखदेव सिंह सेंगर	375/-
साहित्य के समुद्र गुरूदेव	डॉ. सुखदेव सिंह सेंगर	250/-
भारत के महान सन्त विचारक	डॉ. सुखदेव सिंह सेंगर	375/-
आसमान छूते विकलांग	डॉ. सुखदेव सिंह सेंगर	200/-
चिड़ियाँ चुग गईं खेत (लघुकथा संग्रह)	डॉ. राज गोस्वागी	300/-
मानव जीवन और पेड़ पौधे	डॉ. शिवानी शुक्ला	250/-
महान संत स्वामी विवेकानन्द	डॉ. शिवानी शुक्ला	275/-
दोस्ती की कसम	शिवमंगल सिंह	375/-
पर्यावरण एवं जल संरक्षण	डॉ. विनोद सक्सेना	350/-
संतोष का फल	रघुपति सिंह सिंदौस	160/-

हिन्दी का आलोचनात्मक साहित्य

समाजभाषाविज्ञान प्रमुख संकल्पनाएँ	डॉ. सुजाता चतुर्वेदी	600/-
मोहन राकेश के कथासाहित्य में सर्वनाम प्रयोग	डॉ. सुजाता चतुर्वेदी	600/-
मुक्तिबोध एवं प्रगतिशील समीक्षा	डॉ. ऋतम्भरा	500/-
विचार संचयन	डॉ. ऋतम्भरा	300/-
लोकसाहित्य एवं लोक नाट्य	डॉ. ऋतम्भरा	400/-
दैत्यवंश महाकाव्य का साहित्यिक विश्लेषण	डॉ. गजेन्द्र सिंह परमार	800/-
डॉ. 'धीर' के काव्य में प्रेम और सौन्दर्य तत्व का निरूपण	डॉ. गरिमा जैन	250/-
कबीर एवं निराला के विद्रोही स्वरों का विवेचन	डॉ. गरिमा जैन	700/-
लोक–देवता कारसदेव	डॉ. एम.एल. प्रभाकर	700/-

लोक कवि–ईसुरी	डॉ. एम.एल. प्रभाकर	700/-
हनुमानायन	डॉ. एम.एल. प्रभाकर	1100/-
बुन्देली लोक नाट्य ''एक अनुशीलन''	डॉ. एम.एल. प्रभाकर	1100/-
सौंदर्य बोध और भारतीय चिंतन परम्परा	डॉ. पद्मा शर्मा	400/-
रांगेय राघव की कहानियों का समाजशास्त्रीय अध्ययन	डॉ. पद्मा शर्मा	600/-
पं. राहुल सांकृत्यायन एवं बौद्ध दर्शन	डॉ. आशाराम जाटव	750/-
उषा यादव के उपन्यासों में स्त्री–विमर्श	डॉ. मोनिका	600/-
हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श के विविध सरोकार	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	600/-
विश्व भाषा के रूप में हिन्दी	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	500/-
हिन्दी भाषा एवं व्याकरण	वडचकर शिवाजी	000/-
हिन्दी काव्य और वर्षा	डॉ. शिवाजी वडचकर	600/-
प्रयोजनमूलक हिन्दी	डॉ. शिवाजी वडचकर	350/-
प्रायोगिक हिन्दी और विश्वग्राम में अनुवाद की भूमिका	डॉ. राकेश शर्मा	300/-
नई सदी में हिन्दी का बदलता परिदृश्य	डॉ. राकेश शर्मा	300/-
स्वयंसिद्धा	डॉ. तनूजा चौधरी	250/-
परसाई समय और सापेक्षता	डॉ. तनूजा चौधरी	250/-
मॉरिशस की कहानियों में भारतीय संस्कार–जीवन मूल्य	डॉ. तनूजा चौधरी	300/-
साठोत्तरी लेखिकाओं का स्त्री–विमर्श	डॉ. तनूजा चौधरी	500/-
हिन्दी महिला उपन्यास लेखन में स्त्री आन्दोलन	डॉ. मुनेश यादव	500/-
शशिप्रभा शास्त्री के कथा साहित्य में नारी	डॉ. अनिता शर्मा	500/-
मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में नारी समस्यायें आधुनिकताबोध	डॉ. सविता मसीह	500/-
मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य में नारी	डॉ. भारती	400/-
मैत्रेयी पुष्पा का कथा साहित्य	डॉ. प्रियंका रानी	400/-
डॉ. रामकमल राय सृजन सरोकार	डॉ. निशीथ राय	300/-
वृंदावनलाल वर्मा के उपन्यासों में नारी	डॉ. रामप्रकाश जाटव	350/-
कथाकार बदीउज्ज़माँ	इंगोले मुंजाजी धुराजी	500/-
हिन्दी साहित्य विविध विमर्श	इंगोले मुंजाजी धुराजी	295/-
प्रसाद की काव्य भाषा	डॉ. मीना सिंह गौर	500/-
पंत एवं निराला का काव्य एवं अध्ययन	डॉ. मीना सिंह गौर	300/-
हिन्दी उपन्यासों में नारी चित्रण के विविध आयाम	डॉ. मीना सिंह गौर	225/-
वर्तमान हिन्दी कविता में लोकतत्त्व	डॉ. मीना सिंह गौर	200/-
आधुनिक संस्कृत साहित्य में समकालीन समस्यायें	डॉ. रेखा शुक्ला	300/-
संस्कृत वांङ्मय में वर्णित भारतीय संस्कृति एवं कला	डॉ. रेखा शुक्ला	1200/-
वैश्विक परिदृश्य में वैदिक ज्ञान–विज्ञान	डॉ. पुष्पा यादव	900/-

मृच्छकटिक प्रकरण एक सांस्कृतिक चिन्तन	डॉ. पुष्पा यादव	800/-
मृच्छकटिकम् में मानवाधिकार	डॉ. शुभांगी गायकवाड़	500/-
'रामायण' और 'महाभारत' में राजनीतिक विचार	डॉ. कान्ती शर्मा	500/-
भारतीय नारी का धर्मशास्त्रीय अध्ययन	डॉ. पूजा श्रीवास्तव	300/-
याज्ञवल्क्य रामायण का साांस्कृतिक प्ररिभीलन	प्रत्यूषवत्सला द्विवेदी	000/-
भारतीय संस्कृति में कर्मयोग	डॉ. प्रीति राठौर	700/-
कूर्मपुराण में धर्म एवं दर्शन	डॉ. पूजा दीक्षित	500/-
सूरदास एवं अक्षर अनन्य का काव्य	डॉ. पी.एस. गोयल	500/-
संत परम्परा की खोज	डॉ. कमलेश सिंह नेगी	400/-
आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी और उनकी समीक्षा दृष्टि	डॉ. अजिता दीक्षित	250/-
कथाकार भगवती चरण वर्मा के कथा साहित्य का शास्त्रीय अध्ययन	डॉ. अजिता दीक्षित	600/-
हिन्दी व्यंग्य लेखन में शरद जोशी का योगदान	डॉ. शिवशंकर यादव	400/-
जायसी और कबीर : सामासिक संस्कृति के संदर्भ में	डॉ. डी.आर. राहुल	600/-
मुक्तिबोध सृजन के विविध आयाम	डॉ. वन्दना श्रीवास्तव	700/-
राष्ट्रवाद – साहित्य और समाज	प्रो. एस.डी. शर्मा, डॉ. वन्दना, डॉ. सिंह, डॉ. क्षमा, डॉ. देविका	995/-
उर्वशी काव्य में नारी चेतना	डॉ. मीता अरोरा	200/-
स्वच्छन्द काव्यधारा	डॉ. मीता अरोरा	600/-
'अंधेरे में' आख्यान का स्वरूप	डॉ. मीता अरोरा	200/-
हिन्दी भाषा एक अबाध प्रवाह	डॉ. मीता, डॉ. सुमन	350/-
आधुनिक हिन्दी कविता में लोक चेतना	डॉ. मीता, डॉ. सुमन	350/-
रेणु का कथा साहित्य	डॉ. सुरेश चन्द्र मेहरोत्रा	500/-
कबीर के काव्य में वर्णित मूल्य एवं दर्शन	डॉ. ममता गंगवार	250/-
रामचंद्रिका में वक्रोक्ति सिद्धांत का अनुशीलन	डॉ. ममता गंगवार	500/-
प्रेमचन्द्र युगीन उपन्यास लेखिकाएँ और उनका रचना संसार	डॉ. संध्या शर्मा	150/-
हिन्दी यात्रा साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि	डॉ. संध्या शर्मा	500/-
पं. श्रीवर चतुर्वेदी : व्यक्ति एवं अभिव्यक्ति	डॉ. रामकिशोर यादव	500/-
जैनेंद्र का कथालोचन	डॉ. वन्दना श्रीवास्तव	350/-
प्रसाद नाट्य साहित्य में हास्य–व्यंग्य	डॉ. संगीता अग्रवाल	200/-
नयी कहानी : अस्तित्व एवं स्वरूप	डॉ. संगीता अग्रवाल	250/-
शिवानी के उपन्यासों में कूर्मांचलीय लोक संस्कृति	डॉ. अलका मिश्र	300/-
महाप्राण निराला : पुनर्मूल्यांकन	डॉ. प्रदीप मिश्र	400/-
श्रृंगार शिरोमणि का रस–भाव विवेचन	डॉ. प्रदीप मिश्र	500/-
शिवानी के उपन्यासों के पात्र	डॉ. सुषमा पुरवार	400/-

कालजयी नाटककार लक्ष्मीनारायण मिश्र	डॉ. मंजुला श्रीवास्तव	400/-
गीत से नवगीत	डॉ. शुभा श्रीवास्तव	250/-
मनन और मूल्यांकन	डॉ. विश्वम्भरनाथ	250/-
साहित्यिक एवं सांस्कृतिक निबन्ध	डॉ. कैलाश नाथ द्विवेदी	150/-
महाकवि भवभूति के नाटकों में ध्वनि तत्व	डॉ. शिवबालक द्विवेदी	225/-
पं. बनारसी दास चतुर्वेदी व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ. कालीचरण 'स्नेही'	400/-
वासुदेव गोस्वामी और उनका साहित्य	डॉ. श्रीमती गीता पाण्डेय	150/-
विचार–वीथी (निबन्ध–संग्रह)	डॉ. पुरुषोत्तम बाजपेयी	75/-
हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में नारी	डॉ. हरिशंकर शर्मा	140/-
संस्मरण और संस्मरणकार	डॉ. मनोरमा शर्मा	60/-
ब्रजनंदन व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ. ओमप्रकाश सिंह	60/-
सुहागरात	कामता प्रसाद विश्वकर्मा	300/-
प्यार किया तो डरना क्या	कामता प्रसाद विश्वकर्मा	250/-
ज्योत्सना	कामता प्रसाद विश्वकर्मा	250/-
जगत् सत्यं ब्रह्म नास्ति	कामता प्रसाद विश्वकर्मा	250/-
प्रेम विवाह	कामता प्रसाद विश्वकर्मा	250/-
प्रेम प्रवाह	कामता प्रसाद विश्वकर्मा	400/-
लोहिया पथ	डॉ. नरेन्द्र प्रताप सिंह	200/-
संघर्षों का जीवन जगजीवन	डॉ. नरेन्द्र प्रताप सिंह	350/-
बिखरे बादल	डॉ. नरेन्द्र प्रताप सिंह	250/-
सूरज आज चाँद से हारा	डॉ. नरेन्द्र प्रताप सिंह	250/-
कालाधन	डॉ. नरेन्द्र प्रताप सिंह	250/-
विभीषण (खण्ड काव्य)	डॉ. गजेन्द्र सिंह परमार	200/-
दृग बिन्दु	लक्ष्मी नारायण बाजपेयी	200/-
स्मृति	लक्ष्मी नारायण बाजपेयी	300/-
साधना सफल है! (कहानी संग्रह)	सीताराम यादव	250/-
प्यासे केन के फूल	कुँवर वैरागी	500/-
फिर बहे आँसू (खण्ड काव्य)	डॉ. भगवत स्वरूप 'शुभम'	200/-
यात्रा (परिधि से केन्द्र तक)	हरीराम गुप्ता 'निर्पेक्ष'	250/-
झिल मिल दीप	दीपचन्द्र अवस्थी	200/-
प्रदोष नृत्य	डॉ. हरीशचन्द्र शर्मा	250/-
मृत्यु पर विजय	डॉ. हरीशचन्द्र शर्मा	300/-
रामाश्रय (खण्डकाव्य)	डॉ. हरीश चन्द्र शर्मा	500/-
सबके अपने अमित...	सं. डॉ. निरंजन कुमार	300/-

तुम न आये सितारों को नींद आ गई	मंजुल मयंक	300/-
मेरी हम जिन्दगी मेरी हमशाइरी	डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह	200/-
सहमे सहमे अक्षर	डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह	300/-
अनाम सखे	डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह	150/-
गुलदस्ता	डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह	350/-
बंशी उठी पुकार	डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह	250/-
निर्वेद सद्गुरु कृपा–अमित वाणी	डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह	2100/-
उठी हाट के हम व्यापारी	रामस्वरूप	80/-
नारी स्वर	ज्ञानचन्द्र गुप्त	200/-
सुनहरी धूप (काव्य–धारा)	मंजु सिंह	200/-
सम्यक्–सुरमई	मंजु सिंह	400/-
पुरवा	मंजु सिंह	200/-
जन्म जन्मान्तर	मंजु सिंह	200/-

बुन्देली साहित्य

भुरभुरी माटी में अनुराग के अंकुर	डॉ. सीता किशोर	250/-
कहत ईसुरी और दास मलूका	डॉ. सीता किशोर	200/-
रहीम के आमूं सामूं	डॉ. सीता किशोर	200/-
सबका अंतरिक्ष	डॉ. सीता किशोर	150/-
इस दौर से गुज़रे हैं हम	डॉ. सीता किशोर	200/-
बुंदेलखंड की पूर्व रियासतों में पत्र–पांडुलिपियों का सर्वेक्षण	डॉ. सीता किशोर	250/-
ग्वालियर संभाग में व्यवहृत बोली रूपों का भाषा अध्ययन	डॉ. सीता किशोर	200/-
समीक्षा रेखायें	डॉ. कामिनी	400/-
उरैन	डॉ. कामिनी	350/-
आलेख	डॉ. कामिनी	350/-
हाशिये पर (कहानी संग्रह)	डॉ. कामिनी	150/-
संस्कार गीत और लोक जीवन	डॉ कामिनी	200/-
सिर्फ रेत ही रेत	डॉ. कामिनी	100/-
स्थान नाम बोलते हैं	डॉ. कामिनी	75/-
दतिया जिले में पत्र–पाण्डुलिपियों का सर्वेक्षण	डॉ. कामिनी	120/-
सूरदास एवं अक्षर अनन्य का काव्य	डॉ. पी.एस. गोयल	500/-
मुकुट बिहारी 'सरोज' और डॉ. सीता किशोर खरे के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. प्रगति	600/-
बुन्देलखण्ड का साहित्य, कला और संस्कृति	डॉ. परशुराम शुक्ल	350/-
बुंदेलखण्ड के साहित्यकारों का साहित्यिक अवदान	डॉ. छाया राहुल	700/-

बुन्देलखण्ड की साहित्य सर्जना	डॉ. किरण शर्मा	350/-
आधुनिक बुन्देली काव्य	डॉ. कालीचरण स्नेही	300/-
भदावरी बोली का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन	डॉ. श्यामसुन्दर सौनकिया	150/-
स्थानवाची नामों का समाज भाषा शास्त्रीय विश्लेषण	डॉ. कमलेश प्रजापति	350/-

अन्य विषय

स्वच्छ भारत अभियान (मुद्दे–समस्याएँ–संभावनाएँ)	डॉ. अरविन्द शुक्ला	595/-
स्वच्छ भारत अभियान : चुनौतियाँ एवं अवसर	डॉ. अरविन्द शुक्ला	650/-
उभरती पर्यावरणीय चिंताएँ एवं सतत् विकास	डॉ. अरविन्द शुक्ला	600/-
पर्यावरण एवं अक्षय विकास	डॉ. अरविन्द शुक्ला	650/-
वैश्विक पर्यावरण एवं सतत् विकास	डॉ. अरविन्द शुक्ला	595/-
नई सदी में पर्यावरण : चिंतन के विविध परिदृश्य	मनोज कुमार यादव	995/-
पर्यावरणीय नैतिकता एवं मानवीय मूल्य	डॉ. शालिनी मिश्रा	700/-
पर्यावरणीय संकट एवं गाँधीवादी मूल्य	डॉ. शकुन्तला	700/-
विश्व पर्यावरण एवं राजनीतिक संघर्ष	डॉ. आर.के. त्रिपाठी	400/-
भारतीय आधुनिक चित्रकला एवं महिला चित्रकार	डॉ. सुनीता शर्मा	2100/-
भारत में सामाजिक न्याय एवं नारीवादी चिन्तन	डॉ. बिपिन चन्द्र कौशिक	400/-
शारीरिक शिक्षा के आधार	डॉ. नसीम अहमद खान	300/-
आधुनिक काल में भारत विविध आयाम	डॉ. रवीन्द्र, डॉ. दिनेश, डॉ. बलराम	900/-
भारत की कार्य संस्कृति बदलाव की पहल और विकास	डॉ. प्रतिमा गंगवार, डॉ. गीता अस्थाना	900/-
भारतीय लोकतंत्र – चुनौतियाँ और समाधान	डॉ. आर. के. त्रिपाठी	500/-
भारत की विदेश नीति	मनोज कुमार यादव	600/-
भारत अमेरिका परमाणु करार एवं भारतीय हित	डॉ. अरविन्द शुक्ल	500/-
दिव्यांग विभूतियाँ सामाजिक सरोकार	डॉ. विजय कुमार वर्मा	300/-
दिव्यांगता एक सामाजिक यथार्थ	डॉ. विजय कुमार वर्मा	300/-
उत्तर प्रदेश में व्यावसायिक फसलों का अध्ययन	डॉ. कल्पना सिंह	000/-
भारत में उद्योगों की भूमिका एवं विकास	डॉ. सारिका सिंह	000/-
ग्रामीण बैंकों की रोजगार सृजन में भूमिका	डॉ. नीरज यादव	600/-
टैगोर और रूसो की शिक्षा का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. अनीता यादव	350/-
भारत में समावेशी एवं सतत् विकास	डॉ. सपना, डॉ. शुक्ला	850/-
भारत में उच्च शिक्षा दशा एवं चुनौतियाँ	डॉ. उमेश शाक्य	600/-
राष्ट्रवादी–मार्क्सवादी इतिहास लेखन महात्मा गांधी	डॉ. सुप्रिया वर्मा	500/-
गोंडवाना सामाजिक तथा आर्थिक संरचना	डॉ. डिलेश्वर प्रसाद ग्वालंशी	600/-
भारत का समाजवाद : दशा एवं दिशा	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	500/-

डॉ. लोहिया का समाजवाद एवं वैचारिक विमर्श	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	600/-
डॉ. लोहिया का समाजवादी विमर्श	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	600/-
डॉ. लोहिया का समाजवाद एवं सामाजिक समरसता	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	600/-
डॉ. लोहिया का समाजवाद एवं अर्थ दर्शन	डॉ. यतीन्द्र नाथ शर्मा	500/-
भारतीय राजनीतिक–सामाजिक समस्यायें	डॉ.(श्रीमती) राजेश जैन	600/-
भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में उ.प्र. की महिलाओं का योगदान	डॉ. संजू	400/-
राजपूत कालीन सामाजिक विषमताएँ	डॉ. प्रशांत सिंह	500/-
पंचायती राजव्यवस्था में महिलाओं की सहभागिता	डॉ. अनीता	400/-
चाणक्य नीति : वर्तमान में प्रासंगिकता	डॉ. ममता गंगवार	600/-
अपराधी कल्याण के विविध आयाम	डॉ. ए. एन. अग्निहोत्री	300/-
Trends in Security system in Library	Dr. Alok Srivastava	550/-
Critical Study of Library Management Software	Dr. Mohan Katkar	750/-
Environmental Issues & Sustainable Development	Dr. Arvind Shukla	600/-
Environmental Concerns & Clean India Campaign	Dr. Arvind Shukla	595/-
Swachh Bharat Campaign (Administrative Perspectives Issues & Challenges)	Dr. Arvind Shukla	595/-
Global Environment & Sustainable Development	Dr. Arvind Shukla	595/-
Environmental Ethics	Dr. Shalini Mishra	700/-
Environment & Health Sustainability	Dr. Shivani Srivastava	500/-
Socio-Economic & Cultural Sustainbility	Dr. Shivani Srivastava	800/-
Sustainable Development Strategies & Emerging Trends	Dr. Shivani Srivastava	450/-
Contemporary Environmental Issues Impact on Human Life	Dr. Ranjana Srivastava	1100/
Environmental Issues & Gandhian Value	Dr. Shakuntala	400/-
Water Crisis Its Causes Effects and Solution	Dr. Sandeep Singh	600/-
Natural Resource Management Policy and Planning	Dr. Sandeep Singh	700/-
Communication Skills & Higher Education	Dr. Sapna Pandey	750/-
Anne Sextion and Her Universe	Dr. Sapna Pandey	600/-
Anne Senton as a Confessional Poet	Dr. Sapna Pandey	250/-
Arun Joshi : An Exploration of the Self	Dr. Anjita Singh	500/-
Modern English Poetry	Dr. Satish Kumar	400/-
A Journey Into Religious Freedom	Fr. Jerom Paul	400/-
The Permanent Synod of the East	Fr. Jerom Paul	400/-
Dalit Politics in Uttar Pradesh : A Study of Bahujan Samaj Party (B.S.P.)	Dr. Ravi Ramesh Shukla	650/-

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

Khilafat Movement	Dr. Razia Nayab	500/-
A Light on Nationalism in the United Provinces From 1800-1920	Harpreet Kaur	200/-
Evolution of National Consciousness in U.P.	Dr. Vijay Khare	500/-
History of Hindu Socio Religious Reform Movements in 19th Century	Dr. Vijay Khare	500/-
Conflict and Cooperation in South Asia	Dr. Ran Vijay Singh	500/-
Cultural Aspect of Food & Nutrition	Dr. Geeta Mathur	500/-
Issues & Challenges Related to Family Dynamics in Modern Society	Dr. Geeta Mathur	1100/-
Speech Act analysis of Political Discourse	Dr. Kamalakar Jadhav	350/-
Critical Essays of Indian English Drama	Dr. R.T. Bedre	450/-
Socio Realism in Indian English Drama	Dr. R.T. Bedre	800/-
Trends Issues & Challenges in Physical Education	Dr. Madhu Gaur	995/-
Tourism Industry in Himanchal Pradesh	Dr. Tiwari	400/-
Modern Text Book of Physical Chemistry	Dr. Chandra Mohan Saxena	750/-
Advance Text Book of Physical Chemistry	Dr. Chandra Mohan Saxena	750/-
Text Book of Physical Chemistry	Dr. Chandra Mohan Saxena	750/-
A Refrence Book On Metal Drug Complexes	Dr. Bhimrao C. Khade	850/-
Synthesis Of Novel Biologycally Active Organic Compounds & Kinetics	Dr. Andurkar Munjaji Rao	895/-

नोट : (1) समस्त विषयों में पुस्तक/शोधग्रंथ प्रकाशन हेतु पाण्डुलिपियाँ आमंत्रित हैं।
(2) हमारी संस्था महाविद्यालय/विश्वविद्यालय एवं सार्वजनिक पुस्तकालय हेतु समस्त विषयों में समस्त प्रकार की पुस्तकों की आपूर्ति आपकी माँग के अनुसार करती है।
(3) पुस्तकों का आदेश भेजते समय अपना नाम, पता, पिनकोड व फोन नं. लिखें या मेल करें।

आराधना ब्रदर्स

124/152-सी ब्लॉक, गोविन्द नगर, कानपुर - 208 006 (उ.प्र.)

aradhanabooks@rediffmail.com

कृतिका हाफ इयरली इन्टरनेशनल रेफ्रीड रिसर्च जर्नल आफ ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वर्ष : 13, वाल्यूम : 24, 25, 26 (संयुक्तांक) जुलाई 2019 से दिसम्बर 2020

कृतिका परिवार

प्रमुख प्रवासी सम्पादकीय सलाहकार समिति

- डॉ. सुरेश चन्द्र शुक्ल 'शरद आलोक' (लेखक, आलोचक एवं साहित्यकार), ग्रिवलिंगविएन 2 जी 0595–ओस्लो, नार्वे
- डॉ. सरिता बुधू, अध्यक्ष भोजपुरी स्पीकिंग यूनियन, मॉरीशस
- डॉ. अजीत सिंह राही, पो.बॉ. 119, हानउड 2680, एन.एस.डब्ल्यु., आस्ट्रेलिया
- डॉ. तिलकराज चोपड़ा, हाज़ल वेग 15ए 53340 मेकन्हाईम, जर्मनी
- डॉ. दिव्या माथुर – नेहरू सेन्टर, 8 साउथ आउडली स्ट्रीट, लंदन– डब्ल्यु 1 के 1 एच.एफ.

मुख्य परामर्शदाता एवं मानद संरक्षक

- प्रो. विष्णु कुमार अग्रवाल – अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, शासकीय पी.जी. कालेज, मुरैना, ग्वालियर (म.प्र.)
- डॉ. गायत्री सिंह – एसो. प्रोफे. हिन्दी विभाग, प्राचार्या, आर्मापुर पी.जी. कालेज, कानपुर, उ.प्र.
- डॉ. उमारतन यादव, एसो0 प्रोफेसर–अर्थशास्त्र विभाग, बुन्देलखंड महाविद्यालय, झाँसी, उ.प्र.
- डॉ. अनीता यादव – प्रवक्ता – शिक्षाशास्त्र, महाराज सिंह स्मृति महाविद्यालय, इटैली, औरैया, उ.प्र.

विशेष परामर्शदात्री समिति

- डॉ. रिपु सूदन सिंह – प्रोफे. एवं अध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, डीन, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, लखनऊ, उ.प्र.
- डॉ. ज्योति सिन्हा– भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान राष्ट्रपति निवास, शिमला – प्रवक्ता, संगीत विभाग, महिला पी.जी. कॉलेज, जौनपुर, उ.प्र.
- डॉ. मधुरबाला यादव – एसो. प्रोफे. हिन्दी विभाग, पी.पी.एन. कालेज, कानपुर, उ.प्र.

संपादकीय परामर्शदात्री समिति

- डॉ. आशा वर्मा, एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, डी. बी. एस. कालेज, कानपुर, उ.प्र.
- डॉ. अलका द्विवेदी, वरिष्ट प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, जुहारी देवी गर्ल्स कालेज, कानपुर, उ.प्र.
- डॉ. नम्रता चौकोटिया, पी–एच.डी. अनुभाग, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)
- डॉ. प्रतिमा यादव, हिन्दी विभाग, महारानी लक्ष्मीबाई शासकीय महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
- डॉ. शिवशंकर यादव – असिस्टेण्ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, लखनऊ, उ.प्र.

मुख्य सम्पादक मण्डल

- डॉ. सुरेश एफ. कानडे, प्लाट नं. 48, साई बंगला, प्रोफेसर कॉलोनी, रामेश्वर नगर, गंगापुर रोड, नासिक–422013 (महाराष्ट्र)
- मनोज कुमार यादव – पूर्व सदस्य, उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड, प्रयागराज, उ.प्र.

विशेष सम्पादन सहयोग

- डॉ. दत्तात्रय मुरुमकर, प्रोफेसर हिन्दी विभाग, मुंबई विश्वविद्यालय, विद्यानगरी, कलीना सांताकुंज (पूर्व), मुंबई – 400098 (महाराष्ट्र)
- डॉ. राम अवध सिंह, प्राचार्य, श्री गाँधी पी0जी0 कालेज, मालटारी, आजमगढ़, उ.प्र.
- डॉ. सियाराम, एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, तिलक महाविद्यालय, औरैया, उ.प्र.

प्रधान सम्पादक

- डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

  अध्यक्ष – हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग, डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ–226 017 (उ.प्र.)
  सम्पर्क : 08052755512, 09415924888 * Wavesite - htt://kritikaresearchjournal.godaddyesites.com
  Email : dr.virendrayadav@gmail.com * Email : virendra_kritika@rediffmail.com

प्रबन्धन एवं पत्राचार

- आराधना ब्रदर्स (प्रकाशक एवं वितरक)

  124 / 152– सी ब्लाक, गोविन्दनगर, कानपुर–208006, उ.प्र.
  दूरभाष –09935007102 Email : aradhanabooks@rediffmail.com * kritika_orai@rediffmail.com

कृतिका हाफ इयरली इन्टरनेशनल रेफ्रीड रिसर्च जर्नल आफ ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वर्ष : 13, वाल्यूम : 24, 25, 26 (संयुक्तांक) जुलाई 2019 से दिसम्बर 2020

कृतिका

तीसरी सत्ता का विमर्श (किन्नर विमर्श) अधूरी जिन्दगीयाँ–सिसकती दास्तानें

प्रमुख बिन्दु–

- थर्ड जेंडर का इतिहास : व्यथा, यातना और संघर्ष का नग्न यथार्थ
- थर्ड जेंडर : अतीत एवं वर्तमान
- थर्ड जेंडर का समाजशास्त्रीय विमर्श
- थर्ड जेंडर : साहित्यिक विमर्श
- उपन्यासों में थर्ड जेंडर की जीवन गाथा
- साहित्य की अन्य विधाओं में थर्ड जेंडर के विभिन्न धरातल
- थर्ड जेंडर के लिए सरकारी, गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा किए जा रहे प्रयासों का योगदान
- वैश्विक धरातल पर थर्ड जेंडर : संघर्ष और मुक्ति के अभिनव क्षितिज
- इक्कीसवीं सदी में थर्ड जेंडर : अपूर्णता से पूर्णता का सफलतम सफरनामा
- थर्ड जेंडर : अस्मिता और संघर्ष
- थर्ड जेंडर : वैश्विक परिदृश्य में
- थर्ड जेंडर : राजनीतिक विमर्श
- आत्मकथाओं में थर्ड जेंडर का यथार्थ
- कहानियों में थर्ड जेंडर का रहस्यलोक
- थर्ड जेंडर का सिनेमाई विमर्श

पौराणिक ग्रन्थों, वेदों–पुराणों और साहित्य में किन्नर हिमालय के क्षेत्रों में बसने वाली एक मनुष्य जाति के नाम के रूप में उल्लेख करते हैं, जिसके प्रधान केंद्र हिमवत् और हेमकूट थे। पुराणों और महाभारत की कथाओं एवं आख्यानों में तो उनकी चर्चाएँ प्राप्त होती ही हैं, कादंबरी जैसे कुछ साहित्यिक ग्रंथों में भी किन्नरों के स्वरूप निवास क्षेत्र और क्रियाकलापों के वर्णन मिलते हैं। जैसा उनके नाम 'किन्नर' से स्पष्ट है, उनकी योनि और आकृति पूर्णतः मनुष्य की नहीं मानी जाती। संभव है, किन्नरों से तात्पर्य उक्त प्रदेश में रहने वाले मंगोल रक्तप्रधान उन पीतवर्ण लोगों से हो, जिनमें स्त्री–पुरुष–भेद भौगोलिक और रक्तगत विशेषताओं के कारण आसानी से न किया जा सकता हो। किन्नरों की उत्पति के बारे में दो तरह के प्रमाण मिलते हैं–एक तो यह कि वे ब्रह्मा की छाया अथवा उनके पैर के अँगूठे से उत्पन्न हुए और दूसरा यह कि अरिष्टा और कश्यप उनके आदिजनक थे। हिमालय का पवित्र शिखर कैलाश किन्नरों का प्रधान निवास स्थान था, जहाँ वे शंकर की सेवा किया करते थे। उन्हें देवताओं का गायक और भक्त समझा जाता है और यह विश्वास है कि यक्षों और गंधर्वों की तरह किन्नर नृत्य और गान में प्रवीण होते थे। विराट् पुरुष, इंद्र और हरि उनके पूज्य थे। पुराणों का कथन है कि कृष्ण का दर्शन करने किन्नर जन द्वारका तक गए थे। सप्तर्षियों से उनके धर्म जानने की कथाएँ प्राप्त होती हैं। उनके सैकड़ों गण थे और चित्ररथ किन्नरों के प्रधान अधिपति थे। इसके अतिरिक्त अनेक विद्वानों और साहित्यकारों ने अपने शोधग्रन्थों, यात्रा–पुस्तकों, आलेखों और कविताओं में किन्नर देश और किन्नौर में रहने वाली किन्नर जनजाति का उल्लेख किया है। इनमें न केवल हिमाचल के विद्वान–लेखक शामिल हैं बल्कि देश–विदेश के लेखक भी हैं।

किन्नर या हिजड़ों से अभिप्राय उन लोगों से है, जिनके जननांग पूरी तरह विकसित न हो पाए हों अथवा पुरुष होकर भी स्त्रैण स्वभाव के लोग, जिन्हें पुरुषों की जगह स्त्रियों के बीच रहने में सहजता महसूस होती है। जब कभी किसी के परिवार में कोई खुशी का अवसर होता है, तो अक्सर यह देखा जाता है कि ये किन्नर अब थर्ड जेण्डर शब्द में व्यवहृत किये जाने लगे हैं, बधाइयाँ गाकर, आशीर्वाद देकर कुछ रुपए लेकर विदा हो जाते हैं. इसके बाद हम भी अपनी सामान्य गतिविधियों में व्यस्त हो जाते हैं और दोबारा कभी इनके बारे में नहीं सोचते. हम कभी यह जानने का प्रयास नहीं करते कि ये किन्नर कौन हैं, कहाँ से आये हैं, इनकी समस्याएँ क्या हैं और वे कौन से कारण हैं, जिनकी वजह से इन्हें किन्नर बनकर एक प्रकार की भिक्षावृत्ति से जीवन–यापन करने को विवश होना पड़ता है। आज समाज की मानसिकता में किन्नर विमर्श बेहद अपरिपक्व तथा पूर्वाग्रहपूर्ण अवस्था में है, समाज की वैचारिकी अभी इन्हें स्वीकार करने में हिचक रही है फिर भी यह तो मानना ही होगा कि दिन प्रतिदिन खुल रहे और विकसित हो रहे समाज ने तीसरी सत्ता को थोड़ा सा ही सही (जिसमें सरकारी प्रयास भी शामिल हैं) स्पेस देना शुरू कर दिया है और शीघ्र ही हम वह दिन भी देखेंगे, जब ये भी समाज में सामान्य लोगों की भाँति अपने मानवाधिकारों के साथ जीवन–यापन कर सकेंगे।

◆ **कृपया उपरोक्त विषयों पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख / लेख भेजकर रचनात्मक सहयोग देने का कष्ट करें।**